सरस्वती - 1940/I

Contributed by: Prabhat Kumar

लेख-सूची

Contributed by: Prabhat Kumar

चित्र-सूची

लेख-सूची

चित्र-सूची

लेख-सूची

चित्र-सूची

सचित्र मासिक पत्रिका

सम्पादक
देवीदत्त शुक्ल—उमेशचन्द्रदेव

जनवरी १९४० } भाग ४१, खंड १ संख्या १, पूर्ण संख्या ४८१ { पौष १९९६

गीत

लेखिका, श्रीमती महादेवी वर्मा

निमिष से मेरे विरह के कल्प बीते !
नीरदों में मन्द्रगति-स्वन,
वात में उर का प्रकम्पन,
विद्यु में पाया तुम्हारा
अश्रु से उजला निमन्त्रण !
छाँह तेरी जान तम को श्वास पीते !
ओस से खिल कल्प बीते !

पंथ को निर्वाण माना,
शूल को वरदान जाना,
जानते ये चरण कण-कण
छू मिलन-उत्सव मनाना !
प्यास ही से भर लिये अभिसार रीते !
अश्रु से ढुल कल्प बीते !

माँग नींद अनन्त का वर,
कर तुम्हारे स्वप्न को चिर,
पुलक के, सुधि के पुलिन से
बाँध दुख का अगम सागर,
प्राण तुमसे हारकर प्रतिवार जीते !
पलक से चल कल्प बीते !

बिहार-रत्न राजेन्द्रप्रसाद

लेखक, पंडित मोहनलाल महतो

(१)

भीषण लंका से भगवान् राम के चरणों में आश्रय ग्रहण करने चला। निश्चय ही राक्षसराज भगवान् के सम्बन्ध में अनेक मधुर कल्पनाओं को अपने व्यग्र मन में भरकर चला होगा। सीतानाथ के रूप के सम्बन्ध में भी उसने एक काल्पनिक चित्र बनाया होगा, जो अत्यन्त लुभावना और उदात्त रहा होगा। कहीं ऐसा होता कि वह अपने आराध्यदेव को कुछ दूसरी ही सूरत में पाता। लम्बा दुबला शरीर, रंग काला और दो मोटे मोटे काले होठों के ऊपर उलझी हुई अधपकी मूछें और दमा से-बेज़ार, फटे चप्पल बुरी तरह घसीटते हुए राजीवलोचन राम उसका स्वागत करते और विभीषण देखता कि धौंकनी की तरह उनकी छाती चल रही है, दमा ज़ोर पर है और शारीरिक कष्ट से आँखें बेज़ार हैं तो इसमें सन्देह नहीं कि विभीषण को अपार मानसिक व्यथा होती। उसकी कल्पनासंभव मूर्ति तहसनहस हो जाती, जिसका उसे ऐसा मलाल होता कि वह 'हाय' करके जहाँ का तहाँ बैठ जाता।

जब सबसे पहली बार हमने राजेन्द्र बाबू को देखा तब यही दशा अपनी भी हुई।

आज भी याद है। १९२२ का ज़माना था। गया में कांग्रेस होने जा रही थी। बहुत दिनों से हम अपने इस विहार-रत्न के, विभीषण की तरह, भक्त हो चुके थे। मगर नज़दीक से देखने का पुण्य उदय नहीं हुआ था। अखबारों में उनका चित्र प्रायः देखा करते थे। अखबारों के चित्रों पर से हमारी श्रद्धा उसी दिन लोप हो गई जब हमने राजेन्द्र बाबू को अपने सामने देखा।

कार्त्तिक का महीना था। आकाश और दिशायें स्वच्छ थीं। अन्तःसलिला फल्गु का सुरम्य तट और आम की घनी बारी की याद आज भी दिल को दुलार जाती है। संध्या हो रही थी। नदी के उस पार श्यामल वन-रेखा और उसके बाद पहाड़ियों की नीली क़तारें। दूसरी ओर पके धान के खेत, सुनहली धूप से चकमक करते हुए दिखाई दे रहे थे। ऐसे ही मनोरम स्थान में 'स्वराज्यपुरी' का निर्माण हो रहा था।

हाँ, संध्या हो रही थी और बसेरा लेनेवाली चिड़ियों के कलरव से सारा वनप्रान्त सजीव हो उठा था। हम 'स्वराज्यपुरी' में घूम रहे थे। बीच में जो चौक बनाया गया था, वहाँ तिरंगा झंडा शान से फहरा रहा था, मानो आकाश में तीन रंगों का एक साथ पैवन्द लगा दिया गया हो। हमने देखा, थके-से राजेन्द्र बाबू भी कुछ आदमियों के साथ निर्माणकार्य देख रहे हैं। हमारे एक साथी ने बतलाया कि यही बिहार-रत्न राजेन्द्रप्रसाद हैं। यह स्वीकार करते हुए हमें तनिक भी मलाल नहीं होता कि राजेन्द्र बाबू को देखकर हमारा हृदय बैठ गया। अच्छा होता यदि हम उन्हें देखते ही नहीं। सूखा-सा चेहरा और रोगी शरीर, दमे से बेजार। वे धीरे-धीरे चल रहे थे और हाँफ रहे थे। हम खड़े खड़े अपने प्रान्त के पुरुषोत्तम को देखते रहे।

संध्या ने गोधूलि का रूप ग्रहण किया। चरागाह से लौटनेवाली गउओं के गले की घंटियों का शब्द संध्या के नीलमणि जैसे हृदय में भर गया। खेतों में से आनेवाली ठंडी हवा के हलके झकोरों में, दिन भर धूप में रहने के कारण, भीगी हुई घास की महक भर गई।

हम उदास हृदय से घर की ओर लौटे। हमारा मन न जाने क्यों आपसे आप भारी हो गया था। ऐसा लगता था कि हृदय के भीतर धुँधली-सी घटा भर गई है और हवा बन्द हो जाने के कारण बरसाती उमस फैल रही है।

(२)

विधाता के यहाँ शायद दो दफ़्तर हैं—एक में रूप बँटता है और दूसरे में ज्ञान। राजेन्द्र बाबू जब धरातल पर आने लगे तब उन्हें भी नियमानुसार दोनों आफ़िसों में जाकर 'रूप' और 'ज्ञान' लाना पड़ा। हमें ऐसा लगता है कि अक़्ल की गठरी बाँधते-बाँधते कुछ अधिक विलम्ब-हो गया। इसका नतीजा यह हुआ कि रूपवाला दफ़्तर बन्द हो गया. जब आप वहाँ से लौटे तब देखते क्या

हैं कि इस आफ़िस के दरवाज़े पर बड़े-बड़े ताले लटक रहे हैं। लाचार बेचारे के पास इतना समय नहीं था कि एक-दो दिन ठहरकर यह कमी भी पूरी कर लेते। उन्हें धराधाम पर केवल अक़्ल के साथ ही आजाना पड़ा। इस भूल का संशोधन 'हिमानी-स्नो', 'पामोलिव-साबुन' और 'सेफ़्टी-रेज़र' से होना असम्भव है, अतएव राजेन्द्र बाबू ने मन लगाकर किताबों से ही आँखें लड़ाना उचित समझा। संसार में उनके लिए कोई दूसरी जगह नहीं थी, जहाँ उनकी आँखें लड़तीं। चटशाला से लेकर युनिवर्सिटी की सर्वोच्च परीक्षा तक में वे सर्वप्रथम रहे। इसके बाद जब देश-सेवा की बारी आई तब इस क्षेत्र में भी वे ज़रूरत से अधिक ही नम्बर लाये। एक साधारण कायस्थ-परिवार से ऊपर उठते हुए राजेन्द्र बाबू समस्त भारत के परिवार के आज मुखिया बन बैठे, यह कोई आश्चर्य की बात नहीं है।

यद्यपि सिस्टर निवेदिता ने उनके विद्यार्थी-जीवन में ही यह कहा था कि "राजेन्द्र एक बड़ा नेता होगा", पर यह बात ग़ौर करने के क़ाबिल है कि ईख से ही मीठा रस निकलने की भविष्यवाणी कोई भी कर सकता है। हाँ, सिस्टर निवेदिता की पैनी दृष्टि की प्रशंसा की जा सकती है। चम्पारन (बिहार) में नील का जो आन्दोलन हुआ था और दक्षिण-अफ़्रीका से लौटकर महात्मा गांधी ने जिसका श्रीगणेश किया था, उसी आन्दोलन ने राजेन्द्र बाबू को हाईकोर्ट के कठोर अस्थिपंजरों से खींचकर जनता के बीच में लाकर खड़ा कर दिया। इसमें

[राष्ट्रपति डाक्टर राजेन्द्रप्रसाद]

सन्देह नहीं कि उनकी वकालत आँधी की चाल से चल रह
थी और सरस्वती की दासी बनकर लक्ष्मी उनकी म
पैर थिरका करती थी। चंचला लक्ष्मी का आदर कर
राजेन्द्र बाबू की प्रकृति के विरुद्ध बात थी। महात्

जी ने पुकारा और राजेन्द्र वावू हाईकोर्ट के विशाल फाटक को प्रणाम करके कलकत्ता से सीधे चम्पारन पहुँच गये। विहार को उनकी ज़रूरत थी। जिस मिट्टी से शरीर बना, जिस आकाश के नीचे खेल-कूद कर आदमी बने, उस जननी जैसी जन्मभूमि की पुकार को राजेन्द्र बाबू सुनकर कैसे टाल जाते जब कि खासतौर से इसी काम के लिए वे यहाँ आये थे ?

हम राजेन्द्र बाबू की जीवनी लिखना नहीं चाहते और न यही चाहते हैं कि उनकी महत्ता का वखान भाट बनकर करें। कस्तूरी की महक को शपथ खाकर प्रमाणित करना अपनी बुद्धि के साथ गुस्ताखी करना है। एक बात जव शुरू होती है तव उसके साथ कई बातें वेवुलाये चली आती हैं, जैसे फल के साथ छिलका, गुठली, रेशे आदि। पाठक, क्षमा कीजिएगा।

(३)

कांग्रेस समाप्त हो गई !

देशबन्धुदास ने कांग्रेस से विद्रोह किया और 'स्वराज्य-पार्टी' इस संघर्ष के फलस्वरूप पैदा हुई। इस नवजात शिशुपार्टी के लालन-पालन का प्रयत्न होने लगा और हम फिर अपनी पुरानी डफली पर अपना निराला राग अलापने लगे।

'स्वराज्यपुरी' निर्जन हो गई। मज़दूरों की चहल-पहल आरम्भ हुई और वैलगाड़ियों पर चटाइयों के वंडल और लट्ठे लाद-लूदकर ठेकेदार जाने लगे। जहाँ देश भर के हुतात्माओं का मेला लगा हुआ था, वहाँ तिरंगे झंडे के लम्बे बाँस पर वैठकर निर्जन दोपहरी में कौआ काँव-काँव करने लगा। दो दिन का 'चिड़िया-रैन बसेरा' था, जो देखते-देखते समाप्त हो गया।

वसन्त की सुषमा जव समाप्त हो गई तव आया जेठ का हाहाकार। आग की फुलझड़ियाँ छोड़ता हुआ ग्रीष्म गरजने लगा। कटे खेतों और पहाड़ियों के कछारों में इसी समय हमारे पास एक सूचना पहुँची।

बौद्धों ने यह दावा कांग्रेस के सामने पेश किया था कि बुद्ध-गया में भगवान् बुद्ध का जो मन्दिर है उस पर बौद्धों का पूरा अधिकार होना चाहिए। बौद्धों के इस दावे की जाँच करने के लिए कांग्रेस ने एक छोटी कमिटी बनाई थी। इस क़मिटी में यदि मेरी स्मृति धोखा नहीं देती तो हम कह सकते हैं कि तीन सज्जन थे—राजेन्द्र वावू, ब्रजकिशोर वावू और अव के विहार की कांग्रेसी सरकार के अर्थमंत्री अनुग्रह वावू। इसी कमिटी के सामने वयान देने के लिए हम बुलाये गये थे।

हम अपना वयान लिखवा रहे थे और ब्रजकिशोर वावू लिख रहे थे। राजेन्द्र वावू चुपचाप बैठे सुन रहे थे। जब हमें दस्तखत करने के लिए वयान दिया गया तब हमने उसे पढ़ना आरम्भ किया। भूल से एक वाक्य छूट गया था। हमने प्रार्थना की कि एक वाक्य छूट गया है; तव राजेन्द्र वावू ने हमारे हाथ से वयान लेकर खुद पढ़ना आरम्भ किया और विना हमसे पूछे वह छूटा हुआ वाक्य यथास्थान लिख दिया।

हम क़रीब एक घंटा तक वयान देते रहे और यह उनके स्थिर दिमाग़ की खूबी थी कि उन्होंने प्रत्येक वाक्य को सुना, समझा और याद भी रक्खा। यह १७-१८ साल की पुरानी बात है। हम २० साल के एक चंचल नवयुवक थे और किसी बात को याद रखना हमारी आदत के खिलाफ़ वात थी। अल्हड़पना सीमा तोड़कर आवारा-गर्दी का रूप ग्रहण करना चाहती थी, पर राजेन्द्र वावू की इस मानसिक एकाग्रता ने, कुछ भी हो, हमें अज़हद प्रभावित किया। हमें अपनी चंचलता पर मन ही मन लज्जित होना पड़ा।

(४)

सौभाग्य ने ज़ोर मारा और फिर कई वार हमें राजेन्द्र वावू के दर्शनों का सुअवसर मिला। यदि हम पूरा दास्तान लिखने बैठें तो इस लेख का आकार वढ़कर हनुमान् जी की पूँछ का आकार धारण कर लेगा। हम नहीं चाहते कि अकारण अपने पाठकों के धैर्य की परीक्षा लेने की ग़लती करें। हम केवल तीन प्रधान घटनाओं की चर्चा करेंगे, जो हमारी समझ से काफ़ी दिलचस्प हैं।

क़रीब १२ साल हुए, मुंगेर में विहार प्रान्तीय साहित्य-सम्मेलन का सालाना जलसा हुआ। जिस तरह व्याह-शादी की धूमधाम बिना बाजे के पूरी नहीं होती, उसी तरह सम्मेलन भी बिना एक कवि-सम्मेलन के अधूरा ही रह जाता है। कवि-सम्मेलनों की व्यर्थता पर बहस करने हम नहीं बैठे हैं, पर इतना निवेदन करना उचित समझते हैं कि इस वाहियात काम में

लोगों का मन खूब लगता है। सही वात तो यह है कि मानव-प्रकृति ही ऐसी है कि वह वहुत समय तक उचित और गम्भीर काम में फँसे रहना कभी भी सहन नहीं करती। व्यर्थ का धन्धा ही उसे रुचता है।

सम्मेलन में जो वालू पेर कर तेल निकाला जाता है उससे ऊबकर मन कवि-सम्मेलन में अपनी थकान मिटाता है। मुंगेर में इसी व्यर्थ के धंधे का प्रधानपद हमें दिया गया। हम इसी तरह का काम करके कानपुर से लौटे थे, पर सूचना मिली कि राजेन्द्र वावू भी सम्मेलन में शरीक होंगे। यह आकर्षण कुछ कम न था। जेठ का महीना था और लू-लपट के मारे घर से वाहर निकलना कठिन हो गया था।

जव मैं रात को वारह वजे मुंगेर पहुँचा तव एक दिल्लगी स्टेशन पर पहुँचते ही हुई। हम खाकी पैंट और हैट में थे और सभा के महानुभाव माला लिये गाँधी-टोपी-धारी सभापति को इधर-उधर खोज रहे थे। हमारे सामने से सुगन्धित माला का थाल कई वार आया-गया, पर किसी ने पूछा तक नहीं। जी चाहता था कि हम अपना नाम लेकर चिल्ला उठें, पर मन मसोसकर रह जाना पड़ा।

कवि-सम्मेलन के अवसर पर हमने राजेन्द्र वावू को देखा। जो रूप गया-कांग्रेस के अवसर पर देखा था वही था। फ़र्क़ इतना ही था कि दमा दवा हुआ था। हम जानते थे कि राजेन्द्र वावू एक बड़े नेता हैं, उनका व्यक्तित्व भी हिमालय की तरह महान् है। हमारे जैसे एक अख्यात हिन्दी-सेवक के विषय में जानना उनके लिए ज़रूरी नहीं है, पर उस समय हमारा यह भ्रम दूर हो गया जव उन्होंने हमारे नाम का प्रस्ताव सभापति-पद के लिए किया। इसमें सन्देह नहीं कि वे अपने प्रान्त के प्रत्येक ऐसे व्यक्ति के विषय में पूरी जानकारी रखना ज़रूरी समझते हैं जिसके सम्बन्ध में जानना वे ज़रूरी समझते हों। उन्होंने अपने भाषण में हमारे लिए जो शब्द काम में लाये वे शब्द हम आज तक नहीं भूल सके। हम यह समझ रहे थे कि राजेन्द्र वावू की महत्ता शब्द बन बन-कर उनके मुँह से निकल रही है, वर्ना हम इस योग्य नहीं थे कि वे हमारे लिए ऐसे विचार प्रकट करते।

संध्या के बाद जब राजेन्द्र वावू की सेवा में उपस्थित हुए तव उन्होंने मुस्कराते हुए कहा—"अच्छा हुआ जो तुम आ गये।" हमने निवेदन किया —"आपके दर्शनों की जो भूख थी वह मिटी। हमारे लिए ज़रूर अच्छा हुआ जो यहाँ आये, कवि-सम्मेलन की वात परमात्मा जाने।"

और भी बहुत-सी बातें हुईं, जिनकी चर्चा यहाँ पर व्यर्थ है। जैसे जैसे हम राजेन्द्र वावू को नज़दीक से देखते गये, हमारी आँखों के सामने उनकी महत्ता निखरती गई।

(५)

चार साल बीत गये !

इन चार वर्षों की लम्बी दौड़ कैसे समाप्त हो गई, यह पता नहीं चलता। चार चार वार ग्रीष्म वसुधा को धूलि से भर गया और चारों वार वर्षा ने इठला इठलाकर उसे धो डाला। प्रकृति हँसती-खेलती आई और चली गई, पर हम अपने जीवन के उलझे हुए सूत को एकाग्र मन से बैठे सुलझाते ही रहे। वसन्त ने हमारे सामने सौरभ का वाज़ार लगाया, ग्रीष्म का ताण्डव देखा और फिर वर्षा की धानी चूनरी धरित्री के आँगन में लहराने लगी। इधर हमने क्या किया? जीवन का दुर्वह भार लादे अतीत के नाम पर आँसू बहाते रहे। वर्तमान को अपने अनुकूल बनाने के लिए एड़ी-चोटी का पसीना एक करते रहे और भविष्य पर अधिकार प्राप्त करने के लिए नाना प्रकार के ऊभ्रमों की सृष्टि करते रहे। एक एक पल करके चार साल बीत गये और जहाँ थे वहीं से हमने खड़े खड़े देखा, घाट पर की नावों में से बहुत-सी पाल तानकर असीम सागर की तरंगों से खेलती हुई आँखों से ओझल हो गईं। हम खूँटे की तरह एक ही जगह गड़े हुए यह आशा किया करते हैं कि कोई अभागा जीव आकर हममें बँधे तो उसके उछलने-कूदने से तनिक-सा मनोरंजन तो हो।

खैर, चार साल पहले हम पटना गये और वहीं कुछ दिनों तक जमे भी रहे। स्वर्गीय जायसवाल जी एक पुस्तक लिखना चाहते थे और उसी पुस्तक के निर्माण का सुख-सपना देखते हुए हम भी पटना की गंगा में दोनों जून गोते लगाया करते थे।

हमारे एक परिचित राजा साहव की कोठी भी पटना में ही थी और बिहार का राजनैतिक हृदय 'सदाक़त-

आश्रम' भी पटना में ही है। हम अपने पाठकों का पटना की खास खास इमारतों से परिचय कराना नहीं चाहते, पर जो नाटक होनेवाला था उसका सम्बन्ध उन्हीं स्थानों से था जिनकी चर्चा ऊपर की गई है।

राजा साहब, सदाक़त-आश्रम और जायसवाल साहब की कोठी में हम समान रूप से रहते थे। आज तक हमें भी इस बात का पता नहीं चला कि हम सचमुच रहते कहाँ थे।

एक दिन हम जायसवाल साहब की गाड़ी पर राजा साहब की कोठी से लौटे। बीच में ही 'सदाक़त-आश्रम' था और वहाँ कुछ काम भी था। आश्रम में पहुँचकर हमने देखा कि एक पटनिया एक्का खड़ा है। मरियल टट्टू अपने भाग्य के नाम पर झख मार रहा है और एक्कावान घास पर बैठा आराम से बीड़ी पी रहा है। यह एक्का राजेन्द्र बाबू के कमरे के सामने खड़ा था। इसके बाद हमने देखा कि विहार-रत्न अपने प्राइवेट सेक्रेटरी के साथ कमरे से निकले और एक्के पर चढ़ने की तैयारी करने लगे।

न जाने क्यों हमारा मन विषाद से भर गया। बिहार का यह गौरव एक्के पर चढ़कर आम सड़कों पर घूमे! इसे हमने अपना जातीय अपमान समझा। एक क्षण सोचकर हमने आगे बढ़कर राजेन्द्र बाबू को रोका और निवेदन किया कि "आप इस मोटर पर जाइए।"

हँसते हुए उन्होंने कहा—"यह गाड़ी तुम्हारी नहीं है। जिनकी यह है उन्होंने तुम्हें काम में लाने का आदेश दिया है न कि जिसको-तिसको चढ़ाकर दिन भर दौड़ाने के लिए।"

हमने कहा—"जब तक यह हमारी सवारी में है, हमारी गाड़ी है। आप इसी पर जाइए।"

वे भला क्यों राज़ी होने लगे और हमने भी हठ पकड़ा। अन्त में यह तय हुआ कि यदि जायसवाल साहब आज्ञा दे दें तो फिर कोई बात नहीं है। पास ही कोने में फोन का रिसीवर रक्खा हुआ था, जिसे हमने कान में लगाया। जायसवाल साहब ने कहा कि "हम एक ही शर्त पर राजेन्द्र बाबू को गाड़ी दे सकते हैं और वह यह कि वे आज मेरा घर पवित्र करें।"

जायसवाल साहब राष्ट्रीयता के भयानक पोषक और एक महान् व्यक्ति थे। राजेन्द्र बाबू के हृदय में उनके प्रति सम्मान और स्नेह के भाव थे। हम इस चक्कर में पड़े कि किन शब्दों में डाक्टर जायसवाल का सन्देश राजेन्द्र बाबू को सुनाया जाय और इधर एक्कावान त्योरियाँ चढ़ाकर कभी हमें और कभी राजेन्द्र बाबू को घूर रहा था। सोच-विचारकर जब हमने राजेन्द्र बाबू से जायसवाल जी की शर्त कही तब वे मुस्करा पड़े और कहने लगे कि "पार्टी की बैठक से अवसर मिलते ही वे जायँगे।" मोटर बढ़ गई और एक्कावान पंजे झाड़कर अपनेराम के पीछे पड़ा।

बात यह है कि हम बहुत बार गधागाड़ी की सवारी पंजाब में कर चुके हैं और लड़कपन के उकसाने पर सीतलावाहन की पीठ पर भी आरोहण करने के अनेक मौक़े आ चुके हैं, पर एक्का पर चढ़ना हमारे लिए जर्मन-वार में जाने से भी भयानक बात है, उस पर पटनिया एक्का! आये दिन एक्का उलटने के समाचार पढ़ते पढ़ते दिल कायर हो गया है। बड़ी कठिनता से हम उस वीर एक्कावान से अपना पिंड छुड़ा पाये।

'सदाक़त-आश्रम' बिहार का राजनैतिक दिमाग़ है। राजेन्द्र बाबू के आते ही उसमें जीवन आ जाता है। कई दिनों तक वहाँ हलचल रही, रंगबिरंगी गाड़ियों की रेल-पेल भी रही। एक दिन बिस्तर समेटकर राजेन्द्र बाबू बम्बई की ओर रवाना हो गये और आश्रम में ऐसा सन्नाटा छा गया कि दिन में ही झिल्लीरव सुन पड़ने लगा।

(६)

रोग भी बड़ों की ही शरण में रहना पसन्द करता है, जैसे महात्मा जी की शरण में ब्लडप्रेशर है और राजेन्द्र बाबू की शरण में दमा।

राजेन्द्र बाबू दमा से सदा व्यग्र रहा करते हैं, पर विश्राम करना उनके लिए कठिन है। जब वे कांग्रेस के पहली बार प्रेसीडेण्ट हुए तब सारे भारत का दौरा उन्होंने एक साँस में कर डाला। कन्या-कुमारी से हिमालय और अटक से कटक तक नापकर जब वे लौटे तब हमने आपके दर्शन किये। अभिनन्दन-पत्रों का एक पहाड़ उनके साथ आया और आया उपहार में मिली हुई हज़ारों के दाम की चीज़ों का ढेर। सोने-चाँदी के बहुमूल्य कास्केटों का क्या कहना है! कारीगरी के नमूने भी आये जैसे एक ही चावल पर राजेन्द्र बाबू की तसवीर और हाथ में

तिरंगा झंडा। चावल को खोदकर यह मूर्ति गढ़ी गई थी। फाउन्टेनपेन तो इतने थे कि आसानी से एक अच्छी-खासी दूकान खोली जा सकती थी और पुस्तकें थीं एक छोटी-सी पर सुन्दर लाइब्रेरी जितनी। राजेन्द्र बाबू की जेब में उस समय भी हमने वही जराजीर्ण वाटरमैन देखा जिसकी निब घिसकर पानी पानी हो गई थी। विद्यार्थी रहते हुए शायद उन्होंने उसे खरीदा होगा। पूछने पर उन्होंने कहा कि अभी यह काम दे रही है और जो क़लम मुझे मिले हैं वे राष्ट्र की सम्पत्ति हैं।

आत्म-संवरण का यह एक मनोरम उदाहरण था। हमने साधारण काग़ज़ पर उनको निजी पत्र लिखते देखे हैं और जो काग़ज़ या लेटर-पेपर कांग्रेस के होते हैं उन्हें वे निजी काम में नहीं लाते। राजेन्द्र बाबू यहाँ तक अपने को सार्वजनिक पैसे से दूर रखने का प्रयत्न करते हैं। यही ईमानदारी उन्हें लगातार ऊपर उठाती चली जा रही है। हम जानते हैं कि कुछ ऐसे भी महानुभाव हैं जो लीडरी को अपना पेशा समझकर मौज मारा करते हैं और जिन्होंने सार्वजनिक धन को कूड़े-करकट से भी तुच्छ समझा है जब कि हमारा बिहार-रत्न सार्वजनिक काम के लिए खरीदा गया काग़ज़ का एक छोटा टुकड़ा भी अपने काम में लाना बुरा समझता है।

पिछले अप्रैल की बात है। गया की गर्मी मशहूर है। हमने सुना कि राजेन्द्र बाबू राँची से गया होते पटना जा रहे हैं। कुछ अपना काम भी था। सुबह स्टेशन पर पहुँचा। पटना की गाड़ी पाँच-पचास पर छूटती थी और लोकल ट्रेन होने के कारण यहाँ वह ठहरती भी खूब है। हमने सोचा, स्टेशन पर ही राजेन्द्र बाबू के दर्शन करके छुटकारा मिल जायगा, पर परिणाम यह हुआ कि कई स्टेशन साथ जाना पड़ा।

हमने देखा, राजेन्द्र बाबू इन्टर में बैठे हैं और नाश्ता करने की धुन में हैं। आप यह न भूलें कि वे दमा के पुराने रोगी हैं। अब नाश्ता का समाचार सुनिए। स्टेशन पर मिलनेवाले पेड़े, फिर मालदह आम, उसके बाद रसगुल्ले, फिर जलेबियाँ और ऊपर से दूध। यह कोई चिकित्सक ही बतला सकता है कि दमा के एक पुराने रोगी के लिए नाश्ता का यह तरीक़ा कितना ख़तरनाक है। जब यह दृश्य देखते देखते हम बहुत ही व्यग्र हो गये तब साहस करके पूछा—"आपको ऐसी चीज़ें खानी न चाहिए। मीठा और वह भी बाज़ारू!"

राजेन्द्र बाबू ने सरलतापूर्वक कहा—"इस स[illegible] दमे की कोई शिकायत नहीं है। सर्दी के दिनों में [illegible] उभड़ता है।"

हमने इस उत्तर से यही नतीजा निकाला कि ज[illegible] रोग उभाड़ पर हो तभी पथ्यापथ्य का विचार होना चाहिए और वह दबा हुआ हो तो जो जी चाहे खाते-पीते रहना चाहिए। इसमें सन्देह नहीं कि अपने प्रति राजेन्द्र बाबू बहुत ही निष्ठुर हैं, यद्यपि उनका हृदय अत्यन्त कोमल है। आश्रम में वे बहुत सादा भोजन करते हैं जो प्रत्येक आश्रमवासी के लिए बनता है वही राजेन्द्र बाबू के लिए भी काफ़ी समझा जाता है। मोटे चावल का कुछ लाल रंग का भात, अरहर की दाल और बाज़ार में जो सबसे सस्ती मिलती हो वही सब्ज़ी। मसाला और मिर्च से परहेज़ रक्खा जाता है। चटपटी रसोई खाने के जो अभ्यासी होते हैं वे आश्रम में ठहरने का नाम भी नहीं लेते। आश्रम के लिए यह भी एक फ़ायदा है कि व्यर्थ की भीड़ वहाँ नहीं बढ़ती। तपस्या का जीवन होता तो सुन्दर है, पर खास तौर से उनके लिए जिन्हें परमात्मा ने उनकी इच्छा के खिलाफ़ संसार में भेज दिया हो। वे संसार से रूठे रहें तो इसमें कोई हर्ज नहीं है, पर हमारे जैसे व्यक्ति के लिए तो संसार ही सब कुछ है। मरने के बाद क्या है, यह रहस्य जब हमारी समझ में नहीं आया तब पूरे बल से संसार में ही चिपक गये। हम तो खाने के लिए जी रहे हैं न कि जीवित रहने के लिए दवा के रूप में आहार करते हैं।

(७)

राजेन्द्र बाबू में न तो पंडित जवाहरलाल जी जैसी तेज़ी है और न पटेल जी जैसा जोशोखरोश। लोकमान्य तिलक जैसे वे शेर भी नहीं हैं और न सर सुरेन्द्रनाथ जैसे तार्किक। वे एक विशुद्ध भारतीय हैं और महात्मा गांधी के बिहारी संस्करण कहे जा सकते हैं। न केवल बिहार में ही बल्कि सारे भारत में उनका एक स्थान है और उस स्थान का मूल्य कोहेनूरों के एक पहाड़ से कूता जा सकता है। आप लोगों ने समाचार-पत्रों में

पढ़ा होगा कि बिहार में किसान-सभा का बोलबाला है और किसान-नेता स्वामी सहजानन्द जी एक दबंग व्यक्ति हैं, पर यह कितने आश्चर्य की बात है कि वे भी राजेन्द्र बाबू का सम्मान अपने हृदय की पूर्ण श्रद्धा और विश्वास से करते हैं। इतना ही नहीं, बिहार का प्रत्येक दल राजेन्द्र बाबू के सामने सिर झुकाने में अपना गौरव समझता है। प्रजा और ज़मींदार दोनों ही उन्हें अपना हितू मानकर उनका सम्मान करते हैं। निश्चय ही राजेन्द्र बाबू एक सार्वभौम नेता हैं, जो न केवल कांग्रेस के ही प्राण हैं, बल्कि समस्त बिहार के पूजनीय देवता हैं। उनकी सादगी और मिलनसारी अतुलनीय है।

पंडित जवाहरलाल जी के सामने जाते हुए साधारण व्यक्ति क्या, विशेष व्यक्ति भी घबराता है। जब पंडित जी गया आये थे तब हमने एक स्वयंसेवक से यह प्रार्थना की कि वह पंडित जी तक हमारा कार्ड पहुँचा दे, पर वह किसी तरह भी यह गुस्ताख़ी करने को राज़ी नहीं हुआ। उनके कमरे के सामने से गुज़रता हुआ कोई भी व्यक्ति झिझकता है, पर यह बात हमारे बिहार-रत्न के सम्बन्ध में नहीं सोची जा सकती। हमने देखा है कि वे दमे से परेशान हैं, पर साधारण किसान से लेकर बड़े बड़े कांग्रेस-कार्यकर्ता तक उन्हें लगातार कष्ट पहुँचा रहे हैं। सदाक़त-आश्रम में उनका बैठकखाना प्रत्येक के लिए हर घड़ी खुला रहता है। न तो सेक्रेटरी से मुलाक़ात का प्रबन्ध कराना पड़ता है और न कोई तूफ़ान उठाने की हाजत होती है। यदि राजेन्द्र बाबू आश्रम में मौजूद हुए तो किसी समय भी आप उनसे मुलाक़ात कर सकते हैं और जब तक जी चाहे बातें कर सकते हैं। वे बहुत ही शान्ति और प्रसन्नता के साथ आपकी बातें सुनेंगे और उत्तर देंगे। उन जैसी मानसिक एकाग्रता और संयमशीलहृदय बहुत ही कम हमने देखे हैं। इस सम्बन्ध में महात्मा जी का नाम लेना उचित नहीं होगा, क्योंकि वे आलोचना के विषय नहीं रहे। प्रशंसा और निन्दा के परे की स्थिति में पहुँचकर आज महात्मा जी करोड़ों भारतवासियों की पूजा के अधिकारी बन चुके हैं।

इसी महीने की बात है। हम गोरखपुर से लौटे और सीधे पटना पहुँचे। छोटी लाइन के कष्टों का वर्णन करना हम नहीं चाहते, पर इतना तो अवश्य कहेंगे कि सारे शरीर का कचूमर निकल गया था। 'जनता'-कार्यालय में पहुँचते ही सबसे पहले जनता के यशस्वी सम्पादक और विख्यात साम्यवादी भाई रामवृक्ष बेनीपुरी के दर्शन हुए। बेनीपुरी भाई में लड़कपन इतना है कि अभी जवान होने की क़तई उम्मीद नहीं है। हमने देखा कि वे अपने दोनों तलवों पर पट्टी चढ़ाये लेटे हुए हैं। पूछने पर बच्चों की तरह उचकते हुए कहा—कोढ़ फूट आया है। ख़ैर, यहीं यह पता चला कि आज राजेन्द्र बाबू आनेवाले हैं। प्रयाग से आज सीधे पटना आ रहे थे, वर्किंग कमिटी समाप्त हो चुकी थी। यह इसी नवम्बर की बात है।

फ़ोन करने पर हमें यह सूचना मिली कि राजेन्द्र बाबू अभी अभी आये हैं। हमने यह तय किया कि दोपहर को उनके दर्शन करना उचित होगा। नींद के मारे हम अधमरे हो रहे थे।

ठीक समय पर जब आश्रम पहुँचते हैं तब क्या देखते हैं कि बिहार के भूतपूर्व प्रधान मंत्री के साथ राजेन्द्र बाबू कहीं जाने की व्यवस्था में लगे हुए हैं। अभिवादन आदि के बाद उन्होंने कहा कि ७ बजे आना, तुमसे एक आवश्यक काम है।

पूछने पर उन्होंने कहा—हम एक मीटिंग में जा रहे हैं। वहाँ से मृत्युंजय के यहाँ जायँगे।

मृत्युंजय बाबू उनके ज्येष्ठ पुत्र हैं और फ़िलहाल पटना में ही सपरिवार रहते हैं। हमने सोचा कि ७ बजे तक आश्रम में बैठे रहना एक मानसिक सज़ा है। हम घूमते-फिरते मृत्युंजय बाबू के डेरे पर पहुँचे। वहाँ बिहार के भूतपूर्व अर्थ-मंत्री बाबू अनुग्रहनारायण-सिंह बैठे दिखलाई पड़े और दिखलाई पड़े बिहार के सबसे बड़े राजनीतिज्ञ बाबू ब्रजकिशोर, जो बुढ़ौती और लकवा से लड़ते हुए जीवन व्यतीत कर रहे हैं। उस नखदन्त-विहीन वृद्ध व्याघ्र को हमने क़रीब २० साल के बाद देखा। कितना परिवर्तनशील संसार है! आह!

तत्काल राजेन्द्र बाबू भी आगये। आते ही उन्होंने कहा, अच्छा हुआ जो तुम यहाँ आगये। आओ यहीं एक बात बतला दूँ।

'हिन्दुस्तानी-कमिटी' का पचड़ा उन्होंने हमारे सामने रक्खा। १० दिसम्बर को कमिटी की बैठक होने जा

रही थी और कुछ ज़रूरी बातों पर विचार करना था। हिन्दी और उर्दू के पारिभाषिक शब्दों पर विचार करने का आदेश उन्होंने हमें दिया और कहा कि अमुक अमुक प्रोफ़ेसर तुम्हारी सहायता करेंगे। हमारे लिए यह प्रलोभन कुछ कम नहीं था, पर हिन्दुस्तानी के सम्बन्ध में हम निराश हो चुके हैं। राजेन्द्र बाबू ने यह भी कहा कि विचार करते समय मुसलमानों पर भी ध्यान रखना आवश्यक है।

इस निजी बात-चीत को सार्वजनिक रूप देना हो सकता है कि उचित न हो, पर हम जब संस्मरण लिखने बैठे हैं तब हमारे लिए यह उचित है कि हम उसे अपूर्ण न रहने दें। हम यह चाहते थे कि पारिभाषिक शब्दों के इस झगड़े को निबटाकर ही गया जायँ, मगर न जाने क्यों हमारा जी नहीं बढ़ा। हिन्दुस्तानी के नाम पर जैसी भाषा दी जा रही है वह समर्थन के योग्य नहीं कही जा सकती। हम नित्य रेडियो सुनते हैं और दिल्ली से हिन्दुस्तानी नामधारी जो भाषा बोली जाती है वह घृणा के योग्य है। उस भाषा को न तो फ़ारसी कह सकते हैं और न हिन्दी। एक वाहियात भाषा की रचना में तनिक भी सहयोग देना हमारी आत्मा को मंज़ूर न था और हम गया भागने की व्यवस्था में लग गये। हमें दुःख है कि राजेन्द्र बाबू का आज्ञापालन हम नहीं कर सके।

पटना से गया की ओर गाड़ी भाग रही थी।

यही पिछला नवम्बर था। हम अपने बर्थ पर चुपचाप बैठे एक आरमेनियन युवक की बातें सुन रहे थे, जो बड़ी कठिनता से अपने मनोभावों को टूटी-फूटी अँगरेज़ी में व्यक्त कर रहा था। कुछ समय पहले एक बंगाली बाबू से इस आरमेनियन युवक से काफ़ी थुक्का-फ़ज़ीहत हो चुकी थी। बंगाली बाबू यह समझ रहे थे कि यह एक योरपियन है, पर जब उसने कहा कि वह आरमेनियन है तब दोनों में तत्काल मैत्री हो गई और अचानक सभी मुसाफ़िरों की सहानुभूति उस विदेशी की ओर हो गई। हम यह साहस-पूर्वक कहेंगे कि कुछ समय पहले उक्त बंगाली बाबू की भद्दी और तेज़ बातों का समर्थन गाड़ी के कोने कोने से हो रहा था, पर जैसे ही लोगों को यह मालूम हो गया कि बंगाली बाबू का प्रतिवादी योरपीय नहीं है, वैसे ही सभों ने बंगाली बाबू का साथ छोड़ दिया और स्वयं बंगाली बाबू ने भी बढ़कर हाथ मिलाया।

सारे देश में इस तरह की मनोवृत्ति ज़ोर पकड़ रही है। हम एक बार श्रद्धापूर्वक राजेन्द्र बाबू के चरणों पर सिर झुकाकर अब क़लम को विश्राम देते हैं। उनके पावन संस्मरण लिखकर आज हम धन्य हुए।

आत्म-बोध

श्रीयुत नरेन्द्र शर्मा, एम० ए०

हृदय में संताप मेरे, देह में है ताप !
कौन है जो बात पूछे ?
कौन है जो अश्रु पोंछे ?
अश्रु मेरे सूख जाते किन्तु अपने आप !

बात, पीले पात-सा, जो ले उड़ी थी दे भुलावा,
छोड़कर चल दी मिला जब उसे फूलोंस बुलावा !
कर लिया हलका हृदय रो झींक कर चुपचाप !
मैं किसे अपना कहूँगा कह रहा सुनसान भी जब,
'बंधु जाओ' व्यस्त हूँ मधुमास-स्वागतकाज में अब !
न हो कोई, सुनूँगा मैं स्वयम् आत्म-प्रलाप !

हो उठा करुणार्द्र सहसा था कभी निष्ठुर वधिक जो;
आज समझा, सुख वही है यातना जब अत्यधिक हो;
इसी विधि वरदान बनता वाम विधि का शाप !
झूठ साबित हो रहे हैं ज़िंदगी के सब बहाने,
पर भटक कर भूल कर भी पहुँचता जाता ठिकाने,
हो रहे अपने बिराने—छीजते जाते पुराने पाप !

कला का अनुवाद

लेखक, पंडित माखनलाल चतुर्वेदी

पहली मुलाक़ात में मैंने जाना, जैसे देव-दूत मिल गया। खूब चर्चा सुन रक्खी थी। कुछ लोग प्रारम्भ ही से प्रत्येक आदमी को खतरनाक और बेईमान मानकर चलते हैं। और ज्यों-ज्यों व्यक्ति अपने गुणों से अपनी श्रेष्ठता व्यक्त ही नहीं, सिद्ध करता जाता है, त्यों-त्यों वे उसकी बेईमानी के सौ नम्बरों में से एक-दो के क्रम से नम्बर घटाते जाते हैं और ईमानदारी और गुणज्ञता के खाते, एक-दो के ही क्रम से, श्रीगणेश प्रारम्भ करते हैं। कुछ लोग ऐसे होते हैं जो प्रत्येक नये आगन्तुक को सौ फ़ी सदी ईमानदार 'मानकर' चलते हैं; और ज्यों-ज्यों वह विश्वासघात या खराबी करता जाय, त्यों-त्यों उस बेईमानी के खाते नम्बर शुरू करते और ईमानदारी के खाते से नम्बर घटाते जाते हैं। लोग ही तो ठहरे। पहले ज़िक्र किये लोगों को 'बुद्धिजीवी' और 'चौकन्ना' कहते हैं, जिनके हानि उठाने का उनकी राय आला में कभी अन्देशा नहीं। और दूसरे प्रकार में वर्णित 'भावनाप्रधान व्यावहारिक मूर्ख' कहे जाते हैं, जो आदर के साथ आगन्तुक का स्वागत करते हैं, और उससे अपना मन बिगाड़ कर, तथा अपने से उसका मन फाड़कर, विदा करते हैं। पहले लोग जीवन का सौदा करते हैं, जिसमें टोटे की जोखिम न उठानी पड़े। दूसरे लोग अपने को आगन्तुक के साथ बाजी पर चढ़ा देते हैं, और दुःखों और सुखों में परस्परावलम्ब से परिस्थिति बदलने में हार खा जाते हैं; तब ईमानदार साथी की तरह अपने और अपने साथी के गुण-दोषों का विवेचन करते हैं। किन्तु दुनिया तो न जाने किसने दुनिया ही की तरह बनाई है। एक नल में चार टोंटियाँ लगी हों साफ़ दीखनेवाली; तो एक नल पर सवर्ण और दूसरे पर हरिजन साथ-साथ पानी नहीं भर सकते हैं! किन्तु टोंटियाँ ज़रा दूरी पर लगाकर, दोनों को जोड़नेवाले नल पर मिट्टी या चूना डालकर, उन्हें हमारी आँखों से ओझल कर दिया जाय और यदि उसके बीच में ओर ओट कर दी जाय, तो फिर मज़े में उस नल के एक छोर पर ब्राह्मण और दूसरे पर चांडाल साथ पानी पी सकते हैं। शायद लोगों की माँग यह है कि धोखा दो, किन्तु स्पष्ट हमारी जानकारी में कुछ न करो, वह जो हमें न भाये। किन्तु जिन्हें जीवन को दूकानदारी के सौदे-सट्टे के साथ नहीं चलाना, किसी कड़वाहट में, गले से नीचे उतारने योग्य मिठास तो मिला सकते हैं, किन्तु अवसरलोलुपता से, माँग पर मीठा देकर, अपने साथी का निश्चित मरण नहीं न्यौत सकते। खैर।

हाँ तो, पहली मुलाक़ात में वे देव-दूत दीखे। इसलिए नहीं कि उन्होंने अपने देव-दूत होने का विज्ञापन किया हो; इसलिए भी नहीं कि उनके देव-दूत होने के इतने उपकार विश्व पर बिखर रहे हों कि उन्हें देखकर कोई भी उन्हें देवदूत ही कहता; यह बात भी नहीं कि उनके कष्ट-सहन ने उनके शरीर को ऐसा तेजोमय और पारदर्शक बना दिया था कि आँखें चार होते ही देखनेवाले की आँखें आँखों पर ठहरने के बजाय उनके चरणों पर ही ठहरें, और न यह कि अपने चिन्तन के चरखे पर, हाथ-कते, हाथ-बुने वे इतने बारीक डोरे निकालते हैं—अनुभव और चिन्तन के ताने-बाने से बने—कि हमारी बुद्धि ललच उठे, अनुभव की रोमावलि फूल उठे और अन्तरिक्ष के अन्धकार में चलती हुई आँखें अन्तश्चेतना और बहिःप्रकाश पा जायँ; यह कुछ भी न था। केवल एक बात थी। हृदयवान् मानव में मुग्ध को मनाने और अस्पष्ट पर अपरिमितता का आरोप कर पूजने की जो कमज़ोरी है, वही प्रथम मिलन में वन्दनीय कहने की जड़ में शायद विद्यमान थी। और इसी लिए जब वे आये, तब मैंने किसी चिन्तक का यह विचार अपने सामने रक्खा—

"प्रभु आसमान के परे नहीं, वह तो उम्र के परे निवास करता है।" और धीरे से छाती जुड़ा ली—दूर खड़े खड़े ही।

कपाल चौड़ा था और आँखें लाँबी-लाँबी। हजामत खूब अच्छी बनी हुई थी, किन्तु आँखों की गम्भीरता और कपड़ों की अस्तव्यस्तता कह रही थी कि अपने ध्रुव पथ में सौन्दर्य को पनाह देने के लिए इस व्यक्ति के पास

अवकाश नहीं है। कुरता खादी का था; धुला। परन्तु गले के दो बटन खुले हुए थे। कोट मटमैला-सा था, जिसका रंग ही वैसा था। उसमें दो जेब बाहर और एक अन्दर था। दर्ज़ी की सुघड़ता उसमें खर्च हुई थी, किन्तु पहिननेवाले का बेघड़ापन उसके ऐंचक बेंचा लटकने से व्यक्त हो रहा था। टोपी थी खादी की ऊन की, चाकलेट रंग की; किन्तु हाथ में; सिर पर नहीं। तेल लगे किन्तु बिखरे और उलझे केश; श्यामल वेश; बातचीत करते समय, रुख न मिलाने की आदत; बहुत थोड़े बोल, मानों उधार के हों। अथवा, काले काले बदन पर चिपके लाल ओठों की ललाई के घिस जाने का डर हो। बातों में, गले तक सारा बदन वक्ता की ओर किन्तु आँखें दीवार पर उगी घास पर, आविष्कार की तरह कुछ खोजती-सी। प्रत्येक शब्द मुस्कराकर बाहर निकले। हाथ में, पन्त जी का पल्लव; और बायें हाथ की अनामिका में, क़ीमती पत्थर लगी हुई एक सोने की अँगूठी।

चर्चा किसानों पर चल रही थी। और घटना के हर करुण अंश पर श्रोता हाँ या ना कहने के बजाय, उसाँस लेते।

कि इतने ही में पोस्टमैन ने जीने के नीचे से पुकारा, बाबू जी! उनके साथ उनके प्रोफ़ेसर भी थे। वे बेचारे उठे और दौड़े। पोस्टमैन से मेरी चिट्ठियाँ ले आये। इनकी आँखों में भी उत्सुकता आगई।

मैंने सोचा, न जिसका मुँह बोले, न आँखें, उसका तो अन्तरंग ही बोलता होगा। किन्तु 'होगा' कह कर ठहरने के लिए मानव मन तैयार जब हो?

उस दिन की बातें जिज्ञासु जैसी थीं। मैं बोलता गया। वे चुप सुनते ही रहे।

* * *

तीन महीने पश्चात्—मैं अपनी एम० ए० की परीक्षा में उत्तीर्ण हो चुका था और कनवोकेशन के अवसर पर डिगरी का 'आडम्बर' लेने आया था। वे भी बी० ए० पास हो गये थे और आज के सम्मिलन में मेरे समान-धर्मा थे।

बोले वे, मैं चुप था। अपने आने का दिन, समय, कारण, ठहरने का मुक़ाम, उनके साथी, उस मुक़ाम पर होनेवाली तकलीफ़, तकलीफ़ का कारण, इत्यादि की चर्चा के बाद मुझसे उन्होंने मेरे ठहरने का मुक़ाम पूछा। मैंने कहा—"बैरिस्टर रामनन्दन तिवारी के बँगले पर।" इस बार मैं खूब मौन था।

वे फिर बोले। इस बार अपने साथियों की एक-एक कर आलोचना थी। वे साथी मेरे अपने भी परिचित थे। आलोचना का पहलू कड़वे-से-कड़वा और मीठे-से-मीठा था। हाँ, हर आलोचना की समाप्ति पर यह "ध्रुपद" किसी न किसी रूप में जुड़ा मिलता—'यों आदमी तो बहुत अच्छे हैं, खूब परिश्रमी, या देशभक्त, या सेवा-परायण, या मन के उदार, या अपने जनों पर प्राण देनेवाले'—जैसा भी प्रसंग होता।

मैंने अपने उत्तर के लिए केवल कुछ शब्द चुन रक्खे थे। वे थे—'अच्छा। अच्छा? कहाँ? कब? ओहो! किसने कहा? हाँ हाँ, हरगिज नहीं, मुझे मालूम नहीं, मुझे क्या करना है? खूब, ऐसा?'—शब्द और भी थे मगर उनकी जाति यही थी।

* * *

इस बार ये यूथलीग के सभापति के नाते मिल रहे थे।

मैंने कहा—"बधाई सभापति जी!"

वे बोले—"आप भी मज़ाक करेंगे?"

इसके बाद यूथलीग की चुनाई का क़िस्सा चला। मीठे शब्द; नम्र लहजा। शरमा शरमा कर कहने की आदत। जिन जिन लोगों ने, उनके सभापतित्व को संकट में डालने की कोशिश की, उनकी फ़ेहरिस्त। किन्तु आँखों की पुतलियों पर कुछ चमकता-सा पानी था जो मानों कहता था कि बात कलेजे के भीतरी हिस्से से आ रही है। किन्तु चौकन्नी उदासीनता, एक सजग लापरवाही साथ चल रही थी, जो प्रकट करती थी कि अपने खिलाफ़ की गई शरारतों के खिलाफ़ एक बेबसी और उपेक्षा के सिवा इनके पास कुछ नहीं है।

* * *

दो साल पश्चात्—

देश में प्रमुख युद्ध चल रहा था। ग़रीब और अमीर सब जेल जा रहे थे। हर चीज़ का अपना मौसम था। जेल जाना भी हमारे राष्ट्र में इतने बड़े पैमाने पर आया कि उसने एक मौसम बना दिया।

एक शहर के बाज़ार में लगभग २०० आदमी

गिरफ़्तार कोतवाली ले जाये जा रहे थे। तमाशबीनों से भी रहा न जाता था। समाज में, जैसा कि एक नामी लेखक ने लिखा था, ऐसे लोग होते हैं जो सभा में जायँ तो सभापति होने की इच्छा करें, वारात में जायँ तो स्वयं दूल्हा वनने की; और स्मशान-यात्रा में स्मशान के जुलूस में, उनकी ख्वाहिश होती है कि लोग रोवें तो उनके नाम पर और जलायें या दफ़नायें तो उन्हीं को। दूसरे कुछ लोगों को कुछ नई चीज़ जानने का शौक़ होता है, चाहे वह जेल-जीवन ही क्यों न हो; यदि वह विना नैतिक गुनाह किये मिले। तीसरे होते हैं जो सोचते हैं कि विना व्यावहारिक सेवा किये, यदि देशभक्तों के आस पास पड़ी रस्सी को अपने हाथ में वाँध लेने से सीधे मातृभूमि के उद्धारक का पुण्य मिलता हो तो क्यों छोड़ा जाय। चौथे अपनी दूकानों और अटारियों पर होते हैं। वे देखते हैं कि धन और कीर्ति की दूकान-दारी को अधिक सफलता से चलाये जाने के लिए भविष्य में जेल-जीवन एक रामवाण नुसख़ा होगा, कि वे अटारियों से उतर कर जेलखाने की हथकड़ी उसी तरह पहिन लेते हैं, जैसे किसी वड़े आदमी की शादी में अपना सवसे अधिक वड़प्पन जताने के लिए हीरों का हार या क़ीमती रिस्टवाच पहिनी जाती है। छठवें वे होते हैं जो सोचते हैं कि आज तक तो देशभक्ति का जोत जोता; आज जेल न गये तो लोग हँसेंगे; अतः चल पड़े क़ानून-भंग के रूप में आराम-भंग की ओर। इनमें कुछ ग़रीव वे भी होते हैं, जो जेल में दोनों जून भोजन पा लेते हैं, किन्तु वाहर संस्थाओं और नेताओं की पूरी ग़ुलामी करने के वाद भी, उपवासों के वेतन पर, देश भक्ति की ऐसी प्रथा जारी रखते हैं। किन्तु वे नक्षत्र, देशभक्ति के वे सितारे होते हैं, जिनकी तपस्याओं के आसपास ये ग़रज़मन्द और अलगर्ज़ उपग्रह लटकने लगते हैं। उस समय इतने ज़ोर की गिरफ़्तारियाँ थीं कि सत्याग्रह के दिनों खादी पहिन कर नागपुर का टिकट लेना नागपुर के अंजनी जेल के सन्तरी को अपने आने के लिए दरवाज़ा खुला रखने के लिए न्योता भेजना था। मौसम ऐसा अच्छा था कि विवाहों के वाजेवाले अपने बिगुल और अपने ढोलों पर—"आज़ादी के दीवानों का दीवाना भगतसिंह" गावें; प्रायमरी स्कूल की प्रथम श्रेणियों के वच्चे एकत्र होकर "झंडा ऊँचा रहे हमारा" का खेल खेलें; मजिस्ट्रेट लोग, समाज के उत्साह से घवड़ा कर, उनकी नज़र से गिर जाने के डर से जेलों में देशभक्तों के मुक़दमे करें; व्यापारी विलायती कपड़ा स्वदेशी वताकर वेंचें, रेलवे के वावू गांधी टोपी पहिने विना टिकट आवारों को विना कुछ कहे और विना कुछ लिये वाहर निकल जाने दें; पुलिसवाले "साहव" के सामने हथकड़ी वाँधें और अकेला पाकर क़ैदी से सलाम करें; ताँगेवाले चार आने की मज़दूरी में सफ़ेद टोपीवालों से दो आने पाकर चुप रह जायँ। फूल की मालायें शौकीनों को मिलनी मुश्किल हो गई थीं। वे देशभक्तों से जव वचें! ठीक इसी मौसम में जव कि मैं एक विश्वविद्यालय में प्रोफ़ेसर था, मैंने एक मासिक पत्र उठाकर पढ़ा। मुखपृष्ठ पर एक कविता "स्फुलिंग" शीर्षक थी। उसमें मरनेवाले रण-वीरों का गुणगान था। नीचे नाम था—'अमरचन्द्र श्रीवास्तव'। कविता क्या थी, मानों शब्दों ने भाषा का सारा तेज पा लिया था। उसमें आग थी, अंगारे थे, मौत थी, लय थी। एक ही महीने पश्चात् मैंने फिर एक समाचार पढ़ा। लिखा था, उक्त कविता छापने के कारण उस मासिक पत्र से "दो हज़ार की ज़मानत ली गई।" इस समय मेरे मन में अपने 'तरुण मित्र' के प्रति फिर अनुराग जागा। ये वे ही थे। मैंने ढूँढ़ा नहीं कि वे कहाँ हैं और क्या करते हैं। जिसकी पंक्तियों में अंगारे वरस रहे हों, वह उस मौसम में कहाँ हो सकता है, मौसम के फलों को वेचनेवाले कुंजड़े भी कह सकते थे।

इस घटना के तीसरे रोज़ मुझे एक निमन्त्रण-पत्र मिला। वह दीवानचन्द्र जी श्रीवास्तव का था। उनके पुत्र अमरचन्द्र श्रीवास्तव एम० ए० की शादी का आमन्त्रण था। एक छोटे साहेव यानी डिपुटी कलेक्टर के यहाँ वारात जानेवाली थी।

मैंने उसी डाक के अखवारों पर नज़र डाली। भिन्न-भिन्न शीर्षकों के नीचे जेल जाने और सज़ा पानेवालों के नामों और गुणों (अंकों) से कालम भरे हुए थे। मैं फिर उठा, और वह मासिक पत्र उठा लाया जिसमें कविता छपी थी! फिर आमन्त्रण-पत्र पढ़ा। फिर अखवारों को देखा। एक विचित्र रामायण बन रही थी; जिसमें

काण्ड पर काण्ड अलग अलग नज़र आ रहे थे। मैंने सोचा, हो न हो यह शादी उक्त राष्ट्रीय "कवि" की मर्ज़ी के खिलाफ़ हो रही होगी। या फिर वह कवि कोई और होगा। वारात मानिकपुर से खागा जा रही थी। प्रयाग से मैं भी साथ हो लिया। स्टेशन पर पहुँचते ही अमरचन्द्र मिले। वड़े प्रेम से! उनके हाथ में कटार थी, अँगुलियों में अँगूठियाँ, हाथों में मेहँदी, ओंठों पर पान की लाली, वदन से इत्र की वू आ रही थी और चँवर और पंखे नाइयों के पास दीख पड़े। मैंने मानों थाह-सी लेते हुए—प्रणामों के आपेंस में वाँधने-खोलने के वाद—"स्फुलिंग" रचना पर अमरचन्द्र को ववाई दी। वे वोले—"आपकी कृपा है। टूटा-फूटा लिख लेता हूँ। यों मुझे आता ही क्या है।" मैंने कहा, "वाह क्या हृदय पाया है। कविता मानों वह उभाड़ है, जो रोके न रुके, थमाये न थमे।" वे वोले—"आपका विस्तरा कहाँ है? यहीं इसी डिव्वे के नीचेवाले गद्दे पर आ जाइए।" मैं आ गया।

विवाह में मैं दो दिन रहा। रोज़ अखवार देखता। जहाँ शादी हो रही थी, उस गाँव में भी पुलिस ने उसी दिन "लाठी चार्ज" किया था। किन्तु शादी वहुत धीरे-धीरे होती चली जा रही थी और औरतों के गीतों और मर्दों के मज़ाकों में अमरचन्द्र ऐसा रस ले रहे थे, मानों वे और किसी लोक के नहीं सिर्फ़ इसी लोक के जीव हैं। तीसरे दिन मैं चल दिया। रह-रह कर मैं अमरचन्द्र से कुछ पूछना चाहता था, किन्तु रंग में भंग न हो इस भय से मैंने नहीं पूछा।

मैंने वकालत पास कर ली थी और एक रियासत में आ गया था। क्योंकि हम यहीं के रहनेवाले हैं, अतः यहीं वकालत करना था। एक वार कर्म-धर्म-संयोग से मुझे नज़दीक की रियासत में एक डाके के मुक़दमे में मुल्ज़िमों की ओर से जाना पड़ा। उन दिनों भी वही मासिक पत्र मेरे हाथ में था और उसमें "सच्चा कौन" इस शीर्षक की कहानी छपी हुई थी। इसी लिए मुझे पढ़ने का लालच हुआ कि वह कहानी अमरचन्द्र की लिखी हुई थी। वहुत मस्त कहानी, वड़ी वोलती-सी भाषा, बड़ा गयन्दगामी प्रवाह; कहानी में मातृभूमि के लिए सूली पानेवाले एक तरुण का सजीव चित्रण था। आँखों में आँसू आ गये।

अदालत में सरकारी गवाह एक के वाद एक आ रहे थे। मैं और मेरे साथी चार और वकील उनसे जिरह कर रहे थे। माल्रूम हुआ कि मामला डाके का न हो कर षड्यन्त्र का है। मैंने खूव सावधानी से जिरह करना प्रारम्भ किया।

जव अपने गवाह नं० ५ को वुलाने के लिए सरकारी वकील ने पुलिस के डिस्ट्रिक्ट सुपरिंटेंडेंट से कहा, तव मैंने देखा कि वे हैं 'अमरचन्द्र श्रीवास्तव'। वे सिर पर ग्रेजुएट की फूंदेदार टोपी लगाये हुए थे और वदन पर गाउन पहने हुए थे। मैंने देखा, वे खूव सावधान और निडर थे और कह रहे थे कि षड्यन्त्र वुरी चीज़ है; वे षड्यन्त्रकारियों को जानते हैं; उनके पास पिस्तौल देखी है; वे परम राजभक्त हैं; उनके पिता और उनके ससुर भी राजभक्त हैं; वे एक कालेज में अध्यापक हैं; अमुक अभियुक्त उनके यहाँ आता-जाता था; उन्होंने उसे मना भी किया; उन्होंने, पुलिस को ला...को सूचना दी थी क्योंकि उन्हें पता चल गया था कि अभियुक्त गुनाह करने पर उतारू है। मैंने जिरह शुरू की और 'उन्हें' जवाव देने में ज़रा भी तकलीफ़ नहीं हुई। न आँखों में वह शर्म थी, न मुंह पर वह उदासीनता, न अपने प्रति वह लापरवाही। मैं उनसे सव वातें ईमान से कहलवाने के लिए उनके हाथ में गीता दे ही रहा था कि मेरे पीछे से तड़ से एक गोली चली और अमरचन्द्र के सीने में जा लगी।

उनका तड़पता हुआ शरीर पुलिस ने उठा कर चट से मोटर पर रक्खा और वे शायद अस्पताल चले गये।

पिस्तौल छोड़नेवाले युवक ने आत्मसमर्पण कर दिया। वह था उन्हीं का चचेरा भाई—गोपालचन्द्र, जो दर्शकों में खड़ा मुक़दमा सुन रहा था।

उसी दिन शाम को मदनमोहन पार्क में श्री अमरचन्द्र जी के निधन पर शोक-सभा हुई। तक़दीर की वात कि मुझे ही वहाँ सभापति होना पड़ा। जव स्वाभाविक सहानुभूतिवाले और कृत्रिम आसुओंवाले दोनों प्रकार के वक्ता बोल चुके, तव मैंने सभा समाप्त करते हुए एक वाक्य यह भी कहा—"कला जीवन से अपना अनुवाद माँगती है। जो दे सकते हैं, उन्हीं की जीवन-छाया, इतिहास के नाम से तिथि-ग्रन्थों में और प्रेरणा के नाम से कृति-ग्रन्थों में पड़ी रह जाती है।"

तीन कवितायें

(१)

छोटी-सी यह नैया मेरी,
डगमग-डगमग डोली।
जली अचानक सागर की भी,
लहरों में ही होली।

तूफ़ानों में तरणी मेरी, आज फँसी अलसाई;
और गरजती उफनाती-सी लहरों से टकराई।
बीच भँवर में नैया मेरी, दिखता नहीं किनारा;
नभ-दीपक भी बुझे आज सब, छाया है अँधियारा।

किन्तु प्रलय की इन घड़ियों में,
मन में नहीं उदासी।
लहरों में लय होना हमको
हम लहरों के वासी।

बेहोशी की घड़ियाँ भी तो हमको हैं अलबेली;
हँसते-हँसते महानाश से हम करते अठखेली।
अतल-वितल से सागर! जो यह ज्वाला तेरी जागी;
महाप्रलय की अगवानी को मस्ती मेरी जागी।

इस दुनिया की धूप-छाँह में
आज रहे कल जाना।
रैन बसेरा आज जहाँ, क्यों,
लौट वहीं कल आना?

छोड़ किनारा मेरी नैया लहरों पर लहराई;
तब क्यों लौटे? लहरों पर ही रहने को जब आई।
उठने दो सुनसान हिलोरें, चलें काल से खेलें;
बुझने दो जीवन की बाती, चल—लहरों से खेलें

—हीरादेवी चतुर्वेदी

(२)

धीरे-धीरे हुआ सवेरा।
जाग, उषा अम्बर में आई,
पुरवैया ने ली अँगड़ाई,
और किरण का हलचल सुनकर चिड़ियों ने तज दिया बसेरा।
आकुल रात बिता कर सारी,
पुलक चकोरी उड़ी विचारी,
मत्त भ्रमर भी सजग हुआ सखि! आ उसने कलियों को घेरा।
जीवन के क्षण—आँसू से धो—
अब तक कितने डाले हैं खो!
जाग सजनि! क्या जाने यह पल ले आये मंगल का फेरा!

—रूपकुमारी वाजपेयी बी० ए०

(३)

अमर करों के मृदुल स्पर्श से
सजनी, मैं जागी!
बीती स्वप्नों से भरी रात
खग गाते आया नव प्रभात
वही सुगंधित मलय पवन अलि,
जीवन अनुरागी!
पूर्व गगन में आये दिनकर
सकल जगत में नव आभा भर
अर्घ्यदान दे रही सखी, मैं
जागी अब जागी!

—तारा पांडे

प्राचीन भारत की स्थापत्य-कला

लेखक, श्रीयुत नगेन्द्रनाथ गुप्त
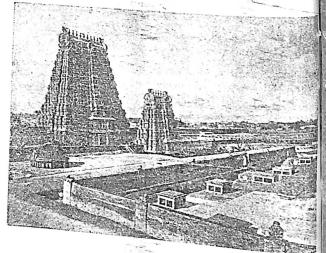
[मदुरा का प्रसिद्ध मन्दिर

पौरस्त्य-कलाओं की चर्चा करते समय योरपीय विद्वान् ईरान को अन्तिम सीमा मान लेते हैं। कुछ लेखक ऐसे भी हैं जिन्होंने जापानी और रोमन कलाओं में सम्बन्ध स्थापित करने की चेष्टा की है। बहुत-से योरपीय विद्वान् क्रिजेन्थमम और गीसा की खाक भी वर्षों छानते रहे हैं। पूर्वीय कलाओं के लिए इतनी दिलचस्पी दिखलाते हुए भी उनमें से किसी विद्वान् ने यह निर्णय करने का प्रयत्न नहीं किया कि जापान और चीन अपनी अपनी कलाओं के लिए प्राचीन भारत के कितनी ऋणी हैं। हमारे पुराने इतिहासों में कलापूर्ण कृतियों के वर्णन मिलते हैं, भले ही उन्हें कोई इतिहास न माने, क्योंकि आर्यों की इतिहास लिखने की रीति ऐसी नहीं थी, जैसी कि आजकल है; पर इसमें संदेह नहीं कि उनमें वर्णित घटनाओं को हम प्रागैतिहासिक भले ही मान लें, एकदम काल्पनिक नहीं मान सकते। रामायण, महाभारत और संस्कृत के अनेक ऐतिहासिक काव्यों-नाटकों में अयोध्या, इन्द्रप्रस्थ, हस्तिनापुर आदि नगरों के कौतूहलपूर्ण वर्णन मिलते हैं। इन नगरों के खण्डहर आज तक मौजूद हैं। दिल्ली में इन्द्रप्रस्थ का खण्डहर अब भी देखने को मिलता है। महाभारत में लिखा है कि इन्द्रप्रस्थ में एक अत्यन्त कलापूर्ण सभा-भवन पाण्डवों के लिए बनाया गया था, जिसके फ़र्श में कुछ ऐसी अद्भुत कारीगरी थी कि स्थल का जल और जल का स्थल दिखाई देता था। इन प्रमाणों से हमें विश्वास हो जाता है कि प्राचीन आर्य स्थापत्य के दोनों प्रकारों में—भवननिर्माण व उनके सजाने में बहुत निपुण थे।

परन्तु इन प्रमाणों व लिखित वर्णनों के अतिरिक्त और कोई वस्तु अब तक ऐसी नहीं मिली है जिसमें आर्य-स्थापत्य-कला का पूरा परिचय मिल सकता। बात यह है कि ब्रिटिश राज्य से पूर्व-काल की पुरातत्त्व-सम्बन्धी खोज भी काफ़ी नहीं की गई। किसी उदार-हृदय योरपीय या भारतीय को इतना अवकाश ही नहीं मिला कि प्रागैतिहासिक काल के खण्डहरों का अन्वेषण करता। पुरातत्त्व-विभाग के कुछ ऐंग्लो-इंडियन लेखकों ने सरकार का ध्यान ब्राह्मण-काल व बौद्धकाल की ओर दिलाया था, पर उनके हृदयों में भारतीय पुरातत्त्व के
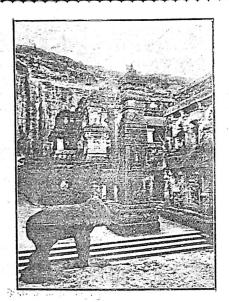
[इलोरा का गुहामन्दिर]

प्रति घृणा के भाव अधिक थे, अन्वेषण की उत्कण्ठा कम; फिर भारतीय इतिहास के सम्बन्ध में उनकी जानकारी भी नहीं के बराबर थी। इनसे भी बढ़कर एक और बात भी थी। पुरातत्त्व-विभाग में नियुक्त महाशयों के दिमाग़ों में यह बात भरी थी कि वे शासक जाति के हैं, और उन्हें जो खोज करनी है उसका सम्बन्ध शासित और दलित जाति से है। इस दशा में यदि उनकी दृष्टि "सुपीरियारिटी-कम्प्लेक्स" से धुँधली हो गई हो तो इसमें आश्चर्य की कोई बात नहीं है। हम स्पष्ट देखते हैं कि भारतीय ध्वंसावशेषों पर उन विद्वानों के निर्णय हम भारतीयों के निकट सन्तोष-जनक नहीं हैं; क्योंकि वे आर्यों की कला और संस्कृति से सर्वथा अनभिज्ञ थे और पूर्ण नास्तिकता के कारण वेदों की प्राचीनता पर भी विश्वास न करते थे; आर्यों के दर्शन और साहित्य के विषय में भी उन्हें कुछ ज्ञान न था; न सबसे बढ़कर हमारी जाति और संस्कृति के प्रति उनके हृदयों में घृणा और तिरस्कार का भाव था; इन बातों का प्रभाव उनके दृष्टिकोण पर पड़ना अनिवार्य था। गांधार स्कूल के तक्षण-कार्य को जो ग्रीस-रोमन कारीगरों की कृतियाँ थीं, देखकर अँगरेज़ पुरातत्त्व-विशारद झट से कह उठे थे कि 'भारत के पास अपनी कोई मौलिक कला नहीं थीं; उसके पास जो कुछ था वह या तो प्राचीन ईरान और यूनान से लिया हुआ था या रोम से।' यदि ये लेखक थोड़े से चतुर और होते तो कह सकते थे कि प्राचीन आर्य-साहित्य ग्रीक-साहित्य से नक़ल किया गया है, 'कृष्ण' ग्रीस 'आरफ़ेअस' के अनुकरण-मात्र हैं, महाभारत होमर की नक़ल है और समयानुक्रम का लिहाज़ यदि बाधक न होता तो यह भी कि—भारतीय मायावाद पर बर्कले की छाप है।

पुरातत्त्व के इन प्रकांड विद्वानों के गुरु हैं जान रस्किन। उनकी अमर रचनाओं में अंकित शब्द उसी श्रद्धा और भक्ति से पढ़े जाते हैं मानो वे किसी धर्माचार्य के वाक्य हों। अपने विषय में रस्किन ने स्वयं तो यही लिखा है कि मैंने ग्रीस का तो एक-एक ठीकरा देखा है, पर भारतीय कला के सम्बन्ध में उस अस्तव्यस्त और अव्यवस्थित कूड़े-करकट के अतिरिक्त जो ब्रिटिश और केनसिंगटन के अजायबघरों में इकट्ठा किया गया है, और कुछ भी नहीं देखा है। आश्चर्य है कि इस महान् लेखक ने एलीफेंटा और एलोरा की तक्षण-कला, अजन्ता की चित्रकला, जावा और लंका में की भारतीय कलाओं के नमूनों आदि के विषय में कुछ नहीं सुना। रस्किन ने उक्त संग्रहालयों में जो वस्तुएँ देखीं वे उन्हें जंगली लोगों की बेढंगी कृतियों के नमूने जान पड़ीं। इन्हीं को उन्होंने 'आदिम आर्यों की कृतियाँ' समझ लिया। इनसे कुछ ही ज्यादा भद्दे नमूने वे थे जो 'अफ़्रीका की जंगली जातियों की कारीगरी' के नाम से वहाँ संगृहीत थे। बस, रस्किन साहब फलतः इसी निर्णय पर पहुँच गये कि भारतीय आर्य जंगलियों और मनुष्य-भक्षियों से सभ्यता में केवल एक दर्जे अधिक थे। परन्तु कुछ मनस्वी ऐसे भी हैं जिन्होंने भारतीय स्थापत्य का मनोयोगपूर्वक अध्ययन किया है और उसका उचित सत्कार भी किया है। इनमें मिस्टर फूचर, राडिन, श्रीमती हेरिंघम और उनके भारतीय सहायकों के नाम लिये जा सकते हैं। इन लोगों ने भारतीय कला का ठीक-ठीक मूल्य निर्धारण करने

की भरसक चेष्टा की है। भारतीय कला और प्राचीन भारतीय सभ्यता पर हैवेल का ग्रन्थ विचार-पूर्ण सामग्री उपस्थित करता है। कुमार स्वामी ने भी इस दिशा में अपनी योग्यता का पूरा-पूरा सदुपयोग किया है और उनके प्रयत्नों से आज भारतीय कलाओं का संसार में काफ़ी गौरव-विस्तार हुआ है।

भारतीय स्थापत्य में कुछ अपनी निजी विशेषतायें हैं। एक तो यह है कि भारतीय स्थापक सांसारिक कृतियों की अपेक्षा धार्मिक कृतियों को अधिक स्थायित्व देने की भरसक चेष्टा करता है। भरहुत का स्तूप ऐसी कृतियों का एक सुन्दर नमूना है। यह स्तूप ईसा से पूर्व लगभग तीसरी शताब्दी का बना हुआ है। उस समय के बने हुए राजमहलों के अब खँडहर भी नहीं मिलते। भरहुत, साँची और अमरावती की तक्षण-कृतियाँ स्थापत्य के उत्कृष्ट उदाहरण भर नहीं हैं, प्रत्युत इतिहास और शिक्षा की दृष्टि से भी महत्त्व की हैं। प्रसिद्ध चीनी यात्री हुएन च्वांग ने सातवीं सदी में जब भारत-भ्रमण किया था तब नालन्दा-विश्वविद्यालय पर्याप्त समृद्धिशाली था, पर मगध और अन्य राजस्थानों के खँडहर-मात्र रह गये थे। नालन्दा, अजन्ता, सुधन्या काल और तक्षशिला के विश्वविद्यालय धार्मिक स्थान थे, जिनमें धार्मिक शिक्षा दी जाती थी, इसी लिए इनका निर्माण इतनी मज़बूती से किया गया था। उनके वैदिक मन्दिरों में वेदमन्त्रों के उदात्त, अनुदात्त और स्वरित उच्चारणों का अभ्यास होता था, बुद्ध-चैत्यों में भिक्षुगण बुद्ध-नियमों का मनन किया करते थे एवं जैन-मन्दिरों में जैनमुनि महान् तीर्थंकरों के जीवन पर चिन्तन किया करते थे।

इलोरा की महत्ता का कारण केवल यही नहीं है कि उसका कैलास-मन्दिर तक्षण और स्थापत्य-कलाओं के मिश्रण का एक सुन्दर नमूना है, प्रत्युत यह भी है कि उसमें जैन और बौद्ध मूर्तियाँ एक साथ पाई जाती हैं। इलोरा की इन्द्रसभा एक जैन-मन्दिर है और उसमें जैनियों के चौबीसवें और अन्तिम तीर्थंकर महावीर की प्रतिमा है। महावीर स्वामी बुद्ध के समकालीन थे। प्राचीन भारतीयों की धार्मिक सहिष्णुता का नमूना इससे अच्छा और क्या हो सकता है कि किसी शैव मन्दिर के पास ही अन्य धर्मावलंबियों के मन्दिर भी पाये जायँ।
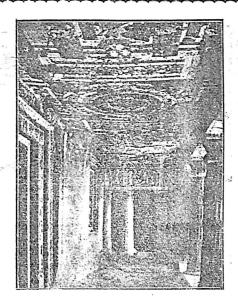
[अजन्ता के विहार के भीतरी अलिन्द की कारीगरी का एक दृश्य]

अजन्ता के विषय में श्रीयुत हैवेल लिखते हैं—"संसार में—चित्रण, तक्षण और स्थापत्य—इन तीनों कलाओं का ऐसा सुन्दर सामंजस्य शायद ही कहीं देखने में आये, जैसा कि अजन्ता में हुआ है।"

भारत के अनेक स्थानों में दीवारों की चित्रकारी के सुन्दर नमूने पाये जाते हैं। पर अजन्ता की गुफाओं की दीवारों पर की हुई चित्रकारी इनमें सर्व-श्रेष्ठ है। कला की 'टेकनीक', गहरी और स्पष्ट रेखायें, चित्रों की सजीवता, डिज़ाइनों की विभिन्नता और भावों की स्पष्टता—ये सब गुण मिल कर उसे सर्वांग-पूर्ण बना देते हैं। राजकुमार सिद्धार्थ का रूप आत्मिक तेज और गौरव के कारण अब भी दर्शकों के नेत्रों को अपनी ओर खींच लेता है। इन्हीं चित्रणों में एक चित्र वह भी है जिसमें बुद्ध जी ज्ञानोपलब्धि के बाद कपिलवस्तु को लौटे हुए अंकित किये गये हैं। उनके हाथ में भिक्षा-पात्र है और वे अपनी पत्नी यशोधरा और पुत्र राहुल को मिलने जा रहे हैं। इस चित्र की प्रतिलिपि की ब्रिटिश म्युज़ियम की
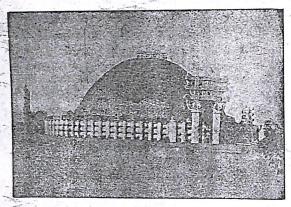
[सांची का स्तूप]

एक चित्र-प्रदर्शनी में यह कहकर अत्यन्त प्रशंसा की गई थी कि—"यह सम्भवतः गुप्त-काल की कला का सर्वोत्कृष्ट नमूना है, जो अब तक बच रहा है।" यहाँ के चित्रों में हृदय की उदारता का पूरा परिचय दिया गया है। ब्राह्मणों के देवताओं और बौद्धों के भिक्षुओं का चित्रण समान श्रद्धा से किया गया है। अजन्ता के ये चित्र उपेक्षित हाथों की कृतियाँ नहीं हैं—इनके कलाकारों का भी वैसा ही सत्कार हुआ होगा जैसा कि कोई देश अपने कलाकार का अधिक से अधिक कर सकता है। अशोक की राजधानी अन्य शहरों की भाँति भूमि के गर्भ में विलीन हो गई है, पर उन की कला स्तम्भों के रूप में अब भी संसार के आगे सिर उठाये खड़ी है।

क्षेत्रफल की दृष्टि से विचार करने पर पता चलता है कि भारतीय कला का अधिकार-क्षेत्र यूनानी और रोमन-कला के अधिकार-क्षेत्रों से कहीं अधिक विस्तृत था। भारत में गांधार से लेकर गौड़ तक और राजपूताना से लेकर बम्बई के तट तक—मध्य-भारत में महान् स्तूपों और मन्दिरों के रूप में, दक्षिण में ममल्लापुरम् की मूर्तियों और मन्दिरों के रूप में, श्रीरंगपुरम्, 'लंका और मदुरा के मन्दिरों व मूर्तियों के रूप में—यह कला व्यापक थी। भारत के बाहर पश्चिम में महमूद ग़ज़नवी की ग़ज़नी भारतीय कलाकारों की रचना थी; इसी प्रकार समस्त पूर्वी एशिया की कला-कृतियों पर भारत का प्रभाव पड़ा था। जावा में भी भारतीय तक्षण-कला के कुछ सुन्दर नमूने मिले हैं। जावा के प्रम्बानम् नामक मन्दिर के आँगन में रामायण की कथा के सिलसिलेवार चित्र बनाये हुए मौजूद हैं। धार्मिक और सांसारिक स्थापत्य में विभाजक रेखा का निर्देश करना कठिन है। फलतः भारत से सम्बन्धित स्थापत्य-कला की जितनी भी कृतियाँ हैं—वे चाहे वैदिक हों—चाहे बौद्ध, चाहे जैन या अन्य, सबमें वैदिक संस्कृति अनुस्यूत है। कुछ जैन
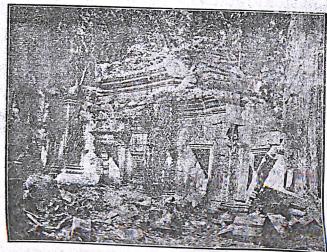
[कम्बोडिया के भग्नप्राय ईश्वरपुर मन्दिर में हिन्दू कारीगरी का दृश्य]

और बौद्ध-मन्दिर भी ऐसे ही कलापूर्ण हैं जैसे कि हिन्दू-मन्दिर। चित्तौड़ का विजयस्तम्भ, आबू पहाड़ की महराबदार प्रतिमायें, पलिताना और गिरनार के पहाड़ी मन्दिर आदि—स्थापत्य-कला के अद्भुत नमूने हैं।

योरप के किसी भी नये विचारक को एलीफेण्टा की त्रिमूर्ति, चतुर्मुखी ब्रह्मा, पंचशिर शिव और हस्ति-मस्तक गणेश की प्रतिमायें बेढंगी लगेंगी और वह असभ्य जातियों के शिल्प के साथ उनका वर्गीकरण चाहेगा। योरप और भारत की प्राचीन कलाओं में यह अन्तर है कि योरप मूर्ति के ही सौन्दर्य पर विशेष ध्यान देता है और भारत उस सौन्दर्य का निर्देश करता है जो मूर्ति से परे और पृथक् है। रोम और यूनान की कलाओं की यह विशेषता रही है कि वे दृष्ट-सौन्दर्य को अंकित करने की चेष्टा करती हैं, और इस अर्थ में हम उन्हें यथार्थवादी
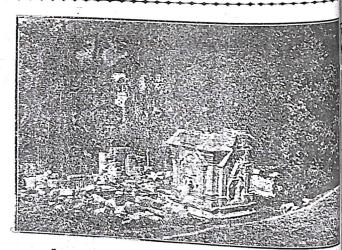
[काश्मीर में गांधार-कला के एक हिन्दू-मंदिर का ध्वंसावशेष]

कहते हैं। भारतीय कला विभिन्न देवताओं के उस रू[प] को आकार देने का प्रयत्न करती है जो श्रद्धा और भक्ति की दृष्टि से देखा जा सकता है। ग्रीक और रोम के कला-कार के लिए यह सम्भव है कि वह देवता का चित्रण मानव विशेष को मूर्ति के रूप में करे, पर भारतीय कलाकार व्यक्ति-विशेष पर देवत्व का अध्यास करने का, या किसी मनुष्य की तुलना देवता से करने का साहस कदापि न करेगा। ग्रीक और भारत की कला में एक भेद और भी है। ग्रीक और रोमन मनुष्यों के दुःखों का कारण 'देवताओं का कोप' मानते हैं; पर भारतवासी 'कर्मफल' को प्रधानता देते हैं। ग्रीक लोगों का सम्मान शारीरिक सौन्दर्य की ओर अधिक था, फलतः उनके अंकन में सौन्दर्य-व्यवस्था का पूरा प्रयास मिलता है—सुन्दर मुख, हृष्ट-पुष्ट अंग, प्रस्फुटित रूप इत्यादि। भारतीय कलाकार लाक्षणिकता

[अजन्ता की चैत्यगुहा के भीतरी भाग की कारीगरी का एक दृश्य]

की ओर अधिक ध्यान देता है। कमल का एक फूल ही उसके देवता के समस्त अंग-प्रत्यंगों और उसके प्रति कलाकार की समस्त कोमल भावनाओं का प्रतीक हो सकता है। भारत की संस्कृति में कमल सर्वत्र विद्यमान है; स्थापत्य-कला में, सृष्टि-रचना के सिद्धान्त में, देवताओं के खड़े होने और बैठने की मुद्रा में, देवताओं के शृंगार में और उनके अंगों की उपमाओं में। भारत से बाहर किसी कलाकार ने ध्यानमुद्रा में किसी देवमूर्ति का अंकन नहीं किया। योरप के

[यवद्वीप में हिन्दू कला का बरबुदुर का प्रसिद्ध मन्दिर]

'क्लासिकल-आर्ट' में तो मूर्ति बनाते समय मांस-पेशियों की लहरें दिखाने का प्रयत्न किया जाता है, जिससे मूर्ति की गति-

[सारनाथ के स्तूप का सिंह-शिखर]

शीलता परिलक्षित हो सके। पर भारत में शान्तिपूर्ण-मुद्रा, ध्यान-योग, एकान्त-प्रेम और वैराग्य का निदर्शन ही कला का लक्ष्य रहा है। इस शान्ति को हम जड़ता नहीं कह सकते, यह वह स्थिर ज्योति है जो किसी वातहीन देवगृह में प्रकाश करती है। पाश्चात्य कलाकार अंगस्थिति पर विशेष ध्यान देते हैं। भारतीय कलाकार 'आसन' पर। सीलोन के अनुराधापुर में प्राप्त बुद्ध की विशाल मूर्ति, एलीफेन्टा की त्रिमूर्ति, तीर्थंकरों की मूर्तियाँ, ध्यानी बुद्ध या अमिताभ, बोधि-सत्व—इन सबमें शारीरिक संयम और मानसिक तेजस्विता दिखाई देती है।
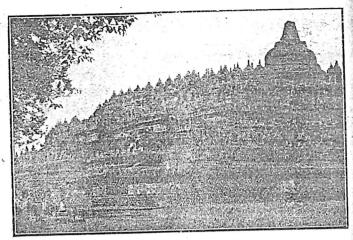
दूसरी ओर मदरास की 'नटराज' की मूर्ति जो ताण्डव-नृत्य करती हुई दिखाई गई है, सांसारिक हलचलों की प्रतीक है। अँगुलियों और हाथों के परिचालन-द्वारा हाव-भाव के प्रदर्शन की कला का ज्ञान यूनानियों को नहीं था। न वे मुद्राओं से ही अभिज्ञ थे। और योरपीय चित्रों में २ अँगुलियों को उठाकर आशीर्वाद देने के भाव का निर्देशीकरण ईसाई-कला के प्रभाव से आरम्भ हुआ है। यदि हम अपोलो, वैलवेडियर और जावा में प्राप्त अवलोकितेश्वर की मूर्तियों को पास-पास रख कर देखें तो योरपीय व भारतीय कला का भेद हमें स्पष्ट ज्ञात हो जायगा।

कविता का भविष्य

लेखक, पण्डित हजारीप्रसाद द्विवेदी

काशी के हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन के अवसर पर कवि-सम्मेलन हुआ था। उसकी बैठक एकाधिक दिन तक चलती रही। एक बैठक में उपस्थित होने का अवसर मुझे भी मिला था। मैं श्रोताओं में बैठा था और उनकी मुखाकृति देख रहा था। कवियों में ऐसे सज्जन बहुत ही कम मंच पर आये जिनका नाम प्रतिमास छपे के अक्षरों में उठा करता है। अधिकांश कवि श्रोताओं के लिए मज़ाक के पात्र थे और अधिकांश श्रोता इसी लिए सभा में आये हुए जान पड़ते थे कि ज़रा उनका दिल बहल जायगा और ज़रा मज़ा आ जायगा। जो साहित्यिक श्रोता वहाँ उपस्थित थे वे निराश थे और एकाध तो अन्य साहित्यिकों को देखकर इस प्रकार शर्मा कर कैफ़ियत देने लगते थे, मानों किसी लज्जा-जनक जगह पर अचानक पकड़े गये हों! संक्षेप में कवि-सम्मेलन उत्साह, मज़ाक, मौज, निराशा और लज्जा का मिलाजुला रूप था। मैं नौ वर्ष से हिन्दी-क्षेत्र से बाहर रहता हूँ और अपने साहित्य की स्तुति गाने का व्यवसाय करता हूँ। मैं इस व्यवसाय के कारण भूल गया था कि हिन्दी-कविता का एक बहुत बड़ा जीवित रूप वर्तमान है, जो आधुनिक युग में मध्ययुग का साहित्यिक भग्नावशेष कहा जा सकता है। मुझे बड़ी प्रसन्नता हुई कि मेरा भ्रम दूर हो गया। मैं निराश बिलकुल नहीं हुआ। मुझे वास्तविक हिन्दी-भाषा की शक्ति और प्रकृति का प्रत्यक्ष साक्षात्कार हुआ। इस गद्य-युग में भी इस भाषा के पेट में कितने कवि पड़े हुए हैं! एक आशुकवि भी आ जुटे थे। भले आदमी ने ललकार कर कहा कि जिस विषय पर कहो कविता बना देता हूँ। सदस्यों ने विषय भी दिये। पुराने युग में एक ऐसा ही आशु 'शास्त्रार्थ-कवि' काश्मीर में पहुँचा था। वाद के लिए बैठे हुए दरबारी पंडित गद्य में जवाब दे रहे थे और वह पंडित पद्य में। गद्यवाले को ही लड़खड़ाना पड़ा। आशुकवि ने कहा—मेरे अनवद्य पद्यों के सामने आप गद्य में भी जो लड़खड़ा रहे हैं, सो जान पड़ता है, आपने तारादेवी की अराधना नहीं की—

अनवद्ये यदि पद्ये गद्ये शैथिल्यमावहसि—
तत्कि त्रिभुवनसारा तारा नाराधिता भवता ?

विडंबना देखिए कि काशीवाले कवि को देखकर श्रोता मन ही मन—अनजान में गुनगुना रहे थे—अनवद्य गद्य के होते हुए भी आप जो पद्य में ज़रा भी शैथिल्य नहीं आने देते तो क्या आपने गद्याकारा वाक्यधारा की आराधना नहीं की ?

अनवद्ये यदि गद्ये पद्येऽशैथिल्यमावहसि—
तत्किं गद्याकारा धारा नाराधिता भवता ?

ज़माना ऐसा आ गया है कि कल तक जो बात सोलह आने निर्विवाद समझी जाती थी वह भी आज संदेह का विषय बन गई है। हम मानें या न मानें, कालप्रवाह हमें ज़बर्दस्ती एक विशेष दिशा की ओर ठेले लिये जा रहा है। मुँह फेर या आँख मूँदकर बैठ रहने से वह धारा रुकेगी नहीं। कवि-सम्मेलन के कवि यह बात जानते तो उसका रूप कुछ और होता।

लेकिन आज भी शायद निर्विवाद बात यह है कि कविता का क्षेत्र संकुचित हो गया है, परन्तु कवि का महत्त्व बढ़ गया है। इस शताब्दी के आरंभ तक लोकप्रिय साहित्य के क्षेत्र में कवि का प्रतिद्वंद्वी कोई नहीं था। भारतवर्ष के हज़ारों वर्ष के इतिहास में कविता जैसा लोकप्रिय साहित्य कुछ था ही नहीं। वैद्यक और ज्योतिष के आचार्य भी इसके शरणापन्न होते थे, बीजगणित और अंकगणित के ग्रंथ भी कविता की ही बोली में और उसी के फ़ैशन में लिखे जाते थे। भगवान् के भजन से लेकर सूम की छीछालेदर तक सभी विषय कविता के प्रतिपाद्य थे। अलख जगानेवालों से लेकर कोकशास्त्री तक कविता के माध्यम का व्यवहार करते थे। नाटक में कविता का बोलबाला होता था, संगीत में कविता मुखरित होती थी, विवाह और श्राद्ध में कविता पढ़ी जाती थी, और जीवन का ऐसा कोई भी अंग नहीं था जहाँ उसका कुछ-न-कुछ उपयोग और उपभोग न होता हो। और जैसा कि मम्मटाचार्य ने

कहा है, काव्य यश के लिए, धन के लिए, व्यवहार-ज्ञान के लिए, कल्याण-प्राप्ति के लिए, मोक्ष के लिए और कान्तासम्मित उपदेश के लिए अर्थात् जीवन की प्रायः समस्त आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए रचे जाते थे। फिर भी अद्भुत विरोधाभास यह है कि यद्यपि सभी तरह के लोग इस माध्यम का आश्रय ग्रहण करते थे, तो भी सभी लोग कवि नहीं माने जाते थे। राजशेखर ने काव्य की उत्पत्ति के दो कारण बताये हैं—समाधि अर्थात् मानसिक एकाग्रता और अभ्यास या परिशीलन, इन दोनों के योग का नाम शक्ति है। परन्तु शक्ति ही एकमात्र काव्य का कारण नहीं है। लोक-निरीक्षण, काव्य-निरीक्षण, शास्त्राभ्यास और काव्य-शिक्षा भी नितान्त आवश्यक हैं। दण्डी यहाँ तक कहते हैं कि प्रतिभा न भी हो तो भी आदमी शास्त्राभ्यास के द्वारा कवि हो सकता है। स्पष्ट ही भारतीय समीक्षकों ने काव्य-शास्त्र के अभ्यास को बहुत महत्त्वपूर्ण स्थान दिया है। यह विचार कि बिना शास्त्र पढ़े लोग भी प्रतिभा के बल पर कवि हो सकते हैं, संस्कृत के आलंकारिकों को एकदम मान्य नहीं था।

किन्तु अब मशीनों के उत्पात ने दुनिया बदल दी है। कवि-सम्मेलन के अखाड़ेबाज कवि ऐसी बहुत-सी बातें अब भी कविता के माध्यम से बोलने जा रहे हैं जिनमें से बहुत-सी किसानसभा या हिन्दूसभा के मंच पर गद्य में बोली जा सकती थीं। कुछ कांग्रेसवादी अखबारों की सम्पादकीय टिप्पणियों में अधिक सफलता-पूर्वक कही जा सकती थीं, कुछ मसखरे अखबारों को अच्छी सामग्री दे सकती थीं, कुछ कहानी के रूप में लिखने पर ज्यादा पुर-असर हो सकती थीं और कुछ का उपयोग निश्चयपूर्वक फेरीवालों की बिक्री बढ़ाने में किया जा सकता था। छापे की कल ने कविता के व्यापक क्षेत्र को कई हिस्सों में बाँट दिया है। कहानियों ने बहुत हिस्सा पाया है। उपन्यासों ने बहुत कुछ हथिया लिया है, निबन्धों ने भी कम नहीं पाया है। समाचार-पत्रों ने—और विशेष रूप से मासिक पत्रों ने—कवि-सम्मेलनों की कमर तोड़ दी है। कविता कान का विषय न होकर आँख का विषय हो गई है। सुनना अब उतना महत्त्व नहीं रखता, पढ़ना अधिक महत्त्व-पूर्ण हो गया है। और इंद्रिय-परिवर्तन के साथ ही साथ कविता के आस्वाद्य वस्तु में भी परिवर्तन हुआ है। कविता अब भावावेग का विषय न होकर बुद्धि का विषय हो गई है। कवि के मुख से कविता सुनते समय हम उसके पठन-भंगी पर ज्यादा ध्यान देते हैं, उसके काकु को—या, जैसा कि राजशेखर ने इस शब्द की व्याख्या की है, 'अभिप्रायवान् पाठधर्म' को—अधिक महत्त्व देते हैं। पर छापे के अक्षर में छपी हुई कविता को पढ़ते समय न हमारे सामने कवि का कंठ होता है और न काकु या अभिप्रायवान् पाठधर्म। उस समय केवल कविता के विचार हमारे सामने होते हैं। इस प्रकार हम चाहें या न चाहें, कविता का अर्थ हमारे लिए निश्चित रूप से विचार्य हो उठता है। हम अनजान में बुद्धिवृत्तिक हो जाते हैं। छापे की कल ने हमें भावावेश पर से धकिया कर बुद्धि-प्रवाह में फेंक दिया है।

इस कथन का अर्थ बहुत बड़ा है। हमारे निकट अब कवि, यश, अर्थ या व्यवहार से कमाने की मशीन नहीं है; 'कान्ता-सम्मित' उपदेश की भी हम उससे उम्मीद नहीं रखते, कहानियों ने जबर्दस्ती कविता से यह विभाग छीन लिया है। हम उससे कुछ अधिक की उम्मीद रखने लगे हैं। वह उम्मीद क्या है? जीवन की व्याख्या? बताया गया है कि यही कवि का परमधर्म है। परन्तु फिर उपन्यास-लेखक और नाटककार और चिन्ताशील निबन्ध-लेखक—और सबके ऊपर ऐतिहासिक क्या करते हैं? जीवन की व्याख्या क्या कवि की मौरूसी सम्पत्ति है? इतिहास यदि मानव-जीवन का प्रवाह नहीं तो और क्या है? ईंट-पत्थरों के इतिहास में अब भी कोई विश्वास करता है, यह बात कुछ अद्भुत सुनाई देती है। और मोक्ष की चिन्ता तो आज के युग में शायद ही किसी चिन्ताशील पाठक को, फिर कवि से हम क्या आशा करने लगे हैं?

सवाल का जवाब खोजने के पहले हमें यह साफ़ समझ लेना चाहिए कि कविता हम आज-कल समझते किसे हैं। मासिक पत्रिकाओं के संपादक खाली पड़े स्थान को भरने के लिए प्रतिमास जो असंख्य कवितायें छापते जा रहे हैं—(छापे का यंत्र यहाँ भी कविता के क्षेत्र में दखल दे रहा है)—क्या हम उन

सबको कविता मानते हैं? निश्चय ही नहीं। किसानों और मजदूरों के दुःख से सभा-भवन को गुंजारित करने-वाली रचनाओं में सबको हम कविता मानते हैं?—संदिग्ध विषय है। प्रेयसी के अंचल में मुँह छिपाकर सिसकी भरनेवाले कवियों की रचना हमें पसंद है—थोड़ी सी। जो कवितायें हमारे दिल को नरम कर दें, हमें सोचने को मजबूर करें, समझने की आँख दें, उन्हें हम कविता मानते हैं—जरूर। वस्तुतः अनादिकाल से अब तक कवि ने जो सबसे बड़ा कार्य किया है, जिसे कोई शास्त्रकार नहीं कर सका, जिसे कोई तत्त्ववेत्ता नहीं सुलझा सका, वह कार्य हृदय को मुलायम बनाना है, संवेदनशील बनाना है, दूसरे के सुख-दुःख के अनुभव की योग्यता ला देना है। कवि ने यह कार्य नाना भाव से किया है। मध्ययुग के कवि, जो अपनी मनोवृत्ति के कारण हर राह चलते समालोचक के वाक्यवाणों के निशाना बने हैं, केवल इस एक कारण से कवि की गद्दी के अधिकारी बने रह सकते हैं कि उन्होंने अपने श्रोताओं को संवेदना दी है, उनका हृदय मुलायम बनाया है। उन कविताओं के अभाव में आदर्शभ्रष्ट मानवता कितनी बर्बर हो उठती, यह केवल अनुमान का विषय है। हम कवि से यही आशा रखते हैं कि वह हमारे दिल को मुलायम बना दे। हम उससे यह आशा हरगिज नहीं रखते कि वह हमें वेदान्तवाद समझा दे या समाजवाद के तत्त्व रटा दे या राणा प्रताप के घोड़े के खुरों से उड़ी हुई धूलिराशि का खाका खींच दे। इन बातों को हम अन्यत्र पा सकते हैं।

और भी स्पष्ट रूप से इस प्रकार कह सकते हैं। पिछले खेवे के आलंकारिक आचार्यों ने काव्य की जिस ध्वनि-प्राणता का इतना प्रचार किया था वह चाहे जितना बड़ा भी सिद्धान्त क्यों न रहा हो, आज के काव्य का उपयुक्त आदर्श नहीं हो सकता। इसलिए नहीं कि आज के युग में वह खोखला हो गया है, या उसमें कोई शाश्वत सत्य नहीं रहा, बल्कि इसलिए कि कविता का विषय ही बदल गया है। पहले काव्य सुनाने के लिए और झूम-झूम कर पढ़ने के लिए लिखे जाते थे, इसी लिए कवि को ऐसे वचन-विन्यास की आयोजना करनी पड़ती थी जो सुननेवालों को शीघ्र ही और आसानी से व्यंग्य-अर्थ की ओर प्रवृत्त करे। उसे शब्द और अर्थ में एक प्रकार की वक्रता का आश्रय लेना पड़ता था जिससे पाठक आसानी से वक्तव्य की ओर उत्सुक हो सके। यह पाठक को एक प्रकार की घूँस दी जाती थी। शब्दों और अर्थों के अलंकार इसी लिए काव्य में प्रधान स्थान अधिकृत करते थे। इसी लिए इनको जाने बिना न तो कोई कवि ही हो सकता था और न भावुक ही। इसी लिए संस्कृत के आलंकारिक शास्त्राभ्यास को इतना महत्त्व देते थे। आज शब्दालंकार और अर्थालंकार उपदेशकों के काम की चीज हो गये हैं। इनके बल पर आज कवि-सम्मेलन में नहीं, व्यवस्थापिका-सभा में प्रधानता प्राप्त की जा सकती है। ध्वनि-संप्रदाय आज भी अपने समस्त अंग-प्रत्यंग के साथ उपयोगी है, पर उसका अधिकांश कविता से बाहर चला गया है। वस्तु से वस्तु या अलंकार, और अलंकार से वस्तु या अलंकार, आज कविता के विषय नहीं रहे। ये सुननेवाले को ज्यादा आकृष्ट करते हैं। परन्तु ध्वनि का सर्वोत्तम अंग 'रस' अब भी काव्य का विषय है। इस रस की अनुभूति को तीव्र करने के लिए ही जो अलंकार प्रयुक्त होंगे वे काव्य में चल सकेंगे। वे नहीं जो अन्य अलंकार को या अन्य वस्तु को ध्वनित करें। यह स्मरण रखने की बात है कि 'रस' सिद्धान्त का मूल उद्भवस्थान नाटक है, काव्य नहीं। काव्य में इसकी आमदनी बाद में हुई है। जिन अनुभाव, विभाव, संचारी आदि भावों के संयोग से इसकी निष्पत्ति होती है वे नाटक में ही होते हैं। इसके सभी बड़े बड़े व्याख्याकार लोल्लट शंकुक, भट्टनायक और अभिनवगुप्त नाट्यशास्त्र के व्याख्याता थे। काव्य के आलोचकों ने रस की अपेक्षा अलंकारों की ही विवेचना अधिक की थी। कारण स्पष्ट है। काव्य सुनाने के लिए लिखे जाते थे, वे कानों के विषय होते थे, इसलिए उनमें अलंकारों की ही प्रधानता होती थी। सभा में काव्य का पाठ बहुत ही महत्त्वपूर्ण माना जाता था। राजशेखर ने लिखा है कि काव्य करते तो वैसे बहुत लोग हैं, पर

पढ़ने का ढंग वही जानता है जिस पर सरस्वती की कृपा होती है। यह अनेक जन्म के प्रयास से आता है। परन्तु नाटक दृष्टि और श्रवण दोनों का विषय है, उसमें आदमी केवल सुनता ही नहीं रहता, प्रत्यक्ष अनुभव जैसा करता रहता है। अनुभव जहाँ है वहीं रस का प्रसंग हो सकता है। महाकाव्यों में ऐसा संभव है, वहाँ पाठक मन ही मन नायक-नायिकाओं को देखता रहता है। वह विभाव-अनुभाव का प्रत्यक्ष-सा अनुभव करता रहता है। यह विचार-पूर्वक देखने की बात है कि काव्य में अलंकारों की प्रधानता के विकृत करनेवाले दण्डी और भामह जैसे प्राचीन आचार्य महाकाव्यों के प्रसंग में ही रस का उल्लेख करते हैं। इसी लिए 'रस' के संबंध में विचार करते समय हमें ध्यान रखना चाहिए कि हमारे सामने वास्तविक या कल्पित आलंबन विभाव का होना निहायत जरूरी है। नहीं तो रस का प्रसंग ही नहीं उठता। अत्यंत बुद्धिमानी के साथ रीतिकाव्य के कवि ने इसी लिए कविता में नायिकाभेद का आश्रय लिया था। अगर उसने नायक-नायिकाओं का आश्रय न लिया होता तो उसका 'रसात्मक' वाक्य निश्चय आकाश-पुष्प हो जाता। आधुनिक कविता इस विशेष बात में भी अलग हो गई है। हम सदा आलंबन, उद्दीपन आदि विभावों और संचारी भावों का अनुभव नहीं करते होते। हम आधुनिक कविता में से बहुतों को केवल बुद्धि-द्वारा समझने का प्रयत्न करते रहते हैं। इसी लिए केवल 'रस' का आदर्श भी आज के कवि और भावक को संतुष्ट नहीं कर सकता। केवल 'रस' के आदर्श को स्वीकार करने से हम ऐसी बहुतेरी कविताओं को त्यागने को बाध्य होंगे जो हमारे हृदय को नर्म बना रही हैं, हमें सोचने को मजबूर कर रही हैं और हमें समझने की आँखें दे रही हैं—अर्थात् मन ही मन जिन्हें हम कविता समझ रहे हैं। हमारे कवि-सम्मेलन के कवि इस बात का खयाल रक्खें तो अच्छा हो।

तो क्या कविता केवल देखने और समझने की चीज रह गई है? पढ़ने और अनुभव करने की नहीं? क्या पूर्ववर्ती आलोचना का यही अर्थ है? निश्चय ही नहीं। पूर्ववर्ती आलोचना में केवल इस बात को स्पष्ट करने की कोशिश की गई है कि—(१) छापे की मशीन ने कविता को मन ही मन पढ़ने की चीज़ बना दी है, (२) उसमें की आलंकारिकता का आकर्षण शिथिल कर दिया है और (३) सहृदय को श्रोता की अपेक्षा द्रष्टा अधिक बना दिया है। सहृदय की रुचि बदल गई है। वह कवि-सम्मेलनों के भूसीफोर कवियों को तमाशबीन की दृष्टि से देखता है, कवित्व के प्रति उसके हृदय में जो सम्मान है वह उसकी दृष्टि में नहीं। सम्मान वह छपी कविता को पढ़ते समय देता है। इसका अर्थ यह बिलकुल ही नहीं कि कविता अब पढ़ी नहीं जायगी या जो लोग कविता को सुन्दर ढंग से पढ़ सकते हैं वे अब यह कार्य छोड़ दें। ऐसे शक्तिशाली लोगों को जरूर कविता पढ़कर श्रोताओं का मनोरंजन करना चाहिए। वस्तुतः येही लोग कवि-सम्मेलनों में 'हीरो' हो सकते हैं। परन्तु उन्हें साफ़ साफ़ समझ लेना चाहिए कि उनका कार्य कवित्व करना नहीं है। वे कवि नहीं, कविता के आवृत्तिकारी हैं। हमारे कविसम्मेलनों की समस्या यही है कि पाठक और कवि में कोई भेद नहीं किया जा सकता। जो वस्तुतः कवि हैं वे अच्छे आवृत्तिकारी भी हों, यह सदा संभव नहीं हो सकता। साथ ही यह भी स्पष्ट रूप से साफ़ हो जाना चाहिए कि कविता और संगीत दोनों अलग चीजें हैं। कविता के आवृत्तिकारी को जो बात सबसे अधिक ध्यान में रखना आज के युग में निहायत आवश्यक है वह कविता को सुर देना नहीं है, बल्कि उसमें उपयुक्त 'काकु' का देना है ताकि काव्यार्थ पाठक को अधिक-से-अधिक बुद्धिग्राह्य हो सके। यहाँ भी छापे की मशीन ने काव्यास्वादन में दखल दिया है। अगर आवृत्तिकारी छापे की मशीन को परास्त करने की क्षमता न रखता हो तो उसे प्रयत्न नहीं करना चाहिए।

गान में जो स्थान सुर को प्राप्त है, काव्य में वही स्थान झंकार को प्राप्त है। पद्य के निश्चित बंधनों को बार बार दुहराने से पद और वाक्य में एक प्रकार की विशेष झंकार पैदा होती है, जो श्रोता के भावावेग को अधिक गतिशील बनाती है और शब्द और अर्थ से अतीत

तत्त्व को सहज ही श्रोत-गम्य बना देती है। मामूली राजनैतिक वक्ता भी जब मंच पर भावाविष्ट होकर बोलने लगता है तब अपने गद्य में भी एक विशेष प्रकार का ज़ोर देकर, एक विशेष प्रकार की यति देकर बोलता है। ऐसे स्थान पर वह काव्य के प्रधान हथियार का सहारा लेता है। सहृदय पाठक छपे हुए काव्य को पढ़ते समय मन-ही-मन इसी प्रकार का ज़ोर देता रहता है और इसी प्रकार अपने आपके लिए भावावेश की अवस्था का निर्माण करता रहता है। छापे में विविध विराम-चिह्न उसकी सहायता करते हैं। वह कवि की बताई हुई कुंजी पाता है। विराम-चिह्न कवि-द्वारा बताई हुई वह कुंजी है जो पाठक को कवि के ढंग पर ही पढ़ने का नियम बताती है। आवृत्तिकारी जब कविता-पाठ करता होता है तब सहृदय पाठक चुप-चाप उसकी परीक्षा लेता रहता है। यदि छापे के विराम-चिह्नों ने उसको भावाविष्ट बनाने में जितनी सहायता की है उतनी सहायता आवृत्तिकारी का पाठ नहीं करता या ग़लत ढंग से उसे **गुमराह** करता है तो सहृदय की दृष्टि में फिर वह तमाशा हो जाता है। मशीन ने जीवित मनुष्य के साथ कितनी बड़ी प्रतिद्वंद्विता खड़ी कर रखी है!

यह बात, फिर, एक बड़े भारी परिवर्तन की ओर इशारा कर रही है, जिससे कविता के भविष्य पर बड़ा सुन्दर प्रकाश पड़ता है। कवि और पाठक दोनों छापे की मशीन को अपना अच्छा सहायक समझने लगे हैं।

जब तक दुनिया में छापे की मशीन नहीं थी तब तक मुक्त-छंद भी नहीं थे। भारतवर्ष में गद्य-काव्य था, गद्य को कवियों की निकषा भी कहा जाता था, पर मुक्त-छंद और गद्य-काव्य निश्चय ही एक वस्तु नहीं हैं। समस्त संसार में मुक्त-छंद के प्रचार का कारण मशीनें हैं। जब तक इनका आविर्भाव नहीं हुआ था तब तक यदि किसी के मन में भूले-भटके इस प्रकार के मुक्त-छंद की रचना का कोई संकल्प भी रहा हो तो वह उसके साथ ही लोप हो गया। उचित विराम-चिह्नों के साथ, उचित पंक्तिभंग देकर, जब तक छापने की सुविधा न हो तब तक यह समझना मुश्किल ही रहेगा कि कवि किस बात पर ज़ोर देना चाहता है। छापे की सुविधा के साथ मुक्त-छंद का प्रचार सभी देशों में बढ़ा है। परन्तु अभी उस दिन तक मुक्त-छंदों को प्राचीन पद्यशैली की सुकुमारता से अलग नहीं किया जा सका था। कवि यद्यपि गद्य लिखता था, फिर भी एक खास झंकार के साथ। श्री दिनेशनंदिनी जी ने जो गद्य-काव्य लिखे हैं उनमें वही सुकुमारता वर्तमान है। वे पद्यकाव्य से केवल इतनी ही बात में भिन्न हैं कि उनमें नियमित वर्णों या मात्राओं की पुनरावृत्ति नहीं है। भावों का 'ससज्ज और सलज्ज' अवगुंठन ज्यों का त्यों है। और इसमें कोई सन्देह नहीं कि इन कविताओं को पढ़ते समय पाठक निश्चय ही कवि-वांछित भावावेश की अवस्था में पहुँच जाता है। हाल ही में इस अवगुंठन को हटा देने का भी प्रयास किया गया है। क्योंकि जैसा कि पहले बताया गया है, कविता अब नेत्रों का और उसके ज़रिये बुद्धि का विषय बन गई है। वह उस रसात्मकता को आदर्श नहीं मानती जो 'मरहट्टवधू' के अंग की भाँति वायुविकम्पित अंचल से कुछ-कुछ ढँकी हुई और कुछ कुछ खुली हुई हो!' इसी लिए हाल ही में रवींद्रनाथ ने जब गद्यछंद में प्रयोग शुरू किया तब उन्होंने लिखा था—"गद्यछंद में अति निरूपित छन्द का बन्धन तोड़ना ही पर्याप्त नहीं है, पद्यकाव्य की भाषा और प्रकाशरीति में जो ससज्ज और सलज्ज अवगुंठन की प्रथा है उसे भी जब दूर कर दिया जायगा, तभी गद्य के स्वाधीन क्षेत्र में उसका संचरण स्वाभाविक हो सकता है। मेरा विश्वास है कि असंकुचित गद्य-रीति से काव्य का अधिकार बहुत दूर तक बढ़ा देना संभव है, और उसी ओर लक्ष्य रखकर मैंने ये कवितायें लिखी हैं। इनमें कई कवितायें ऐसी हैं जिनमें तुक नहीं है, पद्य-छन्द है; किन्तु उनमें भी मैंने पद्य की विशेष प्रकार की भाषा-रीति के त्याग करने की चेष्टा की है"—('पुनश्च' की भूमिका में)।

एक अँगरेज़ समालोचक ने लिखा है कि जब-जब किसी भाषा के साहित्य में छंदों का परिवर्तन होता है तब-तब उस साहित्य की ऐसी रचना का जन्म होता है जो पीढ़ियों तक जीवित रहती है और जिस पर उस

भाषावालों को गर्व रहता है। भारतवर्ष में इस मत के समर्थक वाल्मीकि और अश्वघोष और प्राकृत तथा हिंदी के अनेकानेक कवियों का नाम ले सकते हैं। आधुनिक हिंदी में मैथिलीशरण गुप्त, निराला और पन्त भी इसके उदाहरण-स्वरूप पेश किये जा सकते हैं, पर इस मत की पुष्टि करने का मुझे कोई आग्रह नहीं है। यह मत ठीक हो या ग़लत, मुक्त-छंदों की कल्पना ने काव्य की प्रकृति बदलने में जो क्रान्तिकारी भाग लिया है उसे वह भुलाया नहीं जा सकता। कविता इन छंदों में आकर अपने अन्तिम बंधन से छुटकारा पा गई है। एक एक करके वह सुर से, अलंकार से, ध्वन्यात्मकता से, झंकार से छूटती हुई पद्यबंध से भी छूट गई है। अतियथार्थवादी-संप्रदाय के कवियों की रचनायें पढ़ने के रहे-सहे संबंध को भी तोड़ रही हैं। इन कविताओं में गणितशास्त्रीय तथा अन्य शास्त्रीय इतने तरह के चिह्न व्यवहृत होने लगे हैं कि उनका पढ़ा जाना असंभव ही है। वे केवल देखने और समझने की चीज़ हो गई हैं! जो लोग काव्य-गत पुराने संस्कारों से मुक्त नहीं हैं—इन पंक्तियों का लिखनेवाला ऐसा ही अभागा है—वे काव्य की इस प्रगति को निराशा के साथ देख सकते हैं, पर यही वह मार्ग है जिस पर से कविता आगे बढ़ रही है, यह सत्य है। वह कुएँ में गिरने जा रही है या पहाड़ पर चढ़ने, यह विवाद का विषय है। कविता की इस भावी गति को सहृदय पाठक खूब समझता है, यद्यपि अनेक समय वह अपनी समझी हुई बात को साफ़-साफ़ अनुभव नहीं करता होता। यही पाठक कवि-सम्मेलनों को देखने जाता है। कवि-सम्मेलन के कवियों को इसका पता शायद नहीं होता।

एक दूसरी निर्विवाद या कम-से-कम विवाद-योग्य बात यह है कि कवि सौंदर्य से प्रेरणा पाता है। लेकिन दो व्यक्ति किसी एक ही वस्तु के सौंदर्य की मात्रा पर शायद ही एक-मत हों। स्पिनोज़ा ने कहा था कि कोई वस्तु सुंदर है, इसलिए अच्छी नहीं लगती, बल्कि अच्छी है—हमारी आकांक्षाओं को तृप्त कर सकती है—इसलिए वह सुंदर होती है। अर्थात् सौंदर्य हमारी अपनी रचना है। जिसको हम चाहते हैं वह सुंदर है। योरपीय देशों में जब वैयक्तिक स्वाधीनता का युग चल रहा था तब कवियों ने इस मत को शिरसा स्वीकार कर लिया था। यह 'टिपिकल' सौंदर्य-निष्ठा के प्रति विद्रोह था। सदियों से कवि लोग अपने पूर्वजों की परंपरा से अपने सिर पर लदी हुई सौंदर्य-भावना को ढोते आ रहे थे। उन्नीसवीं शताब्दी के अँगरेज़ी कवि ने इस बोझ को सिर से उतार फेंका। उसने अपनी आँखों से दुनिया को देखा। अर्थात् अपनी व्यक्तिगत आकांक्षाओं की पूर्ति जहाँ से हो सकती थी वहीं सौंदर्य देखा। यह हवा हिंदुस्तान में भी बही। हिंदी में अब भी बह रही है, यद्यपि योरपीय कवि इसके विरुद्ध होता जा रहा है। योरपीय कवि जब इसके विरुद्ध होता जा रहा है तब वह फिर लौटकर टिपिकल सौंदर्य के आदर्श की ओर नहीं फिर रहा। यह संभव नहीं। 'टाइप' की भावना सदियों की बद्धमूल परंपरा से आती है। आधुनिक युग का कवि ऐसी किसी परम्परा की प्रामाणिकता को स्वीकार नहीं करना चाहता। उसने नया प्रयोग शुरू किया है। उसने अनासक्त और निर्वैयक्तिक दृष्टि से वस्तु के सौंदर्य को देखना चाहा है। वह प्रिया को यह कहकर पुकारने में गौरव का अनुभव करता है कि 'हे प्रिये, तुम सूर्य से भी बड़ी हो, समुद्र से भी और मेढक से भी।' क्योंकि उसकी दृष्टि में अपनी व्यक्तिगत आसक्ति नहीं है। सूर्य और समुद्र अपने आपमें जितने महान् हैं, मेढक भी अपने आपमें उतना ही महान् सत्य है। हम मेढक को छोटा या कुत्सित इसलिए देखते हैं कि उसे अपनी रुचि-अरुचि और अनुरक्ति-विरक्ति में सान देते हैं। निरासक्त भाव से देखने पर मेढक में कहीं भी लघुता और कुत्सितता नहीं है। आज का पाठक पुराना पाठक नहीं है, जो अपनी रुचि-अरुचि को या अपनी पुरानी परम्परा की रुचि-अरुचि को इस बुद्धिगम्य सौंदर्य के मार्ग में बाधा खड़ी करने को प्रोत्साहित करे। वह पत्नी-भक्त पति की भाँति इस कविता के प्रत्येक शृंगार को प्रशंसा की दृष्टि से देखता है।

भारतवर्ष के पुराने कवि का ढंग कुछ और था ? वह अपनी व्यक्तिगत रुचि-अरुचि को भी प्राधा

पाकिस्तान की रूप-रेखा

लेखक, श्रीयुत उमाशंकर

[मुसलमान राजनीतिज्ञों की राजनीति भारत को मुस्लिम और हिन्दू-भारत में बाँट देना चाहती है। इस सम्बन्ध में उनकी तीन स्कीमें अब तक प्रकाश में आ चुकी हैं। लेखक महोदय ने इस रोचक लेख में उन सबका बहुत ही अच्छे ढंग से परिचय दिया है।]

भारत अखण्ड देश है। इसके दो भाग नहीं हो सकते। जिस तरह शरीर के दो भाग नहीं किये जा सकते, उसी तरह भारत के दो भाग नहीं किये जा सकते। यह विभक्त हुआ नहीं कि इसके खराब दिन आये। पर देश को बरबाद करने के लिए कुछ सम्प्रदायवादी भारत के दो भाग करने के लिए बहुत ज़ोर लगा रहे हैं। स्कीम पर स्कीम बन रही है। लाहौर में गत वर्ष मुस्लिम लीग की जो बैठक हुई थी उसमें हैदराबाद (दक्षिण) के मिस्टर लतीफ़ को एक योजना तैयार करने का आदेश दिया गया था। उसी आदेश पर लतीफ़ साहब ने पाकिस्तान का खाका खींचा है।

पहले-पहल 'पाकिस्तान' की रूप-रेखा केम्ब्रिज-विश्वविद्यालय में पढ़नेवाले एक भारतीय मुसलमान युवक ने खींची थी। उसका पाकिस्तान पंजाब, अफ़ग़ानिस्तान, काश्मीर और सिन्ध के प्रथम अक्षरों और बिलोचिस्तान के आख़िरी 'स्तान' लेकर बना था। अर्थात् पंजाब से 'प' लिया, अफ़ग़ानिस्तान से 'अ', काश्मीर से 'क', सिन्ध से 'स' और बिलोचिस्तान से 'स्तान' लिया। इस तरह 'पाकिस्तान' शब्द बन गया। उसके 'पाकिस्तान' की तह में यह भाव खेल रहा था कि भारत के मुसलमान भारत के पाकिस्तान से लेकर योरप के तुर्किस्तान तक एक मुस्लिम राज्य क़ायम करें। परन्तु बहुत दिनों तक किसी ने इस स्कीम पर विशेष ध्यान नहीं दिया। अन्त में सन् १९३० के मुस्लिम लीग के लखनऊवाले अधिवेशन में उसके सभापति स्वर्गीय सर इक़बाल ने इस योजना का ज़ोरदार शब्दों में समर्थन किया और भारत के मुसलमानों से अपील की कि वे पाकिस्तान को अस्तित्व में लाने की चेष्टा करें। फलतः पाकिस्तान के बनाने की चेष्टा होने लगी। स्वर्गीय फ़ज़ले हुसेन आदि ने सर इक़बाल के साथ सहयोग किया। मुस्लिम देशों के साथ लिखा-पढ़ी हुई, पर भारत के मुसलमानों ने काफ़ी दिलचस्पी नहीं ली। इसका परिणाम हुआ कि वह स्कीम खटाई में पड़ गई।

इधर ब्रिटिश सरकार ने संघ-शासन क़ायम करने की घोषणा करके प्रान्तों को स्वराज्य दे दिया। देश में नई जागृति का संचार हुआ। पर हमारी कांग्रेस ने उस संघ-योजना का विरोध किया और विरोध मुस्लिम लीग ने भी किया, पर दोनों के विरोध में भिन्नता है। कांग्रेस ने संघ-योजना का विरोध राष्ट्रीय विचार से किया। पर मुस्लिम लीग ने मुस्लिम-संस्कृति की रक्षा तथा भारत में अपनी एक स्वतन्त्र सत्ता बनाये रखने के लिए विरोध किया।

प्रस्तावित संघ-विधान में ब्रिटिश भारत के मुसलमानों को ३३ फ़ी सदी जगहें मिली हैं, हालाँ कि मिलनी चाहिए १२ फ़ी सदी जगहें, क्योंकि २१ फ़ी सदी ही उनकी भारत में आबादी है। इस तरह वे संघ-असेम्बली की २५० जगहों में ८० के हक़दार हो गये हैं। पर देशी राज्यों में यह साम्प्रदायिक बँटवारा लागू नहीं है। इसलिए मुसलमान डरते हैं कि उन्हें यहाँ ३३ फ़ी सदी जगहें नहीं मिल सकती हैं, यही कारण है कि वे संघ योजना का विरोध कर रहे हैं और पृथक् मुस्लिम संघ का स्वप्न देख रहे हैं।

'पृथक् मुस्लिम संघ' अर्थात् 'पाकिस्तान' क़ायम करने के लिए देश के मुसलमानों में काफ़ी आन्दोलन खड़ा हो गया है। पंजाब और दक्षिण-हैदराबाद में उसके संचालन के लिए आफ़िस तक खुल गये हैं। ब्रिटिश सरकार के डर से मुसलमानों ने अपने आफ़िसों के नाम 'पृथक् मुस्लिम संघ आन्दोलनकारी सभा' न रखकर कुछ और ही रक्खे हैं।

हैदराबाद में उनकी जो सभा है उसका नाम है 'मुस्लिम कलचर-सोसाइटी' और पंजाबवाली सभा का नाम है 'मुस्लिम ब्रादरहुड' !

हैदराबादवाली सभा के मन्त्री वही सैयद अब्दुल लतीफ़ साहब हैं जिन्होंने मुस्लिम लीग के आदेश से 'पृथक् मुस्लिम संघ' की योजना तैयार की है। लतीफ़ साहब का कहना है कि हिन्दुस्तान एक राष्ट्र नहीं है। यहाँ विभिन्न जातियों के लोग बसते हैं, उनमें सांस्कृतिक ऐक्य नहीं है। इस्लाम और वैदिक धर्म में मौलिक भिन्नता है। सामाजिक रूप में भी दोनों दो हैं। और देशों में जहाँ इन विषयों का अभाव है, वहाँ एक भाषा ने कुछ हद तक इस समस्या को सुलझा रक्खा है, पर भारतवर्ष में इसकी भी कमी है। यहाँ समान भाषा भी एक नहीं है। ऐसी परिस्थिति में भारत अखण्ड नहीं रह सकता है। इसलिए इसे दो भागों में बाँटना ज़रूरी है। अगर ऐसा नहीं होता है तो मुसलमानों को उन ३८ फ़ी सदी हिन्दुओं के हाथ में अपना जान-माल सौंप देना होगा जो हिन्दुस्तान से इस्लाम को मिटा देना चाहते हैं।

इन्हीं सारी बातों को दृष्टि में रखकर लतीफ़ साहब ने भारतवर्ष को उसकी संस्कृति और धार्मिकता के आधार पर बाँट डाला है। उनकी क़लम ने भारत के १५ टुकड़े कर डाले हैं, जिनमें चार मुसलमानों को दिये गये हैं और बाक़ी हिन्दुओं को। पहला मुस्लिम मण्डल 'उत्तरी-पश्चिमी मण्डल' है। इसमें पंजाब, सीमाप्रान्त, काश्मीर, खैरपुर, बहावलपुर, सिन्ध एवं बिलोचिस्तान सम्मिलित हैं। उनकी राय है कि इसके अन्तर्गत जो सिख तथा हिन्दू रियासतें हैं उनको वहाँ से खदेड़कर काश्मीर की पूर्वी सीमा की ओर तथा काँगड़ा के हिन्दू इलाक़े की ओर भेज दिया जाय तथा जम्मू और काश्मीर के महाराज को भी कुछ मुआवज़ा देकर उनका राज्य मुस्लिम भाग में मिला देना चाहिए। दूसरा मण्डल 'उत्तरी-पूर्वी विभाग' है। इनमें आसाम और बंगाल सम्मिलित हैं। वहाँ के हिन्दुओं को बिहार की ओर चला आना पड़ेगा और बिहारी मुसलमानों को बंगाल और आसाम की ओर आना पड़ेगा। तीसरे मण्डल का नाम है 'देहली और लखनऊ विभाग'। इस विभाग में संयुक्त-प्रान्त और बिहार के मुसलमानों को स्थान मिलेगा। इस विभाग में जितने हिन्दू-तीर्थस्थान हैं जैसे—मथुरा, हरिद्वार आदि उन पर हिन्दुओं का अधिकार रहेगा। वहाँ चाहें तो हिन्दू रह भी सकते हैं। वहाँ उन्हें किसी तरह का कष्ट नहीं होगा। चौथा विभाग है 'दक्षिणी विभाग।' इसमें हैदराबाद और मदरास सम्मिलित हैं। इन चारों मण्डलों के अलावा उस स्कीम में यह प्रबन्ध किया गया है कि राजपूताना, गुजरात, मालवा तथा अन्य देशी राज्यों के रहनेवाले मसलमान वहाँ से अपना बोरिया-बँधना समेट-कर मुसलमानी देशी राज्यों में आकर रहेंगे और उन देशी राज्यों से हिन्दू निकालकर मालवा, गुजरात और राजपूताना में रक्खे जायँगे। इन मण्डलों के घेरे के बाद देश में जो स्थान बचता है, वहाँ हिन्दू रहेंगे। भाषा के अनुसार उनका विभाजन होगा। बँगला, हिन्दी, उड़िया, तेलगू, तामिल, मरहठी, गुजराती, कनारी, मलयालम आदि भाषाओं के अनुसार हिन्दूमण्डल के कतिपय विभाग होंगे। हरिजनों को इस योजना में बहुत सुन्दर स्थान लतीफ़ साहब ने दिया है। उन्हें कहा गया है कि वे जहाँ चाहें रह सकते हैं। हिन्दूमण्डल तो उनका मण्डल रहेगा ही, मुस्लिम मण्डल में भी उन्हें उचित स्थान दिया जायगा। इसी प्रकार बौद्धों, ईसाइयों, जैनों और पारसियों को अधिकार दे दिया गया है कि वे जहाँ चाहें रह सकते हैं। मुस्लिम मण्डल में उनके धर्म, उनकी भाषा, उनके साहित्य तथा उनकी संस्कृति पर किसी तरह का आघात नहीं पड़ेगा। बेचारे आर्यसमाजी कहाँ रहेंगे, इसका इस योजना में कोई ज़िक्र नहीं है।

उपर्युक्त योजना बनी तो मुस्लिम लीग के ही आदेश से, पर अभी तक लीग ने उसे स्वीकार नहीं किया है। हाँ, सिन्ध की प्रान्तीय लीग ने अपने कराँची के अधिवेशन में उसे स्वीकार कर लिया है। मुस्लिम लीग ने इस योजना पर विचार करने के लिए एक समिति बनाई है, जिसमें मिस्टर जिन्ना, सर सिकन्दरहयातखाँ, मिस्टर अब्दुल अज़ीज़, ख्वाजा सर नाज़िमुद्दीन, सर अब्दुल्ला हारून, सरदार औरंगज़ेबखाँ तथा नवाबज़ादा लियाक़तअलीख़ाँ हैं। देखना है कि आठ करोड़ मुसलमानों के ये स्वयं बने भाग्य-निर्माता क्या करते हैं।

लतीफ़ साहब की योजना की आलोचना और प्रत्यालोचना खूब हो रही है। भारत के सभी राष्ट्रीय पत्रों ने उसकी निन्दा की है। कितने ही मुसलमानों ने भी उसकी कड़ी आलोचना की है। उसकी आलोचना करते हुए सिन्ध के एक मुसलमान सज्जन ने लिखा था कि ऐसी हरकतें केवल इस देश के लिए ही ख़तरनाक नहीं हैं, बरन मुसलमानी संस्कृति के लिए भी खराब है ! इन मुस्लिम मण्डलों में भी किसी तरह इस्लामी संस्कृति ख़तरे से खाली नहीं रहेगी, क्योंकि वह चारों तरफ़ शत्रुओं से घिरी रहेगी। लीग के अन्दर भी कुछ मुसलमान हैं, जो इस स्कीम की खराबियों को महसूस कर रहे हैं। उनका कहना है कि पश्चिमोत्तर-मण्डल तथा उत्तरी-पूर्वी विभाग हिन्दुओं से घिरे रहेंगे। इसलिए ये दोनों मण्डल अपने को ख़तरे से बाहर नहीं समझ सकते हैं। दक्षिण-मण्डल की हालत तो बहुत ही शोचनीय होगी। यह मण्डल अपने को बहुत दिनों तक स्वतंत्र नहीं रख सकेगा। जिस तरह मराठों ने १८वीं सदी में निज़ाम को तंग किया था उसी तरह दक्षिण-मण्डल के मुसलमानों को भी मराठे तंग करेंगे। उस समय निज़ाम को बचा रखने के लिए ईस्टइंडिया कम्पनी ने मदद दी थी। परन्तु आज तो ऐसी कोई भी शक्ति नहीं, जो उन्हें आफ़त से बचा सकेगी। पश्चिम में देहली-लखनऊ-मण्डल है और पूर्व में बंगाल और आसाम-मण्डल है। इन दोनों मण्डलों को भी ख़तरे से बाहर नहीं समझना चाहिए। जिस तरह मराठों के कारण दक्षिण-मण्डल ख़तरे में रहेगा, उसी तरह राजपूताने में राजपूतों, सिखों और गोरखों तथा नेपाल में नेपालियों के रहने के कारण ये मण्डल भी अपनी स्वाधीनता बहुत दिनों तक क़ायम नहीं रख सकेंगे। बंगाल और आसाम-मण्डल भी लड़ाकू बिहारियों तथा खूनी नेपालियों के द्वारा सताये जायँगे। इन्हीं कारणों से वे लतीफ़ साहब की योजना को पसन्द नहीं करते हैं और उसके विरोध में आवाज़ उठा रहे हैं तथा अपनी दूसरी योजना पेश कर रहे हैं।

कलकत्ता के एक मौलवी साहब ने एक नई योजना पेश की है। मिस्टर लतीफ़ का दक्षिण-मण्डल उनकी समझ में मुसलमानों के लिए लाभदायक नहीं होगा। वह अन्य मुस्लिम मण्डलों से दूर रहने के कारण ख़तरे में रहेगा। इसलिए कलकतिया मौलाना साहब ने यह सोचा है कि बिहार और संयुक्तप्रान्त के हिन्दुओं को निकालकर सम्पूर्ण उत्तरी भारत में मुसलमान ही रक्खे जायँ। काश्मीर के महाराज को वे निज़ाम का राज्य दे देने को तैयार हैं। उनकी राय है कि हैदराबाद के निज़ाम और काश्मीर के महाराज आपस में राज्य-बदलौअल कर लें ! आप भारत के ११ प्रान्तों में ७ प्रान्त मुसलमानों के लिए चाहते हैं। वे प्रान्त ये हैं—सिन्ध, सीमान्त, पञ्जाब, संयुक्तप्रान्त, बिहार, बङ्गाल और आसाम। इस तरह कलकत्ता से लेकर क्वेटा तक और हिमालय से लेकर विन्ध्याचल तक मौलवी साहब का 'पाकिस्तान' फैला रहेगा !

इस योजना को व्यावहारिक रूप देने पर १२,२०,००,००० हिन्दुओं को सिन्ध, सीमान्त, पञ्जाब, संयुक्तप्रान्त, बिहार, बङ्गाल और आसाम छोड़कर मदरास, बम्बई, मध्यप्रान्त और उड़ीसा के दक्षिणी भाग में जाना पड़ेगा और उन प्रान्तों से ५७,००,००० मुसलमानों को बुलाकर सिन्ध, सीमान्त, पञ्जाब, संयुक्त-प्रान्त, बिहार, बङ्गाल और आसाम में आबाद किया जायगा। पर इस योजना में सबसे बड़ी कठिनता यह है कि एक तरफ़ सघन आबादी हो जाती है और दूसरी तरफ़ विरल। बम्बई, मदरास, दक्षिण-उड़ीसा और मध्यप्रान्त की आबादी ८ करोड़ ६० लाख है, जिसमें मुसलमान ५७ लाख के लगभग हैं। अगर ५७ लाख मनुष्य वहाँ से निकाल दिये जायँ तो ८ करोड़ ३ लाख रह जायँगे। मौलाना साहब चाहते हैं कि ११ करोड़ २० लाख उत्तरी भारत के हिन्दू दक्षिणी भारत भेज दिये जायँ। क्या कोई भी भला आदमी यह अनुमान लगा सकता है कि जिस प्रदेश का क्षेत्रफल ३,३६,[illegible] वर्गमील है, वहाँ १९ करोड़ २० लाख आदमी अँट भी सकते हैं ? अगर ऐसा हुआ तो आबादी इतनी घनी हो जायगी कि उस भाग के लोग भूखों मरने लगेंगे। वहाँ तो हर वर्गमील में ५७१ आदमी रहेंगे और उत्तरी भारत में १३३ आदमी हर वर्गमील में रहेंगे।

मौलाना साहब ने केवल मुसलमानों के लाभ के लिए ही यह योजना बनाई है। आपकी योजना से

साफ़ पता चलता है कि आपको हिन्दुओं का कुछ भी खयाल नहीं है। कैसी मज़ेदार बात है कि ११ करोड़ २० लाख हिन्दुओं को खदेड़ कर वह स्थान ५७ लाख मुसलमानों को दे दिया जाय! वालफ़ोर-कमिटी ने क्या पैलिस्टाइन का विभाजन इससे भी खतरनाक किया है? फिर भी वहीं मुसलमान जब स्वयं ऐसा चाहते हैं तब क्यों हल्ला मचा रक्खा है? क्या उन्होंने कभी खयाल किया है कि उत्तरी भारत तथा दक्षिणी भारत के लोगों की बोली में बहुत फ़र्क़ है? अभी मंदरास की सरकार ने अपने प्रान्त में हिन्दुस्तानी-भाषा जारी की थी, पर उसका वहाँ विरोध हो रहा है और काफ़ी लोग जेल जा चुके हैं। हिन्दुओं के जितने तीर्थ-स्थान हैं, वे प्रायः उत्तरी भारत में ही हैं। हिन्दुओं के लिए गंगा स्वर्ग है। क्या मौलाना साहब के कहने से वे अपने तीर्थतुल्य वासस्थान छोड़ देंगे?

इधर पंजाब के प्रधान मंत्री माननीय सर सिकन्दर हयात खाँ ने एक नई संघ-योजना पेश की है। उन्होंने भारत को सात प्रान्तों में विभक्त किया है। उनके सातों प्रान्त ये हैं—(१) आसाम, बंगाल तथा बंगाल की रियासतें और सिक्कम, (२) विहार, उड़ीसा, बंगाल के दो-तीन पश्चिमी जिले, (३) संयुक्त-प्रान्त और उसकी रियासतें, (४) मदरास, ट्रावनकोर, मदरास की रियासतें और कुर्ग (५) बम्बई, हैदराबाद, पश्चिमी भारत की रियासतें, मैसूर और मध्य-प्रान्त की रियासतें, (६) राजपूताने की रियासतें (बीकानेर और जेसलमेर को छोड़ कर), ग्वालियर, मध्यभारत और बरार (७) पंजाब, सिन्ध, सीमान्त, काश्मीर, पंजाब की रियासतें, बिलोचिस्तान, बीकानेर और जैसलमेर।

सर सिकन्दर साहब की इस स्कीम के पेश होने के पहले भारत के ११ प्रान्तों में कांग्रेस का शासन था। इसलिए कांग्रेस की शक्ति को कम करने के लिए उन्हें सबसे पहले विचार करना पड़ा। उनकी इस स्कीम से आसाम और सीमान्त से कांग्रेस की जड़ें उखाड़कर वहाँ मुस्लिम लीग की जड़ें गाड़ने का विचार किया गया है। केन्द्रीय शासन में तो और भी गड़बड़झाला है। ब्रिटिश इण्डिया में मुसलमानों को ८३ सीटें मिलेंगी और भारतीय रियासतों की ११५ सीटों में से ४२ सीटें मिलेंगी। इन दोनों को मिलाकर केन्द्र में मुसलमानों की संख्या १२५ हो जायगी। जहाँ मुसलमानों को ८२ सीटें मिली हैं, वहाँ सिकन्दरी योजना से उन्हें १२५ सीटें मिलती हैं।

मैं यह मानता हूँ कि सिकन्दरी योजना पाकिस्तान की रूप-रेखा नहीं है, पर पाकिस्तान की रूप-रेखा के आधार पर उसकी नींव अवश्य रक्खी गई है। अपनी लीडरी क़ायम करने के अतिरिक्त जिन्हें राष्ट्र का कुछ भी खयाल है वे तो ज़रूर कहेंगे कि भारत अखण्ड है और उसके दो भाग नहीं हो सकते। और जो लोग पाकिस्तान का स्वप्न देखते हैं वे अराष्ट्रीय हैं, उन्हें न देश का कुछ खयाल है, न मुसलमानों का ही कुछ खयाल है। भगवान् ऐसे लोगों को सुबुद्धि दे, हमारा तो यही कहना है।

करामात

लेखक, पण्डित गोविन्दवल्लभ पन्त

मैदान के उत्ताप से बचने के लिए कमिश्नर साहब चार महीने की छुट्टी लेकर पहाड़ पर विश्राम कर रहे थे। साहब सपत्नीक थे। बाल-बच्चा कोई न था। बैरा, खानसामा, साईस, माली सबको साथ ही ले गये थे।

बैरा और खानसामा पंजाबी थे, साईस तथा माली पुरबिये। दोनों की दोनों से नहीं पटती थी। विशेषकर माली-खानसामा में तो ऐसा मेल था जैसा तेल और पानी में, ऐसी मित्रता थी जैसी मैल और साबुन में।

साईस को बँगले के अन्दर जाने की कोई आवश्यकता थी नहीं। हाँ, माली अवश्य फूलदानों के फूल बदलने और कभी-कभी कोई चिट्ठी-पत्री देने-लेने के लिए भीतर जाता था।

बँगले के अन्दर जो भी टूट-फूट, खाया-खोया होता, बैरा और खानसामा उसमें बार-बार माली को लपेट लेते थे। उस दिन गोल कमरे के नये फूलदान के टुकड़े-टुकड़े हो गये। माली कहता था, कुत्ते या बिल्ली ने तोड़ा है। पर खानसामा ने साहब को विश्वास दिला दिया कि वह माली की ही करतूत है। साहब ने एक तो अपराध करने और उस पर झूठ बोलने के लिए माली पर दो रुपये जुर्माना कर दिया।

रात को क्वार्टर में माली और खानसामा इसी बात पर भिड़ गये। माली ने उस पर तानकर ऐसी खुरपी मारी कि अगर खानसामा अपना सिर न नवा देता तो वह उसकी खोपड़ी पर लाल दस्तखत कर देती।

बैरा, साईस तथा एक-दो और भलेमानसों ने बीच-बचाव कर दोनों को शान्त कर दिया। माली ने ज़ोर-ज़ोर से शपथ लेकर कहा—"आज से बँगले के भीतर कभी पैर न रक्खूँगा।"

दूसरे ने मन-ही-मन प्रतिज्ञा करके कहा—"अगर बँगले के बाहर भी तेरे पैर रहने दिये तो देखना। अगर लोटा-कम्बल बिकवाकर तुझे घर न भेजा तो खानसामा नहीं।"

मन्दिर के अहाते में एक साधु महाराज ने आकर अपना आसन जमाया था। वे माँगते किसी से कुछ न थे, धातु का स्पर्श भी नहीं करते थे, तो भी उनके आसन पर फल-फूल, मेवे-मिष्ठान्न का ढेर जमा हो जाता था। आठों पहर धूनी चैतन्य रहती थी और सुबह-शाम महात्मा जी के चारों ओर भक्तों का अधिक जमघट लगा रहता था।

माली भी महात्मा जी के भक्तों में से था। उसकी उनसे तीन-चार साल की पुरानी जान-पहचान थी। उसका दो साल का जो नन्हा बालक है उसे माली उन्हीं के आशीर्वाद का फल बताता है।

दिन में एक बार महात्मा जी के दर्शन को जाना माली का नित्य का नियम था। उसकी उनमें अविचल भक्ति थी।

सन्ध्या के तीन बजनेवाले थे। कमिश्नर साहब उपवन में टहल रहे थे। एकाएक एक क्यारी के पास आकर वे रुक गये और उन्होंने पुकारा—"माली!"

माली दोपहर की छुट्टी से अभी लौटा न था। कदाचित् महात्मा जी की ही सेवा में गया था।

साहब ने कुछ और उच्च स्वर में कहा—"माली!"

खानसामा को अवसर मिला। वह दौड़ता हुआ उनके निकट आया और अदब से बोला—"हुज़ूर, माली का कहीं पता नहीं है।"

"बड़ा लापरवाह हो गया है यह। देखो, इस क्यारी के पौधे मुरझा रहे हैं। मालूम नहीं, कब से इन्हें पानी की बूँद नहीं मिली है।"

"हुज़ूर ने बिलकुल सच कहा है। मन्दिर में एक लम्पट साधु आया है। माली रोज़ वहीं पहुँचता है, चरस-गाँजे की दम लगाता है। फिर उसे तन-बदन की सुध नहीं रहती। फूल-पत्ती का क्या ध्यान रहेगा! मालिक का नमक फूट-फूटकर निकलता है।"

इसी समय समीप के नल में पानी भरने की आवाज़ ने दोनों का ध्यान खींच लिया। माली आकर फुहारे में पानी भरने लगा था।

साहब ने आवाज़ दी—"माली!"

माली नल बन्दकर साहब के निकट दौड़ता हुआ

आया और कुछ दूरी पर विनम्रता के साथ खड़ा हो गया।

"कहाँ थे ?"

"हुजूर आटा लेने बाज़ार गया था।"

"वहीं इतना समय लग गया !"

"मालिक से झूठ न बोलूँगा। कुछ देर महात्मा जी के दर्शन को भी गया था।"

"'कौन महात्मा जी ?"

खानसामा बीच में ही बोल उठा—"होगा कोई दस नम्बरिया। हुलिया छिपाने के लिए बाल बढ़ाकर भभूत पोत रक्खी होगी।"

"सूरज के ऊपर थूकने से छींटा अपने ही मुख पर गिरेगा। नगर के तमाम छोटे-बड़े, अपढ़-विद्वान्, धनी-निर्धन, बालक-बूढ़े सब उनको महात्मा कहते हैं। उन्होंने हज़ारों मनुष्यों को दुखों से छुड़ाया है।....." माली एक साँस में कहता जा रहा था।

साहब ने बाधा देकर पूछा—"महात्मा जी कोई करामात भी दिखा सकते हैं ?"

"एक नहीं सैकड़ों हुज़ूर !"

साहब की उत्कण्ठा बढ़ी। वे साइंस को ही सर्वोच्च विद्या माननेवालों में से थे। उन्होंने भारतवर्ष के योगियों और साधकों के बारे में भी पढ़ा था। पर वे इन सब बातों को ठग-विद्या समझते थे।

उन्होंने पूछा—"माली, वे मुझे अपना चमत्कार दिखा सकते हैं ?"

"क्यों नहीं हुज़ूर, अगर आपके मन में विश्वास है।"

"विश्वास क्या ?"

"यही कि आप सच्चे मन से समझें कि महात्मा जी करामात दिखा सकते हैं।"

साहब को मज़ाक करने की सूझी। बोले—"ऐसा ही समझूँगा। चलूँ, उनके दर्शन को अभी चलूँ ?"

"चलिए, जैसी आपकी इच्छा हो।" माली ने घबराते हुए कहा।

कमिश्नर बरामदे की ओर बढ़े। माली ने उनका अनुसरण किया और खानसामा अपना-सा मुँह लेकर बावर्चीखाने की ओर खिसक गया।

बरामदे में उनकी मेम बैठी पुस्तक पढ़ रही थी। साहब ने वहाँ पहुँचकर पूछा—"करामात देखने चलोगी ?"

पुस्तक की पृष्ठ-संख्या पर दृष्टि डालकर मेम साहब ने स्मितानन से उत्तर दिया—"कहाँ ?"

"एक महात्मा के पास।"

"और क्लब ?"

"वहाँ कोई मनोरंजक कार्य-क्रम आज नहीं है। मैं पत्र लिख दूँगा।"

साहब ने दो पत्र लिखकर माली को देते हुए कहा—"एक क्लब में देना और दूसरा स्मिथ साहब के बँगले पर। चार बजे तक लौट आना। फिर महात्मा जी के पास चलेंगे।"

पत्र लेकर माली बोला—"लेकिन सरकार, महात्मा लोगों के पास खाली हाथ नहीं जाते। कुछ मिठाई या फल ले जाना आवश्यक है।"

"यह कौन बड़ी बात है! ऐसा ही होगा।"

"आपकी छुई नहीं, खानसामा की भी नहीं।"

"तो साईस ले आवेगा। उसे भेजो।"

माली विदा हुआ। साईस से अपनी विजय की कहानी कह, उसे साहब के पास भेजकर स्वयं चिट्ठी देने चला गया।

जब साईस साहब के पास पहुँचा, वे अपनी मेम के पास बैठे ज़ोर-ज़ोर हँस रहे थे।

साईस को देखते ही साहब ने कहा—"जाओ, एक नई हाँड़ी में घोड़े की लीद भरकर ले आओ। उसका मुँह किसी काग़ज़ या पत्ते से ढँककर एक साफ़ झाड़न में बाँध कर यहाँ रख जाओ, अभी।" साहब ने बरामदे के एक कोने की ओर इशारा करके कहा।

साईस भौचक्का-सा वहीं खड़ा-खड़ा कहने लगा—"हुज़ूर, लीद ?"

"हाँ, हाँ, लीद। पर ख़बरदार किसी और को मालूम न हो। नहीं तो बहुत बड़ा दंड पाओगे। मुझे दिखाकर यहाँ रखना।"

साईस सोचता-विचारता चला गया।

साहब ने व्यङ्ग्य-पूर्वक कहा—"इस सूर्य्य-ताप से विदग्ध चमड़े की भेंट हमारे स्पर्श से अपवित्र हो जायगी, कैसा विलक्षण यह तर्क है!"

मेम साहब ने गम्भीर होकर उत्तर दिया—"यदि साधु सचमुच ही करामाती निकला तो ?"

साहब ने उपेक्षा के हास्य में कहा—"यह असम्भव के बाद ही सम्भव है।"

कुछ देर के बाद जब साईस हाँड़ी लेकर आया तब साहब ने पूछा—"इतनी देर क्यों ?"

"बाज़ार जाना पड़ा सरकार! नई हाँड़ी यहाँ कहीं नहीं मिली।"—कहते हुए साईस ने लीद की भरी हाँड़ी साहब को दिखाकर निर्दिष्ट स्थान में रख दी।

कमिश्नर साहब बोले—"जो कोई पूछे तो यही बताना कि मिठाई लाया था। जाओ।"

साईस जाने लगा। खानसामा ने आकर साहब और मेम से चाय पी लेने की प्रार्थना की।

साईस ने जाते-जाते लौटकर देखा, साहब चाय पीने के लिए बँगले के अन्दर चले गये हैं।

चाय पीकर वे मेम साहब के साथ बाहर जाने के लिए तैयार होकर बरामदे में आये। आते ही उन्हें फाटक पर प्रवेश करता हुआ माली दिखाई दिया।

"चलो माली, महात्मा जी के पास। हम तैयार हैं। उनकी भेंट वह रक्खी है।"

मेम साहब ने रूमाल में अपने विस्फारित अधरों को छिपा लिया।

माली हाँड़ी को उठाकर दम्पति की परछाईं बचा उनके साथ-साथ चला। साईस ओट से ध्यान-पूर्वक यह सब देख रहा था। उसके मन में आश्चर्य और भय दोनों मिश्रित थे।

महात्मा जी के आसन की ओर कमिश्नर साहब और उनकी मेम को बढ़ते हुए देखकर भक्तगणों में हलचल मच गई। उन्होंने इधर-उधर हटकर उनके लिए मार्ग साफ़ कर दिया। आगे-आगे हाँड़ी लिये हुए माली था।

दौड़कर दो भक्त एक टूटी-सी बेंच उठा लाये और उसे महात्मा जी के सामने धूनी से कुछ दूरी पर रख दिया।

माली ने महात्मा जी के चरण छूकर कहा—"कमिश्नर साहब आपके दर्शन को आये हैं।" फिर उसने साहब से कहा—"महात्मा जी को हाथ जोड़िए सरकार!"

महात्मा जी ने साहब पर दृष्टि-निक्षेप किया। साहब ने एक हाथ उठाकर उनका अभिवादन किया।

महात्मा जी प्रसन्न मुद्रा से बोले—"आनन्द से हो बच्चा। बेंच पर बैठ जाओ।"

मेम साहब ने महात्मा जी का सम्बोधन सुना और गर्दन नीची करके मुसकाने लगीं। वे दोनों बेंच पर बैठे नहीं।

माली ने भेंट की हाँड़ी उठाकर महात्मा जी के सामने रख दी और कहा—"यह साहब की ओर से है।"

साहब ने इसी समय माली से यह सङ्केत किया कि हाँड़ी महात्मा जी के पास से उठा लो, पर वह नहीं समझा और साहब के निकट जाकर बोला—"क्या आज्ञा है ?"

"हमने हँसी की थी, यू फ़ूल!" साहब ने दोनों भौंहें मिलाते हुए कहा।

महात्मा जी का एक भक्त हाँड़ी का आवरण हटाने को तैयार हुआ और साहब सोच ही रहे थे कि कौन-सा वाक्य कहा जायगा।

हाँड़ी खुली!

साहब और मेम आँखें फाड़-फाड़कर उधर देख रहे थे।

स्वच्छ और सुवासित मलाई के लड्डुओं से भरी हुई हाँड़ी दृष्टिगत हुई!

साहब ने आँखें मल-मलकर एड़ी उठाकर देखा, मलाई के ही लड्डू थे। मन-ही-मन बोले—"अवश्य कोई चालाकी है, हाथ की सफ़ाई है।"

मेम साहब ने घबराकर क्षीण स्वर में कहा—"मुझे सँभालो। सिर में चक्कर आ रहा है।"

साहब के सँभालते-सँभालते मेम साहब मूर्च्छित हो गईं। घबराकर उन्होंने पुकारा—"डाक्टर, डाक्टर, डाँड़ी, डाँड़ी!"

कुछ आदमी भिन्न-भिन्न दिशाओं में निकटतम डाक्टर की खोज में दौड़ पड़े। पास के ही नाचघर में कुछ डाँड़ियाँ जमा थीं। माली पलक मारते जाकर एक डाँड़ी और कुलियों को खींच लाया।

मेम डाँड़ी में अस्पताल को भेजी गईं। साहब साथ-साथ चले। रास्ते में आते हुए डाक्टर मिले। उन्होंने परीक्षा करके कहा—"एक हलका मानसिक आघात पहुँचा है। चिन्ता की कोई बात नहीं। हृदय की दुर्बलता है।"

महात्मा जी उसी रात आसन-बाघम्बर लपेट, चिमटा,

कमण्डल सँभाल न जाने किस ओर चल दिये। कुछ लोग कहते हैं, बवाल से बचने के लिए आसन सूना कर गये। कुछ का कहना है तीन दिन पहले से ही उन्होंने जाना निश्चित कर रक्खा था।

मेम साहब दूसरे ही दिन अच्छी हो गई। साहब ने करामात की बाबत माली से कुछ नहीं कहा। साईस भी अच्छी तरह उस रहस्य को मालिक के भय से छिपाये ही रहा।

माली पर बात उस दिन खुली, जब साईस के घर से उसके पिता के मरने का समाचार आया। घर की देख-रेख के लिए कोई और न होने के कारण उसे नौकरी से पूरी छुट्टी लेनी पड़ी। माली कुछ दूर तक साईस को पहुँचाने गया तब उसने उस रहस्य का पर्दा हटाते हुए कहा—"जब साहब चाय पी रहे थे तब मैंने महात्मा जी को अपमान और मालिक को अभिशाप से बचाने के लिए लीद की हाँड़ी लड्डुओं की हाँड़ी से बदल दी थी।"

"तुम न भी बदलते तो महात्मा जी अपनी करामात से बदल लेते।"

मौन-प्रणय

लेखक, श्रीयुत सोहनलाल द्विवेदी, एम० ए०

कैसे कह दूँ, मेरे उदार!
मेरा मन करता तुम्हें प्यार!

क्या मोल रहेगा पाटल का, जब निकल चली सौरभ अपार?

पलकों से अमृत पीता हूँ,
पल में युग-जीवन जीता हूँ;
खुल जाय न अपना भेद कहीं,
इससे रखता हूँ बंद द्वार।

मेरे स्वप्नों का चित्र-रंग,
होगा फिर तुमको मधुर व्यंग;
मिज़राब पहन मेरी त्रुटि का,
छेड़ोगे मेरा उर-सितार।

राका को अमा बनाओगे,
फिर, तुम शशांक छिप जाओगे;
अधरों की सरल हँसी फिर तो,
होगी बंकिम भ्रू का प्रसार।

मेरी साधों का मद पीकर,
उन्मत्त बनोगे तुम सुन्दर;
मेरी छवि, मेरा मद लेकर,
रूठोगे मुझसे बार-बार।

चिर मौन-प्रणय होगा अपना
जाग्रत न करूँगा यह सपना;

तुम समझ सकोगे कभी नहीं, मेरे मन का यह मधुर भार।

[जोना-प्रपात का एक दृश्य।]

[जोना-प्रपात के सामने नदी का दृश्य।]

आगामी कांग्रेस रामगढ़ में

लेखक, प्रोफ़ेसर फूलदेवसहाय वर्मा

बिहार-प्रान्तीय कांग्रेस-कमिटी ने निश्चय किया है कि बिहार में होनेवाला कांग्रेस का अगला अधिवेशन 'रामगढ़' नामक गाँव में हो। अतएव कांग्रेस-अधिवेशन के अवसर पर यहाँ भारत का विशाल लोकसमूह एकत्र होगा। और छोटानागपुर का पठार भारत के दर्शनीय स्थानों में एक गिना जाता है, अतएव यहाँ उसका आवश्यक परिचय दिया गया है।

हजारीबाग़ से राँची को जो सड़क गई है उसी पर हज़ारीबाग़ से प्रायः ३० मील की दूरी पर दामोदर नदी के तट पर उपर्युक्त रामगढ़ बसा हुआ है। एक समय यही रामगढ़ वहाँ के राजाओं की राजधानी था। उनके क़िले का खँडहर अब भी विद्यमान है। सन् १७४० में हिदायतअलीखाँ के अधीन मुसलमानों ने रामगढ़ पर आक्रमण कर उसे अधिकार में कर लिया, पर सारे ज़िले को वे अपने अधीन न कर सके। मराठों के आक्रमण को रोकने के लिए उन्हें वहाँ से चला जाना पड़ा। सन् १७७२ में लेफ़्टिनेंट गोटर्ड के अधीन ब्रिटिश सैनिकों ने रामगढ़ पर क़ब्ज़ा किया और रामगढ़ के अधीश मुकुन्दसिंह को हटाकर तेजसिंह को वहाँ का अधिपति बनाया। मुकुन्दसिंह भाग गये और शीघ्र वे मर गये। उनका लड़का भी मर गया। तेजसिंह ने रामगढ़ को छोड़कर इचाक में अपना निवासस्थान बनाया। तब से रामगढ़ की दशा बिगड़ने लगी और आज वह जीर्णशीर्णावस्था में पड़ा हुआ है।

रामगढ़ हज़ारीबाग़-ज़िले में है। हज़ारीबाग़ पहले एक गाँव-मात्र था। फ़ौज के कलकत्ते से बनारस जाने के रास्ते में यह गाँव पड़ता था। सन् १७८० में 'रामगढ़ बैटेलियन' के लिए यह स्थान चुना गया और सन् १८३४ में ज़िले के शासन का केन्द्र बना। यह नगर छोटानागपुर पठार पर बसा हुआ है। यहाँ के अधिकांश अधिवासी मगही बोली बोलते हैं। दक्षिण-पूर्व के भाग की बोली कुरमाली है। ग्रियर्सन साहब के मतानुसार कुरमाली कुछ बंगाली मिली हुई हिन्दी है। यहाँ की संताल जाति मुण्डारी बोलती है। इस ज़िले में कुछ ओराँव भी हैं, पर ये अधिकांश मगही बोलते हैं। कुछ थोड़े-से ऐसे भी ओराँव हैं जो अपनी द्राविड़-भाषा बोलते हैं। इस ज़िले के अधिकांश अधिवासी हिन्दू हैं। ईसाई पादरियों ने संताल, मुण्डा और ओराँव जातियों में लाखों को ईसाई बनाया है। डबलिन-विश्वविद्यालय के कुछ अविवाहित ग्रेजुएट बाइबिल के प्रचार के लिए केवल २००) वार्षिक वेतन पर वहाँ से भारत आये और स

[आदिमनिवासियों के लड़के नदी पार कर रहे हैं।]

१८८३ से यहाँ शिक्षा-प्रचार का कार्य आरम्भ किया। उन लोगों ने सन् १८८९ में सेन्ट कोलम्बस कालेज स्थापित किया। इस कालेज की स्थापना में रामगढ़ की ज़मींदारी के मालिक राजा रामनारायणसिंह ने तीन हज़ार रुपये का चन्दा दिया। २३ लड़कों से यह कालेज खुला। सन् १९०४ में पढ़ाई बी० ए० तक की हो गई। इन लोगों ने सन् १८९५ में एक हाई स्कूल भी खोला। इनके द्वारा अनेक प्राइमरी स्कूल खुले और एक आदर्श ग्राम भी बना। इन्होंने एक छापाखाना और एक वर्कशाप भी स्थापित किया है। यहाँ पादरियों की स्काटलैंड की यूनाइटेड चर्च की एक दूसरी संस्था भी है, जो जंगली जातियों के बीच ईसाई-धर्म का प्रचार कर रही है।

छोटानागपुर विहार-प्रान्त की एक कमिश्नरी है। इसमें हज़ारीबाग़, पलामू, राँची, सिंहभूम और मानभूम नामक ५ ज़िले हैं। राँची छोटानागपुर का एक प्रधान नगर है और विहार-सरकार का ग्रीष्म-वासस्थान भी है। जिस भाग में आजकल राँची है उसे प्राचीनकाल में झारखण्ड कहते थे। यह नागवंशियों के अधीन था। नागपुर शब्द का १५वीं या १६वीं सदी से व्यवहार होता है।

राँची पठार पर बसा हुआ है। अधिकांश भाग पहले जंगल था, पर अब धीरे-धीरे जंगल साफ़ हो रहा है। यहाँ की ज़मीन पथरीली, पर काफ़ी उपजाऊ है। राँची में दो पहाड़ियाँ हैं। एक को 'राँची-हिल' कहते हैं। इसके शिखर पर शिव का एक छोटा-सा मन्दिर है। एक दूसरी छोटी पहाड़ी 'मुराबादी-हिल' है, जिसकी प्रायः आधी ऊँचाई पर कविवर श्री रवीन्द्रनाथ ठाकुर का एक छोटा बँगला बना हुआ है। राँची नगर में एक छोटा ताल है, जिसे 'राँची-लेक' कहते हैं। इस ताल से राँची की सुन्दरता बढ़ गई है।

राँची में अनेक दर्शनीय स्थान हैं। उनमें राँची का पागलखाना है, जिसे अब राँची मेंटल हौस्पिटल कहते हैं। यह राँची शहर से प्रायः चार-पाँच मील दूर है। यह अँगरेज़ों के लिए है। हिन्दुस्तानियों के लिए एक अलग पागलखाना है, जिसमें बंगाल, विहार और उड़ीसा के ही पागल भर्ती होते हैं। इसमें पुरुषों के लिए अलग और स्त्रियों के लिए अलग अलग भाग हैं। प्रायः १,५०० पागल इसमें रह सकते हैं और यह प्रायः बराबर भरा ही रहता है।

राँची से प्रायः ६ मील दूर जगन्नाथपुर नाम का एक गाँव है। यहाँ पत्थर के एक ऊँचे टीले पर पुरी के मन्दिर के नमूने पर एक छोटा पर सुन्दर मन्दिर बना हुआ है। यह मन्दिर सन् १६९१ में नागवंश के एक ठाकुर ऐनीसाही ने बनवाया था। जगन्नाथपुर का सारा गाँव देवोत्तर में मन्दिर को दे दिया गया था। जब १८५७ के सिपाही-विद्रोह में बड़कागढ़ के स्वामी ने भाग लिया तब उनकी सारी ज़मींदारी ज़ब्त हो गई और उसके साथ इस मन्दिर का प्रबन्ध ब्रिटिश सरकार के हाथ आ गया।
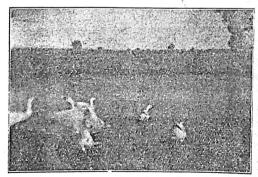
[राँची के तालाब में बत्तख़ तैर रहे हैं।]
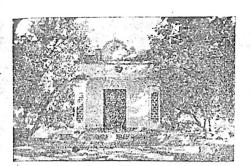
[श्यामेश्वर महादेव का मन्दिर।]

अब से इसका प्रबन्ध राँची के डिप्टी कमिश्नर के द्वारा होता है। आषाढ़ में रथ-यात्रा के अवसर पर यहाँ एक बहुत बड़ा मेला लगता है, जिसमें लाखों मनुष्य इकट्ठा होते हैं। इस अवसर पर काठ का एक बड़ा रथ पत्र, पुष्पों और भंडों से सुशोभित हो प्रधान मन्दिर से खींचा जाकर प्रायः २००, ३०० गज़ की दूरी पर एक दूसरी छोटी चट्टान पर जाता है और वहाँ से ठीक एक सप्ताह बाद 'उल्टा रथ' प्रधान मन्दिर को लौटता है।

छोटानागपुर में हिन्दू, मुसलमान, क्रिस्तान, संताल, मुण्डा और ओराँव नाम की जातियाँ बसती हैं। अँगरेज़ शासकों ने जो पुस्तकें लिखी हैं उनमें उन लोगों ने यह सिद्ध करने की कोशिश की है कि छोटानागपुर के आदि-वासी संताल, मुण्डा और ओराँव हैं। ईसाई मिशनरियों ने भी इस भाव के फैलाने का काफ़ी प्रयत्न किया है और वे आज भी इस प्रयत्न में लगे हुए हैं। इसका परिणाम यह हुआ है कि कुछ मुण्डा और ओराँव ईसाइयों ने भी उनके सुर में सुर मिलाकर यह आवाज़ उठाई है कि छोटानागपुर उनका है और वे ही उसके आदिवासी हैं। आजकल इस आन्दोलन के संचालक श्रीजयपालसिंह नाम के एक व्यक्ति हैं, जिन्होंने आक्सफ़ोर्ड में शिक्षा पाई है। इस आन्दोलन को दबाने के लिए अधिक समझदार हिन्दू-धर्मावलम्बी मुण्डा और ओराँव लोग भी आगे आये हैं। इतिहास के अध्ययन से यह पता लगता है कि बहुत प्राचीन काल से हिन्दू यहाँ आकर बस गये हैं। मुण्डा और ओराँव लोगों का दावा बिलकुल निराधार है।

मुण्डा और ओराँव छोटानागपुर में कब आये, इसका कोई प्रमाण नहीं मिलता। पर यह स्पष्टतया ज्ञात होता है कि मुण्डा लोग पहले आये और जहाँ आज पाये जाते हैं, वहाँ बस गये। इनके पूर्वज सोन नदी को पार कर छोटानागपुर में आये और पलामू, हज़ारीबाग़ और राँची के ज़िलों में बस गये। संताल लोग दामोदर नदी को पार कर हज़ारीबाग़ और उसी नदी के तट पर मानभूम और संताल परगने के ज़िले में बस गये। मुण्डा लोगों ने छोटा-नागपुर के घने जंगलों में ही रहना अधिक पसन्द किया। ओराँव लोगों की किंवदन्तियों से पता लगता है कि ये लोग रोहतासगढ़ से किसी प्रबल-जाति—सम्भवतः खरवारों से भगाये जाकर इधर आ गये और दो भागों में बँट गये। एक भाग गंगा के किनारे किनारे जाते हुए राजमहल की पहाड़ियों में बस गया, दूसरा भाग उत्तर में कोल नदी के तट होते हुए पलामू और राँची के ज़िलों में जाकर बस गया। वहाँ मुण्डा लोग पहले से ही मौजूद थे। उन्होंने उनका स्वागत किया। जो गाँव मुण्डों के अधिकार में थे, धीरे धीरे वे ओराँवों के हाथ आ गये। अब भी अनेक ओराँव गाँवों के पुरोहित मुण्डा लोग ही हैं।

आज-कल छोटानागपुर के सबसे बड़े ज़मींदार राँची के रहनेवाले छोटानागपुर के महाराज हैं। ये नागवंशी राजा हैं। पूरे हिन्दू हैं। इनका विवाह आदि भी हिन्दू घरानों में क्षत्रियों में होता है। इनके पूर्वजों ने बहुत-से ब्राह्मणों और क्षत्रियों और अन्य हिन्दुओं को छोटानागपुर में बुलाया था। शेरशाह के ज़माने में यहाँ के राजा पर मुसलमानों
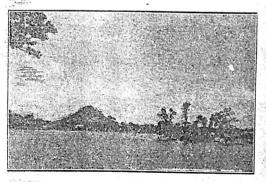
[राँची के तालाब से मुरादबाद पहाड़ी का दृश्य।]
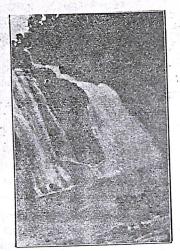
[राँची के हूड़प्रपात का एक दृश्य।]

ने 'श्यामचन्द्र' नामक एक सफ़ेद हाथी के लिए चढ़ाई की थी। वह हाथी शेरशाह को मिल गया। फिर अकबर के समय में मुग़लों ने इस देश पर आक्रमण किया। यहाँ के राजा उनके अधीन हो गये। सन् १६१६ में जहाँगीर ने इब्राहीमखाँ को छोटानागपुर पर धावा करने के लिए भेजा। इब्राहीमखाँ ने राजा को क़ैद कर लिया, पर कुछ वर्षों के बाद दिल्ली के बादशाह ने उन्हें छोड़ दिया। सन् १७६५ में जब बंगाल, बिहार और उड़ीसे की दीवानी ईस्ट इंडिया कम्पनी को मिली तब छोटानागपुर भी बिहार का एक भाग होने के कारण अँगरेज़ों के हाथ आ गया।

सन् १८३१-३२ में संताल, मुण्डा और ओराँव जातियों ने विद्रोह किया। अनेक गाँवों को इन्होंने जला डाला। अनेक मुसलमानों, हिन्दुओं और सिखों को जीते जी जला डाला व मार डाला तथा और भी अनेक अत्याचार किये। कैप्टेन विलकिन्सन के अधीन ब्रिटिश सेना गई और विद्रोह की शान्ति हुई। उसके बाद से यहाँ के शासन में बहुत कुछ परिवर्तन हुआ और छोटानागपुर नान-रेगुलेशन ज़िला घोषित किया गया। सिपाही-विद्रोह के समय में यहाँ के कुछ ज़मींदार विद्रोह में सम्मिलित हुए थे, पर वे शीघ्र ही दबा दिये गये और उनकी ज़मींदारियाँ ज़ब्त कर ली गईं। सन् १८९५ में मुण्डों ने फिर एक बार विद्रोह किया। इनका सरदार बिरसा नामक एक मुण्डा था। वह जर्मन-मिशन का क्रिस्तान था। उसे थोड़ी शिक्षा मिली थी और वह कुछ अँगरेज़ी भी जानता था। उसका प्रभाव मुण्डा और ओराँव जातियों पर बहुत अधिक था। उसने अपने को एक नये धर्म का प्रवर्तक घोषित किया। एक ईश्वर 'सिंगबोंग' की पूजा करने का आदेश दिया। मांस-भक्षण से परहेज़ और यज्ञोपवीत धारण करने की आज्ञा दे दी। उसने अपने को ईश्वर का अवतार घोषित किया। उसके अनुयायी खुले आम कहने लगे कि महारानी विक्टोरिया का राज्य समाप्त हो गया। बिरसा को क़ैद करने के लिए पुलिस सुपरिंटेंडेंट भेजे गये। रात्रि में बिरसा और उसके १५ साथी गिरफ़्तार किये गये। उन सबको दो दो वर्ष की सज़ा हुई। सज़ा पूरी होने के पहले ही महारानी विक्टोरिया की रजत-जयन्ती के अवसर पर वे सब छोड़ दिये गये। छूटते ही वे छुटिया मन्दिर को तोड़ने को गये। बिरसा तो भाग गया, पर उसके अनुयायी पकड़े गये। बिरसा दो वर्ष तक छिपा रहा, पर १८९९ में क्रिसमस के दिन पकड़ा गया, जिस दिन फिर विद्रोह शुरू हुआ। बिरसा सिंहभूम में पकड़ा गया और उस पर मुक़दमा चला। फ़ैसला होने से पहले ही जेल में हैज़े से वह मर गया। उसके अनेक अनुयायियों को फाँसी और जेल हुआ।

[आदिम निवासियों के लड़के एक स्कूल में पढ़ रहे हैं।]
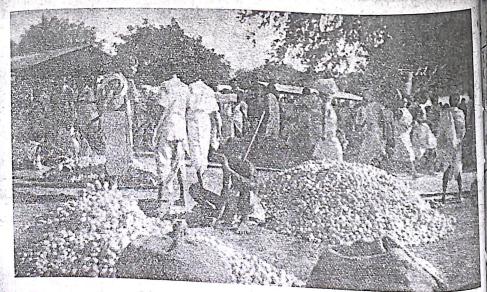
[छोटानागपुर का एक रेशम-कोयों का बाज़ार।]

[छोटानागपुर की रस्सी बनाने वाली स्त्रियाँ।]

[छोटानागपुर के संताल लोग बाज़ार को जा रहे हैं।]

तब से अब तक कोई विद्रोह वहाँ नहीं हुआ है। इस बीच शिक्षा का वहाँ काफ़ी प्रचार हुआ है। लाखों मुण्डा, ओराँव और संताल क्रिस्तान हो गये हैं। लाखों हिन्दू हैं। और अनेक अपने प्राचीन धर्म को ही अभी मानते हैं।

छोटानागपुर में अनेक बोलियाँ बोली जाती हैं। पर वहाँ की प्रधान भाषायें हिन्दी के रूपान्तर——नागपुरी, भोजपुरिया, शुद्ध मगही और पंचपरगनिया मगही हैं। यहाँ के सभी निवासी इन बोलियों को बोल और समझ सकते हैं। यहाँ की भोजपुरिया बोली पर मगही और छत्तीसगढ़ी का प्रभाव पड़ा है। इस बोली को मुण्डा लोग 'पिक्कु काजी' अर्थात् आर्यों की भाषा कहते हैं। कुछ लोग बंगाली का रूपान्तर 'सराकी' बोली बोलते हैं और कुछ लोग मैथिली का रूपान्तर 'छीका-छीकी' बोली बोलते हैं। यहाँ की जंगली जातियाँ जो बोली बोलती हैं उसे विद्वानों ने दो वर्गों में विभक्त किया है। एक मुण्डा-जाति की भाषा और दूसरी द्राविड़ों की भाषा। मण्डा-जाति की भाषा में मुण्डारी, संताली, तूरी, असुरी और खरिया बोलियाँ हैं। प्रायः ५ लाख लोग मुण्डारी बोलते हैं। प्रायः ९४ प्रतिशत मुण्डा इस बोली को बोलते हैं। कुछ ओराँव भी मुण्डारी बोलते हैं। मुण्डारी का व्याकरण पादरी तौफ़मन ने लिखा है। तूरी बोली मुण्डारी से बहुत मिलती-जुलती है। तूरी, असुरी और खरिया बोलियाँ कुछ हज़ार व्यक्तियों-द्वारा ही बोली जाती हैं। ये बोलियाँ धीरे धीरे लुप्त हो रही हैं।

संताली कई लाख लोगों-द्वारा बोली जाती है। यह भी मुण्डा-जाति की बोली है, पर आर्य-भाषाओं का इस पर बहुत कम प्रभाव पड़ा है। कुछ शब्द हिन्दी, बंगाली और उड़िया से अवश्य आये हैं, पर बनावट उनकी अपनी है। लिखित साहित्य इसमें नहीं है, पर परम्परागत कहानियाँ बहुत हैं। पादरियों ने इस भाषा को रोमन-लिपि में लिपिबद्ध किया है। पादरियों ने इस भाषा के दो व्याकरण भी लिखे हैं। यह भाषा बहुत धनी है। इसमें विचार बड़ी स्वच्छता से प्रकट किये जा सकते हैं।

ओराँव लोग जो बोली अपने घरों में बोलते हैं उसे कुरुख कहते हैं। यह द्राविड़-जाति की भाषा है। प्रायः छः-सात लाख ओराँव इसे बोलते हैं।

छोटानागपुर जंगलों का देश है। यहाँ के जंगलों में साल, गंभार, सेमल, महुआ, तून, सीसम, कुसुम और अमलतास के पेड़ होते हैं। अधिकांश जंगल अब काट डाले गये हैं। जंगल के कम हो जाने से वर्षा कम हो गई है। इससे खेती में नुक़सान हो रहा है। यहाँ के जंगलों में जंगली जानवर शेर, चीता, भालू, भेड़िया, हीना और सियार आज भी देखे जाते हैं। साँप भी छोटानागपुर में काफ़ी होते हैं।

छोटानागपुर खानों और खनिजों के लिए प्रसिद्ध है। कोयला, अबरख, लोहा, ताँबा, सफ़ेद मिट्टी, तुरमैलीन, रक्तमणि (याक़ूत) इत्यादि पर्याप्त मात्रा में पाये जाते और खानों से निकलते हैं। छोटानागपुर में गरम जल के झरने भी अनेक हैं।

छोटानागपुर में अनेक देखने योग्य स्थान हैं। उनमें राँची शहर और उसके आस-पास के स्थानों का वर्णन ऊपर हो चुका है। प्रत्येक व्यक्ति को राँची शहर और उसके आप-पास के स्थानों को देखना चाहिए। राँची ज़िले में दो सुन्दर जल-प्रपात भी हैं। वे राँची से प्रायः २५-३० मील दूर हैं। मोटरगाड़ियाँ वहाँ तक चली जाती हैं। उनमें एक तुन्दरु प्रपात है। यह सुवर्णरेखा का प्रपात है। यहाँ नदी पठार से ३२० फ़ुट नीचे गिरती है। वर्षा के दिनों में यह प्रपात अधिक सुन्दर पर भयङ्कर भी होता है। इस प्रपात से प्रायः ८ मील दूर जोन्दा प्रपात की गौतम धारा है। यहाँ बिड़ला बन्धुओं के द्वारा एक सुन्दर बौद्ध-मन्दिर और उसके साथ धर्मशाला भी पहाड़ी के शिखर पर बनाया गया है। यह स्थान भी देखने योग्य है। चट्टानों पर बैठकर प्रपात का दृश्य बड़ा ही सुहावना लगता है।

छोटानागपुर में एक बड़े महत्त्व का स्थान पारसनाथ पहाड़ी है। संतालों के पहाड़ी देवता इसी पर्वत पर रहते हैं। वैशाख की पूर्णिमा को यहाँ एक बहुत बड़ा मेला लगता है। संताल लोग उस समय यहाँ धार्मिक शिकार का त्योहार मनाते हैं। इस धार्मिक शिकार को रोकने के लिए जैनियों ने मुक़दमा दायर किया था, पर हाईकोर्ट से वह खारिज हो गया। जैनियों के लिए पारसनाथ एक पवित्र स्थान है। उनके २३वें तीर्थङ्कर पार्श्वनाथ ने इसी स्थान पर निर्वाण प्राप्त किया था।

दशवर्षीय योजना

लेखक, श्रीयुत कालिदास कपूर, एम० ए०, एल-टी०

हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन के कई अधिवेशनों में सम्मिलित होने का सौभाग्य मुझे प्राप्त हुआ है। कई वर्ष तक मेरा उसकी कार्य-कारिणी समिति से भी घनिष्ठ सम्बन्ध रहा है। इधर कुछ वर्षों से सम्मेलन के अधिवेशनों में मैं सम्मिलित न हो सका था, केवल अन्य आवश्यक कार्यों में फँसे रहने के कारण, सम्मेलन के प्रति उदासीनता के कारण नहीं। कई वर्ष के पश्चात् काशी के सम्मेलन में सम्मिलित होना मैंने अपना सौभाग्य समझा। मेरी हैसियत तो बहुत कुछ दर्शक की ही थी, यद्यपि प्रतिनिधियों में नाम लिखा लिया था। सम्मेलन के राष्ट्रीय उद्देश्य की पूर्ति का मैं हृदय से इच्छुक हूँ। सो यदि सम्मेलन के मंच से कुछ कहने का मौक़ा नहीं मिला तो भी उसके प्रति अपने कर्तव्य की पूर्ति करने का मौक़ा प्रेस-द्वारा तो है ही। मेरे इस लेख का यही तात्पर्य है।

यदि प्रतिनिधियों और दर्शकों की संख्या की दृष्टि से सम्मेलन की सफलता की जाँच की जाय तो इसमें सन्देह नहीं कि काशी का सम्मेलन बहुत सफल रहा। मैंने किसी भी पिछले सम्मेलन के मण्डप के नीचे इतने पुरुष-स्त्री नहीं देखे, जितने काशी के सम्मेलन में। यदि विवाद ग्रस्त प्रश्नों पर दिये गये व्याख्यानों पर भी सफलता का फ़ैसला हो, तो भी काशी-सम्मेलन की सफलता उच्च कोटि की ही मानी जायगी। भला जिस सम्मेलन में महामना मालवीय, राष्ट्रपति राजेन्द्र-प्रसाद और त्यागवीर पुरुषोत्तमदास जी टंडन जैसे नेता सम्मिलित हों, वहाँ ऊँचे दर्जे के व्याख्यानों की कमी रह सकती है? जो मन्तव्य स्वीकृत हुए वे भी आन्दोलन-क्षेत्र के लिए महत्त्वपूर्ण ही थे। परन्तु इसके आगे——इसके आगे साहित्य-सम्मेलन का काम——साहित्य-निर्माण का संगठन और नियन्त्रण करना भी है। इस महत्त्वपूर्ण उद्देश्य की पूर्ति के लिए क्या कार्यक्रम निश्चित हुआ, कौन योजना बनाई गई, इसका मुझे पता नहीं है।

हिन्दी, उर्दू, हिन्दुस्तानी का झगड़ा किसी संस्था के प्रस्तावों से निबटने का नहीं। हिन्दी और उर्दू एक ही भाषा के दो साहित्यिक रूप हैं। लिपि-भेद है और शब्दावली-भेद भी है। कुछ विचार तथा शैली का भेद है, कुछ व्याकरण-भेद भी है, परन्तु वह नहीं के बराबर है। मेरा विचार भी पहले समझौते के पक्ष में था, परन्तु देखता हूँ कि मर्ज़ बढ़ता जाता है ज्यों ज्यों दवा की जाती है। हिन्दुतानी-एकेडमी से कुछ करते धरते नहीं बना, यद्यपि उससे बहुत कुछ आशायें थीं। कांग्रेसी सरकारों ने भी जहाँ कहीं हिन्दुस्तानी की फ़िक्र की कि वैमनस्य की आग भड़की। बिहार की हिन्दुस्तानी के विरुद्ध हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन है तो मध्यप्रान्त तथा युक्तप्रान्त की हिन्दुस्तानी पर अंजुमन-ए-तरक्क़ी उर्दू का वार है।

पारस्परिक वैमनस्य होते हुए भी, प्रकटरूप से राष्ट्रीयता के विरुद्ध कई धाराओं को देखते हुए भी यह निश्चित है कि देश के भीतर आपस के व्यवहार की बाढ़ में राष्ट्रीय संस्कृति का एकीकरण हो रहा है।

राष्ट्रीय भाषा अङ्कुरित हो चुकी है। उसका रूप न अभी तक हिन्दी के हिमायती समझ पायें हैं, न उर्दू के। अभी तक हमारी साहित्यिक हिन्दी और उर्दू बीस प्रतिशत नागरिकों के बीच में ही रही है। अस्सी प्रतिशत देहाती जनता में शिक्षा का प्रचार होने पर इन भाषाओं का क्या रूप होगा सो बताना कठिन है। लिपि के विषय में भी विश्वास-पूर्वक नहीं कहा जा सकता कि उसका क्या रूप होगा। क्या मालूम जिस रोमन-लिपि के विरुद्ध महात्मा गांधी तक अपनी विज्ञप्ति दे चुके हैं, राष्ट्रीय लिपि के पद तक पहुँच जाय। अस्तु, थोड़े समय के लिए हम हिन्दुस्तानी के प्रश्न को स्थगित कर दें तो कोई हर्ज नहीं।

किसी भाषा का अध्ययन लोग उसके द्वारा अपने विचार प्रकट करने के लिए अथवा उस भाषा के बोलने-वालों से अपना काम निकालने के लिए करते हैं। भाषा का अध्ययन प्रायः इसी लिए हुआ करता है। हिन्दी से बढ़कर व्यापक भारतवर्ष की कोई भाषा नहीं है। इसलिए देश के अन्य भाषा-भाषियों के लिए भी हिन्दी सीखना आवश्यक हो जाता है।

परन्तु भाषा विचार-विनिमय के लिए ही नहीं पढ़ी जाती, ज्ञानार्जन के लिए भी पढ़ी जाती है। हम लोगों के

लिए अँगरेज़ी पढ़ने का महत्त्व बहुत कुछ इसी बात में है कि व्यावहारिक ज्ञान के जिन अंगों की हमें ज़रूरत है वे हमें अपनी मातृ-भाषा हिन्दी में नहीं मिलते, अँगरेज़ी में ही मिलते हैं। हिन्दी के भारतवर्ष की इतनी व्यापक भाषा होते हुए भी इसमें आधुनिक साहित्य की बहुत कमी है। इसलिए यद्यपि व्यापकता के नाते हिन्दी राष्ट्र-भाषा होने का दावा कर सकती है, तथापि उसका साहित्यिक भाण्डार लौकिक आवश्यकताओं की पूर्ति नहीं करता। इस सम्बन्ध में वह बँगला के पीछे ही है और वह समय बहुत दूर है जब ऊँची कक्षाओं की शिक्षा के लिए हमारा काम हिन्दी से ही चल जाय, हमें अँगरेज़ी की ज़रूरत न रहे।

यह बात नहीं कि देशी भाषाओं को अब सरकारी संस्थाओं की ओर से प्रोत्साहन न मिलता हो।

युक्त-प्रान्त में इन्टरमीजिएट की परीक्षा के लिए हिन्दी-उर्दू में उत्तर लिखने की अनुमति दे दी गई है और विश्वविद्यालय भी देशी भाषाओं का आदर करने में अग्रसर हैं। कमी है केवल एक सर्वांगीण योजना की जिसका पृष्ठ-पोषण जनता करे और सरकार भी।

साहित्य-सम्मेलन तथा नागरी प्रचारिणी सभा के सामने प्रस्ताव है कि दोनों संस्थाओं के प्रतिनिधि एक जगह बैठकर प्रचार और साहित्य-निर्माण की एक दशवर्षीय योजना बनावें। इस योजना को वे पत्रिकाओं-द्वारा सर्व-साधारण के सामने रक्खें। उस पर सार्वजनिक सम्मति के मिलने पर उसमें उचित परिवर्तन करें और फिर उसको पूरा करने में तन-मन-धन से योग दें। दश-वर्षीय योजना बनाने की क्षमता मुझमें नहीं है। परन्तु इस सम्बन्ध में कुछ अपने विचार हैं, जिन्हें सम्मेलन तथा सभा के नेताओं के सामने रखना मेरा कर्तव्य है। कदाचित् इन संस्थाओं के नेताओं के इस ओर ध्यान देने पर कोई उचित योजना बन सके।

भूमिका में यह कहना आवश्यक है कि यह योजना हिन्दी के लिए ही है, परन्तु उर्दू से मेरा कोई विरोध नहीं है। मैं क्लिष्ट हिन्दी का भी पक्षपाती नहीं हूँ। प्रचार के विषय में जो योजना बने उसमें मैं ऐसी ही हिन्दी के प्रचार की हिमायत करूँगा जो सर्वसाधारण में मान्य हो, जिसके भाण्डर में संस्कृत, फ़ारसी, अरबी, अँगरेज़ी के प्रचलित शब्द आवश्यकतानुसार तत्सम या तद्भव के रूप में लिये जा सकें। साथ ही इस प्रचार में उर्दू का विरोध नहीं। उर्दू के हिमायतियों को अधिकार है, वे भी अपनी भाषा और साहित्य के प्रचार के लिए पूर्ण प्रयत्न करें। फिर यदि वे उसे फ़ारसी और अरबी की सगी भतीजी भी बनायें तो हमें उज्र न होगा। उर्दू-साहित्य को सर्वाङ्गीण बनाने और उर्दू का प्रचार होने में हिन्दी की कोई हानि नहीं है।

यह बड़े हर्ष की बात है कि हिन्दी-प्रचार के लिए भारत के उन प्रान्तों में भी प्रयत्न हो रहा है जहाँ की मातृभाषा हिन्दी नहीं है। इस सम्बन्ध में सबसे स्तुत्य प्रयत्न मदरास-प्रान्त का हुआ है। गुजरात और महाराष्ट्र के नगरों में लोग हिन्दी बहुत कुछ समझ और बोल लेते हैं। हैदराबाद में उर्दू के बहाने हमारी हिन्दी के समझनेवाले भी बहुत हो गये हैं। अभी उड़ीसा, छोटानागपुर, बंगाल और आसाम में विशेष प्रयत्न करने की आवश्यकता है। आसामी तथा उड़िया भाषाओं का साहित्य बहुत उन्नत दशा में नहीं है। इसलिए इन प्रान्तों में हिन्दी-प्रचार के लिए विशेष प्रयत्न करने की आवश्यकता है। क्या ही अच्छा हो यदि दक्षिण-भारत-हिन्दी-प्रचार-सभा के समान आसाम और उड़ीसा में भी संस्थायें स्थापित हो जायँ। साहित्य-सम्मेलन के लिए इस ओर ध्यान देना विशेष रूप से आवश्यक है।

भारत के बाहर जहाँ कहीं हमारे भारतीय भाई यथेष्ट संख्या में बसे हैं, वहाँ भी हिन्दी-प्रचार के प्रयत्न करने की आवश्यकता है। हमारे प्रवासी भारतीय हिन्दी के योग्य अध्यापकों के न मिलने के कारण हिन्दी भूलते जा रहे हैं और उनकी भाषा तथा संस्कृति पर विदेशी रंग चढ़ रहा है। इस सम्बन्ध में मेरे पास ट्रिनिडाड से एक पत्र भी आया था। यदि हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन भारतीय उपनिवेशों की संस्थाओं से लिखा-पढ़ी करके अध्यापकों और प्रचारकों को भेजने का काम कर सके तो संसार के उन भागों में हम अपनी भाषा और साहित्य की रक्षा ही न कर सकेंगे, अपनी संस्कृति और सभ्यता की रक्षा और उन्नति भी कर सकेंगे। प्रचार पर विचार करते समय हमें उस कठिनाई पर भी ध्यान देना होगा

जो अध्यापकों के सामने हिन्दी-उर्दू-मिश्रित कक्षाओं को शिक्षा देने के सम्बन्ध में आती है। बोलचाल में हिन्दी और उर्दू का अधिक भेद नहीं है। परन्तु पारिभाषिक शब्दों के प्रयोग में यह भेद बढ़ जाता है। शिक्षा की जो योजना हमारे सामने है उसमें बुनियादी शिक्षा के ऊपर माध्यमिक शिक्षालयों में अँगरेज़ी को एक अनिवार्य विषय रक्खा गया है। आगे चलकर पारिभाषिक शब्दों का जो कुछ रूप हो, परन्तु थोड़े समय के लिए यदि पारिभाषिक शब्दों को यथासम्भव बोलचाल की शब्दावली में ढूँढ़ने के बाद जिन शब्दों के लिए संस्कृत और फ़ारसी-अरबी की ही शरण लेना पड़े उनके लिए हिन्दी और उर्दू के हिमायती अँगरेज़ी की ही शरण लें तो बहुत अच्छा हो। जापानी-भाषा का उदाहरण हमारे सामने है। वहाँ भाषा-भेद का कोई प्रश्न नहीं है। उस भाषा में व्यावहारिक ज्ञान पर साहित्य की कमी नहीं है। सर्वोच्च कक्षाओं तक जापानी-भाषा के द्वारा तो शिक्षा दी जाती है, तोभी पारिभाषाक शब्दों के लिए वहाँ योरपीय भाषाओं की ही बहुत कुछ शरण ली गई है। इससे उनकी देशभक्ति में कोई कमी नहीं आती। इस सम्बन्ध में साहित्य-सम्मेलन ने जो नीति अभी तक रक्खी है, प्रचार की दृष्टि से उसमें परिवर्तन करने की आवश्यकता है।

प्रचार की योजना ही यथेष्ट समय और धन चाहेगी, परन्तु बहुत कुछ स्थानीय संस्थाओं के सहयोग से हो सकता है। सम्मेलन का अधिकतर काम योग्य अध्यापकों को हिन्दी-प्रचार का बीड़ा देकर स्वल्प वेतन पर भेजने का ही होगा। हमें विश्वास है कि खोज करने पर ऐसे प्रचारक यथेष्ट संख्या में मिल सकेंगे।

प्रचार के साथ साहित्यिक भांडार की जाँच करना और जहाँ कहीं कमी हो उसकी पूर्ति करने की योजना करना हिन्दी-प्रचार से अधिक महत्त्वपूर्ण सेवा-कार्य होगा। इस कार्य के लिए भी अधिक धन की आवश्यकता न होगी। हिन्दुस्तानी-एकेडमी को जितनी सहायता दी जाती है उससे अधिक यदि प्रान्तीय सरकार सहायता करने के लिए राज़ी न हो तो यह अधिक उचित होगा कि हिन्दुस्तानी पर खोज करने के लिए सरकार शिक्षा-विभाग की ओर से विद्वानों की एक छोटी-सी समिति बना दे और बचत को सम्मेलन तथा शिबली-एकेडमी जैसी संस्थाओं को कुछ शर्तों पर बाँट दें। मुझे विश्वास है कि इन दोनों की सम्मिलित सेवा हिन्दुस्तानी एकेडमी की सेवा से कहीं अधिक होगी।

सरकारी सहायता के अतिरिक्त भी साहित्य-निर्माण के साधन जुटाये जा सकते हैं। सरसरी नज़र से देखते हुए हिन्दी में शिक्षा-साहित्य की बहुत कमी है। वैज्ञानिक साहित्य का भी प्रायः अभाव ही है। कला-कौशल पर पुस्तकों की बहुत कमी है। भारतीय इतिहास की सामग्री नहीं के बराबर है। राजनीति और अर्थ-शास्त्र पर भी अच्छी पुस्तकों की कमी है। इन सब कमियों की जाँच करके प्रत्येक विभाग में कमी की पूर्ति करने का काम विशेष संस्थाओं तथा प्रकाशकों को दिया जा सकता है। अभी तक राजनैतिक नेताओं ने जनता में पठनपाठन की ओर रुचि बढ़ाने का यथेष्ट प्रयत्न नहीं किया है। कहना पड़ता है कि बहुतेरे सार्व-जनिक नेताओं को स्वयं ही पढ़ने-लिखने का शौक़ नहीं है। सम्मेलन का काम उन्हें इस ओर प्रवृत्त करना भी है। फिर स्कूल, कालेज, पुस्तकालय आदि ऐसी संस्थायें हैं जिन्हें विभिन्न ग्रन्थ-मालाओं का स्थायी ग्राहक बनाने के लिए प्रोत्साहित किया जा सकता है। जब नागरी-प्रचारिणी सभा तथा हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन जैसी सर्वमान्य संस्थाओं के नेतृत्व में हिन्दी की पत्र-पत्रिकायें प्रचार की दुंदुभी बजाना प्रारम्भ करेंगी, जब सत्साहित्य की व्याख्याओं और पत्रिकाओं के द्वारा धूम मचाई जायगी, तब पाठक भी निकल आयँगे। पुस्तकों की बिक्री होगी, प्रकाशक और लेखक स्वयं ही आगे आवेंगे और साहित्य-निर्माण का कार्य चल निकलेगा।

इस निर्माण-कार्य में नियंत्रण की बहुत आवश्यकता है। जिस विषय में देखें कि पुस्तकें अधिक हो गई हैं, वहीं प्रकाशकों और लेखकों को चेतावनी दे दें और जिस क्षेत्र को सूना देखें वहाँ अपने प्रचार-कार्य को केन्द्रित करें। यह नियंत्रण साहित्य के लिए तो लाभदायक होगा ही, इससे प्रकाशक और लेखक भी लाभान्वित होंगे।

योजना के विषय में जो विचार यहाँ प्रकट किये गये हैं वे बहुत कुछ संकेतात्मक ही हैं, वे केवल साहित्यिक नेताओं का ध्यान आकृष्ट करने के लिए हैं।

सोवियट-जर्मन-पैक्ट और वर्तमान योरप

लेखक, श्रीयुत दिल्लीरमण रेग्मी, एम० ए०

सोवियट-जर्मन-पैक्ट हुए दो महीने से भी ज़्यादा हो गये, और इस पैक्ट का योरप की वर्तमान स्थिति पर ऐसा गहरा प्रभाव पड़ा है कि उसमें काफ़ी अधिक उलझन आ गई है। अतएव योरप की वर्तमान परिस्थिति का अध्ययन करने के लिए सोवियट-जर्मन-पैक्ट का अध्ययन करना ज़रूरी है।

सितम्बर के आख़िरी सप्ताह में जब योरप में जंग छिड़नेवाला ही था, लोगों को यह सुनकर आश्चर्य हो गया कि सोवियट रूस और नात्सी जर्मनी में मेल हो गया है। योरप की राजनैतिक कूटनीति का यह अनुपम उदाहरण है। यह पैक्ट ऐसे दो राष्ट्रों के बीच हुआ है जो पिछले पाँच साल से एक दूसरे के विरुद्ध घृणा का घोर प्रचार कर रहे थे। जर्मनी के नात्सीवाद और रूस के समाजवाद, इन दोनों विपरीत सिद्धान्तों का मेल लोगों को आश्चर्य में डालने का है ही।

और जब यह सिद्धान्त का मेल नहीं है तब रूस और जर्मनी में इस तरह मैत्री होने का क्या कारण था? हमारी उत्सुकता और भी बढ़ती है, जब हम यह देखते हैं कि ब्रिटेन, फ्रांस और रूस में मित्रता की बात-चीत जारी रहते हुए रूस ने जर्मनी के साथ संधि कर ली। कुछ हद तक तो हिटलर की शीघ्रता ने भी इस पैक्ट को जन्म दिया है। पर यह मुख्य कारण नहीं हो सकता। न यही बात ठीक है कि हिटलर साम्यवाद की ओर झुक गया है, यद्यपि कई लोगों का यही कहना है कि अब नात्सी जर्मनी साम्यवाद ग्रहण करेगा, क्योंकि हर हिटलर रूस के प्रति बड़ी श्रद्धा दिखा रहे हैं। पर जिस तरह हिटलर रूस की तारीफ़ करता है, उसी तरह रूस भी जर्मनी की प्रशंसा कर रहा है। अतएव यदि इसके आधार पर यह कहा जाता है कि नात्सीवाद समाजवाद का रूप धारण करेगा तो उसी के आधार पर यह भी कहा जा सकता है कि रूस का समाजवाद नात्सीवाद का रूप ग्रहण करेगा। पर बात यह नहीं है। रूस-जर्मनी-पैक्ट के होने के दूसरे ही कारण हैं।

[ब्रिटेन के प्रधान मंत्री श्री नेवायल चेम्बरलेन।]

रूस और जर्मनी के बीच १९३२ के बाद से जो वाक्-युद्ध चल रहा था, १९३९ के शुरू से उसमें शिथिलता आ गई थी। दोनों ही राष्ट्र बातचीत छेड़ने का सुअवसर खोज रहे थे। गत जून में एक अफ़वाह भी उड़ी थी कि उन दोनों राष्ट्रों में एक गुप्त संधि हो गई है। अन्तर्राष्ट्रीय साम्यवाद के विरुद्ध जो आन्दोलन खड़ा किया गया था वह भी शान्त हो चुका था। जर्मनी में कितने ही वक्ता यह कहने लग गये कि रूस के उक्रेन पर उनका दावा अब नहीं रहा। इधर रूस में भी लोग 'एण्टी कमिण्टर्न पैक्ट' (रूस-विरोधी पैक्ट) को दूसरे रूप में देखने लग गये। गत मार्च में स्टेलिन ने स्वयं अपने एक भाषण में कहा था कि 'एण्टी कमिण्टर्न पैक्ट'

सोवियट के विरुद्ध नहीं है, बल्कि साम्राज्यवादी राष्ट्रों के विरुद्ध है। रूस और जर्मनी यह सोचने लगे कि इन दोनों राष्ट्रों को उभाड़कर लड़ा देने का षड्यन्त्र किया जा रहा है। सन् १९३८ तक रूस और जर्मन एक-दूसरे के कट्टर दुश्मन थे। हिटलर ने कई बार रूस के खिलाफ़ लड़ने की धमकी तक दी थी। अपनी 'माइन काम्फ' नामक पुस्तक में उसने उक्रेन पर अधिकार करने का उल्लेख किया है। गत चेकोस्लोवेकिया की घटना के सम्बन्ध में भी जर्मन-पत्रकार रूस को फटकार सुना रहे थे। इधर लिटवीनाव के समय तक रूस की ओर से भी कई कोशिशें जर्मनी को परास्त करने के लिए की गई थीं। ऐसा होते हुए भी दोनों राष्ट्र अपने वाग्युद्ध को तोप और बारूद के संग्राम में परिणत करना नहीं चाहते थे। जर्मनी ने जापान और इटली के साथ रूस के विरुद्ध ऐंटी कमिण्टर्न पैक्ट किया था, तो भी रूस के साथ १९२६ में उसकी जो संधि हुई थी उसे नहीं तोड़ा। १९२६ का सुलहनामा जारी रहा और उसकी अवधि समाप्त होते ही दोनों राष्ट्रों ने वार्तालाप आरम्भ कर दी। इस सबका मूल कारण यही था कि जर्मनी और रूस परस्पर वैर-भाव रखते हुए भी एक-दूसरे से

[जर्मन के तानाशाह हर हिटलर।]

[रूस के डिक्टेटर श्रीयुत स्टेलिन।]

इतने भयभीत थे कि वे संग्राम नहीं करना चाहते थे। जर्मनी ने पोलैंड से मित्रता की संधि की थी, पर वह एक-दूसरे को युद्ध में सहायता करने की संधि नहीं थी। हिटलर के लिए रूस के साथ तलवार मापने का अच्छा अवसर आता, यदि पोलैंड से ऐसी संधि होती, क्योंकि पोलैंड को किसी भी शक्ति की सहायता मिलने पर रूस के साथ युद्ध होना अनिवार्य था। आश्चर्य है कि पोलैंड भी ऐसा ही ख़याल कर रहा था। वहाँ के शासक यह समझ रहे थे कि हिटलर ने अब डेंज़िंग पर अपना अधिकार छोड़ दिया है। इस भ्रम के कारण पोल-नेता हिटलर के साथ साथ चेकों के इलाक़े भी हड़पने लगे। रूस के साथ पोलों ने हमेशा दुर्व्यवहार किया। वे सोचते थे कि रूस उनसे १९१९-२० की पराजय का बदला ज़रूर लेगा और इस संकट का सामना करने के लिए उन्होंने हिटलर से मित्रता की थी। फ्रांस से भी पोल लोग क्रमशः अलग हो रहे थे। परन्तु जर्मनी का इरादा तो बिलकुल उल्टा था। हिटलर ने समझ लिया था कि पोलैंड से युद्ध में सहायता करने की संधि करने का मतलब यही हो जाता कि वह रूस का सामना करे। यही कारण था कि हिटलर ने उक्रेन के दावे को स्थगित कर दिया। यही नहीं, उसने अपना उद्देश्य ही बदल दिया। उसे डेन्यूब से हटाकर अपनी दृष्टि बाल्टिक की ओर फेरनी पड़ी। पोलैंड इसी मनोवृत्ति का शिकार हुआ। जर्मनी

रूस से कदापि अकेले न लड़ता। पोलैंड के जनरल बेक ने युद्ध के कुछ दिन पहले बतलाया था कि जर्मनी को अब बाल्टिक सागर का प्रभुत्व लेना है, 'ब्लेक-सी' का नहीं तब ऐसा करने के लिए उसे पोलैंड को एक छोटे राज्य के रूप में बदल देना पड़ेगा। यद्यपि जर्मनी की यह आकांक्षा पूरी न हो पाई, क्योंकि रूस ने उसको बाल्टिक सागर से हटा दिया है, फिर भी यह सच है कि हिटलर ने कुछ महीनों से पूर्व की ओर बढ़ने का अपना विचार छोड़ दिया था और बाल्टिक सागर की ओर अग्रसर हो रहा था और रूस से युद्ध करने की उसकी बिलकुल इच्छा न थी।

वास्तव में जर्मनी और रूस की मैत्री परस्पर की इच्छा का परिणाम है; वह इच्छा यह है कि दोनों युद्ध नहीं चाहते थे। फिर भी दोनों राष्ट्रों के अलग-अलग स्वार्थ हैं और हर एक का स्वार्थ दूसरे के स्वार्थ से प्रभावित है। हिटलर के स्वार्थ के बारे में हम कह चुके हैं कि वर्तमान रूस को देखकर वह पूर्व की ओर अपने राज्य के विस्तार की आशा को छोड़ चुका था। अब उसके लिए दो रास्ते रह गये थे। एक यह कि वह सारी जर्मन-जाति का संगठन करे और दूसरा यह कि जहाँ वे हैं उन मुल्कों पर अधिकार जमावे। इसके लिए उसे यह आवश्यक था कि वह अपने प्राप्य स्थानों का, जैसे आस्ट्रिया, चेकोस्लोवेकिया, मेमेल आदि, अच्छी तरह नियन्त्रण करे और जर्मनी के व्यापार के लिए बाल्टिक की बागडोर अपने हाथ में रक्खे। बाल्टिक सागर का प्रश्न सारे उत्तरी योरप का प्रश्न है और साथ-साथ उत्तर-सागर का भी, जो ब्रिटेन का अपना सागर समझा जाता है। उत्तरी योरप के साथ ग्रेट ब्रिटेन का घनिष्ठ व्यापारिक सम्बन्ध है, यहाँ तक कि उस अञ्चल के देशों को आर्थिक शब्दों में 'स्टर्लिंग-ब्लाक, कहते हैं'। हिटलर को मालूम था कि पोलैंड को जो गारंटी मिली है, वह इसलिए है कि ब्रिटेन को मालूम हो गया है कि हिटलर की आँख बाल्टिक तटवर्ती प्रदेशों पर है। हिटलर की डेंज़िग-सम्बन्धी चाल से ब्रिटेन अच्छी तरह समझ गया था कि वह बाल्टिक सागर पर क़ब्ज़ा करने की कोशिश में है। और डेञ्जिग के प्रश्न पर ही समर अवश्यंभावी था। इसके लिए हिटलर का कौन साथ देता? इटली और जापान दूर थे। फ़्रांस जर्मनी से बहुत ही भयभीत था। बाक़ी रह गया रूस। यदि रूस के साथ ब्रिटेन की संधि हो जाती तो हिटलर को दूसरा ही रास्ता ढूँढ़ना पड़ता। ब्रिटेन ने रूस के साथ संधि करने में जो विलम्ब किया उससे हिटलर ने फ़ायदा उठाना चाहा और उसने २८ सितम्बर को रूस के साथ संधि कर ली। हिटलर अद्वितीय कूटनीतिज्ञ है! उसने कितने ही सुलहनामे किये और कितने ही फाड़ दिये। जब उसे फ़्रांस के विरुद्ध सार और राइन के किनारे के बारे में कार्य करना पड़ा, उसने ब्रिटेन से नौसेना-सम्बन्धी संधि करके ब्रिटेन को उस झगड़े से अलग कर दिया। एबीसीनिया के संग्राम के पहले हिटलर और मुसोलिनी की कभी नहीं पटी। मुसोलिनी को हिटलर से बड़ी घृणा थी और आस्ट्रिया का अस्तित्व उसी के कारण बना रहा। कितनी ही बार अल्टीमेटम के देने तक की संभावना हो गई थी। पर एबीसीनिया के बारे में हिटलर ने मुसोलिनी के साथ जो सहानुभूति प्रदर्शित की उससे मुसोलिनी भी उसकी ओर हो गया। इसके दूसरे ही साल आस्ट्रिया को जर्मनी का एक प्रदेश बन जाना पड़ा। इसी तरह पोलैंड को ज़ेकोस्लोवेकिया के टेस्कर्न और औडरबर्ग नाम के दो इलाक़े सौंपकर सन्तुष्ट कर दिया था। उस समय कौन जानता था कि पोलैंड भी शीघ्र ही मिट जायगा। पोलैंड को विनष्ट करने के लिए हिटलर को रूस की सहानुभूति आवश्यक थी। हिटलर का ख़याल था कि बाल्टिक के मामले में रूस चुप रहेगा, यद्यपि आज यह ग़लत निकला है।

आश्चर्य की बात तो यह है कि जब हिटलर के वचन और आश्वासन काग़ज़ के ऊपर ही सीमित रहते हैं तब हिटलर के साथ रूस ने सन्धि-पत्र पर क्यों हस्ताक्षर कर दिया? किन्तु यह होना ही था, क्योंकि गत ८ वर्ष से केलग-पैक्ट (१९२८) से लेकर ज़ेकोस्लोवाकिया के विनाश तक (१९३८) जिस तरह फ़ैसिज़्म का विरोध रूस ने किया था उसमें उसको सफलता न मिली। फ़्रांस के साथ उसकी सन्धि हुई। ज़ेकों के सम्बन्ध में फ़्रांस के साथ मैदान में उतरने का उसने वचन दिया। पर अवसर आने पर उसकी पूछ ही नहीं हुई। फलतः ब्रिटेन को अब शक्ति-तुलनवाली अपनी नीति के क़ायम रखने में बड़ी कठिनाई हो रही है। योरप में किसी शक्ति को सबसे बलिष्ठ न होने देना ही इस नीति का

ध्येय रहा है। १९२० में अमरीका को राष्ट्र-संघ छोड़ देना पड़ा। इस नीति की रक्षा के लिए १९२४ में राष्ट्रसंघ के शासन-विधान के १० वीं दफ़ा के आशय को बिलकुल दूसरा रूप दे दिया गया, जिससे राष्ट्रसंघ कमज़ोर हो गया—यहाँ तक कि आज वह अपना स्थान ही खो चुका है। हिटलर का उत्थान और फ़्रांस के प्रभुत्व का अन्त इसी नीति के खेल हैं। ब्रिटेन की इस पुरानी नीति से जर्मनी का लाभ हो रहा था। यहाँ तक कि जर्मनी पहले की तरह शक्तिशाली हो गया और स्वतन्त्र राष्ट्रों का अस्तित्व मिटाने को सन्नद्ध हो गया। ब्रिटेन को लड़ाई करने में श्रेय नहीं था। अतएव चेम्बरलेन साहब ने शान्ति बनाये रखने के लिए बहुत कुछ कोशिश की। पर जब जर्मनी बाल्टिक की ओर बढ़ने को तैयार हो गया तब ब्रिटेन से नहीं देखा गया। फलतः उसने रूस को अपने शान्तिदल में शामिल होने को आमन्त्रित किया और सो भी यह समझकर कि जर्मनी के साथ लड़ने के लिए रूस पर्याप्त मज़बूत है। पर रूस को आशंका थी कि ब्रिटेन रूस और जर्मनी को लड़ाकर स्वयं अलग रहेगा। इसी आशंका से रूस ने यह प्रस्ताव किया कि बाल्टिक के और बल्कान के सारे राष्ट्र शान्तिदल में शामिल किये जायँ। ब्रिटेन ने उसके प्रस्ताव को स्वीकार करने में टाल-टूल की, जिससे रूस की शंका और भी बढ़ गई। रूस भी लड़ाई नहीं चाहता है, क्योंकि अपने देश की क्रान्ति की सुरक्षा के लिए वर्तमान समय में उसको किसी लड़ाई का सामना करना ख़तरनाक है। ब्रिटेन और फ़्रांस के साथ सन्धि करके रूस को अवश्यमेव लड़ाई में कूदना पड़ता। पोलैंड के सवाल पर रूस को जर्मनी से अवश्य ही लड़ना पड़ता। इधर कई महीने से रूस में एक नई विचार-धारा जड़ पकड़ रही थी। रूसवालों को योरप के वातावरण में सन्देह-ही-सन्देह नज़र आ रहा था।

अस्तु, ब्रिटेन के साथ रूस की सन्धि न हो सकी। इसी बीच में मौक़ा देखकर हिटलर ने उससे सन्धि का प्रस्ताव किया। रूस ने भी योरप की नाज़ुक परिस्थिति से फ़ायदा उठाना चाहा। उसने देखा कि जब दो पूँजीवादी राष्ट्रों में जंग होने जा रहा है तब उससे क्यों न लाभ उठाया जाय, साथ यह भी कि

[रूस के वैदेशिक मंत्री श्री मोलटोव जो-जर्मन-रूस-पैक्ट कराने में सफल हुए हैं।]

साम्यवाद का प्रचार लड़ाई के बाद खूब अच्छी तरह हो सकता है, विशेषतः जो देश हार जाता है, उसमें तो साम्यवाद अनायास ही प्रवेश कर जाता है। हिटलर ने यह नहीं समझा। रूस ने जर्मनी से झट अनाक्रमण सन्धि कर ली। युद्ध होने पर दुश्मन राष्ट्रों के प्रति सहानुभूति न दिखाने का वचन दे दिया, पर सामरिक-सन्धि की तरह एक-दूसरे के हितार्थ मैदान में उतरने की प्रतिज्ञा दोनों ने नहीं की। हिटलर ने चाहे जो आशा रक्खी हो, पर रूस उसके पक्ष में कदापि मैदान में नहीं उतरेगा। हाँ, कमज़ोर परिस्थिति को अपने अनुकूल करके साम्यवाद का प्रचार अवश्य करेगा।

गत दो महीने के अन्दर योरप में जो घटनायें घटित हुई हैं उनसे यह स्पष्ट मालूम होता है कि सोवियट रूस की नीति तटस्थ रहकर कमज़ोर परिस्थिति से फ़ायदा उठाने की ही है। जब पोलैंड हार गया और उसकी सेना छिन्न-भिन्न हो गई तब यह भय हुआ कि सारा पोलैंड जर्मनी के हाथ पड़ जायगा। रूस ने लाल सेना भेजकर उसके कितने ही इलाक़ों पर क़ब्ज़ा कर लिया। रूस को जर्मनी से भय है। हिटलर को अतिशय शक्तिशाली न होने देने में ही उसका कुशल है। रूस ने बाल्टिक सागर-तटवर्ती मुल्कों से जो सुलहनामे किये हैं उनसे भी रूस के इसी

मनोभाव का संकेत मिलता है। बाल्टिक सागर का महत्त्व ऐसा-वैसा नहीं। वह पश्चिमी रूस का तो एकमात्र द्वार है। इसलिए बाल्टिक के तटवर्त्ती राज्यों के साथ सन्धि कर लेने से बाल्टिक पर दूसरे राज्य का प्रभाव नहीं रह सकेगा। अतएव रूस ने वैसा ही किया भी। बाल्टिक सागर और कृष्ण सागर ही रूस के योरप के लिए द्वार हैं। दोनों के बन्द हो जाने पर रूस की नौ-शक्ति का नाम-निशान नहीं रह जाता है। ये द्वार जिस राज्य के क़ब्ज़े में रहते हैं वह राज्य योरप का भाग्य-विधाता बन सकता है। हिटलर इसी बात को ध्यान में रखकर बाल्कन और बाल्टिक की ओर बढ़ने का प्रयत्न कर रहा था। परन्तु पोलैंड-युद्ध के कारण हिटलर की नीति विफल हो गई। हिटलर को स्वप्न में भी यह ख़याल न था कि इधर बाल्टिक में भी उसका दूसरा प्रतिस्पर्धी निकल आवेगा और वह भी ख़ासकर उस समय जब उसे दो विशाल शक्तियों से मुठभेड़ करनी पड़ रही हो। बाल्टिक सागर के साथ-साथ हिटलर उत्तर-सागर पर क़ब्ज़ा करने का प्रयत्न करता। उत्तरीय देशों के साथ उसका व्यापार जारी रहने पर ब्रिटेन के ब्लाकेड का कोई अर्थ न रहता। पर उसकी यह आशा निराधार थी। रूस ने बाल्टिक सागर के कितने ही टापुओं की क़िलेबन्दी करके यह दिखा दिया है कि बाल्टिक के बारे में रूस चुप नहीं रह सकता। रूस-जर्मन-पैक्ट ने रूस को यह सहूलियत दे दी है कि वह अब बिना किसी की रोक-टोक के अपना स्थान मज़बूत कर सकता है और वह तदनुसार करता भी जा रहा है। उधर वह बाल्कन के राज्यों को भी अपनी ओर करने का प्रयत्न कर रहा है। वास्तव में रूस को तो अपनी खोई हुई प्रतिष्ठा और इज़्ज़त को प्राप्त करना है। संयोगवश आज रूस बहुत अधिक मज़बूत हो गया है।

जर्मनी-रूस-पैक्ट का योरप की कूट-नीति पर गहरा असर पड़ा है। जो लोग सैद्धान्तिक मतभेद को राष्ट्रों के बीच की खाई समझ रहे थे, अब उन्हें अपना मत बदलना पड़ा है। अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति कूटनीति का क्षेत्र है। इसमें जितना ही कपटनीति से काम लिया जाय, उतना ही लाभ होता है। सिद्धान्त की नीति होने पर लड़ाई हो नहीं सकती; क्योंकि तब राष्ट्र अपने अपने स्वार्थ के ख़याल से अपनी नीति की व्यवस्था नहीं कर सकते। हिटलर और मुसोलिनी ने 'एण्टी कमिण्टर्न पैक्ट' करके लोगों के दिमाग़ में जो ग़लत ख़याल बैठा दिये थे, रूस-जर्मनी-पैक्ट ने उन्हें साफ़ कर दिया है।

बहुत-से लोगों का मत है कि रूस-जर्मनी-पैक्ट ने ब्रिटेन के प्रतिकूल परिस्थिति उत्पन्न कर दी है। जहाँ तक शक्ति-संतुलन की नीति का सम्बन्ध है, उस पर बेशक गहरा असर पड़ा है; क्योंकि वर्त्तमान युद्ध का यही नतीजा होगा कि रूस का सितारा चमकेगा। अभी ही रूस का विस्तार बाल्टिक तक हो गया है। हिटलर रूस का विश्वास पाने के लिए आज अपना बहुत कुछ खो देने तक के लिए तैयार है। उसी तरह मित्रराष्ट्र भी रूस को चिढ़ाना नहीं चाहते। यही नहीं, इँगलैंड के लायडजार्ज प्रभृति तो रूस के साथ सम्बन्ध स्थापित करने के लिए अपनी सरकार से अनुरोध तक कर रहे हैं। जहाँ तक रूस की स्थिति का सम्बन्ध है, ब्रिटेन के प्रतिकूल समस्या उपस्थित हो गई है। पर जहाँ तक युद्ध का सवाल है, ब्रिटेन के अनुकूल ही परिस्थिति हो गई है। रूस-जर्मनी-पैक्ट न रहने से भी पोलैंड की समस्या पर युद्ध छिड़ जाने की सम्भावना थी ही। पर तब जर्मनी को इटली और स्पेन से अवश्य सहायता मिलती, जो आज बोल्शेविकों का प्रभाव बढ़ जाने के भय से जर्मनी का साथ नहीं देना चाहते हैं। रूस-जर्मनी-पैक्ट के होते ही जापान भी जर्मनी का नहीं रहा। नहीं तो प्रशान्त महासागर में ब्रिटेन का जापान के साथ संघर्ष छिड़ता। आज भूमध्यसागर और प्रशान्तमहासागर ब्रिटेन के लिए निरापद हैं। अब हिटलर अकेला रह गया है। ब्रिटेन और फ्रांस को इससे ज़्यादा और अनुकूलता क्या होती? रूस के हज़ार बार धमकी देने पर भी हिटलर और स्टैलिन एक साथ मैदान में नहीं उतर सकते। इस दृष्टि से देखा जाय तो ब्रिटेन के लिए रूस-जर्मनी-पैक्ट का होना एक तरह अच्छा हुआ है। पर ब्रिटेन के लिए केवल जर्मनी का ही तो सवाल नहीं है।

ब्रिटेन का मज़दूर-दल रूस की बड़ी निन्दा कर रहा हैं, इसलिए कि उसने अपने सिद्धान्त के ख़िलाफ़ एक ऐसे राष्ट्र के साथ मेल कर लिया है जो साम्यवाद का ही नहीं, किसी तरह की समाजवादी व्यवस्था का कट्टर

दुश्मन है। पर यह क्या रूस ही ने किया है? क्या दूसरे राष्ट्र नहीं करते? जर्मनी के साथ संधि करने में तो ब्रिटेन बहुत आगे बढ़ गया था। १९३५ में ब्रिटेन ने जर्मनी से जो पैक्ट कर लिया था उससे जर्मनी को वर्सले की संधि के विरुद्ध फ़ांस के बराबर जहाज़ बनाने का अधिकार मिल गया था। उक्त पैक्ट यह समझ करके किया गया था कि हिटलर ब्रिटिश साम्राज्यवाद का दोस्त बना रहेगा। ज़ेचोस्लोवेकिया के सुडेटन इलाक़े भी इसी लिए उसके सुपुर्द कर दिये गये थे और उसके बाद ही परस्पर कभी न लड़ने की प्रतिज्ञा भी हुई थी। पर इस सबका परिणाम उलटा ही हुआ। हिटलर ने ज़ेकोस्लोवेकिया को ले लिया और पोलैंड को पददलित कर डाला। ब्रिटेन के आगे जीवन-मरण का प्रश्न उठ खड़ा हुआ। इसलिए उसे किसी भी परिस्थिति का सामना करने को कटिबद्ध होना पड़ा। ऐसी दशा में रूस को ब्रिटेन के साथ सन्धि करके नुक़सान सहना पड़ता, पर जर्मनी से सन्धि करके वह लाभ उठा रहा है। परन्तु क्या रूस जर्मनी का यह पैक्ट स्थायी होगा? कोई यह कह नहीं सकता है कि यह पैक्ट स्थायी है। किसी भी पैक्ट के दीर्घायु प्राप्त करने के लिए यह आवश्यक है कि पैक्ट करनेवाले राष्ट्रों के बीच के संघर्ष के कारणों का आमूल विच्छेदन हो। पैक्ट रहते हुए भी अगर परिस्थिति एक राष्ट्र के विरुद्ध हो गई तो उसका तोड़ा जाना सम्भव है। रूस के साथ मैत्री करके हिटलर ने उक्रेन का दावा छोड़ दिया है; साथ ही पूर्व की ओर बढ़ने का अपना इरादा भी। फिर भी वर्तमान नीति को देखकर यह कोई नहीं कह सकता है कि हिटलर चुप रहेगा। जर्मनी को उत्तरोत्तर व्यापार की वृद्धि के लिए बाल्कन या बाल्टिक में कुछ अधिकार रखना ज़रूरी है। आज के समर का भी मूल कारण यही है। भविष्य के युद्ध का भी कारण यही हो सकता है। योरप में शान्ति की स्थापना के लिए वर्तमान व्यवस्था बिलकुल अपर्याप्त है। दोनों अधिनायक आपस में सिद्धान्त के आधार पर भले ही खूब मेल रक्खें, पर जब दोनों व्यापार की सहूलियत के लिए एक-दूसरे के प्रतिस्पर्धी हैं और पूँजीवाद के आधार पर अपने अपने प्रभाव-क्षेत्र का विस्तार चाहते हैं, तो संघर्ष हुए बिना नहीं रह सकता। इटली, जर्मनी, जापान या रूस, कोई भी राष्ट्र जब तक एक-दूसरे को सन्देह की दृष्टि से देखते हैं और एक-दूसरे को प्रतिस्पर्धी समझते हैं, संघर्ष का मूल कारण नहीं हटाया जा सकता। अतएव रूस और जर्मनी का मेल स्थायी नहीं हो सकता। फिर रूस और जर्मनी अपना अपना विस्तार चाहते हैं। जैसा कि पोलैंड में और बाल्टिक सागर में अपनी अपनी सेना भेज कर वे अपने अपने भाव प्रकट कर चुके हैं। यह सब स्पष्ट होते हुए भी यह कहना ही पड़ेगा कि रूस-जर्मनी-पैक्ट से योरप की परिस्थिति जटिल हो गई है। पोलैंड में हिटलर ने जिस स्फूर्ति से काम लिया है उससे मालूम होता है कि वह ऐसा कर सका इसलिए कि उसको रूस की आभ्यन्तरिक सहानुभूति प्राप्त थी। पर आज उसका अनुमान ग़लत हो गया है, क्योंकि जिस तरह पोलैंड के कई इलाक़े रूस ने अपने क़ब्ज़े में कर लिये और बाल्टिक में जर्मनी के प्रसार को जिस तरह रोक दिया, उससे यही मालूम होता है कि रूस जर्मनी को सन्देह की दृष्टि से देखता है, भले ही रूस के प्रधान मंत्री जर्मनी की पीठ वचनों से ठोकते रहें। हिटलर की यह आशा कि रूस जर्मनी को समय पर मदद देगा, निराधार है। संग्राम अगर रुक सकता है तो इस ख़याल से कि रूस-जर्मनी-पैक्ट से हिटलर को वस्तुतः कुछ भी फ़ायदा नहीं हुआ। इधर इटली और जापान भी जर्मनी से दूर हो गये हैं, इधर रूस से भी उसे सहायता नहीं मिलने की है। फिर भी जब प्रतिष्ठा का ख़याल आता है तब सहसा हिटलर ब्रिटेन से हार नहीं मानेगा। पर आज तो यह अवस्था है कि रूस का स्थान महत्त्वपूर्ण हो गया है। रूस के साथ झगड़ा मिटाने के लिए हिटलर ने बाल्टिक राज्यों से जर्मनों को हटा लिया है। ऐसा मालूम होता है कि हिटलर रूस का साथ नहीं छोड़ेगा। प्रजातंत्र-राज्यों से तो वह अन्त तक लड़ेगा ही और आवश्यक होगा तो अपने को साम्यवादी भी घोषित कर सकता है। यह महासमर बड़ा ही विकट होने जा रहा है। लोगों ने सच ही सोचा है कि संसार में एक नया युग आनेवाला है। भारत को भी वह नया सन्देश देगा। हिटलर हारे या जीते, नया युग तो अवश्यम्भावी है।

नीलाम्बर से नक्षत्र-वर्षण

लेखक, श्रीयुत सूर्यनारायण व्यास

जाने कितनी शताब्दियाँ बीत गईं, गगनमण्डल अपने चमत्कारों से दुनिया को आश्चर्य-चकित करता रहा है। लक्षावधि तारागण विविध रूपों में नीली चादर पर विचित्र चित्र बनाकर प्रकृति की अनुपम छटा बतलाते रहे हैं। कभी-कभी हम उन तारों को पुंजी-भूत देखते हैं, कभी उनकी रंग-बिरंगी झिलमिल की इधर-उधर दौड़-धूप, कभी लम्बी तेजोमयी नीहारिका के रूप में आकाश की सुषमा का बढ़ाना, कभी लम्बी ज्वाल-माला का धूमिल पुच्छ बढ़ाकर भयभीत करना और विवि-वैचित्र्य का दृश्य उपस्थित करना एवं टूटकर भू-मण्डल पर चमकती हुई शिखा के साथ लटकते आना देखते हैं। यह उस विश्व-नियंता का विस्मय-कारी नाटक है, जिसे समझने का युगों से लक्षाब्दियों से मानव-मस्तिष्क मान करता आया है। किन्तु वास्तविक तथ्य तक न पहुँचकर केवल विस्मय-विमुग्ध बनकर कल्पनालोक में विहार करता रहा है। पुरातन दिव्य-द्रष्टा आचार्य-प्रवरों ने 'नलिकावेधादि' सरलतम सुलभ साधनों से सहस्रशः तारागणों को पहचानकर उनसे निकट सम्बन्ध स्थापित किया है और उनमें के कुछ ज्योतिष्कारों ने ग्रह-नक्षत्रों की गतिविधि पर अधिकार-पूर्ण ज्ञान स्थिर कर उन पर क़ाबू भी पा लिया था। उनके महत्त्व को, भूमण्डलस्थ वस्तुओं तथा प्राणियों पर उनके द्वारा पड़नेवाले हानि-लाभकर विशिष्ट परिणामों की थाह भी उन्होंने पा ली थी। फिर भी गगनचारी ऐसे अनेक उडुगण हैं कि जिनका ज्ञान सैकड़ों सदियों पूर्व न तो उन्हें, न इस कहे जानेवाले 'विज्ञान-युग' में आज २०वीं सदी में भी हुआ है, न आगे ही होता दिखाई देता है। मुझको सर्वदा इस ओर जिज्ञासा रही है, समय-समय पर कई नये-नये तारों की खोज हुई है, उनके विशिष्ट प्रभावों का भी अनुभव प्राप्त किया गया है। कुछ प्रभावोत्पादक तारों को कुछ निरीक्षकों ने पहचाना है। किन्तु आज भी प्रकृति की बिखेरी हुई जीवंत-रत्न-राशि में से कौन कह सकता है कि सब या अधिकांश बहुमूल्य रत्न पूरी तरह पहचान ही लिये गये हैं! और हैं भी ऐसे कितने लोग जिनकी सूक्ष्म निरीक्षक आँखों ने आकाश के घनीभूत तारक-पुंजों में से विशेषता रखनेवाले ज्वलन्त नक्षत्रों का परिचय पा लिया हो? आकाश में तारे हैं, और भी कुछ है। यह आश्चर्य से हम लोग प्रायः देखा करते हैं, कभी उपल-वृष्टि, कभी हिम-वर्षण, कभी शिला, कभी रक्त, कभी लोहखण्ड और कभी क्या-क्या? इस तरह भू-खण्ड पर आई हुई वस्तुओं से हम अनुभव करते हैं कि अवश्य ही उस लोक में भी आश्चर्यकारक साहित्य संगृहीत हैं। प्रकृति का भी अद्भुत 'म्यूज़ियम' बना हुआ है, जिसका कोई-कोई नमूना कभी-कभी हमारे विस्मय बढ़ाने के लिए, कुतूहल के लिए भेज दिया जाता है। यह बहुत कम लोग जानते होंगे कि जिस तरह जल, हिम, शिला, रक्त, लोह आदि की वृष्टि होती है, उसी तरह निरन्तर तारों की भी वृष्टि होती है। एक-दो या पाँच-सात तारों को कभी-कभी हम टूटते, गिरते देखा करते हैं। परन्तु सामूहिक रूप से जल-वर्षण की तरह 'तारक-वृष्टि' भी होती है, यह ज़रा नवीन-सी बात मालूम होगी। किन्तु यह नवीन बात नहीं है, सृष्टि के उद्भवकाल से ही खगोल मानव-जाति को चकित किये हुए है। हाँ, कभी कभी वह हमें सर्वथा दिङ्मूढ़ बनाकर अवश्य छोड़ देता है। आकाश में चंचलता से चमकनेवाली सौदामिनी, मेघमण्डल का घन-गम्भीर गर्जन, तारों के घर्षण से झरनेवाले अंगारे, पत्थर और विचित्र रत्नों जैसी दीप्तिमान वस्तुओं का वर्षण आश्चर्य-सागर में हमें डुबो देता है। कुछ लोग इनको केवल वैज्ञानिक विवेचन के दृष्टिकोण से देखते हैं और कुछ लोग इनमें 'भावी' सूचना का सन्देश ढूँढ़ते हैं, पर सर्वसाधारण लोग तो प्रायः इनमें प्रकृति का प्रकोप ही मानते हैं। बहुत बार देखा गया है कि आकाश से बरसे हुए पत्थरों या लोह-खण्डों को लोगों ने पूजन-गृह में स्थान दिया है। भारत में ही नहीं, योरप और लघु एशिया माईनर के सु-संस्कृत लोग भी ऐसे साहित्य को मन्दिरों में पूज्यभाव से रखते हैं, और वैज्ञानिक लोग तो अभी अन्वेषण में लगे ही हुए हैं, कि इनमें कौन-सा तत्त्व, और कौन-सा रहस्य निहित है।

जिन्होंने लन्दन के 'नेचरल हिस्ट्री-म्यूज़ियम' के दर्शन किये हैं, वे प्रकृति की इन विचित्र रचनाओं को देखकर विस्मित हुए बिना नहीं रहे होंगे। सन् १९३७ के आक्टोबर में जब मैं लन्दन पहुँचा तब गगन-मण्डल के इस रत्न-समूह को देखने के लिए बहुत उत्सुक था। लगातार दो रोज़ ६-६ घंटे तक मैंने प्रकृति के इस सुन्दर म्यूज़ियम के विविध रूपों का निरीक्षण किया। आकाशीय साहित्य में सैकड़ों, सहस्रों तारों के ढेर, लौह, शिलायें और जन्तु तथा अनेक विचित्र प्रकार की वस्तुओं को देखा। छोटे-से-छोटे तथा बड़े-से-बड़े तारों को देखा। उनमें कोई-कोई टूट गये हैं, कोई पिचक गये हैं, किसी में अजीब चमक है, तो कोई ज़मीन पर आकर अनार की तरह फूट गया है और अन्दर से हीरे से भी अधिक कान्तिमान् तीखे, शुभ्रतम गाढ़े काँच का-सा साहित्य प्रकाशित होता है। हाथ से छूने पर उनकी तीक्ष्णता इतनी मालूम होती है कि भूल से हाथ पड़ जाये तो वह तुरन्त रक्त-रंजित कर दे। कुछ ऐसे सजीव कछुए जैसे पदार्थ-से तारक-पिण्ड वहाँ दिखाई दिये जो क्रमशः सिकुड़ते जा रहे हैं, अन्दर-ही-अन्दर घनत्व लोहे हैं, मानो उनमें जीवन-तत्त्व का क्रमिक ह्रास हो रहा है। किसी में लोह या रजत, हेम, तथा कांस्य-जैसी चमक है, और भारी भरकम! भारतवर्ष की वस्तुएँ भी जो यहाँ कभी आकाश से नीचे आगई हैं इस म्यूज़ियम में सुरक्षित हैं। बड़ी-बड़ी वज़नी शिलायें वहाँ रक्खी हैं जो प्रस्तर न जाने या किस वस्तु से निर्मित हैं, इसका समझना कठिन है। अनेक विचित्र, चमकीली, मैली, काली या ज्योतित, धूमिल ऐसी-ऐसी वस्तुएँ हैं कि उनके अन्दर किन-किन तत्त्वों का समावेश है, यह सब जानना साध्य नहीं है। ये वस्तुएँ उस आकाशीय म्यूज़ियम से मानो भू-मण्डलीय म्यूज़ियम को भेंट-रूप में आई हैं!

कुछ समय पूर्व गगन-मण्डलीय चमत्कृतिपूर्ण विचित्रताओं के अभ्यास के लिए एक आयोजना की गई थी। अमेरिका के नेचरल हिस्ट्री संग्रहालय के क्यूरेटर मिस्टर निनिगर ने अपने खगोल-विषयक साहित्य के अनुसन्धान पर वहाँ प्रकाश भी डाला था। यद्यपि अभी तक इसका क्रमबद्ध इतिहास नहीं है कि किस किस समय आकाश से कौन-कौन वस्तुएँ, कहाँ कहाँ गिरी हैं और ऐसा कब-कब हो सकता है, इसके लिए कोई नियमित समय भी है या इनका यदा-कदा ही आवागमन होता रहता है, इत्यादि। म्यूज़ियम के साहित्य और नोटों के आधार पर ऐसा विदित होता है कि—सन् १८३३ के नवम्बर मास की १३ या १४ तारीखों की रात्रि में अधिकांश भू-भाग पर आकाश से प्रस्तर-वर्षण हुआ। प्रकाशमान् तारिकाओं के झुण्ड-के-झुण्ड ज़मीन पर गिरते हुए दिखाई दिये। उनमें से कई तारे इतने ज्योतिर्मय थे कि शुक्र ग्रह की तरह मालूम होते थे।

इसके बाद ठीक १८६६ ईसवी के नवम्बर में ही ठीक ३० वर्ष के अनन्तर असाधारण भय-जनक तूफ़ान आकाश में उठ खड़ा हुआ था और तारक-वर्षण हुआ था। फिर तो लगातार प्रति ३०वें वर्ष में यही क्रम देखा गया। सम्भव है, इसके पूर्व भी यह क्रम रहा हो, पर इतिहासज्ञों की उदासी से कोई पता नहीं चलाया गया। परन्तु यह सम्भव है कि जिस गणना के हर ३० वें वर्ष का क्रम प्रकट किया है वह इसके पूर्व भी यथावत् रही हो। सन् १८९९ अथवा १९०० में फिर एक ऐसा ही उल्कापात हुआ था। खगोलज्ञ इससे निराश हो गये थे कि पत्थर बरसे होंगे, पर यह तारक-वृष्टि ही थी। बाद में सन् १९३२-३३ में भी आशा थी, पर यह प्रकृति-गणना-क्रम कुछ पलट गया मालूम हुआ। आकाशीय गति-विधि की दृष्टि से सन् १९३४ में भी एक बार सम्भावना की जाती थी। वह भी व्यर्थ हुई।

जिस उल्कापात की अपेक्षा की जाती थी वह नहीं हुआ। जो पत्थरों का समूह आकाश में जमा हो जाता है वह उल्का के साथ अशनिपात के रूप में बरस जाता है। गुरुत्वाकर्षण के कारण ये ज़मीन पर आ जाती हैं, वायु-वेग से उष्णता पाकर उसका जमाव फट पड़ता है। तूफ़ान के कारण भी प्रायः यही होता है। ग्रह-मण्डल के प्रबल आकर्षण से खिंचनेवाले तारे भी अपनी पंक्ति से विलग हो जा पड़ते हैं। ये तारे प्रायः नवम्बर के मध्य से दिसम्बर के प्रथम सप्ताह तक ही अधिकतर गिरते रहे हैं। टूट कर गिरता हुआ तारा या धूम-केतु (पुच्छल-तारा) जब दिखाई पड़ता है, तब लोगों में अनिष्ट की आशंका हो जाती है। सप्तम एडवर्ड के अवसान के समय विशालाकृति धूम-केतु उदित हुआ था। आरम्भ में वह उत्तर रात्रि

में ज्वलंत मानव-शिशु की आकृति का मस्तकहीन दिखाई देता रहा। बाद को पूर्व-रात्रि में प्रतिदिन एक अर्से तक धूमिल पुच्छ के साथ उदित हुआ। वह सम्भवतः १०० मील की लम्बी पूँछ लिये गगन-मण्डल को घेरे रहा है। इसमें लौह-तत्त्व का भाग ज़्यादा रहा है, अतएव यह भयानक माना जाता था। यह इसी प्रकार का लौह-तत्त्व ज्वालामुखी पर्वतों के अन्तराल में ख़ूब जमा रहता है। ओहियो और अटलांटिक सागर से दूर प्रदेश में भी यह लौहतत्त्व काफ़ी मात्रा में जमा है, इससे मालूम होता है कि कभी सारी पृथ्वी को इन बहु-व्याप्त तत्त्वों ने कम्पित कर डाला होगा।

सन् १९३२ में आकल होमा युनिवर्सिटी के प्रोफ़ेसर एम० ए० मेलटन ने और विलियम स्क्रीपर ने इस प्रदेश में विमान-द्वारा भ्रमण किया था, फोटो भी खींचे थे। इसके बाद फिर ये लोग इस प्रदेश में गये। सूक्ष्म निरीक्षण करने पर इस परिणाम पर पहुँचे कि ज्वालामुखी पर्वतीय निम्नभाग में 'लौह' का विपुल समूह विस्तृत है, और यह वही लौह है जो आकाश से प्रस्तर या उल्का के रूप में बरसा था। छोटे-छोटे पत्थर पृथ्वी के स्तर में जमा होते गये। निरन्तर वर्षा होती गई, और इनका विस्तृत रूप बन गया। इसी प्रकार का प्रस्तर-समूह अरजेन्टाईन, मध्य-आस्ट्रेलिया, तथा बाल्टिक के द्वीपों में भी प्राप्त होता है। इनमें १२ तारे तो इसी साल के गिरे हुए प्राप्त हुए हैं। एक तारा ओरसा, दूसरा वेन्सलो के निकट आरीजोनों में पड़ा मिला था। तीसरा उत्तर-मध्य साइबेरिया में टूटा था, जो सन् १९०८ में गिरा था। इनकी वृष्टि का स्थान सात सौ मील की परिधि में ही था।

इसकी कल्पना की जा सकती है कि ज्वालामुखी के नीचे कितने बड़े बड़े पुच्छल तारे टूट कर गिरे होंगे? पृथ्वी के सम-भू-भाग पर पौन हिस्सा सागर है। कौन जानता है कि इस विभाग में कितने तारे ऐसे टूटकर अन्तराल में छिपे पड़े हैं? प्रोफ़ेसर निनिगर ने अपने संग्रहालय में ऐसे लगभग १० हज़ार तारों को खोजकर संग्रह कर रक्खा है। ये किन-किन तत्त्वों के मिश्रण से निर्मित हैं, यह अनुसन्धान का विषय है। किन्तु लन्दन-म्यूज़ियम में रक्खे हुए तारे बड़े वज़नी हैं। छोटे-छोटे छिद्र भी इनमें हैं, जैसे ज्वालामुखी से निर्गत द्रव पदार्थ सूख कर बन जाता है। ताज़े पड़े हुए तारे थोड़े भूरे रंग को लिये हुए हैं, और थोड़ी सफ़ेदी भी लक्षित होती है। कुछ सिमेंट के रंग के कालापन लिये हुए हैं। कुछ बाहर-भीतर से काले हैं। इन्हीं कालों का हाल यह है कि कुछ समय बाद जैसे जीवन-तत्त्व कम होकर ये भूरे बनते जा रहे हैं, उनके किनारे पिचकते जाते हैं, पर ये द्रव पदार्थ विसर्जन करते दिखाई नहीं देते, शुष्कता होती जाती है। अमेरिका के कुछ विभाग में तो ४-४ मील के अन्दर अनेक ऐसे तारे पृथ्वी पर प्राप्त हो जाते हैं, जिनको पाना विशेषश्रम-साध्य नहीं है।

सोमा

लेखक, श्रीयुत धर्मवीर एम० ए०

"अरे बाबू साहब!" "अरे बाबू साहब!"

पक्के तालाब के किनारे दो दोस्तों के साथ जा रहा था कि वृक्षों में से यह आवाज़ कान में पड़ी। मैंने समझा, दोनों मित्रों में से किसी को कोई बुला रहा है। मुझे यहाँ जानता ही कौन है, इसलिए मैंने कुछ ख़याल ही न किया। परन्तु एक मित्र ने उस तरफ़ ध्यान दिलाया तब मैं रुक गया। उन्होंने समझा कि कोई माँगनेवाली है, इसलिए वे आगे निकल गये। मैं वहीं खड़ा हो गया। तीस-बत्तीस बरस की एक स्त्री जो देखने में बाईस-तेईस की मालूम देती थी, मेरे सामने खड़ी थी। उसने अँगिया के ऊपर सिर की चुनरी लपेट रक्खी थी। लहँगे के अगले हिस्से को धोती की तरह लाँग बनाकर पीछे कमर में टाँग दिया था। हाथ में उसके गोफन था (गोफन की दो लड़ों के बीच में पत्थर आदि रखकर दूर बैठे बन्दर आदि जानवरों या तोते आदि पंछियों को मारा या उड़ाया जाता है।) बाल बिलकुल काले थे। मुख पर थोड़ी-थोड़ी लाली नज़र आती थी, जितनी काले चेहरे पर आ सकती है।

मुझे देखकर वह हँस पड़ी। मैं बड़ा हैरान था कि कहाँ फँस गया। जान न पहचान और हँसती चली जा रही है। क्या यह बेवक़ूफ़ है या पागल? फिर मन में आया—तू मर्द है। इससे सवाल क्यों नहीं करता कि कौन है? मैंने हिम्मत करके पूछा—"क्या बात है?"

वह फिर हँस दी।

मैं बहुत ही ज़्यादा घबराया कि कोई देख लेगा तो क्या कहेगा। यह भील की लड़की और मैं ब्राह्मण। मैं कुछ का कुछ समझने लगा कि इतने में उसने मेरी घबराहट दूर कर दी—"अरे बाबू साहब! बस, भूल गये पुरानी बात!"

इस स्त्री ने शब्द 'बात' को बात नहीं कहा बल्कि कुछ अजीब तरीक़े से 'बातु' कहा। मेरे दिमाग़ के किसी कोने से एक पुरानी घटना निकल आई। अब मुझे सारी बात याद आ गई—"अरे, तू सोमा है?"

"जो हुकुम!"

(पुराना तरीक़ा यहाँ अभी तक चला आ रहा है। इस कारण 'जो हुकुम' और 'हुज़ूर' की भरमार रहती है। छोटा आदमी बड़े को 'जी हाँ' के बजाय हुज़ूर या जो हुकुम कहता है।)

"अरे! तू तो अब बहुत बड़ी हो गई है। कल तक तो छोटी-सी हुआ करती थी।"

"जो हुकुम।" उसने उत्तर दिया—"लेकिन पन्द्रह बरस भी तो हो गये।"

"हाँ हाँ, तू ठीक कहती है। मैं इतने साल नहीं आया, इसी कारण तुझे भूल ही गया। कहो, केवला तो अच्छा है?"

"हुज़ूर, अच्छा ही है।"

"अच्छा ही है! क्यों बीमार है क्या?"

"नहीं हुज़ूर, बीमार तो नहीं है।"

"फिर?" मैंने जिज्ञासा से प्रश्न किया।

"कोई ख़ास बात नहीं है हुज़ूर!" उसने शरमाते हुए उत्तर दिया।

"फिर भी कोई आम बात?" उसकी शरम ने मेरे अन्दर कुछ शक-सा पैदा कर दिया—"अरे! कहती क्यों नहीं? वह मारता तो नहीं?"

"न हुकुम! यह कैसे हो सकता है? लुगाई को भी कोई मारा करता है क्या?"

"तब फिर और क्या बात है?"

"हुज़ूर!" वह यह शब्द कहकर चुप हो गई जैसे किसी ने उसका गला दबा दिया हो। फिर गोफन में पत्थर रखकर उसके हाथ खेलने लगे। वह बोली—"अब हमने एक-दूसरे के साथ जगह बदल ली है।"

इसका मतलब मेरी समझ में कुछ भी न आया।

मैंने मखौल से कहा—"क्या केवला लुगाई बन गया है?"

"न हुज़ूर, यह नहीं।" वह खिलखिला कर हँस पड़ी—"हमने अपने काम एक-दूसरे से बदल लिये हैं।"

"मर्द लुगाई बन जाय और लुगाई मर्द की जगह ले ले तब भी तो काम बदल जाते हैं।"

"न हुज़ूर, यह मामला इस तरह का नहीं है। अब वह घर के काम करता है और मैं बाहर के। बच्चों का ध्यान रखना, उनको खिलाना-पिलाना और नहलाना-धुलाना, घर बोहारना और रोटी बनाना—ये सब काम उसके हैं। मैं खेत में हल चलाती, पानी देती और रखवाली करती हूँ।" यह कहकर उसने गोफन की दोनों लड़ें पकड़कर उसे घुमाया। तीसरे घुमाव के बाद एक लड़ छोड़ दी तो पटाक से ज़ोर की आवाज़ हुई और पत्थर बन्दरों से परे जा पहुँचा।

"क्या इन बन्दरों को कभी मारा भी है?" मैंने इस प्रश्न को दूसरी तरह से भी दोहराया—"तुमसे तो ये बन्दर मुश्किल ही मरते होंगे?"

"मुझसे क्या, किसी से भी नहीं मरते।" उसने अपने आत्मसम्मान की रक्षा करते हुए चालाकी से उत्तर दिया।

"क्यों? मरते क्यों नहीं? बन्दर हैं या....."

"जो हुकुम, बन्दर तो हैं। परन्तु हनुमान् का आशीर्वाद लिये हुए हैं। मरेंगे कैसे?"

"हाँ हाँ, आशीर्वाद ही नहीं लिये हुए हैं, बल्कि उनकी सन्तान भी हैं।" मैंने उसकी धार्मिक भावना में वृद्धि करने के लिए कहा।

"ठीक है हुज़ूर!"

"तो अब तुम सारा दिन एहे! ओहो! अरे हो! यही कहती रहोगी? गोफन और ये आवाज़ें ही या और भी कुछ?"

"अभी तो हुज़ूर और कुछ नहीं। बारिश हुई नहीं। पहली बार मक्की बोई तो सड़ गई। पानी न पड़ा। दूसरी बार बड़ी मुश्किल से मक्की का बीज लिया। पर अब यह हाल है कि न बरखा होती है और न कुछ बनता नज़र आता है।"

"तुम्हारे छोटे का क्या हाल है? वह जो कलह का...."

"न हुज़ूर, ऐसा न कहो", । उसने गम्भीरता पकड़ ली—"वह कलह न थी, वह तो प्रेम था। कुछ भी हो। वह लड़का मर गया। तीन साल का हुआ तब बीमारी पड़ी। उसमें वह भी चला गया। अंबा-माता की दी हुई चीज़ थी; उसी ने ले ली। बहुत दुःख हुआ। फिर चुप हो गई कि उसकी इच्छा हो तो दे, उसकी इच्छा हो तो ले।"

"अरे भई, तुम चलोगे भी कि यहीं जुड़ जाओगे?" एक मित्र ने मेरे कंधे पर हाथ मारकर कहा।

"अजी तुम भी क्या बेवकूफ़ हो।" दूसरे ने पहले से कहा—"बाबू साहब बहुत दिन के बाद मिल रहे हैं। ज़रा दो बातें कर लेने दो।"

सोमा शायद हो चुकी थी। मैं उन दोनों के साथ हो गया। उनको बताया—"अरे भई, तुम भी लाल-बुझक्कड़ हो। कुछ तो अक़्ल से काम लिया होता। किसी भील से मेरा क्या वास्ता हो सकता है? लेकिन शायद तुम्हारे अन्दर कई तरह की बातें काम कर रही हैं। मैं उनको दूर किये देता हूँ।

"पन्द्रह साल पहले की बात है। इसी तालाब के उस परले किनारे पर बारह-चौदह बरस की एक लड़की और एक नवयुवक पानी के अन्दर से डूंगर-घास निकाला करते। यह घास खाद के काम आती थी। तब सरकारी बाग़ों में इसकी काफ़ी खपत होती थी। पास के इस गाँव, दिवाली, के रहनेवाले वे दोनों इस काम को किया करते थे। तब मैं यहाँ बाग़ों के महकमे में मुलाज़िम था। लड़की समझदार है। इसके पढ़ने का शौक़ देखकर मैंने इसे पहले तो हिन्दी का बाल-बोध और फिर एक-आध साधारण पुस्तक ला दी। तालाब से घास इकट्ठा करके ये दोनों मंडी में बेच आते। मुक़ाबिले के कारण इनके अन्दर ईर्ष्या उत्पन्न हो गई। एक बार यह लड़की—इसका नाम सोमा है—घास निकाल रही थी कि इसका पाँव फँस गया। लड़का जिसका नाम केवला है, वहीं खड़ा देख रहा था। बड़ा खुश हुआ कि आज मेरे दुश्मन को प्रकृति की तरफ़ से सज़ा मिलेगी। थोड़ी देर तक तो लड़की बड़ी मुसीबत में रही। परन्तु बाद में उसने

हाथ-पाँव मारकर अपने आपको घास से छुड़ा लिया। इत्तफ़ाक से उसी दिन केवला का पाँव पत्थर की एक सिल पर से फिसल गया। वह सिर के बल नीचे गिरा। सिर फट गया। खून का सोता फूट पड़ा। वह बेहोश पड़ा था कि सोमा ने उससे बदला लेने के बजाय उसका सिर धोया, घाव साफ़ किया और उसे उठा कर उसके घर पहुँचा दिया। बाद में सेवा-शुश्रूषा भी करती रही। अस्पताल से बाक़ायदा दवा भी लाया करती। इसका फल यह हुआ कि केवला भी उसके लिए प्राण देने लगा। बाद में दोनों की शादी हो गई। तब सोमा ने तालाब के किनारे एक छोटी-सी गुफा में वह पत्थर जिस पर केवला गिरा था, गुफा में ले जाकर उस पर केवला के पैरों के निशान बनाये। बस, वह प्रतिदिन उनकी पूजा किया करती। मुझे मालूम नहीं कि अब भी उसका वह मन्दिर वहाँ है या नहीं और वह वहाँ जाती है या नहीं।"

(२)

मज़ा तब आता है जब स्वयं कलाकार नाचने लगें। मैं तालाब के किनारे पत्थर की बनी छतरी से परे हट-कर बैठा था कि नीचे दो सुन्दर कलाकारों को नृत्य करते देखा। किसी को दिखाने के लिए नहीं बल्कि खुद अपने आपको खुश करने के वास्ते ही वे ऐसा कर रहे थे। मैंने अनुभव किया कि मैं चोरों की तरह उनकी यह कला देख रहा हूँ। परन्तु यदि यह चोरी न करता तो वह स्वर्गीय आनन्द कैसे प्राप्त कर सकता था! मैं ऊपर था, वे दोनों नीचे। मैं उनको देख सकता था, वे मुझे न देख सकते थे। परन्तु मैं जानता था कि यदि कहीं उनकी नज़र मुझ पर पड़ गई तो वे नाच बन्द कर देंगे। जिस शख़्स को दुनिया की वाह-वाह की परवा न हो वह ऐसा ही करता है।

मैं कला के उद्देश्य के विषय में सोच रहा था कि इतने में मुझे पास से ही किसी कपड़े के सरकने की आवाज आई। तालाब से ऊपर आनेवाली पगडंडी से पहले तो एक सिर निकला, फिर थाली लिये हाथ। मैं समझ गया कि कोई गँवार औरत पूजा करके वापस आ रही है। सचमुच कितनी गँवार है। सौन्दर्य की ज़रा-सी भी बुद्धि होती तो इन कलाकारों की कला को देखती। मैं फिर अपनी उधेड़बुन में लग गया।

"अरे बाबू साहब!"

हैं, यह क्या? उधर देखा तो सोमा को हँसते पाया। मैंने शरम महसूस की कि यह भी क्या कहेगी। आदमियों को पहचान भी नहीं सकता। कल तो कल, आज भी यह हाल है।

"कहो सोमा, कहाँ से आई?" मैं बोला—"पूजा करके? लेकिन यहाँ तो कोई मन्दिर नहीं है। और, फिर नीचे तालाब के किनारे तू थी नहीं। रास्ते में क्या......"

"अरे बाबू साहब, क्या हो गया है आपको?" उसने मेरी बात को काट कर कहा—"यहाँ दुनिया के लिए मन्दिर नहीं है, मेरे लिए है। मैं अपने देवता का पूजन कर रही थी। देखा नहीं आपने, मेरी पूजा के लिए दो मोर नाच रहे थे? मेरी पूजा समाप्त हुई तो उन्होंने भी नाचना बन्द कर दिया। परन्तु आपने तो इस मन्दिर को कई बार देखा है। भूल गये आप?"

"हाँ सोमा, मैं भूल गया।" मैंने अपनी भूल स्वीकार की—"ज्यों-ज्यों उमर ज़्यादा होती चली जा रही है, दिमाग़ जवाब दे रहा है।" थोड़ी देर चुप रहने के बाद—"लेकिन क्या तू तब से यहाँ आती रही है?"

"जो हुकुम, तब से हर रोज़ यहाँ आती रही हूँ।" वह बड़े गर्व के साथ बोली।

"बड़ी हिम्मत है तेरी।" मेरे मुँह से निकला।

"क्यों हुज़ूर, इसमें हिम्मत की क्या बात है? सुबह उठने के बाद पहले यह धर्म कर लिया। बस।"

इतनी देर में बैठा ही रहा था। अब उठ खड़ा हो गया—"चलूं, आज ज़रा केवला से दो बातें कर लूँ। घर पर ही होगा न?"

"जो हुकुम, वह घर पर ही है। जब मैं आई थी तब बच्चों को लेकर सो रहा था।"

"हाँ हाँ, अब लुगाई जो ठहरा। इसे तो मैं भूल ही गया था।"

जब हम पहुँचे तब केवला सचमुच ही सो रहा था। सोमा ने ही उसे जगाया। मुझे देखकर केवला हैरान हो गया कि यह कहाँ से टपक पड़ा है। पहचान तो उसने फ़ौरन लिया। फलस्वरूप प्रश्न किया—"अरे बाबू साहब, आज तो आप घने बरस के बाद आये।"

"हाँ, घने ही बरस हो गये केवला।" मुझे उसके प्यारे शब्द 'घने' को दोहराने में खास आनन्द आया—'यह जीवन है। कुछ पता नहीं लगता। आज यहाँ हूँ, कल वहाँ। फिर न मालूम वहाँ कितने दिन रहना पड़े। फिर यहाँ आने में शायद और भी घने बरस हो जायँ। लेकिन तुम ज़रा यह तो बताओ कि आज-कल हाल कैसा है? मैंने सुना है, तूने अपनी लुगाई से जगह बदल ली है। उसके सब काम तू करता है और तेरे . . . . ."

"हुज़ूर, इसका एक काम मैं नहीं कर सकता।" उसकी दृष्टि सोये हुए बच्चों की तरफ़ गई। "उसे छोड़ कर इसके बाक़ी सब काम मैं करता हूँ।" यह कहकर वह हँस पड़ा।

"उसे भी तू क्यों नहीं कर लेता?" मैंने पूछा।

"वह क्या मुझसे हो सकता है?" उसने उत्तर दिया।

"क्यों, उसमें कौन-सी मुश्किल बात है?" मैंने सवाल किया—"थाल लेकर धूप और फूल रख ले और आरती उतार आये। बस"

"अरे हुज़ूर, आप तो कुछ और ही कह गये"। वह बोला।

"अरे तो तू क्या समझा था?"

उसने कुछ उत्तर न दिया। बच्चों पर कपड़ा देने के बाद वह हँस पड़ा।

"अच्छा! तुम अभी तक खचरे हो।"

वह और भी हँस दिया। सोमा भी।

"लेकिन सोमा, तुम दोनों ने अपनी अपनी जगह बदली क्यों है?" यह कह कर मैंने केवला की तरफ़ भी देखा। मैं चाहता था कि दोनों में से जो चाहे उत्तर दे।

केवला ने आँखें नीची कर लीं। मुझे प्रमाण मिल गया कि वह स्त्री बन गया है। अब मैंने उसके पति की तरफ़ देखा।

"हुज़ूर," सोमा ने बग़ैर झझक के कहा—"अब इसमें छिपाने की कोई बात नहीं। सारे गाँव को मालूम है। किसी से भी पूछ लीजिए।"

देर काफ़ी हो गई थी। इसलिए मैं केवला की तरफ़ देखकर चल दिया। सोमा मुझे सड़क तक छोड़ने आई। घर का मालिक ठहरी।

"हाँ, तो बताया नहीं तुमने सोमा।" मैं बोला।

"हुज़ूर, पार साल की बात है। अंबा-माता का मेला था। भंडारा-गाँव की एक छोकरी माता के मन्दिर में पूजन के वास्ते आई। मेरा आदमी भी मेला देखने गया था। दोनों का सुर मिल गया। मेले के अन्त में केवला उसके साथ हो लिया। कई दिन तक न मालूम कहाँ रहा। कम से कम घर न आया। मुझे बड़ी चिन्ता हुई। अन्त में जब वह वापस आया तब मैंने इससे सवाल किया। इसने क्रोध में आकर, ऐसे मौक़ों पर क्रोध आ ही जाता है, मुझे लाठी मार दी। खून निकल आया। गाँव की पंचायत बैठी। उसने इसे दंड दिया कि या तो पचास रुपये का भोज करके सारे गाँव को माल्पुआ खिला, नहीं तो प्रायश्चित्त के तौर पर मेरे साथ जगह बदल ले। रुपये इसके पास थे नहीं, इसने जगह बदलने में शरम न समझी। बस, तब से यह घर का काम करता है और मैं बाहर का।"

"लेकिन इसे तो मौज हो गई होगी?" मैंने कहा।

"क्यों हुज़ूर, मौज कैसी?" उसने पूछा।

"मौज इस बात की कि घर में काम ही कौन सा बड़ा होता है।"

"न हुज़ूर, यह बात नहीं है। छोटा-छोटा, थोड़ा-थोड़ा करके वह भी बहुत ज़्यादा हो जाता है। मैंने तो दोनों करके देखे हैं न। यह नहीं, उसमें एक दिक्क़त यह होती है कि छोरे-छोरियाँ तंग बहुत करते हैं। सारा दिन घर पर रहने से वे नोच-नोच खाते हैं। फिर मर्दों के काम में यह मौज तो है न? कि दिन भर काम करने से एक तो शरीर बन रहा और दूसरा इतने घंटे बिछुड़े रहने के बाद बाल-बच्चों को मिलने से ख़ुशी होती है। मैं तो समझती हूँ कि मर्दों का काम ख़ुद मर्द के लिए ज़्यादा फ़ायदेमन्द है।"

"परन्तु यह बात मुझे अभी तक समझ नहीं आई कि . . . ."

"क्या हुज़ूर?" उसने बात काट कर पूछा।

"अभी तो तुम कह रही थी कि मैं अपने देवता की पूजा करके आई हूँ। क्या अब भी वह तेरा देवता है? इस घटना के होने के बाद भी उसके प्रति तुम्हारी श्रद्धा या भक्ति में कोई फ़र्क़ नहीं आया?"

"बड़ी भोली बात की हुज़ूर ने।" वह बोली—"मैंने जब उसको देवता बनाया था उसमें यह कमज़ोरी न थी। मैं तो हर रोज़ उसी पहले की पूजा करती हूँ। मेरे देवता में कोई फ़र्क़ नहीं आया। फिर अगर इससे एक बार भूल हो भी गई है तो क्या मैं अपना नारी-धर्म बदल सकती हूँ?"

मैं चुप हो गया। मेरे पश्चिमी विचारों के मुँह पर यह बहुत सख़्त चपत थी। मैंने अपनी भूल का अनुभव किया, बुरी तरह से। सोमा के इस विचार के सामने मैंने सिर झुकाया और कहा—"सोमा, किसी समय तू अपनी 'बीबी'-बच्चों को लेकर हमारे यहाँ आओ न। मेरी स्त्री तुमको मिलकर बहुत खुश होगी।"

"'जो हुकुम हुज़ूर, ज़रूर देखूँगी बाई साहब को।'

यह गति न मेरी बंद हो

लेखक, श्रीयुत शिवमंगलसिंह 'सुमन'

गिरि गहन, दुर्गम घाटियों के
घात सब सहता रहूँ;
उत्थान और पतन सभी में
एकरस बहता रहूँ;
टकरायँ हिमगिरि सामने, फिर भी न यह मति मंद हो,
यह गति न मेरी बंद हो।

यह गीत का वरदान भी
जलते उरों के ही लिए,
सौरभ सुगंध मिलो सुमन को
दूसरों के ही लिए,
संसार मधु-संचय करे, मेरा हृदय मकरंद हो;
यह गति न मेरी बंद हो।

जो तृप्त अमृत से न हो
ऐसी प्रबलतम प्यास हो
जिसके लिए मैं मिट रहा
मेरा उसे विश्वास हो।
अपना न जब कोई रहे, केवल सहारा छंद हो;
यह गति न मेरी बंद हो।

असहाय दुर्बल को कभी
यह विश्व ही सुख-स्वर्ग हो,
मानव! तुम्हारे ही लिए
जीवन सदा उत्सर्ग हो,
मेरे लिए तो बस यही, सत, चित्त, ब्रह्मानंद हो;
यह गति न मेरी बंद हो।

अन्यायियों के दुर्ग, गढ़
ढह जायँ, मिट्टी में सने,
विश्वास का संबल पकड़
मानव कभी मानव बने।
नव-क्रांति के पथ पर सदा, मेरी प्रगति स्वच्छंद हो,
यह गति न मेरी बंद हो।

विश्व-संघर्ष का एक संख्यावादी विश्लेषण

लेखक, श्रीयुत परिपूर्णानन्द वर्म्मा

संसार में इस समय प्रलय-कारक परिस्थितियाँ उत्पन्न हो गई हैं। यह कोई नहीं कह सकता कि आज जैसी दुनिया है, वैसी कल भी रहेगी या नहीं। किन्तु दुनिया की यह विपत्ति बिना कारण के भी नहीं हो सकती। तृष्णा, भोग-लिप्सा और पैर फैलाने के बाद क़ब्ज़ा करने की भावना के भीतर सबसे पहले पेट की समस्या होती है। किसी देश में खाने को है तो खानेवाले कम हैं, इसलिए दूसरा उस पर दाँत लगाना चाहता है। कहीं ज़मीन कम और आबादी इतनी अधिक है कि हाथ-पैर फैलाने के लिए भी पड़ोसी देश का मुँह देखना पड़ता है। कहीं पुरुष अधिक हैं, स्त्रियाँ कम हैं—कहीं इसका उलटा ही है। इन हरएक बातों से एक कारण का पता चलता है, जिससे दुनिया की इस बीमारी का कारण समझा जा सकता है।

हमारे आपके सामने संसार बदल रहा है। इसलिए आओ हम और आप मौजूदा दुनिया की हालत को समझ लें। शायद इस जानकारी के बाद, भावी संसार की, वर्त्तमान महासमर के विस्तार की, अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति की उलझनों की समस्या के सुलझाने में आसानी हो।

इसी लिए इस लेख में पाठकों के सम्मुख दुनिया की आबादी, उसका विस्तार, उसका बँटवारा, जन्म, मृत्यु, उत्पत्ति तथा शादी-ब्याह का ब्योरा बतलाया गया है। इस लेख के आँकड़े काफ़ी छान-बीन करके संग्रह किये गये हैं। सन् १९३१ के नहीं—बल्कि १९३६ तक के आँकड़े भी दिये गये हैं। हरएक संख्या की सचाई की ज़िम्मेदारी राष्ट्र-परिषद् की रिपोर्टों पर है। उन्हीं की सहायता से यह प्रत्यक्षतः नीरस, किन्तु अत्यन्त आवश्यक और उपयोगी लेख तैयार किया गया है।

किन्तु संख्याओं के संकलन में बड़ी कठिनाई का सामना करना पड़ा है। बहुत-से देश ऐसे हैं जिनकी सरकारें इतनी उन्नत नहीं हैं कि जन-संख्या का हिसाब रक्खें। बहुत-से देश ऐसे हैं जिनकी सूचना विश्वसनीय नहीं है। आँकड़े भी दो प्रकार के होते हैं, 'असली' और 'क़ानूनी'। क़ानूनी आँकड़े उतने ठीक नहीं होते। फ्रांस या नार्वे की जन-संख्या 'क़ानूनी' है। ज़ेकोस्लोवाकिया जैसे देशों की 'असली' है।

इसके अलावा कुछ देशों में इतनी अधिक सरकारें हैं या उनके इतने छोटे-छोटे टुकड़े हैं कि उनका पूरा हिसाब पा जाना कठिन है। इसलिए अफ़्रीका और मध्य तथा दक्षिणी अमरीका की आबादी की संख्यायें 'क़यासी' हैं। चीन का भी यही हाल है। एशिया में ही अफ़ग़ानिस्तान, अरब, भूटान, नैपाल, ईराक़ या सीरिया की आबादी का ठीक पता नहीं है।

क्षेत्रफल के विषय में भी इसी प्रकार आँकड़ों की निश्चितता का दावा नहीं किया जा सकता। कुछ राज्य तो अपनी चौहद्दी जल्दी-जल्दी बदल देते हैं; कुछ राजनैतिक दाँव-पेंच से दूसरे की सीमा काट लेते हैं; कुछ ऐसे भी हैं जिनको अपनी असली सीमा का ही पता नहीं है। बहुतेरे राज्यों की सीमा का विभाजन १९३४-३५ में ही हुआ है। योरप के नक़्शे की रद्दोबदल की बात जाने दीजिए। इन सब बातों को ध्यान में रखते हुए यही उचित प्रतीत होता है कि सन् १९३६ की स्थिति के अनुसार संख्यायें बताई जायँ। इस प्रकार विश्व के नवीन परिवर्त्तनों के समझने में आसानी भी होगी और यह भी पता चलेगा कि कौन-सी बात कहाँ बदली है।

अब हम आगे प्रमुख महाद्वीपों तथा उनके अन्तर्गत प्रधान राज्यों के क्षेत्रफल तथा आबादी की संख्यायें देते हैं—

राज्यों के क्षेत्रफल तथा आबादी

(सन् १९३६ के दिसम्बर तक का अनुमान)

नाम देश		कुल आबादी (००० तीन बिन्दु छोड़कर)	क्षेत्रफल कि॰मी॰ में (००० तीन बिन्दु छोड़कर)
महाद्वीप			
अफ़्रीका	...	१५,१२,००,	२,९९,००,
अमरीका	...	२६,७८,४०,	४,०७,०२,
एशिया (साइबेरिया को छोड़कर)		१,११,६३,००,	[illegible],६८,००,
एशिया (चीन और साइबेरिया को छोड़कर)		६६,६३,००,	१,५७,००,
योरप	...	३९,४५,[illegible]०,	५४,२६,
आस्ट्रेलिया इत्यादि	...	१,०४,७०,	८५,५०,
प्रमुख देश			
भारतवर्ष	...	३७,४२,००,	४६,८४,
बर्मा	...	१,५६,००,	६,०५,
सीलोन	...	५६,७८,	६६,
फ्रेंच भारत	...	०,५,	३,००,
चीन	...	४५,००,००,	१,११,०३,
ईराक़	...	३६,००,	३,०२,
ईरान	...	१,५०,००,	१६,४३,
नैपाल	...	५६,००,	१,४०,
जापान	...	७,०६,००,	३,८२,
इंग्लैंड-वेल्स-स्काटलैंड		४,७१,८७,	२,४४,
टर्की	...	१,६४,९०,	७,६३,
ज़ेकोस्लोवाकिया	...	१,५२,१३,	१,४०,
जर्मनी	...	६,७५,८७,	४,६९,
फ्रांस	...	४,१४,९०,	५,६१,
इटली	...	४,२६,७७,	३,१०,
पोलैंड	...	३,४२,२१,	३,८८,
स्पेन	...	२,५०,५०,	५,०३,
सोवियट रूस	...	१७,५५,००,	१,११,७६,
बेल्जियम	...	८३,३१,	३०
रूमानिया	...	१,९४,२३,	२,९५,
आस्ट्रेलिया	...	६८,०७,	७७,०४,
न्यूज़ीलैंड	...	१५,८५,	२,६८,
मेक्सिको	...	१,९०,०३,	१९,६९,
कनाडा	...	१,१०,८०,	१,९५,४२,
संयुक्तराज्य	(अमेरिका)	१२,८८,४०,	१,७८,३९,
मिस्र	...	१,५८,६०,	१०,००,
दक्षिण-अफ़्रीका	...	९७,०७,	१२,२२,
अबीसीनिया	...	५५,००,	९,००,
फ्रेंच अफ़्रीका	...	३,८५,६०,	१,०३,३०,

इन आँकड़ों से काफ़ी रोचक बातें मालूम होती हैं। दुनिया कहाँ कितनी घनी आबाद है, कहाँ कितनी कम आबाद है, कहाँ कितनी बेकार ज़मीन पड़ी है और कहाँ रहनेवाले ही नहीं हैं और कहाँ इतने रहनेवाले हैं कि उनके लिए ज़मीन ही नहीं मिलती, इन सबका इन आँकड़ों से अन्दाज़ मिल जाता है। साथ ही इसका भी कि केवल ज़्यादा संख्या में आदमियों के रहने से ही देश की उन्नति नहीं होती और न वह शक्तिशाली ही कहा जा सकता है। योरप कितना छोटा है, पर आज वह एशिया से अठगुनी ताक़त रखता है। जापान इँग्लेंड से बड़ा है, पर दोनों की ताक़त का क्या मुक़ाबिला! फ़्रांस आबादी में जर्मनी का आधा है, पर जर्मनी फ़्रांस को निगल नहीं सकता। किन्तु इतने से ही हमारी जानकारी समाप्त नहीं होती। मिस्र के १०,००,०० वर्ग किलोमीटर क्षेत्रफल में केवल ३,५१,६८ वर्ग किलोमीटर में बस्ती है। कनाडा के भीतर के नदी-नालों के पानी का क्षेत्रफल भी मिलाकर उसका क्षेत्रफल ५,८८,००० वर्ग किलोमीटर यानी २,२६,९७९ वर्गमील है और संयुक्त राज्य (अमेरिका) का १,३७,०००वर्ग किलोमीटर यानी ५३,००० वर्गमील है। आस्ट्रेलिया में ६०,००० 'आदिम निवासी' यानी जंगली भी हैं, जिनकी तादाद नहीं जोड़ी गई है। आजकल अखबारों में इस्टोनिया, फ़िनलैण्ड, नार्वे, नीदरलैण्ड तथा स्वेडेन आदि के नाम बहुत आते हैं। अतएव इनका क्षेत्र-

नोट—किलोमीटर—१$\frac{1}{2}$ स्क्वायर किलो॰=१ स्क्वायर मील।

फल भी जान लेना रोचक होगा, जो क्रमशः २३३८; ४४,८३९; १४,०८२; १,५९८ और ३८,६९२ वर्ग किलोमीटर है।

महायुद्ध के समय यह भी जानना बड़ा ज़रूरी है कि किस प्रमुख देश में कितने जवान, बूढ़े और बच्चे हैं तथा कितनी स्त्रियाँ और पुरुष हैं। इस रोचक जानकारी के लिए नीचे दी गई तालिका का अध्ययन करना उचित होगा।

उम्र की दृष्टि से आबादी

(००० शून्य छोड़कर)

देश	सन्	व्यक्ति	१ से २० वर्ष	२०–४० वर्ष	४०–६० वर्ष	(पूरायोग) कुल
भारतवर्ष ..	१९३१	पुरुष	८,७८,४४,	५,७६,४८,	२,७६,६५,	१८,०२,०६,
	”	स्त्री	८,३७,००,	५,४३,१३,	२,४४,३३,	१६,९६,५४,
जापान ..	१९३०	पुरुष	१,४०,५१,	८५,२०,	५३,६८,	३,००,१३,
	”	स्त्री	१,३७,५८,	८८,३८,	५६,७०,	२,९७,२४,
जर्मनी ..	१९३७	पुरुष	१,०५,०८,	१,१४,११,	७२,६०,	३,२९,२२,
	”	स्त्री	१,०१,४७,	१,१६,१४,	८६,२०,	३,४६,६५,
फ़्रांस ..	१९३५	पुरुष	६२,४१,	६५,३९,	४५,५३,	१,९९,९७,
	”	स्त्री	६०,७७,	६४,४९,	५३,९९,	२,१३,१७,
इटली ..	१९३६	पुरुष	८१,९२,	६६,७०,	३९,३४,	२,१०,६७,
	”	स्त्री	६८,९६,	६८,५०,	४५,३२,	२,१८,४९,
इँग्लैंड और स्काटलैंड, वेल्स	१९३६	पुरुष	६२,१६,	६३,९९,	४६,३४,	१,९६,९१,
	”	स्त्री	६०,७८,	६७,९७,	५४,४४,	२,१२,४८,
सोवियट रूस (साइबेरिया मिलाकर)	१९३६	पुरुष	२,५६,६३,	२,०४,९२,	१,१५,१६,	७,१०,४३,
	”	स्त्री	३,५९,९७,	२,३८,७६,	१,१५,९२.	७,५९,८५,
संयुक्त-राज्य (अमरीका)	१९३०	पुरुष	२,४०,१४,	१,९४,३९,	१,३३,६६,	६,२१,३७,
	”	स्त्री	२,३५,९६,	१,९५,९४,	१,२२,८८,	६,०६,३८,
कनाडा ..	१९३१	पुरुष	२१,८४,	१६,०१,	११,३५,	५३,७५,
	”	स्त्री	२१,४६,	१४,९५,	९,६२,	५०,०२,
मिस्र ..	१९२७	पुरुष	३४,७२,	२०,८३,	१०,५४,	७०,५८,
	”	स्त्री	३२,९२,	२२,४४,	१०,६४,	७१,२०,
तुर्की ..	१९३५	पुरुष	४०,५०,	२४,४२,	१२,८०,	७९,३६,
	”	स्त्री	३१,७२,	२४,८९,	१,३६८,	८२,२१,

इस तालिका के विषय में दो-तीन रोचक बातों की ओर ध्यान आकर्षित करना ज़रूरी है। पहली बात तो यह है कि इससे पाठकों को यह स्पष्ट मालूम हो जायगा कि किस देश की आबादी उसके क्षेत्रफल के लिहाज़ से कम या ज़्यादा है तथा किन देशों में रहने की जगह काफ़ी या कम है। दूसरी बात यह भी विदित हो जायगी कि पिछले महासमर के कारण पुरुषों की अधिक मृत्यु होने से फ़्रांस, ब्रिटेन, इटली, जर्मनी, तुर्की आदि में स्त्रियाँ कितनी अधिक बढ़ गई हैं और स्त्रियों की वृद्धि के कारण उन देशों में नैतिक तथा सैनिक परिस्थितियों में किस प्रकार अन्तर पड़ गया है। लड़ाई फिर से छिड़ जाने के कारण यह जान लेना रुचिकर होगा कि प्रमुख देशों में स्त्री और पुरुष का औसत क्या है। ऊपर जो संख्यायें दी गई हैं उन तक पहुँचने में काफ़ी जोड़-बाक़ी करना पड़ा

है। राष्ट्र-परिषद् की रिपोर्ट में बहुत ही विस्तार के साथ तालिका बनाई गई है। पर हमारे लिए स्थानाभाव के कारण उसी से काम लेना संभव न था। हमने कुल जोड़ भर यथावत् दे दिया है। पर यह जोड़ केवल उन्हीं संख्याओं का नहीं है जिन्हें हमने दिया है। उनके अन्तर को ही उस देश की ६० वर्ष से ऊपर की उम्रवाली स्त्री और पुरुष की तादाद समझ लेनी चाहिए। पाठकों को यह भी मालूम हो जायगा कि कहीं २०-४० वर्ष के भीतर की औरतें ज़्यादा हैं तो कहीं ४०-६० वर्ष की।

चीन हमारा पड़ोसी है। पर उसके आँकड़े जब राष्ट्र-परिषद् को न मिल सके तब हमारी क्या शक्ति है जो उनका संकलन कर सकें। भारतवर्ष की संख्या में अदन और पेरिक टापू शामिल हैं। उनसे पृथक् संख्या नहीं है। जर्मनी के आँकड़े 'वहाँ के बाशिन्दों' को मिलाकर हैं। फ़्रांस की संख्या 'वास्तविक' है, क़ानूनी नहीं। इटली की संख्या दुहराई हुई नहीं है। इन बातों का पाठक ध्यान रक्खें।

स्त्री-पुरुष का औसत

प्रतिशत

देश	पुरुष	स्त्री	ई० सन्
तुर्की ...	४९.१	५०.९	१९३५
सोवियट रूस और साइबेरिया	४८.३	५१.७	१९२६
इँग्लैंड, स्काटलैंड, वेल्स ...	४८.०	५२.०	१९३६
इटली ...	४९.१	५०.९	१९३६
फ़्रांस ...	४८.२	५१.८	१९३५
जर्मनी (आस्ट्रिया छोड़कर)	४८.७	५१.३	१९३७
जापान ...	५०.३	४९.७	१९३०
भारतवर्ष ...	५१.५	४८.५	१९३१
मिस्र ...	४९.८	५०.२	१९२७
कनाडा ...	५१.८	४८.२	१९३१
संयुक्त-राज्य (अमेरिका) ...	५०.६	४९.४	१९३०

इस तालिका से यह विदित होता है कि तुर्की, सोवियट रूस, इँग्लेण्ड-स्कटलैण्ड-वेल्स, इटली, फ़्रांस, जर्मनी और मिस्र में स्त्रियाँ अधिक तथा पुरुष कम हैं।

युद्ध-प्रिय देशों के लिए यह ज़रूरी है कि अपनी पुरुष-संख्या बढ़ावें। इसलिए जहाँ एक ओर बहुत-से राज्य जीतने की चेष्टा हो रही है, वहीं अपनी आबादी बढ़ाने का भी घोर प्रयत्न हो रहा है। फ़्रांस ने तो सन्तान-उत्पत्ति पर बाक़ायदा इनाम बाँटा था। जर्मनी और ग्रेट ब्रिटेन में शादी पर काफ़ी ज़ोर दिया जा रहा है। जर्मनी ने विवाहित सरकारी कर्मचारियों का वेतन और भत्ता बढ़ा दिया। स्त्रियों को नौकरी से अलग कर दिया, उन्हें शादी करने और घर-गृहस्थी बसाने की हिदायत दी गई। यह भी सुना है कि जर्मनी में गर्भ-निरोधक ओषधियों पर काफ़ी रोक-थाम की जा रही है।

विवाह की संख्या-औसत और वृद्धि

(यह संख्या केवल प्रमुख देशों की दी जा रही है। कुछ आँकड़े 'अनुमानित' हैं)

देश	सन् ३१–३५ तक का औसत	सन् ३५ में होनेवाले विवाहों की संख्या	सन् ३६ में होनेवाले विवाहों की संख्या	सन् ३५ का औसत प्रतिशत	सन् ३६ का औसत प्रतिशत
जापान ..	५,१३,५०७	५,५६,७३०	५,४९,११६	८.०	७.८
जर्मनी ..	६,१३,९६९	६,५१,४३५	६,०९,७७०	९.७	९.१
फ़्रांस ..	३,०८,१३७	२,८४,८९५	२,७९,७४३	६.८	६.७
इटली ..	२,८६,८१५	२,८७,६५३	३,१६,५१४	६.७	७.४
इँग्लैंड, वेल्स और स्काटलैंड	३,६८,६०५	३,९६,३६८	४,०१,७०४	८.५	८.६
संयुक्त-राज्य (अमेरिका) ..	११,५४,०००	१३,२७,०००	..	१०.४	..
कनाडा ..	६८,५९४	७६,८९३	८०,९०४	७.०	७.३
पोलैंड	२,७४,९५३	२,८०,०२५	२,८४,४२५	८.३	८.४
रूमानिया	१,६५,५९३	१,६५,७७८	१,७६,७९०	८.७	९.२

पीछे दिये गये आँकड़े काफ़ी रोचक और माननीय हैं। भारत ऐसे बाल-विवाहवाले देश और मिस्र ऐसे पिछड़े देश के शादी-व्याह का हिसाब लगाना कठिन है। सोवियट रूस में विवाह इतना अमहत्त्वपूर्ण चीज़ है और लड़का पैदा कर सरकारी मुहक़मे के सुपुर्द कर देने का रवाज ऐसा चल पड़ा है कि वहाँ की संख्या भी नहीं मिल सकती। फ़्रांस से अधिक जर्मनी ने और जर्मनी से अधिक पोलैण्ड ने विवाह पर ध्यान दिया, यह भी स्पष्ट है। किन्तु सन् १९३६ में जो अच्छा औसत सब जगह था वह सन् १९३६ में नहीं रहा। पर सन् १९३७ की जो थोड़ी-बहुत संख्या प्राप्त हुई है उससे यह विदित होता है कि सन् १९३७ भी सन् १९३६ से अच्छा रहा। फ़्रांस में ६.७ प्रतिशत (सन् १९३६) से घटकर सन् १९३७ में ६.६ प्रतिशत औसत हो गया था, पर इटली में ७.४ प्रतिशत से बढ़कर ८.६ प्रतिशत औसत हो गया। जर्मनी और यूनाइटेड किंगडम (इं०, स्काट०, वेल्स) का प्रतिशत सन् १९३६ के बराबर रहा। रूमानिया में ३ प्रतिशत बढ़ा था।

जन्म-मृत्यु-आबादी की वृद्धि

देश	जन्म		मृत्यु		सन् १९३६ में आबादी—मृत्यु से अधिक उत्पत्ति का औसत फ़ी १००० व्यक्ति पीछे	सन् १९३६ में ५ वर्ष से कम उम्र वाले बच्चों की मृत्यु फ़ी १००० बच्चे पीछे
	१९३५	१९३६	१९३५	१९३६		
ब्रिटिश भारत और वर्मा	९६,९८,७९४	९९,८१,१४३	६५,७८,७११	६२,७५,७३१	१२.८	१६२
जापान ..	२१,९०,७०४	२१,०१,९६९	११,६१,९३६	१२,३०,२७८	१२.४	११७
जर्मनी ..	१२,६३,९७३	१२,७८,५८३	७,९२,०१८	७,९५,७९३	७.२	६६
फ़्रांस ..	६,४०,५२७	६,३०,०५९	६,५८,३७९	६,४२,१३९	०.३*	६७
इटली ..	९,९६,७०८	९,६२,६७६	५,९३,९५३	५,८९,६३६	८.७	१००
यूनाइटेड किंगडम ..	७,११,४२६	७,२०,१२९	५,६१,३२४	५,८०,९४२	३.०	६२
मिस्र ..	६,४५,७६०	६,९८,१८६	४,१२,१९७	४,५५,८३२	१५.६	१६४
कनाडा ..	२,२१,४५१	२,२०,३७१	१,०५,५६७	०७,०५०	१०.३	६६
संयुक्त-राज्य (अमेरिका)	२१,५५,१०५	२१,४४,७९०	१२,०७,३५९	१२,७८,३७९	५.१	५७
पोलैंड ..	८,७६,६६७	८,९२,३०	४,७०,९९८	४,८२,६३३	१२.०	१४१
रूमानिया ..	५,८५,५०३	६,०८,७७४	४०,२,६७८	३,८२,१८५	९.६	१७५

ऊपर दी गई तालिका से पाठकों को बहुत-सी नई बातें मालूम होंगी। सन् १९३६ के मुक़ाबिले में सन् १९-३७ में आबादी और भी बढ़ी है और इस हिसाब से सन् १९४० तक दुनिया की जन-संख्या का प्रश्न गुरुतर हो जाता, यदि अपने सर्वनाश के लिए योरप ने लड़ाई न छेड़ दी होती। जापान और भारत में तथा सबसे अधिक मिस्र में आबादी बढ़ी है और फ़्रांस में घट गई है, यानी ०.३ प्रतिशत। संयुक्त-राज्य (अमेरिका) की मृत्यु-संख्या विशेष विश्वसनीय नहीं है, क्योंकि राष्ट्र-परिषद् को भी विश्वस्त आँकड़े न मिल सके।

दुध-मुँहे बच्चों की मृत्यु के औसत से उस देश की ग़रीबी-अमीरी और सन्तान की देख-रेख का अन्दाज़ मिलता है। मिस्र की दशा भारत से अधिक गई गुज़री है, जहाँ हमारे यहाँ से अधिक बच्चे मरते हैं। पर जर्मनी, फ़्रांस, इँगलैंड इत्यादि से तुलना करने पर अपने देश

* — ०.३ = पहले से २.३ प्रतिशत घटा है।

की लाचारी पर लज्जा आती है। पाठक यह भी न भूलें कि रुमानिया ऐसा देश जो इतना उन्नत होने का दम भरता है, हमसे भी गया गुज़रा है, क्योंकि उसकी संख्या सबसे बुरी है—वहाँ १००० पीछे १७५ बच्चे मर जाते हैं।

यह लेख अधिकांशतः संख्या-मय है। पर इस लेख का उद्देश्य ही पाठकों को संसार की उस सामाजिक समस्या का ज्ञान कराना है जिससे उनकी राजनैतिक तथा गूढ़ नैतिक दशा का ज्ञान हो जाय और वे स्वतः समझ लें कि महासमर का किसी देश की आबादी और प्रगति पर कितना असर पड़ता है।

जर्मनी ने जिस परिश्रम से अपनी आबादी को बढ़ाना शुरु किया था वह उसका अकारथ गया और पुनः स्त्रीवर्ग की अधिकता और पुरुषों का ह्रास हो जायगा। यही दशा फ्रांस में भी होगी। इँग्लेण्ड की भी गहरी हानि होगी। इटली अवश्य अपने को बचाये रहेगा। किन्तु इस लेख से माल्थस का यह सिद्धान्त भी सिद्ध हो गया कि जब "आबादी ज़्यादा बढ़ जाती है तब या तो रोग-व्याधि से लोग मर कर पलड़ा बराबर कर देते हैं या लड़ाई छिड़ जाती है।"

इसलिए विज्ञान की प्रगति ने व्याधि को रोक लिया—मनोविज्ञान के ह्रास ने महासमर को मौक़ा दिया।

मनुज को क्यों मनुज खाये !

लेखक, श्रीयुत श्री मन्नारायण अग्रवाल, एम० ए०

मनुज को क्यों मनुज खाये !
प्रेम के बदले मनुज का
ख़ून का प्यासा बना है,
स्वार्थ में तल्लीन होकर
द्वेष से पूरा सना है !
नाश के साधन जुटाकर
नाश अपना कर रहा है,
बुद्धि खोकर, पागलों-सा
पाप-घट निज भर रहा है !
तोप-गोलों को गिराकर
वीरता के गान गाये !
मनुज को क्यों मनुज खाये !

एक था वह काल जब निज
वचन पर जन प्राण देते,
अब ज़माना आगया है,
तोड़कर प्रण, जान लेते !

मरण की तांडव-कला में
अति निपुण जग बन गया है,
किन्तु जीवन की कला का
ज्ञान ही अब गुम गया है !

कौन सी वह शक्ति जिसके
सामने मानव लजाये !
मनुज को क्यों मनुज खाये !

सदैव जवान बने रहिए

लेखक, प्रिन्सिपल श्री केदारनाथ गुप्त, एम० ए०

जंगल में दौड़ते हुए हिरन की ओर देखिए। आकाश में उड़ते हुए पक्षी की ओर दृष्टिपात कीजिए। वे कैसे तरुण और फ़ुर्तीले दिखलाई पड़ते हैं? पशुओं और पक्षियों के अतिरिक्त संसार का एक एक प्राणी तरुण बनने का प्रयत्न करता है। मनुष्य प्राणी भी उसी सनक में तल्लीन है। क्यों न हो! तरुण बनने का इस प्रकार प्रयत्न करना कोई अस्वाभाविक बात नहीं है, क्योंकि तरुण और सुन्दर बने रहना हमारा जन्मसिद्ध अधिकार है।

तरुण और सुन्दर वही रह सकता है जिसका स्वास्थ्य अच्छा हो, और अच्छा स्वास्थ्य उसी का हो सकता है जिसका शरीररूपी यंत्र सुचारु रूप से अपना काम करता हो। शरीररूपी यंत्र को सुचारु रूप से चलाने के लिए आवश्यकता इस बात की है कि हम प्रकृति के नियमों का पालन करें। आधुनिक सभ्यता ने हम लोगों को प्रकृति से कोसों दूर रख छोड़ा है और यद्यपि हम अपने को शिक्षित और सभ्य कहते हैं, तथापि हमारा वर्तमान जीवन प्रकृति से दूर हो जाने के कारण अत्यन्त अशान्त हो रहा है।

तरुण और सुन्दर बनने के लिए हम बढ़िया से बढ़िया वस्त्र पहनते हैं, बढ़िया से बढ़िया साबुन और पाउडर का प्रयोग करते हैं, अच्छे से अच्छे सुगन्धित तेल और इत्र लगाते हैं। किन्तु क्या इन वस्त्रों, पाउडरों और तेलों से हम तरुण और सुन्दर बन सकते हैं? यह तो एक प्रकार की मृगतृष्णा है, जिसके पीछे पड़कर लोगों की एक अच्छी संख्या व्याकुल हो रही है। जवानी और सुन्दरता को क़ायम रखने के लिए हमें इन अप्राकृतिक वस्तुओं को छोड़कर प्रकृति की देन अर्थात् भोजन, जल, हवा और धूप इत्यादि का आश्रय लेना होगा।

जवानी क़ायम रखने में भोजन का एक अत्यन्त महत्त्वपूर्ण स्थान है। जो भोजन हम करते हैं उसका
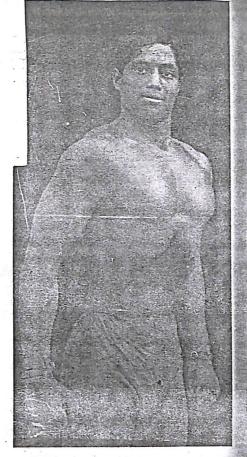
[एक तरुण मनुष्य जिसने अपने शरीर की मांसपेशियों की वृद्धि डम्बिल आदि व्यायाम-द्वारा की है।]

अच्छा या बुरा प्रभाव हमारे शरीर और मन पर पड़ता है। इसलिए भोजन का चुनाव हमें बड़ी सावधानी से करना चाहिए। प्रकृति में भोजन का क्षेत्र बड़ा विस्तीर्ण है। उसमें से भोजन का बढ़िया से बढ़िया चुनाव हो सकता है। जो भोजन चुना जाय वह स्फूर्ति देनेवाला हो, अच्छा ख़ून उत्पन्न करे और उसमें वे सब तत्त्व पाये जायँ जिनकी आवश्यकता शरीर को पड़ती है।

किस प्रकार का भोजन किसके लिए अनुकूल है,
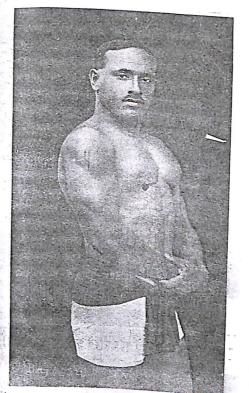
[एक स्वस्थ मनुष्य का शरीर।]

इसका निर्णय प्रत्येक व्यक्ति को स्वयम् अनुभव करके करना चाहिए। प्रायः देखा गया है कि कोई कोई भोजन तो ऐसे होते हैं जिनसे एक को लाभ पहुँचता है, किन्तु उन्हीं भोजनों से दूसरों को हानि पहुँचती है। किन्तु इस बात से तो सभी सहमत हैं कि भोजन के पदार्थ ऐसे हों जिनमें श्वेतसार, प्रोटीन, वसा, लवण, जल और विटेमिन का मिश्रण हो। सब प्रकार के अन्न, हरी तरकारियाँ, फल, दूध, मक्खन और घी में ये सब तत्त्व पाये जाते हैं। कितनी तादाद में हमें भोजन करना चाहिए, इसका भी निर्णय व्यक्तिगत रूप में होना चाहिए। जो शारीरिक परिश्रम करते हैं उन्हें अधिक भोजन की ज़रूरत है और जो पढ़ने-लिखने का काम करते हैं उन्हें कम भोजन चाहिए।

हिन्दुस्तान में काफ़ी समय बीच बीच में देकर तीन या चार बार भोजन करने की आवश्यकता है। प्रातः ७ बजे पाव डेढ़-पाव दूध पिया जाय और साथ में थोड़ी-सी किशमिश, अंजीर या खजूर बदल बदल कर खाये जायँ। ११ बजे पेट भर भोजन किया जाय। इसमें रोटी, छिलकेदार दाल, भात, पकी तरकारी और सलाद (कच्ची तरकारी जैसे टमाटर आदि) हो। दाल में थोड़ा-सा शुद्ध घी डाला जाय। तरकारियों में अधिक मसाला न डाला जाय। सायंकाल यदि भूख लगे तो मौसमी ताज़े फल खाये जायँ और एक पाव दूध पिया जाय। रात आठ बजे रोटी, तरकारी और फल की व्यालू की जाय।

भोजन कुचल कुचल कर करना चाहिए। ठूँस ठूँस कर भोजन नहीं करना चाहिए। ऐसा करने से सुस्ती आती है और मेदा ख़राब हो जाता है। इसी प्रकार कम भी नहीं खाना चाहिए, क्योंकि कम खाने से अन्त में मनुष्य को हानि पहुँचती है। नशे की वस्तुओं का सेवन नहीं करना चाहिए। चाय और चुरुट का भी व्यवहार नहीं करना चाहिए।

भोजन के बाद नम्बर व्यायाम का आता है। व्यायाम करने से पाचनक्रिया ठीक रहती है और मांस-पेशियों की वृद्धि होती है। व्यायाम कई प्रकार के हैं, किन्तु सबसे बढ़िया व्यायाम जिसको स्त्री-पुरुष, बालक-बूढ़े, सब सरलता से कर सकते हैं, प्रातःकाल की खुली हवा में घूमना है। खुली हवा में चार-पाँच मील घूमने से हमारा शरीर २४ घंटे तक काम करने के लिए फ़ुर्तीला हो जाता है।

स्वास्थ्य के साथ साथ शरीर की पेशियों को भी सुडौल करना चाहिए। इसके लिए प्रातःकाल ५० डंड और पचास बैठकें करनी चाहिए। साथ में डम्बुल का भी व्यायाम करना चाहिए। डम्बुल के व्यायाम से शरीर जल्दी सुडौल और सुन्दर तैयार होता है। एक स्वस्थ मनुष्य का शरीर ख़ूब गढ़ा हुआ होता है और उसका चेहरा लाल होता है।

दिन भर काम करने के पश्चात् शरीर को आराम देने की आवश्यकता है। सोने से बढ़कर शरीर को विश्राम

[इस पहलवान को घूमने और दौड़ने का बड़ा शौक है ।]

देनेवाला कोई दूसरा साधन नहीं है। अतएव खुले स्थान में साफ़ बिछौने पर ६ से ८ घंटे सोना तन्दुरुस्ती के लिए अत्यन्त आवश्यक है। सोना शरीर की थकावट को उसी प्रकार खींच लेता है, जिस प्रकार जल को स्पंज।

शरीर और मन को स्वस्थ रखने के लिए हमेशा प्रसन्न रहने की भी बड़ी आवश्यकता है। मन का शरीर पर कितना ज़बर्दस्त प्रभाव पड़ता है, इसका अनुभव आप लोगों ने अपने जीवन में किया होगा। जब आपको किसी बात की चिन्ता होती है तब रात भर नींद नहीं आती और मन हमेशा मलीन रहता है। क्या दरिद्र, क्या धनवान्, क्या बड़े, क्या छोटे सबके पीछे एक न एक चिन्ता लगी हुई है। चिन्ता करने से अन्त में कोई लाभ तो होता नहीं। जिस बात के लिए चिन्ता की जाती है उसके निवारण के लिए प्रयत्न करना चाहिए। यदि तब भी सफलता नहीं मिलती तो वह घटना तो होकर रहेगी ही, उसका सामना वीरता से करना चाहिए। चिन्ता से तो मनुष्य पुरुषार्थहीन हो जायगा और काम में और भी अधिक ख़राबी उत्पन्न हो जायगी। इसलिए घुन की तरह शरीर को खानेवाली इस चिन्ता को हमेशा दूर रखना चाहिए।

क्रोध का भी शरीर पर बुरा प्रभाव पड़ता है। क्रोध करनेवाले के ख़ून में विष उत्पन्न हो जाता है। अमेरिका के डाक्टरों ने प्रयोग करके देखा है कि क्रोध करनेवाले का ख़ून छोटे छोटे जन्तुओं पर पिचकारी से चढ़ाया गया और वे तुरन्त मर गये। काम, मोह, लोभ, मत्सर, आदि मनोविकारों का भी ऐसा ही भयानक प्रभाव शरीर पर पड़ता है।

प्रोफ़ेसर एलमरगेट्स कहते हैं कि "मैंने प्रयोग करके देखा है कि काम, क्रोध, लोभ, मत्सर आदि क्षुद्र मनोविकार शरीर में विष उत्पन्न करते हैं और शरीर को ख़राब कर देते हैं और दूसरे ऊँचे विचार शरीर को पुष्ट बनाने में सहायक होते हैं।"

जवानी को क़ायम रखने के लिए ब्रह्मचर्य्य पालन करने की भी बड़ी आवश्यकता है। आधुनिक नवयुवक ब्रह्मचर्य्य की ओर से बिलकुल उदासीन दिखलाई पड़ते हैं। यह एक बड़े दुर्भाग्य की बात है। ब्रह्मचर्य्य नींव है, जिस पर घररूपी शरीर का अस्तित्व निर्भर है।

मनसा, वाचा, कर्मणा से पवित्र रहने का नाम ब्रह्मचर्य्य है। ब्रह्मचर्य्य बुद्धि को बढ़ाता है, शरीर को सुडौल बनाता है और हृदय और फेफड़ों को मज़बूत करता है। ब्रह्मचर्य्य-पालन करने से मनुष्य का जीवन बढ़ता है और उसे शान्ति मिलती है।

हमारे शरीर की मशीन इस प्रकार बनी है कि यदि सावधानी के साथ इसकी रक्षा की जाय तो कम से कम सौ वर्ष तक तो यह अवश्य ही चल सकती है। हाँ, यदि इसमें हमने असावधानी से काम लिया तो यह बहुत जल्दी बिगड़ सकती है।

युवावस्था में मर जाना हमारे युग की एक साधारण-सी बात हो रही है। इसे देश का दुर्भाग्य ही समझना चाहिए। हमें जी तोड़कर इस बात का प्रयत्न करना चाहिए कि हमारी जवानी चिरकाल तक क़ायम रहे। हमेशा जवान रहना तो हमारा जन्मसिद्ध अधिकार है।

मुसलमानों की 'दलित' जातियाँ

लेखक, श्रीयुत वेंकटेश नारायण तिवारी

इस लेख के शीर्षक को देख कर पाठक चौंकेंगे। चौंकने की बात भी है। राह चलते हुए हिन्दुस्तानी को इस बात का ख़्वाब में भी ख़याल नहीं होता कि जैसे हिन्दुओं में वैसे ही मुसलमानों में भी अनेक जातियाँ और सम्प्रदाय हैं। यदि हिन्दुओं में "दलित" जातियाँ हैं, तो मुसलमानों में भी ऐसी बहुत-सी जातियाँ हैं जिन्हें यदि हम "दलित" कहें तो अनुचित न होगा। आज इन्हीं मुसलमान 'दलितों' की कहानी इस लेख के द्वारा मैं पाठकों को सुनाना चाहता हूँ ताकि इनके अस्तित्व का उन्हें बोध हो जाय। जिस तरह सरकार और जनता हिन्दू "दलितों" की दशा सुधारने के लिए इधर पिछले कई साल से चिन्तित हो रही है, उसी तरह इन मुस्लिम 'दलितों' की भी दशा सुधारने और उन पर होनेवाले साम्पत्तिक अत्याचार का अन्त करने की ओर लोगों का ध्यान जाना और उन्हें इन दीनों की पुकार सुनने और उनके दुःख-दर्द को दूर करने की तदबीरें इमानदारी से सोचना चाहिए। इनका भी सुधार मानवता के उद्धार का एक प्रश्न है। इन मुसलमान "दलितों" को राजनीतिक चालबाज़ियों का शिकार बनाना नैतिक दृष्टि से निन्द्य और सार्वजनिक हितों का बाधक होगा। हमारी नीति तो स्पष्ट है। हमारी वही नीति है जिसकी घोषणा ३०, ३२ साल पहले गोपालकृष्ण गोखले ने की थी। उन्होंने कहा था कि यदि हमारे दिलों में स्वतन्त्रता के मन्दिर के निर्माण करने की तमन्ना है तो हमारा यह पहला कर्तव्य है कि जिस भूमि पर हम स्वतंत्रता के मन्दिर को खड़ा करना चाहते हैं उसे हम पहले समतल कर लें। उनका कहना था कि वह तो अभी ऊबड़-खाबड़ पड़ी है, उसमें कहीं पर टीले हैं, कहीं पर गहरे खड्ड हैं; जगह-जगह पर उसमें कटीली झाड़ियाँ खड़ी हैं। हिन्दू और मुसलमान दलित जातियाँ, गोखले के शब्दों में, स्वतंत्रता के मन्दिर की भूमि में खाइयाँ हैं। उन खड्डों और खाइयों को भरना, उनको समतल बनाना, राष्ट्रीयता का परम पुनीत धर्म है। जितना वह पुनीत है, उतना ही वह आवश्यक भी है। जो नीचे पड़े हैं, उनको उठाये बिना हमारा काम चल ही नहीं सकता। इसलिए पिछड़ी हुई जातियों को अपनाना, उनके जन्म-सिद्ध अधिकारों को जिन्होंने अपने सामाजिक स्वार्थ में उनसे छीन लिया है उन्हें फिर वापस दिलाना राष्ट्रीयता की बुनियाद डालने के लिए एक महान् तैयारी करना है। महात्मा गांधी के अथक प्रयत्नों से भारतीयों का और विशेष रूप से हिन्दुओं का ध्यान हिन्दुओं की 'दलित' जातियों की ओर काफ़ी खिंच चुका है और उनके सुधार के मसले की अनिवार्यता को अब विरला ही कोई ऐसा सार्वजनिक कार्य-कर्ता मिलेगा जो स्वीकार न करता हो। लेकिन, जैसा हम ऊपर कह चुके हैं, लोगों को इस बात का पता भी नहीं है कि मुसलमानों में भी ऐसी मुसलमान जातियों की संख्या बहुत बड़ी है जिनकी दशा हिन्दुओं की अछूत जातियों की दशा की तुलना में कुछ ही अच्छी कही जा सकती है। मुस्लिम और हिन्दू 'दलितों' की दशा में १९-२० ही का फ़र्क़ है। यदि हिन्दुओं में आबादी के लिहाज़ से 'दलितों' की संख्या २१ सैकड़ा है तो मुसलमानों में 'दलितों' की संख्या आबादी के लिहाज़ से ५६ प्रतिशत है। १९०१ की मर्दुमशुमारी के अनुसार इस सूबे में मुसलमानों की १३३ जातियाँ थीं। १९११ में ९४ की गणना हुई थी। कुछ जातियों के नामों का उल्लेख इस लेख के अन्त में दिये हुए परिशिष्ट (अ) में मिलेगा।

कुछ दिन हुए प्रयाग में "मोमिनों" की एक कांफ़्रेंस हुई थी। उसमें यह बात कही गई थी कि हिन्दुस्तान के मुसलमानों में मोमिनों की संख्या ५० सैकड़ा है। उस कांफ़्रेंस में यह भी कहा गया था कि मुस्लिम लीग में मोमिनों का कोई विश्वास नहीं है और लीग का यह दावा कि वह हिन्दुस्तान के समस्त मुसलमानों की प्रतिनिधि है, ग़लत है। इन कथनों के अर्थ और महत्त्व को, मुसलमानों को छोड़ कर, अख़बारों के दूसरे पढ़नेवाले शायद ही समझे हों। उन्हें यही नहीं मालूम है कि "मोमिन" कौन हैं, और न यह मालूम है कि मुसलमानों में भी "दलित" जातियाँ हैं। और न उन्हें यही मालूम है कि अपने को कुलीन—नजीब- कहनेवाले मुसलमान अपने 'रज़ील" हम-मज़हबों, सहधर्मियों को अपने से कितना ज़लील और हक़ीर समझते हैं। मैंने उन्नाव में "स्वतंत्रता-दिवस"

के दिन (अर्थात्, जनवरी २६, १९३९) बोलते हुए यह कहा था कि मुसलमानों में "दलितों" की संख्या ५६ प्रतिशत है और मुस्लिम लीग के संचालक वे हैं जो अपने को नजीब या कुलीन कहते हैं और जो अपने इन अभागे भाइयों को उसी तरह से चूसने में मग्न हैं जिस तरह से उच्च कुलवाले हिन्दू अपनी 'दलित' जातियों को अनादि काल से चूसते चले आये हैं। इसलिए मैंने वहाँ पर यह कहा था कि हिन्दू-महासभा और मुस्लिम लीग तो सरमाएदारों की संस्थाएँ हैं, जिनके दिलों में समाज के अपाहिजों के साथ कोई हमदर्दी नहीं है और न जिन्हें अपने पिछड़े हुए भाइयों को आगे बढ़ाने की कोई लगन ही हो सकती है; क्योंकि उनकी दशा सुधारने से उन लोगों के हितों-स्वार्थों को भारी ठेस लगेगी और उनकी नेतागिरी का खात्मा हो जायगा। मेरे भाषण का सार जब अखबारों में छपा तब मुसलमान अखबार-नवीसों में कोहराम मच गया और उन्होंने मुझे बहुत कुछ भला-बुरा कहा। उन्होंने मेरे ऊपर यह दोष लगाया कि मैं मुसलमानों में फूट डालना चाहता हूँ ताकि मुसलमानों की एकता नष्ट-भ्रष्ट हो जाय। यह दोष, पाठकों को याद होगा, महात्मा गांधी पर भी हिन्दू-समाज के धर्म-ध्वजियों ने अनेक बार लगाया है। शोषक शोषित का भला कब सहायक हो सकता है? शेर और बकरी में कैसा मेल? भक्षक भक्ष्य के साथ कैसे और कब तक सहानुभूति कर सकता है? भक्ष्य को सबल बनाने की कोशिश जो करेगा, उसी को भक्षक-समुदाय अपना शत्रु समझता है। इसलिए मुझको कुछ अचरज न हुआ जब मुस्लिम अखबारों ने मेरे ऊपर अपनी कृपा-दृष्टि की और मेरे कथनों पर अपना रोष प्रकट किया।

आइए, इस सूबे की आबादी पर एक नज़र डालें। १९३१ की मर्दुमशुमारी के अनुसार इस सूबे में चार करोड़ ९६ लाख पुरुष-स्त्री थे। उनमें वे लोग भी शामिल हैं, जो सूबे की तीन देशी रियासतों में रहते हैं। इन रियासतों के नाम (१) बनारस, (२) रामपुर (३) टेहरी-गढ़वाल हैं। रियासतों की आबादी घटाने के बाद, सूबे की बाक़ी आबादी ४ करोड़ ८४ लाख रह जाती है। इसमें मुसलमानों की संख्या ७१ लाख ८१ हज़ार है अर्थात्, पूर्ण अंकों में, ७२ लाख। इस सूबे के मुसलमानों में कम से कम ९४ विभिन्न छोटी-बड़ी जातियाँ हैं, जिनमें से ५ जातियाँ अपने को कुलीन कहती हैं और बाक़ी छोटी कही जाती हैं। इस लेख के अन्त में हम परिशिष्ट (अ) के रूप में इस सूबे की कुछ मुस्लिम जातियों की नामावली का उल्लेख कर रहे हैं। पहली ५ (?) जातियाँ "ऊँची" या "नजीब" जातियाँ हैं और शेष 'नीच' या "रज़ील" जातियाँ हैं। परिशिष्ट (अ) में प्रत्येक जाति के कितने आदमी सरकारी नौकर हैं उनकी संख्या जाति-विशेष के आगे कोष्ठक में दे दी गई है।

आइए, पहले "नजीब" या "कुलीन" कहलानेवाले मुसलमानों का ज़िक्र कर लें। मुसलमानों में ५ ऐसी जातियाँ हैं जो अपने-आपको "नजीब" या "कुलीन" कहती हैं। उनके नाम हैं—(१) सैयद, (२) शेख (३) पठान, (४) मुग़ल और (५) राजपूत। सन् १९३१ में इस सूबे में तीन लाख १२ हज़ार सैयद थे, लगभग ६० हज़ार मुग़ल थे, ११ लाख पठान थे, १६ लाख शेख और १ लाख ६६ हज़ार राजपूत थे। सब जोड़ कर ३२ लाख ३८ हज़ार हुए। इस सूबे में ७२ लाख मुसलमानों में अपने को "नजीब" या "कुलीन" कहनेवाले मुसलमानों की संख्या ३२ लाख है, अर्थात् १०० मुसलमानों में अपने को "कुलीन" कहनेवाले मुसलमान ४४ सैकड़ा हैं। सब आदि ही से सैयद, पठान या शेख नहीं हैं। मुसलमानों में एक मसल मशहूर है जो ऊपर के कथन के समर्थन में मर्दुमशुमारी की अनेक रिपोर्टों में आपको मिलेगी। वह मसल यह है :—"पेशइन क़स्साब बूदम, बादज़ाँ गुश्तम शेख; ग़ल्ला चूँ अरज़ाँ शवद, इम साल सैयद मीशवम"— यानी, पहले साल मैं क़साई था, उसके बाद शेख हो गया। इस साल अगर अनाज का भाव गिर गया तो मैं सैयद हो जाऊँगा।

हिन्दू और मुसलमानों में जाति-मर्यादा के बदलने की प्रथा एकसां जारी है। कारण भी समान ही हैं। इस तरह से पठानों और मुस्लिम राजपूतों की संख्या में भी उलट-फेर हुआ करता है। हिन्दू "सिंह" मुस्लिम होने पर "खां" (ख़ान) में बदल जाता है।

इस स्थान पर मुसलमानों की "नजीब" जातियों की अहंमन्यता का एक उदाहरण दे देना अनुचित न होगा। सर सैयदअहमद खां के नाम से सूबे के सभी पढ़े-लिखे हिन्दू और मुसलमान परिचित हैं। उन्होंने मुसलमानों में और मुसलमानों के लिए जो काम किया है उसका थोड़ा-बहुत बोध हिन्दुस्तान के पढ़े-लिखे लोगों को अवश्य होगा। इन्हीं सैयद अहमद खां ने एक बार "नसब" (यानी पैदाइश) के एतबार से हिन्दुस्तान के रहनेवाले मुसलमानों का वर्णन किया था। उनका कहना था कि हिन्दुस्तान के मुसलमान हिन्दुस्तान के रहनेवाले नहीं हैं। उनकी यह धारणा थी कि जो मुसलमान इस समय हिन्दुस्तान में हैं, वे वास्तव में उन मुसलमानों की औलाद हैं जो विदेशों से आये थे। उन्हीं के शब्दों में उनकी राय आप अब सुन लीजिए :—

"मुसलमान इस मुल्क के रहनेवाले नहीं हैं। आला (उच्च) या औसत (साधारण) दर्जे के लोग अपने मुल्क (?) से यहाँ आकर आबाद हुए। उनकी औलाद ने हिन्दुस्तान की बहुत-सी ज़मीन को आबाद किया और कुछ यहाँ के लोगों को, जो इस मुल्क की अदना क़ौमों में से थे अपने साथ शामिल कर (मिला) लिया। पस वे निहायत अदने दर्जे (अत्यन्त छोटी श्रेणी) की क़ौमें जो अब तक एतबार इन्सानी (मनुष्यत्व) से भी खारिज हैं और निहायत क़सीर (पतित) हैं हिन्दुओं की मर्दुमशुमारी में शामिल हैं। मगर इस क़िस्म की कोई क़ौम मुसलमानों की मर्दुमशुमारी में दाखिल नहीं है।"

ऊपर जो हमने कहा है उसके समर्थन में मर्दुमशुमारी की एक रिपोर्ट से निम्न उद्धरण को पढ़िए :—

"The Muhammadans themselves recognise two main social divisions, (i) Ashraf or Sharif and (ii) Ajlaf. The first which means 'noble' or 'person of high extraction' includes all undoubted descendants of foreigners and converts from the higher castes of Hindus. All other Muhammadans, including the functional groups, and all converts of lower rank are collectively known as Ajlaf 'wretches' or 'mean people' or Kamina or Itar, 'base' or 'razil', worthless. This category includes the various classes of converts who are known as Nao Muslim in Bihar and Nasya in North Bengal, but who, in East Bengal, where their numbers are greatest, have usually succeeded in establishing their claim to be called Sheikh. It also includes various functional groups, of which the Ashraf takes no count. To him all alike are Ajlaf. This distinction is primarily one between Muhammadans of foreign birth and those of local origin. The Ashraf consider it degrading to accept menial service or to handle the plough. The traditional occupation of the Saiads is the priesthood, while the Moghals and Pathans correspond to the Kshattriyas of the Hindu regime. In some places a third class called Arzal or lowest of all is added. It consists of the very lowest castes with whom no other Muhammadan would associate and who are forbidden to enter the mosque or use the public burial ground. (See *Bengal*, 1901, p. 452)."

मुसलमान लोग खुद भी दो सामाजिक भेद मानते हैं—(१) अशरफ़ या शरीफ़ और (२) अजलफ़। पहली श्रेणी—जिसके अर्थ हैं 'शरीफ़' या 'ऊँचे खानदान के लोग'—में वे लोग हैं जिनके खानदान सन्दिग्ध नहीं हैं, या जो उच्च जाति के हिन्दुओं में से मुसलमान हुए हैं। शेष सब मुसलमान, मय पेशेवालों व उन मुसलमानों के जो नीच क़ौम के हिन्दुओं में से आये हैं, अजलफ़ कहलाते हैं, जिसके मानी हैं—'कमीना या रज़ील'। इस श्रेणी में बिहार के 'नौ मुसलिम' और उत्तरी बंगाल के 'नासिया' लोग भी शामिल हैं, यद्यपि 'नासिया' बहुसंख्यक होने के कारण अपने को 'शेख'

कहलाने में कामयाब हो गये हैं। इनमें बहुत-से ऐसे पेशेवर लोग शामिल हैं जिनकी अशरफ़ लोग कुछ परवाह नहीं करते। उनकी दृष्टि में सब अजलफ़ एक-से हैं। यह बात विदेश से आये हुए व इस देश में उत्पन्न हुए—दोनों प्रकार के मुसलमानों में एक-सी पाई जाती है। अशरफ़ लोग छोटी नौकरियों को स्वीकार करने या हल चलाने में अपनी तौहीन समझते हैं। सैय्यदों का परम्परागत पेशा है पुरोहिती; पठान और मुग़ल हिन्दुओं की क्षत्रिय जाति के समकक्ष हैं। इनके सिवा कहीं-कहीं एक तीसरी श्रेणी 'अर्ज़ल' भी मानी जाती है। इस श्रेणी में बहुत नीची जाति के लोग हैं जिनके साथ दीगर मुसलमान लोग मिलना-जुलना पसन्द नहीं करते; इन लोगों को न मस्जिद में जाने का अधिकार है, न क़ब्रिस्तान का उपयोग करने का।

—(बंगाल प्रान्तीय मर्दुमशुमारी की रिपोर्ट, १९०१ पृष्ठ ४५२)

देखिए, सर सैयदअहमद के दर्प-भरे वर्णन को और यह भी देखिए कि नजीबों को परदेशी कहने का उनको कितना नाज़ है। बाहर की क़ौम अपने मुल्क से हिन्दुस्तान में, उनके अनुसार, पधारी। इस देश को उन्होंने जीता, और जीतने के बाद यहाँ बस गये। हिन्दुस्तान में जो आज दिन मुसलमान मिलते हैं वे इन्हीं परदेशी विजेता मुसलमानों की सन्तानें हैं। उनमें हिन्दुओं की "दलित" जातियों के समान कोई जाति नहीं है! सर सैयद अहमद के इस उद्गार के समान साम्प्रदायिक अहंमन्यता का कोई दूसरा उदाहरण मिलना कठिन होगा। इतिहास की दृष्टि से उनका यह कथन जितना असत्य है उतना ही वह शोक-जनक भी है। क्योंकि उसमें जातीय बड़प्पन और तौहीन की गन्ध बेतरह भरी हुई है। मुसलमानों की छोटी जातियों से सर सैयद अहमद खां को इतनी नफ़रत थी, इतना द्वेष था, इतनी भयंकर असहिष्णुता थी कि वे उनको मुसलमान भी नहीं मानने को तैयार थे। हमारे दुर्भाग्य से इस समय मुसलमानों में सैकड़ों-हज़ारों भ्रम-पूर्ण युक्तियों का ज़ोर-शोर से प्रचार हो रहा है। इस प्रचार की तह में है उन ४४ फ़ी सदी मुसलमानों की अहंमन्यता और स्वार्थपरता, जो ग़रीबों को कुचल कर राजनीतिक सत्ता की बागडोर अपने हाथ में लेकर मनमानी-घरजानी करने को बेताब हो रहे हैं। मुसलमानों में भंगी हैं, क़साई हैं, लोनियाँ हैं, जोलाहे हैं, दर्ज़ी, तेली, धुनियाँ और फ़क़ीर भी हैं, मनिहार और गद्दी भी हैं, नट भी हैं। लेकिन सर सैयद अहमद के निगाह में वे मुसलमान नहीं क्योंकि वे बेचारे अनपढ़ होने के कारण अपने को ग़ैर-मुल्क से आनेवाली "आला" या औसत दर्जे की क़ौम की औलाद साबित करने में अभी तक सफल नहीं हुए हैं। सर सैयद अहमद को इसकी कोई परवाह न थी, और न उनके अनुयायियों को भी इसकी कोई फ़िक्र है। लेकिन हम हिन्दुस्तानियों की निगाह में तो ये "छोटे" कहे जानेवाले हिन्दू या मुसलमान भाई, "ऊँचे" से "ऊँचे" परदेशी की तुलना में हज़ारों-लाखों गुना अधिक पवित्र हैं; कहीं अधिक ऊँचे हैं—कहीं अधिक आदर और पूजा के पात्र हैं। इनके एक-एक बाल के मुक़ाबिले में "ऊँचे" से "ऊँचे" कुलीनों की न कुछ क़ीमत है और न कुछ वक़त। हिन्दुस्तान की मिट्टी से जो पुतला बना और सँवारा गया, वह तो मेरी नज़र में देवता से भी बढ़ कर है। लेकिन सैयदी "नजीबों" को तो ऐसे मुसलमान रज़ील और हक़ीर ही दिखाई देते हैं। उनकी निगाह में इनका एक ही काम है कि मर्दुमशुमारी में वे मुसलमानों की संख्या को बढ़ायें ताकि "नजीब" मुसलमान उस संख्या के आधार पर सरकारी नौकरियाँ और संस्थाओं में अधिक से अधिक प्रतिनिधित्व माँगने में समर्थ हों और जब उनकी माँग मान ली जाय तब वे उसे अपने ही-से "नजीबों" में बाँट लें। ग़रीबों की न तो उन्हें कुछ फ़िक्र है और न कुछ ख़बर; न तो उनकी परवाह है और न उनसे कोई सरोकार। उन्हें सरोकार हो या न हो, परन्तु इसमें भी अब कोई संदेह नहीं है कि नजीबों का ज़माना लद गया; अब तो उदय हो रहा है उस युग का, जब संसार के अपाहिजों, मुफ़लिसों और कंगालों को मनुष्यता के ऊँचे से ऊँचे शिखर तक उठने और बढ़ने का मौक़ा मिलेगा। उच्चता, श्रेष्ठता, कुलीनता के कपोल-कल्पित पाखंड का अब युग नहीं रहा। रक्त की विशुद्धता या ख़ून की महत्ता को कोई अब कानी-कौड़ी के बराबर भी नहीं समझेगा। अब तो वास्तव में उस आदमी का आदर

होगा, जो अपने परिश्रम से समाज की सेवा करता है, और उसको सुखी बनाने की चेष्टा करता है अपनी मेहनत का मीठा फल देकर।

मुसलमानों की ऊँच-नीच जातियों में, साक्षरता की दृष्टि से, कितना भयंकर अन्तर है, इसका यदि आपको पता लगाना है तो नीचे के आँकड़ों को ध्यानपूर्वक देखिए। उनसे आपको पता लगेगा कि प्रत्येक जाति के एक हज़ार स्त्री-पुरुषों में से कितने १९३१ में ऐसे थे जो कम से कम अपना नाम किसी भाषा में लिख और पढ़ सकते थे।

पठितों की प्रति-सहस्र संख्या*

जाति	मर्द	औरत
सैयद	३८०	५७
शेख	१२७	३३
राजपूत	१४३	१४
नव मुस्लिम	५९	४
जुलाहा	५५	५
तेली	४३	२
धुनिया	२७	२
लोनिया	२१	+
नट	२१	२
भंगी	१०	१

ऊपर जो आँकड़े हमने दिये हैं, उनका सम्बन्ध युक्त-प्रान्त से है और १९३१ की मर्दुमशुमारी की रिपोर्ट के ४८० पेज से वे उद्धृत किये गये हैं। तुलना के लिए हम १९११ की मर्दुमशुमारी की रिपोर्ट से भी मुसलमानों की चार जातियों में हज़ार पीछे साक्षरों की संख्या नीचे के कोष्ठक में दे देते हैं:—

पठितों की संख्या

जाति	मर्द	औरत
सैयद	२७७	३६
शेख	१०७	१२
जुलाहा	२२	२

ऊपर के आँकड़ों में प्रत्येक पर विशेष रूप से ध्यान देने की आवश्यकता है। १९११ से १९३१ तक की २० वर्ष की अवधि में सैयद मर्दों में पढ़े-लिखों की संख्या २७७ से बढ़ कर ३८० प्रतिहज़ार हो गई और सैयद स्त्रियों की भी संख्या १९११ में ३६ से बढ़ कर १९३१ में ५७ हो गई। इसी तरह साक्षर शेख़-मर्दों की संख्या १९११ मे १०७ से १९३१ में १२७ प्रति-हज़ार और साक्षर औरतों की संख्या १२ से ३३ प्रति-हज़ार हो गई। जुलाहों या मोमिनों के मर्दों में १९२२ में हज़ार पीछे २२ पढ़े-लिखे थे। वे १९३१ में ५५ हो गये और जहाँ उनकी स्त्रियों में १९११ में दो प्रतिहज़ार पठित थीं वहाँ १९३१ में उनकी संख्या ५ प्रतिहज़ार हुई। यह मुसलमानों की उन पिछड़ी हुई जातियों में से एक का हाल है। यह शोचनीय दशा और भी शोचनीय हो जाती है जब हमें यह याद आता है कि इन्हीं पिछड़ी हुई मुसलमान जातियों में शिक्षा के प्रसार के लिए प्रति-वर्ष सूबे की सरकार १० लाख रुपये की विशेष सहायता दिया करती है। यदि इन पिछड़ी हुई जातियों में शिक्षा का काफ़ी प्रचार अब तक नहीं हुआ, बावजूद इसके कि गवर्नमेंट उनके फ़ायदे के लिए वर्षों से १० लाख रुपया देती चली आ रही है, तो इसका कारण सिर्फ़ एक है, और वह यह है जिन जातियों के बच्चों के फ़ायदे के लिए यह १० लाख की सहायता दी जाती है उनके बच्चों की पढ़ाई पर यह रक़म नहीं ख़र्च की जाती है, बल्कि ख़र्च की जाती है उन जातियों के बच्चों के पढ़ाने-लिखाने पर जिनमें शिक्षा का यों ही बहुत अधिक प्रचार है। मुसलमानों में सैयदों ही को ले लीजिए उनकी तुलना कीजिए ब्राह्मणों से। १९३१ में प्रति-हज़ार ब्राह्मण-मर्दों में २९८ पढ़े-लिखे थे और उनके मुक़ाबिले में हज़ार सैयद-मर्दों में से ३८० पठित थे। ब्राह्मण स्त्रियों में जहाँ हज़ार पीछे २५ पढ़ी-लिखी औरतें थीं वहाँ सैयदों में पढ़ी-लिखी औरतों की संख्या ५७ प्रतिहज़ार थी। इस्लामिया स्कूलों और मकतबों की संख्या इस सूबे में बहुत काफ़ी है। उन पर हर साल डिस्ट्रिक्ट बोर्ड प्रचुर धन ख़र्च करते हैं। इन स्कूलों का स्थापन बहुत साल हुए इसी नीयत से किया गया था कि मुसलमानों की जो जातियाँ शिक्षा की दृष्टि से पिछड़ी हैं उनमें तालीम को ख़ास

* नोट—परिशिष्ट (इ) को लेख के अंत में देखने की कृपा पाठक अवश्य करें—लेखक

तौर से फैलाने की कोशिश की जाय; लेकिन हुआ क्या? मुसलमानों की इन "उच्च" जातियों ने इन रुपयों को अपने ही बच्चों के फ़ायदे के लिए हड़प कर लिया और जो मकतब या इस्लामिया स्कूल मुसलमानों की पिछड़ी हुई जातियों को आगे बढ़ाने के लिए खोले गये थे, उनमें भी तालीम दी जाने लगी इन्हीं "नजीब" क़ौमों के विद्यार्थियों को। ज़िलों की मुस्लिम शिक्षा-कमेटियों में मुसलमानों की "नीच" जातियों के प्रतिनिधि नहीं मिलते, और न इस्लामिया स्कूल या मकतबों में अध्यापक के पदों पर शेख, सैयद, मुग़ल, पठानों के अलावा, एक्का-दुक्का छोड़ कर, कोई "नीच" जातिवाला मुसलमान आपको दिखाई देगा। इस्लामिया स्कूल और मकतबों में अधिकांश वे बच्चे होने चाहिए जो इन पिछड़ी हुई जातियों से पैदा हुए हैं। इनमें अध्यापक के पदों पर उन्हीं लोगों को नियुक्त करना चाहिए, जो इन जातियों के हैं। लेकिन आज तक ऐसा न हुआ और न आज भी ऐसा हो रहा है। इसका कारण प्रत्यक्ष है। हिन्दुओं को इन पिछड़ी हुई जातियों का कुछ ज्ञान नहीं है। मुसलमान-नेता, सर सैयद अहमद ख़ाँ के शब्दों में, अपने को परदेश की आला क़ौमों की औलाद समझते हैं। उन्हें हिन्दुस्तान की "रज़ील" क़ौमों के मुसलमानों के साथ कोई हमदर्दी नहीं है। यही कारण है कि न तो हिन्दू और न मुसलमान-नेताओं ने इन बेचारों की ओर कभी नज़र उठाई और न उनकी दशा सुधारने की कोई कोशिश की। यही वजह है कि मोमिनों ने अब "बगावत" का झंडा उठाया है। उन्होंने समझ लिया है कि उनका इस संसार में कोई मददगार नहीं; उनका कोई साथी नहीं, उनके दुख-दर्द को सुनने को कोई तैयार नहीं। अब वे अपने पैरों के बल खड़े होना चाहते हैं, अपने बाहुबल से अपनी रक्षा करने पर आमादा हैं, अपने पुरुषार्थ से वे अपने उन हक़ों को प्राप्त करना चाहते हैं, जो, हिन्दुस्तानी होने के नाते, उनके जन्म-सिद्ध अधिकार हैं।

सदियों से उनकी लापरवाही, उनकी ग़फ़लत और उनके भोलेपन से लोगों ने नाजायज़ फ़ायदा उठाया। लेकिन स्वार्थ और मद के दिन सदा एक ही-से नहीं बने रहते। इस नश्वर संसार में ऐसे दिनों का भी अन्त एक न एक दिन हो ही जाता है। युग ने करवट बदली है, और इस करवट बदलने का यह नतीजा है कि मोमिन, क़साई और भंगी आदि मुसलमानों की सोती हुई, पिछड़ी जातियाँ युग के साथ निद्रा को भंग कर आँखें खोलने लगी हैं। आँखें खोलते ही उन्होंने देखा कि दुनिया नजीबों की है, मद और स्वार्थ की है, सबल की है, निर्बल की नहीं; प्रभुओं की है, ग़ुलामों की नहीं। उन्होंने यह देखा और देखकर मन में यह बात ठान ली है कि अगर दुनिया ग़ुलामों की नहीं है, वह सिर्फ़ उन्हीं की हो सकती है जो प्रभु हों, तो वे भी अब ग़ुलाम होकर न रहेंगे। वे ख़ुद प्रभुओं के आसन पर जा बैठेंगे; और जिन्होंने आज तक उनके साथ अत्याचार किया है, उनको कुचला और रौंदा है उनको शक्ति के सिंहासन से ढकेल कर वे अब नीचे उतार देंगे।

अब, आइए, देखें कि सरकारी नौकरियों में मुसलमानों की "कुलीन" और "निम्न" जातियों की दशा में क्या अन्तर है। इस सूबे में सरकारी नौकरियाँ पाँच श्रेणियों में विभक्त हैं—(१) "गज़टेड आफ़ीसर, (२) "नान, गज़टेड आफ़ीसर, (३) "सबार्डिनेट" सर्विस (४) "सुपीरियर सर्विस और (५) "इन्फ़ीरियर सर्विस"। नीचे के कोष्ठक में मुसलमान-मुलाज़िमों की संख्या दी जाती है :—

श्रेणी		मुस्लिम मुलाज़िमों की संख्या
(१) गज़टेड सर्विस	...	२८०
(२) नान गज़टेड "	...	१६,५३३
(३) सबार्डिनेट "	...	५,७१३
(४) सुपीरियर "	...	६४५
(५) इंफ़ीरियर "	...	८, २४१
कुल	...	३१,४१२

इन ३१,४१२ सरकारी नौकरियों में से ६,४३१ पदों पर सैयद; ७९८ पदों पर मुग़ल; १२,३८० पदों पर शेख़; ९,९२३ पदों पर पठान और ७३० पदों पर मुस्लिम-राजपूत नियुक्त हैं। अर्थात्, मुसलमानों में जो जातियाँ केवल ४४ सैकड़ा हैं उनका ९७ सैकड़ा सरकारी नौकरियों पर क़ब्ज़ा है। और इस सूबे के चालीस लाख मुसलमानों में से लगभग ९५० ऐसे हैं जो सरकारी मुलाज़िमत में इस वक़्त काम कर रहे हैं। एक ओर

३२ लाख में से ३० हज़ार सरकारी मुलाज़िम है और दूसरी ओर ४० लाख में से कुछ कम १ हज़ार सरकारी नौकर। इसी तरह से अगर हम डिस्ट्रिक्टबोर्ड, टाउन एरिया, नोटीफ़ाइड एरिया और म्यूनिसिपैलिटियों की छान-बीन करें तो हमें पता लगेगा कि इन संस्थाओं में भी मुसलमानों की "कुलीन" कही जानेवाली जातियों ही के लोग नौकरियों में घुसे पड़े हैं और वहाँ पर भी उन चालीस लाख मुसलमान प्रतिनिधियों को पैर रखने तक को जगह न मिल पाई जिनको "रज़ील" या "हक़ीर" क़ौमें कहते हैं। इम्दादी और सरकारी स्कूलों में भी इन बेचारे ४० लाख मुसलमानों को न तो आबादी के एतबार से अध्यापक के पद दिये जाते हैं और न उनके बच्चों के पढ़ाने की कोई खास तजवीज़ की जाती है।

लेख के अन्त में हम एक परिशिष्ट (अ) के रूप में एक कोष्ठक दे रहे हैं, जिसमें चुनी हुई मुस्लिम जातियों के सरकारी नौकरियों की विभिन्न श्रेणियों में नियुक्त आदमियों की संख्या दी गई है। पाठकों को उन बहुत-सी बातों का फिर एक बार पता लगेगा जिसका संकेत उनको हिन्दुओं की 'दलित जातियों' के सम्बन्ध में मिल चुका है। हिन्दुस्तान में दो श्रेणियाँ—हिन्दू और मुस्लिम—अनादिकाल से चली आती हैं। अनादिकाल से नीच कहलानेवाली बहुसंख्यक जातियों के कन्धों पर सवार होकर "कुलीन" कहलानेवाले उनको पीसते, कुचलते, दलते चले आये हैं। नीचेवालों की कमाई ऊपरवालों ने सदा से खाई। मेहनत-मसक़्क़त का काम सौंपा गया नीचेवालों को; लेकिन उस मेहनत की कमाई को ऊपरवालों ने हड़प कर ऐशोआराम से अपनी ज़िन्दगी बसर की। जो हाल हिन्दुओं का है, वही मुसलमानों का है। दोनों ही सम्प्रदायों की "नजीब" या "कुलीन" कहलानेवाली जातियों ने अपने अपने "रज़ीलों" को अपने स्वार्थ के लिए सदा पेरा, नोचा-खसोटा। इसलिए कि वे अपने आपको सदा से यह समझते चले आये हैं कि भगवान् ने उन्हें पैदा ही इसलिए किया है कि वे अपने कमज़ोर भाइयों के ऊपर हुकूमत करें। बड़ी मछली छोटी मछली को समुन्दर में खाती है, और उससे बड़ी मछली उसको खाती है। यही संसार का नियम है। ऐसा कुलीनों का कहना है। इसी को वे "मत्स्य-न्याय" कहते हैं। लेकिन वे भूल जाते हैं कि "मत्स्य-न्याय" के साथ ही साथ अनादिकाल से विश्व में संघ-न्याय का भी बोल-बाला रहा है। शेर परम शक्तिशाली होता है। पंजे की एक चपेट से मज़बूत से मज़बूत धागे को वह तोड़ सकता है, लेकिन बहुत-से धागों को मिला कर यदि हम एक रस्सी में बट लें तो धागों के इस संगठित संघ में इतनी शक्ति आ जाती है कि एक नहीं, अनेक सिंह उसमें आसानी से बाँधे जा सकते हैं और बाँध कर आसानी से पिंजड़े में डाल दिये जा सकते हैं। "मत्स्य-न्याय" का शिकार अभी तक की दलित जातियाँ होती चली आई हैं। इसी मत्स्य-न्याय ने हिन्दुस्तान की बहुत बड़ी आबादी को "दलित" बना रक्खा है, लेकिन इन दलितों को सतानेवाले अब सचेत हो जायँ क्योंकि दलितों के कमज़ोर धागों को काल के कराल हाथ दुर्दमनीय संघ के रस्से में तेज़ी से बट रहे हैं। रस्से के बटने को अब कोई शक्ति रोक नहीं सकती। उस रस्से के तैयार होने में अधिक विलम्ब भी नहीं है। दीनों को सतानेवाले, दुखियों को रुलानेवाले अपनी ख़ुदग़र्ज़ी को, यदि चाहें तो, अब भी त्याग दें; चाहें तो अभी समय है पश्चात्ताप का, और बिगड़े को बनाने का। नहीं तो उनकी सत्ता के अन्त की बेला आ पहुँची है और इतिहास का यमराज आज दिन हाथ में फ़सरी लिये हुए उनकी ओर क़दम बढ़ाता चला आ रहा है।

यहाँ तक तो इन मुस्लिम दलित जातियों की दशा का वर्णन हुआ। इसको सुधारने के लिए क्या करना उचित है? कुछ लोग नीचे लिखी बातों की ओर ध्यान दिलाना चाहते हैं:—

(१) १० लाख रुपये की सरकारी इमदाद इन्हीं 'दलितों' की पढ़ाई पर ख़र्च होना चाहिए और इन्हीं जातियों के मुदर्रिस इन बच्चों के स्कूलों में रक्खे जायँ?

(२) स्थानिक संस्थाओं में इनको उचित संख्या में प्रतिनिधित्व मिलना चाहिए और इस पर विचार करना चाहिए कि क्या संरक्षण ज़रूरी है?

(३) जब तक सम्प्रदाय के आधार पर देश में चुनाव की प्रथा जारी है तब तक 'दलितों' के संरक्षित निर्वाचन का प्रबन्ध लाज़िमी है?

(४) डिस्ट्रिक्ट बोर्डों की शिक्षा-कमेटियों में इन्हीं के प्रतिनिधि अधिक संख्या में होने चाहिए ?

(५) नौकरियों—सरकारी अथवा बोर्डों की—में इन्हीं जातियों के आदमियों को अधिक से अधिक संख्या में लेना चाहिए ?

ये केवल विचारार्थ प्रस्ताव-मात्र हैं। मैं इनके विषय में कुछ नहीं कहना चाहता। अपना रास्ता 'दलितों' के नेताओं को स्वयमेव निश्चित करना है। मेरा काम तो है मसले के असली रूप को पाठकों के सामने रख देना भर है। हिन्दुओं के 'दलितों' की दशा, इनसे कम नहीं, अधिक शोचनीय है। उनके विषय में आगे चलकर मैं लिखूँगा। मेरी दृष्टि में कमज़ोरों का पीडन देश और समाज के प्रति घोर पातक है, जाति के लिए कलंक भी है। अतएव इन सबकी दशा सुधारना राष्ट्रीयता की वृद्धि और संसार की प्रगति में बहुत ही बड़ी मदद पहुँचाना है।

परिशिष्ट (अ)

मुसलमानों की विभिन्न जातियाँ*

क्रम	जाति	संख्या
१	सैयद	(६,४३१)
२	मुग़ल	(७९८)
३	शेख़	(१२,३८०)
४	पठान	(९,९२३)
५	राजपूत	(७३०)
६	नौ-मुसलमान	(२००)
७	मोमिन	(२६२)
८	मनिहार	(४३)
९	दर्ज़ी	(३२)
१०	लुहार	(४)
११	तेली	(३५)
१२	कुँजड़ा	(९)
१३	क़स्साब	(३८)
१४	गूजर	(६३)
१५	तुर्क	(८)
१६	लोध	(२)
१७	मेव	(४१)
१८	मल्लाह	(२)
१९	भिश्ती	(७७)
२०	गद्दी	(३१)
२१	लुनिया	(४)
२२	धुनिया	(९३)
२३	नाई-हज्जाम	(७८)
२४	मुस्लिम भट्ट	(७)
२५	फ़क़ीर	(१०)
२६	मेवाती	(२)
२७	डफ़ाली	(१)
२८	टागा	(८)
२९	बंजारा	(१)
३०	घोसी	(३)
३१	छिपी	(३)
३२	रईन	(१)
३३	धोबी	(३)
३४	रंगराज	(१)
३५	हज्जाम	(५)
३६	संत	(२)
३७	दाई बचोहा	(१)
३८	कासगर	(१)
३९	कम्बोह	(४)
४०	जाट मुस्लिम	(२५)
४१	बिलोची	(९)
४२	रैन	(१)
४३	आवान	(१०)
४४	खोकर	(१)
४५	क़ाज़ी	(१)
४६	दर मुस्लिम	(१)
४७	महेशरा मुस्लिम	(२)
४८	मायार	(१)
४९	अफ़ग़ान	(२)
५०	रंघर	(१)
५१	चौधरी	(१)
५२	पंजाबी मुस्लिम	(१)
५३	राँभा	(१)
५४	सूदान	(२)
५५	सानी शाह	(१)
५६	दरवेश	(१)
५७	चकई	(१)
५८	नदफ़	(१)
५९	अनसारी†	(३)
६०	गढ	(६)
६१	मलिक	(१)
६२	बेज़ात	(४)

*नोट—कोष्ठक में प्रत्येक जाति के सरकारी मुलाज़िमों की संख्या दी गई है।

†नोट—"मोमिन" को 'अनसार' या 'अनसारी' अथवा 'जुलाहा' भी कहते हैं।

परिशिष्ट (इ)

मुस्लिम जातियाँ*

जाति	पुरुष	स्त्री	साक्षर पुरुष	साक्षर स्त्री	प्रतिहज़ार पुरुष	प्रतिहज़ार स्त्री
सैयद	१,३४,०००	१,१९,०००	५१,०००	१०,०००	३८०	९०
मुग़ल	२६,०००	२२,०००	७,०००	१	२६०	५०
शेख़	६,९९,०००	५,८८,०००	९,३०,०००	१९,०००	१९०	३०
पठान	४,७३,०००	४,०९,०००	७०,०००	९,०००	१५०	२०
जाट	११,०००	९,०००	†	†	८०	†
नौ-मुसलमान	३६,०००	३३,०००	२,०००	११६	६०	४
जुलाहा	४,१६,०००	३,७६,०००	२३,०००	२,०००	५०	३
मनिहार	४५,०००	४१,०००	२,०००	८८	५०	२
दरज़ी	१,१३,०००	९३,०००	६,०००	३४५	५०	४
लोहार	२,५५,०००	२ ,२१,०००	१२,०००	३३४	५०	२
तेली	४,२८,०००	३,८०,०००	१८,०००	६६९	४०	२
राजपूत	८९,०००	७७,०००	†	†	१८०	†
कुँजड़ा	३७,०००	३३,०००	२,०००	१९२	४०	६
क़स्साब	७६,०००	६०,०००	३,०००	२३७	३०	४
गूजर	३९,०००	३५,०००	†	†	३०	†
तुर्क	२८,०००	३१,०००	१,०००	४३	२०	१
धुनिया	१,६८,०००	१,५२,०००	४,०००	२३१	३०	२
लोध	४,७१,०००	४,०९,०००	११,०००	२७३	२०	७
मेव	१४,०००	१०,०००	१०,०००	४८	२०	५
मल्लाह	१,१३,०००	१,१९,०००	३,०००	३५	२०	३
लुनिया	१,८८,०००	१,८१,०००	४,०००	६३	२०	३
भिश्ती	४२,०००	३६,०००	०,८०९	८०	१०	२
गद्दी	३७,०००	३०,०००	०,५०२	९८	१०	३
कुल जोड़	३५,४८,०००	३४,७४,०००				

*नोट—सब आँकड़े हज़ार के पूर्णांकों में हैं।

† अप्राप्य

वर्तमान पंजाब--समीप से

लेखक, प्रोफ़ेसर धर्मदेव शास्त्री

अपने देश की समस्याओं का स्मरण करते ही पंजाब सबसे प्रथम ध्यान में आ जाता है। पंजाब का स्मरण समस्या को जटिल करनेवाले और नई-नई समस्याओं को जन्म देनेवाले के रूप में ही होता है। कुछ दिन हुए पंजाब-सरकार के प्रधान मन्त्री सर सिकन्दर हयात खाँ ने ठीक ही कहा था कि "यदि पंजाब में साम्प्रदायिक समस्या का हल कर लिया जाय तो सारे देश में यह समस्या सुलझाई जा सकती है।" पंजाब को केवल हिन्दू-मुस्लिम-समस्या को ही जन्म देने का श्रेय नहीं प्राप्त है, हिन्दी-उर्दू-समस्या, काश्तकार और ग़ैर-काश्तकार की समस्या, हिन्दू-सभा और मुस्लिम लीग को जन्म देने और पोषण करने की समस्या, संयुक्त निर्वाचन के विरोध में पृथक् निर्वाचन-प्रणाली को प्रचलित करने की समस्या, बच्चों और स्त्रियों को भगाने की समस्या, हिन्दू-राज्य और पान-इस्लामिक राज्य की समस्या, खाकसारों और दरान्ती-दल की समस्या, ग़र्ज़े कि सभी समस्यायें शुरू होती हैं पंजाब की सर ज़मीन से ही! जिस तरह पंजाब में अच्छा गेहूँ पैदा होता है उसी तरह मुल्क की ग़ुलामी को क़ायम रखनेवाली नई फूट को भी हर मौसम में पंजाब की उर्वरा भूमि ही पैदा करती है। पिछले कुछ सालों के इतिहास को आप देखें तो आपको मालूम होगा कि पंजाबी वीर--हिन्दू और मुसलमान दोनों ने--नेतागिरी के नुस्ख़े की ईजाद में कितने-कितने कष्ट उठाये हैं। कोई भी आन्दोलन पंजाब में छः मास से अधिक नहीं चल सका और जब जब निर्वाचन की ऋतु आई, पंजाब ने देश को नई चीज़ अवश्य दी है।

'इस्लाम खतरे में', 'हिन्दू-धर्म नाश की ओर', 'वेद और क़ुरान का लोप हो जायगा', इत्यादि नारे बुलन्द करने का श्रेय पंजाब के धर्म और मज़हब के दीवानों को ही है। हो सकता है, ये मेरे शब्द आवश्यकता से अधिक कड़े हों, परन्तु असत्य तो नहीं ही हैं। इन पंक्तियों का लेखक पंजाब का विरोधी नहीं--उसका जन्म ही पंजाब में हुआ है। उसका यह अर्थ भी नहीं कि पंजाब से कुछ भी भलाई नहीं। पंजाबी भोजन, आर्थिक स्थिति आदि कई बातें अच्छी हैं। परन्तु आज पंजाब की हालत यह है कि उसकी धारा सभा में प्रतिगामी ज़मींदारों--नम्बरदारों और ज़ेलदारों--का बहुत्व है। पंजाब के लोग--बहुसंख्यक--ऐसे हैं जो व्यक्ति को ही वोट देते हैं--प्रोग्राम अथवा दल-विशेष का वहाँ कुछ भी महत्त्व नहीं। राजनैतिक जागृति का नाम भी जिन तक नहीं पहुँचा ऐसे लाखों व्यक्ति यहीं आपको मिलेंगे।

आप कभी पंजाब-असेम्बली हाल में जाकर वहाँ के भव्य प्रासाद का दर्शन कीजिए और भीतर पहुँचे हुए एम० एल० ए० महोदयों का दर्शन कीजिए। आपको मालूम होगा, यहाँ बहुसंख्या उन लोगों की है जो राजनीति का क, ख, ग, भी नहीं जानते और बन गये हैं प्रान्त के कर्ता-धर्ता और संहर्ता। हमारा देश अविभाज्य है इसलिए पंजाब की दुरवस्था की उपेक्षा नहीं की जा सकती। हम सबका आज पहले से अधिक कर्त्तव्य है कि समूचे देश की वस्तुस्थिति से परिचित हों, जिससे अपनी शक्ति का अथवा दुर्बलता का ज्ञान रहे और हम अपने आपको कहीं धोखे में न रक्खें। इन पंक्तियों का लेखक एक ही सप्ताह पूर्व पंजाब को समीप से देखकर आ रहा है, जो कुछ वह देख सका है और पंजाब के व्यक्तियों से बातचीत करके जान सका है उसी का संक्षिप्त परिचय कराना ही प्रस्तुत लेख का उद्देश्य है।

३१ अक्टोबर सायंकाल को देहरादून से चलकर मैं अपने साथी पंडित रमेशचन्द्र बहुखंडी के साथ १ नवम्बर को फगवाड़ा पहुँचा। फगवाड़ा पंजाब की एक प्रसिद्ध मंडी है और कपूरथला-राज्य के अन्तर्गत है। सिक्ख-राज्य होने के कारण प्रायः सबके सिर पर पगड़ी दिखाई देती है। म्यूनिसिपैलिटी के चुनाव की धूमधाम मची थी। कपूरथला में पृथक् निर्वाचन-प्रथा नहीं है, तो भी मैंने देखा कि जिनको किसी भी प्रकार से म्यूनिसिपैलटी आदि में पहुँचने की धुन है वे संयुक्त निर्वाचन-प्रणाली में भी जाट और कायस्थ के हित से आर्यसमाजी और सनातनधर्मी के हित से ग़र्ज़े कि किसी हित की दुहाई देकर पैसे के बल पर वहाँ पहुँचने का प्रयत्न करते हैं। यह सत्य मुझे फगवाड़ा में स्पष्ट दिखाई दिया।

फगवाड़ा में मुझे एक और 'सत्य' का भी साक्षात्कार हुआ जो ब्रिटिश इंडिया में रहते हुए नहीं दीख सकता। कपूरथला में गोवध क़ानून से निषिद्ध है, इसी कारण मुझे वहाँ अच्छी गौएँ और शुद्ध दूध-घी के दर्शन हुए। हमारे मेज़बान लाला गुरुदास राय जी के पास चार गायें हैं, जिनमें १० सेर एक बार में कम दूध देनेवाली कोई नहीं।

लाला जी के घर यथेच्छ मक्खन और दूध की छूट पाकर मुझे बचपन के दिन याद आगये। आज-कल देशी राज्यों में 'डेमोक्रेसी' की चर्चा खूब चल रही है। परन्तु मुझे यह डर है कि डेमोक्रेसी के नाम पर ब्रिटिश भारत के समान देशी राज्यों में भी गौओं की 'डेमोक्रेसी' पर कहीं आघात न हो--कहीं 'इस्लाम खतरे में' का नारा बुलन्द करके गौओं पर वहाँ भी छुरी न चलने लगे। मुझे आशा है, देश के विज्ञ नेता इस पर विचार करेंगे।

फगवाड़ा से चलकर मैं अमृतसर पहुँचा। अमृतसर पंजाब का मुख्य व्यापारिक केन्द्र है। राष्ट्र के इतिहास में अमृतसर का बहुत ऊँचा स्थान है। हमारी राष्ट्रीय उन्नति का सच्चा इतिहास जलियाँवाला बाग़ की घटना के बाद से ही प्रारम्भ होता है। परन्तु आज? अमृतसर को देखकर यह विश्वास नहीं होता कि कभी यहाँ ऐसी घटना घटी होगी। यदि मैं ग़लती नहीं करता तो भारतवर्ष भर में विदेशी वस्तुओं और विशेषतः विदेशी वस्त्रों की जितनी बिक्री अमृतसर में होती है, उतनी शायद अन्यत्र न होती होगी। जिन बाज़ारों में विदेशी सामान बिकता है, वहाँ बहुत अधिक भीड़-भाड़ को और लोगों की तड़क-भड़क को देखकर मैं हैरान हो गया।

जिस जाति का जन्म हिन्दू-जाति की रक्षा के लिए हुआ, जिन सिक्ख वीरों को बाधित रूप से संयमी बनने के लिए गुरुओं ने केश रखने तक का भी आदेश और निर्देश किया; अमृतसर उनका गढ़ है परन्तु आज उन सिक्खों में और उनकी स्त्रियों में फ़ैशन का समुद्र उमड़ रहा है। शराब के नशे में चूर इन वीरों को देखकर यादवों का स्मरण हो आता है। वस्तुतः सिक्ख-जाति को जीवित रखने के लिए यह आवश्यक है कि इस जाति को शराब की लत से मुक्त किया जाय। अन्यथा इस जाति का नाश और सर्वनाश निश्चित है। इतिहास इस सत्य का साक्षी है।

अमृतसर में सिर से पैर तक शुद्ध खादी पहननेवाले मुझे गिनती के चार सज्जन ही दिखाई दिये। फ़ैशन की तो बात ही न पूछिए। लाहौर और अमृतसर हिन्दुस्तान के पेरिस कहे जाते हैं। दुःख तो इस बात का है कि लाहौर और अमृतसर की देखा-देखी पंजाब के छोटे छोटे गाँव तक में फ़ैशन मनोवेग से फैल गया है और फैलता जा रहा है।

अमृतसर हिन्दू-सिक्खों का गढ़ समझा जाता है, परन्तु अब धीरे धीरे वहाँ शहर में भी मुसलमानों की संख्या बढ़ती जा रही है और वहाँ के व्यापार के स्रोत पर भी मुसलमानों का प्रभाव बढ़ता जा रहा है। मैं इसका विरोधी नहीं। मेरा तो उद्देश्य वस्तुस्थिति का बताना है। इसके कारणों की तलाश करने पर मुझे मालूम हुआ कि हिन्दू-जाति सदियों से धन एकत्र करती आई है और धन ही इसका इष्टदेव रहा है, इसलिए परिश्रम और उत्साह की इसमें बहुत कमी हो गई है, इसका परिणाम यह हुआ है कि अब धन का स्रोत भी उसके हाथ से छिन रहा है। मुसलमान इसमें उत्साह के साथ प्रविष्ट हो रहे हैं, इसलिए उनका मुक़ाबिला करना कठिन हो गया है। इसी कारण काफ़ी हिन्दू दूकानदार पंजाब छोड़कर युक्तप्रान्त में जा रहे हैं। हिन्दुओं के अन्दर इतना सड़ियलपन और व्यापारिक रूढ़िवाद है तथा उनको श्रम से नफ़रत पैदा होगई है कि अब उनके हाथों में व्यापार भी नहीं रह सकता। मैं राजनैतिक दृष्टि से इस विषय पर विचार करता हूँ। यदि पंजाब में हिन्दू दूकानदारी से भी न कमा सकेंगे तो वे वहाँ जीवित नहीं रह सकते, क्योंकि सरकारी नौकरियाँ उन्हें मिलने से रहीं और ज़मीन का नया एक टुकड़ा भी उन्हें मिल नहीं सकता। हाँ, जो ज़मीन पास में है वह छिन अवश्य सकती है। क़ानून ही ऐसे ऐसे वहाँ बन गये हैं। पंजाब के हिन्दुओं की हालत यह है कि वे सिवा रोने के कुछ भी करने के लिए तैयार नहीं। आज भी वहाँ जो युवक 'छोटा' काम याने मज़दूरी दर्ज़ी आदि का काम करे तो उसकी शादी हिन्दुओं में नहीं हो सकती। मेरा तो विश्वास है कि पंजाब में व्यापार के अन्दर भी

हिन्दू-मुस्लिम-सवाल पैदा करके हिन्दू-सभाई नेताओं ने हिन्दुओं का महान् अनिष्ट किया है। क्योंकि इस प्रकार मुसलमान 'मुसलमान से खरीदें' का आन्दोलन पैदा हो गया है, जिसका परिणाम है हिन्दुओं की हानि। पंजाब के हिन्दुओं के जीवित रहने का उपाय एक ही है और वह है कांग्रेस में सम्मिलित होना। क्योंकि इसी प्रकार पंजाब में हिन्दू-मुस्लिम-एकता का वातावरण पैदा किया जा सकता है, जिसका परिणाम होगा पंजाब में हिन्दुओं की समृद्धि।

पंजाब के साधारणतया और अमृतसर के मुख्यतया धनी हिन्दू साहूकार अपनी रक्षा के लिए गुंडों को प्रश्रय देते हैं, क्योंकि वे स्वयं अपनी रक्षा करने में असमर्थ हैं। यही हाल मुसलमानों का भी है। फ़र्क़ इतना है कि हिन्दू को रक्षा की फ़िक्र है और मुसलमान को आक्रमण की। अमृतसर में मैंने हिन्दुओं और मुसलमानों के उन सरदारों (गुण्डों के सरदार) के ठाठ-बाट देखे, और देखे उनके रोब-दाव। सैकड़ों आदमी उनके दरबार में भोजन करते हैं। पंजाब में उन्हें 'पहलवान' कहते हैं। मैं शारीरिक शक्ति का विरोधी नहीं, परन्तु शारीरिक शक्ति के नाम पर पंजाब में जिस हिंसा को प्रश्रय मिल रहा है वह देश के लिए घातक है। खाक़सार-आन्दोलन की देखा-देखी पंजाब में धीरे धीरे हिन्दुओं में 'दरान्तीदल' 'अग्निदल' आदि दल भी अस्तित्व में आये हैं। महात्मा गांधी के अहिंसा से वहाँ के हिन्दू और मुसलमान डर गये हैं और लाभ उठाने की फ़िक्र में हैं। गांधी जी कहते हैं कि उन्होंने भारत को अहिंसा हृदयङ्गम करा दी है, परन्तु यदि वे आज-कल पंजाब में जायँ तो उन्हें वहाँ का प्रत्येक हिन्दू और मुसलमान दुर्वासा बना हुआ मिलेगा।

लाहौर और अमृतसर में मुझे अनेक जिम्मेदार हिन्दू नेताओं से मिलने का अवसर मिला। मैंने देखा कि उनका कार्य केवल कांग्रेस को गाली देना भर है। पंजाब में आपको प्रायः ऐसे हिन्दू-नेता मिलेंगे जो उर्दू-विरोधी हैं और कांग्रेस को तथाकथित हिन्दी-विरोधी होने के कारण न जाने क्या क्या कहते हैं। परन्तु आप आश्चर्य में पड़ जायँगे जब यह सुनेंगे कि उनमें से प्रायः एक भी नागरी-लिपि को नहीं जानता और जो जानते हैं वे भी उसे इस योग्य नहीं समझते कि पत्र-व्यवहार उसी में करें। इस कार्य के लिए तो उर्दू ही उपयुक्त मानी जाती है। यह बात उनके व्यवहार से प्रकट होती है। मैंने सारे अमृतसर और लाहौर में साइन-बोर्डों पर उर्दू और अँगरेज़ी लिखी देखी। भूले-भटके यदि किसी साइन-बोर्ड पर हिन्दी किसी कोने में लिखी हुई मिली भी तो पूछने पर पता चला कि इस दूकान से अधिकतर हिन्दू स्त्रियाँ क्रय करती हैं, इसलिए यहाँ हिन्दी लिखी है। पंजाब में हिन्दी 'औरतों की भाषा' समझी जाती है। मैं समझता तो यह था कि पंजाब में अधिक संख्या उर्दू-विरोधी हिन्दुओं की है, इसलिए हिन्दुओं के यहाँ उर्दू को तो कतई स्थान न होगा, परन्तु दिखा उलटा ही। सचमुच पंजाब में हिन्दी की बहुत ही दयनीय दशा है और हालत यह है कि पंजाब में कोई बाक़ायदा काम करने-वाली हिन्दी-संस्था नहीं है। आश्चर्य तो यह है कि अच्छे अच्छे उर्दू-अख़बार हिन्दू चलाते हैं और वे हिन्दू जो कांग्रेस का इसलिए विरोध करते हैं कि वह हिन्दी-विरोधिनी संस्था है।

वास्तव में पंजाबी हिन्दू विरोध ही करना जानता है—काम करना नहीं जानता। इस अन्धकार में भी एक किरण दिखाई देती है और वह है आर्यसमाज। पंजाब के समस्त आर्यसमाजों की कार्यवाही नागरी में लिखी जाती है, जब कि प्रायः आर्यसमाजी उर्दू में ही लिखते पढ़ते हैं।

पंजाब की कांग्रेस की हालत भी सुन लीजिए। मरीज़ों को लड़ते तो आपने देखा होगा, परन्तु पंजाब में डाक्टर ही लड़ते हैं। पंजाब-कांग्रेस में डाक्टर गोपीचन्द-पार्टी और डाक्टर सत्यपाल-पार्टी दो दल हैं, जो देश की स्वतंत्रता के लिए भी एक नहीं हो सकते। यह है क़ौम के डाक्टरों का हाल! किसी ने क्या ही ख़ूब कहा है—उस बाग़ का क्या हाल हो जब माली भी पामाली करे। मेरे विचार में तो कांग्रेस-वर्किंग कमेटी को चाहिए कि वह कुछ दिनों की अवधि देकर पंजाब के इन 'पहलवानों' से कहे कि अमुक तिथि तक या तो एक हो जाओ अन्यथा सब अलग कर दिये जायँगे और प्रान्तीय कांग्रेस का कार्य स्वयं वर्किंग कमेटी करेगी।

पंजाब की राजनैतिक, सामाजिक और साहित्यिक स्थिति को देखकर कोई भी भारतीय मेरे ही समान दुःखी हुए विना नहीं रहेगा।

काश्मीर के जलमार्ग

हमारा प्रधान उपनिवेश

लेखक, श्रीयुत सेठ गोविन्ददास एम० एल० ए०

(७)

फिर से जंजीबार और लौंग का प्रधान द्वीप पेम्बा

नैरोबी से जंजीबार तक आज रास्ते में बड़े बड़े सुंदर दृश्य दिखाई दिये। नैरोबी से कुछ दूर आगे पहले तो हमने एरोप्लेन से एक विचित्र रंग की घटा जमीन पर चलती हुई देखी। जब उस घटा के ऊपर से हम लोग उड़ने लगे तब मालूम हुआ कि वह घटा न होकर ज़ेवरों का एक झुंड है। सैकड़ों नहीं, हजारों ज़ेबरा उस झुंड में थे। हरे-भरे मैदान में चित्र-विचित्र रंग के ज़ेवरों का यह झुंड चलती हुई वायु में डोलती हुई जंगली फूलों की झाड़ी के सदृश दिखाई दिया। इतना सुंदर दृश्य था कि जब तक वह आँखों की ओट न हुआ तब तक आँखें वहाँ से न हटीं। कुछ ही दूर हम और बढ़े होंगे कि हमें अब अपनी ओर आती हुई जमीन पर एक काली घटा दिखाई दी। नजदीक आने पर मालूम हुआ कि वह हाथियों का झुंड था। हजारों तो नहीं, पर सैकड़ों हाथी इस झुंड में अवश्य थे। इतने हाथी इकट्ठे इस प्रकार हम लोगों ने कभी नहीं देखे थे। जब एरोप्लेन की आवाज़ से यह झुंड तितर-बितर हुआ उस समय का दृश्य तो देखने योग्य था। वे मोटे मोटे गोलाकार हाथी एरोप्लेन पर से काले काले गोल फुटबाल के सदृश उछलते-कूदते दिखाई दिये। आहा! कैसा अद्भुत दृश्य था। थोड़ी दूर और आगे बढ़ने पर हमें किलिमेंजारों की पर्वत-श्रेणियों के दर्शन होने लगे। इन श्रेणियों की बाईं ओर से एरोप्लेन उड़ रहा था और दाहिनी ओर ये पर्वत-श्रेणियाँ बर्फ़ से ढँकी हुई थीं, जो सूर्य की किरणों में चमक कर आँखों को चकाचौंध किये देती थीं। ऐसा मालूम देता था, मानों पर्वतराज अपने अनन्त मस्तकों पर स्फटिक मणियों से जड़ा हुआ किरीट लगाये हुए है। उन उन्नत श्रेणियों के नीचे की पर्वत-मालायें श्वेत बादलों से आच्छादित थीं। इन्हें देख मालूम होता था, मानों गिरिराज अपने शरीर पर श्वेत वस्त्र धारण किये हुए है। नीचे की श्रेणियाँ रंग-बिरंगे वृक्षों से व्याप्त थीं, मानों इस गिरीश के चरणों पर किसी ने पुष्पांजलियाँ चढ़ा दी हों। किलिमेंजारो की यह वैभव-पूर्ण सुषमा मीलों दृष्टि-गोचर हुई। इसके बाद हम समुद्र के किनारे पर उड़ने लगे। किनारे पर टकराती हुई फेन से पूर्ण समुद्र की तरंगें सूर्य की किरणों में ऊपर से ऐसी दिखाई दीं, मानों रत्नाकर अपने भीतर से अनन्त मुक्ताओं को अपने करों में उठाकर पृथ्वी को भेंट कर रहा हो। जब हम समुद्र पर से उड़ने

लगे उस समय पायलेट विमान को और ऊपर उठाने लगा। धीरे धीरे हम लोग समुद्र की सतह से दस हज़ार फ़ुट ऊपर हो गये। पर्वत-प्रदेश में एरोप्लेन इसलिए अधिक उँचाई पर उड़ाया जाता है कि पहाड़ों से टक्कर होने का भय न रहे, परन्तु समुद्र पर से इतनी उड़ान देख कर मुझे आश्चर्य हुआ। जब मैंने इसका कारण पूछा तब पायलेट बोला:—

यदि इंजिन बन्द हो जाय तो बिना इंजिन की सहायता के मैं मशीन को प्रतिहज़ार फ़ुट की उँचाई से दो मील आगे या पीछे ले जा सकता हूँ। इस प्रकार इस दस हज़ार फ़ुट की उँचाई से मैं आगे या पीछे मशीन को २० मील तक ले जा सकूँगा। २० मील के भीतर यदि कहीं ज़मीन मिली तो मैं पानी में गिरने की जगह उस पर मशीन को उतार सकता हूँ। इसी लिए समुद्र पर हम लोग सदा बहुत ऊँचे उड़ा करते हैं।

मैंने पूछा—"क्या इंजिन के बन्द होते ही मशीन एकदम ज़मीन पर नहीं गिरती?"

"हर्गिज़ नहीं। एक बार उँचाई पर तेज़ी से उड़ने के बाद बिना इंजिन की सहायता के भी बहुत देर तक मशीन उड़ सकती है।"

यह कहकर पायलेट ने फ़ौरन इंजिन को बन्द कर दिया। बिना पावर के मशीन उसी प्रकार उड़ी हुई चली जा रही थी। थोड़ी देर के बाद उसने फिर इंजिन को चला दिया।

आज के ४०॰ मील के सफ़र में क़रीब ४ घंटे लग गये, क्योंकि वायु का वेग विपरीत दिशा में था।

एक बजे के क़रीब हम लोग ज़ंज़ीबार के एरोड्रोमा में उतरे। ज़ंज़ीबार के सभी प्रतिष्ठित व्यक्ति एरोड्रोम पर मौजूद थे। हम लोगों के एरोप्लेन से बाहर निकलते ही 'ज़ंज़ीबार वायस' के सम्पादक मिस्टर इब्राहीम ने मेरे ज़ंज़ीबार से जाने के बाद वहाँ जो कुछ हुआ था उसका वृत्तान्त सुना दिया, जो एरोप्लेन की आज की यात्रा से कम मनोरंजक न था। मिस्टर इब्राहीम ने कहा:—

आपके तारीख़ २१ के भाषण ने यहाँ बड़ी सनसनी पैदा कर दी है। उपनिवेशों को भी ब्रिटिश गवर्नमेंट के वर्तमान रुख़ के कारण ब्रिटिश साम्राज्य से पृथक् होने की घोषणा करनी पड़ेगी। आपके इस कथन पर ब्रिटिश रेज़ीडेंट बड़ा क्रुद्ध है। हमारे पूर्व-पुरुषों ने अँगरेज़ों को यहाँ बुलाकर भारी भूल की थी आपके इस कथन पर ज़ंज़ीबार के सुल्तान बड़े अप्रसन्न हैं। आपको तो अब यहाँ उतरने ही न दिया जायगा, यह ख़बर थी।

इसके बाद मिस्टर इब्राहीम ने मेरे हाथ पर 'अल-फलक' अख़बार का तारीख़ २७ नवम्बर का वह अंक रख दिया जिसमें मेरे भाषण की आलोचना छपी थी।

ज़ंज़ीबार के इस क्षुब्ध वायुमण्डल को देख कर मुझे बड़ा आनन्द आया। मैंने अनुमान किया कि ब्रिटिश रेज़ीडेंट और सुल्तान का क्षोभ मेरे भाषण पर कम और इस बात पर अधिक होगा कि जो व्यापारी लौंग के व्यापार के बहिष्कार में थोड़े बहुत ढुलमुल हो रहे थे वे मेरे भाषण के कारण पक्के हो गये हैं। फिर मुझे ब्रिटिश रेज़ीडेंट के क्रोध पर तो कोई विशेष आश्चर्य न हुआ पर ज़ंज़ीबार के सुल्तान की अप्रसन्नता पर ज़रूर ताज्जुब हुआ। मेरे इस कथन पर कि हमारे पूर्व पुरुषों ने अँगरेज़ों को यहाँ बुला कर भारी ग़लती की थी सुल्तान को तो सबसे ज़्यादा ख़ुश होना चाहिए था क्योंकि इस ग़लती का सबसे अधिक अनुभव तो सुल्तान ही करते थे जिनकी स्थिति एक पेंशनर क़ैदी की-सी थी। हाँ, यदि ग़ुलामी किसी के ख़ून में ही प्रविष्ट हो गई हो और जिस प्रकार गलीच जगहों में भी रहते हुए कीड़े मकोड़े आनन्द से रह सकते हैं उसी प्रकार ग़ुलामों को ग़ुलामी में ही आनन्द का अनुभव होता हो तो दूसरी बात है। विवशता के कारण अपनी पतितावस्था में भी सन्तोष मान लेना एक बात है और उस पतितावस्था को ही सच्ची उच्च स्थिति मान लेना तो अधःपतन की पराकाष्ठा है। सुल्तान किस मानसिक प्रकृति के मनुष्य थे यह मैं न जानता था।

मैसूर की घटना की पुनरावृति के लिए, और उसके भी आगे बढ़कर ज़ंज़ीबार के जेल में भी कुछ दिन विश्राम करने के लिए तैयार हो इण्डियन नेशनल एसोसिएशन के सभापति मिस्टर ग़ुलामअली के साथ मैं मिस्टर कावसजी दीनशा के ऐतिहासिक बँगले पर पहुँचा जहाँ मेरे ठहरने की व्यवस्था की गई थी। इसी

स्थान पर महात्मा गांधी, राइट आनरेबिल मि॰ शास्त्री आदि ठहर चुके थे। बँगला समुद्र के किनारे अत्यन्त रमणीक स्थान पर था। ज़ंज़ीबार बंदरगाह में आये हुए सभी जहाज़ इस बँगले की बालकनी से दिखाई देते थे। रात्रि को जहाज़ों की रोशनी और पानी पर पड़ते हुए उनके प्रतिबिम्ब से ऐसा भास होता था मानों अनेक प्रज्वलित दीपों की पानी में एक माला ग्रथित कर दी गई हो।

उस दिन मुलाक़ातों के अतिरिक्त और कोई काम न था। हिन्दू और मुसलमान सभी बड़ी संख्याओं में मुझसे मिलने आये। इन मुलाक़ातों से मुझे मालूम हो गया कि ज़ंज़ीबार का वायुमंडल कितना गर्म था। यह देख कर मुझे सन्तोष हुआ कि वहाँ के सभी लोग मेरे समर्थक थे। सब यही पूछते थे कि जाने के पहले मैं भाषण दूँगा या नहीं। मैंने सभी को आश्वासन दिया कि मैं फिर से वहाँ बोले बिना जानेवाला नहीं हूँ।

दूसरे दिन प्रातःकाल मुझे एरोप्लेन से पैम्बा जाना था। लोगों को भय था कि मेरी पैम्बा की यात्रा रोक दी जायगी पर ऐसी कोई घटना न हुई और ठीक ८ बजे प्रातःकाल ज़ंज़ीबार से उड़ कर एक घंटे में हम लोग पैम्बा पहुँच गये। पैम्बा एरोड्रोम पर वहाँ के सभी प्रतिष्ठित व्यक्ति मौजूद थे।

पैम्बा एक सुन्दर हरा-भरा टापू था, ज़ंज़ीबार से भी अधिक हरा भरा। लौंग के वृक्ष यहाँ ज़ंज़ीबार से कई गुने अधिक थे। आज ईद थी इस कारण पैम्बा के छोटे से बाज़ार में भी बड़ी चहल-पहल थी। इस्लाम धर्म में कितना भ्रातृभाव है इसका एक भारी प्रमाण मुझे आज पैम्बा में मिला। हिन्दुस्तानी मुसलमान और सुहेली मुसलमान दो पृथक् वर्गों के होते हुए भी इस्लाम धर्म में दीक्षित होने के कारण किस प्रकार भाई-भाई के सदृश गले मिल रहे थे। एक दूसरे को किस प्रकार ईद की मुबारकबादी दे रहे थे।

पैम्बा द्वीप के तीनों ज़िलों में हम लोगों ने भ्रमण किया। वहाँ के लौंग की खेती देखी और वहाँ के व्यापारियों की हालत। जो व्यापारी लाखों रुपये साल की लौंग ख़रीद कर निर्यात कर व्यापार किया करते थे वे अपने प्रण के कारण धनियाँ-मिर्च बेचते हुए किस प्रकार हाथ पर हाथ रक्खे बैठे थे। कैसा सुन्दर संगठन था, कैसी दृढ़ प्रतिज्ञा थी, कैसा महान त्याग था! मैंने आज पैम्बा द्वीप में तीन सार्वजनिक सभाओं में भाषण दिये। पैम्बा की सभा में तो वहाँ के अरबनेता भी उपस्थित थे। संध्या को एरोप्लेन से मैं ज़ंज़ीबार लौट आया। आज हमारी हवा की यात्रा समाप्त होती थी। पायलेट और एरोप्लेन को बिदा करते समय ज़ंज़ीबार के एरोड्रोम में मेरे नेत्रों से दो बूँद आँसू टपक ही पड़े। अँगरेज़ होते हुए भी हमारा पायलेट कितना भला आदमी था और सारी यात्रा में लक्ष्मीचन्द और मेरे साथ किस प्रकार रहा था। हम लोग भिन्न भिन्न जातियों के हैं यह उस पायलेट ने हमें अनुभव ही न होने दिया था।

आज संध्या को ज़ंज़ीबार में मुझे दुग्धपार्टी दी गई। हिन्दू-मुसलमान सभी इस पार्टी में सम्मिलित थे।

तारीख़ ६ की रात को करञ्जा जहाज़ से हम लोग दक्षिण-अफ्रीका को रवाना होनेवाले थे। आज ही संध्या को ज़ंज़ीबार में सार्वजनिक सभा थी। सभा में बहुत बड़े जन-समुदाय के उपस्थित होने की सम्भावना के कारण सभा थियेटर में न रख कर मैदान में रक्खी गई थी। सारा मैदान भीड़ से खचाखच भरा हुआ था। लोगों को भय था कि ठीक समय पर सभा को रोक दिया जायगा पर ऐसी कोई बात न हुई। मैं क़रीब एक घंटे तक बोला। तारीख़ २० नवम्बर की कही हुई प्रत्येक बात का मैंने फिर समर्थन किया जिसका समर्थन किया जनता ने तालियों की कड़कड़ाहट से। मैंने वहाँ के व्यापारियों को प्रतिज्ञा-पालन की दृढ़ता पर बधाई दी और भविष्य में भी वे इसी प्रकार अपने प्रण पर डटे रहेंगे इसका वचन लिया। इसके बदले में मैंने उन्हें यह आश्वासन दिया कि भारत में लौंग के बायकाट को सफल करने में कांग्रेस कुछ उठा न रक्खेगी।

दक्षिण से लौटते हुए फिर से ज़ंज़ीबार आने का आश्वासन देकर मैं करञ्जा पर सवार हो गया। यह जहाज़ टायरिया से दो हज़ार टन अधिक का था—उससे कहीं अधिक सुन्दर और आधुनिक भीड़ भी कम थी।

अर्द्धरात्रि के समय करञ्जा ज़ंज़ीबार से छोड़ दिया गया।

रिक्ता

अनुवादक, पण्डित ठाकुरदत्त मिश्र

सविता एक डिप्टी कलेक्टर की कन्या थी। छुटपन में ही पिता की गोद से बिछुड़ जाने के बाद समृद्ध और साधन-सम्पन्न पितृव्यों से उपेक्षित होने के कारण उसे माता के साथ अपने धन-हीन किन्तु सम्मान-प्रिय एवं धर्मप्राण नाना के ही यहाँ आश्रय लेना पड़ा। इसलिए शिक्षा और सदाचार से युक्त होने पर भी ऊपरी तड़क-भड़क से भी वह वञ्चित रही। और यही कारण था कि अपने सुशिक्षित और रूप-गुण-सम्पन्न पति को प्रिय न हो सकी। फल यह हुआ कि सविता घर में दासी का-सा जीवन व्यतीत करने के लिए बाध्य हुई और अरुण उसके कारण घर से दूर रहने लगा। बहुत दिनों के बाद एकाएक सविता को माता का एक पत्र मिला, जिसमें यह लिखा था कि वे उसे देखने के लिए आ रही हैं, परन्तु सविता को भय था कि यहाँ आने पर वे उसकी वास्तविक दशा देखकर दुखी होंगी, इससे उसने उन्हें आने से रोक दिया।

(१०)

बाहर जगत् बाबू से कुछ देर तक बातचीत करने के बाद सविता के नाना ने ज़रा-सा कुण्ठित भाव से कहा—मुझे और अधिक समय तो है नहीं। ज़रा-सा सविता से मुलाक़ात कर लेने के बाद ही मैं चलना चाहता हूँ।

जगत् बाबू ने पूछा—क्यों? इतनी शीघ्रता आप क्यों कर रहे हैं?

"मैं काशी जा रहा हूँ न। गाड़ी पकड़नी होगी"

"तो क्या हमारी समधिन जी घर पर ही रह गई हैं?"

"जी नहीं, वहाँ किसी का सहारा तो है नहीं कि उसे छोड़ जाऊँ? वह भी मेरे साथ ही जा रही हैं। स्टेशन पर मुसाफ़िरख़ाने में उसे बैठाल आया हूँ। इसी लिए लौटने में ज़रा और शीघ्रता कर रहा हूँ। अरुण से मुलाक़ात न हो सकने के कारण मुझे बड़ी निराशा हुई। विवाह के बाद फिर उसे नहीं देख सका। विवाह के ही समय उससे कितनी देर के लिए मुलाक़ात हुई थी!"

समधिन को स्टेशन पर छोड़ आने के सम्बन्ध में जगत् बाबू ने कुछ असन्तोष प्रकट किया। इसके उत्तर में सविता के नाना ने कहा—क्या करूँ? वह किसी प्रकार आने को तैयार ही नहीं हुई। इसके अतिरिक्त आज एकादशी है। इस कारण मैं अधिक आग्रह भी नहीं कर सका।

नीचे के ख़ूब लम्बे-चौड़े दालान में ले जाकर जगत् बाबू ने सविता के नाना को बैठाया। नौकरानी जाकर सविता को बुला ले आई। सविता की गोद में था पुलक। उसे भूमि पर उतार कर उसने श्वशुर और नाना को प्रणाम किया। उसकी ओर ताकते हुए नाना ने कहा—क्या हाल है बच्ची, अच्छी तरह हो न?

मस्तक झुकाकर सविता ने ज़रा-सा हँस दिया। उस समय उसकी दोनों आँखें भर आई थीं। मुख नीचा करके उसने उन आँसुओं को छिपा लिया।

सविता के नाना ने अपनी भर्राई हुई आवाज़ को ज़रा-सा साफ़ करके उसे कुछ दिन के लिए अपने यहाँ ले जाने का प्रस्ताव किया। उसके उत्तर में जगत् बाबू ने कहा—इसमें मुझे तो कोई विशेष आपत्ति नहीं है, किन्तु बहू ने जो एक जीव को पाल रक्खा है उसी के कारण उसका जाना असाध्य हो गया है। इसके सिवा घर में विवाह भी पड़ गया है, इससे इस बार सुविधा नहीं है। कुछ दिनों के बाद ले जाइएगा।

संक्षेप में ही दो-चार बातें करके सविता के नाना विदा हो गये। अरुण से मुलाक़ात न हो सकने के कारण सचमुच वे बहुत क्षुब्ध हो उठे थे। सविता को भी वे जो ज़रा देर के लिए देख पाये उससे उनकी समझ में यह न आ सका कि इस सुख के घर में आकर वास्तव में वह सुखी हो सकी है या नहीं। इससे हृदय में जो सन्देह का भाव उदित हुआ था वह भी नहीं दूर हुआ।

सविता के नाना का यह सारा सन्देह उस समय दूर हो जाता, जब कि उनके हृदय में चमचमाते हुए

अरुण के समान ही अरुण की कान्तिमय मूर्ति उदित हो आती। वे सोचते कि सविता को अरुण-जैसे तेजस्वी वर के हाथों में मैंने सौंपा है तब भला वह सुखी क्यों न होगी?

दूसरे दिन साथ में नई बहू को लिये हुए शुभेन्दु लौट कर घर आ गया। शरीर अच्छा न होने के कारण जगत् बाबू स्वयं नहीं जा सके, समधी को जो कुछ कार्य करने होते हैं, उन सबका भार स्वीकार करके अरुण ही गया था। उस अवसर पर उसके उत्साह में कोई वैसी कमी नहीं देखने में आई।

समस्त दिन आनन्द-उत्सव के तरह-तरह के आयोजन होते रहे। इस अवसर पर मेनका ने सविता को नहीं बुलाया। उसे न बुलाने का एक विशेष कारण था, यद्यपि उसे मेनका ने गुप्त ही रक्खा था। बात यह थी कि सविता अपने स्वामी को प्रिय नहीं थी और जो नारी स्वामी की प्रिय न हो, उसे बुलाना उन्हें उचित नहीं प्रतीत हुआ।

सविता पुलक को लिये हुए घर के कोने में ही पड़ी रही। मेनका ने उसकी इतनी अवज्ञा की थी, इतना तिरस्कार किया था, परन्तु फिर भी स्वेच्छा से साज-शृंगार करके बाहर निकलने की प्रवृत्ति उसकी नहीं हुई। सास की आज्ञा के बिना कपड़े बदलने का साहस भी उसे नहीं हुआ।

वर-वधू की गाड़ी बाजे-गाजे के साथ आकर जब द्वार पर लगी तब मेनका ने सविता को भी बुलाया। इस बुलावे के लिए सविता तैयार थी नहीं। उसने सोच रक्खा था कि शायद इतने आदमियों के बीच में मुझे न जाना पड़ेगा। परन्तु अन्त में जब एकाएक उसका बुलावा हो ही गया तब वह जिस वेश में थी उसी वेश में आकर खड़ी हो गई।

गाड़ी पर से शुभेन्दु के बाद अरुण भी उतर पड़ा। नातेदार-रिश्तेदार और पास-पड़ोस की स्त्रियाँ रंग-बिरंगे कपड़े और तरह-तरह के आभूषण पहने हुए वधू के स्वागत के लिए बड़े ठाट-बाट से खड़ी थीं। उन सबके बीच में केवल एक ही ऐसी स्त्री थी जो बिलकुल आडम्बरहीन थी। पोशाक उसकी बिलकुल सादी थी। परन्तु सोने और हीरे से सुसज्जित न होने पर भी उसके गौरव से आभामय मुख पर सबकी सम्मानपूर्ण और चकित दृष्टि पड़ रही थी, अरुण भी उसके मुख पर पड़ने से अपनी दृष्टि को रोक न सका।

सविता ने एक बार ताक कर देखा। अरुण एक खम्भे में टेक लगाये हुए खड़ा-खड़ा लज्जाहीन दृष्टि से उसी की ओर ताक रहा था। उसने एक पैर जूते से निकाल लिया था और उस नंगे पैर को दूसरे पैर के ऊपर रक्खे पीछे की ओर दोनों हाथ मोड़ कर उनसे खम्भे को पकड़े हुए वह खड़ा था। स्वामी के एक जोड़ा सफ़ेद कमल-जैसे चरणों पर निमेष भर के लिए दृष्टि पड़ते ही सविता का मुख लज्जा से लाल हो गया। वह वहाँ से चली गई।

हाय, दुर्भाग्य! सविता ने स्वेच्छा से अरुण की ओर नहीं ताका था, तो भी निमेषमात्र के लिए जो उसकी दृष्टि पड़ गई थी उसी के कारण मारे लज्जा के वह मरी जा रही थी। वह सोच रही थी कि कहीं कोई मेरे इस प्रकार देख लेने का यह अर्थ न लगा बैठे कि मैं लुब्ध-दृष्टि से उनकी ओर ताक रही थी।

मेनका कुलाचार के अनुसार वधू को गाड़ी पर से उतार रही थीं। वे सौभाग्यवती थीं, इसलिए वहाँ पर वर्तमान स्त्रियों ने वधू को यही आशीर्वाद दिया कि सास के समान तुम भी सौभाग्यवती होओ।

इधर कोई-कोई व्यक्ति एकाग्र मन से सविता के ही सम्बन्ध में विचार कर थे। मानो किसी आश्चर्यजनक वस्तु के रूप में आविर्भूत होकर उसने सबको अवाक् कर दिया था।

एक दूसरे कमरे में पुलक के चिल्ला-चिल्ला कर रोने की आवाज़ सुनकर सविता दौड़ पड़ी। एक ऊँची-सी कुर्सी पर बैठा हुआ पुलक खेल रहा था। एकाएक वह लड़खड़ाकर गिर पड़ा। बिलकुल आगे की ओर उसके दो दाँत नये निकले थे। उनके लग जाने के कारण ओठ कट गया था और रक्त बहने लगा था। जो नौकर उसे खेला रहा था वह उसे अकेला छोड़ कर बहू को देखने चला गया था। पुलक को वह साथ में नहीं ले गया, इससे सविता कुछ रुष्ट हुई। अन्त में उसे गोद में लिये हुए वह कमरे के भीतर ही रह गई। सविता के मन मे यह बात आई कि अभी झुंड की झुंड स्त्रियाँ आकर मेरे उपेक्षित शरीर को विद्रूपमय

दृष्टि के खोंचों से कोंचेंगी और उसके कारण मुझे क्लेश होगा। इसलिए सबसे अलग रहने में ही मेरा कल्याण है।

सविता का सौभाग्य था कि मेनका ने उसे फिर नहीं बुलाया।

विवाह के उपलक्ष्य में तरह तरह के उत्सवों का आयोजन किया गया था। उस सिलसिले में एक रास-मंडली आई थी। इन ज़मींदार महोदय के घर में जब कभी कोई उत्सव होता, यह मण्डली आती और सबका मनोरंजन कर जाती। यह अरुण के विवाह में भी आई थी और इस बार भी आई।

बाहर चोब खड़े करके शामियाना ताना जा रहा था। इस काम में जितने आदमी लगे थे, वे जितना परिश्रम कर रहे थे, उससे कहीं अधिक शोर-गुल मचा रहे थे। परन्तु चिल्लाने के कारण थोड़ी-सी स्फूर्ति प्राप्त कर लेने के विचार से वे और भी कोलाहल मचा रहे थे।

उस दिन व के पाकस्पर्श करने का मुहूर्त था। रात्रि में उसी शामियाने के नीचे रासलीला होनेवाली थी। घर के अन्तःपुर से लेकर बाहर की बैठक तक का सारा स्थान निमन्त्रण में आये हुए व्यक्तियों से परिपूर्ण था। मेनका के आदेश के आनुसार पुलक को सजा देने के लिए सविता बड़ा प्रयत्न कर रही थी। पुलक इस सजावट में बड़ी आपत्ति कर रहा था। वह किसी तरह कपड़े ही नहीं पहनना चाहता था। झटक पटक कर चिल्ला रहा था। लाख प्रयत्न करने पर भी सविता पुलक की इस रुलाई को कम नहीं कर सकी। जैसे-जैसे वह उसे चुप कराने की कोशिश करती, वैसे ही वैसे वह और भी ज़ोर ज़ोर से रोने लगता। परन्तु बाद को जब सविता को मालूम हो गया कि पुलक की यह रुलाई वास्तव में कृत्रिम रुलाई है तब वह हँस पड़ी।

सविता के मुँह से हँसी की खिलखिलाहट का निकलना ही था कि मेनका कमरे में पहुँच गई। उन्होंने कर्कश स्वर से कहा—समझ में नहीं आता कि कौन-सी ऐसी सुख की बात है, जिससे इस तरह की हँसी आ रही है। बच्चे को यदि सम्भाल नहीं पाती हो, तो उसे मार-पीट कर और जबर्दस्ती पकड़ कर इतना रुला क्यों रही हो? बाद को सविता की ओर ज़रा-सा ताक कर उन्होंने कहा—शरीर जल जाता है। यह अपनी शकल जो बना रक्खी है! चौका-बर्तन करनेवाली मजदूरिनें ज़रा कुछ साफ़-सुथरी रहती हैं! कुत्ता यदि राजा भी बन जाय तो क्या होगा? लोगों की आँख बचा-बचा कर वह जूते की ही ओर तो ताकेगा!

बसन्त-ऋतु में खिले हुए फूलों से महकती हुई फुलवाड़ी में यदि कहीं बिजली गिर पड़ी तो वहाँ के सारे फूल सूख जाते हैं। ठीक वैसे ही सविता के मुख पर खिली हुई स्निग्ध हँसी भी सूख गई। उसने स्पष्ट स्वर से कहा—मैंने उसे मारा नहीं माँ!

"नहीं, मारा नहीं।" मेनका ने चिल्ला कर कहा—"यदि मारा नहीं तो क्या यह यों ही चिल्ला रहा है? इस तरह रोनेवाला लड़का भी तो यह नहीं है?"

सविता ने नेत्रों का जल किसी प्रकार रोक लिया। परन्तु फिर भी असह्य उत्ताप के कारण उसका ओष्ठ तक जलने लगा। उसे इस तरह की जो डाँट-फटकार सहनी पड़ी थी उसका कारण यह तो था नहीं कि सविता ने कोई अपराध किया था, जिसके दण्ड के रूप में इतनी बातें सहनी पड़ी थीं। समय-समय पर मन का सारा गुबार सविता पर उतारते रहने का उसकी सास को अभ्यास हो गया था।

इस तरह की कठोर और तीखी बातें जिसने कहीं उसके लिए इन्हें कह डालना जितना आसान था, उतना आसान उसको सुन लेना तो था नहीं! इसके सिवा जिसको यह सब बातें कही गई थीं उसे चौबीस घंटे बराबर ही ज़लील होते रहना पड़ता था। इस तरह की गृहस्थी में, जिसमें बराबर घृणा और व्यङ्ग्य की ही बातें सहन करनी पड़ती थीं, प्रथम प्रवेश के बाद से आज तक ज़रा-सी शान्ति की झलक तक उसे नहीं दिखाई पड़ी। आज इस तरह की फटकार पाने के बाद सविता ने बड़े प्रयत्न से अपने आपको सम्हाला और जो ज़रा-सी अपनी सफ़ाई देने जा रही थी उसे भी रोक रक्खा। पुलक को बहला कर उसने बाहर भेज दिया। कपड़े वह उसे पहना चुकी थी। सविता का माथा जल रहा था, इससे उसने मस्तक पर ज़रा-सा जल छोड़ा और मुँह पोंछने लगी। इतने में उसने देखा कि ज्ञानदा नाम की

नौकरानी थोड़े-से पान लिये हुए उन्हें धोने जा रही है। सविता ने उससे कहा—ये पान मुझे दे दो। माँ के लिए पान लगाने हैं।

ज्ञानदा ने उसकी बात पर कर्णपात नहीं किया। उसने कहा—आज माँ के लिए पान हमी लगायेंगी।

सविता ने धीर भाव से कहा—तो क्या माँ ने तुमसे यह कह दिया है?

नौकरानी ने कड़क कर कहा—माँ ने न भी कहा हो, तो क्या हुआ? माँ का तो पान से ही मतलब है, वह हमी लगा देंगी; बस, मामला खतम!

सविता यह जानती थी कि यह उद्दण्ड नौकरानी गृह-स्वामिनी को बहुत प्रिय है, इससे यह किसी की भी किसी बात की ओर ध्यान नहीं देना चाहती। परन्तु इसी कारण नौकरानी होकर वह इस प्रकार की उद्धता करे, यह सविता को अच्छा न लगा। उसने कड़क कर कहा—नहीं, यह नहीं होने का। पान मैं ही लगाऊँगी। तुम जाओ और ये सब पान मेरे कमरे में रख आओ।

नौकरानी ने क्रोध में आकर कहा—इसी प्रकार की बुद्धि के कारण तो माँ के शरीर में आग लग जाती है। जो बात कही जायगी उस पर कान न करोगी।

सविता ने मस्तक उठाया और सीधी होकर वह खड़ी हो गई। ज्ञानदा की ओर तीक्ष्ण दृष्टि से ताकती हुई वह बोली—तुमको इतना भी ज्ञान नहीं है कि किससे किस तरह की बातें करनी होती हैं? तुम्हारी बातें सुनने के लिए मैं बाध्य नहीं हूँ। मैं तुमसे जो कहती हूँ वह सुनो। पहले जाकर पान मेरे कमरे में रख आओ।

इसके बाद वहाँ निमेषमात्र भी न रुक कर सविता कमरे में चली गई। पान खाने का मेनका को एक बहुत बड़ा व्यसन हो गया था। वे सुन्दर काम की हुई चाँदी की एक चूनादानी साथ में सदा लिये रहती थीं। पहले वे अपने लिए स्वयं पान लगा लिया करती थीं, नौकरानी का लगाया हुआ पान उन्हें पसन्द नहीं आता था। इधर सविता जब से आई है तब से वही सास के लिए पान लगा दिया करती थी। आज न लगा सकने पर कहीं वे रुष्ट न हो जायँ, इसी लिए उसे इतना आग्रह था।

सविता सास के क्रोध से परित्राण पाने के लिए पान लगाने के लिए इतना अधिक चिन्तित थी, किन्तु इस नौकरानी का ही व्यवहार उसे पागल कर डालना चाहता था। नौकरानी अपनी ही धुन में बड़बडाती हुई पान लगाने का सारा सामान सविता के कमरे के बरामदे में लाकर पटक गई।

पान लगा कर सविता ने हाथ धोया और जाकर छत पर खड़ी हो गई। आकाश निर्मेघ था, नीला था, निर्मल था। जल के ऊपर तैरते हुए नैनू की तरह का एक टुकड़ा श्वेत वर्ण का मेघ झील के जल पर हंस की तरह तैरता फिर रहा था। श्यामल धरित्री पर चाँदी के तार का काम की हुई चूनरी के समान धूप की झलक चित्र-विचित्र होकर भिन्न-भिन्न दिशाओं में फैली हुई थी। बग़ीचे में एक ओर कुछ वृक्षों पर खिले हुए स्थल-कमल के पुष्प रंग के चटकीलेपन के कारण गुलाब के रंग को भी मात कर रहे थे। चाहे कितने भी कम समय के लिए क्यों न हो, वर्ण के समक्ष गन्ध की पराजय स्वीकार करना ही पड़ता था।

सविता जब इस उदार आकाश के नीचे आकर खड़ी हुई तब उसके मनरूपी आकाश पर जो घने बादल छाये हुए थे, उनका भार बहुत कुछ हलका हो गया। वहाँ से वह कपड़े बदलने गई। उसे आशंका थी कि कपड़े न बदलने पर सास की डाँट खानी होगी। पूरे बारह महीनों से जो साड़ी वह पहनती आई थी उसे उतार कर उसने एक चौड़े लाल किनारे की साफ़ साड़ी पहन कर सास की मान-रक्षा की। मस्तक के बाल उलझे हुए थे। उन्हें साफ़ करके सँभालने का प्रयत्न उसने नहीं किया। करती भी वह कैसे? यह कोई दो-चार मिनट का काम तो था नहीं? इतने दिनों से उपेक्षित अवस्था में डाल रखने का यह परिणाम हुआ कि अपने हाथ से उन्हें सँभाल लेना असाध्य हो उठा। साँझ हो जाने से ज़रा देर के बाद मेनका ने उसे पुकार कर कहा—चलो, नीचे रासमंडलीवालों का गीत हो रहा है, वहीं चल कर बैठें।

ज़रा-सा इधर-उधर करके सविता ने कहा—अभी ही? ज़रा पुलक को दूध तो दे दूँ?

"नहीं, नहीं, दूध देने को रहने दो। तुम वहाँ चल कर बैठो। पुलक को आज तारा ही दूध दे देगी।"

इस पर सविता ने और कुछ नहीं कहा। सीढ़ी से उतरते उतरते मेनका ने एक बार सविता को नीचे से

लेकर ऊपर तक देखा, और कहने लगीं—वहाँ दस आदमी आये हैं। उनके बीच में इस वेश में जाने में तुम्हें लज्जा न आवेगी ? भला एक बात को मैं तुम्हें कितनी बार कह कर समझाऊँ ?

सविता मस्तक झुकाये हुए चली गई। अपने हाथ से शृंगार करने का उसे कभी अभ्यास नहीं था, इसके सिवा ठाट-बाट बना कर लोगों के सामने निकलने में भी उसे लज्जा आती थी। इससे मेनका के इस तरह की बात कहने पर भी उसने लज्जा का अनुभव नहीं किया। उसी वेश में जाकर वह चिक की आड़ में बिछे हुए आसन पर बैठ गई और चिक के उस ओर की सजावट देखने लगी। ज़मींदार के घर का काम था, तैयारी में कहीं ज़रा भी किसी प्रकार की त्रुटि नहीं थी।

एक बहुत बड़ा फ़र्श था। उस पर बीच में जगह छोड़ कर चारों ओर आदमी बैठे हुए थे। शामियाना के जितने भी चोब थे, उन सब पर रंगीन काग़ज़ लगा हुआ था। देवदारु की पत्तियों के बीच में बड़े-बड़े गैस जल रहे थे। अरुण स्वयं ही अपनी मधुर मुस्कान से सबका स्वागत करता हुआ उन्हें बिठाल रहा था।

चिक की आड़ में जो स्त्रियाँ बैठी हुई थीं वे गाना आरम्भ होने से पहले ही आपस की बातचीत समाप्त कर लेने का प्रयत्न कर रही थीं।

एक स्त्री ने आकर कहा—क्यों भाई, क्या तुम लोग मेरे लिए यहाँ ज़रा-सी जगह निकाल सकोगी ? उस ओर से तो मैं कुछ देख नहीं पाती हूँ।

एक स्त्री स्वयं ज़रा-सा खिसक कर बैठ गई और कहने लगी—इतनी जगह में यदि बैठ सको तो बैठ जाओ।

"किसी तरह बैठ जाऊँगी।" यह कह कर वह स्त्री बैठ गई और कहने लगी—तुम तो यहीं पड़ोस में रहती हो, इस घर की बहू से तुम्हारा परिचय हुआ है ? कैसे स्वभाव की है वह ?

"अच्छे स्वभाव की है।"

"सचमुच ?"

"पागल हो तुम ! बहू की बदौलत जिस घर का लड़का घर छोड़-छोड़ कर भागता फिरता है, वहाँ भला क्या हम लोगों को नज़दीक जाने को मिलेगा ?"

एक साथ ही चार-पाँच मुँह की आवाज़ निकल पड़ी—चुप, चुप, चुप ! अर्थात् जिसके सम्बन्ध में यह बातचीत छिड़ी हुई है वह सविता यहीं बैठी है।

सविता ने मुँह फेर कर देखा तब उनमें से कोई भी स्त्री उसकी परिचित नहीं थी। परन्तु उसके सम्बन्ध की बातें कहाँ तक फैल गई थीं, यह उसे मालूम हो गया। वह सोचने लगी कि मैंने ऐसा कौन-सा कार्य किया है जिसके कारण घर का लड़का घर छोड़ कर भटकता फिरता है ?

सविता बहुत चिन्तित हो उठी। वह सोचने लगी—इस तरह की बात यदि सत्य भी हो; तो नारी-जीवन में वह सहन करने के योग्य नहीं है। परन्तु बात जब सर्वथा मिथ्या है तब भला मैं इसे कैसे सहन करूँ ? मेरी चाहे कैसी भी गति हो, मैं क्या निरन्तर शुद्ध हृदय से यह नहीं प्रार्थना करती रहती हूँ कि वे सुखी हों ?

सविता इसी प्रकार की बातें तन्मय होकर सोच रही थी। इधर उसके सम्बन्ध की चर्चा भी नहीं रुकी। उसमें कुछ धीमापन अवश्य आ गया। गीत के समाप्त होने से पहले ही मेनका उठ गई, उनके साथ ही साथ सविता भी उठी।

उस समय रात्रि प्रायः समाप्त हो चली थी। अन्धकार से आच्छादित नीम के वृक्ष के मस्तक पर एक खूब बड़ा-सा तारा चमचमाता हुआ उदित था। देखने में घुर काले शिवलिंग के मस्तक पर मणि का चन्द्रमा लगा देने पर जिस प्रकार सुशोभित होता है, वैसी ही अपूर्व शोभा उसकी भी थी। जाड़े के दिनों की तेज़ और ठंडी हवा के कारण सिमटी हुई अपने कमरे में जाते-जाते सविता ने सुना, रास-मंडली के बालकों का दल रात्रि की निस्तब्धता को भंग करता हुआ एक भावपूर्ण गीत गा रहा था। उस गीत का सारांश है :—

हे सखा, आओ, आओ, आओ ! चाहे किसी भी वेश में आओ, दर्शन देकर मेरी विरह-वेदना को दूर करो। वर्षा-ऋतु के मेघ के ऊपर चमकनेवाली बिजली के ही बहाने से हँस दो।

[क्रमशः
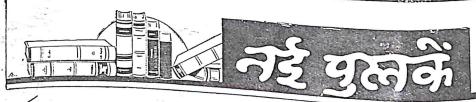
१—हजामत—लेखक, पंडित ज्योतिःप्रसाद मिश्र 'निर्मल' हैं। प्रकाशक, छात्र-हितकारी पुस्तकालय, दारागंज, प्रयाग है। छपाई अच्छी, पृष्ठ-संख्या २०० और मूल्य १।) है।

जब मानव अपनी कमज़ोरियों का निरीक्षण करता है तब साहित्य में 'हास्यरस' का जन्म होता है। ये कमज़ोरियाँ समाज में कई साकार रूपों में बिखरी रहती हैं। कभी तो वे अपने को 'बहुत कुछ' लगाती हुई 'हुरमत' की-सी हजामत बनवाती हैं कभी—'चमक-बिहारी' के रूप में कुँजड़ों पर भी अपनी 'समालोचना की तोप' सीधी किये दिखाई देती हैं। कुछ और आगे बढ़कर जब ये समाज-सुधारक का चोग़ा पहनती हैं तब 'पञ्चानन' और 'व्याख्यान-वाचस्पति' की भाँति फ़ज़ीहत कराती हैं। होतीं तो ये प्रवृत्तियाँ निम्न और उच्च दोनों वर्गों में हैं, पर निम्नवर्ग दया का पात्र है, अतः उसका मज़ाक़ उड़ाने में साहित्यिकता नहीं रहती, क्योंकि वह बुद्धि का नहीं, परिस्थिति का उपहास होता है, जो 'रसाभास' हो जाता है। फलतः हास्य-रस के उसी कथानक को हम शिष्ट और साहित्यिक कह सकते हैं जिसमें उन 'अक्लमन्दों' की चर्चा रहती है जो इसी कारण जन-समाज के मनो-विनोद के कारण बनते हैं कि वे अपने को 'बहुत कुछ' लगाया करते हैं; पर समाज की दृष्टि में उनके दिमाग़ों का कोई पेंच ढीला रहता है।

कहने की आवश्यकता नहीं कि—कहानियों के कथानकों का जहाँ तक सम्बन्ध है—इस पुस्तक की आठों कहानियों के कथानक शिष्ट हैं। इसलिए यह पुस्तक बेखतरा सबके हाथों में दी जा सकती है। लेखक महोदय पाठकों में 'ईषत् हास्य' पैदा करने में सफल हुए हैं जो काव्य-शास्त्र में उच्चकोटि का माना जाता है। हिन्दी में सुरुचिपूर्ण या शिष्ट-हास्य की ऐसी पुस्तकें कम ही हैं।

२—यामा—लेखिका, श्रीमती महादेवी वर्मा और प्रकाशक, किताबिस्तान, इलाहाबाद व लन्दन हैं। पृष्ठ-संख्या २३५ और मूल्य ९) है।

'यामा' कई दृष्टिकोणों से अपने ढंग का एक नया और अनूठा प्रकाशन है। अब तक हिन्दी के कदाचित् किसी आधुनिक कवि की समस्त रचनाओं का संग्रह एक ही जिल्द में नहीं प्रकाशित हुआ है। 'यामा' उस दिशा में पहला प्रयास है। परन्तु सबसे महत्त्वपूर्ण है इसका 'गेट-अप' और छपाई। हिन्दी की आधुनिक कविता के लिए यह सौभाग्य का चिह्न है कि उसकी एक अन्यतम कवयित्री की रचनायें इतनी सावधानी और सुरुचि के साथ प्रकाशित की जायँ। 'यामा' का प्रकाशन सामान्य रूप से आधुनिक हिन्दी-कविता और विशेषरूप से श्रीमती वर्मा के व्यापक अभिनन्दन का प्रमाण है। तीसरी नवीनता है 'यामा' के काव्यगत भावों का रेखाओं और रंगों के द्वारा चित्रांकन। नौ रुपये मूल्य होना भी पुस्तक की एक विशेषता समझी जा सकती है। कुछ लोगों के विचार से हिन्दी के ग़रीब पाठकों के लिए इतना मूल्य दे सकना साधारणतया सम्भव नहीं। परन्तु पुस्तक का सर्वांग-सुन्दर कलेवर देखकर किसी को इसके मूल्य के विषय में साश्चर्य और सशंक होने की आवश्यकता न रहेगी, ऐसा हमारा विश्वास है।

इस नयनाभिराम प्रकाशन के लिए हम प्रकाशकों के साहस और सुरुचि की प्रशंसा किये बिना नहीं रह सकते। सचमुच वे बधाई के पात्र हैं।

'यामा' के काव्य का विवेचन करने की न तो यहाँ आवश्यकता है और न स्थान, क्योंकि श्रीमती महादेवी वर्मा की कविताओं के विस्तृत विवेचन प्रायः सभी पत्र-पत्रिकाओं में निकले हैं और पाठकों में भी वे कदाचित् हिन्दी के किसी अन्य आधुनिक कवि से कम लोकप्रिय नहीं हैं। फिर भी जिस प्रकार पाठक कवि के समस्त

काव्य को एक जगह संगृहीत पाकर निस्सन्देह हर्ष से फूल उठेंगे, उसी प्रकार आलोचक को भी उस पर कम से कम एक सरसरी दृष्टि डाल लेने का प्रलोभन होना अनिवार्य है।

श्रीमती महादेवी वर्मा आधुनिक हिन्दी-कविता की उस धारा की प्रतिनिधि कवि हैं जिसे आध्यात्मिक या रहस्यवादी धारा कह सकते हैं। इस धारा के दूसरे प्रतिनिधि हैं प्रतिष्ठित कवि श्री रामकुमार वर्मा। रहस्यवादी समझे जानेवाले शेष 'छायावादी' कवियों में से अधिकांश या तो केवल सौन्दर्योपासक तथा भाववादी थे, या अब वे 'असीम' और 'अनन्त' की आराधना छोड़ चुके हैं। श्रीमती महादेवी वर्मा इस युग में भी जब कि हिन्दी-कविता एक और पलटा खा चुकी है, उसी तन्मयता के साथ अपना अनन्त-संगीत गुनगुनाये जा रही हैं। 'यामा' के अध्ययन से न केवल हमें हिन्दी की रहस्यवादी कविता के स्वरूप-निर्धारण में सहायता मिलेगी, वरन इस धारा के भविष्य के विषय में भी हम किंचित् अनुमान लगा सकते हैं।

'यामा' के चार भाग हैं—'नीहार', 'रश्मि', 'नीरजा' और 'सान्ध्यगीत'; कवि के क्रमिक विकास की ये चार अवस्थायें हैं। मोटे तौर पर हम कह सकते हैं कि नीहार में कवि की तैयारी है, इस तैयारी में काव्य का उल्लास छोटे-छोटे छन्दों में तीव्रता और विह्वलता के साथ व्यक्त हुआ है। 'रश्मि' में वह तीव्रता और विह्वलता मंथर होकर विचार और विश्लेषण में परिणत हो जाती है। उसमें कवि ने जीवन पर सिद्धान्त-रूप से विचार करने का प्रयत्न किया है। 'रश्मि' के प्रकाशन के समय कुछ काव्य-रसिकों का विचार था कि महादेवी जी की कविता ऊँचे उठने के स्थान पर नीचे जा रही है। पर उनकी यह आशंका निर्मूल थी। कह सकते हैं कि कवि के हृदय का उमड़ा हुआ धुआँ जो नीहार के रूप में प्रकट हुआ था, 'रश्मि' के 'अरुण-बान' छूकर ओस की बूँदों के रूप में स्थिर हो गया है। 'नीरजा' में कवि का कण्ठ तरल हो गया है। काव्य की आत्मा गेय पदों के रूप में फूट पड़ी है। और 'सान्ध्य-गीत' उस आध्यात्मिक अनुभूति-मूलक उल्लास का प्रतीक है जो 'तुम मुझमें प्रिय, फिर परिचय क्या?' से भी कुछ ऊँचा है, जिसमें 'नीर भरी दुख की बदली' अपना पार्थिव अस्तित्व मिटाकर 'नव-जीवन-अंकुर' के रूप में 'सुख की सिहरन' होकर खिल उठी है।

कुछ लोगों का विचार है कि श्रीमती महादेवी जी निराशावाद की कवयित्री हैं। परन्तु बात असल में यह नहीं है। उनकी प्रायः प्रत्येक कविता में आध्यात्मिक उल्लास के पर्याप्त संकेत हैं—उनकी करुणा के कम्पित स्वर में उपासक के हृदय की सिहरन है, उनके रुदन के आँसुओं में मन को निर्मल करने की क्षमता है, उनकी पीड़ा मीठी है, क्योंकि पीड़ा में ही उन्हें अपने प्रिय के मिलने का उल्लास मिल सकता है।

महादेवी जी की लेखनी में भाव-प्रतिमाओं की अवतारणा की जितनी शक्ति है, उनकी तूलिका में उससे कम नहीं जान पड़ती। यत्र-तत्र चित्रों में कविता के भावों को चित्रित करके केवल पुस्तक के कलेवर की भव्यता और आकर्षण में ही वृद्धि नहीं की गई है, अपितु भावों के स्पष्टीकरण में भी। कवि और चित्रकार का यह सामंजस्य देखने योग्य है।

इस संकुचित स्थान पर हम महादेवी जी की काव्य-धारा के भविष्य के विषय में विशेष कथन नहीं कर सकते। परन्तु संकोच के साथ इतना कहना आवश्यक जान पड़ता है कि 'सांध्यगीत' आधुनिक आध्यात्मिक कविता की चरम अभिव्यक्ति है! सम्भव है कि महादेवी जी और भी इसी प्रकार के गीत लिखें, परन्तु उनमें हमें किस नवीनता के दर्शन मिलेंगे, इसके विषय में सन्देह होना स्वाभाविक है। यदि आगे भी उन्हें वही बातें दुहरानी हैं तो उन्हें अपना माध्यम बदलना पड़ेगा।

संक्षेप में 'यामा' सब प्रकार अभिनन्दनीय है। श्रीमती वर्मा को हम उनके इतने सुन्दर प्रकाशन पर बधाई देते हैं। आशा है कि हिन्दी के पाठक इसका समुचित स्वागत करेंगे।

३—प्रवासी के गीत—लेखक, श्रीयुत नरेन्द्र और प्रकाशक तथा विक्रेता, भारती-भण्डार, लीडर प्रेस, इलाहाबाद हैं। पृष्ठ-संख्या ८२ और मूल्य १।) है। छपाई-सफ़ाई और गेट-अप उत्तम है।

'प्रवासी के गीत' विरह का एक करुण-काव्य है। पुस्तक का नाम किसी एक गीत के आधार पर नहीं, बल्कि

समस्त गीतों के विषय के आधार पर रक्खा गया है। सब मिलाकर ५३ गीत हैं और लगभग सभी में 'प्रिया की याद में' जलनेवाले चिर-प्रवासी का करुण-रुदन है।

'प्रभातफेरी' में नरेन्द्र जी ने मिलन के उद्दाम उल्लास-विलास का परिचय दिया था। परन्तु उनकी कविता की प्रकृति से ही यह शंका होती थी कि 'आज न सोने दूँगी बालम' के रूप में प्रकट होनेवाली वासना के बोझ को सुकुमार-वृत्तिवाला यह कवि कब तक सह सकेगा। उनकी संवेदनशीलता उसके पुरुषार्थ की अपेक्षा कहीं अधिक प्रबल थी। अतः उसका भभककर बुझ जाना अनिवार्य था। आलोचकों का विचार है कि यदि कीट्स अकाल-मृत्यु न पाता तो भी वह कदाचित् उससे अच्छी कविता अधिक नहीं लिख सकता था; क्योंकि उसकी इन्द्रियों में अपनी उद्दाम ऐंद्रियकता को सहने की शक्ति नहीं रह गई थी। नरेन्द्र जी में भी उस ऐंद्रियकता के सहन करने की क्षमता नहीं थी। 'पगली! इन क्षीण बाहुओं में कैसे यों कस कर रख लोगी?' यह उन्हें कहना ही पड़ा। चाहे उन्हें सामाजिक आवश्यकता के वशीभूत होकर प्रवासी न भी बनना पड़ता, तो भी उन बाहुओं का बन्धन शिथिल होना अनिवार्य था। 'प्रभातफेरी' में इस बात के पर्याप्त प्रमाण हैं कि मानसिक ऊब के बाद यदि उनकी प्रिया का बन्धन खुलता तो वे उसका हाथ पकड़कर साथ-साथ उस पथ पर अग्रसर होते जिस पर जानेवाली असंख्य अकिंचनों की भीड़ का करुण आह्वान वे आज भी सुन रहे हैं और उस ओर जाने को उनकी विवेक-बुद्धि उन्हें प्रेरित भी कर रही है, परन्तु 'पाँवों की हड़कल' उन्हें उठने नहीं देती। ऐंद्रियवासना तो समाप्त हो गई है, परन्तु उसकी स्मृति उनके मन का असाध्य रोग-सी हो गई है। 'प्रवासी के गीत' इस अर्थ में सचमुच क्षय-ग्रस्त युवक कवि की करुण पुकार हैं।

'आज के बिछुड़े न जाने कब मिलेंगे?' की करुणा उस समय और भी दयनीय हो जाती है जब कवि कहता है—

'यदि मुझे उस पार के भी मिलन का विश्वास होता,
सत्य कहता हूँ न मैं असहाय या निरुपाय होता,
किन्तु क्या अब स्वप्न में ही मिल सकेंगे?

कवि का यह विरह 'शृंगार' का वह 'विप्रलम्भ' नहीं है जिसमें हृदय की तड़पन के साथ भावी मिलन की आशा भी होती है। यह विरह तो उस करुणा से भी अधिक हृदय-विदारक है जिसमें प्रेमी सदा के लिए प्रिय से निराश हो जाता है और उसे वेदनापूर्ण सन्तोष की साँस ले लेने का कभी-कभी अवसर मिल जाता है। कदाचित् सामाजिक वैषम्य के कारण उसका मिलन असम्भव है—असम्भव है उस प्रिया से जिसे सान्त्वना देने के लिए स्वयं उसी को रोते-रोते आश्वासन देना पड़ा था—

'स्वर्ण-पींजड़े के ओ पंछी!
क्या मैं भी परतंत्र नहीं हूँ?
क्या मैं भी अब केवल साँसों
से संचालित यंत्र नहीं हूँ?
क्यों मेरा धीरज हरने को भर भर लाती हो युग लोचन?

यह परतंत्रता, यह बेबसी कैसी है? ये बन्धन उन 'दुर्दैवों के बाँधे हुए नहीं हैं जो मानवों को मक्खियों की तरह अपने विनोद के लिए कुचल देते हैं, बल्कि ये बन्धन कदाचित् समाज के बन्धन हैं, क्योंकि कवि कहता है—

आज से हम तुम गिनेंगे एक ही नभ के सितारे,
दूर होंगे पर सदा को ज्यों नदी के दो किनारे,
सिंधु-तट पर भी न जो दो मिल सकेंगे!

परन्तु कवि ने कहीं भी न तो दुर्दैव या नियति के प्रति रोष प्रकट किया है, न समाज और उसकी कठोर, निर्दय रूढ़ियों की ओर। किसी अन्य कवि से हम ऐसी आशा कर सकते थे, पर अपने कोमल और सुकुमार भावनाओं के कवि से नहीं। यदि वे रोष भी प्रकट करते, तो उसमें अन्त में अपनी बेबसी और निस्सहायता के आँसू ही निकल सकते थे, विध्वंस करनेवाले अंगार नहीं। हमारे कवि में पुरुषत्व की अपेक्षा नारीत्व की सुकुमार वृत्तियों को अधिक प्रश्रय मिला है, जो भावना-प्रधान कविता के लिए सबसे अधिक आवश्यक है।

यदि स विवशता के साथ कवि का प्रिया से विछोह न हो जाता तो सम्भव है उसमें प्रबल पुरुषत्व का विकास हो सकता। परन्तु जैसा कि स्वाभाविक होता है, जीवन के एकान्त दुःख ने उसकी वृत्ति को और भी कोमल और करुण कर दिया है! यदि उसमें पुरुषत्व की प्रखरता कुछ रही भी हो तो वह कारुण्य के प्लावन से पानी-पानी

हो गई है। संग्रह का चौदहवाँ गीत किसी स्त्री-हृदय से भी इसी स्वाभाविकता के साथ निकल सकता है--

वस वही अकेली थी ऐसी
छिप सका न जिससे एक राज़ !
सह भी लेती थी इसी लिए
वह मेरे सब अन्दाज़-नाज़ !

× × ×

मेरी वह मायाविन न रही,
मैं मान करूँ भी तो किस पर ?

कवि की इस भावात्मक कोमलता ने कविता के सहज गुण को खूब निखार दिया है।

कविता के विषय और उनकी रूप-रेखा के उपर्युक्त विवेचन से ही यह स्पष्ट हो गया है कि कवि अपनी बात कहने के लिए पर्याप्त क्षमता रखता है। उसकी लगभग प्रत्येक पंक्ति में हृदय की गहरी अनुभूति और सच्ची व्यथा का आभास मिलता है। उदाहरण के लिए गीतों का निर्देश कर देना सरल नहीं है। नरेन्द्र जी की कुछ पंक्तियाँ तो कविता-प्रेमियों को रट-सी गई हैं। ३५ वें गीत में 'वियोगी' और 'उनींदी रात' की तुलना कैसे मार्मिक ढंग से की गई है--

मौन हैं दोनों, मिले दृग भी नहीं हैं;
और मन ? उसका कहीं, मेरा कहीं है !
एक शर से बिंधे दो उर बंध सहज संवेदना के
सूत्र में, पर एक हैं हम !
हैं अपरिचित किन्तु जीवन-पाठ के सहपाठियों से
एक हैं हम !
एक पथ के पथिक जो गायें पृथक् दो गीत
पर हो एक ही सुर,
--स्नेह करुणा से मिले यों एक हैं हम !
एक हैं हम !
रात भर दोनों जगे हैं,
स्नेह करुणा में पगे हैं !
एक हैं हम--
मैं वियोगी, वह उनींदी रात
और दोनों ओर है कुछ एक-सी ही बात !

प्रकृति के प्रत्येक चित्र में वियोगी कवि को अपनी व्यथा को उत्तेजित करने की सामग्री मिल जाती है। वह बहुत चाहता है कि किसी प्रकार इस व्यथा को भुला दे--उस करुण-स्मृति को मन से मिटा दे। परन्तु यह उसके बस की बात नहीं जान पड़ती। विमुक्त होकर उसकी प्रिया उसके रोम-रोम में--जीवन की प्रत्येक गति में बस गई है। अब उसे उसके पार्थिव शरीर की-भौतिक अस्तित्व की भी अपेक्षा नहीं रही--

क्रीत दासी, स्वामिनी, आराध्य हो, आराधिका भी,
प्राण-मोहन कृष्ण हो तुम, शरण-अनुगत राधिका भी,
सहचरी हो, भार्या हो, वन्दनीया अम्बिका भी,
भक्ति की कृति हो स्वयम् फिर भक्त की प्रतिपालिका भी !

* * *

इंद्रियों के ज्ञान से, अन्तःकरण के ध्यान से भी
हो परे तुम कल्पना के व्योम-रत अनुमान से भी,
देवि, यद्यपि दृश्य हो तुम, देह भी धारण किये हो,
नाम गुण औ' रूप से सम्बन्ध-बन्धन से परे हो !
हो अजर तुम काल-क्रम में, हो अमर जीवन-मरण में,
आह ! कैसे कर सकूँगा, प्रिय तुम्हारा विस्मरण मैं !

वह तो स्वयं अपने आचरण में प्रिय को खोजने का उपक्रम करना चाहता है। इसलिए उसका यह कहना--

विदा प्यारे स्वप्न, सुख के स्वप्न मेरे !

केवल दर्शन-सुख के लोभ से निराश होना मात्र है। स्वप्न के स्थायित्व का उसे विश्वास है--

'किन्तु जा, सुख-स्वप्न मेरे ! फिर मिलेंगे कल सवेरे !

इसी तरह इसकी इन पंक्तियों में वेदना की विह्वलता केवल मन बहलाने भर को दबा दी गई है--

'कुहकती है कोकिला नित, पर न अब मुझको किसी की याद आती !'

* * *

हो मिलने की आश जिसको
वह विरह का वेश धारे,
किन्तु मेरी आश के संग
मिट गये हैं क्लेश सारे।
आज तो सबकी तरह हँस बोलकर दिन काटता हूँ, सुधि न आती !

वेदना की चरम सीमा वहाँ हो जाती है जब कवि अपने प्राणों को 'अनचाहे महमान' कह कर निकाल देना चाहता है--

सभी छोड़ कर चले गये जब,
रुके हुए किस आशा से अब,
मेरे आकुल प्राण ! छोड़ मुझको तुम भी न चले जाते क्यों ?

यह सच है कि इस दुर्बल भावुकता से मन को किसी प्रकार का ऐसा सन्देश नहीं मिलता जिससे जीवन, जागृति और बल का संचार हो सके। स्वयं कवि ने अपने आलोचनात्मक वक्तव्य में स्पष्ट कर दिया है कि उसे ऐसा कुछ दावा नहीं है। वह जानता है कि वह कहाँ है और यह भी जानता है कि उसे वहाँ नहीं होना चाहिए; पर परिस्थितियाँ--आन्तरिक और बाह्य--दोनों उसके बस के बाहर की चीज़ हैं, उसे उन पर कोई अधिकार नहीं। हम आधुनिक हिन्दी-कविता के इस उत्तर-काल की अँगरेज़ी के डेकेडेण्ट-स्कूल से पूरी तुलना नहीं कर सकते। कम से कम नरेन्द्र जी में भावात्मक सूक्ष्मताएँ--बाल की खाल निकालनेवाली ख़याली बारीकियाँ--हम नहीं पाते। यद्यपि उनमें रोमांटिक कविता का ओज, तीव्रता और गर्म खून का प्रवाह नहीं है, फिर भी उनकी भावनाएँ सच्ची, तथा उनके व्यक्तीकरण का ढंग स्वच्छ और स्पष्ट है। नरेन्द्र जी के साथ हमें भी पूर्ण आशा और विश्वास है कि हिन्दी-कविता का यह निराशावाद समाप्त होगा, और कवि अपने 'एकान्त-संगीतों' के स्थान पर कोरस-गान--सामूहिक संगीत रचेंगे, जो केवल उनके या उच्च वर्ग के मनोरंजन की वस्तु न होकर जन-जन की दबी हुई आकांक्षाओं को वाणी प्रदान करेंगे।

अन्तिम दो गीतों से सम्भव था पाठक को आशा बँधती कि स्वयं नरेन्द्र जी भी किसी प्रकार अपने मन को समझाकर काव्य के नये उपकरणों को इकट्ठा करने लगेंगे, परन्तु इस आशा को स्वयं उन्होंने अपने वक्तव्य में भंग कर दिया। फिर भी ३२ वें गीत में माँगे हुए उनके वरदान की सफलता की हम हृदय से कामना करते हैं। ईश्वर करे, उनकी यह इच्छा पूर्ण हो--

असफलता और निराशा की
कटुता के विष से रहूँ मुक्त,
कच्चा रह खट्टा बने न उर !
नस-नस हो रस से सराबोर,
दो, प्राण, यही वरदान मुझे,
पीड़ा में पककर बनूँ मधुर !

परन्तु पककर गिरनेवाली उनकी साधु-कामना में हम उनका साथ नहीं दे सकते क्योंकि अभी हिन्दी को उनसे बहुत आशायें हैं।

ब्रजेश्वर

४--नवशक्ति-प्रकाशन-मन्दिर, पटना की २ पुस्तकें

(१) हँसानेवाली कहानियाँ--पृष्ठ-संख्या ६७ और सजिल्द पुस्तक का मूल्य ॥=) है।

हिन्दी में शिष्ट हास्य-रस की कृतियाँ उँगलियों पर गिनी जाने योग्य भी नहीं हैं। हाँ, हास्यरस के नाम पर कुरुचिपूर्ण और ग़ैर जिम्मेदार दिमाग़ों से निकले हुए कूरा-करकट की अलबत्ता कमी नहीं है। प्रस्तुत पुस्तक से इस अभाव की आंशिक पूर्ति होती है। इसमें विभिन्न लेखकों की केवल ६ कहानियाँ संगृहीत हैं, पर उनके चुनने में संपादक महोदय ने सुरुचि का खासा परिचय दिया है। इस प्रकार छोटी रहने पर भी यह पुस्तक सुरुचिपूर्ण पाठकों के निकट संग्रहणीय है।

(२) ग़रीबी की आह--पृष्ठ-संख्या १४७ और सजिल्द पुस्तक का मूल्य १) है।

इसमें विभिन्न लेखकों की लिखी हुई कुल ११ कहानियों का संग्रह है। सभी कहानियाँ 'ग़रीबी की आह' से सम्बन्धित हैं जिनके प्लाट हमारे देश में घर-घर और द्वार-द्वार पर बिखरे हुए मिल जाते हैं, उनको कहीं खोजने नहीं जाना पड़ता। मौत, बीमारी, भूख तथा बेकारी से पीड़ित और धनिकवर्ग से पद-पद पर त्रस्त व तिरस्कृत वर्ग का चित्रण नवयुवकों में क्रान्ति की अग्नि जगाने के लिए आवश्यक होता है; अतः ऐसा करने में कलाकार को यदि यत्किञ्चित् अतिरंजना की सहायता लेनी पड़े तो वह क्षम्य है। कहानियाँ सभी मर्म-स्पर्शी व सजीव हैं। उनके लेखक भी चुने हुए हैं।
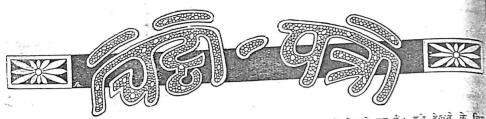
स्वर्गीय द्विवेदी जी का लिफ़ाफ़ा

लोगों में कुछ इस प्रकार का भ्रम फैलता दिखाई देता है कि 'स्वर्गीय आचार्य पं० महावीरप्रसाद जी द्विवेदी ने काशी-नागरी-प्रचारिणी सभा को एक मुहरबन्द लिफ़ाफ़ा दिया था जिसे उन्होंने अपनी मृत्यु के पश्चात् खोलने की आज्ञा दी थी, पर जिसे सभा ने गुप्त रक्खा है।' इस सम्बन्ध में 'सभा' से एक वक्तव्य 'सरस्वती' के गत फ़रवरी के अंक (द्विवेदी-अंक) में छपने के लिए भेजा गया था, पर शायद देर से पहुँचने के कारण वह न छप सका। उसे यहाँ प्रकाशित कर देने से, आशा है, स्थिति स्पष्ट हो जायगी।

स्वर्गीय आचार्य पं० महावीरप्रसाद द्विवेदी ने हिन्दी के लिए समर्पित अपने निरन्तर कर्ममय जीवन में हिन्दी-जगत् का जो उपकार किया वह निस्सन्देह उन्हीं के वश का था, वह अभी तक किसी दूसरे से नहीं हो सका। हिन्दी के नाते काशी-नागरी-प्रचारिणी सभा से भी उनका प्रगाढ़ अनुराग था। अपनी पुस्तकें उन्हें प्राणप्रिय थीं। किन्तु जिस प्रकार उनका भण्डार जनता के हितार्थ बेरोक खुला था उसी प्रकार वे अपनी पुस्तकें भी अपने ही पास बन्द न रखकर जनता के लिए सुलभ कर देना चाहते थे। इसलिए उन्होंने अपना अमूल्य संग्रह काशी-नागरी-प्रचारिणी सभा को भेंट कर दिया था जो 'पं० महावीरप्रसाद द्विवेदी संग्रह' के नाम से सभा के पुस्तकालय में, ११ बड़ी आलमारियों में, सुरक्षित है। इस संग्रह में लगभग ३,००० चुनी हुई पुस्तकें हैं। इन पुस्तकों के अतिरिक्त एक और बड़ा दान द्विवेदी जी सभा को दे गये हैं। वह है उनका पत्र-संग्रह। इसमें उनके 'सरस्वती' के सम्पादनकाल तथा उसके बाद के भी काग़ज़-पत्र और फ़ाइलें हैं जिनके बंडल एक आधी और एक पूरी आलमारी में भरे हुए हैं। इन्हें देखने के लिए काफ़ी समय की आवश्यकता है।

उक्त वस्तुओं के अतिरिक्त तीन बंडल ऐसे भी हैं जिन्हें द्विवेदी जी ने अपने जीवनकाल में खोलने को मना किया था। उनमें द्विवेदी जी के नाम भेजे गये निजी पत्रों का संग्रह है। तीनों बंडलों में लगभग १,५०० से ऊपर पत्र होंगे।

द्विवेदी जी के निधन के बाद इन पत्रों की एक सूची सभा तैयार करा रही थी, पर अन्य कार्यों की अधिकता के कारण यह काम उस समय अधूरा रह गया था। अब एक सज्जन कृपा कर यह कार्य कर रहे हैं। सूची तैयार हो जाने पर जो सज्जन चाहेंगे वे कार्यालय में आकर देख सकेंगे। आवश्यकता हुई तो उसे प्रकाशित करने की भी व्यवस्था की जायगी।

इन पत्रों को देखने से पता चलता है कि द्विवेदी जी पत्र-व्यवहार में ही सदैव सतर्कता और नियम का पालन नहीं करते थे, प्रत्युत पत्रों के संग्रह में भी वे पूरा परिश्रम करते थे। कोई पत्र ऐसा न मिलेगा जिसको उन्होंने ध्यान-पूर्वक पढ़कर उत्तर न दिया हो। सब पर उनके नोट तथा तारीख सहित हस्ताक्षर हैं। पत्र लिखनेवाले तारीख लिखना भूल गये हैं पर द्विवेदी जी नहीं भूले। एक विषय और व्यक्ति के पत्र एक साथ रक्खे गये हैं। उदाहरणार्थ, पत्नी-वियोग-सम्बन्धी सब पत्र एक साथ रक्खे गये हैं। इसी प्रकार पं० कमलाकिशोर जी के विवाह-सम्बन्धी सब पत्र एकत्र हैं। निजी पत्र भी बिलकुल आफ़िस के ढंग से रक्खे हुए हैं। फुटकर पत्रों में साधारण व्यक्तियों के अतिरिक्त राजाओं, सरकारी अफ़सरों तथा बड़े बड़े देशी और विदेशी विद्वानों के भी पत्र हैं।

—रामबहोरी शुक्ल,
(मंत्री, ना० प्र० सभा)

जाग्रत नारियाँ

नारी

लेखक, श्रीयुत शचीन्द्रनाथ सान्याल

नारी का नाम सुनने से ही एक विचित्र सम्मोहन की सृष्टि होती है; एक भावमयी उन्मादना के आवेश से, एक अभावनीय उद्वेग से जीवन-मन अधीर, चंचल, व्यग्र हो उठता है। नर और नारी के जीवन-मन्थन से ही तो अमिय-हलाहल की उत्पत्ति होती है। इसी अमृत-सिंचन से ही तो साहित्य-रस का आस्वादन होता है, कवित्व की मूर्च्छना उत्पन्न होती है, महाकाव्य का विशाल महीरुह शाखा-पल्लवित होकर मानव-मन को उल्लसित और उन्मत्त करता है। काल की अविरल धारा-प्रवाह से भी तो नर-नारी के जीवन-मन्थन से उत्पन्न रस-प्रवाह का अन्त नहीं होता।

कण्टक से पूर्ण इस संसार-क्षेत्र में, वास्तविक जगत् की रूढ़ता से त्राण पाने के लिए, निष्ठुर प्रतिद्वन्द्वी तथा घोर विरोधियों की निर्दयता से जी छुड़ाने के लिए, जीवन-संग्राम से क्लान्त होकर शान्ति पाने की अभिलाषा से हम जिसके अंचल-प्रान्त के स्नेह स्पर्श के लिए लालायित होते हैं, वह भी स्नेहमयी जननी के रूप में, अथवा जीवन-संगिनी या सखी के रूप में नारी ही तो है। अथवा जयोल्लास की मदिरा पान करने के उन्मत्त अवसर पर हम जिन्हें अपने आनन्द के अंश का भागी बनाने के लिए अधीर-चंचल होते हैं, वह भी तो स्नेहाभिलाषिणी, उल्लास-वर्द्धिनी, कठोरता पर कोमलता का प्रलेप करनेवाली, हास्य-मुखरा, चंचला-चपला कन्या के रूप में अथवा प्रिय-वादिनी सदा हास्यमयी, पति की आनन्द-भागिनी होने के कारण आनन्दोत्सव के अवसरों पर पति का पथ-निर्देश-कारिणी अर्द्धाङ्गिनी के रूप में तथा सार्थकता से सन्तोष-प्राप्त, समाहित चित्त से आशीर्वादकारिणी जननी नारी ही तो हैं।

[हिन्दी की सुप्रसिद्ध कवयित्री श्रीमती तारा पांडे। आपकी कविता सरस्वती के इसी अंक में अन्यत्र पढ़िए।]

नारी हमारी अर्द्धाङ्गिनी न होकर भी, आशीर्वाद-कारिणी स्नेहमयी जननी न होकर भी, चंचला, चपला, कोलाहल-कारिणी कन्या न होकर भी, केवल नारी होने के अधिकार से, परामर्शदायिनी, उत्साहवर्द्धिनी सखी-मात्र हो सकती है अथवा नहीं? नारी सखा का साहचर्य पाने की कामना से और नर सखी के सान्निध्य की सुप्त अथवा गुप्त अभिलाषा से, सामाजिक रीति-नीति के अन्तराल में, प्राकृतिक प्रेरणाओं के अनिवार्य आकर्षण से नित्य नव-नव जटिल समस्याओं की सृष्टि करते हैं। इन जटिल उलझनों और गुत्थियों को सुलझाने के लिए, निषिद्ध, रुद्ध, असामाजिक कामनाओं को सामाजिक, रीति-अविरुद्ध, प्रचलित रूप देने के लिए, मनुष्यों में कवि-प्रतिभा का उन्मेष होता है, उपन्यासकारों में लेखनी-शक्ति का विकास होता है, मानव-सभ्यता में नृत्य, गीत, काव्यकला की अभिव्यक्ति होती है। अथवा अतृप्त कामनाओं के रूपान्तरित होने से, परस्परविरोधी कामनाओं के निष्ठुर द्वन्द्व से निष्कृति पाने के लिए, या व्यर्थ कामनाओं की ज्वाला से विदग्ध होकर सन्त तुलसीदास की भाँति साधु-जीवन का प्रादुर्भाव होता है, साधना का मार्ग खुल जाता है, सिद्ध जनों का आविर्भाव होता है।
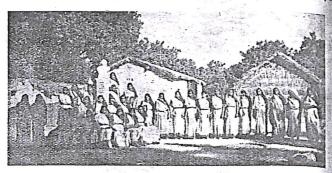
[महिला स्वयंसेविका और अध्यापिकायें।]

नारी मायाविनी, महामाया की मोहिनी शक्ति है। नारी-शक्ति के ही केन्द्रस्थल में रहने के कारण संसार, विचित्र और नाना प्रकार से लीलाभिनय का अनन्त भाण्डार है। इस अनन्त, अपार लीलानिकेतन में नारी-सम्पर्क-शून्या किसी भी घटना का मिलना असम्भव-सा है। परन्तु ऐसी सर्व-व्यापिनी, अनन्त-शक्ति-सम्पन्ना मोहिनी नारी, हमारी कितनी समीपवर्त्तिनी एवं परिचिता तथा साथ ही साथ कितनी अपरिचिता, दूर, अभिनव और रहस्यमयी है! नारी को हम जानते हैं, पहचानते हैं, तथापि उसे और भी भले प्रकार से जानने के लिए, और भी निगूढ़ रूप से पहचानने के लिए हमारी उत्सुकता का अन्त नहीं है। इसी रहस्यमयी के रहस्य-उद्घाटन के लिए हम और भी कितने रहस्य की सृष्टि करते हैं। हम सरल को रहस्यपूर्ण बनाते हैं और रहस्यावृत्त मर्मवाणी को सरल बनाने की अविराम चेष्टा करते हैं। कारण, सरल भी तो नितान्त सरल नहीं है और रहस्यपूर्ण भी तो नितान्त अबोध्य नहीं है।

[महिला-छात्रावास का एक दृश्य।]

नारी शब्द के उच्चारण-मात्र से हम जितने व्यापक रहस्य का बोध करते हैं, उतना व्यक्त नहीं कर पाते। और जब हम उस बोध को व्यक्त करने की आन्तरिक चेष्टा करते हैं, तब वह अबोध्य हो जाता है। इस प्रकार व्यर्थकाम होकर हम गद्य को छोड़कर पद्य का आश्रय लेते हैं, जैसे कोमल कीड़ा धरित्री के स्थूल स्पर्श से वेदना का अनुभव करता है और तब उसकी मर्म-वेदना तितली के रूप में रूपान्तरित हो जाती है।

[छात्रायें ड्रिल कर रही हैं।]

नारी को हम तितली के रूप में कल्पना करके तृप्ति पाते हैं, इसलिए कि वह इस दुनिया में रहकर भी दूसरी दुनिया के सौरभ को विकीर्ण करती है, जैसे तितली को देखकर हम इस दुनिया में रहते हुए भी अपने अनजान में दूसरी दुनिया में चले आते हैं।

नारी को जब हम अतीन्द्रिय जगत् का रूपक नहीं समझते, तब हम अनर्थ कर बैठते हैं। कुछ व्यक्ति तितलियों को पकड़-पकड़ के उनकी जीवनी-शक्ति का नाश करते हैं और फिर आल्पीन में बेधकर उन्हें चित्रपट के रूप में सजाते हैं। इसी प्रकार रस-लोलुप नर, नारी को अपने व्यसन की सामग्री बनाकर यथार्थ रसास्वादन से भी वंचित रहते हैं और नारी की जीवनी-शक्ति का भी नाश करते हैं। इस विनाश-लीला के परिणाम में जो विष का उद्गम होता है, उससे सामाजिक वातावरण भी विषैला बन जाता है। ऐसे विष से विदग्ध समाज में हम नारी को ही अभिशाप देते हैं। परन्तु इस अभिशाप से नर का जीवन ही अभिशप्त होता है! इस अभिशाप के कारण नर नारायण नहीं बनता, यथार्थ मानव का उदय नहीं होता।

पङ्क में से जैसे पङ्कज का उदय होता है, वैसे ही अभिशप्त मानव-समाज से मानवता का भी उदय हो सकता है। कौन जाने वैष्णव कवि का उदय ऐसी ही पङ्किलता की पिच्छिल पटभूमि के आधार पर ही न हुआ हो! मृत्यु के बाद ही तो नव-जन्म होता है! मृत्यु के पथ से ही तो अमृत का सन्धान होता है! निराशा के गर्भ में जैसे उन्मादना का बीज अंकुरित होता है, आशाभंग के निष्ठुर निष्पीड़न से जैसे वज्र दृढ़ संकल्प का उदय होता है, अभिशप्त जीवन में भी वैसे ही नर, नारी के नयनाभिराम नमनीय कमनीयता के स्पर्श से, अथवा उसकी निर्मम निर्दयता से अभिशाप-मुक्त हो जाता है।

हम नयनाभिराम नमनीय कमनीय नारी को अलंकार वस्त्रादि से सुशोभित क्यों देखना चाहते हैं?

[क्लास रूम।]

जैसे सङ्गीत में मीड़ के संयोग से मूर्च्छना का उदय होता है, गिटकिरी के विक्षेप से गमक में मधुरता आती है, वैसे ही नारी के आभरण से सौन्दर्य में द्युति बिखरती है, स्थिर स्थिति में प्रवाह का वेग उत्पन्न होता है, प्रतिभा के साथ ज्योति विकीर्ण होने लगती है, और मधु की तरह मिठास में अम्ल का प्रक्षेप-सा होता है। नारी को निराभरण देखने से हमें पीड़ा का अनुभव होता है, मानो कहीं त्रुटि रह गई है, कुछ करना बाक़ी रह गया है।

निराभरण नारी की शोभा अंकुश की तरह हमें कुछ और आगे बढ़ने का संकेत करती है। या तो अपमानित होने की आशङ्का से हम विचलित होते हैं, अथवा कर्त्तव्य-च्युति की ताड़ना से हम लज्जित होते हैं; अथवा बुभुक्षु की तरह पाप-मग्न होने के दुर्निवार आकर्षण से हम अपनी स्थिति से नीचे गिर जाते हैं, और निराभरण नारी के नग्न रूप को देखने की दुरन्त अभिलाषा से हम अपने को समाज से, छिन्न करके केवल नर के रूप में खड़े हो जाते हैं। क्या अपनी लज्जाहीनता को ही कवि नारी के नग्न रूप की वर्णना में काव्य का रूप दान करता है? और शिल्पी उसी नग्न रूप को रेखाङ्कित करके अपनी प्रतिभा का परिचय देता है? कवि की लेखनी अथवा शिल्पी की तूलिका के स्पर्श से क्या नारी की नग्नता भव्यता को प्राप्त करती है?

क्या नर की भी नग्नता नारी के मन में अपनी नग्नता का बोध उत्पन्न करती है? क्या शोभा का अनुभव, सौंदर्य का बोध नर और नारी में भिन्न भिन्न हैं? क्या नारी-शोभा का वर्णन नारी ने भी कभी किया है? क्या नारी की मोहिनी शक्ति से नारी भी विमुग्धा हुई है? किसने नारी के मन में प्रवेश किया होगा? नारी के मन की कौन जाने? यदि जानते, तो क्या संसार में सुख की मात्रा बढ़ जाती? एक कलाकार ने तो ऐसा ही एक रहस्य-पूर्ण प्रश्न किया था! नारी भी तो वैसा ही पूछ सकती है कि क्या नर के मन में कुछ भिन्न प्रकार की कला-बाज़ियाँ होती रहती हैं? नर के मन की बात यदि खुल जाय, तो क्या संसार में कुछ कम अनर्थों की सृष्टि होगी? टालस्टाय और स्ट्रैण्डबर्ग ने तो नारी को ही दोषी ठहराया है, और तुर्गनेव ने भी मैडम सिपियाजिन की सृष्टि करके कुछ कम दिल्लगी नहीं की। और मर्माहत होकर दिव्य-दृष्टि-सम्पन्न शरच्चन्द्र ने दलिता नारी को देवी के आसन पर बैठाने की कितनी सार्थक और स्नेहार्द्र चेष्टा की थी। रवीन्द्रनाथ ने सन्दीप की सृष्टि करके पुरुषों पर कैसा कशाघात किया है और विनय की सृष्टि करके पुरुषों के त्याग और सहन-शक्ति का भी कैसा परिचय दिया है।

कहा जाता है कि पुरुष ने दम्भ में आकर नारी पर न जाने कितने अकथनीय अत्याचार किये हैं। और समाज-व्यवस्था में नारी का कोई मूल्य न देकर उसने केवल अपने ही अनुकूल क़ायदे-क़ानून बनाये हैं। परन्तु मर्मज्ञों का कहना है कि नारी के शत्रु पुरुष नहीं हैं, नारी ही हैं। सास, बहू के साथ जो अत्याचार कर सकती है, उसकी तुलना में पुरुष क्या करेगा। नारी को नारी देख नहीं सकती। बहुओं के कारण ही भाई-भाई में विच्छेद होता है, पड़ोसियों में झगड़ा होता है। नारी की निर्दयता से ही नर पशु बन जाता है, और मनुष्य जब पशु बनता है, तो पशुओं की पाशविकता भी मनुष्यों के पास हार मानती है। नारी के पक्षपात से ही तो पैशाचिक लीला का अभिनय होने लगता है, समाज में एक करुण और विकराल क्रन्दन ध्वनि की गुंजन निकलती है, मनुष्य का हृदय श्मशान बन जाता है। नारी क्रोध में आकर भूल जाती है कि उसकी ही विच्छेद-भावना से विक्षिप्त होकर शिव सती की देह को कन्धे पर लेकर भारतवर्ष के कोने कोने में पागल की तरह विचरने लगे थे। ऐसी अवस्था में संसार के ध्वंस होने की सम्भावना से विचलित होकर विष्णु ने उसी सती-देह को शतधा विच्छिन्न करके दिशा-दिशा में फेंक दिया था। आज उसी त्याग-प्रेम के प्रतीक स्वरूप नारी के ही देहावशेष को लेकर हमारे तीर्थस्थान बने हैं। संसार के समस्त सनातन हिन्दू उन तीर्थ-स्थानों में नारी की ही पूजा करते हैं। नारी की मधुर स्मृति में संसार भर में एक ही ताजमहल बना है। परन्तु हिन्दुओं की मानस-सृष्टि में शत-शत ताजमहल भारत के कोने-कोने में शक्ति-पीठ के रूप में युग-युग से हिन्दू-जीवन को अनुप्राणित करते आते हैं। प्राण को छोड़ कर देह में क्या रूप है? शिव-सती की अनुपम वार्त्ता को छोड़कर शक्ति-पीठों में कौन सा प्राण है? ताजमहल को देखकर आँख मूँद कर नारी-स्मृति की महिमा का अनुभव

करना पड़ता है। शक्ति-पीठों में आँख मूँद कर ताजमहलों को देखना पड़ता है। परन्तु हाय! मैं किसके साथ किसकी तुलना कर रहा हूँ! ताजमहल क्या सती के आत्मोत्सर्ग की कहानी बताता है? शिव की उन्मादना का कोई आभास देता है? लक्षकोटि मनुष्यों की पूजा की वार्त्ता सुनाता है? शत सहस्र साधुओं की मार्मिक साधना का संकेत करता है? हाय नारी! तुम्हारी ही पूजा में सनातन पुरुष जीवन को सार्थक बनाते आये हैं और तुम उसी पुरुष को कोसा करती हो! पुरुष सरस्वती के रूप में नारी को ही तो पूजता है? लक्ष्मी के रूप में नारी की ही तो आराधना करता है? रण-चण्डी के रूप में नारी का ही तो आवाहन करता है?

हिन्दू, नारी को अर्द्धाङ्गिनी समझता है। हिन्दू की भावना में पुरुष नारी को ही पाकर पूर्णता को प्राप्त करता है। इसलिए हिन्दू-समाज-व्यवस्था में विवाह मनुष्यों का एक अवश्य कर्त्तव्य-कर्म है। व्यक्तिगत सुख-सुविधा के लिए विवाह-पद्धति का आविष्कार नहीं हुआ है। यह एक सामाजिक व्यवस्था है। व्यक्ति की स्वाभाविक कामनायें और अधिकारों के साथ सामाजिक कल्याण-भावनाओं का समन्वय होने से ही सब प्रकार की सामाजिक व्यवस्था तथा विवाह-प्रथा का उद्भव हुआ है। आधुनिक पाश्चात्य-समाज में विवाह केवल वैयक्तिक व्यापार समझा जाता है, मानों केवल व्यक्ति की सुख-सुविधा के लिए ही विवाह की आयोजना है। परन्तु हिन्दू-समाज में विवाह एक संस्कार है, अपूर्णता में पूर्णता प्राप्त करने का साधन है, अव्यवस्था में व्यवस्था लाने का एक सामाजिक उपाय है। इसलिए भारतीय विवाह-पद्धति में केवल युवक-युवतियों के यौवन-सुलभ चपल आकर्षण से ही विवाह के प्रश्न की मीमांसा नही होती। विवाह को सार्थक बनाने में समाज का भी सुदृढ़ हाथ रहता है। विवाह-बन्धन से सन्तानोत्पत्ति के कारण यह प्रथा केवल व्यक्तिगत दृष्टि से ही नहीं देखी जा सकती। इसलिए हिन्दू-समाज की कल्याण-वेदी पर व्यक्तिगत सुख-सुविधाओं को न्योछावर करने को तैयार रहता है। इस दृष्टि से हिन्दू-आदर्श आधुनिक सुख-सर्वस्व पाश्चात्य वैवाहिक आदर्श से अधिक श्रेष्ठ है। पाश्चात्य-समाज में विवाह के बाद पुत्र, माता-पिता, भाई-बहनों से अलग होकर अपना स्वतन्त्र जीवन बिताने लगता है। विवाहित जीवन में किसी का नियन्त्रण नहीं रहता। बाधा-विघ्न के होते हुए भी विवाहित जीवन का रसास्वादन मधुर होता है। जैसे दोनों तटों के बन्धन से नदी में प्रवाह का वेग उत्पन्न होता है। यदि दिशाहीन होकर जलराशि चतुर्दिशा में विक्षिप्त होने लग जाय, तो नदी के स्रोत में प्रवाह बन्द हो जा सकता है। प्रथम यौवन में संयमहीन उपभोग से जीवनी-शक्ति का ह्रास हो जाता है, जीवन और जीवन-सङ्गिनी से हम ऊबने लग जाते हैं, मधुमय जीवन में गरल का उदय होने लगता है।

पाश्चात्य-समाज में अति आधुनिक युग में एक प्रलय-कारी शब्द का उदय हुआ है। कामरेड शब्द में मानों भविष्य युग वर्त्तमान में आकर जीवन-मन्थन करने लगा है। भावी युग की समस्त कल्पनायें मानो इसी कामरेड शब्द के गर्भ में निहित हैं। यह शब्द अभिनव-साम्य का विचित्र द्योतक है। विवाह के सम्बन्ध में भी अति आधुनिक युग में पाश्चात्य-समाज ने विवाह-बन्धन को मृत्यु का फन्दा समझा है। उस देश में पुरुष स्त्री के साथ, और स्त्री पुरुष के साथ विवाह के बन्धन में फँसना नहीं चाहते। आज वे एक-दूसरे के साथी मात्र हैं—कामरेड हैं। परन्तु हिन्दू-समाज में नारी स्त्री के रूप में सहधर्मिणी है; केवल सङ्गिनी नहीं। कामरेड-साथिन-शब्द में धर्म की, अर्थात् सामाजिक और आध्यात्मिक नीतिज्ञान की कोई भावना नहीं है। अच्छे-बुरे सभी कामों के साथी और साथिन हो सकती हैं। परन्तु नारी, सहधर्मिणी के रूप में, केवल अच्छे कामों में ही पुरुष की साथिन हो सकती है, बुरे कामों में नहीं। हिन्दू-भावना में नारी स्त्री के रूप में केवल अर्द्धाङ्गिनी और सहधर्मिणी हो सकती है, और कुछ नहीं। हिन्दू की दृष्टि में नारी केवल साथिन के रूप में नहीं दिखाई देती। इस वैचित्र्यमय जगत् में नानात्व की अभिव्यञ्जना के साथ नारी को भी हम अनन्त शक्तिरूपिणी, अनन्तरूप से मायाविनी, अनन्त रूप से शक्तिदायिनी, स्नेहमयी जननी, भगिनी, कन्या और सखी के रूप में अनन्तकाल से देखते चले आये हैं।

कुछ इधर उधर की

गीत और भाष्य

दिसम्बर १९३९ की 'माधुरी' के मुखपृष्ठ पर श्रीयुत आरसीप्रसादसिंह का निम्न गीत छपा है—

मञ्जुल-मन्दार-मुकुल—
अभिनव-वन-कन्या।
चपला-चल-चपल-हास,
मलयज-मधु-अगुरु-बास
नूपुर-रव-शिथिल-श्वास,
नृत्यमती बन्या।
प्रति-गति में कल्प-भंग,
वंकायित अंग-अंग
चरणों में नत अनंग
पूजित-सुर-धन्या।

इस रचना में वर्णित 'वनकन्या' और कुछ नहीं, कवि की क़लम है। वन-कन्या क़लम होती ही है। 'अभिनव' से मतलब नई से है। चपला की चमक-दमक उसमें है ही, प्रतिदिन दस-बीस कवितायें-कहानियाँ और निबन्ध लिख सकती है! कभी कभी वह चन्दन की भी बनती है और तब उसमें मलयज-मधु की भीनी बास आया करती है। क़लम की चरचराहट ही उसका नूपुर-रव है। क्रान्तिकारी रचनायें करती है, जिनको पढ़कर युद्ध-काल में पाठक को 'कल्प-भंग' होने का भय होने लगता है, और इसलिए वह 'शिथिल-श्वास' हो जाता है तथा उसका अनंग (मस्तिष्क) कवि के चरणों में नत हो जाता है।

कल्पना की उड़ान के अलावा इस रचना में और भी सैकड़ों गुण हैं। पहली पंक्ति में 'मकार' की मिठास, दूसरी में 'नकार' की नमकीनता और तीसरी में 'चकार' की चटपटाहट है, जिससे सिद्ध होता है कि कवि को व्यंजन-मैत्री का खासा ज्ञान है। समस्त रचना शीघ्रता-पूर्वक पढ़ते-पढ़ते जिह्वा को उदयशंकर का पार्ट अदा करने का खासा अभ्यास हो जाता है, जिससे कवि की नृत्यकलाभिज्ञता प्रकट होती है। इन सबसे भी बड़ी बात यह है कि इसे पढ़ लेने के बाद कोई यह कहने का साहस नहीं कर सकता कि हिन्दी के कवियों को 'हायफ़न' का ठीक प्रयोग करना नहीं आता। यदि कोई फिर भी प्रश्न करे कि इस गीत की रचना में कवि का प्रयोजन क्या है तो उसे यही उत्तर दिया जा सकता है कि कवि एक ऐसे गीत का नमूना दिखलाना चाहता है जो स्टेज पर 'कोरस' का काम दे सके। 'कोरस' के गानों में सुर-ताल और अलंकारों की छमछमाहट की ओर खास ध्यान रखना पड़ता है; शब्दार्थ की संगति की ओर उतना नहीं। अर्थ तो प्रत्येक शब्द का कुछ न कुछ निकल ही आता है।

श्री सुमित्रानन्दन पन्त और 'स-र-ग-म'

हिन्दी-कवियों के नायिका-स्तवन, राष्ट्रवाद और प्रचारवाद से उद्वेजित कवि के अधर-पल्लव ने गुनगुनाया—'सा'। इस 'सा' में नवीनता थी, मिठास थी, आकर्षण था। कवियों ने अपने चिकाड़े फेंक दिये और इस नये सुर से अपना गला मिलाने लगे। 'सुन्दरियों' का नवीन डिज़ायन निकला और 'अनन्त' व 'उस छोर' के यात्रियों के कण्ठ उनकी आराधना करने लगे। कवि ने दूसरा पर्दा दबाया और अलापा —'रे'। यह गुञ्जन पहले से भी मधुर रहा। 'रे' कोमल भी होता है और तीव्र भी। गुञ्जन की अनुभूति में भी ये दोनों बातें थीं। कुछ कवि इस 'रे' तक भी बढ़ गये। काफ़ी समय तक इस 'सा-रे' की खासी चहलपहल रही।

विकासवाद और स्वरारोह के सिद्धान्त से तो आशा थी कि इस बार हमारा कवि अलापेगा—'गा', पर साहित्यिकों को आश्चर्य हुआ जब उन्होंने देखा कि कवि इस 'आरोह' की शैली को सत्य नहीं समझता, क्योंकि 'युगवाणी' उसका साथ नहीं दे सकती और कवि को युगवाणी का प्रतिनिधि होना आवश्यक है।

युगवाणी में तीव्रता है, स्थायित्व है, उसमें कोमलता का एकान्त अभाव है। इसी लिए पन्त जी को फिर सतत तीव्र और स्थायी स्वर 'सा' पर आकर ठहरना पड़ा, क्योंकि

किसानों और मज़दूरों के कण्ठस्वर इसी परदे पर कवि-कण्ठ से मिल सकते हैं, 'गान्धार' और 'मध्यम' पर नहीं। देखना यह है कि अन्य सामयिक कविगण कब प्रेयसियों का अञ्चल छोड़कर इस परुष 'सा' के अलापने का प्रयत्न करते हैं।

कमला और प्रगति

बनारस से स्त्रियोपयोगी 'कमला' नाम की एक सुन्दर मासिक पत्रिका कुछ दिनों से निकलने लगी है। उसके दिसम्बर के अङ्क में प्रारम्भ में 'नर और नारी' नाम का एक लेख छपा है। लेख के साथ लेखक का नाम नहीं है। उसमें एक जगह लिखा है—

"जैसे स्त्री-पुरुष परस्पर आलिंगन करके एक हो जाते हैं...गर्भाधान का यह प्रकार अनादि है और अखण्ड रहेगा।...महद् ब्रह्म रूपी...में शिव...की कल्पना इसी...का प्रतीक है। ये दोनों (नर व नारी) एक थे...अतः दोनों का एक दूसरे की ओर आकर्षण होता रहता है। यह आकर्षण अत्यन्त स्वाभाविक अतएव अत्यन्त बलवान् है। जो एक था पर बिछुड़ कर दो हो गया वह फिर मिलकर जब एक होता है उस समय का आनन्द परमानन्द है। इसी परमान्द को हमारे शास्त्रकारों ने रतिसुख की उपमा दी है; क्योंकि इससे (रतिसुख) बड़े आनन्द की कल्पना मनुष्य के लिए सम्भव नहीं।

जीव-ब्रह्मैक्य से होनेवाले परमानन्द का अनुभव किसी ही भाग्यवान् को होता होगा—पर उसके बाद का आनन्द यदि कुछ है तो वह नर-नारी के पवित्र संगम में ही है। इसे अश्लील कहना मूर्खता है। यह तो पवित्र है।"

बात तो बड़े पते की और सोलहों आना सच है, पर इसे 'कमला' जैसी पत्रिका के अग्रलेख में ऐसी संयत भाषा में पढ़कर अनुमान होता है कि 'कमला' सचमुच नये युग की पत्रिका बनने जा रही है। इसके लिए उसके संचालकों को अनेक साधुवाद!

* * *

एक इम्प्रेशनिस्ट रचना

केवल....

कमरा है मेरा एक
उसमें—
मेज पर पड़ा लोटा ख़ाली है;
टँगा—
सामने दीवाल पर,
कोट फटा पुराना है।

* * *

आठ रुपये किराये के हैं
दो मेज़, दो कुर्सियाँ—
दो बिजुली की बत्ती हैं;
एक जली, एक बुझी!

* * *

एक चारपायी पर पड़े रहते हैं हम
फ़र्श पर— उधर—
एक जोड़ा चप्पल, एक बाटा का जूता है;
और कुछ काग़ज़ के टुकड़े।

* * *

आले में,
धूल से भरा एक आइना,
कभी—
तैरता उसी में जीवन
और मन मैला!

आज-कल हिन्दी-पाठकों को ऐसी रचनाओं में ही 'कला' दिखाई देती है। रुचि का परिवर्तन ही जो ठहरा!

सामयिक साहित्य

मैंने नेतृत्व क्यों ग्रहण किया

महात्मा गांधी ने कांग्रेस का नेतृत्व फिर ग्रहण कर लिया है। यह बात जहाँ देश के लिए बड़े गौरव की है, वहाँ वैसे ही सौभाग्य की भी है। इस सम्बन्ध में उन्होंने 'हरिजन' में जो पहला लेख लिखा है उसका अधिकांश हम यहाँ 'हरिजन सेवक' से उद्धृत करते हैं—

जवाहरलाल लोकवादी ठहरे। उन्होंने प्रवन्ध किया कि मेरे और उनकी कार्यकारिणी के बीच में खुलकर बातें हो जायँ। हमने तीन बार इस तरह की चर्चा की। मैंने समझ रखा था कि इससे हमारे दो रास्ते हो जायँगे। मेरे सामने जो कांग्रेसी आये उनमें कुछ ऐसे थे भी जो चर्खे और अहिंसा की हँसी उड़ा चुके थे। परन्तु जब मैंने देखा कि वे दोनों चीज़ों से ही राज़ी हो गये, तो मेरे अचरज का ठिकाना न रहा। यह स्थिति कांग्रेसियों के लिए और मेरे दोनों के लिए अटपटी है।

मैं नहीं जानता कि जो कांग्रेसी कल तक मुझमें श्रद्धा नहीं रखते थे उनके नेतृत्व का भार उठाने में मैंने अक्लमन्दी की है। वे लड़ाई में मुझे अपना सरदार बनाने की खातिर बहुत बड़ी क़ीमत तो नहीं चुका रहे हैं? अगर वे श्रद्धा के बिना ही आज्ञापालन करते हैं, तो वह उनके या मेरे लिए अच्छी बात है क्या? क्या मैं उन्हें सफलता के रास्ते पर ले जा सकूँगा? अगर मैं शान्तिकाल में उनके काम का न था तो लड़ाई के वक़्त कैसे हो जाऊँगा? शान्तिकाल तो खैर था ही नहीं। जब तक स्वाधीनता हासिल नहीं हो जाती तब तक कांग्रेस की अँगरेज़ों से लड़ाई ही है। वह कभी बन्द नहीं हुई थी, सिर्फ़ सविनय-अवज्ञा को पहले से ज़्यादा और तैयारी के लिए स्थगित कर दिया गया था। इस तैयारी के समय में जिन कांग्रेसियों ने हिदायतों पर अमल नहीं किया वे ज़रूर मैदान के सिपाही होने के योग्य न थे। फिर भी इलाहाबाद में मेरे सामने जो ज़िम्मेदार लोग आये उन पर मैं अविश्वास नहीं कर सकता था। जो बात इन लोगों के लिए सही है वही दूसरे प्रान्तों के कांग्रेसियों पर लागू होती है। तो मैं यह बोझा अपने कन्धों पर ले रहा हूँ।

इसलिए मैं अपने मन की बात साफ़ क्यों न सुना दूँ?

अधीर कांग्रेसजनों से मेरा कहना यह है। सविनय अवज्ञा का एलान करने की तुरन्त मुझे कोई सूरत नहीं दीखती। अँगरेज़ों को तंग करने ही के लिए तो सविनय अवज्ञा हो नहीं सकती। यह उस समय होगी जब निश्चित रूप से अनिवार्य हो जायगा। शायद सरकारी हलकों की तरफ़ से नाकोंदम आ जाने पर ही हो। मुझे वाइसराय साहब या भारतमन्त्री महोदय की ईमानदारी में सन्देह नहीं है। साथ ही मुझे भी इसमें कोई शक नहीं कि वे ग़लती पर हैं। इसका कारण यह है कि वे जिस पुरानी लकीर पर चलने के आदी हैं वह उनसे छोड़ी नहीं जाती। हमें उन्हें सँभालने के लिए समय देना चाहिए। हमें यहाँ की और बाहर की दोनों जनताओं को समझाकर सच्चा प्रचार कार्य करना चाहिए। हमारे चारों तरफ़ जो ग़लत-फ़हमी फैली हुई है—और वह न सिर्फ़ अँगरेज़ लोगों में ही है बल्कि अपने देशवासियों में भी है—उसे एक दिन में दूर नहीं किया जा सकता।

× × ×

मैं देखता हूँ, चर्खे और अहिंसा में प्राण का सम्बन्ध है। जैसे हथियारबन्द सिपाही में कम से कम कुछ गुण ज़रूर होने चाहिए, वैसे ही अहिंसात्मक सैनिक याने सत्याग्रही में कुछ दूसरे और शायद उलटे ही गुणों का होना अनिवार्य है। इन पिछले गुणों में से एक कताई और उसके पहले की क्रियाओं में काफ़ी कुशलता होना है। सत्याग्रही तो किसी उत्पादक काम में ही लग सकता है। लाखों मनुष्यों के लिए कताई से ज़्यादा सीधा और अच्छा

कोई और उत्पादक काम नहीं है। इतना ही नहीं, यह तो शुरू से ही हमारे अहिंसात्मक कार्यक्रम का एक ज़रूरी अंग रहा है। जिस सभ्यता का आधार अहिंसा है यह हिंसा के लिए संगठित हुई संस्कृति से भिन्न ही होनी चाहिए। इस मौलिक सत्य के साथ कोई कांग्रेसमैन खिलवाड़ न करे। जो बात मैं हज़ारों बार कह चुका हूँ उसको फिर दुहराता हूँ कि अगर करोड़ों आदमी स्वराज्य की खातिर और अहिंसा की भावना से कातने लगें तो शायद सविनय-अवज्ञा की ज़रूरत ही न पड़े।

वर्किंग कमेटी मुझे अपना एकमात्र प्रतिनिधि बनाना चाहती थी, ताकि मैं ज़रूरत पड़ने पर सन्धिवार्ता कर सकूँ और वह नाकामयाब रहे तो सविनय-अवज्ञा-आन्दोलन का संचालन करूँ। यह ऐसा भार था जिसे मैं उठा नहीं सकता। मैं एक गाँव में पड़ा हूँ, इसलिए मेरा जनता के साथ सीधा सम्पर्क नहीं रहता। बहुत बातें ऐसी हैं जिनका सीधा और सच्चा ज्ञान होना चाहिए। ऐसी बातों पर मैं अकेला राय बनाऊँ तो उस पर मेरा विश्वास नहीं होता और न होना चाहिए। मैं तो वर्किंग कमेटी की हर घड़ी राय और हिदायत मिलने पर ही काम कर सकता था। मैं समझौते की बातचीत भी अन्तिम रूप में नहीं करूँगा। सच तो यह है कि इस भार से मुक्त कर दिया जाऊँ तो मुझे खुशी होगी। लेकिन जब तक वर्किंग कमेटी और साधारण कांग्रेसियों का विश्वास और स्नेह मुझे प्राप्त है और जब तक मैं महसूस करता हूँ कि मैं यह काम कर सकता हूँ तब तक मैं किसी ज़िम्मेदारी से बचने की कोशिश न करूँगा।

संसार का संकट

कवि-सम्राट् रवीन्द्रनाथ ठाकुर ने संसार की वर्तमान हिंसात्मक प्रवृत्ति को देखकर एक हृदयस्पर्शी लेख लिखा है। उसे 'नवयुग' ने 'यह संकट' शीर्षक में छापा है। इस महत्त्वपूर्ण लेख के प्रारम्भ का अंश इस प्रकार है—

लोग मुझसे आग्रह करते हैं कि वर्तमान स्थिति पर मैं भी कुछ लिखूँ—रास्ता कोई बाहर निकलने का बताऊँ। लेकिन मैं कोई रास्ता नहीं जानता।

* * *

मुझे एक कहानी याद है। किसी भोली स्त्री ने वालटेयर से पूछा कि क्या जादू से भेड़ों के झुंड मारे जा सकते हैं। वालटेयर ने उत्तर दिया—"हाँ श्रीमती जी, लेकिन थोड़ा-सा संखिया भी चाहिए।" आज संखिये का ऐसे ज़ोर का प्रचार है कि मारनेवाले और मरनेवाले दोनों ही उसके अतिरिक्त और किसी मार्ग का अवलम्बन नहीं कर सकते।

वर्बरता के युग से आज तक देवों को प्रसन्न करने के लिए बलि देने का रवाज चला आया है। 'प्रेम के द्वारा ही सच्ची पूजा हो सकती है', ऋषि महात्माओं का यह उपदेश आध्यात्मिक जगत् की ही बात समझी गई है, व्यावहारिक जीवन में उससे कोई नाता नहीं रक्खा गया। जहाँ प्रत्यक्ष परिणाम की आवश्यकता नहीं, वहाँ ऋषियों की इस सीख का कुछ अर्थ नहीं। जिन क्षेत्रों में प्रत्यक्ष परिणाम चाहिए, वहाँ देवों को प्रसन्न करने के लिए नृशंसतात्मक भेंट दी जाती है। इसके पीछे क्या रहस्य छिपा है? रोगी कड़वी दवा पर आस्था रखता है, खून की बूँदें उसकी ज़बान को लग गई हैं, उन्हीं को वह ओषधि मानता है। यही कारण है कि संसार भर के औषधालयों में ऐसी ही ओषधियाँ तैयार की जा रही हैं। नृशंक शासकों-द्वारा पशुबल—का प्रचार हो रहा है। जो वैद्य अधिक से अधिक मानव-प्राणियों का सिर धड़ से अलग कर सकता है, उसका सम्मान है। सम्भव है, असंख्य मौतें इस वैद्य को अपनी चिकित्सा-प्रणाली पर से विश्वास उठा दें। मृत्यु-आलय जगह जगह खुले हुए हैं, लाखों विद्यार्थी मौत के गाल में धकेले जा रहे हैं, क्योंकि पाठ सीखने का यही तो निराला ढंग है। सम्भव है, कभी मानव इस नर-संहार से कुछ सीखे—कब, कितने समय बाद इसकी मैं भविष्यवाणी नहीं कर सकता। इस समय तो मैं यही देखता हूँ कि क्लास-रूम में ज़ोर ज़ोर से लेक्चर होते हैं, और यह पाठ्यक्रम समाप्त होता नहीं दिखाई देता। जब स्थिति ऐसी है, तो मैं चुप बैठा रहना ही श्रेयस्कर समझता हूँ। मार्ग खोजनेवालों को क्या उत्तर दूँ?

* * *

हिंसा मानव की दुर्बलता पर पाँव टेकती, असहाय मानवता के खेत को पाँवों में रौंद कर यह अपनी फ़सल

बोती है। इसी तरह इसका व्यापार चलता है। इस व्यापार में शक्तिशाली ने अधिकाधिक शक्ति पाई है, अपने प्रभाव-क्षेत्र की सीमा बढ़ाई है। उसने अपार जनसमूह के गले में गुलामी का तौक डाला है—कैसे हम यह जानते हैं। शक्ति अनन्तकाल तक जीवित रहने का दावा करती है—शिकार शक्तिसंचय करके उठ बैठा हो, तो बात दूसरी है। कभी कभी नर-संहार की मशीनरी के भार के कारण, यह अपनी पकड़ को ढीला करती है, तो छटपटा कर दूसरे ही क्षण अपनी भूल का अनुभव कर लेती है। अपनी सत्ता को क़ायम रखने के लिए हिंसा को अनियंत्रित असीमित शस्त्रागार चाहिए। आज हिंसा जिस तरह जागरूक है, जिस तरह उसने भूमि, सागर और वायुमंडल में अपना जाल बिछा रखा है, उसका मानव-इतिहास में उदाहरण नहीं मिलता। पश्चिम की सभ्य जातियाँ भ्रातृ-वध के विजय-तोरण बनाती हुई सैनिक-रूप में आगे बढ़ी जा रही हैं। किसी को रुकने का साहस नहीं है—क्योंकि डर है कहीं प्रतिद्वन्द्वी आगे न निकल जाय।

योरपीय युद्ध और संसार के प्रमुख राष्ट्रों की अभिलाषा

योरप में जो युद्ध छिड़ा हुआ है उसके सम्बन्ध में संसार के प्रमुख राष्ट्रों की उनके स्वार्थों के अनुसार कैसी धारणा हो सकती है, इसका अन्दाज़ 'द लिविंग एज' नाम के अमरीका के एक प्रसिद्ध पत्र में खूब लगाया गया। उस लेख का अनुवाद उपर्युक्त शीर्षक में 'प्रताप' ने छापा है, जिसका संक्षिप्त अंश इस प्रकार है—

सोवियट रूस की इच्छा—रूस चाहता है कि जर्मनी और ब्रिटेन की अन्तिम रूप से हार हो जाय। लेकिन ब्रिटेन की हार वह कुछ शर्तों के साथ चाहता है क्योंकि ब्रिटेन की पूर्ण हार उसे तभी वांछनीय है, जब उसे (ब्रिटेन) वर्गवादी राज्य में परिणत किया जा सके। रूस का लाभ इसी में है कि लड़ाई लम्बी चले। इसी लिए वह हिटलर को सीमित सहायता दे रहा है और तब तक देगा जब तक कि रूस के नेतृत्व में जर्मनी में क्रान्ति न हो जाय। जब तक पश्चिम की घटनायें जैसे जर्मन-क्रान्ति उसे योरप की ओर आकर्षित होने के लिए बाध्य न करे, वह मध्य-एशिया और उत्तरी-पश्चिमी चीन की ओर बढ़ना चाहता है। फिर भी रूस शक्तिशाली जर्मनी से भयभीत है। उसे डर है कि कहीं जर्मनी रूस पर चढ़ न दौड़े। यही कारण है कि स्टैलिन इस बात का स्वागत करता है कि मित्रराष्ट्र जर्मनी के युद्ध-यन्त्रों को कमज़ोर बनावें।

इटली की इच्छा—इटली ग्रेट ब्रिटेन और हिटलर दोनों की हार चाहता है। वह यह भी चाहता है कि रूस की वृद्धि रुक जाय। वह जर्मनी के साथ राजनैतिक सहानुभूति रख कर उसे राजनैतिक दृष्टि से अपने अधीन रखना चाहता है। भूमध्य-सागर में इटली के नेतृत्व की पुनः स्थापना की महत्त्वाकांक्षा के लिए इँगलैंड की हार सबसे पहली चीज़ है। दूसरी तरफ़ इटली जर्मन-रूस के अनाक्रमण-सन्धि से बहुत भयभीत है। उसे भय है कि बालकन में रूस के हस्तक्षेप से इटली और रूस के हितों में कहीं संघर्ष न उत्पन्न हो जाय। इसके अतिरिक्त इटली जर्मनी के समाजवादी होने से भी डर रहा है। ऐसा होने से सम्भव है, मुसोलिनी के शासन के लिए खतरा उपस्थित हो जाय। इसी लिए शान्ति-स्थापक की स्थिति में रहना ही उसने अधिक पसन्द किया है।

संयुक्त-राष्ट्र अमरीका—संयुक्त-राष्ट्र अमरीका चाहता है कि मित्रराष्ट्रों की विजय हो और ब्रिटेन की स्थिति ज्यों की त्यों बनी रहे। वाशिंगटन में यह ज़ोरों से अनुभव किया जा रहा है कि योरप में लोकतन्त्र का ढाँचा अधिक कमज़ोर हुआ तो फ़ासिस्ट और नाज़ी शक्तियाँ अमरीका में प्रविष्ट करने की चेष्टा करेंगी। मान लीजिए कि मित्रराष्ट्रों की हार हो गई और इनकी हार के बाद स्टैलिन और हिटलर एक-दूसरे से भिड़ गये। उस हालत में प्रशान्त-सागर में जापान को खुल खेलने की स्वतन्त्रता मिल जायगी, जिसके लिए इस समय वह स्वतन्त्र नहीं है।

जपान की इच्छा—उक्त दोनों पार्टियों की जीत से जापान को कम ही लाभ होगा। नाज़ियों की हार से एशिया में रूस को बहुत बड़ी

नई ताक़त मिल जायगी। प्रशान्त सागर में ब्रिटेन का जहाज़ी बेड़ा बढ़ जायगा और ब्रिटिश क्षेत्रों में जापानी मनसूबा खतरे में पड़ जायगा। चीन में सोवियट हस्तक्षेप कर सकता है। इस हालत में मित्रराष्ट्र की विजय जापान के लिए कम हानिकारक होगी।

जिन्ना साहब का राहत का दिन और मुस्लिम लोकमत

मुस्लिम लीग के तानाशाह जनाब मुहम्मद अली जिन्ना कांग्रेस से इतना अधिक नाराज़ हैं कि उसके मंत्रिमण्डलों के पदत्याग करने की खुशियाँ मनाने के लिए उन्होंने भारत के मुसलमानों से यह अपील की थी—

मैं चाहता हूँ कि हिन्दुस्तान भर के मुसलमान आगामी २२ दिसम्बर, शुक्रवार को 'मुक्ति-दिवस' मनायें और कांग्रेसी सरकारों के लोप हो जाने पर जो राहत मुसलमानों को मिली है उसके लिए खुदा की इबादत करें और उसके शुक्रगुजार हों। मैं उम्मीद करता हूँ कि भारत की सभी प्रान्तीय ज़िला तथा प्राथमिक लीगें इस दिन सभायें करेंगी और मैंने जो प्रस्ताव तैयार किया है, उसे सलाह मिलने पर उचित संशोधन के साथ पास करेंगी और कांग्रेस के निरंकुश शासन के मिट जाने से मुसलमानों को जो मुक्ति मिली है, उसके लिए प्रार्थनायें की जायँगी। मैं विश्वास करता हूँ कि इस काम के लिए बुलाई गई सभी सार्वजनिक सभायें बिलकुल व्यवस्थित ढङ्ग से तथा तहज़ीब और तरीक़े के साथ की जायँगी और कोई ऐसी कार्रवाई नहीं की जायगी, जिससे किसी सम्प्रदाय या समुदाय को कोई चोट पहुँचे, क्योंकि मुसलमानों तथा अन्य अल्पसंख्यक जातियों के साथ जो भी जुल्म और बेइन्साफ़ी की गई है, उसकी जिम्मेदारी सिर्फ़ कांग्रेस के बड़े बड़े नेताओं—कांग्रेस हाई कमाण्ड पर है।

परन्तु भारत के मुसलमान निरा बुद्धू ही नहीं बने हुए हैं। उन्होंने जिन्ना साहब के राहत के दिन का विरोध किया। ऐसे कुछ महत्त्व के प्रतिवाद इस प्रकार हैं—

'मजलिसे अहरार हिंद' के अध्यक्ष मौलाना हबीबुर्रहमान ने एक महती सभा में भाषण देते हुए कहा—"मुक्ति-

दिवस मनाने की बात इस्लाम की जीत का मज़ाक है। ग्यारह में से ८ प्रान्तों से कांग्रेस-मंत्रि-मंडलों के त्याग-पत्र देने से मि० जिन्ना तथा उनके साथियों की जीत हो सकती है, परन्तु करोड़ों ग़रीब मुसलमानों का उससे कोई भला न होगा। मि० जिन्ना ने मुसलमानों से जो अपील की है उससे तो इस्लाम की बदनामी है। उनका वक्तव्य तो प्रजातंत्र का विरोधी है तथा वह आत्मसम्मान को इतना धक्का पहुँचानेवाला है कि कोई भी आत्म-सम्मानी मुसलमान उसे बर्दाश्त नहीं कर सकता।

मौलाना आजाद ने अपने वक्तव्य में कहा है—"पिछले दो वर्ष से मैं बराबर कोशिश कर रहा हूँ कि मुस्लिम लीग और कांग्रेस के बीच का भेदभाव दूर हो जाय। लेकिन मुझे यह कहने में बहुत सदमा पहुँचता है कि जब जब कांग्रेस ने समझौते का दरवाज़ा खोला, तब तब एक तीसरे हाथ ने आकर उसमें अड़ंगा लगा दिया। यह हाथ और किसी का नहीं, यह हाथ लीग के प्रधान जनाब मुहम्मद अली जिन्ना का है।

उनकी नेक सलाह यह है कि मुसलमानों को मस्जिद में जाना चाहिए, और खुदा के आगे शुक्रिया अदा करना चाहिए कि इन लोगों को कांग्रेस से छुट्टी मिली।

कोई भी मुसलमान कितना ही उसका मतभेद कांग्रेस से क्यों न हो, इन लफ़्ज़ों में अपने को दुनिया के सामने न पेश करना चाहेगा।

मान लीजिए कि जिन्ना साहब का बयान बिलकुल सच है, इन सरकारों ने इनके राजनीतिक अधिकार छीने, आर्थिक नुक़सान पहुँचाया। और यह सब तहस-नहस सिर्फ़ कुछ ही दिन नहीं पूरे २॥ वर्ष तक होता रहा।

मैंने हमेशा यही बात ज़िम्मेदारी से कही है और उसे आज भी कहता हूँ कि कांग्रेस वज़ारत के खिलाफ़ जो भी इलज़ाम लगाये गये हैं, वे बिलकुल झूठे हैं। यह कहना बिलकुल सफ़ेद झूठ है कि कांग्रेसी वजारतों की नीति मुसलमानों के खिलाफ़ थी। ऐसी हालत में या तो जिन्ना साहब ने जो इलज़ाम लगाये हैं, उन्हें साबित करना चाहिए, नहीं तो कम से कम अपनी ज़बान और क़लाम को अपने क़ाबू में रखना चाहिए।

मुस्लिम लीग की कार्यकारिणी समिति के

सदस्य मिस्टर अब्दुर्रहमान सिद्दीकी एम० एल० ए० ने कहा है—

हमारे बम्बई मलाबार-हिलवासी मियाँ जिन्ना ने पहाड़ खोदकर चुहिया निकाली है। मुस्लिम भारत तो उत्सुकतापूर्वक प्रतीक्षा कर रहा था कि बड़े लाट और प्रान्तीय गवर्नर अपने नये विधान के प्रयोगों की भूलें स्वीकार करने और सुधारने में लगेंगे और इधर अखिल भारतीय मुस्लिम लीग के सभापति जनाब जिन्ना साहब अपने भाइयों को उनका कर्तव्य सुझाने के बदले एक नई ही रागिनी छेड़ बैठे हैं। आश्चर्य तो यह है कि यह सब उन्होंने मुस्लिम लीग के नाम पर किया है, यद्यपि लीग की कार्य-समिति ने उन्हें इसका कोई अधिकार नहीं दिया है। वे लीग के मौलिक सिद्धान्तों को लेकर मनमाने ढंग पर विनाश के पथ पर नहीं दौड़ सकते। उन्हें यह बात समझ लेना चाहिए कि वे लीग को जिस रास्ते पर लिये जा रहे हैं, वह ख़तरनाक और भ्रष्ट है—यह भारतीय मुसलमानों को तुर्कस्थान की ओर लिये जा रहा है और उससे लीग के अङ्ग-भङ्ग हुए बिना न रहेंगे। किसी नेता को जनता का पथप्रदर्शन करते समय और उसे आदेश और उपदेश देने के समय जनता की भावना तथा तथ्यों पर विचार कर लेना चाहिए।

'आज़ाद मुस्लिम-सम्मेलन' ने निम्नलिखित वक्तव्य पास किया :—

'ऐसी हालत में जब कि कांग्रेस और लीग के नेता साम्प्रदायिक समझौता के लिए प्रयत्नशील हैं, लीग के अध्यक्ष को कोई भी ऐसा वक्तव्य देना जिससे साम्प्रदायिक मनोमालिन्य फैले बेमुनासिब था। इससे क्षुद्र मनोवृत्ति का पता तो चलता ही है, साथ ही जिन्ना साहब के राजनैतिक ज्ञान की अल्पता का भी पता लगता है। कोई भी इन्साफ़-पसन्द आदमी ऐसी कार्रवाई में शामिल नहीं हो सकता। इसलिए हम सब मुसलमान भाइयों से प्रार्थना करते हैं कि वे इस अराष्ट्रीय और इस्लाम पर कलंक पोतनेवाली योजना का विरोध करें और सदिच्छा और सहयोग की वह भावना पैदा करें जिससे आज़ादी की राह का रोड़ा निकल जाय और भारत जल्द से जल्द स्वाधीन हो जाय।

बंगाल असेम्बली और कौंसिल के १६ सदस्यों ने, जिनमें मि० शमसुद्दीन अहमद भूतपूर्व मंत्री भी हैं, ने यह वक्तव्य निकाला है—

'मि० जिन्ना द्वारा निकाला गया ताज़ा वक्तव्य उनके पहले के भी सब कामों को मात कर गया है। आपने भारत को स्वाधीनता और जनतंत्र से मरहूम रखने के लिए करोड़ों मुसलमानों को राजनीतिक आधीनता और दासता की प्रक्रिया में रखने की निन्दा करने के रूप में एक नया बहाना ढूँढ़ निकाला है। आपने उन शक्तियों को नष्ट करने का यत्न किया है, जो भारत की एकता और स्वतंत्रता के लिए प्रयत्नशील हैं, और प्रतिगामी साम्राज्यवाद के हाथ में कठपुतली बन गये हैं। मि० जिन्ना की हाल की अपील इतनी विस्मयजनक है, कि उनके समर्थक भी चकित रह गये हैं, और हम यह जानकर प्रसन्न हैं कि उनमें से मि० अब्दुर्रहमान सिद्दिकी ने अपनी आवाज़ विरोध में प्रकट की है।

हमने कभी भी यह स्वीकार नहीं किया है कि एकमात्र मि० जिन्ना भारत के मुसलमानों के नेता और उनके अधिकारों के सतर्क रक्षक हैं। हम नहीं जानते कि मुस्लिम लीग मि० जिन्ना की जेब में है, मगर हम यह बात ज़ोर देकर कहना चाहते हैं कि सारे भारत भर में बड़ी तादाद में मुसलमान मुस्लिम लीग के प्रति सम्मान न रक्खेंगे जिसकी अन्तरात्मा और वाणी एकमात्र मि० जिन्ना जैसे प्रतिगामी के अधिकार में है।

बम्बई के भूतपूर्व शेरिफ़ और आगाख़ाँ की सुप्रीम कौंसिल के अध्यक्ष ने अपना यह वक्तव्य दिया है—

यह बिलकुल आश्चर्य की बात है कि श्री जिन्ना ने २२ दिसम्बर को मुसलमानों से मुक्ति-दिवस मनाने की अपील की है। ऐसा वक्तव्य कुछ भी फ़ायदा पहुँचाने के बजाय साम्प्रदायिक समझौता की भावना को नुक़सान ही पहुँचायेगा और हिन्दुस्तान की समस्या को बहुत जटिल बना देगा। जिन्ना साहब को यह बात याद रखनी चाहिए कि यह समय ईमानदारी और साहस-पूर्वक काम करने का है न कि झूठा राजनैतिक प्रचार करने का। अगर यही रुख़ रहा तो जिन्ना साहब पर से मुसलमानों का विश्वास उठ जायगा और वे अपना नेतृत्व खो बैठेंगे।

वर्ग नं० ४१ का नतीजा

प्रथम पुरस्कार ३००) (शुद्ध पूर्ति पर)

यह पुरस्कार निम्नलिखित ४ व्यक्तियों में बाँटा गया। प्रत्येक को ७५) मिले।

(१) विष्णुदत्त, मैनपुरी।
(२) जगन्नाथदास, लायलपुर।
(३) विनायकराव भट्ट, ललितपुर।
(४) गोविन्दराव भट्ट, ललितपुर।

द्वितीय पुरस्कार १३३) (एक अशुद्धि पर)

यह पुरस्कार निम्नलिखित ७ व्यक्तियों में बाँटा गया। प्रत्येक को १९) मिले।

(१) रामलाल, छिंदवाड़ा (सी० पी०)। (२) ठाकुर घासीराम उरई, प्रान्त जालौन। (३) नर्मदाप्रसाद, बालासोर, उड़ीसा। (४) श्रीगोपाल माहेश्वरी, चौक बाज़ार, मथुरा। (५) कृष्णगोपाल माहेश्वरी चौक बाज़ार मथुरा। (६) रामनिरंजन शर्मा, बिसाऊ जयपुर। (७) बी० पी० तिवारी, इटारसी।

तृतीय पुरस्कार ५१) (दो अशुद्धियों पर)

यह पुरस्कार निम्नलिखित १७ व्यक्तियों में बाँटा गया। प्रत्येक को ३) मिले।

(१) कमला, स्त्री लालजी साहब वर्मा, गांधीनगर, कानपुर। (२) राजकिशोर शुक्ल विद्यार्थी स्टेट हाई-स्कूल, राजनन्दगाँव (बी० एन० आर०)। (३) बनमाली जोशी, १ बंदरोड, इलाहाबाद। (४) रमेशचन्द्र c/o चिरंजीलाल, गुरुकुल वृन्दाबन, ज़िला मथुरा। (५) मदनकिशोर गोयल सर्राफ़ बज़ार धामावाला, देहरादून। (६) हरिनारायन अग्रवाल c/o कैंट जेनरल हास्पिटल, लखनऊ कैंट। (७) काशीलाल वाजपेयी, हुसेनगंज लखनऊ। (८) हृदयनारायण काश्यप, बरेली। (९) बृजगोपाल माहेश्वरी, चौकबाज़ार, मथुरा। (१०) कमलनाभ अग्रवाल, दुलानाला, बनारस। (११) सुधांशु-कुमार मिश्र, मोहनी रोड, देहरादून। (१२) गजाधरप्रसाद पोद्दार, कालेज रोड, रायपुर। (१३) बालकृष्ण शर्मा, गली छोंकरा, मथुरा। (१४) कुँवर दिगविजयसिंह सेंगर, बहादुर पुरघार (इटावा)। (१५) कुंजीलाल वार्ष्णेय, बड़ाबाज़ार, अलीगढ़। (१६) हरप्रसाद केवट, खप्राना, झाँसी। (१७) नारायणप्रकाश, अजीतमल, इटावा।

चतुर्थ पुरस्कार १५) (तीन अशुद्धियों पर)

यह पुरस्कार निम्नलिखित ३० व्यक्तियों को दिया गया। प्रत्येक को ।।) मिले*।

(१) विद्यादेवी जिंगल, बनारस सिटी। (२) तारा-वाली, सरगूजा। (३) जगदम्बाप्रसाद तिवारी, इलाहाबाद। (४) बैजनाथ गुप्त, महोबा (हमीदपुर)। (५) रामाशंकर पांडे, इलाहाबाद। (६) कामताप्रसाद जैन, एटा। (७) कुसुमलता रतननगर (बीकानेर स्टेट)। (८) शंकरलाल मेहता, धर्मपुरी। (९) शिवस्वरूप दुबलिस, मेरठ। (१०) बी० आर० पाठक, लखनऊ। (११) कैलाश पांडे, मैनपुरी। (१२) चन्द्रदत्त पांडे, अलमोड़ा। (१३) केदारनाथ वार्ष्णेय, बड़ा बाज़ार, अलीगढ़। (१४) चन्द्रादेवी गुप्ता, बड़ा बाज़ार, अलीगढ़। (१५) द्वारकादास विद्यार्थी, साधनवाला, शिकारपुर (सिंध)।

*यह ।।) का इनाम सरस्वती के प्रवेश-शुल्क-पत्र के रूप में दिया जायगा जिसको काम में लेने की मियाद फ़रवरी १९४० के अन्त तक होगी।

(१६) गोपालदत्त जोशी, वेरीनाग, अल्मोड़ा। (१७) चुन्नीलाल सिलावट, शोभापुर, होशंगाबाद। (१८) सुरेन्द्र मिश्र राजेन्द्र मिश्र, बिसौली, बदायूं। (१९) परसराम साव, डोंगरगढ़ (सी० पी०)। (२०) जुगुलकिशोर सक्सेना, अजीतमल, इटावा। (२१) चम्पादेवी, चाईबासा, सिंहभूमि। (२२) शिवलखनसिंह, सहँतवार, बलिया। (२३) सरोजिनी देवी मेहरोत्रा, बरेली बैंक, फ़र्रुखाबाद। (२४) गिरिराज किशोर अग्रवाल, लोहागढ़, मुरादाबाद। (२५) रामदत्त जोशी, देवलीखेत, अल्मोड़ा। (२६) लक्ष्मीनारायण मिश्र, बिलसड़ पुवाया (एटा)। (२७) माधवप्रसाद शुक्ल अजगैन (उन्नाव)। (२८) रघुनाथप्रसाद, साक्षी विनायक कटरा, बनारस। (२९) परमात्माशरण जकाती, बरेली। (३०) श्यामलाल फ़रीदपुर, बरेली।

उपर्युक्त सब पुरस्कार जनवरी के अन्त तक भेज दिये जायँगे।

नोट—जाँच का फ़ार्म ठीक समय पर आने से यदि किसी को और भी पुरस्कार पाने का अधिकार सिद्ध हुआ तो उपर्युक्त पुरस्कारों में से जो उसकी पूर्ति के अनुसार होगा वह फिर से बाँटा जायगा।

केवल वे ही लोग जाँच का फ़ार्म भेजें जिनका नाम यहाँ नहीं छपा है, पर जिनको यह सन्देह हो कि वे पुरस्कार पाने के अधिकारी हैं।

व्यस्त रेखा शब्द पहेली
CROSSWORD PUZZLE IN HINDI

३००) शुद्ध पूर्तियों पर

२००) न्यूनतम अशुद्धियों पर

नियमः—

(१) किसी भी व्यक्ति को यह अधिकार है कि वह जितनी पूर्तियाँ भेजना चाहे, भेजे, किन्तु प्रत्येक वर्ग-पूर्ति सरस्वती पत्रिका के ही छपे हुए फ़ार्म पर होनी चाहिए। इस प्रतियोगिता में एक व्यक्ति को केवल एक ही इनाम मिल सकता है। इंडियन-प्रेस के कर्मचारी इसमें भाग नहीं ले सकेंगे। प्रत्येक वर्ग की पूर्ति स्याही से की जाय। पेंसिल से की गई पूर्तियाँ स्वीकार न की जायँगी। अक्षर सुन्दर, सुडौल और छापे के सदृश स्पष्ट लिखने चाहिए। जो अक्षर पढ़ा न जा सकेगा अथवा बिगाड़ कर या काटकर दूसरी बार लिखा गया होगा वह अशुद्ध माना जायगा।

(२) प्रतियोगिता में शामिल होने के लिए जो फ़ीस वर्ग के ऊपर छपी है, दाखिल करनी होगी। फ़ीस मनीआर्डर-द्वारा या सरस्वती-प्रतियोगिता के प्रवेश-शुल्क-पत्र (Credit voucher) के द्वारा दाख़िल की जा सकती है। इन प्रवेश-शुल्क-पत्रों की किताबें हमारे कार्यालय से ३) या ६) में ख़रीदी जा सकती हैं। ३) की किताब में आठ आने मूल्य के और ६) की किताब में १) मूल्य के ६ पत्र बँधे हैं। एक ही कुटुम्ब के अनेक व्यक्ति जिनका पता-ठिकाना भी एक ही हो, एक ही मनीआर्डर-द्वारा अपनी अपनी फ़ीस भेज सकते हैं और उनकी वर्ग-पूर्तियाँ भी एक ही लिफ़ाफ़े या पैकेट में भेजी जा सकती हैं। वर्ग-पूर्ति की फ़ीस किसी भी दशा में नहीं लौटाई जायगी। मनीआर्डर व वर्ग-पूर्तियाँ 'प्रबन्धक, वर्ग-नम्बर ४२, इंडियन प्रेस, लि०, इलाहाबाद' के पते से आनी चाहिए।

(३) लिफ़ाफ़े में वर्ग-पूर्ति के साथ मनीआर्डर की रसीद, पोस्टल आर्डर या प्रवेश-शुल्क-पत्र नत्थी होकर आना अनिवार्य है। कूपन में दिए हुए स्थान पर इनका नम्बर अवश्य लिख देना चाहिए। ऐसा न होने पर वर्ग-पूर्ति की जाँच न की जायगी।

(४) जो वर्ग-पूर्ति २७ जनवरी तक नहीं पहुँचेगी, जाँच में शामिल नहीं की जायगी। स्थानीय पूर्तियाँ २५ जनवरी को पाँच बजे तक बक्स में पड़ जानी चाहिएँ और दूर के स्थानों (अर्थात् जहाँ से इलाहाबाद को डाक गाड़ी से चिट्ठी पहुँचने में २४ घंटे या अधिक लगता है) से भेजनेवालों की पूर्तियाँ २ दिन बाद तक ली जायँगी। वर्ग-सम्पादक का निर्णय सब प्रकार से और प्रत्येक दशा में अन्तिम तथा मान्य होगा। शुद्ध वर्ग-पूर्ति की प्रतिलिपि सरस्वती पत्रिका के अगले अङ्क में प्रकाशित होगी, जिससे पूर्ति करनेवाले सज्जन अपनी अपनी वर्ग-पूर्ति की शुद्धता-अशुद्धता की जाँच कर सकें।

(५) वर्ग-निर्माता की पूर्ति से, जो मुहर लगा करके रख दी गई है, जो पूर्ति मिलेगी वही सही मानी जायगी। इस संबंध में किसी प्रकार का वाद-विवाद न माना जायगा। यदि कोई पूर्ति शुद्ध न निकली तो मैनेजर शुद्ध पूर्ति का इनाम जिस तरह उचित समझेंगे बाँटेंगे। [illegible] इनाम जिसे तरह उचित [illegible] बाँटेंगे।

३००) शुद्धपूर्ति पर **व्यत्यस्त-रेखा-शब्द-पहेली** २००) न्यूनतम अशुद्धियों पर

अङ्क-परिचय नं० ४२

बाँयें से दाहिने

१—बच्चों का एक सबसे अच्छा मासिक पत्र। ३—प्रसिद्ध जैन तीर्थंकर। ५—एक प्रकार की घोड़ा-गाड़ी। ७—अफ़्रीका की वह जाति जो अपने काले रंग के लिए मशहूर है। १०—रसिक इसकी प्रतीक्षा बड़ी उत्सुकता से करते हैं। १२—कहते हैं कि पद्मिनियाँ यहीं होती हैं। १३—इनकी टोली कभी भय पैदा करती है, कभी सुख। १५—कभी-कभी यह भी अच्छी लगती है। १६—मृतक पति का यह करनेवाली स्त्री ही सती कहलाती है। १८—अपने से निर्बल को यह करने में कौन बहादुरी है? १९—इसका प्रचार देश में दिन-दिन बढ़ रहा है। २०—इसका परिमाण देश में घटता ही जा रहा है। २२—गड्ढा। २३—यह आवश्यक नहीं कि जिसके पास धन न हो वही ऐसा हो। २६—आकाश में इनका टूटना भयजनक होता है। २८—इससे बचने में ही कुशल है। २९—इसकी लालच से मनुष्य क्या नहीं कर सकता? ३२—अपने इसको निरापद बनाने के लिए दुष्ट लोग कभी-कभी घोर अनर्थ कर बैठते हैं। ३३—नाविकों को इसी का सहारा होता है।

ऊपर से नीचे

१—एक जानवर जो अपने सुन्दर सींगों के लिए मशहूर है। २—चारपाई। ३—रेशम। ४—यह मर कर उलटा हो गया। ६—जिससे यह नहीं मिलता उसके साथ कैसे रहा जाय? ८—खड़खड़िया। ९—स्वभाव की जाँच इसी से होती है। १०—इसकी सफ़ाई का स्वास्थ्य से गहरा सम्बन्ध है। ११—भूरे रंग का एक हिरन जो गाय के बराबर होता है। १३—यात्रा के समय खाली इसका लोग बहुत बचाव करते हैं। १४—साधुओं का यह उनकी सच्ची लगन का परिचय देता है। १७—प्रदर्शनी। १९—इसे पृथ्वी पर गिरा हुआ पानी पसन्द नहीं है। २१—बाढ़ के समय इसके किनारे के गाँवों के बह जाने का डर बना रहता है। २२—ज़्यादा खानेवाले लड़के प्रायः इसी नाम से पुकारे जाते हैं। २४—इसका बढ़ना स्वास्थ्य के लिए हितकर नहीं है। २५—यह भी कभी-कभी मीठा लगता है। २७—बिना इसके मुक्ति नहीं मिलती। ३०—आज-कल के युवक प्रायः इसी की तलाश में रहते हैं। ३१—लड़ाई के दिनों में प्रायः दूकानदार इसे बढ़ा देते हैं।

अपनी यादगाश्त के लिए वर्ग ४२ की पूर्तियों की नक़ल यहाँ पर कर लीजिए और इसे निर्णय प्रकाशित होने तक अपने पास रखिए।

बा	ल	स	खा	■	पा		स	ा	थ
र	■	■		म		म	■	■	■
ह		शी	■		■	■		ज	नीं
सिं	ह		■	■	ा	र	द	■	ल
ा	ली	■	अं	नु			न	■	ा
■	■	■	■	ा	र	ना	■	ा	य
	न	■	■	ड़	■	■	ा	त	■
■	ि	न	■		चं	■	ऊ		■
	■		ल	■		दं	वी	■	ा
प		■	■	प		ा	र	■	व

बा	ल	स	खा	■	पा		स	ा	थ
र	■	■		म		म	■	■	■
ह		शी	■		■	■		ज	नीं
सिं	ह		■	■	ा	र	द	■	ल
ा	ली	■	अं	नु			न	■	ा
■	■	■	■	ा	र	ना	■	ा	य
	न	■	■	ड़	■	■	ा	त	■
■	ि	न	■		चं	■	ऊ		■
	■		ल	■		दं	वी	■	ा
प		■	■	प		ा	र	■	व

वर्ग नं० ४१ की शुद्ध पूर्ति

वर्ग नम्बर ४१ की शुद्ध पूर्ति जो बन्द लिफ़ाफ़े में मुहर लगाकर रख दी गई थी, यहाँ दी जाती है।

ग्रा	म	सु	धा	र	■	■	सु	हा	ग
ह	■	ल	■	■	सु	रं	ग	■	री
क	ठौ	ता	■	पा	ग	■	म	■	ब
सं	■	न	र	ना	ह	■	■	■	नि
ख्या	ति	■	■	■	■	■	म	ड़	वा
■	■	ब	ह	कां	ना	■	ल	■	ज
ब	बा	■	■	त	■	न	मा	ज़	■
र	■	कां	ज	र	■	नि	स	■	■
धा	■	■	■	■	■	हा	■	■	पां
■	रं	न	वा	स	■	ल	ह	सु	न

वर्ग नं० ४१ (जाँच का फ़ार्म)

मैंने सरस्वती में छपे वर्ग नं० ४१ के आपके उत्तर से अपना उत्तर मिलाया। मेरी पूर्ति

नं०...में { कोई अशुद्धि नहीं है। / १,२,३ अशुद्धियाँ हैं।

मेरी पूर्ति पर जो पारितोषिक मिला हो उसे तुरन्त भेजिए। मैं १) जाँच की फ़ीस भेज रहा हूँ।

हस्ताक्षर

पता

बिन्दीदार लाइन पर काटिए

नोट—जो पुरस्कार आपकी पूर्ति के अनुसार होगा वह फिर से बँटेगा और फ़ीस लौटा दी जायगी। पर यदि पूर्ति ठीक न निकली तो फ़ीस नहीं लौटाई जायगी। जो समझें कि उनका नाम ठीक जगह पर छपा है उन्हें इस फ़ार्म के भेजने की ज़रूरत नहीं। यह फ़ार्म १५ जनवरी के बाद नहीं लिया जायगा।

इसे काटकर लिफ़ाफ़े पर चिपका दीजिए।

मैनेजर वर्ग नं० ४२

इंडियन प्रेस, लि०,
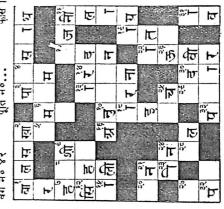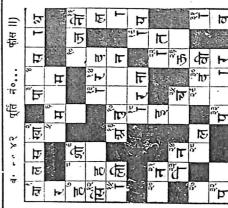
इलाहाबाद

मुफ़्त कूपन की नक़ल यहाँ कीजिए।

इस लाइन से काटिए

वर्ग नं० ४२ मुफ़्त कूपन पूर्ति नं०...

वर्ग नं० ४२ पूर्ति नं०... फ़ीस ।)

वर्ग नं० ४२ पूर्ति नं०... फ़ीस ।)

रिक्त कोष्ठों के अक्षर मात्रारहित और पूर्ण हैं।

पता

पी० आ०, म० आ० रसीद या शुल्क-प्रवेश-पत्र नं०.........नोट—ये तीनों कूपन यहाँ एक साथ केवल एक व्यक्ति के भरने के लिए दिये जा रहे हैं। तीनों कूपनों को एक साथ काट कर भेजना चाहिए। जो एक कूपन भेजना चाहें वे दो को भी छोड़ें। जो दो भेजें उन्हें तीसरे कूपन की फ़ीस न देनी पड़ेगी। यानी वे १) में तीनों कूपन भेज सकेंगे।

अन्य आवश्यक सूचनायें —

(१) पाठक देखेंगे कि एक कूपन में एक नाम से अधिक भरने की गुंजाइश नहीं है परन्तु प्रत्येक कूपन में ऐसी सुविधा की गई है कि वर्ग नं० ४२ की तीन पूर्तियाँ एक साथ भेजी जा सकेंगी। दो आठ-आठ आने की और तीसरी मुफ़्त। मुफ़्त पूर्ति सिर्फ़ उन्हीं की स्वीकार की जायगी जो दो पूर्तियों के लिए १) भेजेंगे। और तीनों पूर्तियाँ एक ही नाम से भेजेंगे। एक पूर्ति भेजनेवाले को भी पूरा कूपन काट कर भेजना चाहिए और दो ख़ाने ख़ाली छोड़ देने चाहिए। अन्यथा उनकी पूर्ति स्वीकार न की जायगी।

(२) स्थानीय पूर्तियाँ 'सरस्वती-प्रतियोगिता-बक्स' में जो कार्यालय के सामने रक्खा गया है, दिन में दस और पाँच के बीच में डाली जा सकती हैं।

(३) वर्ग नम्बर ४२ का नतीजा जो बन्द लिफ़ाफ़े में मुहर लगाकर रख दिया गया है, ता० २९ जनवरी सन् १९४० को सरस्वती-सम्पादकीय विभाग में शाम को ४-५ बजे के बीच में सर्वसाधारण के सामने खोला जायगा। उस समय जो सज्जन चाहें स्वयं उपस्थित होकर उसे देख सकते हैं।

(४) नियमों का पालन पूर्ति भेजने की ख़ास शर्त है। यदि कोई पूर्ति देर से पहुँचे या खो जाय तो कार्यालय उसके लिए उत्तरदायी नहीं है। इस संबंध में किसी प्रकार का कोई उत्तर न दिया जायगा।

(५) पहेली की फ़ीस जो प्रतियोगी इंडियन प्रेस के 'प्रवेश-शुल्क-पत्रों' के रूप में भेजते हैं उन्हें जान लेना चाहिए कि ये प्रवेश-शुल्क-पत्र जिस व्यक्ति के नाम से लिये जायँ, वही उनका उपयोग कर सकता है। जो प्रतियोगी दूसरे के नाम से लिये गये शुल्क-पत्र अपने कूपन के साथ भेजेगा उसकी पूर्ति अनियमित ठहराई जायगी।

विशेष-सूचना

जिन प्रतियोगियों के पास 'सरस्वती' की वर्ग-प्रतियोगिता के "प्रवेश-शुल्क पत्र" हों, उन्हें चाहिए कि वे फ़रवरी १९४० की पूर्ति तक उन्हें काम में ले लें। इसके बाद वे रद्दी कर दिये जायँगे। जो अपने प्रवेश-शुल्क-पत्रों को काम में न लाना चाहें वे उन्हें हमारे पास वापस भेज कर अपने दाम वापस मँगा लें। इसकी मियाद फ़रवरी के अन्त तक है। इसके बाद किसी का दावा स्वीकार न किया जायगा।

भूल-सुधार

वर्ग नं० ४० के पुरस्कार-विजेताओं में श्रीयुत मार्कंडेय बाजपेयी, नया कटरा, प्रयाग का नाम भूल से २ बार छप गया है—एक बार प्रथम पुरस्कार-विजेताओं में और दूसरी बार तृतीय पुरस्कार-विजेताओं में। सरस्वती वर्ग-प्रतियोगिता के नियम नं० १ के अनुसार एक व्यक्ति एक ही इनाम का हक़दार हो सकता है। इसलिए उपर्युक्त कूपन पर केवल एक इनाम, प्रथम पुरस्कारवाला ही मिलेगा।

यह शायद बहुतों को नहीं मालूम कि विख्यात अँगरेज दार्शनिक रस्किन ने एक बार लन्दन में चाय की दूकान चलाने की चेष्टा की थी। वह ग़रीबों को बिना किसी प्रकार का लाभ किये, विशुद्ध चाय देना चाहता था। दूकान, पैडिंगटन स्ट्रीट में खोली गई लेकिन कुछ ही समय बाद उसे बन्द कर देना पड़ा क्योंकि रस्किन दूसरे दूकानदारों की तरह, दूकान की सजावट तथा बड़े बड़े इश्तहार लगाने के पक्ष में नहीं था जो ग्राहकों को रोशनी की तड़क भड़क तथा आकर्षक छन्दों से अपनी ओर खींचते थे।

सम्पादकीय नोट

योरप की संकटपूर्ण अवस्था

अब योरप पहले का योरप नहीं रहा। उसकी सभ्यता की सारी क़लई खुल गई है, जिसके साथ ही उसकी व्यवस्था एवं सुशृंखलता का भी विनाश हो गया है। वहाँ के शक्तिशाली राष्ट्र 'सन्तुष्ट नराधिप' बने रहकर भारत के प्राचीन काल के ब्राह्मणों के आदर्श को अपनाना नहीं चाहते, किन्तु वे भी संसार में अपने पैर फैलाने को उतावले हो उठे हैं। ऐसे राष्ट्र इटली, जर्मनी और रूस हैं। अभी तक इटली और जर्मनी ही अपनी अपनी मनमानी का नंगा नाच दिखला रहे थे। परन्तु इधर पोलैंड पर जर्मनी के चढ़ाई करने के बाद से इटली अलग होकर बैठ गया है और रूस ने आगे आकर उसके अभाव की पूर्ति कर दी है। जर्मनी की अनीतिमूलक चढ़ाई के फलस्वरूप ब्रिटेन और फ़्रांस को उसके विरुद्ध युद्ध की घोषणा करके अस्त्र ग्रहण करना पड़ा है और वे इस समय जर्मनी से लड़ भी रहे हैं। इस अवस्था से लाभ उठाने के लिए रूस ने अपना असली रूप प्रकट किया है। जब उसने देखा कि जर्मनी पोलैंड को हड़पे जा रहा है तब उसने अपनी सेना भेजकर उसके उस भाग पर अधिकार कर लिया जो एक समय रूस के साम्राज्य के अन्तर्गत था। इसके बाद उसने बाल्टिक के राज्यों को अपने प्रभाव में लाने के लिए अपना उग्र रूप प्रकट किया। फलतः लेटेविया, इस्थोनिया और लुथिआनिया ने उसकी शर्तें स्वीकार कर लीं और वे एक प्रकार से उसकी संरक्षा में हो गये। परन्तु फ़िनलैंड ने उसकी शर्तें नहीं मानीं और अब रूस की फ़ौजें उसका उसी प्रकार संहार करने में लगी हुई हैं, जैसे अभी कुछ दिन पहले जर्मनी की फ़ौजें पोलैंड का कर चुकी हैं। इस प्रकार रूस के इस रूप में प्रकट होने से योरप की संकटपूर्ण राजनैतिक अवस्था जटिल से जटिलतर हो गई है। फ़िनलैंड को भी पोलैंड के घाट उतरना पड़ेगा, क्योंकि उसकी क्रियात्मक सहायता करने को आगे आता कोई भी दिखाई नहीं दे रहा है। यह ज़रूर है कि इस अत्याचार की नीति के विरोधी राष्ट्र रूस की उसके इस अनाचार की कड़े से कड़े शब्दों में निन्दा कर और सहायता देने को भी कह रहे हैं। परन्तु उनकी इस कार्रवाई से क्या फ़िनलैंड की रक्षा होगी? और फ़िनलैंड के विनाश के बाद क्या होगा? सबसे विकट प्रश्न तो यही है। लोगों का अनुमान है कि बाल्टिक में अपनी स्थिति को मज़बूत करके रूस अपना ध्यान काले सागर की ओर लगायेगा। उसे डर है कि दरे दानियाल के उसके अधिकार में न रहने से उस दिशा में वह अरक्षित है। और चूँकि तुर्कों से इस सम्बन्ध में उसका समझौता नहीं हो सका है, अतएव उसकी अगली कार्रवाई उसी दिशा में होगी। इसी से कुछ लोग यह भी कह रहे हैं कि इसी उद्देश्य की सिद्धि के लिए वह रूमानिया से अपना बेसेबेरिया प्रदेश माँगेगा। अर्थात् बेसेबेरिया लेने के बहाने वह रूमानिया पर चढ़ाई करेगा। कहा जाता है कि इस संघर्ष में उसे जर्मनी के सिवा हंगरी और बल्गेरिया की भी सहायता मिलेगी। और उस दशा में ब्रिटेन और फ़्रांस तुर्कों के साथ इस संघर्ष में, रूमानिया की रक्षा के लिए वचन-बद्ध होने के कारण, शामिल होने को बाध्य होंगे। इस प्रकार योरप का वर्तमान युद्ध 'योरपीय महायुद्ध' का भयावह रूप धारण कर जायगा। परन्तु अभी यह अनुमान भर है। कोई निश्चयपूर्वक नहीं कह सकता है कि आगे क्या होगा। परन्तु इतना तो स्पष्ट ही है कि रूस के इस नये रूप ने योरप की बिगड़ी हुई अवस्था को बुरी तरह बिगाड़ दिया है, यहाँ तक कि उसके सँभलने या सँभालने के लक्षण भी नहीं दिखाई दे रहे हैं।

कांग्रेस की माँग

योरप में जिस तरह ब्रिटेन और फ़्रांस का जर्मनी से बातों का युद्ध छिड़ा हुआ है, वैसे ही हमारे देश में कांग्रेस का ब्रिटिश सरकार से युद्ध छिड़ गया है। आठों प्रान्तों से

अपने मन्त्रियों से इस्तीफ़ा दिलाकर कांग्रेस ने ब्रिटिश सरकार से यह माँग की है कि अब यह बात तय ही हो जानी चाहिए कि भारतीय राष्ट्र की अँगरेज़ी साम्राज्य में क्या स्थिति रहेगी। इसके लिए उसने सरकार से विधान बनाने के लिए भारतीय प्रतिनिधियों का एक सम्मेलन कराने की माँग की है। कांग्रेस चाहती है कि भारत का लोकसम्मत शासन-विधान बनाने के लिए एक लोक-सभा का अधिवेशन किया जाय। उस सभा के प्रतिनिधियों का चुनाव देश के प्रत्येक बालिग़ वोटर के वोट से हो। इस प्रकार चुने गये प्रतिनिधियों से उक्त लोक-सभा का संगठन हो और उसे भारत का शासन-विधान बनाने का अधिकार दिया जाय। रहीं अल्पसंख्यक जातियाँ, सो उनका सन्देह दूर करने के लिए उनको इस सभा में विशेष प्रतिनिधित्व दिया जाय और उनके प्रतिनिधियों की इच्छा के विरुद्ध एक भी नियम उक्त सभा न बनावे और इस प्रकार भारत के लिए एक सर्वसम्मत लोकप्रिय शासन विधान तैयार करे जिसे ब्रिटिश सरकार उदारतापूर्वक तत्काल स्वीकार करके उसका देश में प्रवर्तन कर दे।

ऐसी लोक-सभा की यह माँग अँगरेज़ी सरकार के लिए कोई नई बात नहीं है। स्वयं ब्रिटिश साम्राज्य में ऐसी सभायें समय समय पर संगठित हुई हैं। दक्षिण-अफ़्रीका, कनाडा और आस्ट्रेलिया ब्रिटिश साम्राज्य के अन्तर्गत हैं और वे आज 'डोमीनियन' पद का सुख भोग रहे हैं, जिसका विधान बनाने के लिए विधान निर्माण करनेवाली सभायें ही संगठित की गई थीं।

कनाडा में ब्रिटिश और फ़्रेंच जन-संख्या के कारण कठिनाई उपस्थित हुई थी, तो भी सन् १८४० में सभी जातियों के प्रतिनिधियों का एक सम्मेलन हुआ। इस सम्मेलन में जो ७२ प्रस्ताव स्वीकृत हुए उनके आधार पर अधिकारों की माँग की गई, और ब्रिटेन को स्वीकार करना पड़ा। सन् १९०० में आस्ट्रेलिया में भी विधान बनानेवाली सभा की रचना हुई थी। सभी दलों के प्रतिनिधियों ने एकमत होकर विधान बनाया और ब्रिटिश पार्लियामेंट को उसे स्वीकार करना पड़ा। इसी प्रकार दक्षिण-अफ़्रीका में अँगरेज़ और डचों में भेदभाव था और एकता न हो पाती थी। १९०८ में एक सम्मेलन हुआ, जिसमें सभी दलों के प्रतिनिधि सम्मिलित हुए। जो विधान प्रतिनिधियों ने बनाया वह १९०९ में स्वीकार किया गया। इसी प्रकार आयरलैंड में विधान बनानेवाली सभा १९२१ में बुलाई गई, और आयरलैंड को स्वतन्त्रता मिली।

कांग्रेस की यह माँग तो पहले से ही है कि भारत का शासन-विधान बनाने का अधिकार एकमात्र भारतीयों को है। परन्तु अब वह समय वास्तव में आ गया है कि ब्रिटिश सरकार उसकी इस माँग को जल्दी से जल्दी पूर्ण कर दे। खेद की बात है कि ब्रिटिश सरकार के प्रधान मन्त्री मिस्टर नेवाइल चैम्बरलेन ने कांग्रेस की इस महत्त्वपूर्ण माँग को अव्यावहारिक कहकर अस्वीकृत कर दिया है। उनका कहना है कि अँगरेज़ सदियों से भारत के शासक रहे हैं, अतएव वे उसके शासन-विधान की रचना से उदासीन कैसे हो सकते हैं। चैम्बरलेन साहब की अस्वीकृति का यह अर्थ है कि अँगरेज़ों के तथा उनके भारतीय मित्रों के भारत में अपने अपने हित जुदा जुदा हैं, जिन्हें वे भारत के प्रतिनिधियों के हवाले कर देने को तैयार नहीं हैं। चाहे जो हो, इस बार कांग्रेस की माँग की उपेक्षा नहीं की जा सकेगी, क्योंकि स्वयं ब्रिटेन में ही अनेक लोग उसकी माँग का समर्थन कर रहे हैं और वहाँ के 'टाइम्स' आदि सरकार के पक्ष के पत्र कांग्रेस की माँग का, अल्पसंख्यकों की बात को आगे लाकर, जो विरोध कर रहे हैं उसका भी वहीं के लोग तथा पत्र उपयुक्त दलीलें दे देकर खंडन भी कर रहे हैं। इससे प्रकट होता है कि ब्रिटिश सरकार को इस बार कांग्रेस की माँग स्वीकार करनी पड़ेगी और निकट भविष्य में ही विधान बनानेवाला सम्मेलन कराना पड़ेगा। इसमें सन्देह नहीं कि ब्रिटिश सरकार के कांग्रेस की माँग को स्वीकार करते ही सारा राष्ट्रीय भारत ब्रिटिश सरकार से सहयोग करने में फिर आगा-पीछा न करेगा, जिसका यह अर्थ होगा कि ब्रिटिश सरकार के बल की असाधारण रूप से वृद्धि हो जायगी और तब एक क्या, लाखों जर्मनी उसके आगे न ठहर सकेंगे।

और इतना ही नहीं, कांग्रेस की इस माँग की पूर्ति हो जाने से भारत की प्रायः सभी समस्याओं की मीमांसा हो जायगी। इस सम्मेलन के सफलतापूर्वक हो जाने पर यहाँ की दारुण साम्प्रदायिक समस्याओं का भी हल

निकल आयगा। एक यह भी कारण है जिससे कांग्रेस अपना सारा ज़ोर इस माँग की पूर्ति पर लगा रही है। और यही कारण है कि वह ब्रिटिश सरकार के विरुद्ध सत्याग्रह-आन्दोलन भी छेड़ना नहीं चाह रही है—केवल समझौते-द्वारा ही अपने उद्देश्य की पूर्ति का प्रयत्न कर रही है। भगवान् करे, कांग्रेस अपने इस प्रयत्न में सफल हो।

जिन्ना साहब और भारतीय राजनीति

मिस्टर जिन्ना आज मुसलमानों के एकमात्र प्रतिनिधि होने का दावा कर रहे हैं, यद्यपि वे यह बात खुद जानते हैं कि उनका यह दावा ग़लत है। हाँ, वे मुसलमानों के स्वयम्भू नेता ज़रूर हैं और उसी से वे कांग्रेस से मुसलमानों के नाम पर अकारण झगड़ रहे हैं। अकारण हम इसलिए कह रहे हैं कि कांग्रेस बार बार कह चुकी है कि भारत में अल्पसंख्यकों के धर्म, संस्कृति और भाषा आदि बातों की पूर्णरूप से रक्षा की जायगी। यही नहीं, पिछले दिनों जब आठ प्रान्तों का शासन-प्रबन्ध उसके हाथों में आ गया था तब कांग्रेसी मन्त्रि-मंडलों ने उन प्रान्तों में हिन्दुओं के हक़ों की उपेक्षा करके मुसलमानों के कहे जानेवाले हकों की बेजा तौर से रक्षा की थी। परन्तु जिन्ना साहब सन्तुष्ट नहीं हैं और वे मुसलमानों का हित कांग्रेस को कोसने में ही समझ रहे हैं। उनके इस मनोभाव का कारण यह है कि कांग्रेस ने उनकी मुस्लिम लीग को भारत के सारे मुसलमानों की एकमात्र प्रतिनिधि संस्था मानने से इनकार कर दिया है। ऐसी दशा में उनका कांग्रेस से चिढ़ जाना सर्वथा स्वाभाविक है। और फिर जब वे यह देख रहे हैं कि ब्रिटिश सरकार कांग्रेस से युद्ध के मसले पर असन्तुष्ट हो गई है तब उसके होकर बोलने में वे अपनी लीग के लिए हितकर समझते हों तो इसमें कोई आश्चर्य नहीं है। वास्तव में यही दो बातें हैं जिनके कारण वे मनाये जाने पर भी नहीं मान रहे हैं और दिन-दोपहर लोगों की आँखों में धूल झोंकने के काम में संलग्न हैं। जो कांग्रेस बहुसंख्यक हिन्दुओं के हितों को दबाकर प्रत्येक क्षेत्र में मुसलमानों को सन्तुष्ट करने को अपनी न्यायतुला तक झुका देने में कभी नहीं हिचकी है उसी को मुसलमानों के हितों का विघातक घोषित करना लोगों की आँखों में धूल झोंकना नहीं तो और क्या है? दुःख तो यह है कि महात्मा गांधी अपनी साधुता के कारण मुस्लिम लीग को भी अपने साथ रखना चाहते हैं, यद्यपि उनके साथ मुसलमानों की और सभी संस्थायें हैं। महात्मा जी के इस सद्भाव का आदर करते हुए हम तो यही निवेदन करेंगे कि अब वह समय आ गया है जब कांग्रेस को मुस्लिम लीग की उपेक्षा करके शेष सारी मुस्लिम संस्थाओं को अपने साथ लेकर आगे आना चाहिए। इस बात के करने से लीग की ओर से हिंसा का भय हो सकता है, परन्तु गांधी जी की अहिंसा के प्रताप से कांग्रेस उस संकट को पार कर जायगी, साथ ही अपने उद्देश्य की भी पूर्ति कर लेगी। मुस्लिमलीग का मोह छोड़ते ही कांग्रेस के साथ इतने अधिक मुसलमान हो जायँगे कि उनके आगे मुस्लिम लीग अपने आप लघु से लघुतर दिखाई देने लगेगी। ज़रूरत सिर्फ़ दृढ़ता के साथ आगे बढ़ने की है। और इसके लिए यही उपयुक्त समय है। कांग्रेस को एकता का एक सम्मेलन करना चाहिए और मुसलमानों तथा हरिजनों को बुलाकर उनके साथ उसे ऐसा समझौता करना चाहिए जिससे साम्प्रदायिक समस्या सदा के लिए मिट जाय।

फ़िनलैंड पर रूस का आक्रमण

पोलैंड की तरह योरपीय महायुद्ध के बाद फ़िनलैंड भी स्वतंत्र हुआ था। उसके पहले वह रूस-साम्राज्य का एक प्रदेश मात्र था। रूस का उस पर सन् १८०९ में अधिकार हुआ था। उसके पहले वह स्वीडन के अधिकार में था। परन्तु गत महायुद्ध में उसे स्वाधीन हो जाने का अवसर मिल गया और गत बीस वर्ष से वह स्वतन्त्र है तथा अपना शासन-प्रबन्ध सुचारुरूप से करता आ रहा है। परन्तु अब ऐसा प्रत्यक्ष दिखाई दे रहा है कि योरप के नये स्वाधीन राज्य अधिक समय तक स्वाधीनता की साँस नहीं लेने पायेंगे। पोलैंड की हत्या जर्मनी कर ही चुका है। वही गति रूस फिनलैंड की कर रहा है। रूस चाहता था कि फ़िनलैंड अपने देश का वह भूखण्ड रूस को दे दे जो लेनिनग्राड के

समीप है तथा अपने कुछ द्वीपों पर उसे अपने जहाज़ी अड्डे भी क़ायम करने दे। परन्तु फ़िनलैंड उसकी माँगों की पूर्ति करने को तैयार नहीं हुआ। फलतः रूस ने उस पर धावा बोल दिया। यद्यपि पोलों की तरह फ़िनलैंड के निवासी भी आक्रमणकारी का पद-पद पर दृढ़ता से सामना कर रहे हैं, परन्तु वे अधिक समय तक रूस के आगे नहीं ठहर सकेंगे, यह एक प्रकट बात है। उसकी भी वही दशा होगी जो अभी अभी पोलैंड की हुई है। रूस के इस अनाचार की सारे जगत् में निन्दा हो रही है और राष्ट्र-संघ ने अपनी बैठक करके उसकी स्पष्ट शब्दों में निन्दा की है एवं उसकी सहायता करने का भी आदेश किया है। परन्तु राष्ट्रसंघ फ़िनलैंड की रक्षा नहीं कर सकेगा और कुछ ही दिनों में उसकी स्वाधीनता का अपहरण हो जायगा। इस समय योरप में ऐसी ही धींगा-धींगी मची हुई है। वहाँ के किसी भी छोटे राज्य का कुशल नहीं दिखाई दे रहा है।

किसानों का क़ानून

संयुक्त-प्रान्त के किसानों के एक वर्ग को कांग्रेसी सरकार की बदौलत उनका नैसर्गिक स्वत्व प्राप्त हो गया। अपने कार्य-काल में उसने पट्टेदार किसानों के लिए जो क़ानून बनाया था और जिसे वह असेम्बली और कौंसिल से बड़ी मुश्किल से पास करवा पाई थी उस पर प्रान्त के गवर्नर की मंजूरी मिल गई। सर हेरीहेग ने अपने उच्च पद से अवसर ग्रहण करते समय उस पर हस्ताक्षर कर दिये और अब उसे क़ानून का रूप प्राप्त हो गया है। अपने इस कार्य से सर हेरीहेग ने इस प्रान्त में अपना नाम अमर कर लिया है और यहाँ के ग़रीब किसान उनकी सदा मंगल-कामना करते रहेंगे। इस क़ानून के पास हो जाने से इस प्रान्त के सभी हीन-हयाती काश्तकारों को अपनी जोत की ज़मीन पर मौरूसी हक़ प्राप्त हो गया है, जो वास्तव में एक बहुत बड़ी बात है। इससे यहाँ के पद-दलित किसानों का वर्ग अब सुख की साँस ले सकेगा। अपने कार्यकाल में कांग्रेसी सरकार ने अपना जो यह कर्तव्य-पालन किया है उसे हम जैसे लोग तो महान् पुण्य-कार्य ही कहेंगे और यही चाहेंगे कि वह पुनः पद-ग्रहण कर इसी प्रकार लोक-सेवा के पुण्य-कार्य में अग्रसर हो।

साहित्य-निर्माण की योजना

हिन्दी का प्रचार-कार्य वर्षों से हो रहा है और महात्मा गांधी के इस ओर ध्यान देने से उसने खासा व्यवस्थित रूप धारण कर लिया है। अतएव अब आवश्यकता इस बात की है कि हिन्दी-साहित्य के निर्माण का कार्य हाथ में लिया जाय। इस सम्बन्ध में हिन्दी के प्रसिद्ध लेखक बाबू कालिदास कपूर एम० ए० ने एक लेख लिखा है, जो 'सरस्वती' के इसी अंक में छपा है। सम्मेलन के अध्यक्ष-पद से काशी में उसके सभापति श्रीमान् वाजपेयी जी ने जो भाषण किया था उसमें भी उन्होंने साहित्य-निर्माण की बात पर ज़ोर दिया था और अपनी एक योजना भी बताई थी। वाजपेयी जी कहते हैं—

मैंने सम्मेलन की उन्नति के उपायों पर बहुत विचार कर एक कार्यक्रम बनाया है। हमारे कई मित्र दशवर्षीय योजना की बात सोच रहे हैं, जिससे मेरी सहानुभूति है। उन्हें अपनी योजना सम्मेलन में रखनी चाहिए। उसके कार्य में परिणत होने से मुझे बड़ी प्रसन्नता होगी। मैंने जो सोचा है वह इस प्रकार है—

१—हिन्दी-भाषी नामी विद्वानों से जो अपने विषय के विशेषज्ञ हों, प्रार्थना की जाय कि वे अगले सम्मेलन से कम से कम ३ मास पहले एक ग्रन्थ सम्मेलन को भेंट करें। ऐसे मौलिक ग्रन्थों की संख्या १० से कम न हो। ये ग्रन्थ, सम्मेलन प्रकाशित करे और यदि सम्भव हो तो सम्मेलन की परीक्षाओं में पाठ्य पुस्तक नियत किये जायँ।

२—मंगलाप्रसाद-पारितोषिक उन्हीं ग्रन्थों पर दिया जाय जो सम्मेलन की तिथि से १५ महीने के अन्दर प्रकाशित हुए हों।

३—योग्य विद्वानों से विविध विषयों के कम से कम दस ग्रन्थों का भाषान्तर कराया जाय।

४—इँगलिश-हिन्दी-डिक्शनरी तैयार कराई जाय, जिसमें वर्तमान अँगरेज़ी के संयुक्त होनेवाले शब्द भी आ जायँ। इसमें बँगला, मराठी, गुजराती, नैपाली, पंजाबी,

उर्दू आदि भाषाओं की डिक्शनरियों से भी सहायता ली जाय। ऐसी डिक्शनरी की आवश्यकता पर मतभेद नहीं हो सकता।

५—हिन्दी के इतिहास का शोध कराया जाय। अभी तक जो इतिहास निकले हैं वे अधूरे हैं। गद्य के इतिहास में फ़ोर्ट विलियम कालेज जनरल से अच्छी सहायता मिल सकती है।

६—हिन्दी के प्राचीन ग्रन्थ पढ़ाने की योग्यता रखनेवालों का पता लगाया जाय और उनकी सहायता से उनके सभाष्य संस्करण प्रकाशित किये जायँ।

७—हिन्दी की प्राचीन कविता डिंगल और पिंगल दोनों के ज्ञाता खोज खोजकर शिक्षाकार्य में नियुक्त किये जायँ।

८—हिन्दी के पठन-पाठन की जो व्यवस्था शिक्षालयों या विश्व-विद्यालयों में है उसकी जानकारी प्राप्त की जाय और यदि कहीं त्रुटियाँ हों तो उन्हें दूर कराने का प्रयत्न किया जाय। कलकत्ते के स्कूल-कालेजों में हिन्दी-शिक्षा की ओर विशेष ध्यान नहीं दिया जाता, जिसके फलस्वरूप बी० ए० के बहुत कम परीक्षार्थी शुद्ध भाषा लिख पाते हैं। इस अवस्था को सुधारने की अत्यन्त आवश्यकता है।

९—हिन्दी के ग्रन्थों की सूची बनाई जाय, जिसमें (अ) पुस्तक का नाम, (आ) लेखक का नाम, (इ) विषय, (ई) रचना-काल, (उ) मुद्रित या हस्त-लिखित, (ऊ) कहाँ से मिली, (ए) प्रतियाँ मिल सकती हैं तो मिलने का ठिकाना और (ऐ) दाम लिखे हों। लागतमात्र पर यह सूची बेची जाय।

१०—एक विद्वत्-परिषद बनाई जाय, जो समय समय पर हिन्दी-भाषा, वर्णन (spelling या हिज्जे) आदि के सम्बन्ध में विचार किया करे और जिसका निर्णय अन्तिम हो तथा जिसका आधार वोटों की अपेक्षा तर्क हो।

वाजपेयी जी ने जो सोचा है उसमें भी साहित्य-निर्माण की बात आई है। अतएव आवश्यकता इस बात की है कि सम्मेलन इस विषय पर समुचित रूप से ध्यान दे और साहित्य-निर्माण की अपनी एक योजना बनाकर उसके अनुसार साहित्य-निर्माण का कार्य प्रारम्भ कर दे। इससे दो लाभ होंगे। एक तो सम्मेलन का आर्थिक लाभ होगा, दूसरे आवश्यक साहित्य का निर्माण भी हो जायगा।

सक्खर में हिन्दुओं पर अत्याचार

सिन्ध-प्रान्त के सक्खर नगर में मंजिलगाह नाम की एक शाही इमारत के प्रश्न पर वहाँ जो अचिन्त्य घटना घटित हो गई है वह ध्यान देने योग्य है। उस इमारत को लेकर सक्खर के मुसलमानों का वहाँ की पुलिस से संघर्ष हो गया, जिसके परिणामस्वरूप दंगा-फ़साद हो जाने पर वहाँ के हिन्दू नागरिक बुरी तरह मारे और पीटे गये तथा उनकी सम्पत्ति लूटी और फूँकी गई वह सब कथा वहाँ के हिन्दुओं की दयनीय अवस्था का तो द्योतक है ही, साथ ही यह भी उससे सूचित होता है कि ये स्वराज्य सरकारें ऐसे अवसरों पर कुछ भी कर-धर नहीं पाती हैं और गुण्डे तथा सबल लोग निरीह प्रजा-वर्ग को बुरी तरह सताते हैं। सक्खर की उपर्युक्त दुर्घटना हमारे कथन का ताजा उदाहरण है। उक्त शाही इमारत का झगड़ा सन् १९२६ से चल रहा है। मुसलमान कहते हैं कि वह मस्जिद है। परन्तु सरकार ने उनके दावे को कभी नहीं स्वीकार किया। आखिर को इस वर्ष उन्होंने उस पर बलपूर्वक अधिकार कर लिया। इस पर वहाँ की पुलिस से उनका संघर्ष हो गया। सरकार से तो भिड़ न सके, मारे गये हिन्दुओं के। २० नवम्बर को जो उपद्रव शुरू हुआ उसमें सक्खर के जो हिन्दू मारे पीटे गये सो तो गये ही, देहातों में भी उनकी बड़ी ही दुर्गति हुई। कहाँ कितने हिन्दू मारे गये तथा उनकी सम्पत्ति की कितनी क्षति हुई, इसका विवरण जब वहाँ की सरकार प्रकाशित करेगी तभी ज्ञात हो सकेगा। परन्तु यह तो कहा ही जायगा कि यह दुर्घटना बहुत ही लज्जाजनक है।

आचार्य रामदेव जी का स्वर्गवास

आर्यसमाज के प्रतिष्ठित नेता और विद्वान् आचार्य रामदेव जी अब इस संसार में नहीं रहे। गत ९ दिसम्बर को प्रातःकाल ५॥ बजे देहरादून में उनका देहान्त हो गया।

आचार्य जी उत्तर-भारत के प्रमुख शिक्षा-शास्त्रियों में थे। वैदिक शिक्षा-प्रणाली के अनुसार अधिक-से-अधिक व्यक्तियों को शिक्षित करना उनका जीवन भर ध्येय रहा। स्वामी श्रद्धानन्द ने जब कांगड़ी के गुरुकुल की नींव डाली थी, उसी समय से वे स्वामी जी के प्रमुख सहायक व दाहने हाथ रहे थे। गुरुकुल के मुख्याधिष्ठाता रहते हुए उन्होंने उस संस्था के संचालन व वैदिक संस्कृति व सभ्यता के प्रचार में जो कार्य किया वह कई दृष्टियों से बहुत महत्त्वपूर्ण है। उनकी सुव्यवस्था व अथक परिश्रम ने गुरुकुल को स्थायी बनाने में बहुत कुछ योग दिया। ३५ वर्ष तक उस संस्था के संचालक बने रहने के पश्चात् उनका ध्यान आर्य-कन्याओं की शिक्षा-दीक्षा की ओर गया और उसके लिए उन्होंने १९२६ में दिल्ली में कन्या-गुरुकुल की स्थापना की। बाद में कुछ विशेष सुविधायें देखकर वे इस संस्था को देहरादून उठा ले गये और अपने जीवन के अन्तिम समय तक उसके प्रबन्ध में लगे रहे।

आचार्य जी में राष्ट्रीयता कूट-कूट कर भरी थी। १९३० के आन्दोलन में वे पंजाब के डिक्टेटर की हैसियत से जेल भी गये थे।

गुरुकुल (कांगड़ी) और कन्या-गुरुकुल (देहरादून) जैसी संस्थाओं के निर्माण व संचालन के अतिरिक्त हिन्दी की भी आचार्य जी ने काफ़ी सेवा की है। उनकी पुस्तकों में 'भारतवर्ष का इतिहास' अधिक प्रसिद्ध है। दर्शनशास्त्र पर भी उन्होंने बहुत कुछ लिखा है। देहावसान के समय उनकी अवस्था ६३ वर्ष की थी। वे अपने पीछे २ पुत्र व ४ लड़कियाँ छोड़ गये हैं। दोनों लड़के गुरुकुल (कांगड़ी) के संचालक हैं। आचार्य जी के निधन से आर्य-समाज और गुरुकुल को जो क्षति हुई है उसकी पूर्ति होनी कठिन है। परिवारवालों के साथ संवेदना प्रकट करते हुए हम आचार्य जी की आत्मा की सद्गति के लिए ईश्वर से प्रार्थी हैं।

हिन्दी का संकट और हमारे होनहार हिन्दी प्रेमी

हिन्दी पर 'हिन्दुस्तानी' एवं 'लिपि-सुधार' के रूप में जो महान् संकट आया है उसकी चर्चा पिछले डेढ़ वर्ष से 'सरस्वती' में बराबर होती रही है। परन्तु दुःख की बात है, हिन्दी के महारथियों ने उस ओर दृष्टिपात तक नहीं किया। बनारस के हिन्दी के एक प्रेमी पण्डित चन्द्रबली पाण्डेय अवश्य इस दिशा में ज़ोर से काम करते रहे। इधर हिन्दी के अनन्य प्रेमी तथा विद्वान् लेखक पण्डित वेंकटेश नारायण तिवारी का इस ओर ध्यान गया और उन्होंने अपने कुछ ही दिनों के प्रयत्न से हिन्दी के इस प्रश्न को एक जीवित प्रश्न बना दिया। काशी के सम्मेलन के अवसर पर उपर्युक्त प्रश्नों की जिस ख़ूबी के साथ मीमांसा की गई है उसका सारा श्रेय एक मात्र तिवारी जी को ही है और इस महत्कार्य के लिए हमें उनका कृतज्ञ होना चाहिए। परन्तु यह सब कुछ करना तो दूर रहा, हिन्दी पर आये हुए संकट से बचाने का जो महान् दायित्व उन्होंने अपने ऊपर लिया उसमें उनकी सहायता करने के लिए आगे आना तो अलग रहा, उल्टा हमारे दो-चार बिहारी युवक उनको गालियाँ देने को तयार हो गये हैं, क्योंकि तिवारी जी ने अपने इस आन्दोलन में बिहार की हिन्दी का ही प्रश्न सबसे आगे रक्खा। हम सुना करते थे कि बंगाल की तरह बिहार में भी प्रान्तीयता की भावना ज़ोर पकड़ती जा रही है। परन्तु हम नहीं जानते थे कि वह यहाँ तक बढ़ गई है कि हिन्दी-भाषी होकर हमारे कुछ बिहारी-भाई हिन्दी के मामले में भी प्रान्तीयता की दुर्गन्ध फैलाने की चेष्टा करेंगे। ख़ैर, यह अपनी अपनी समझ की बात है। इस समय हिन्दी पर जो संकट आया है उससे उसे बचाने के लिए श्रद्धेय तिवारी जी ने जो क़दम उठाया है उसमें सभी हिन्दी-भाषी प्रान्तों के हिन्दी-प्रेमी उनका साथ दे रहे हैं। यदि हमारे दस-पाँच भाई उनका विरोध करना ही हिन्दी का हित समझते हैं तो हमें उनसे कुछ नहीं कहना है। परन्तु हम यहाँ यह निवेदन ज़रूर करेंगे कि हिन्दी के प्रश्न पर प्रान्तीयता का प्रश्न उठाना ठीक नहीं है। बिहार का मामला सबसे पहले इसलिए हाथ में लिया गया है कि वहाँ हिन्दुस्तानी अन्य प्रान्तों की अपेक्षा अधिक स्पष्ट रूप में सामने आ गई थी।

अमेरिका और योरप के अख़बार

दिसम्बर की मॉडर्न रिव्यू में सुप्रसिद्ध लेखक डा० सुधीन्द्र का एक लेख अमरीका तथा अन्य देशों के समाचार-पत्रों पर निकला है। डा० बोस अमरीका के एक विश्वविद्यालय में प्रोफ़ेसर हैं और समाचार-पत्रों के संचालन की उन्हें विशेष जानकारी है। उनका कहना है—

समाचार-पत्र राष्ट्र की अमूल्य सेवा करते हैं, क्योंकि वे अधिकारियों से भयभीत नहीं होते उनके अनुचित अहंकार और अधिकार के दुरुपयोग को प्रकट कर देते हैं, एकाधिपत्य का विरोध करते हैं, साधारण जनता के अधिकारों को लोगों के सामने रखते हैं और उनका समर्थन करते हैं। जन-तंत्र में तो समाचार-पत्र सोलहों आने लाभदायक माने जाते हैं। .... समाचार-पत्र वर्तमान प्रगतिशाली मनुष्य जाति का इतिहास है।

अमरीका की कई रियासतों में अदालतें किसी समाचार-पत्र को इसके लिए मजबूर नहीं कर सकतीं कि वह यह बतलावे कि कोई समाचार उसे कैसे मिला या कोई 'प्राइवेट' बात उसके समाचार ने किस प्रकार कही। वहाँ 'प्रेस-स्वतंत्रता' एक ऐसा माना हुआ सिद्धान्त है जो निरन्तर व्यवहार में रहता है। अमरीका की रियासतों के सभापति सप्ताह में दो बार समाचार-पत्रवालों से स्वयं मिलते हैं और पत्र के संवाददाता को हत्या के मुक़दमे में आगे एक विशेष स्थान पर बैठने तथा फाँसी का दंड देखने का अधिकार है।

अमरीका अपने ही शासन में रहना चाहता है। अतः जनता के मन की परवा उसे करनी ही पड़ती है। सच तो यह है कि अमरीका के समाचार-पत्र ही संसार में सबसे बढ़कर हैं। 'न्यूयार्क टाइम्स,' 'चिकेगो डेली ट्रिब्यून' आदि की बराबरी कौन कर सकता है?

विलायत का 'मैनचेस्टर गार्जियन' बढ़िया पत्र है, पर वह इनकी बराबरी नहीं कर सकता। वह अन्य पत्रों, 'स्प्रिंगफ़ील्ड रिपब्लिकन,' 'इम्पोरिया गज़ट' आदि के समान है।

फ़्रांस के समाचार-पत्रों का इससे भी बुरा हाल है। स्वतंत्र होते हुए भी वे गंदे हैं और रुपयों के ज़ोर से उनमें जो चाहें वह लिखाया जा सकता है। इसका एक कारण यह भी है कि वहाँ के पत्रों का अमरीका की तरह सन्तोषजनक प्रबन्ध नहीं। वहाँ काम करनेवालों को काफ़ी रुपये नहीं मिलते इसलिए समाचार-पत्रों में यथेष्ट सामग्री भी नहीं रहती। यही स्वाभाविक है।

अँगरेज़ लोग अमरीका के समाचार-पत्रों को बहुत नीची निगाह से देखते हैं। पर उनके सबसे अच्छे चलनेवाले पत्र वे ही हैं जो अमरीका के अख़बारों के ढंग के हैं। जहाँ तक हिन्दुस्तान की ख़बरों का सम्बन्ध है, अँगरेज़ी का केवल एक अख़बार 'वर्कर' ही सच्ची ख़बरें छापता है।

भारत का शक्कर-उद्योग

सरकारी रिपोर्ट से पता चलता है कि १९३७-३८ में १०,३२,२०० टन शक्कर पैदा हुई जब कि १९३६-३७ में १२,३३,००० टन पैदा हुई थी। इसी प्रकार १९३७-३८ में ४,८३,००० टन शीरा और ३,३६,४०० टन गुड़ बनाया गया था, जब कि १९३६-३७ में शीरा और गुड़ क्रमशः ५,२१,००० और ४२,६८,००० टन बनाया गया था।

आयात और निर्यात

१९३६-३७ में भारत से विदेशों को १४,२९६ टन शक्कर भेजी गई जब कि १९३६-३७ में ५२१ टन भेजी गई थी। इसी प्रकार आलोच्य वर्ष में ७९,१६७ टन शीरा और गुड़ का निर्यात हुआ, जब कि १९३६-३७ में २४,१९५ टन का हुआ था। १९३७-३८ में भारत से १३,७१५ टन गुड़ विदेशों को भेजा गया जब कि १९३६-३७ में २३,१०० टन गया था।

भारत में शक्कर की खपत

भारत में शक्कर की खपत भिन्न-भिन्न प्रान्तों में अलग-अलग है। युक्त-प्रान्त और बिहार में जहाँ भारत के समस्त उत्पादन का ८५ प्रतिशत पैदा होता है, केवल १६ प्रतिशत चीनी की खपत होती है। पंजाब, बम्बई, बंगाल और मदरास प्रान्त में प्रायः दूसरे प्रान्तों से शक्कर मँगाई जाती है। युक्त-प्रान्त और बिहार का गुड़ अधिकतर पंजाब और बंगाल को भेजा जाता है।

१९३७-३८ के प्रारम्भ में शक्कर और गुड़ का मूल्य बहुत कम था।

(जयाजीप्रताप)

युद्ध की डायरी

२२ नवम्बर—एक ग्रीक और एक इटालियन जहाज़ सुरंग से टकरा कर डूब गये। एक अँगरेज़ी जंगी जहाज़ भी डुबा दिया गया। एक जर्मन जहाज़ और दो जर्मन ग़ोताख़ोर भी डुबा दिये गये।

पश्चिमी मोर्चे पर ज़मीन पर तो वैसी ही शान्ति है, पर हवाई युद्ध काफ़ी ज़ोर का हुआ—फलस्वरूप पाँच जर्मनी के और एक फ्रांस का हवाई जहाज़ नष्ट हुए।

शीटलैंड-क्षेत्र पर जर्मन हवाई हमला हुआ, जिससे आग लग गई, पर कोई जान नहीं गई। एसेक्स पर भी ऐसा ही एक हमला हुआ।

२३ नवम्बर—पाँच छोटे-बड़े अँगरेज़ी जहाज़ जर्मनी-द्वारा डुबा दिये गये! एक फ्रेंच मछुआ जहाज भी डुबा दिया गया।

पश्चिमी मोर्चे पर हवाई युद्ध हुआ, जिसमें ८ जर्मन हवाई जहाज़ नष्ट हुए। मित्रराष्ट्रों का भी कुछ नुक़सान हुआ।

२४ नवम्बर—एक जर्मन ग़ोताख़ोर डुबा दिया गया। ८,८८६ टन का एक और ब्रिटिश जहाज़ सुरंग से टकरा कर डूब गया।

शीटलैंड पर दो जर्मन हवाई हमले हुए। नौ बम गिराये गये।

२५ नवम्बर—दक्षिणी एटलान्टिक समुद्र में एक जर्मन जहाज़ ने ख़ुद को डुबा लिया।

२६ नवम्बर—जर्मन हवाई जहाज़ों ने दो बार अँगरेज़ी जंगी बेड़े पर हमले किये।

१७ हज़ार टन का रावलपिंडी नामक सशस्त्र व्यापारिक जहाज़, १४ हज़ार टन का अँगरेज़ी सेना का पोल जहाज़ और तीन दूसरे छोटे जहाज़ डुबा दिये गये।

२७ नवम्बर—[illegible] जहाज़ डुबो दिये गये। इन में तीन जर्मनी के थे, जो बंदी बनाकर अँगरेज़ी बंदरगाहों पर लाये जा रहे थे।

२८ नवम्बर—रूस के इच्छानुसार फ़िनलैंड ने अपनी फ़ौजें रूसी सीमा से २५ किलोमीटर दूर हटाना मंज़ूर कर लिया। तीन फ़िनिश सिपाही रूसी सेना-द्वारा बंदी बनाये गये।

२९ नवम्बर—दो जर्मन जहाज़ों को फ्रांस की जल-सेना ने अपना बंदी बना लिया। एक अँगरेज़ी जहाज़ डुबाया गया।

फ़िनिश प्रस्तावों का उत्तर देते हुए रूसी घोषणा में फ़िनलैंड को आपसी आक्रमण न करने की रूस फ़िनलैंड संधि को तोड़ने के लिए ज़िम्मेवार ठहराया और कहा कि अब संधि से रूस अपने को बँधा हुआ नहीं समझता।

३० नवम्बर—सुबह रूस की फ़ौजें हमला करने के लिए फ़िनलैंड की सीमा में घुसीं। फ़िनिश राजधानी पर रूसी जहाज़ भी उड़े।

फ़िनिश राजधानी का रूसी राजदूत भी वापस रूस बुला लिया गया।

फ़िनिश प्रेसीडेन्ट ने अपने यहाँ युद्ध-काल की घोषणा कर दी।

१ दिसम्बर—फ़िनिश सरकार ने इस्तीफ़ा दे दिया। एक गुड़िया सरकार एम० रेटी को प्रधान मंत्री और डाक्टर टेनर को विदेश-मंत्री बनाकर स्थापित हुई। इन्होंने सोवियट के साथ संधि-वार्ता आरम्भ की। रूसी सेनाओं ने पेटसामो पर अधिकार कर लिया और हैंगो व विबर्ग पर गोले गिराये। फ़िनिश जहाज़ मरकेटर और ब्रिटिश जहाज़ डालरयान सुरंगों से टकराकर डूब गये।

३ दिसम्बर—लायोगा झील के उत्तर में रूसी व फ़िनिश सेनाओं में घनघोर युद्ध हुआ। ब्रिटिश वायुयानों ने हेलिगोलैंड के नज़दीक एक जर्मन जहाज़ को डुबा दिया। ४ जर्मन बोट भी डुबाये गये। नार्वे का जहाज़ 'आर्कतूरस' माइन से टकरा कर डूब गया।

४ दिसम्बर—जर्मनी का एक जहाज़ सुरंग से टकरा कर डूब गया। एस्केडीन, डोरिग, स्टार व नेम्स्टर्ली नामक ब्रिटिश व रूडोल्ड नामक स्वीडन के जहाज़ डूब गये।

६ दिसम्बर—लारेन फ्रांट पर २० मील की चौड़ाई में जर्मनों ने २४ घंटे में ६ बार आक्रमण किये, पर विफल कर दिये गये। ब्रिटिश लड़ाकू जहाज़ों ने एक ७,८३४ टन के जर्मन जहाज़ 'उस्सूकूमा' को पकड़ लिया।

७ दिसम्बर—१ ग्रीस का, १ नार्वे का, १ डेनमार्क का, १ डच स्टीमर डूब गये।

८ दिसम्बर—ब्रिटिश हवाई जहाज़ों ने एक जर्मन पनडुब्बी को डुबा दिया। ३ ब्रिटिश जहाज़ डूब गये। रूसी सेनाओं ने फ़िनलैंड के सूरसारी द्वीप पर क़ब्ज़ा कर लिया।

१० दिसम्बर—रूसी सेना कारेलिया में पहुँच गई। हागलैंड पर उसका अधिकार हो गया। ब्रिटेन के बादशाह युद्ध-क्षेत्र का निरीक्षण करके वापस आ गये।

११ दिसम्बर—राष्ट्र-संघ में फ़िनलैंड की अपील पर विचार किया गया। सोवियट रूस ने उस बैठक का बहिष्कार किया। ब्रिटेन के ३ जहाज़ डुबा दिये गये। दो जहाज़ तटस्थ देशों के भी डूबे।

१२ दिसम्बर—रूस ने राष्ट्रसंघ के प्रस्ताव को—रूस फ़िनलैंड से अपनी सेनायें लौटा ले—ठुकरा दिया।

१३ दिसम्बर—तोलवाजेरवी के स्थान पर रूसी व फ़िन सेना में युद्ध हुआ।

१४ दिसम्बर—राष्ट्र-संघ ने रूस को संघ से बाहर करने का प्रस्ताव बहुमत से पास कर दिया। 'ग्राफस्पी' नामक जर्मन जहाज़ को ब्रिटिश स्टीमरों ने 'मांटिवीडियो' के पास घेर लिया।

१५ दिसम्बर—फ़िनलैंड ने रेडियो-द्वारा रूस से सुलह की अपील की।

इस संख्या के कुछ महत्त्वपूर्ण लेख

सचित्र मासिक पत्रिका

सम्पादक

देवीदत्त शुक्ल—उमेशचन्द्रदेव

फ़रवरी १९४० } भाग ४१, खंड १ संख्या २, पूर्ण संख्या ४८२ { माघ १९९६

सुख-दुख

लेखक, श्रीयुत नरेन्द्र शर्मा, एम० ए०

पर न सदा रहता जग में सुख,
रहता सदा न जीवन में दुख,
माया-से, छाया-से, दोनों—
आते जाते हैं ये सुख-दुख!
तू ही सोच देख क्या इनसे
आत्मा का अभाव भरता है?

हमें नाज़ था अपने सुख पर
पर न टिका दो दिन सुख-वैभव,
दुख? दुख को भी समझा सागर
एक बूँद भी नहीं रहा अब,
देखा जब दिन-रात चीड़-बन
नित कराह आहें भरता है!

मैंने दुख-कातर हो होकर
जब जब दर दर कर फैलाया,
सुख के अभिलाषी मन मेरे!
तब तब सदा निरादर पाया,
ठोकर खा खा कर पाया है,
दुख का कारण कायरता है!

जब तक मन में दुर्बलता है
दुख से दुख, सुख से ममता है!

सुख भी नश्वर, दुख भी नश्वर,
यद्यपि सुख-दुख सबके साथी!
कौन घुले फिर सोच-फ़िकर में
आज घड़ी क्या है, कल क्या थी?
देख, तोड़ सीमायें अपनी
जोगी नित निर्भय रमता है!

जब तक तन है, आधि-व्याधि हैं,
जब तक मन, सुख-दुख हैं घेरे,
तू निर्बल तो क्रीत भृत्य है,
तू चाहे ये तेरे चेरे!
तू इनसे पानी भरवा, भर—
ज्ञान-कूप, तुझमें क्षमता है!

सुख-दुख के पिंजर में बंदी
कीर धुन रहा सिर बेचारा,
सुख-दुख के दो तीर चीर कर
बहती नित गंगा की धारा,
तेरा जी चाहे जो, बन ले
तू अपना हरता करता है!

———

आर्य और द्रविड़-सभ्यताओं का मिलन-क्षेत्र ताम्रलिप्ति

लेखक, श्रीयुत क्षितिमोहन सेन

गत वर्ष मुझे मेदिनीपुर-साहित्य-परिषद् में सभापति होकर जाने का सुअवसर मिला था। मैं कई बार इस स्थान की यात्रा कर चुका हूँ और प्रत्येक बार इस प्रदेश की ऐतिहासिक और सांस्कृतिक विशेषता मुझे आकर्षित करती रही है। गंगा और यमुना के मिलने से जैसे पुण्यक्षेत्र प्रयाग हुआ है, उसी प्रकार आर्य और द्रविड़-सभ्यताओं के योग से भारतवर्ष की महा सभ्यता उद्भूत हुई है। उत्तर की आर्य-सभ्यता और दक्षिण की द्रविड़-सभ्यतायें उस स्थान पर मिलित हुई हैं जहाँ बंगाल और उड़ीसा की सीमा पर आज मेदिनीपुर का ज़िला बसा हुआ है। यह स्थान हमारी सभ्यता का प्रयाग-धाम है। इसी लिए साधकों के लिए यह मुक्ति का क्षेत्र है।

ताम्रलिप्ति-शब्द के विषय में बहुत-से पंडितों का मत है कि यह दाम्र् (द्रविड़) शब्द से सम्बद्ध है। अर्थात् यह तामिल या द्राविड़-सभ्यता का पुण्यक्षेत्र है। इसी रास्ते से सेनवंशी राजा लोग बंगाल में घुसे थे। पञ्चगौड़ से सारस्वत, कान्यकुब्ज, मैथिल, गौड़ और उत्कल का बोध होता है। उत्कल यहीं से शुरू होता है। यहाँ बैठकर इस देश के पूर्वतम महापुरुषगण दोनों ही सभ्यताओं का माहात्म्य भली भाँति हृदयंगम कर सके थे। भारतवर्ष की उत्तरी सीमा पर होने के कारण जिस प्रकार पाणिनि और यास्क प्रभृति महापुरुषगण भारतीय भाषा का यथार्थ स्वरूप समझ सके थे उसी प्रकार यहाँ बैठकर आर्य और द्रविड़ दोनों सभ्यताओं का यथार्थ परिचय पाना अधिक सम्भव था।

जगन्नाथ का द्वार-पथ यहीं से था। इसी लिए भगवान् शंकर, रामानुज, रामानन्द, कबीर, नानक, चैतन्य, मलूकदास प्रभृति महापुरुषों के चरण-स्पर्श से यह भूमि पवित्र हुई थी। पुरी में उत्तर-भारत से जाने के लिए यहाँ से होकर जो मार्ग था वही अधिक सुभीते का था। सन्तों के प्राचीन ग्रन्थों में भी इस स्थान से होकर जाने का संधान मिलता है।

एक ऐसा भी समय था जब भारतवर्ष की सभ्यता इस देश की सीमा में ही आबद्ध नहीं थी। यातायात, धर्म, संस्कृति, वाणिज्य इत्यादि नाना सूत्रों से भारतवर्ष का सम्बन्ध, ब्रह्म, चीन, जापान, कोरिया, श्याम, जावा, सुमात्रा आदि पूर्वी और अनेक उत्तरी और पश्चिमी देशों से भी था। प्राच्य देशों के साथ भारतीय सम्बन्ध का प्रधान क्षेत्र ताम्रलिप्ति ही था। इसी लिए बहुत-से चीनी, फ़ारसी और योरपीय ग्रन्थों में ताम्रलिप्ति की चर्चा मिलती है। इस पुण्यक्षेत्र के आस-पास मध्ययुग में भी अनेकानेक महात्माओं का आविर्भाव हुआ था। मुकुन्दराम के गुरु बलराम कविकंकण, भागवत के अनुवादक सनातन चक्रवर्ती, पदकर्त्ता कानुदास और गोवर्धनदास और बासुदेव घोष प्रभृति बहुतेरे भक्त, कवि और साहित्यिक यहाँ उत्पन्न हुए थे।

चैतन्यदेव, अद्वैत गोस्वामी और नित्यानन्द की तरह श्रीनिवास, नरोत्तम और श्यामानन्द, इन तीन भक्तों का भी वैष्णवधर्म-प्रचार एक ही साथ होता था। श्यामानन्द को समूचे भारतवर्ष के लोग उत्कल श्यामानन्द कहते हैं। उनकी रचनाओं के ऊपर और उनके शिष्य रसिकमुरारि की पदावली पर भी इस क्षेत्र के, और इस ज़िले (मेदिनीपुर) के लोग दावा कर सकते हैं। हिन्दी में नाभा जी के भक्तमाल के ९५ वें छप्पय में और उनके शिष्य प्रियादास की भक्तरसबोधिनी (८४–९३) में और हरिवर रामानुज की हरिभक्तिप्रवेशिका (पृ० १६१–१६५) में रसिकमुरारि की चर्चा है। श्यामानन्द भी समस्त भारतवर्ष में परिचित हैं। उनके द्वारा वृन्दावन में प्रतिष्ठापित श्री श्यामसुन्दर की मूर्ति सारे भारतवर्ष के वैष्णवों द्वारा पूजित होती है। इस क्षेत्र के इतिहास में एक विचित्र बात यह है कि बाहर से निर्यातिन और लाञ्छित अनेक महापुरुष यहाँ आश्रय पा चुके हैं। कर्णगढ़

के राजा यशवन्तसिंह के आश्रित, शिवापन नामक ग्रन्थ के प्रणेता रामेश्वर भट्टाचार्य ने यहाँ आश्रय लिया था, नित्यानन्द चक्रवर्ती काशीजोड़ के राजा के आश्रित थे और प्रसिद्ध बँगला-महाभारत के रचयिता काशीरामदास यहाँ आवसगढ़ के राजा के आश्रित होकर रहे थे। दामुन्या के कवि मुकुन्दराम भी अशेष दुःख से पीड़ित होकर अन्त में इस प्रदेश में आखड़ा के राजा के आश्रित होकर रहने लगे थे।

राजा अच्युतानन्द के पुत्र रसिकमुरारि की आतिथेयता और दाक्षिण्य का कुछ परिचय नाभा जी के भक्तमाल से मिलता है। वे लिखते हैं:—

तन मन धन परिवार सहित सेवत संतन कहँ,
दिव्य भोग आरती अधिक हरि हुते हिये मँह,
श्री वृन्दावनचन्द्र श्याम श्यामा रँग भीने,
मग्न प्रेम पीयूष पयधि परचै बहुदीने।
श्रीहरि प्रिय श्यामानन्द वर भजन भूमि उद्धार किय।
श्री रसिकमुरारि उदार अति मत्त जगहिं उपदेस दिय।

पंडितों का मत है कि नाभा जी अनुमानतः १५८५ से १६२३ ई० तक जीवित थे। वे रसिकमुरारि के प्रायः सम-सामयिक थे, कुछ बड़े ही होंगे। रसिक का जन्म १५९० ई० में हुआ था। इसी लिए यह विवरण रसिक की जीवितावस्था का है और इसी लिए इसकी प्रामाणिकता का मूल्य अधिक है। इस पर टीका करते हुए प्रियादास जी ने लिखा है—

रसिकमुरारि साधु-सेवा विसतार कियो,
पावै कौन पार रीति भाँति कछु न्यारियै।

सन्त चरनामृत के माठ गृह भरे रहैं,
ताही को प्रणाम पूजा करि उर धारिये।

आवें हरिदास तिन्हैं देत सुखरासि जीभ,
एक न प्रकाश सकै थकै सो विचारियै।

करें गुरु उत्सव ले दिनमान सबै कोऊ,
द्वादश दिवस जन घटा लागि प्यारिये।

सन्त चरनामृत को ल्यावो जोई नीकी भाँति,
जीकी भाँति जानिबे को दास लै पठायो है।

आनि कै बखान कियो लियो सब साधुन को,
पान करि बोले सो सवाद नहीं आयो है।

जितै सभाजन कही चाखो देवो मन कोऊ,
महिमा न जानै कौन जानी छोंड़ि आयो है।

पूँछि कह्यो कोढ़ी एक रह्यो आनो ल्यायो पियो,
दियो सुख पाय नैन नीर ढरकायो हैं।

इससे रसिकमुरारि की नम्रता, शील और विनय का पता चलता है। सन्तों का चरणामृत लेते समय किसी कोढ़ी भक्त का चरणामृत लेना छोड़ दिया गया था। पर रसिकमुरारि को उस संगृहीत चरणामृत में वह स्वाद नहीं मिला जो साधारणतः सन्तों के चरणामृत में मिलता है। उन्होंने कहा कि ज़रूर कोई छूट गया है। जब फिर से कोढ़ी भक्त का चरणामृत लाया गया तब उसे पान करने पर रसिक की आँखों में प्रेमाश्रु भर आये!

प्रियादास ने रसिक के सम्बन्ध में और भी कई आख्यान संग्रह किये हैं। एक बार एक अतिथि साधु ने अपनी लाठी के लिए भी भोजन माँगा। सेवकों ने जब नहीं दिया तब क्षुब्ध साधु ने अपना अन्न रसिक के सिर पर दे मारा। रसिक ने कहा—आहा, ऐसा शीतल प्रसाद तो मुझे कभी नहीं मिला था! एक बार उनके उद्यान में कुछ साधु आये। उनमें एक हुक़्क़ा पी रहे थे, इसी समय रसिकमुरारि वहाँ पहुँचे। साधु ने लजाकर हुक़्क़ा पीछे छिपा लिया। रसिक ने समझा कि उन्होंने साधु को लज्जा दी है। वे पृथ्वी पर गिर कर छटपटाने लगे और बोले कि कोई मुझे ज़रा तम्बाकू पिला दे तो मैं स्वस्थ हो जाऊँ। तम्बाकू मँगाया गया और सिर्फ दिखाने के लिए उन्होंने दो एक फूँक मारे। इस प्रकार उस साधु की लज्जा का निवारण किया। उनका राज्य किसी दुष्ट राजा ने हड़प लिया। उनके गुरु श्मायानन्द ने इस पर लिखा कि जैसे हो वैसे ही चले आओ। चिट्ठी जब रसिक के पास पहुँची तब वे खा रहे थे। जूठे मुँह ही गुरु के पास जा उपस्थित हुए। दुष्ट राजा ने जब यह सुना तब रसिक को यह कहकर बुलवाया कि मैं आपका प्रभाव स्वयं देखना चाहता हूँ। उसने पालकी भेजी और इधर रास्ते में एक मतवाला हाथी भी छोड़ दिया। हाथी को देखकर पालकी-वाहक कहार न जाने कहाँ भाग गये। हाथी रसिक की ओर दौड़ा। यह देखकर उन्होंने कहा कि हे हाथी, भगवान् का नाम लो। रसिकमुरारि के इस उपदेश से हाथी की आँखों में प्रेमाश्रु

भर आया। रसिक ने उसके कान में राम-नाम का मंत्र दिया और हाथी का नाम गोपालदास रक्खा।

छोड़ि के कहार भाजि गये न निहारि सके,
आप रस सार वानी बोले जैसी गाई है।
बोलो हरे कृष्ण कृष्ण छोड़ो गज तम तन,
सुनि गयो हिये भाव देह सो नवाई है।
वहै दृग नीर देखि ह्वै गयो अधीर आप
कृपा करि धीर कियो दियो भक्ति भाव है।
कान में सुनायो नाम नाम दे गोपालदास,
माल पहिराइ गले प्रगटो प्रभाव है।

यह सब देखकर उस दुष्ट राजा के मन में लज्जा आई और उनके पाँव पर गिरकर उसने क्षमा माँगी। उनकी सारी सम्पत्ति उसने लौटा दी।

इसी प्रकार राजस्थानी भक्त खेहरीधामवासी सुधु रामानुजदास हरिवर ने अपनी हरिभक्तिप्रकाशिका नामक महाग्रन्थ में साधु-सेवा के प्रसंग में रसिक-मुरारि की भक्ति और दाक्षिण्य का जयगान किया है।

मुझे ऐसा लगता है कि ग्रन्थ साहब में जो एक चमत्कार-कारक गान संगृहीत हुआ है वह कहीं इसी प्रदेश के आस-पास गाया गया होगा। उस गान की कथा बड़ी मनोरंजक है। ६ठें गुरु श्री हरिगोविन्द के पास बंगाल के सुन्दरवन के किसी टापू से निमंत्रण आया। बहुत दूर जान कर वे स्वयं न जाकर अपने शिष्य विधिचन्द को वहाँ भेजा। मेदिनीपुर ज़िले के किसी भाग में उन दिनों देवनगर गाँव रहा होगा। उसी देवनगर में एक फ़क़ीर रहते थे। नाम था सुन्दरशाह। अपने करामाती कार्यों के लिए वे बहुत मशहूर थे। विधिचन्द उस गाँव के पास ही एक सूखे वृक्ष के नीचे बैठे थे। मौज में आकर उन्होंने गुरु अर्जुन का वह गान गाना शुरू किया। समय वसन्त का था, गान भी वसन्तराग का—

वसन्तु चड़िया फूली वनराइ।
एहि जीअ जंत फूलइ हरि चितलाइ॥
इन विधि इहुमन हेरिया होइ।
हरि हरि नामु जपै दिनु राति
गुरुमुखि हउ मैं कढ़ै धोइ॥
सति गुरु-वानी सवदु सुनाए
इहु जगि हरिया सति गुरु भाए॥
फल फूल लागे जों आये लाए
मूलि लग ताँ सति गुरु पाए
आपि वसंतु जगनु सभु वाड़ी।
नानक पूरै भागि जगति निराली॥

इधर गान समाप्त हुआ, उधर वृक्ष नवीन किसलयों और पुष्पों से भर गया। यह सुनकर सुंदरशाह बाघ पर चढ़कर साधु को देखने आये। आस-पास के लोग आतंकित होकर भागे। विधिचन्द के कटाक्ष से ही बाघ पत्थर का खंभा हो गया! फिर सुंदरशाह विधिचंद के साथ विचार में प्रवृत्त हुए और अन्त में पराजित हुए। सुन्दरशाह के अनुरोध पर विधिचन्द कुछ दिनों तक वहाँ धर्म-प्रचार करते रहे।

इस प्रकार आर्य और द्रविड़-सभ्यताओं की मिलन-भूमि इस ताम्रलिप्ति में कितने महापुरुषों का समागम हुआ था, कितने संघर्षों का इसे सामना करना पड़ा था, कितने जय-पराजयों की गवाही इसे ढोनी पड़ी थी, यह सब सोचकर मेरा सिर श्रद्धा से नत हो गया। जिसमें महद्-भाव के प्रति अनुराग है, जिसमें दया-दाक्षिण्य और आश्रित वात्सल्य है, उसे दुःख भोगना ही पड़ता है। दुःख ही उसे महिमान्वित करता है। आज भी इस भूमि को दुःख झेलना पड़ रहा है। निश्चय ही यह दुःख भी इसे नवीन महिमा से पूर्ण करेगा।

हिन्दू-गृह-जीवन की एक मार्मिक कहानी

चूड़ियाँ

लेखक, श्रीयुत राजेश्वरप्रसादसिंह

"बहू जी! चूड़ी पहनोगी, बहू जी?"

उत्तर नहीं मिला।

"बहू जी! ओ बहू जी!"

"कौन है?"

"चुड़िहारिन।"

"अच्छा।"

दरवाज़ा खुला।

"चूड़ी पहनोगी, बहू जी?"

"हाँ, हाँ, आओ, चुड़िहारिन" वृद्धा ने उत्तर दिया—"तुम्हारा तो इन्तज़ार ही हो रहा था। न आती तो नौकर भेजकर बुलवाती।"

"आती कैसे न बहू जी?" घर में प्रवेश करते हुए चुड़िहारिन ने कहा—"साल-साल भर का त्योहार ठहरा। महीनों से आसरा लगा था। यों तो ठाला ही रहता है, लेकिन त्योहार पर चार पैसे ज़रूर मिल जाते हैं।"

"यह तो हई है। वैसे तो बहुत ज़रूरत पड़ने पर नई चूड़ियाँ पहनी जाती हैं, लेकिन त्योहार पर तो सबको नई चूड़ियाँ पहननी ही पड़ती हैं।"

"हाँ, बहू जी, और क्या!"

आँगन में पहुँकचर चुड़िहारिन ने कमर से टोकरी उतारकर फ़र्श पर रख दी, और टोकरी की बग़ल में बैठकर सुस्ताने लगी।

"बड़ी गर्मी है, बहू जी!"

"हाँ, बड़ी गर्मी है। सावन का महीना ठहरा, और इधर कई दिन से पानी भी नहीं बरसा।"

"जल्दी करो, बहू जी। अभी बहुत जगह जाना है। कल ही गुड़िया है। जहाँ न पहुँचूँगी, वहीं उलहना मिलेगा।"

"बड़ी बहू!" वृद्धा ने आवाज़ लगाई।

"क्या है, अम्मा जी?" ऊपर से आवाज़ आई।

"आओ, देखो, चुड़िहारिन आई है। मँझली बहू कहाँ है?"

"यहाँ नहीं है।"

"यहाँ हूँ, अम्मा जी"। उधर के एक कमरे से निकलकर मँझली बहू ने कहा।

"चूड़ियाँ नहीं पहनोगी क्या?"

"पहनूँगी क्यों नहीं?"

"तो आओ न। खड़ी खड़ी क्या देख रही हो?"

"जीजी को आ जाने दीजिए।"

"आई जाती है वह भी। तब तक तुम आकर पसन्द करो। चुड़िहारिन को देर हो रही है।"

तब मँझली बहू धीरे धीरे दालान से उतरकर आँगन में पहुँची। चुड़िहारिन ने तुरन्त टोकरी से कपड़ा हटाया, और चूड़ियाँ दिखाने लगी। तरह तरह के रंगों की, भाँति भाँति के डिज़ाइनों की, चूड़ियाँ टोकरी में भरी पड़ी थीं।

"देखो, बहू जी, यह बिलकुल नये फ़ैशन की चूड़ी है। अभी बिजनौर से आई है। नाज़िर जी के घर में बहुत पसन्द की गई।"

"कितने की है?"

"दो आने की।"

"दो आने की एक!"

"हाँ, बहू जी। तुम्हारे यहाँ मैं दाम बढ़ाकर नहीं बताती। बिलकुल ठीक बताती हूँ।"

"क्या अन्धेर करती हो, चुड़िहारिन?" वृद्धा सास ने कहा—"दो आने की एक! कौन-सी अनोखी बात है इसमें?"

"अनोखी बात बनावट में होती है, बहू जी। वैसे तो सभी चूड़ियाँ काँच की ही होती हैं। देखो इसकी बनावट, इसकी नक़्क़ाशी, इसका रंग। जिस हाथ में पड़े वह चमक उठे।"

"यह सब तो ठीक है"। मँझली बहू ने कहा—"लेकिन दाम तो हर चीज का वाजिब होना चाहिए।"

अपने नवजात शिशु को गोद में लिये हुए बड़ी बहू

भी आ पहुँची। चूड़ियाँ देखी जाती रहीं, मोल-भाव होता रहा।

वाहर से दौड़ती हुई लज्जा भी आ पहुँची। उसकी वाछें खिल गईं।

"दादी, दादी! मैं भी चूड़ी पहनूँगी।"

"हाँ, हाँ, पहन, ज़रूर पहन। न पहनेगी तो पुरखिन कैसे वनेगी?"

"मैं वह लाल चूड़ी पहनूँगी। ओ हो–हो–हो! कैसी अच्छी चूड़ी है!" लपककर एक बड़ी-सी लाल चूड़ी लज्जा ने अपने हाथ में डाल ली।

"रहने दो, विटिया।" चुड़िहारिन ने कहा—"वह वहुत वड़ी है। टूट जायगी।"

लज्जा हँसकर आँगन में नाच उठी।

"वाह री लड़की!" वड़ी वहू वोलीं—"देखो तो इसका दीदा! चल इधर।"

"रख दो उसे, विटिया।" वृद्धा ने कहा—"तुम्हारे लायक़ वह चूड़ी नहीं है। देखो, यह है तुम्हारे लायक़।"

"कौन-सी, कौन-सी?"

ऊपर के एक कमरे की खिड़की से एक नवयुवती आँगन का यह दृश्य देख रही थी। उसके केश रूखे थे, उसकी माँग सूनी थी, उसके हाथों में चूड़ियाँ नहीं थीं। उसके हाथ सूने थे, पैर सूने थे, गला सूना था, कानों में ईयर-रिंग भी नहीं थे, नाक में कील भी नहीं थी। केवल एक साफ़ साड़ी और एक साफ़ जम्पर उसके शरीर पर था। किन्तु उसके लम्वे, दुवले, सुडौल शरीर से यौवन फूटा पड़ रहा था, सौंदर्य विखरा जा रहा था। उसके शुष्क वेष में उस पर पर्दा डालने का सामर्थ्य नहीं था। सौंदर्य प्रकृति की देन है, वेष मानव की सृष्टि है। और स्वयं मानव भी प्रकृति की ही देन है। तव मानव के विद्रोह के सम्मुख प्रकृति कैसे झुके? उसका मन मर्म-वेदना के भार से भारी हो उठा। एक दीर्घ निश्वास खींचकर, उस खिड़की से हटकर, दूसरी ओर उस खिड़की के सामने फ़र्श पर पड़ी हुई चटाई पर जाकर वह अस्त-व्यस्त बैठ गई। एक वह दिन भी था जव इस घर की अन्य वहुओं की तरह ऐसे अवसरों पर चूड़ियाँ पहनने के लिए वह भी वुलाई जाती थी। लेकिन आज? ओह! आज कैसा विकट, कैसा भयानक, कैसा दुखदायक अन्तर उसकी स्थिति में आ गया है! ये चूड़ियाँ! काँच की इन चूड़ियों की क्या क़ीमत है, क्या विसात है? लेकिन इन मामूली-सी चूड़ियों को पहनने के लिए भी स्त्री के पास एक विशेष प्रकार का अधिकार होना चाहिए। कहाँ है आज उसके पास वह अधिकार? हाय रे जला भाग्य!

आकाश में वादल उमड़ने लगे थे। हवा वन्द थी। प्रकृति मौन थी, मानो अन्दर उठते हुए तूफ़ान को दावने का प्रयत्न कर रही हो। जल के लिए तड़पती हुई कुम्हलाई हरियाली दूर तक फैली हुई थी। उधर दौड़ती हुई वादलों की छाया की ओर वह देख रही थी, लेकिन वह देख रही थी कुछ नहीं।

कैसा सुन्दर था वह समय जव उसे भी वह अधिकार प्राप्त हुआ था! एम० ए० पास कर चुकने के वाद व एल-एल० वी० फ़ाइनल में पढ़ रहे थे। एक दिन अपने एक मित्र के साथ जो उसके पिता के भी मित्र थे, वे उसके घर गये थे। पिता ने अन्दर जाकर उसे पान लाने की आज्ञा दी थी। तव पिता के आदेशानुसार एक तश्तरी में पान लेकर वह वैठक में गई थी। प्रताप ने उसे आँख भरकर देखा था। उसने भी उन्हें देखा था एक वार। कितने अच्छे लगे थे वे! तश्तरी मेज़ पर रखकर वह वैठक से लौट आई थी, लेकिन लौटने को जी नहीं चाहता था। उस दिन उसके मन में एक साध वस गई थी, और आगे चलकर वह साध पूरी हुई थी। एक पखवारे के वाद उसके पिता प्रताप के पिता के पास विवाह का प्रस्ताव लेकर गये थे, और प्रताप के पिता ने शिष्टतापूर्वक इनकार कर दिया था। कितने उदास होकर उसके पिता घर लौटे थे! हैसियत में प्रताप के पिता से वे वेशक कम थे, लेकिन उन्हें अपनी कुलीनता पर, अपनी भद्रता पर, अपनी पुत्री पर गर्व था। उनके उस गर्व को प्रताप के पिता की अस्वीकृति से गहरी चोट पहुँची थी। यह सव सुनकर प्रताप ने विद्रोह का झंडा उठाया था। एक दिन उन्होंने अपने पिता से साफ़ साफ़ कह दिया था कि वे या तो वावू कमलकिशोर की पुत्री आशालता के साथ विवाह करेंगे या जीवन भर कौमार्य-व्रत धारण किये रहेंगे। गुमराह पुत्र को ठीक रास्ते पर लाने की पिता ने हर तरह कोशिश की थी, लेकिन उनका निश्चय अटल सावित हुआ था। तव मजवूर होकर वावू गुरुसहाय

को पुत्र के दुराग्रह के सामने झुकना पड़ा था। उसी वर्ष शुभ लग्न में उसके मनमोहन से उसका शुभ विवाह सम्पन्न हुआ था। एक प्रतिष्ठित स्थानीय दैनिक में वर-वधू का चित्र प्रकाशित हुआ था। दोनों की भूरि भूरि प्रशंसा हुई थी। मायके से विदा होकर वह ससुराल आई थी और प्रथम-मिलन की उस रँगीली रात को उन दोनों का पारस्परिक सुख अपने पराकाष्ठा को पहुँच गया था। पथिक मंज़िल पर पहुँचकर आनन्द से विभोर हो गये थे। उसी वर्ष वकालत की परीक्षा में भी वे उत्तीर्ण हो गये थ।

वे उसे कितना प्यार करते थे! वह अपने को धन्य मानती थी, और कामना करती थी कि प्रत्येक स्त्री को प्रताप जैसा ही पति मिले। लेकिन अक्सर एकान्त में उसके मन में यह विचार उठता कि उसकी रस-भरी गागर कहीं छलक न जाय, गिरकर टूट न जाय। तव किसी अज्ञात आशंका के आतंक से उसका मन भर जाता।

नाग-पंचमी का ही वह भी दिन था। साधारण नियम के विपरीत कारणवश उसे ससुराल में ही रुकी रहना पड़ा था। वह सारे दिन हवा में उड़ती रही थी। उसका हृदय उल्लास से उछला पड़ रहा था। अन्तर्देश में किसी चिन्ता की, किसी अशान्ति की छाया नहीं थी। आमोद किलकारियाँ मार रहा था, जीवन रस घोल रहा था—रंगीन, मदमाती तितली की तरह उड़ रहा था पल पल। दिन वीता। रात आई। ग्यारह वजे। उसने शयनागार में प्रवेश किया। प्रताप ने उसे अपनी सवल भुजाओं में भर लिया। फिर उन्होंने उसका नख से शिख तक अपने हाथों से शृङ्गार किया, और चूड़ियाँ पहनाईं जो खुद वाज़ार से खरीदकर लाये थे।

"इस समय परी लग रही हो तुम!"

"रहने भी दो।"

"सच कहता हूँ, आशा।"

"परियाँ इन्द्रपुरी में रहती हैं। यह तो मानव-लोक है।"

वे हँस पड़े।

"उतना खिलाओ जितना हज़म हो सके!"

"वदहज़मी से डरती हो?"

"हाँ, डरती हूँ।"

और——

आँसू झर-झर गिरने लगे उसकी आँखों से।

× × × ×

दरवाज़ा खड़खड़ा उठा।

"छोटी चाची!"

"हाँ।"

"दरवाज़ा खोलो, छोटी चाची।"

"अच्छा।"

आँखें पोंछकर, उठकर, आशा ने कमरे का दरवाज़ा खोला। लज्जा लपक कर अन्दर आई।

"मैंने चूड़ियाँ पहनी हैं, छोटी चाची।" हँसकर लज्जा ने कहा—"देखो, कैसी हैं?"

"अच्छी हैं।"

आशा चटाई पर वैठ गई। लज्जा उसकी गोद में आसीन हो गई।

"तुमने चूड़ियाँ नहीं पहनीं, छोटी चाची?"

"नहीं।"

"क्यों नहीं पहनी?"

"ऐसे ही।"

"वतला दो, छोटी चाची।"

"मुझे चूड़ियाँ नहीं पहननी चाहिए।"

"यह क्यों?"

"अभी तुम छोटी हो, लज्जा। वड़ी हो जाओगी तव तुम्हें सव आप ही मालूम हो जायगा।"

"छोटी चाची!"

उत्तर नहीं मिला। लज्जा ने उसकी ओर देखा।

"अरे, तुम तो रो रही हो, छोटी चाची!"

आशा आँखें पोंछने लगी। लज्जा उससे लिपट गई।

"न रोओ, छोटी चाची, न रोओ!" रोनी आवाज़ में लज्जा ने अनुनय किया।

"नहीं, विटिया, रोती नहीं हूँ।" भर्राये हुए कण्ठ से आशा ने कहा, और असीम स्नेह से वह उसकी पीठ पर थपकियाँ देने लगी।

(२)

रात भीग चुकी थी। पानी वरसकर निकल गया था। आकाश के काले पर्दे में तारे झलमला रहे थे, और

रह-रह कर विजली चमक उठती थी। शीतल, मन्द बयार वह रही थी। अपने कमरे में खिड़की के सामने फ़र्श पर विछी हुई चटाई पर पड़ी हुई आशा आकाश की ओर ताक रही थी। उसके मस्तिष्क में विचार चल रहे थे।

वह अधिकार क्या उसे पुनः प्राप्त नहीं हो सकता? हो क्यों नहीं सकता? बस, इस घर की क़ैद से निकलने भर की देर है। क्या वह इस क़ैद से निकल नहीं सकती? निकल क्यों नहीं सकती? उसे कौन रोक सकता है? लेकिन इस क़ैद से निकलकर वह कहाँ जायगी? प्रमोद के पास? पागल प्रमोद! कल्पना का रंगीन चश्मा लगाकर देखने से जो वस्तु रंगीन दिखती है वह सचमुच रंगीन हो तो नहीं जाती। बच्चा नया खिलौना देखकर मचलता है, किन्तु उस खिलौने के प्रति उसका आकर्षण सदैव बना तो नहीं रहता! पुरुष स्त्री के प्रति आकृष्ट होता है, किन्तु केवल उस स्त्री का शरीर पाकर वह सन्तुष्ट नहीं रह सकता। सन्तुष्ट रहने के लिए उस स्त्री से उसे और कुछ चाहिए। प्रमोद को देने के लिए उसके पास वह और कुछ कहाँ है? वह तो उस व्यक्ति के साथ चला गया जिसने पहले-पहल उसके जीवन में आकर उसके हृदय को झंकृत किया और समस्त बाधाओं से लड़कर उसे अपनी बनाया।

इस परिवार से प्रमोद का दूर का सम्बन्ध था। धनी पिता का वह पुत्र था, स्वरूपवान् था, सुशिक्षित था, सभ्य था, हँसमुख था, गम्भीर था, भावुक था, दिलवाला था और दिल की क़द्र कर सकता था। अक्सर वह इस घर में आता, और उससे भी मिलता। कभी कोई भद्दी बात उसने नहीं की। लेकिन प्रताप की मृत्यु के एक वर्ष के बाद एक दिन उसने अपना हृदय उसके सामने खोलकर रख दिया। वह उसके कमरे में आया, नमस्कार किया और उसके सामने एक पत्र फेंक कर चला गया। अनाप-शनाप बातें भरी थीं उस पत्र में। उसके प्रति अपने अगाध प्रणय की चर्चा उसने की थी और याचना की थी उससे उसकी प्रीति की। "तुम्हें मैं क्यों चाहता हूँ, यह मैं नहीं जानता। प्रणय तर्क पर आधारित नहीं होता। उसकी जड़ जिस गहराई में होती है, वहाँ तर्क की पहुँच नहीं हो सकती। मैं तो सिर्फ़ इतना जानता हूँ कि तुम जैसी स्त्री मैंने आज तक नहीं देखी। मैं देखता हूँ तुममें सम्पूर्ण नारीत्व का रूप और उसकी आराधना करता हूँ। मुझे पूर्ण विश्वास है कि मेरा यह निरर्थक जीवन तुम्हें पाकर सार्थक हो जायगा। मेरी बन सकोगी, आशा? मेरी ओर मेरे सामने कोई बाधा नहीं है। अपनी इच्छा-अनिच्छा, रुचि-अरुचि, विश्वास-अविश्वास का स्वामी मैं स्वयं हूँ, और मेरे कर्मों पर किसी अन्य व्यक्ति का नियंत्रण नहीं है। इस मामले में किसी के विचारों की परवा मैं नहीं करूँगा। तुम्हारी ओर भी कोई अड़चन न पड़ सकेगी, यदि तुम सहमत हो सको। तुम भी स्वतंत्र हो और मैं भी स्वतंत्र हूँ। सुधारवादी ढंग से हम विवाह के सूत्र में बँधकर यहाँ या कहीं अन्यत्र स्वतंत्रता-पूर्वक रह सकते हैं। जीवन-मार्ग कंटकाकीर्ण है। अकेले चलने में पग-पग पर कठिनाइयाँ हैं, किसी के साथ हो लेने से रास्ता आसानी से कट सकता है। बना लो मुझे अपना संगी, अनुरोध करता हूँ, विनय करता हूँ, भिक्षा माँगता हूँ, कभी साथ नहीं छोड़ूँगा, वचन देता हूँ। कभी इस वचन से हटते देखना तो मेरा काम तमाम कर देना। बेवफ़ा बनकर जीना मैं स्वयं पसन्द न करूँगा।" ऐसी ही बातें उस पत्र में भरी थीं। उसे पढ़कर वह प्रसन्न नहीं हुई। उसने उसे फाड़ डालना चाहा, जला देना चाहा, लेकिन वह सब वह कुछ नहीं कर सकी।

तीन दिन के बाद वह आया।

"उत्तर माँगने आया हूँ, भाभी।"

"उत्तर?"

"हाँ, उत्तर?"

"जो कुछ चाहते हो, लाला, वह मेरे पास नहीं है।"

"यह मैं नहीं मान सकता।"

"न मानना चाहो तो न मानो।"

"सब कुछ है तुम्हारे पास। न देना चाहो तो न दो।"

"खाली घोंसले से सन्तुष्ट रह सकोगे?"

"चिड़िया भी है घोंसले में।"

"यह भूल है तुम्हारी। वह तो उड़ गई।"

"लेकिन मैं तो उसे देख रहा हूँ।"

"यह तुम्हारी दृष्टि का भ्रम है।"

"और अगर तुम्हें ही भ्रम हो रहा हो तो?"

"तो?"

"हाँ, तो?"

वह विचारों में डूब गई। दुविधा सामने आ खड़ी हुई।

"खूब सोच-विचार कर उत्तर देना। कोई जल्दी नहीं है। मैं प्रतीक्षा कर सकता हूँ।"

प्रमोद चला गया। वह चित्र लिखित-सी बैठी रही।

एक पखवारे के बाद फिर वह आया, लेकिन उत्तर न पा सका। वह बराबर आता और निराश होकर लौट जाता। वह प्रतीक्षा करता रहा—करता रहा।

प्रमोद का कथन सत्य है? वह स्वयं भ्रम में है? नहीं, नहीं। किन्तु वह दुःख का भारी बोझ लिये क्यों जी रही है? उसके मन में कामनायें क्यों उठती हैं? उसे संसार से उठ जाने की प्रेरणा नहीं हुई। कठोर अनुशासन की प्रतिक्रिया कामनाओं को जन्म दे रही है। किन्तु—प्रमोद? दीवाना प्रमोद!

भयावनी रात थी। रोग-शय्या पर अचेत पड़े थे प्रताप। चालीस दिन बीत चुके थे, लेकिन ज्वर उतरने का नाम नहीं लेता था। उनका सुन्दर, बलिष्ठ शरीर सूखकर काँटा हो गया था। कमरे में मोमबत्ती का मन्द प्रकाश फैला था। एक कुर्सी पर बैठी हुई चिन्तित दृष्टि से वह उनके मुर्झाये चेहरे की ओर देख रही थी। सहसा उन्होंने आँखें खोलीं।

"आशा!"

"जी हाँ।"

"उजड़ा जा रहा है मेरा संसार! विवश हूँ, आशा।"

"यह क्या कह रहे हैं आप?"

"बिलकुल ठीक कह रहा हूँ।"

"शान्त रहिए। उत्तेजित न हों। ज्यादा बात न कीजिए। डाक्टर ने मना किया है।"

"ज्यादा बात करने की मुझे इच्छा भी नहीं है। बस तुमसे एक बात कहना चाहता हूँ। अभी मौक़ा है। थोड़ी देर के बाद निकल जायगा मौक़ा।"

आशा की आँखों में आँसू छलक आये।

"अब मैं जा रहा हूँ, आशा। दुःख से लड़ना। सुख से रहने की कोशिश करना। मुझे भूल न जाना।"

आशा की आँखों से आँसू बहने लगे।

"रोओ नहीं, आशा, रोओ नहीं। मुझे कष्ट हो रहा है। ओ—ह!"

वे अचेत हो गये। उनका शरीर अकड़ने लगा। वह चीख पड़ी। घर के तमाम लोग दौड़ पड़े। प्रताप की इह-लीला समाप्त हो गई। कोहराम मच गया।

वह फफक फफककर रोने लगी। भूल सकती है वह उन्हें कभी? कभी नहीं, कभी नहीं। किन्तु प्रमोद? भ्रम में है प्रमोद।

(३)

रात बीत गई। नागपंचमी का दिन आ पहुँचा। गंगा-स्नान के लिए सब लोग चले गये। आशा घर में रह गई। उससे भी कहा गया था, लेकिन उसने इनकार कर दिया था। महरी एक ओर बैठी हुई दाल पीस रही थी।

"घूरे की माँ!"

"क्या है, बहू जी?"

"मेरा एक काम कर दोगी?"

"क्यों न करूँगी?"

"मेरे लिए चूड़ियाँ ला दो।"

"चूड़ियाँ लेकर क्या करोगी, बहू जी?"

"ज़रूरत है मुझे।"

"अच्छी बात है, ला दूँगी।"

"जो चुड़िहारिन यहाँ आती है उसी के घर जाना। उससे कहना कि नये फ़ैशनवाली चूड़ियाँ दो। यह लो रुपया।"

"अभी जाऊँ या दाल पीसने के बाद?"

"अभी चली जाओ, घूरे की माँ। लौटकर दाल पीसना। तुम्हें इनाम दूँगी। किसी से यह बात न कहना।"

"नहीं, बहू जी, इतमीनान रक्खो, किसी से कुछ न कहूँगी। मेरी आदत ऐसी नहीं है। ऐसी होती तो भले आदमियों के बीच कैसे टिकती?" वह चली गई।

आध घंटे के बाद महरी वापस आई। चूड़ियाँ ले आई। वे अच्छी थीं। आशा ने उसे इनाम दिया, और फिर ताकीद की कि इस बात की चर्चा वह किसी से न करे।

दिन बीता। रात आई। ग्यारह बज गये। काम-धंधे से निपटकर आशा अपने कमरे में पहुँची। उसने दरवाज़ा बन्द किया, और लैम्प जलाया। फिर वह अपना

शृंगार करने लगी। केश सँवारे, पैरों में महावर लगाया, हाथों में चूड़ियाँ पहनीं, माँग में सिन्दूर भरा, चेहरे पर क्रीम और पाउडर मला, नाखून और होंठ रँगे, गहने पहने, रेशमी साड़ी धारण की, रेशमी जम्पर पहना, इत्र लगया, पान खाया। इस तरह सज-धजकर वह उधर रक्खे हुए दर्पण के सामने जा खड़ी हुई। "इस समय परी लग रही हो तुम !" गूँज उठे प्रताप के ये शब्द उसके कानों में। उसका रोम-रोम पुलकायमान हो उठा। बड़ी सावधानी से उसने सेज बिछाई और उस पर फूल बिखेरे। फिर एक सन्दूक़ से पति का एक फ़ोटो निकालकर वह सेज पर जा बैठी। वह उस चित्र को मंत्रमुग्ध-सी देखने लगी। वह उसे देर तक बैठो देखती रही। उसके चेहरे पर अगणित भाव आये-गये। सहसा उठकर उसने एक सन्दूक़ खोली, और उसमें से कुछ निकालकर खाया। फिर पति के चित्र को सीने से चिपकाकर वह सेज पर लेट गई। उसके होंठों पर अद्भुत मुस्कान नृत्य करने लगी। उसके चेहरे पर विजय-गर्व व्यक्त हो गया।

रात बीती। सवेरा हुआ। दिन चढ़ा।

"छोटी बहू ! ओ छोटी बहू !" सास ने आवाज़ लगाई—"आज सोती ही रहोगी क्या ? खाना कब बनेगा ? आज भी छुट्टी का दिन है क्या ?"

कोई उत्तर नहीं मिला।

"वाह जी वाह ! देखो तो दीदा ! साढ़े सात बज गये, अभी तक सो रही है। काम में जी ही नहीं लगता।"

"रहने दो, अम्मा जी।" मँझली बहू ने कहा—"आती होगी।"

"'रहने क्या दूँ ? यह लच्छन मुझे अच्छा नहीं लगता। मैं तो साफ़ बात करती हूँ, चाहे किसी को अच्छी लगे या बुरी।"

"रोज़ तो वह तड़के ही उठती है। देखो, मैं जाकर देखती हूँ कि क्या बात है।"

मँझली बहू आशा के कमरे के सामने पहुँची।

"दुलहिन ! दुलहिन !"

कोई उत्तर नहीं मिला। दरवाज़ा खटखटाया। कोई नतीजा नहीं हुआ। उनका माथा ठनका।

"जीजी ! जीजी !"

"क्या है ?"

"ज़रा यहाँ तो आओ। अम्मा जी को भी बुलाती आओ।"

"अच्छा।"

वे दोनों भी आ पहुँचीं। फिर आवाज़ें लगाई गईं। दरवाज़ा पीटा गया। कोई परिणाम नहीं हुआ। तब मर्दों को खबर दी गई।

मर्द आये। दरवाज़ा तोड़ा गया। सब लोग दंग रह गये। प्रताप के फ़ोटो को सीने से लगाये हुए आशा सजी-धजी सुसज्जित सेज पर पड़ी थी। उसका शरीर निर्जीव था। कोहराम मच गया। मर्दों में सलाह हुई। एक डाक्टर बुलाया गया। उसने शव की परीक्षा की।

"... कम से कम छः घंटे पहले मर चुकी हैं।" डाक्टर ने राय दी—"इन्होंने ज़हर खाकर आत्म-हत्या की है।"

"आत्म-हत्या कहना तो ठीक न होगा, डाक्टर साहब।" बाबू गुरुसहाय ने कहा।

"तब ?"

"हार्ट-फ़ेल कहिए, डाक्टर साहब।" दस-दस के कई नोट डाक्टर के हाथ में देते हुए बाबू साहब ने कहा।

"बेहतर है।" नोट जेब में रखते हुए डाक्टर ने उत्तर दिया—"मुझे कोई उज्र नहीं है। मैं आपको सर्टिफ़िकेट दे दूँगा।"

"बड़ी इनायत होगी।"

मर्द बाहर चले गये। रोना-धोना फिर शुरू हो गया।

"ऐसा जान पड़ता है, जैसे सुख की नींद सो रही हों !" आह भरकर एक स्त्री ने कहा—"ऐसी सुन्दरता, भरी जवानी और ऐसा अन्त ! हाय रे भाग्य !"

एक घंटा बीता। अर्थी अन्दर आई।

"मुन्ना की मा !" भर्राये हुए स्वर में बाबू गुरुसहाय ने कहा—"बहू जिस तरह है उसी तरह उसे अर्थी पर लेटाओ। उसकी कोई चीज़ न उतारी जाय। वह देवी थी, सती थी !"

"गहने तो उतार लेने दो।"

"गहने ? नहीं, मत उतारो गहने भी।"

"बेकार फेंकने से क्या फ़ायदा ?"

"अच्छा, उतार लो गहने, लेकिन और कोई चीज़ न उतारना।"

"अच्छा।"

ज़ोर का कोहराम मचा। अर्थी उठी। प्रमोद भी अर्थी के साथ था। उसका दिल बैठा जा रहा था, उसे चारों ओर सूना-सूना-सा लग रहा था।

आ गया श्मशान। चिता सजी। चिता को अग्नि दी गई। प्रमोद आगे नहीं देख सका। वह एक ओर चल पड़ा। उसकी आँखों से आँसू गिर रहे थे।

"अरे सुनो तो, प्रमोद !"

नहीं सुना उसने कुछ। वह तेज़ी से बढ़ता गया। एक निर्जन स्थान पर पहुँचकर, रेत पर गिरकर, वह लोटने लगा, बिलखने लगा।

अन्तर्दाह कुछ कम हो गया। वह अस्त-व्यस्त उठकर बैठ गया। इस तरह आज आशा का उत्तर मिल गया ! कैसा विकट है यह उत्तर ! प्रीति निरी मूर्खता है ! किन्तु मनुष्य का उसके ऊपर वश कहाँ ? ओह हृदय—पागल हृदय !

मेरे लिए

लेखक, श्रीयुत कुँवर सोमेश्वरसिंह, बी० ए०, एल-एल० बी०

मेरे लिए मेरे लिए
है साँझ आज उदास-सी
है मर रही निश्वास-सी
हैं तारकों ने अश्रुकण बिखरा दिये उद्विग्नमन
मेरे लिए मेरे लिए

कल ही खिली थी जो कली
लगती सभी को थी भली
निज अतुल वैभव को लुटा, मुरझा, गई असमय चली
मेरे लिए मेरे लिए

सुन कुहुकिनी मेरी व्यथा—
की करुणतम कातर कथा
आकुल अकेली आम्र-तरु, पर आ अचानक रो पड़ी
मेरे लिए मेरे लिए

हैं ये सभी दुर्बलहृदय
मत भूल बन जाना सदय
छोटा न जी करना कहीं, देना नहीं दो बूँद भी
मेरे लिए मेरे लिए
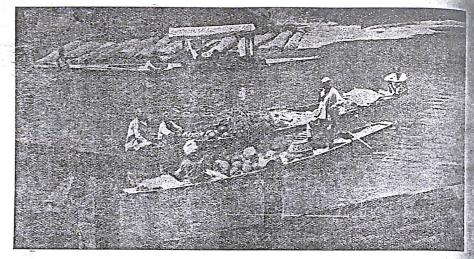
[झेलम में नौका पर एक चलती-फिरती दूकान]

पृथिवी का स्वर्ग

लेखक, श्रीयुत भक्तमोहन

काश्मीर को हम पृथिवी का एक देश कहें या स्वर्ग का एक भाग, यह एक समस्या है, और इस समस्या को आज तक कोई भी हल नहीं कर सका। भारत के विशाल मस्तक पर स्वर्णमय काश्मीर आज युग-युगान्तरों से शोभायमान है। काश्मीर की सुहावनी प्रकृति, वहाँ की सुन्दर सुषमा, दर्शकों के हृदय में एक चित्र-सा खींच देती है। तुषारावृत पर्वतों की शोभा, निर्मल एवं शीतल जल-प्रपातों का मधुर रव, तरु-शाखाओं से आता हुआ मन्द सुगन्धित पवन हृदय में एक विचित्र सुख का संचार कर देता है।

काश्मीर को लोग स्वर्ग से उपमा देते हैं। हिमालय पहाड़ की विशाल श्रेणियाँ आकाश का चुम्बन करती हुई इसके चारों ओर फैली हुई हैं। ऊपर से गिरते हुए सूर्य की कान्ति की भाँति झरनों का मधुर शब्द ऐसा प्रतीत होता है, मानो मेघों के संघर्ष से बिजली दमक कर नृत्य कर रही है। ऊँची-नीची घाटियाँ तथा पहाड़ों पर के ऊँचे ऊँचे चीड़ के वृक्ष और नदियों के किनारे किनारे चनार के पेड़ चित्त को शान्त करते हैं।

काश्मीर में सबसे सुन्दर तथा रमणीक स्थान श्रीनगर है। यह झेलम नदी के तट पर बसा हुआ है तथा यहाँ की राजधानी है। यहाँ का दृश्य तो और भी रमणीक तथा अवर्णनीय है। झेलम नदी में यहाँ हर समय बहुत-सी नावें इधर-उधर फिरा करती हैं। इन नावों पर लोग घर बना कर रहते हैं, जिनको 'हाउस-बोट' कहते हैं।

श्रीनगर में काश्मीर के महाराज का भव्य भवन एक बहुत ही रमणीक स्थान पर बना हुआ है। यह स्थान बहुत ही स्वच्छ तथा बाग-बगीचों से सुसज्जित और हरा-भरा है। यह स्थान डल झील के बहुत ही निकट है। महाराज साहब के मकान के अतिरिक्त प्रायः यहाँ के सभी मकान लकड़ी के बने हुए हैं, क्योंकि यहाँ
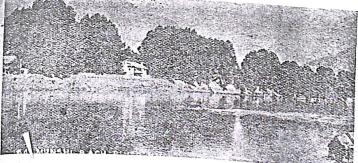
[मुंशीबाग़ से डल झील का एक दृश्य]

चीड़ की लकड़ी की अधिकता है और यहीं लोगों को ज्यादा सस्ती मिलती है।

काश्मीर में बहुत-सी सुन्दर सुन्दर झीलें हैं, जहाँ संध्याकालीन दृश्य अत्यन्त ही सुन्दर रहता है। डल झील सब झीलों में सुन्दर तथा श्रेष्ठ है। यह झील श्रीनगर में है। इसका जल स्वच्छ तथा शीतल है और इतना निर्मल है कि इसके अन्दर की सम्पूर्ण वस्तुएँ दृष्टिगोचर होती हैं। ऊलर झील डल से भी बड़ी है और उसमें भी नावें बहुत चलती रहती हैं।

श्रीनगर से लगभग दस मील की दूरी पर पुराने समय के 'शालीमार', 'निशात', 'चश्मे-शाही' तथा 'हारवन' नाम के प्रसिद्ध उपवन हैं। इन उपवनों में प्रवेश करते ही प्रकृति का सच्चा आनन्द प्राप्त होता है। ज़ोर ज़ोर से गिरते हुए झरनों का शब्द इस प्रकार गुंजार करता है, मानो पंडितों का समूह सूर्य की ओर मुँह करके वेद-मंत्र पढ़ता हुआ अर्घ्य दे रहा है। फूलों के नयनाभिराम दृश्यों को देखकर पुराण-वर्णित नन्दनवन की अपने आप याद आ जाती है। फूलों की सुगन्धि से व्याप्त वायु हृदय में एक अनोखी उमंग उत्पन्न कर देती है। इन उपवनों में बैठने के लिए जगह जगह मनोहर स्थान बने हुए हैं, जहाँ लोगों की भीड़ संध्या तक जमी रहती है।

श्रीनगर में झेलम नदी पर सात बड़े बड़े पुल बने हुए हैं, जिनके इस पार तथा उस पार बाज़ार हैं। यहाँ का सबसे स्वच्छ स्थान 'अमीराकदल' है, जो सबसे पहले पुल पर स्थित है। इसे यहाँ 'सिविल-लाइन्स' भी कहते हैं। गुलमर्ग यहाँ से लगभग २५ मील की दूरी पर है। यह एक पहाड़ी स्थल है, जहाँ बर्फ़ सदैव जमी रहती है। गर्मी के दिनों में भी यहाँ इतनी ठंडक रहती है, जितनी हमारे यहाँ जाड़े के महीने में होती है। यह भाग जाड़े के महीने में सुनसान हो जाता है और बर्फ़ की एक सुन्दर झील-सी बन जाती

[शीतकाल में काश्मीर का एक दृश्य]
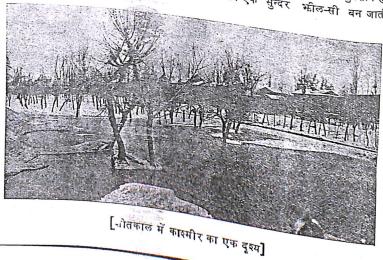
है। यहाँ के निवासी नीचे के मैदानों में चले जाते हैं।

गुलमर्ग के पास एक और स्थान है, जिसका नाम 'खिलनमर्ग' है। यह स्थान गुलमर्ग से भी अधिक ऊँचाई पर है। यहाँ जून के महीने में इतनी ठंडक पड़ती है कि हम लोगों को और अधिक गर्म वस्त्रों की आवश्यकता हुई थी। वर्फ़ीला स्थान होने के कारण यहाँ के लोग बेपहिये की गाड़ी पर बैठकर फिसलने का आनन्द लेते हैं।

[पहलगाँव के आगे अमरनाथ के मार्ग पर शेषनाग नाम की प्रसिद्ध झील]

यदि हम अपनी काश्मीर-यात्रा का पूर्णरूप से वर्णन करें तो पचासों पृष्ठ रँग जायँगे, और पाठकगण भी पढ़ते पढ़ते ऊब जायँगे, इसलिए हमने उसका यहाँ दिग्दर्शन भर कराया है।

कुछ दिनों तक अनेक ऊँचे ऊँचे पहाड़ी स्थानों की सैर करके हम फिर नीचे के भागों में लौट आये। दो-चार दिन विश्राम करके हम लोग 'पहलगाँव' पहुँचे। यह स्थान भी अन्य भागों की अपेक्षा भला प्रतीत हुआ। यहाँ की जलवायु स्वास्थ्य के लिए बहुत ही हितकर है। यहाँ का जल निर्मल तथा स्वास्थ्य-वर्द्धक है। मुख्यतः रोगियों के लिए तो महौषध या अमृत ही कहना चाहिए। यहाँ के सोतों तथा झरनों की शोभा अतुलनीय है। हम लोगों का समय एक महीने यहीं व्यतीत हुआ।
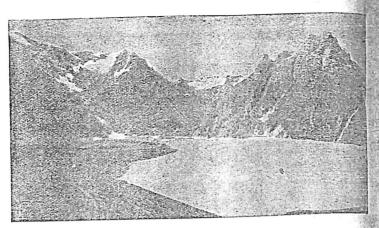
काश्मीर में हिन्दुओं के बहुत-से मन्दिर हैं। श्री शंकराचार्य, खीर-भवानी, और अमरनाथ के मन्दिर अधिक प्रसिद्ध हैं।

श्रीनगर से लगभग चार मील की दूरी पर श्री शंकराचार्य जी का प्राचीन मन्दिर एक बहुत ऊँची चोटी पर स्थित है। यद्यपि यह बहुत विशाल नहीं है,

[तैरता हुआ खेत--काश्मीर में झील पर ऐसे ही तैरते हुए खेतों में खेती होती है]

[निशातबाग़ का एक सुन्दर दृश्य]

[घर की ओर]
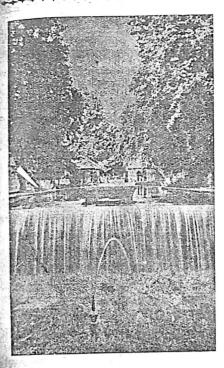
फिर भी लोग इस मन्दिर का दर्शन करने के लिए दूर दूर से आते हैं। रात्रि में आकाश में झलमलाते हुए तारागणों की भाँति यह मन्दिर बिजली के प्रकाश में चमकता हुआ बहुत ही अच्छा लगता है।

खीरभवानी का मन्दिर भी बहुत पुराना है। वह जङ्गलों से घिरे हुए एक बीहड़ स्थान में है। एक छोटे से तालाब के बीच में देवी जी का मन्दिर है, जिसमें मूर्तियाँ स्थापित हैं। यहाँ के लोगों का कहना है कि ये मूर्तियाँ तालाब के अन्दर से अपने आप प्रकट हुई हैं। देवी जी का दर्शन करने के लिए बहुत दूर दूर के लोग आते हैं।

[राज्ञादेवी (खीरभवानी) का मन्दिर]
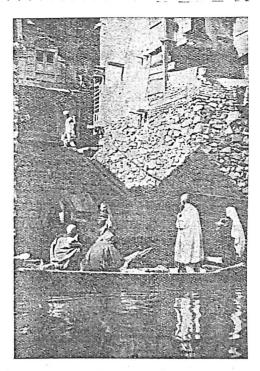
देवी जी की यहाँ बड़ी महिमा है और लोगों की उन पर बड़ी श्रद्धा है। मन्दिर के निकट गौरवर्ण के बहुत-से नवयुवक बड़े बड़े चोगा पहने सिर पर साफ़ा बाँधे विराजमान रहते हैं। ये लोग मन्दिर के पुजारी हैं और इन्हें बहुधा यात्रियों से बहुत-सा धन मिल जाता है।

श्री अमरनाथ जी यहाँ का सबसे बड़ा तीर्थस्थान माना जाता है। यह स्थान 'पहलगाँव' से काफ़ी दूर है।

काश्मीर यथार्थ में इस पृथिवी से न्यारा है। लोगों का कहना है कि योरप का स्वीटज़रलैंड भी इसकी समता नहीं कर सकता।
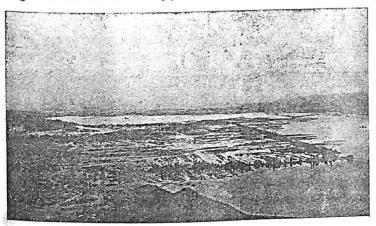
किसानों का नया क़ानून

लेखक, श्री सीतलासहाय, बी० ए०

नून क़ब्ज़े आराज़ी’ पर जिसे कांग्रेस-गवर्नमेंट ने पास किया था, गवर्नर महोदय ने हस्ताक्षर कर दिये और वह अब क़ानून हो गया।

‘कांग्रेस-गवर्नमेंट का इस क़ानून के बारे में यह दावा है कि उसने इसकी हर एक ‘तजवीज़’ को इस कसौटी पर कसा है कि वह कहाँ तक लाभदायक और व्यावहारिक है। उसने उन तजवीज़ों को नामंज़ूर कर दिया है जो किसानों को जान-बूझकर या अनजान में अधीनता की बेड़ियों में सिर्फ़ इसलिए जकड़े रखना चाहती हैं कि वे इन बेड़ियों को बहुत वर्षों से पहने चले आ रहे हैं। साथ ही साथ गवर्नमेंट ने अफ़सोस के साथ उन तजवीज़ों को भी नामंज़ूर कर दिया है जो देखने में बहुत लुभावनी मालूम होती हैं, लेकिन जिनसे सम्भावना है कि किसान मुक़दमेबाज़ी के दलदल में फँस जायँगे या जिनकी उपयोगिता या मूल्य पर गवर्नमेंट को सन्देह है।” (गो० व० पन्त)

अब ‘अवध-क़ानून-लगान’ और आगरा ‘टेनेन्सी ऐक्ट’ दोनों रद्द कर दिये गये हैं और इन दोनों की जगह ‘युक्त-प्रान्त टेनेन्सी ऐक्ट’ जो ‘क़ानून क़ब्ज़े आराज़ी’ के नाम से प्रसिद्ध है, लागू होगा। अवध और आगरा दोनों प्रान्तों में अब एक ही क़ानून चलेगा।

मौरूसी हक़—गवर्नमेंट ने इस क़ानून के द्वारा किसानों को मौरूसी हक़ दिया है। वे सब किसान मौरूसी काश्तकार कर दिये गये हैं जिन्हें अभी तक ‘हीनहयाती हक़’ प्राप्त था।

जो किसान मृत व्यक्ति के वारिस की हैसियत से खेत जोत रहे हैं और उसके वारिस भी उस ज़मीन के मौरूसी काश्तकार हो गये हैं। अवध में ऐसे किसान पाँच बरस के अन्दर मृत व्यक्ति की ज़मीन से पिछले क़ानून की दफ़ा ४८ के अनुसार बेदख़ल हो जाते थे। अब यह ४८ दफ़ा टूट गई है।

अभी तक क़ायदा यह था कि अगर किसी किसान के पास मातहती की या ज़मींदारी की बिस्वा भर भी ज़मीन होती थी तो वह अवध में हीन-हयाती क़ानूनी काश्तकार नहीं बन सकता था और वह दफ़ा ६७(१) ‘बी’ के अनुसार अपने दूसरे खेतों से बेदख़ल हो सकता था। लेकिन नये क़ानून में यह बन्दिश उठा ली गई है। मातहतदारों और आराज़ी के वैसे ही दूसरे मालिकों को अपने दूसरे ख़ालसा खेतों में मौरूसी हक़ मिल सकेगा। मातहतदार और ज़मींदार अभी तक दफ़ा ६७, १(बी) की वजह से क़ानूनी काश्तकार नहीं हो सकेते थे। यह दफ़ा [(६७, १(बी)] अब मन्सूख़ हो गई है।

अवध में यह क़ायदा था कि पाही काश्तकार बेदख़ल कर दिया जाता था। अवध के लगान-क़ानून में एक नियम यह था कि अगर कोई किसान किसी ऐसे गाँव में जिसमें वह रहता न हो, खेती करता हो तो वह दफ़ा ६२ ए की उपदफ़ा ‘बी’ के अनुसार दूसरे गाँववाले खेत से बेदख़ल हो जाता था। लेकिन इस क़ानून के अनुसार अब पाही काश्तकार इस बात पर बेदख़ल नहीं हो सकेगा कि जिस गाँव में उसका खेत है उसमें आम तौर पर वह नहीं रहता है।

अब भविष्य में इस क़ानून के अनुसार अगर किसी किसान को असली काश्तकारी का पट्टा दिया जायगा तो वह मौरूसी किसान समझा जायगा। और शिकमी भी पाँच बरस तक बेदख़ल न हो सकेगा।

मौरूसी हक़ के अपवाद—मौरूसी हक़ बाग़ों में, चरियों में और तालाबों में जिनमें सिघाड़े बोये जाते हैं, नहीं मिलेगा। जो ज़मीन नदी के किनारे है और जहाँ कभी-कभी खेती की जाती है, मौरूसी न हो सकेगी। जनता के हित के लिए या सार्वजनिक काम के लिए दी हुई ज़मीन में मौरूसी हक़ न मिलेगा।

सीर और ख़ुदकाश्त की ज़मीन— जिस ज़मींदार की मालगुज़ारी २५०) से कम है उसकी सीर की ज़मीन में किसानों को मौरूसी हक़ नहीं मिलेगा। लेकिन अगर ज़मींदार की मालगुज़ारी २५०) से ज़्यादा है या वह २५) से ज़्यादा अबवाब देता है तो उसकी सीर की ज़मीन पर किसानों को मौरूसी हक़ मिल सकता है। इस क़ानून के जारी होने के बाद से सीर के मालिक पाँच बरस से ज़्यादा तक के लिए

अपनी सीर को या उसके किसी अंश को शिकमी न दे सकेंगे। अगर वे पाँच बरस से ज़्यादा समय तक अपनी सीर पर किसी शिकमी काश्तकार का क़ब्ज़ा क़ायम रहने देंगे और उस काश्तकार को बेदख़ल न करेंगे तो वह काश्तकार उसकी सीर की उस ज़मीन पर मौरूसी हक़ प्राप्त कर लेगा। पाँच बरस तक शिकमी उठाने के बाद सीर के मालिक के लिए यह ज़रूरी है कि वह तीन बरस तक उसी खेत में अपने हल-बैल से ख़ुद खेती करे।

लेकिन ये नियम और ये बन्दिशें सीर के उन मालिकों के लिए नहीं हैं जो असमर्थ हैं, जैसे स्त्रियाँ, नाबालिग़, पागल और अन्धे। अभी तक क़ायदा यह था कि ज़मींदार अपनी ख़ुदकाश्त की ज़मीन को सीर करवा देता था और फिर सीर को किसानों को शिकमी उठा देता था। नई तजवीज़ यह है कि कोई ज़मीन नई सीर नहीं बनाई जा सकेगी।

अवध रेंट-ऐक्ट की दफ़ा ३० (१) और आगरा टेनेन्सी ऐक्ट की दफ़ायें ४० और ४१ मंसूख़ कर दी गई हैं। इन दफ़ाओं के अनुसार ज़मींदार को हक़ था कि कुछ सूरतों में वह किसान से उसकी ज़मीन छीन ले, लेकिन अब यह नहीं हो सकेगा। अगर ज़मींदार या ताल्लुक़ेदार किसी किसान से उसकी ज़मीन लेना चाहता है तो इस मामले को काश्तकार के साथ अपनी तरफ़ से तय करे और अगर किसान ख़ुशी ख़ुशी देने को तैयार है तो ले सकता है, लेकिन पहले की तरह अब वह अदालत के द्वारा ज़मीन छीन नहीं सकता। ज़मींदार ५ एकड़ तक खेत ले सकता है, अगर वह उस पर अपना मकान बनाना या फुलवाड़ी लगाना चाहता है। इससे ज़्यादा वह नहीं ले सकता है।

ज़मीन का सुधार, इमारतें और पेड़—अपने खेतों का सुधार करने के लिए मौरूसी काश्तकारों को भी वही अधिकार हों जो ‘दख़ीलकार’ और ‘साक़ितुल मिल्कियत काश्तकारों’ को होते हैं। ऐसे सभी काश्तकारों को यह हक़ भी होगा कि वे अपनी ज़मीन पर स्थायी ढंग का मकान या जानवरों के रहने के लिए घर बनवा सकें। लेकिन अगर ऐसी इमारत आराज़ी के मालिक की मंज़ूरी के बिना बनाई जायगी तो आराज़ी के मालिक पर इस बात की ज़िम्मेदारी नहीं होगी कि काश्तकार के क़ानून के अनुसार बेदख़ल किये जाने पर वह काश्तकार को उस इमारत का मुआविज़ा दे। उस समय काश्तकार या तो सब मलवा वहाँ से हटा ले जा सकता है या उसे किसी दूसरे आदमी के हाथ बेच सकता है।

अगर काश्तकार आराज़ी के मालिक से ऐसी इमारत बनाने के लिए मंज़ूरी माँगे और वह मंज़ूरी न दे तो काश्तकार अपनी दरख़्वास्त अदालत के पास भेज सकता है और अगर अदालत को यह मालूम होगा कि प्रस्तावित इमारत ज़मीन के अनुकूल है और आराज़ी के मालिक ने अपनी मंज़ूरी न देकर अन्याय किया है तो अदालत उस अर्ज़ी को मंज़ूर कर सकती है और अपनी समझ से इस बात की मुनासिब पाबन्दी लगा सकती है कि इमारत कितनी बड़ी हो, उसके बनाने की जगह कौन हो, उसमें ख़र्च कितना हो वग़ैरह। अदालत के ऐसा निर्णय करते ही यह समझा जायगा कि आराज़ी के मालिक ने इजाज़त दे दी है और काश्तकार के बेदख़ल किये जाने पर आराज़ी का मालिक उसे हर्जाना देने को ज़िम्मेदार होगा।

ग़ैर दख़ीलकार काश्तकारों के अलावा दूसरे काश्तकारों को इस बात का हक़ होगा कि वे आराज़ी के मालिक की मंज़ूरी लिये बिना अपनी ज़मीन में दरख़्त लगा सकें।

किसी ख़िलाफ़ इक़रारनामा के न होने पर जब कभी कोई काश्तकार अपनी ज़मीन में सुधार करेगा या इमारत बनायेगा या दरख़्त लगायेगा तो वह उस ज़मीन का पूरा लगान देने का ज़िम्मेदार होगा।

किसी दैवी आपत्ति के आ जाने पर जैसे बाढ़ या पाला आदि के होने पर प्रान्त की गवर्नमेंट लगान पर छूट देगी, जिसकी दर निम्नलिखित होगी—

अगर फ़सल में १२ आने या बारह आने से ज़्यादा की हानि हुई है तो १६ आने की छूट दी जायगी। अगर १० आने की हानि हुई है लेकिन १२ आने से ज़्यादा की नहीं तो रुपये में १० आने की छूट मिलेगी। अगर ८ आने की हानि हुई है लेकिन १० आने से ज़्यादा की नहीं तो रुपये में ६ आने की छूट मिलेगी। यह भी क़ानून बनाया

गया है कि अगर बुन्देलखंड और यमुना के उस पार इलाहाबाद, इटावा, आगरा, और मथुरा के ज़िलों में और दूसरे ज़िलों में भी हालत ऐसी है कि ६ आने का नुक़सान हुआ है लेकिन ८ आने से ज़्यादा नहीं हुआ है तो रुपये में ४ आने की छूट दी जायगी। शिकमी काश्तकारों को भी छूट दी जायगी।

डिप्टी कमिश्नरों और कलेक्टरों के पास गवर्नमेंट ने यह हिदायत भेज दी है कि वे ख़ुद उन हल्क़ों से जो दैवी आपदाओं में फँसे हुए हों, परिचित रहें और उनकी असली हालत जानते रहें।

लगान की अदायगी—आराज़ी का मालिक लगान या सायर की जो रक़म वसूल करेगा उस हर एक रक़म के लिए निर्धारित फ़ार्म पर छपी हुई रसीद देगा। जो भी रक़म दी जायगी उसे लेना आराज़ी के मालिक के लिए लाज़मी होगा, चाहे वह रक़म लगान की पूरी रक़म हो, चाहे उसका एक हिस्सा। रसीद और मुसन्ना के छपे हुए फ़ार्म गवर्नमेंट से मुनासिव दाम पर मिल सकेंगे।

काश्तकार को इस बात की आज़ादी होगी कि या तो वह मनीआर्डर से लगान की रक़म अदा करे या अदालत में जमा करा दे।

ज़मीन के वाजिब लगान के अलावा सारे ज़ायद मतालबे रद्द हो जायँ, जैसे हरी, बेगार, ओगहनी, भूसा, बयायी आदि और वे वसूल नहीं किये जा सकेंगे और किसी भी काश्तकार से उस लगान के अलावा जो उसकी ज़मीन के लिए दर्ज है, कोई और रक़म माँगी नहीं जा सकेगी।

किसी भी दशा में काश्तकार बक़ाया लगान की बिना पर गिरफ़्तार नहीं किया जा सकता है, न हिरासत में ही रक्खा जा सकता है।

रसीद देने के बारे में या मुसन्ना रखने के मामले में या दी हुई रक़म को जमा करने के सम्बन्ध में या ग़ैर क़ानूनी ढंग से रुपया वसूल करने के सिलसिले में या रक़म और क़िश्त की तारीख़ और सूद की दर आदि के बारे में जो लोग क़ानून भंग करेंगे वे सिर्फ़ हर्जाना देने के ही ज़िम्मेदार नहीं होंगे, बल्कि इस ऐक्ट की दफ़ाओं में ऐसे जुर्मों के लिए जो दण्ड स्पष्ट रूप से निर्धारित किये गये हैं उन्हें भी भुगतना होगा।

क़ुर्की ख़ुद अख़्तियारी—अभी तक क़ायदा यह था कि ताल्लुक़ेदार या ज़मींदार किसान की खड़ी हुई फ़सल को अपनी मर्ज़ी से क़ुर्क़ कर लेता था, वहाँ झंडी गाड़ देता था और शहना बिठला देता था, लेकिन अब क़ुर्क़ी ख़ुद अख़्तियारी न हो सकेगी।

बेदख़ली—इस क़ानून में यह दफ़ा रक्खी गई है कि कोई किसान गाँव में अपने रहने के मकान से सिर्फ़ इस वजह से बेदख़ली के क़ाबिल न होगा कि वह उस मौज़े में अपनी जोत से बेदख़ल कर दिया गया है।

साक़ितुलमिल्कियत, दाख़ीलकार और मौरूसी किसान की बेदख़ली की सिर्फ़ उसी वक़्त इजाज़त है जब बक़ाया एक साल के लगान से ज़्यादा हो। बेदख़ली की कार्रवाइयों के ज़ाप्ते में बहुत ज़्यादा तब्दीली कर दी गई है। इस क़ानून के मातहत डिग्री-शुदा बक़ाया की बिना पर बेदख़ली के लिए १ जून और ३१ अगस्त के दर्मियान दरख़्वास्त दी जानी चाहिए।

बाग़—इस क़ानून में यह व्यवस्था की गई है कि ऐसी आराज़ी का जो बाग़ की आराज़ी न रह गई हो, बाग़-दार मौरूसी काश्तकार हो जायगा और इन्तक़ाल या शिकमी पर उठाने के लिए बाग़दारों के अधिकार किसी प्रथा और मुआहिदे के अधीन न होंगे।

नज़र, नज़राना, बेगार—कुछ सज़ायें और मुआविज़े इस उद्देश्य से मुक़र्रर किये गये हैं कि अगर किसान बेजा काम करे तो उसे दंड मिले और अगर ज़मींदार लोग ज़्यादती करें तो उन्हें सज़ा मिले और जिस पर ज़ुल्म हुआ है उसको तावान दिलाया जाय। इस प्रान्त में अकसर यह देखा गया है कि ज़मींदार लोग बक़ाया लगान से ज़्यादा रक़म वसूल कर लेते हैं या बक़ाया लगान पर सूद बहुत ज़्यादा लगाते हैं, हरी, बेगार, नज़राना वग़ैरह लेते हैं। अगर गवर्नमेंट लगान माफ़ कर देती है तो भी वसूल कर लेते हैं। अगर कोई किसान साल हाल का लगान देता है तो उसे बक़ाये में या किसी और मद में काट लेते हैं। रसीदें नहीं देते और खेत पर बिला अदालत के मंज़ूरी के बिना नाक़ायदा बेदख़ल किये हुए क़ब्ज़ा कर लेते हैं। कहीं कहीं किसान लोग बेदख़ल हो

जाने पर भी ज़मीन पर क़ब्ज़ा नहीं छोड़ते। इन सब ख़राबियों के लिए सज़ायें और तावान मुक़र्रर किये गये हैं। किसान से मतलब यहाँ सिर्फ़ मौरूसी किसान से है। किसी ज़मींदार के लिए यह जायज़ नहीं है कि खेत का पट्टा देने के लिए किसान से नज़राना ले। और न खेत इस शर्त पर दिया जा सकता है कि किसान ज़मींदार का कोई काम मज़दूरी लेकर या बिला मज़दूरी लिये करेगा।

आगरा और अवध दोनों प्रान्तों में बहुत क़िस्म के ज़ायद मतालबे किसानों से वसूल किये जाते थे। कुछ तो वाजिबुल-अर्ज़ में दर्ज थे, कुछ रस्मी थे। ये सब मतालबे बन्द कर दिये जायँगे।

जहाँ बाज़ारों या मेलों में ज़मींदारों और ताल्लुक़ेदारों की तरफ़ से रक़म वसूल होती है, इसके लिए ज़मींदार या ताल्लुक़ेदार को सूबे की गवर्नमेंट से इजाज़त लेनी पड़ेगी और इजाज़त देते वक़्त गवर्नमेंट सफ़ाई व पुलिस और दूसरी बातों के सिलसिले में जो प्रबन्ध मुनासिब समझेगी उसकी व्यवस्था करनी ज़मींदार या ताल्लुक़ेदार पर लाज़िम कर देगी।

इस नये क़ानून में नीचे लिखी बातें जुर्म मानी गई हैं।

कोई ज़मींदार, ताल्लुक़ेदार या कारिन्दा, अर्थात् कोई भी आदमी जानबूझकर वाजिब बक़ाया लगान या सायर से ज़्यादा रक़म या जिन्स वसूल नहीं कर सकता।

इस क़ानून में निश्चित की हुई सूद की दर से ज़्यादा सूद बक़ाया लगान पर नहीं लगा सकता।

कोई भी जान-बूझकर नज़राना, अबवाब, ज़ायद मतालबा, हरी-बेगार, बयायी वग़ैरह नहीं ले सकता।

अगर किसी लगान को इस क़ानून ने माफ़ कर दिया है तो उसे कोई वसूल नहीं कर सकता। अगर कोई लगान मुलतवी कर दिया गया हो और मुलतवी की मियाद पूरी न हुई तो मियाद ख़तम होने के पहले कोई लगान वसूल नहीं कर सकता।

जिस मद में और जिस साल के लिए लगान या सायर दिया गया हो उसी में जमा करना होगा। बिना किसी उचित कारण के अगर कोई ज़मींदार या ताल्लुक़ेदार या उसके कारिन्दे किसी दूसरी मद में या दूसरे साल में उस रक़म को जमा करेंगे तो उनका वह काम क़ानून के विरुद्ध होगा। ऐसी हालत में काश्तकार को, मुस्तक़िल पट्टेदार को या सायर के लाइसेंसदार को अदालत २००) तक मुआविज़ा दिलायेगी और इसके अलावा अदालत उस रक़म की भी डिगरी दे सकती है जो ज़मींदार या ताल्लुक़ेदार ने ग़ैर मुनासिब तरीक़े से वसूल कर ली हो। बक़ाया लगान के मुक़दमे में अगर अदालत को यह मालूम हो जाय कि आराज़ी के मालिक ने बिना किसी उचित कारण के उस साल में जिसके लिए मुक़दमा किया गया है, किसान को रसीद देने से इनकार किया या रसीद देने में बेपरवाही की या यह कि वह रसीद का मुसन्ना न तो तैयार करता है और न रखता है तो अदालत किसान को मुआविज़ा दिलायेगी जो अदा की हुई रक़म से दुगना तक हो सकता है।

अगर आराज़ी का कोई मालिक ऐसा लगान वसूल कर ले जो इस क़ानून के द्वारा माफ़ कर दिया गया है या मुलतवी की मियाद ख़तम होने के पहले इस क़ानून के मुताबिक़ मुलतवी किया हुआ लगान वसूल कर लिया है तो सरकार की तरफ़ से आराज़ी के मालिक को लगान या मालगुज़ारी में दी हुई सारी की सारी माफ़ी मंसूख़ कर दी जायगी और उसे माफ़ी की रक़म वाजिबुलअदा हो जायगी।

अगर कोई आदमी स्वभावतः रसीद देने से इनकार करता हो या देने में बेपरवाही करता है तो फ़ौजदारी की अदालत में उस पर मुक़दमा चलाया जायगा और सज़ा हो जाने पर पहले जुर्म में १००) तक जुर्माना होगा और बाद के जुर्मों में तीन महीने तक की सज़ा या ५००) तक जुर्माना या दोनों तरह की सज़ायें हो सकती हैं।

यदि किसी के विरुद्ध किसी खेत में या उसके किसी हिस्से से इस क़ानून के अनुसार बेदख़ली का हुक्म निकल चुका है या बेदख़ली की डिगरी तामील हो चुकी है या आगरा या अवध के क़ानून लगान के मुताबिक़ भी हुक्म निकला है या डिगरी कर दी गई है और कोई किसान अपने खेत से बेदख़ल कर दिया गया है, जब तक यह डिगरी या हुक्म क़ायम है अगर कोई भी आदमी उस खेत पर बिना उस आदमी की लिखी हुई आज्ञा के जिसको कि

खेत देने का हक़ है, क़ब्ज़ा करेगा या क़ब्ज़ा करने की कोशिश करेगा तो उसके ऊपर ताज़ीरात हिन्द की दफ़ा ४४१ के मुताबिक़ मुक़दमा चलाया जायगा।

अगर आराज़ी का मालिक किसी किसान के खेत पर इस मतलब से क़ब्ज़ा करेगा या क़ब्ज़ा करने की कोशिश करेगा कि बिना इस क़ानून के मदद लिये हुए उसे खेत से बेदखल कर दे तो उस ज़मींदार के बारे में यह मान लिया जायगा कि उस किसान को धमकी देने या परेशान करने का इरादा रखता था और उसके ऊपर भी ताज़ीरात हिन्द की दफ़ा ४४१ के मुताबिक मुक़दमा चलाया जायगा।

अदालत को अधिकार होगा कि खेत उसको दिला दे जिसका क़ानून से है, चाहे किसान का हो या ज़मींदार का।

अगर कोई किसान १ अप्रैल सन् १९३८ के बाद ख़रीफ़ सन् १३४४ फ़सली के या उसके पहलेवाले कई सालों के बक़ाया लगान के अदा न करने के अपराध में बेदखल किया गया है तो उसे हक़ है कि इस क़ानून के लागू होने के बाद छः महीने की मियाद में अपनी ज़मीन पर फिर बहाल किये जाने के लिए उस अदालत में दरख्वास्त दे जिसने उसे बेदखल किया है। अदालत जाँच करेगी और उचित समझकर उसको उसकी ज़मीन पर फिर बहाल कर देगी और क़ब्ज़ा दिलायेगी, लेकिन अगर यह बेदखल की गई ज़मीन या इसका कोई हिस्सा १३४५ फ़सली में किसी दूसरे आदमी को पट्टे पर दे दिया गया है और वह लगातार उसके पास रहा है तो अदालत उस ज़मीन के बारे में कोई भी हुक्म न देगी। ज़मीन के वापस मिलने पर किसान को बेदखली के मुक़दमे का ख़र्च आराज़ी के मालिक को अदा करना होगा। अगर बेदखली के समय आराज़ी के मालिक ने किसान को मुआविज़ा के रूप में कुछ रक़म दी है तो उसे वापस करना होगी। अगर आराज़ी के मालिक ने इस ज़मीन के सुधार के सिलसिले में कुछ खर्च किया है तो उसे भी अदा करना होगा। ज़मीन को वापस पाने के बाद किसान को वही हक़ और ज़िम्मेदारी आ जायगी जो उस ज़मीन के सम्बन्ध में उसके ऊपर बेदखल हो जाने के पहले थी। जैसे अगर किसान जोत के एक हिस्से पर क़ाबिज़ बताया जाता है तो लगान उस हिस्से का देना पड़ेगा जिस पर उसने क़ब्ज़ा पाया है। अवध में जो किसान इस क़ानून के लागू होने के वक़्त शिकमी हैं इस वक़्त से पाँच बरस तक उस जोत से बेदखल नहीं किये जा सकेंगे चाहे वे शिकमी दर शिकमी ही क्यों न हों।

अगर इस क़ानून के लागू होते वक़्त कोई मुक़दमा 'आगरा क़ब्ज़ये आराज़ी' के या 'अवध क़ानून लगान' के अनुसार किसी अदालत में दायर है या इन दोनों के अनुसार कोई डिग्री जिसका मतालबा अभी तक अदा नहीं हुआ है, जारी है तो उन मुक़दमों और डिग्री की कार्रवाई इस नये क़ानून की दफ़ाओं के अनुसार होगी। अगर इस नये क़ानून में इन दफ़ाओं के अनुसार कोई दफ़ा मौजूद है तो मुक़दमा और डिग्री मंसूख समझी जायगी।

किसानों के नये क़ानून का यही विवरण है। आशा है, प्रान्त के किसान इस क़ानून से लाभ उठायेंगे।

सेठ लाभचंद

लेखक, श्रीयुत उदयशङ्कर भट्ट

समय दोपहर—

(सेठ लाभचंद की दूकाननुमा बैठक। ऊपर दरी और आधे भाग में बड़ा गद्दा है, ऊपर एक सफ़ेद चादर। पश्चिम की ओर दो दरवाज़े। बाहर जँगलें लगे हैं और भीतर मोटे किवाड़ हैं। जँगलों की छड़ें नीले रोग़न से पुती हैं। भीतर दरवाज़े भी वैसे ही हैं। गावतकिये के सहारे सेठ बैठा है, उसके पास दो आयरन सेफ़, जिनके दरवाज़े खुले हैं, रक्खे हैं। उनमें चाँदी और सोने के गहने सज़ा कर रक्खे हैं। सेठ के ऊपर की दीवार पर लक्ष्मी जी और गणेश जी की तसवीरें हैं, जिन पर फूल-मालायें पड़ी हैं। उसके नीचे दीवार पर ही रोली से स्वस्तिक का चिह्न है। सेठ के सामने ज़रा दूर हटकर एक मुनीम बही-खाता खोले काम कर रहा है। पास ही कुछ दूर हटकर लट्ठ-बन्द आदमी बैठा है। दूसरे कोने में तिपाई पर ताँबे का टोंटीदार लोटा 'गंगासागर' रक्खा है। उसके पास ही एक खूँटी पर डोर से लिपटा कपड़े का ढोल टँगा है। सेठ की उमर लगभग चालीस साल, छरहरा बदन, पीली पगड़ी, मलमल का कुछ मैला कुरता। चश्मा बिलकुल नाक की नोक पर। पास की चीज़ देखने के लिए ऐनक की आवश्यकता है तो फिर दूर के लिए उससे बार बार उतारने से उसकी कमानी खराब हो जाने का डर है। इसलिए सेठ ने ज़रा लम्बी कमानी का चश्मा बनवाया है। दूर से देखने पर मालूम होता है, मानो चश्मे और आँख दोनों का ठीक उपयोग करने के लिए एक खास 'एंगल' पर फ़र्मायशी नाक बनवाई गई है, जो नोक पर काफ़ी मोटी होती हुई भी उसके पास एकदम पतली हो गई है, मानो हजामत के ब्रुश की मुट्ठी हो। काले निर्मांस शरीर में हृदय केवल इसलिए चिपकाया गया है कि वह मस्तिष्क के धन-संग्रह की चिन्ता को एकदम सूख न जाने दे और उससे रस प्रवाहित होता रहे। इसी लिए कभी वह पेटियों की ओर, और कभी सामने टँगे कलेण्डर की तरफ़ दृष्टिपात करता है, फिर गावतकिये का सहारा लेकर छत की तरफ़ देखता है, दोनों हाथों से सिर को सहारा देकर कुछ सोचता हुआ—)

सेठ—छै आने चार पाई के हिसाब से छै रुपये बारह आने एक साल के, और तीन साल के बीस, चार आने ब्याज पाँच आने, बीस नौ आने। (एक कागज़ पर टीपकर) मुनीम जी, मुनीम जी!

मुनीम—जी सेठ जी!

सेठ जी—तनसुखदास के बीस पाँच आने और जोड़ो। पहले कितना है?

मुनीम—(बही खोलकर) दो सौ पचासी चार आने सेठ जी!

सेठ—ठीक, बीस नौ आने और जोड़ दो। और देखो, धर्मादे में इस महीने में कितना आया।

मुनीम—धर्मादे में (बही खोलकर और देखकर) पच्चीस सात आने।

सेठ—और बिक्री!

मुनीम—सेठ जी, अभी जोड़ा नहीं है। जोड़ूँ क्या?

सेठ—ठहरो।

रामसेवक—(जो लट्ठ बाँधे एक ओर बैठा है) सेठ जी!

सेठ—गाहकी तो रही ही नहीं। देखो, नसीमबकस की गिर्वी की म्याद कब खतम होती है। (गाव-तकिये के सहारे पगड़ी को ठीक करके) रामसेवक राधेश्याम, महादीन पाण्डे और सखुनअली के यहाँ गया था?

रामसेवक—हाँ सेठ जी! राधेश्याम बाबू दौरा पर गये हैं। महादीन पाण्डे साग-तरकारी लेने बाजार गये थे। सखुनअली के घर से कहलवा दिया है नहीं। हम लौट आये। क्या करते? सेठ जी, महीना की तनखा मिल जाय।

सेठ—काम एक भी पूरा न किया, तनखा माँगे है। ये हम कुछ नहीं सुनना चाहते। वसूली करके लाओ। बैठे की तनखा नहीं मिलेगी, समझे, जो है सोह के बीच में काम करो। मुनीम जी, देखो कितने की वसूली की है इसने!

मुनीम—सेठ जी, नसीमवकस का एक दिन बाक़ी है।

सेठ—एक दिन आज कड़े तो अव सेठ लाभचंद के हो गये। चार दिन के बीच में आवे (मुनीम की ओर देखकर) हाँ, समझे। देखो, फिर देखो, हिसाव फिर देखो। ओह चार दिन। (पेटी में से कड़े निकाल और देखकर) माल खरा है। पैंतीस में तो कोई भी हँसता हँसता ले लेगा और मैंने रक्खे हैं पच्चीस में। दस फ़ी तोला। (काग़ज़ निकालकर पढ़ता है। इतने में एक पठान भीतर आता है और जूते उतारता हुआ सेठ को सलाम करता है। सेठ सव सामान जहाँ का तहाँ रखकर) सलाम, आइए साहव!

पठान—सेठ जी हम मदरास जा रहा था। हम हैं व्यौपारी।

सेठ—अच्छा।

पठान—रास्ते में हमारा (लज्जित-सा होकर) क्या वताये सेठ तुमको। हम वड़ा मुश्किल में पड़ गया है।

सेठ—आप क्या चाहते हैं?

पठान—हम ईमानदार आदमी है, हम भी व्यापारी है। हज़ारों का व्यापार करता है, मेवा वेचता है मेवा। हमारा रुपया खो गया। हम मदरास जा रहा है।

सेठ—(घूरकर) इस समय हमें फ़ुर्सत नहीं है पठान। जाओ अपना काम करो।

पठान—पचास रुपया चाहता है। मदरास से वापिस कर देगा सेठ! हमारा पास वम्बई का टिकट है। (टिकट दिखाता है) हम व्यापारी है। हज़ारों का व्यापार करता है। हम शुक्रिया करेगा। तुम्हारा रुपिया वापिस कर देगा।

सेठ—(खीझकर) हमारे पास रुपया नहीं है। हम नहीं दे सकते। मुनीम जी, देखो...

पठान—हम कभी झूठ नहीं बोलता, पठान का वच्चा कभी झूठ नहीं वोलता। कल शाम से हमने कुछ खाया हो तो सूअर......।

सेठ—पठान, वोलने की वहुत ज़रूरत नहीं है। हमारे पास रुपया नहीं है। जाओ। हाँ, मुनीम जी, महादीन पाण्डे का हिसाव तो देखो!

पठान—मेहरवानी करो सेठ! मेहरवानी करो।

सेठ—तो भाई, हम क्या यहाँ खैरात वाँटने वैठे हैं। हम तो व्यापारी हैं। कोई सोने की चीज हो तो लाओ और रुपया ले जाओ।

पठान—ऐसी गिर्वी रखने लायक कोई चीज़ हमारे पास नहीं है। हमारे पास जो रुपया था वह चोरी हो गया। खुदा जानता है, हम झूठ नहीं वोलता। हम मदरास जाकर रुपया भेज देगा।

सेठ—यह नहीं हो सके है।

मुनीम—तीन सौ तो नगद दिये, छै महीने का सूद, दर सूद भी है। अभी तो व्याज़ वाक़ी है। हिसाव जोड़ूँ क्या?

(इसी समय दो आदमी आते हैं और हाथ जोड़कर वैठ जाते हैं। पीछे उनके एक सिपाही की वर्दी पहने हुए आदमी आता है, दूर वैठ जाता है)

सेठ—(चश्मे से घूरकर) आइए साव! (ज़रा सँभल कर वैटता है)

पहला आदमी—(जेव में से पोटली निकालकर) ज़रा इन्हें देखिए।

दूसरा—वहुत खरा माल है, सेठ जी!

सेठ—(उलट-पुलट कर) जड़ाऊ हैं। कहाँ से लाये? (हाथ से तोलकर) कोई होगें वीस तोले के। (फिर चश्मे में से ध्यान से देखकर, ज़रा रोशनी की तरफ़ कर, फिर पीछे हटकर) किसका माल है? आपका! (दूसरे की ओर) आपका है? कहाँ से लाये?

पहला—ये नागोदा की रानी साहवा के कड़े हैं। यह उनके प्राइवेट सेक्रेटरी हैं। वह उनका सिपाही है। रानी एक वहुत ज़रूरत से कड़े वेचने पड़ रहे हैं। रानी साहवा को एकदम रुपये की ज़रूरत है। सात हज़ार चाहिए। जल्दी से निकालिए। एक वात और। किसी को कानोंकान खवर न होने पावे।

दूसरा—इसमें सन्देह की कोई वात नहीं है सेठ जी। सिर्फ़ दो महीने वाद छुड़ा लेंगे। सात हजार चाहिए।

सेठ—सो तो ठीक है, सो तो वो ट्ठीक है। रानी साव क्या पराई हैं? पर......सात हज़ार का माल?

पहला—क्या कहा, सात हजार वहुत हैं! वारह हज़ार के कड़े हैं सेठ जी? दस हजार तो हँसता हुआ कोई भी दे देगा अगर वेचें तो। वहुत ही जल्दी है। वोलिए आपको मंजूर है?

दूसरा—जल्दी करो। वहुत देर हो रही है?

आगन्तुक सिपाही—जल्दी करो सिकट्टरी साहव! नहीं रानी साहव नाराज़ हो जायँगी! जल्दी करो।

सेठ—पर इनकी ज़मानत कौन देगा कि ये रानी के ही कड़े हैं? चोरी का......।

पहला—(घूरकर) क्या कहा? ज़रा सँभलकर वात कीजिए। (अपने साथी की ओर इशारा करके) प्राइवेट सेक्रेटरी है ये राजा साहव नागोदा के, और यह साथ में उनका सिपाही है। वोलो जल्दी। वोलो सेठ जी!

सेठ—सो तो वात ठीक है। इतने वड़े सिकत्तर साव पर कौन सक करे है? पर हम कहे हैं, पाँच हज्जार छोड़ कर दस हज्जार ले जाओ, पर वात ये है कि माल तो सात हज्जार का है नहीं। तीन हज्जार दे सकूँ हूँ। वोलो दूँ। (सेठ फिर उन्हें देखने लगता है) मोती......

पहला—(हाथ वढ़ाते हुए) लाइए सेठ जी! लाइए! आपसे काम नहीं वनेगा। हमें देर हो रही है। (उठने का उपक्रम करते हुए)

दूसरा—देर हो रही है। माल तो देखो। गिर्वी ही तो रख रहे हैं। बेच तो नहीं रहे।

सेठ—सो तो वात वो ठीक है, माल तो खरा है। पर ठहरो तो। चार हज्जार लोगे। चार हज्जार भौत है। कोई भी न देगा। (दोनों उठते हुए) अच्छा लाओ, रानी साव से जान-पहचान हो जायगी, घर का मामला है। जाओ मत। तो भी यह नहीं मालूम, माल कैसा है। कसौटी पर कसने से भी माल उन्नीस निकले है।

पहला—लाइए चलें (हाथ वढ़ाता है)

सेठ—पहले तो यही देखना है, सोना खरा है अथवा नहीं। देखने से तो ठीक माल्म पड़े हैं। (फिर ग़ौर से देखकर) चमक वहुत है।

जान—सात हज़ार देना है सेठ जी! हमको देर हो रही है (तो सोना हाथ में लेकर) चलो भाई! उसी को दे दें!

सेठ—लाओ सात हज्जार ही सही। (हाथ में लेकर) कुछ हल्का-हल्का सा लगे हैं।

साथी—ऐसा तो आपको चालीस के भाव भी न मिलेगा सेठजी! लाइए चलें।

सेठ—(सेफ़ में से थैली निकालकर सौ सौ के नोट देता है। फिर देखकर) रुक्का!

जान—(रुपये लेकर) ज़रा जल्दी में हैं रुक्का फिर लिख देंगे सेठ जी! (जाते ही सेठ उन कड़ों को देखने लगता है।)

पठान—क्या मंशा है सेठ?

सेठ—(गहना हाथ में लिये हुए) तो तुमको कोई जानता है?

पठान—हम मुसीवत में हैं। पठान कभी झूठ नहीं बोलता।

मुनीम—यह तो ठीक है, पठान झूठ नहीं वोलते। जो लेते हैं, लौटा देते हैं।

सेठ—(सोचकर) ये तो हमें मालूम है कि पठान झूठ नहीं बोलते, पर व्याज क्या होगा!

पठान—जो चाहो लगा लो, मैं एक एक पाई लौटा दूँगा।

सेठ—आना रुपया व्याज लगेगा।

पठान—(चौंककर) आना रुपया! वहुत सूद है। अच्छा!

सेठ—लिखो रुक्का। (काग़ज़ हाथ में देकर दवात-क़लम उधर सरकाता है। छपे हुए फ़ार्म पर पठान रुक्का लिखता है और सेठ के हाथ में देता है)।

सेठ—क्या लिखा ह?

पठान—जो तुमने कहा।

सेठ—एक आना रुपया व्याज लिखा है?

पठान—जी।

सेठ—(रुक्का पेटी में रखता हुआ थैली से निकालकर रुपये गिनकर देता है। पठान रुपया लेकर सलाम करके चल देता है। मुनीम की ओर देखकर) रुपया लौटे तब है। जुआ खेला है।

मुनीम—पठान ईमानदार होते हैं। लौटा देगा। मालूम तो ऐसा ही होता है। ये लोग ईमानदार होते हैं।

सेठ—पचास रुपये का ही तो खेल है! सूद भी कम नहीं है।

मुनीम—हाँ, सूद तो वहुत लगाया है!

सेठ—रुपया धूल में फेंकने के लिए एक सन्तोप तो हो।

मुनीम—हाँ (कहकर फिर काम में लग जाता है। सेठ कड़े की जोड़ी निकालता है और ग़ौर से देखने लगता है।)

(महादीन पाण्डे का प्रवेश)

महादीन—जैराम जी की सेठ जी!

सेठ—जैराम जी की। मुनीम जी, पाण्डे जी का हिसाब तो निकालो!

महादीन—सेठ जी, मैं हिसाब करने नहीं आया हूँ।

सेठ—(घूरकर) तो फिर?

महादीन—पचास रुपया और चाहिए।

सेठ—कोई चीज लाये हो?

महादीन—चीज तो नहीं है, पर पाँच सौ की चीज़ तीन सौ में दी है, उसी के मध्ये पचास और माँगने आया हूँ।

सेठ—(चश्मे से घूरकर) वह अपनी चीज ले जाओ पाण्डे जी। हमारे रुपये हमें दे जाओ! ये तो नहीं कहते कि इतना खोटा माल तुम्हारा विश्वास करके तीन सौ में रख लिया। जमाना ही खराब है। किसी के साथ नेकी करने के दिन तो रहे ही नहीं। एक साल हो गया। बारह तो ब्याज के ही हो गये। माल ही कौन खरा है?

महादीन—पिछले एक साल से पत्नी बीमार है, कोई आराम नहीं आ रहा है। डाक्टर कहता है, एक्सरे कराओ। अब उसके शरीर पर एक छल्ला भी नहीं। सिर्फ़ पचास चाहिए। डाक्टर से अभी आने को कह आया हूँ।

सेठ—वैद्य का इलाज क्यों नहीं करते? हम तो वैद्य का इलाज करावे हैं—सस्ता और देसी।

महादीन—उसे तपेदिक़ हो गई है।

सेठ—(डरकर चश्मे से घूरकर) तपेदिक! लेकिन पाण्डे जी, पचास तो कठिन है। माल भी हो इतने का।

(एक नौकर का प्रवेश)

नौकर—सेठ जी! आज नौमी है। सेठानी कहें हैं, ब्राह्मणों ने दुर्गापाठ किया है। उनको दक्षिणा देनी है (कुछ ब्राह्मणों का प्रवेश)

ब्राह्मण—जय हो सेठ जी।

सेठ—आओ महाराज, पालागन। आपने कितने दिन पाठ किया?

एक ब्राह्मण—नौ दिन। सम्पुट पाठ किया है।

सेठ—एक पाठ का एक आना, नौ दिन के नौ आने। ये लो दस आने। चार ब्राह्मण हैं न। दस चौक चालीस। दो रुपये आठ आने (थैली में से निकालने लगता है) मुनीम जी, लिखो घर खर्च के मध्ये दो रुपये आठ आने।

एक ब्राह्मण—यह भी कोई व्यापार है क्या? कम से कम पाँच पाँच रुपया, एक धोती, एक अँगोछा, आसन और एक एक वर्तन होता है। ब्राह्मण-भोजन अलग।

एक ब्राह्मण—चलो हम समझेंगे, यों ही काम कर दिया। सेठ जी, ब्राह्मण हैं, पूजापाठ किया है, आशीर्वाद देंगे। कम से कम चार चार रुपये तो हों।

दूसरा ब्राह्मण—हाँ सेठ जी, आपका ही दिया खाते हैं अन्नदाता। भरपूर मिल जाय। आशीर्वाद देंगे।

सेठ—महाराज सब ठीक है, पर यह भी तो देखो, समय कैसा जा रहा है। गाहकी रही ही नहीं। दस आने की जगह रुपया रुपया ले लो; वस इससे जादे नहीं मिलने का। (कुछ ब्राह्मण विना कुछ लिये ही चलने लगते हैं)

दो ब्राह्मण—चलो रामधन चलें, तुम्हें लेना हो तो लो। मैं ऐसे कंजूस सेठ से कुछ भी न लूँगा। समझेंगे, कृष्णार्पण ही किया।

सेठ—नहीं महाराज, शाप न दो, कारवार ढीला है।

नहीं तो सब तुम्हारा ही तो है। (रामसेवक से) ला जल ला। (जल हाथ में लेकर) लो महाराज!

एक ब्राह्मण—क्या दे रहे हो सेठ जी?

सेठ—पत्र-पुष्प महाराज! दक्षिणा तो-सरधा की होवे है महाराज!

एक ब्राह्मण—मैं नहीं लूँगा।

दूसरा ब्राह्मण—मैं भी नहीं लूँगा।

सेठ—नहीं तो जाओ। मैं दस दस आने से जादे नहीं दे सकता। रुपया क्या मुफ़्त में आवे है।

एक ब्राह्मण—जो मिलता है, क्यों छोड़ते हो? लो न!

बाक़ी सब ब्राह्मण—नहीं हम नहीं लेंगे। (सब चले जाते हैं)

सेठ—नहीं लोगे तो जाओ। रामसेवक, कोई ब्राह्मण जाता-आता हो तो देखियो। चार आना दक्षिणा दे देंगे। (गम्भीर होकर) न कोई यह देखे है कि किस तरह रुपया कमाया जाय है, गाहकी तो रही ही नहीं है, खर्च ही खर्च है। सेठानी को भी सदा पूजा-पाठ की पड़ी रहे है। (नौकर से) देख रे, घर में कोई पूजा-पाठ की जरूरत नहीं है। सेठानी से कह दीजो पैसा देखकर खर्च किया करे।

महादीन—सेठ जी, मुझे क्या आज्ञा है? देर हो रही है।

सेठ—देख तो रहे हो, कितना खर्च हो रहा है। पचास कैसे दे दूँ? कोई हिसाब भी तो हो।

महादीन—पाँच सौ की चीज़ में क्या पचास भी नहीं दे सकते? सेठ जी, आज साल भर से स्त्री बीमार है, नौकरी थोड़ी है। तनख़ाह आते ही सब चुटपुट हो जाती है। वाल-बच्चे हैं, बीमारी का ख़र्च है। जो कुछ था, सब जोड़जाड़ कर तुम्हारे पास रख दिया। अब कहाँ जाऊँ सेठ जी?

सेठ—तो महाराज घरवाली को बीमार ही क्यों होने दी हो? पहले से फिकर करनी थी।

महादीन—बीमारी क्या हाथ की बात है सेठ जी? कौन चाहता है कि घर में कोई बीमार पड़े?

सेठ—वैदगी करते। धर्मार्थ-औषधालय से दवा ले आया करो। सेठ अमीचंद का हस्पताल अपना ही है। कहो तो पर्चा लिख दूँ। हमारी कही न मानेंगे। (कड़े निकालकर और फिर देखकर) माल तो खरा है।

महादीन—सेठ जी! अब धर्मार्थ-औषधालयों की उसकी अवस्था नहीं रही। डाक्टर ने कहा है अँतड़ियों में बुखार जम गया है। एक्स-रे कराओ।

सेठ—तपेदिक है न! तपेदिक तो कभी अच्छी होवे नहीं है। क्यों रुपया ख़राब करो हो पाण्डे जी। हम तो सदा वैदगी करावे हैं। पिछले दिनों छोटीबाई बीमार हुई। वैद ने कहा, गंगाजल पिलाओ ये अच्छी नहीं हो सके हैं। हमने तो गंगाजल ही पिलाया। थोड़े दिनों वाद मर गई।

महादीन—क्या दुनिया में रुपया ही सब कुछ है? मनुष्य का जीवन आशा पर अवलम्बित है। जब तक साँस तब तक आस। मैं घर बेच कर उसका इलाज कराऊँगा। तुम इस समय मुझे पचास दे दो। उस गहने में काट लेना।

सेठ—ये तो तुम्हारी ख़ुसी है पाण्डे जी। हाँ, इलाज तो कराना ही चाहिए। और मकान तो हम भी रखे हैं। कितने का होगा तुम्हारे ख्याल में? साफ़ बात तो यह है कि उस गहने में अब तुम्हारा कुछ भी बचे नहीं है। वैसे मैं तुम्हें दो सौ दे सकूँ हूँ।

महादीन—(खीझ कर) मकान के एवज़! पाँच सौ का माल तीन सौ में रखकर भी तुम्हारा पेट नहीं भरा। उस पर ब्याज दर ब्याज की धमकी देकर तुम एक मुसीबत में पड़े हुए की मदद भी नहीं कर सकते। अब मैं कहाँ जाऊँ? स्त्री की अवस्था दिन पर दिन ख़राब होती जाती है. बीमारी का इलाज नहीं करा सकता। सेठ, तुममें कुछ भी मनुष्यत्व नहीं है। दुष्ट!

सेठ—पाण्डे जी गाली मत दो। खैरात तो नहीं बाँटते। हम तो व्यापारी हैं। (कड़ों की जोड़ी फिर हाथ में लेकर) मोती तो खरे हैं। मुनीम जी, तननुखदास का क्या हिसाब है? नसीमबकस की गिर्वी की म्याद आज है न।

मुनीम—आज ही सेठ जी।

महादीन—तो मैं जाऊँ सेठ जी ।

सेठ—हाँ महाराज, बोलो मैं क्या करूँ? कहाँ तक दान किया जाय । तुमसे पहले एक पठान आ चिपटा । पचास ले के ही मरा । कहाँ तक दूँ । कोई गुँजायश हो तो । मुझे कोई इनकार है नहीं । दस ले जाओ ।

महादीन—दस का क्या करूँगा ? तुम रक्खो । हाय, कितनी आशा लेकर आया था । तुम इतने निर्दय क्रूर हो, यह नहीं मालूम था । इस दरिद्रता के कारण स्त्री का इलाज नहीं करा सकता । मनुष्य इतना नीच है, स्वार्थी है, पतित है कि वह एक पैसे की मदद भी नहीं कर सकता । सेठ, मेरी स्त्री बिना इलाज के भले ही मर जाय, बिना ओषधि के उसके प्राण निकल जायँ, लेकिन तुम पाँच सौ की चीज़ तीन सौ में रखकर ऊपर एक पैसा भी देने को तैयार नहीं हो । (आँखों में आँसू भर) यह व्यापार नहीं है, यह हत्या है, लूट है । दिन दहाड़े डाका है । तुम्हें भले ही चकमा देकर कोई लूट ले, पर तुम मानवता, कृपा, दया और धर्म के नाम पर किसी की मदद नहीं कर सकते । (एकदम आँसू पोंछता हुआ बाहर निकल जाता है)

सेठ—(रामसेवक से) राधेश्याम के घर जा और उनसे रुपया वसूल करके ला । दिन भर बैठा रहता है, न काम न धन्धा ।

मुनीम—सेठ जी, पचास महादीन पाण्डे को दिये तो जा सकते थे । विचारे की बड़ी बुरी हालत है । मेरी तो आँखों में आँसू आ गये । आपके पिता जी बड़े दयालु थे । साल में तीन-चार सौ तो ऐसे ही बाँट देते थे ।

सेठ—(घूरकर) मैं व्यापारी हूँ, वैसे लेना-देना अलग चीज़ है । पर मुनीम जी, तुम्हें यह सब कुछ भी कहने का अधिकार नहीं है । समझे ! तुम अपना काम करो । कह दिया कि पठान को पचास रुपये दे दो । लौटा देगा । जब घर का माल ही खोटा तब परखने-वाले का क्या दोस ? तुम न कहते तो मैं क्यों देता ? याद रक्खो अगर पठान रुपये लौटाकर न लाया तो तुम्हें देने होंगे रुपये ।

(पुलिस के दो सिपाही, एक थानेदार के साथ और कड़ोंवाला उन आदमियों के साथ)

सेठ—(उन सबको देखकर घबराता हुआ उठ कर खड़ा हो जाता है) आइए सरकार !

थानेदार—(डट कर बैठता हुआ) सेठ लाभचंद की यही दूकान है ?

सेठ—(जिसके गले का ख़ून सूख गया है) ज ज ज जी ।

थानेदार—इन दोनों को पहचानते हो ?

सेठ—जी सरकार ! पानी-आनी लावे सरकार ।

थानेदार—ये तुम्हारी दूकान पर कोई चीज़ रख गये हैं ?

सेठ—(अचकचाकर) जी हुज़ूर ।

थानेदार—कड़ों की जड़ाऊ जोड़ी ?

सेठ—जी ।

थानेदार—वह चोरी की है । लाओ, निकालो और चलो सुपरिण्टेण्डेण्ट साहब के पास ।

सेठ—(सुन्न-सा होकर) चोरी की ?

थानेदार—हाँ, चोरी की है । निकालो ।

सेठ—सरकार मैं बेकसूर हूँ ।

थानेदार—सभी बेक़सूर होते हैं । तुम्हें मालूम है, चोरी की चीज़ है । रखनेवाले को क्या सज़ा मिलती है ? वह भी चोर समझा जाता है । निकालो जल्दी । इन्होंने कितने को बेची ?

सेठ—सात हजार को ।

थानेदार—दस हज़ार का माल सात हज़ार में रख लिया । फिर भी अपने को निरपराध कहते हो । चलो ।

सेठ—(जोड़ी निकालकर हाथ में लेता है)

थानेदार—लाओ इधर, दिखाओ ।

सेठ—(पास जाकर) हज़ूर, मेरा कसूर नहीं है । मैंने तो रुपया देकर माल रक्खा है । (चुपके से) आप भी कुछ !

थानेदार—रिश्वत देते हो सेठ जी । यह नहीं हो सकता । चलो । सुपरिण्टेण्डेण्ट साहब के पास चलना होगा ।

सेठ—इन्होंने कहा था कि हम नागोदा के राजा के आदमी हैं । इसलिए मैंने रख ली । क्यों मुनीम जी ?

मुनीम—हाँ सरकार ।

थानेदार—मैं कुछ नहीं जानता । चलो । रामसिंह ले चलो । (सिपाही सेठ को पकड़ने को आगे बढ़ते हैं । सेठ बेइज़्ज़ती के डर से अपने आप चलने को तैयार हो जाता है)

सेठ—हाय राम ! (सब बाहर निकल जाते हैं) पर्दा गिरता है ।

दूसरा दृश्य

(सुनसान में सड़क के किनारे एक कोठी का बाहरी भाग । बरामदा है । बरामदे में स्टिकस्टेण्ड रक्खा है । बेंत की कुछ कुर्सियाँ रक्खी हैं । एक तरफ़ सड़क की ओर एक लम्बा बेंच रक्खा है । बरामदे के दोनों ओर के दो दरवाज़ों में कुछ गमले रक्खे हैं । बाहर दालान में एक बेंत की कुर्सी पर सेठ बैठा है, पास ही एक आदमी भी है, जिसके सिर पर खाकी पगड़ी है, शरीर पर फ़ौज का नीलाम में ख़रीदा हुआ एक कोट और वैसा ही ख़ाकी पजामा है । आदमी अन्यमनस्क-सा है । सेठ पहले तो कुछ सोचता दिखाई देता है, फिर कुछ घबराकर उठता-सा है, जैसे ही वह उठने लगता है वैसे ही वह आदमी उसकी ओर देखने लगता है, सेठ उसकी इसी भावभंगी को देखकर फिर बैठ जाता है)

सेठ—(ऊबकर) अब मैं कब तक बैठा रहूँ ? दो घंटे होने आये । कोई भीतर से आता ही नहीं है । क्या हुआ ? साहब को बड़ी देर हो गई । थोड़ी देर पहले एक सिपाही इधर आया था, फिर मुझे देखकर अन्दर चला गया । इधर मैंने बड़ी भूल की । महादीन को पचास दे देता तो उसकी औरत शायद बच जाती । बड़ा बुरा किया । पचास की ही तो बात थी । पाँच सौ का तो खरा माल है । तीन सौ ही तो दिये हैं । लाभचंद ! तूने बुरा किया । पर मैं भी कैसा पागल हूँ व्यापार तो व्यापार ही है । इस तरह दया दिखाई जाय तो घर ही न लुट जाय । दया और व्यापार की तो दुश्मनी है । नसीमबकस के कड़े तो अब हमारे हो चुके । वह अब क्या ले सके है । अब उसके आने पर भी कुछ नहीं हो सके है । यह भी अच्छा ही हुआ जो मैं यहाँ आ गया । शाम तो हुई समझो । आज शाम तक ही तो... आज की तारीख़ आख़िरी तारीख़ है । अच्छा हुआ । लोग कहे हैं, ईश्वर जो करे है, अच्छा ही करे है । मुनीम तो भला देगा भी क्या । और वह दे ही कैसे सके है । (जेब टटोल कर) चाभियों का गुच्छा तो मेरे पास है । पर बहुत देर होने आ रही है । कोई आवे क्यों नहीं है । साहब पूछेगा तो कह दूँगा, साहब, मैं क्या जानूँ । मुझे क्या मालूम कि चोरी का माल है । न होगा तो दो-चार जुरमाना हो जायगा । पर अभी कोई आया क्यों नहीं । अगर मैं यहाँ से उठकर चला जाऊँ तो मेरा कोई क्या करे । (उस आदमी की ओर देखकर) यह अजीब आदमी है । ज़रा भी तो नहीं बोले है । अरे भले मानुस इतनी चुप्पी किस काम की । ठीक तो है । मैं ही कौन इससे बोलूँ हूँ । कोई आवे क्यों नहीं है, क्या करूँ । ज़ोर से बोल भी तो नहीं सकता । साहब ही निकल आवे तो । पर अब तो बहुत देर हो रही है । ये लोग मुझे थाने ही क्यों नहीं ले गये । कोई भीतर से निकले ही नहीं है । (सामने दरवाज़े की ओर देखकर) वह पर्दा तो हिला, शायद कोई आ रहा है, आया, तैयार होकर बैठ जाऊँ । कहूँगा साहब, मेरा इसमें क्या कसूर है, मैंने कोई चोरी थोड़े ही की है । अरे यह क्या, यह तो बिल्ली है । साहब की बिल्ली है । नहीं साहब की तो हो नहीं सकती । अरे भाई सुनते हो !

आदमी—(देखकर भी चुप बैठा रहता है)

सेठ—देखो, सुनो । साहब कब आवेंगे ?

आदमी—(चुप)

सेठ—(क्रोध में आकर) तुम बहरे हो क्या ?

आदमी—अपने कान की तरफ़ इशारा करता है, मानो सुन नहीं सका । अ...अ...अ

सेठ—(घबराकर एकदम उठता है ज़ोर से) साहब कब आवेगा ? थानेदार कहाँ गया ?

आदमी—अ...अ...अ...(हाथ से मना करता है । फिर कान को हाथ लगाकर) अ...अ...ब...ब...।

सेठ—(बेचैन होकर) क्या कहता है ? कुछ समझ में नहीं आता । पागल है । गूँगा है, बहरा है । सुप-

रेण्टेण्डेण्ट साहब ! ओ सुपरेण्टेण्डेण्ट साहब ! अरे थानेदार साहब ! (एकदम भीतर जाने लगता है। इसी बीच में एक तरफ़ से एक आदमी हाथ में खुरपा लिये आता है)

आगन्तुक—क्या है ? काहे चिल्लावत हो ?

सेठ—साहब भीतर से कब आवेंगे ?

आगन्तुक—कौन साहब ?

सेठ—सुपरेण्टेण्डेण्ट साहब ! थानेदार साहब और दो सिपाही जो मुझे यहाँ लाये हैं।

आगन्तुक—यहाँ कहाँ हैं सुपडुण्ट साहब ? यह तो खाली कोठी है।

सेठ—हाय, मैं लुट गया ! वह थानेदार कहाँ है, सिपाही कहाँ हैं ?

आगन्तुक—हमका जानी ? हम तो बाहर गये रहे न, अब ही आये हैं।

सेठ—यह कौन है ? क्या यह सिपाही नहीं है उनका ?

आगन्तुक—अरे जे तो हमार भाई है, बहिरा है, सुन नाहीं सकत । का बताई माली का काम ससुर बड़ा बुरा, दिन-रात पित्ता मारि के काम करौ और फिर भी कछु मिलत नाहीं। तूका चाहत हे हो।

सेठ—क्या यह सुपरेण्टण्डेण्ट साहब की कोठी नहीं है ?

आगन्तुक—नाहीं। काहे ?

सेठ—हाय मैं लुट गया, सात हज़ार घर का और कड़े भी ! (एकदम दौड़कर भीतर की ओर भाग जाता है)

आगन्तुक—(इशारे से) को है जे !

आदमी—(हाथ से संकेत करता है और दो रुपये दिखाता है)

आगन्तुक—कहाँ से आये ?

आदमी—(उन पहले आदमियों की ओर संकेत करता है कि वे दे गये हैं, और सेठ की ओर इशारा करता है कि इसे रोके रहना। फिर इशारा करता है कि उस सेठ को क्यों जाने दिया।)

सेठ—बाहर आकर (घबराहट से) सुपरेण्टण्डेण्ट। थानेदार। हाय ! मैं लुट गया। हाय ! मालूम होता है, वे दोनों आदमी-सिपाही, थानेदार सब एक ही थे। (एमदम कुर्सी पर गिर जाता है। पर्दा गिरता है।

प्रभात

लेखिका, श्रीमती रामकुमारी चौहान

नील नभ पर जब उषा ने, राग रंजित रंग फेरा,
कंज की मुकुलित कली ने, प्रेम का सौरभ बिखेरा ॥१॥

अलि, अवलि हृदयस्थली में, मुग्ध हो जब डोलती थी,
और कोकिल मधुर-मादक रस, हृदय में घोलती थी।
हिमकणों ने कमलदल पर कर लिया दो क्षण बसेरा ॥२॥

रश्मि आई, द्रुमदलों से सकुच कुछ-कुछ झाँकती-सी,
चिर निराशा में विरह की मिलन आशा आँकती-सी।
उर्मियों के मृदुल उर में पवन बैठा डाल डेरा ॥३॥

विधुर दुख की यामिनी ने हृदय का दीपक जलाया,
उडुगणों ने मौन मुख से जब विरह का गीत गाया।
स्वर्णमय विकसित हुआ जब मंजु जीवन का सवेरा,
मुग्ध-सा तब प्रांत में प्रकटित हुआ प्राची चितेरा ॥४॥

क्या उर्दू-काव्य इस्लाम-विरोधी और राष्ट्र-द्रोही है ?

लेखक, पण्डित वेंकटेशनारायण तिवारी

(१)

दिसम्बर, १९३९, की 'सरस्वती' में मेरा जो लेख प्रकाशित हुआ था, उसमें मैंने पाठकों को वचन दिया था कि जनवरी, १९४०, की 'सरस्वती' में मैं मुस्लिम लीग की पीरपुर-कमिटी के इस दावे की विवेचना करूँगा कि मुस्लिम-साहित्य इस्लामी कल्चर या संस्कृति का प्रतिबिम्ब है। इस कथन की सचाई की जाँच के लिए हमें दो-तीन प्रश्नों पर विचार करना होगा। पहला प्रश्न यह है कि क्या संसार में कोई ऐसी भी संस्कृति है, जिसे हम इस्लामी संस्कृति कहें ? दूसरा प्रश्न है, क्या भारत में कोई ऐसी संस्कृति मौजूद है, जिसे हम इस्लामी कल्चर या संस्कृति कह सकते हैं ? तीसरा सवाल है, क्या उर्दू-साहित्य इस कथित कल्चर या संस्कृति का प्रतिबिम्ब है ? यह याद रखने की बात है कि इस्लामी कल्चर की आधार-शिला मुसलमानों का पवित्र धर्मग्रन्थ, 'क़ुरानशरीफ़', ही हो सकता है। अतएव, जो साहित्य 'क़ुरानशरीफ़' में प्रतिपादित उपदेशों और सिद्धान्तों का तिरस्कारपूर्वक खंडन करता हो या उनकी खिल्ली उड़ाता हो क्या वह साहित्य इस्लाम-धर्म का प्रतिबिम्ब और समर्थक कहा जा सकता है ? मैं आगे चलकर सिद्ध करूँगा कि इस देश में इस्लामी कल्चर नाम की कोई संस्कृति नहीं है। मैं यह भी सिद्ध करूँगा कि उर्दू-काव्य इस्लाम-विरोधी है। मेरा यह भी दावा है कि वह न केवल इस्लाम-विरोधी है किन्तु अभारतीय होने के कारण राष्ट्र-द्रोही भी है। यदि ये तीनों बातें मैं सिद्ध कर दूँ तो पाठकों को इस परिणाम तक पहुँचने में कोई कठिनाई न होनी चाहिए कि उर्दू-काव्य की इस समय जो हिमायत की जा रही है वह सर्वथा भ्रान्तिमूलक और देश के भावी उत्थान के लिए हानिकारक है।

आइए, पहले इस बात पर हम विचार करें कि संसार में विशुद्ध इस्लामी कल्चर नाम की कोई कल्चर है भी, या नहीं ? किसी देश-विशेष की कल्चर या संस्कृति अनेक कारणों की पारस्परिक क्रियाओं और प्रतिक्रियाओं के सामूहिक रूप में सनातन द्वंद और सहयोग से उत्पन्न उस विशिष्टता का नाम है जो उस देश के निवासियों की प्रकृति और प्रवृत्ति को अनूठा और अनोखा बना देते हैं। देश-विशेष की भौगोलिक स्थिति और उसके ऐतिहासिक विकास का क्रम, विदेशों के साथ उसका परिवर्तनशील सम्पर्क और संघर्ष, उसकी धार्मिक क्रान्तियाँ, उसकी साम्पत्तिक गति-विधि तथा ऐसे ही दूसरे अनेक कारणों से उस देश-विशेष के निवासियों के मानसिक और नैतिक दृष्टिकोण में जो विशेषता आ जाती है, उसी अनोखेपन को उस देश की कल्चर या संस्कृति के नाम से पुकारते हैं। इँगलैंड या फ़्रांस या जर्मनी की संस्कृति को ईसाई-संस्कृति कहना उसके केवल एक पहलू पर जोर देना है। इसी तरह इस्लामी मुल्कों की संस्कृति भी एक नहीं है, क्योंकि विभिन्न कारणों से विभिन्न देशों पर विभिन्न प्रभाव पड़ा करते हैं। टर्की की संस्कृति एक है, अरब की दूसरी। अफ़ग़ानिस्तान और ईरान में यद्यपि पड़ोसी का सम्बन्ध है, परन्तु दोनों देशों की संस्कृतियों में व्यापक अन्तर है। जब टर्की, अरब और ईरान में इतना व्यापक अन्तर है यद्यपि सभी एक ही पैग़म्बर के अनुयायी हैं, तब यह कैसे माना जा सकता है कि हिन्दुस्तान के सब प्रान्तों के सब मुसलमानों की संस्कृति समान है और उनकी संस्कृति का निर्माण एकमात्र इस्लामी आधार पर हुआ है ? पंजाब के हिन्दू, सिक्ख और मुसलमान में कहीं ज़्यादा समानता है, बमुक़ाबिले मद्रासी और बंगाली मुसलमान के। जो मुसलमान जिस प्रान्त में रहता है, वह उस प्रान्त की जीवन-समष्टि का उसी तरह से अंश है, जिस तरह से गंगा जी का एक बूँद गंगा जी का अंश है। यह कहना कि केवल मुसलमानियत के बल पर, युक्त-प्रान्त के मुसलमानों की युक्तप्रान्त के अन्य प्राणियों से, विभिन्न संस्कृति है, सरासर ग़लत है। जो थोड़े से मुसलमान सदियों में बाहर से हिन्दुस्तान में आकर

वसे, उनकी सन्तानें हिन्दुस्तानी समाज में घुल-मिल गईं। उनमें भी हिन्दुस्तानियत का रंग चढ़ गया। वे भी हिन्दुस्तानी के नाम से बिकने लगे। वे कहीं जायँ, कहीं बसें; चाहें जो करें या चाहें जो कहें, पर दरअस्ल वे हिन्दुस्तान के हैं, वे हिन्दुस्तानी हैं; और अपनी हिन्दुस्तानी संस्कृति को भुलाकर यदि वे केवल इस्लामियत पर ज़ोर देना चाहते हैं तो वे अपने को संसार के सामने उपहास-जनक बनाते हैं। चीन के मुसलमान उसी तरह चीनी हैं, जिस तरह चीन के दूसरे मतावलम्बी चीनी हैं। जापान के मुसलमान उसी तरह जापानी हैं, जिस तरह जापान के और मतावलम्बी। इँगलिस्तान का यदि कोई रहनेवाला मुसलमान हो जाय तो उसकी संस्कृति क्या बदल जायगी या क्या वह इँगलैंड में इस बात का दावा पेश करने की जुरअत करेगा कि उसकी संस्कृति इँगलिश नहीं रही, अब वह इस्लामी हो गई है। वास्तव में मुसलमान राजनीतिज्ञों ने अपनी भेद-भावना के ऐतिहासिक अस्तित्व को सिद्ध करने के लिए जहाँ अनेक बेतुके तर्कों से काम लिया है, वहाँ उन्होंने इस्लामी कल्चर की दोहाई देना भी अपना फ़र्ज़-मन-सबी समझा। मज़हब एक चीज़ है, तमद्दुन या संस्कृति दूसरी। भारत के सब मुसलमानों का मज़हब भी तो एक नहीं है। उदाहरण के लिए, मुसलमानों के दो प्रसिद्ध सम्प्रदायों ही को ले लीजिए—शिया सम्प्रदाय और सुन्नी सम्प्रदाय। इनके मौलिक सिद्धान्तों में ज़मीन-आसमान का फ़र्क है। शिया-संस्कृति की बुनियाद में ईरानियत है, सुन्नियत की जड़ में अरबियत। इन दो के अतिरिक्त, इनमें वहाबी भी हैं, अगाख़ानी बुहरे भी हैं, क़ादियानी भी हैं। मुसलमानों में इसी तरह के अनेक फ़िर्क़े हैं। उनमें इतने गहरे आपसी भेद हैं कि उनके बीच में समानता का सिद्धान्त ढूँढ़ निकालना उतना ही कठिन है, जितना हिन्दू-सम्प्रदायों के बीच में मौलिक एकता को ढूँढ़ निकालना दुस्तर है। ऐसी दशा में यह कहना कि भारत के सब मुसलमानों की एक संस्कृति है और उस संस्कृति का नाम इस्लामी संस्कृति है, वास्तव में एक निःसार, कपोल-कल्पित प्रपंच-मात्र है। हिन्दुस्तान में न तो शैव संस्कृति है, और न वैष्णव; न आर्य है, न द्रविड़; न इस्लामी संस्कृति है और न ईसाई संस्कृति। हिन्दुस्तान में जो संस्कृति है, उसका तो नाम है हिन्दुस्तानी संस्कृति। जिसके विकास, परिस्फुटन, परिष्कार, परिमार्जन और संवर्धन उन अनन्त युगों की सामूहिक प्रवृत्तियों का परिणाम है, जिनकी प्रेरणा से भारत, अनादि के गर्भ से उत्पन्न होकर ऐहिक लीला के रंगमंच पर अपने भाग्य का नाटक खेलता चला आया है। हमारा भूगोल, हमारा इतिहास, हमारा साहित्य, हमारे कवियों की कवितायें, हमारे मुनियों के मानसिक उडान और हमारे शिल्पी और कलाविदों की आश्चर्यजनक कलायें, हमारे धर्माचार्यों के उपदेश और हमारे महापुरुषों के जीवन-वृत्त, इन सबने उस मानसिक और आध्यात्मिक दृष्टिकोणों के सृजन में भाग लिया जिनकी समष्टि को आज दिन हम हिन्दुस्तानी संस्कृति या कल्चर कहते हैं। इस रूहानी विरासत या बपौती से इनकार करना अगर कोई चाहे तो वह ऐसा कर सकता है, लेकिन इनकार करने से किसी का कुछ बनता-बिगड़ता थोड़े ही है। पराधीन, पददलित, पर-मुखापेक्षी जाति के लोग अपनी मौजूदा नैतिक दरिद्रता की अनुभूति को छिपाने की ग़रज़ से भले ही अपने को दूसरों के नाम से पुकारने की चेष्टा करें, लेकिन उन्हें यह न भूलना चाहिए कि एक मुसलमान कवि का कथन उन पर भी उसी तरह लागू है, जिस तरह वह लागू है इस देश के दूसरे रहनेवालों पर।

(२)

पीरपुर-कमिटी के बहुत-से मुसलमान सदस्य 'अनीस' के नाम से परिचित होंगे। 'अनीस' की गणना उर्दू के महाकवियों में होती है। इनका जन्म-वर्ष सन् १८०१ ई० और मृत्यु-वर्ष सन् १८७३ ई० है। आपका पूरा नाम था मीर बबर अलीउर्फ़ 'अनीस'। लखनऊ के रहनेवाले थे। इन्हीं 'अनीस' ने जिस प्रकार उर्दू-जगत् में अपनी चमत्कारिणी कविता के कारण ख्याति पाई है, वैसी ही प्रसिद्धि उन्हें हिन्दी में भी बहुत उच्च दर्जे की कविता करने से प्राप्त हुई है। उनका एक छन्द हम नीचे उद्धृत करते हैं:—

"सुनो, हो विटप, हम पुहुप तिहारे अहैं;
राखियो हमें तो शोभा रावरी बढ़ावेंगे।
तजियो हरषि कै तो विलग न मानें कछू,
जहाँ-जहाँ जै हैं तहाँ दूनों जश गावेंगे॥
सुरन चढ़ेंगे, नर-सिरन चढ़ेंगे फेरि,
सुकवि 'अनीस' हाथ-हाथन बिकावेंगे।
देस में रहेंगे, परदेस में रहेंगे,
काहू वेष में रहेंगे, तऊ रावरे कहावेंगे॥

मुस्लिम लीगी मुसलमानों को यह न भूलना चाहिए कि वे चाहे देश में रहें या परदेश में रहें, वे काहू वेष में रहें, लेकिन कहायेंगे भारत ही के। भारत के बाहर जब वे जायँगे तब उन्हें ग़ैर मुल्कों के मुसलमान 'हिन्दी' के नाम से पुकारते हैं। कौआ न तो हंस हो सकता है और न हंस कौआ, चाहे जितनी कोशिशें दोनों अपने-अपने रंग के बदलने की क्यों न करें। हिन्दुस्तान के मुसलमान हिन्दुस्तानी हैं, और उनका कल्याण इसी में है कि वे अपने को हिन्दुस्तानी समझें और अपनी कल्चर को भी हिन्दुस्तानी कल्चर मानें। इन मुसलमान दोस्तों को 'इक़बाल' की इस दर्दभरी आह को न भूलना चाहिए:—

'वाइज़ का वआज़ छोड़ा, छोड़े तेरे फ़िसाने।'

मुल्क के मुसलमानों को समझ लेना चाहिए कि अब मुल्क की पुकार है, समय की प्रेरणा है, युग का तक़ाज़ा है, कि हम 'इक़बाल' की तरह सच्चे दिल से यह कहने लगें:—

"पत्थर की मूरतों में,
समझा है तू खुदा है,
ख़ाके-वतन का मुझको
हर ज़र्रा देवता है।"

अगर ऐसा वे और हम न करेंगे, अगर अपनी-अपनी डफ़ली अलग बजाते रहेंगे और अलग-अलग अपने बेसुरे राग गाने में मस्त झूमेंगे तो 'इक़बाल' का यह अभिशाप हमें और आप दोनों को मिट्टी में मिला देगा:—

"न समझोगे तो मिट जाओगे
ऐ हिन्दोस्ताँवालो।
तुम्हारी दास्ताँ (कहानी) तक भी,
न होगी दास्तानों में॥"

इस्लामी कल्चर! इस्लामी कल्चर! इतिहास में इसका कहीं प्रमाण नहीं, जगत् में कहीं इसकी शहादत नहीं। माना कि मज़हब का असर समाज और व्यक्ति के जीवन पर बहुत बड़ा पड़ता है, लेकिन व्यक्ति और समाज के जीवन पर एकमात्र मज़हब ही का असर नहीं हुआ करता। अनन्त दिशाओं से अनन्त शक्तियाँ हमारे जीवन को नित्य-प्रति अनन्त रूप में प्रभावित किया करती हैं। करोड़ों वर्षों बाद भी हमारे हृदयों, हमारे शरीरों, हमारे अन्तःकरणों, हमारे बहुत-से कर्मों, चेष्टाओं और भावनाओं में आज दिन भी जीता-जागता हाथ है उन आदिम पूर्वजों का, जो इतिहास-स्मृति के जागने से लाखों वर्ष पहले इस भूमंडल पर क्रीड़ा कर गये; लेकिन साम्प्रदायिक खुदग़र्ज़ी और फ़िरक़ेवाराना तंगदिली ने जहाँ हमें भाई-भाई से वैर करना सिखाया, वहाँ उसने हमें यह भी सिखाया कि झूठ को सच मान लें और सच को झूठ क़रार दें। भयंकर असत्यों में से एक यह भी असत्य है कि हिन्दुस्तान के मुसलमानों की संस्कृति महज़ इस्लामी है। जिसकी तह में केवल एकमात्र इस्लाम की प्रेरक शक्तियाँ काम किया करती हैं।

(३)

क्या यह कहना सही है, जैसा पीरपुर-कमिटी ने अपनी रिपोर्ट में कहा है, कि मुसलमानों का सारा साहित्य केवल उर्दू-भाषा और फ़ारसी-लिपि की संकुचित परिधि से सीमित है? क्या जिन मुसलमान लेखकों ने अँगरेज़ी में लिखा, उनकी कृतियाँ मुसलमानों की देश को देन नहीं हैं? जस्टिस अमीरअली के नाम को क्या हम हिन्दुस्तानी कृतज्ञता के साथ याद नहीं करते? उन्होंने इस्लाम के इतिहास पर जो अँगरेज़ी ग्रन्थ लिखे हैं, उनका क्या महत्त्व कम है? अनन्त मुसलमान कवियों और लेखकों ने बंगाली, गुजराती, हिन्दी, मराठी, आदि, प्रान्तिक भाषाओं में जो अनमोल ग्रन्थ रचे या रच रहे हैं, क्या उनका मोल पीरपुर-कमिटी की निगाह में कुछ नहीं है? यदि कमिटी-वालों को इन कृतियों पर अभिमान नहीं तो यह उनके दुर्भाग्य की बात है। जायसी, रहीम, रसखान, आलम, शेख़, नूरमुहम्मद, आदि अनेक मुसलमान-कवियों, सूफ़ियों और मुस्लिम सन्तों की अनमोल वाणियों का क्या कुछ भी दाम नहीं है? जायसी के पद्मावत की टक्कर के उर्दू-भाषा में लिखे हुए मुसलमान लेखकों के कितने ग्रन्थ मिलेंगे? लेकिन साहित्यिक असहनशीलता की कोई हद नहीं। एक दाग़ की 'चूमा-चाटी' को तो मुसलमान अपने अदबी अभिमान का स्तम्भ मानें पर वे ही जायसी के पद्मावत से अनभिज्ञ रहने ही में अपनी साहित्यिक

सर्वज्ञता का ढिंढोरा पीटते फिरें। बंगाल और गुजरात के मुसलमानों ने अपने-अपने प्रान्तों की भाषाओं में जो अद्भुत ग्रन्थ लिखे हैं, उनके गुणों को फूट-पुजारी साहित्यिक मुक्तकण्ठ से स्वीकार भी नहीं करते। संस्कृत-साहित्य के क्षेत्र में भी श्री चैतन्यदेव के दो शिष्य—रूप और सनातन—का ज़िक्र करना इस बात का प्रमाण है कि सब मुसलमानों ने सब समय में उर्दू या फ़ारसी भाषा ही में लिखना अपना धर्म नहीं समझा। क्यों पीरपुर-कमिटी ने इतना संकीर्ण दावा पेश किया और क्यों उन्होंने उन तमाम मुसलमान लेखकों की भी कृतियों पर हरताल फेरने की धृष्टता की, जब समय-समय पर मुस्लिम लेखकों ने अपनी-अपनी प्रतिभाओं की अभिव्यक्ति के लिए प्रान्तिक भाषाओं और लिपियों का आश्रय लिया, या जब मुसलमान कलाकारों ने कला के क्षेत्र में भारतीय साधनों और भारतीय आदर्शों को अपनाया, और भारतीय होने का सबसे बड़ा प्रमाण उन्होंने अपनी कृतियों को भारतीय ढाँचे में ढालकर व्यक्त किया? लेकिन पीरपुर-कमिटी के मेम्बरों ने अपनी संकुचित नीति का समर्थन कर वास्तव में अनंत मुसलमान लेखकों को दुत्कार दिया। उन लेखकों की मुसलमानियत तक से साफ़ इनकार कर दिया, जिन्होंने उर्दू को छोड़ कर और किसी भाषा या लिपि को अपनाया। मैं यह मानने के लिए तैयार नहीं कि वे मुसलमान मुसलमान नहीं, जो उर्दू बोल या लिख न सकें या अरबी लिपि जिनकी मादरी लिपि न हो। मज़हब का न तो लिपि से सम्बन्ध है, और न भाषा से। जो सर्वव्यापक धर्म है, उसके तो सिद्धान्त सनातन हैं। उनका प्रचार किसी एक भाषा या एक लिपि-द्वारा ही करना या करने का हठ करना उस धर्म की व्यापकता से इनकार करना है, उसकी सारभौमिकता के दावे का खंडन करना है। लेकिन मुँह के बिराने के लिए अक्सर लोग बेवकूफ़ी में अपनी नाक काट लेते हैं। पीरपुर-कमिटीवाले भी इसी योनि के प्राणी मालूम होते हैं। वे अपने साम्प्रदायिक विद्वेष में जायसी को भले ही भुला दें। पर इस भुला देने से हम तो उन्हें नहीं भूल सकते। वे उन सूफ़ियों को भी भुला दें, जिन्होंने दरबारी उर्दू को छोड़ कर हिन्दुस्तानी में अपने सिद्धान्तों का प्रचार किया। लेकिन हम तो उनके उपकार को नहीं बिसार सकते और अगर बिसार भी सकें तो भी बिसारना न चाहेंगे, क्योंकि उनके विचार, उनकी भावनायें, उनके उद्गार और उनकी उमंगें जातीय संस्कृति की धारा को आज भी अपने जलदान से भरती, पोषती और शक्ति-प्रदान करती हैं।

(४)

आइए, अब हम दूसरे प्रश्न की ओर मुड़ जायँ और देखें कि उर्दू-साहित्य में है क्या? साहित्य का क्या अर्थ है? उसमें वैज्ञानिक ग्रन्थ भी शामिल हैं, इतिहास, भूगोल भी शामिल है। जहाँ तक इस तरह के ग्रन्थों का सम्बन्ध है वहाँ तक यह कहना पड़ेगा कि वे तो भौतिक पदार्थों और सांसारिक घटनाओं के वर्णन, विवरण और विवेचन के संग्रह-मात्र हैं। साहित्य में उन अनन्त धर्म-ग्रन्थों और भाष्यों, आदि, की भी गणना होती है, जिनमें इस्लाम के विभिन्न सम्प्रदायों के आचार्यों ने अपने मतों का मण्डन और विपक्षी मतों का खंडन किया है। उन सबका इस लेख से कोई सम्बन्ध नहीं। साहित्य का प्रयोग संकुचित अर्थ में भी किया जाता है; और इसी संकुचित अर्थ में जब हम उर्दू-साहित्य का जिक्र करते हैं तो हमारा संकेत केवल उन ग्रन्थों की ओर है जो संकुचित अर्थ में साहित्य के अंग समझे जाते हैं। उर्दू के गद्य-साहित्य का तो सृजन पीछे हुआ है। आरम्भकाल से बहुत समय तक उर्दू-साहित्य का बोध केवल उर्दू-कवियों की कृतियों तक ही सीमित होता रहा है। पीरपुर-कमिटी ने भी उर्दू-काव्य-जगत् के महारथियों ही का विशिष्ट रूप से नामोल्लेख किया है। इसलिए यह अनुचित कसौटी न होगी यदि हम अपनी परीक्षा केवल उर्दू-शायरों ही की जाँच तक सीमित रक्खें।

उर्दू-शायरी में है क्या? भाषा की दृष्टि से या विषय की दृष्टि से वह ईरान के पतन-काल की कविता की महज़ नक़ल है। वली उर्दू के आदि कवि कहे जाते हैं। कहा जाता है कि दक्षिण से जब ये देहली गये तब इनकी शायरी को सुनकर मुसलमान अमीर-उमरा मुग्ध हो गये और सारी दिल्ली—सारी दिल्ली से मेरा अर्थ है केवल तत्कालीन उर्दू बोलनेवाले दरबारियों की दिल्ली—सारी दिल्ली वली की कविता को सुन कर लट्टू हो गई। वली ने उर्दू-कविता को जो रूप दिया, वही उसका

टकसाली स्वरूप स्थायी रूप से हो गया। इसमें कोई शक नहीं कि उर्दू-जगत् में वली ने एक इन्क़लाब कर दिया। उनके पहले जो मुसलमान कविता करते थे वे या तो फ़ारसी में लिखते थे या हिन्दी में। वली ने एक दूसरा ही मार्ग ग्रहण किया, या यों कहना चाहिए कि उन्होंने अपने लिये एक नये पथ का निर्माण किया। उन्होंने देशी शब्दों के स्थान में फ़ारसी और अरबी के अधिक से अधिक शब्दों को अपनाना शुरू कर दिया और हिन्दुस्तानी विषयों को तिलांजलि देकर ईरानी [illegible]मूनों को अपना लिया। उनके कारण और उनके प्रभाव से उर्दू-साहित्य देशीपन को गँवाकर परदेशी बन गया और उर्दू-ज़बान जनता की ज़बान न रहकर एक गोप्य भाषा हो गई।

(५)

पिछले लेख में पाठकों को याद होगा, मैंने वली को शाह शादउल्ला गुलशन की नसीहत का जिक्र किया था। वली की तमन्ना थी कि वह ईरान और तूरान में प्रसिद्धि पायें और उनके शेर ईरान और तूरानी समझे जायँ। इसी लिए, शायर 'नसरती' की तरह, उन्होंने भी 'दखिखन का किया शेर जो फ़ारसी' परदेशी ज़बान को तो वली ने पहले ही अपना लिया था, बाद में शाह शादउल्ला गुलशन की नसीहत पर कि 'इतने सारे फ़ारसी के मज़मून जो बेकार पड़े हैं उनको अपनी शायरी में इस्तेमाल कर, कौन तुमसे हिसाब माँगेगा,' वह अपनी कविता के विषय भी परदेश से चुनने लगे। भाषा विदेशी, विषय परदेशी और इसी लिए देहली के अराष्ट्रीय, जातिभ्रष्ट दरबारियों ने वली को हाथोंहाथ ले लिया। जब से वे देहली पहुँचे तब से उर्दू-शायरी का निरन्तर एक ही रुख, एक ही प्रेरणा, एक ही आकांक्षा रही। विदेशी मज़मून और परदेशी शब्दों को उसने अपनाया और परदेशी सिंगार से सजधज कर वह अपनेपन के, अपनी असलियत के, अपनी हिन्दुस्तानियत के गौरव को एक-दम से भूल गई। आज दिन भी दिल्ली में जाइए और वहाँ के बड़े लाट के महल की परिक्रमा करनेवाले हिन्दुस्तानियों को देखिए। उन्हें भी हिन्दी होने का अभिमान नहीं, अँगरेज़ों की नक़ल करने में वे मारे गर्व के फूले नहीं समाते हैं। इन्हीं के पूर्वज मुग़लों के ज़माने में फ़ारस के फ़ारसियों से भी कहीं बढ़चढ़ कर अपने को फ़ारसीदाँ सिद्ध करने में अपना गौरव समझते थे। और यही कारण है कि उर्दू के कवियों ने अपनी शायरी में फ़ारसी सरस्वती की आराधना की। अपनी जातीय आत्मानुभूति को भुला कर उन्होंने हिन्द की सरस्वती से मुँह मोड़ लिया।

(६)

उसमें है क्या? अगर इसका पता आपको लगाना है तो वली से लेकर 'नूर' और 'बिस्मिल' तक के समय के कवियों के दीवानों (संग्रहों) पर एक नज़र डाल जाइए। उनमें आपको जो मिलेगा, उसका वर्णन हम एक लेखक के शब्दों में नीचे सुनाते हैं—"उर्दू में जो सरमाया इंशा-परदाज़ी का (वाग्विदग्धता या वचन-चातुरी की जो विभूति) है, (वह) फ़ारसी की बदौलत है। उर्दूवालों ने भी आसान काम समझ कर और अवाम-पसन्दी (जन-रुचि) को गरज़ ठहरा कर हुस्न व इश्क़ (सौन्दर्य और आसक्ति) वग़ैरह के मज़ामीन (विषयों) को लिया। और इसमें कुछ शक नहीं कि जो कुछ किया, बहुत खूब किया। लेकिन मज़मून (विषय) इस क़दर मुस्तमल (चिरपरिचित) हो गये कि सुनते सुनते कान थक गये हैं। वही मुक़र्ररी बातें। कहीं हम फ़िक़रों को पशोपेश करते (आगे-पीछे हटाते) हैं, कहीं अदल-बदल करते हैं, और कहे जाते हैं। गोया खाये हुए, बल्कि औरों के चबाये हुए, निवाले हैं; उन्हीं को चबाते हैं और खुश होते हैं। खयाल करो, इसमें क्या मज़ा रहा? हुस्न (रूप) व इश्क़ (आसक्ति) सुबहान अल्लाह, बहुत खूब। लेकिन हूर या परी गले का हार हो जाय तो अजीरन हो जाती है। हुस्न व इश्क़ से कहाँ तक जी न घबराये। और अब तो वह भी सौ बरस की बुढ़िया हो गई है।"

उर्दू-कवि हैं हिन्दुस्तानी लेकिन उन्होंने इस मोटी-सी बात को भी नहीं समझ पाया कि कवि की प्रतिभा का विकास तभी सम्भव है जब वह निजी अपनी जाति या विशिष्ट की आत्मानुभूति को अभिव्यक्त करे। कवि तो अपने प्रतिनिधित्व को तभी सार्थक कर सकता है जब वह अपनी अन्तरात्मा को अपना सच्चा प्रेरक और निर्णायक स्वीकार कर ले। माइकेल मधुसूदन दत्त

यदि आज अमर हैं तो इसलिए नहीं कि उन्होंने अँगरेज़ी कवियों की तरह अँगरेज़ी में कविता लिखी किन्तु इसलिए कि उन्होंने अपनी जातीय परम्परा का अनुसरण किया और उसी के अनुरूप 'मेघनाथ-वध' अथवा 'विरहिणी व्रजांगना' की रचना की। इसके विपरीत, उर्दू की शायरी स्वदेशी; नहीं विदेशी है, हिन्दुस्तानी नहीं, ईरानी है। इन उर्दू के शायरों के बोल अपने बोल नहीं हैं, वे तो ईरानी बोलों की कृत्रिम गूंज-मात्र हैं। उर्दू-कवियों ने फ़ारसी-कवियों की नक़ल करने को अपनी कला का अन्तिम ध्येय मान लिया है; जैसे उसने बुतपरस्ती का पाठ ईरानी कवियों से सीखा। उर्दू का अप्राकृतिक प्रेम ईरानी कवियों के अनुसरण में अश्लीलता की सीमा को भी पार कर गया। किसी ने ठीक ही कहा कि—

'उर्दू-कवियों ने ईरान से आशिक़-माशूक़ ही नहीं लिये बल्कि उनके साथ विषय-व्यापार की भी आयोजना की है। फ़ारसी का बुलबुल फ़ारस ही में रोता-गाता है। हिन्दुस्तान के बुलबुल से उसका नाम के सिवा और कोई.......मेल नहीं। पर उर्दू के कवि उसके घोंसले के लिए हिन्दुस्तान में रोते रहे हैं।' .... हिन्दुस्तान की नदियों को भुला कर उर्दू के कवियों ने फ़ारस और अरब की नदियों ही में हाथ धोये हैं। लैला, मजनूं, शीरीं, फ़रहाद, युसूफ़, जुलेखाँ, के क़िस्से भी भारत के नहीं पर उर्दू ने उन्हें अपने गुलशन में जगह दी है। इसी लेखक ने उर्दू के कवियों की हिन्दी और संस्कृत के कवियों से तुलना की, और वे इस निष्कर्ष पर पहुँचे हैं कि उर्दू-कविता में जहाँ इश्क़ का ज़िक्र है वहाँ विशुद्ध प्रेम का नहीं, केवल कामवासना का ज़िक्र है; सात्त्विक प्रेम का नहीं।

(७)

हिन्दी-कवियों ने शृंगार-रस को बीभत्स रस का विरोधी माना है। लेकिन उर्दूवाले शृंगार-रस के साथ बीभत्स रस का उपयोग करते हैं। 'किसी उर्दू-कवि के दीवान को खोल लीजिए तो मालूम होता है कि मानों किसी क़साईखाने में पहुँच गये हैं।' उर्दू-काव्य मुस्लिम शासन के पतन का प्रमाण और कारण है। उर्दू-शायर के इश्क़ की दीमक देखते देखते दिल्ली और लखनऊ के राजघरानों की हुकूमत चट कर गई। जिस समय देश में उथल-पुथल मची थी और राज्य के तख़्ते एक के बाद दूसरे कड़कड़ाहट के साथ टूट रहे थे उस समय हमारे बादशाह और उनके मुसाहिब उर्दू-शायरों की शायरी की चासनी का रसास्वादन करने में मग्न थे। देश में तो आग लगी थी, प्रजा चिल्ला रही थी रक्षा के लिए लेकिन रक्षक बेख़बर था। वह तो शराब और शायरी के डबल नशे में चूर था। उस समय की शाही दरबार की हालत भी विचित्र थी। उसे एक लेखक ने बड़े सुन्दर शब्दों में वर्णित किया है। 'माशूक़ के खन्जर और छूरियों के कल्पित चोट से वे तड़प रहे थे। ..उस समय के शायर भी झूठमूठ के एक ख़याली माशूक़ या बुन की कल्पना करके उसके चारो ओर भाँवरे घूमते थे। उसी के ख़याल में मस्त, उसी में ग़र्क रहते थे। न कहीं कोई माशूक़ था, न उसकी आँखों से बिजली गिरती थी, न तीर चलते थे, न सैकड़ों क़त्ल होते थे, न जनाज़े और क़ब्र का ही कहीं ठिकाना था। अलग एकान्त कमरे में बैठकर शायर महाशय यह ख़याली तूफ़ान पैदा करते थे। इश्क़ नाम के एक रोग को शररूपी नश्तरों से जीते-जागते सुन्दर तन्दुरुस्त आदमी के शरीर में प्रविष्ट कर देते थे। जो कल हट्टा-कट्टा, मुस्तैद, जवांमर्द, धर्म और जाति का सेवक और देश में स्वराज्य-स्थापन की कल्पना करनेवाला था, वह आज शायरों की बदौलत इश्क़ के रोग में फँसता है। उसकी हिम्मत, उसका कर्त्तव्यज्ञान, उसकी उद्योगशीलता सब हवा हो जाती है, और वह भी आह उह करके दिन काटनेवालों के दल में आ मिलता है। बुतपरस्ती को मुसलमानी धर्म और ईमान से बढ़कर बतलाते हैं। शराब पीता है। न रोज़े रखता है, और न नमाज पढ़ता है। उर्दू के शायर मुसलमान होते हुए भी मजहब की पाबन्दी नहीं करते थे। प्रायः सबने इस्लाम के विरुद्ध कुछ न कुछ कहा।'

इसी लिए 'आबे हयात' के प्रसिद्ध लेखक, प्रोफ़ेसर आज़ाद दुख से जर्जरित होकर उर्दू-शायरों की कर्तूतों पर रोते हुए यह फ़ैसला दें—'यह इज़हार क़ाबिल अफ़सोस है कि हमारी शायरी चन्द मामूली मतालिब के फन्दों में फँस गई है, यानी मज़ामीन आशिक़ाना, मैख्वारिये, मस्ताना, गुलो, गुज़ार, बहारी रँग व बू का पैदा करना, हिज्र की मुसीबत का रोना वस्ले मौहूम पर खुश होना, दुनिया से बेजारी, इसी में

फ़लक़ की जफ़ाकारी और ग़ज़ब यह है कि अगर कोई असली माजरा बयान करना चाहते हैं तो भी ख़याल इस्तआरों में अदा करते हैं। नतीजा जिसका यह कि कुछ नहीं कर सकते।'

मौलाना हाली ने भी इस उर्दू की शायरी के लिए कहा है—

"जहन्नुम को भर दें शायर हमारे।"

और

पै कर जायं हिजरत जो शायर हमारे।
कहें मिल के 'ख़स कम जहाँ पाक' सारे॥

ऊपर जो कुछ हमने कहा है उससे यह स्पष्ट है कि उर्दू का साहित्य हिन्दुस्तानी नहीं है, वह तो ईरानी साहित्य की केवल नक़ल है, और इसी लिए उसमें जीवन-दायिनी शक्ति का अभाव है। वह गँदले पानी का तालाब है। मृत्यु की सहचरी है। संहार का ज़हर उसमें भरा पड़ा है। पौरुष का विनाश उसका परिणाम है। अहिन्दुस्तानी होने के कारण राष्ट्रीय जीवन में उसका कोई मूल्य नहीं। वह तो एक विकार है, आत्मा का बलिदान उसका अभिशाप है। वह अमृत नहीं, हलाहल है। अपनी मधुशाला में बुलाकर वह हमारे प्राणों को हरती है। जब तक उर्दू के कवि अपने रुख को नहीं बदलेंगे और परदेशी के रवैये को छोड़कर देशी बनना और यहाँ का हो के रहना अपनी कला का धर्म नहीं समझेंगे तब तक उर्दू-शायरी का राष्ट्र के निर्माण में न कोई हाथ हो सकता और न वह जातीय उत्थान की समर्थ साधक हो सकती है। यह विष का प्याला है जिसे पीनेवाला पी कर मृत्यु का बिना माँगे ग्राहक बन जाता है। साहित्य में अपार शक्ति है—पशुओं को पुरुष बनाने की, कायरों को वीरों में बदल देने की, स्वार्थी को परमार्थ के लिए क़ुर्बान हो जाने के लिए उत्साहित करने की, गिरे हुए को उठाने की, भूले भटके को ठीक रास्ते पर लाने की, सोते को जगाने की और मुर्दों को फिर से जिलाने की। उर्दू-कवियों ने अपने इस पूज्य पद को ठुकरा दिया। वे अपनी महत्ता को भूले गये। भड़ैती को उन्होंने अपना उच्चतम आदर्श बनाया और सिंह से सियार बनने में अपना गौरव समझा।

(८)

हमने यह भी कहा है कि उर्दू-शायरी इस्लाम-विरोधी है। इस्लाम ने जिसको हलाल कहा, उर्दू-शायरों की नज़रों में वही हराम है; और जिसे इन्होंने हलाल माना, वह इस्लाम में कुफ़्र है। उसमें आपको बुतपरस्ती की हिदायत मिलेगी, वाइज़ के निन्दा और मैख़ानों के गुणगान मिलेंगे। काबा और जिन्नत पर फबतियाँ हैं। मुल्लाओं और मसजिदों का हास-उपहास मिलेगा; और मज़ा यह है कि जो मुसलमान मजहब के नाम पर मिटनेवाले हैं वे दाद देते हैं मजहब के इन उपहास करनेवालों को। एक ओर तो इतना मज़हबी जोश और दूसरी ओर इतनी लापरवाही। इसको देखकर अमुस्लिम हिन्दुस्तानी यदि हैरान हो जाय तो अचरज की कौन बात ? मज़हबी मुसलमान ही हमें बता सकते हैं, और हम उनसे सादर पूछना भी चाहते हैं कि वे हमें बतायें कि शायरों के दीवान क्या इस्लाम के प्रतिपादक हैं या उसके विरोधी। यदि वे इनको इस्लाम का विरोधी समझते हैं तो बतायें कि वे फिर 'इस्लामी कल्चर' के कैसे प्रतिनिधि हैं ? इन शायरों की कविता को क्या वे मुसलमानी 'कल्चर' या संस्कृति का आधार मानने के लिए तैयार हो जायँगे ? या क्या यह सम्भव है कि मुसलमान कवियों ने जो कुछ कहा है, वही वास्तविक इस्लाम है। मैं मुसलमान नहीं, पर इस्लाम-धर्म-विषयक जो ग्रन्थ मैंने देखे हैं उनके आधार पर मैं यह मानने को तैयार नहीं कि उर्दू की शायरी में इस्लाम-धर्म का सच्चा निरूपण हमें मिलेगा। इस्लाम-धर्म तो जीवनदाता है, जीवन का संहारक नहीं; पुरुषत्व का वर्द्धक है, नपुंसकता का साथी नहीं। लेकिन मैं दावे के साथ इस विषय पर कुछ नहीं कह सकता हूँ। मेरा यही निवेदन है कि यदि किसी मुसलमान भाई की दृष्टि मेरे इस लेख पर पड़े तो उनका मेरे ऊपर परम अनुग्रह होगा यदि वे इस मसले पर प्रकाश डालने की चेष्टा करेंगे।

युद्ध और उसका अन्त

लेखक, पण्डित वनमालीप्रसाद शुक्ल

इस लेख में बताया गया है कि युद्ध का अंत करने के लिए मित्रराष्ट्र पहले से प्रयत्नशील हैं। कुटिल राष्ट्रकर्णधार इसमें विघ्न उपस्थित करके सबका अनिष्ट साधते हैं। इस समय संसार के सामने यही एक ज़बरदस्त प्रश्न है कि किस प्रकार युद्ध का अंत किया जाय ताकि विश्व में शांति स्थापित हो।

कहते हैं कि युद्ध-काल में अनेक वर्षों के कठिन साधन से प्राप्त हुई मानव-सभ्यता क्षणभर में लोप हो जाती है और उसके स्थान में मनुष्य की हिंस्र-प्रवृत्ति आ विराजती है। परन्तु यदि सूक्ष्म दृष्टि से देखा जाय तो स्पष्ट होगा कि सभ्यता की छाया मनुष्य-समाज पर जैसे शान्तिकाल में पड़ती है, वैसे ही युद्ध-काल में भी पड़ती है। उसका अस्तित्व दोनों कालों में रहता है। अन्तर केवल इतना ही होता है कि शान्ति-काल में उसकी परछाईं सीधी पड़ती है, जिससे मानव-जीवन उत्तरोत्तर विकसित होकर संसार-सुलभ सुख का समुचित उपभोग करता है और युद्ध-काल में वह ऐसी कुछ उलटी पड़ती है जिससे मनुष्य सब कुछ जानते हुए अनजान होकर अपने आप सर्वनाश का कारण बन जाता है। फिर उसके लिए सत्य-झूठ, न्याय-अन्याय, पाप-पुण्य आदि बातें विचारणीय नहीं रह जातीं। निर्दोष मनुष्यों का रक्तपात प्रकृति के लिए कितना असहनीय होगा, इसकी उसे कल्पना तक नहीं होती। यदि इस काल में 'जिसकी लाठी उसकी भैंस' वाली पुरानी कहावत अपने प्रारम्भिक काल के सरल शुद्ध रूप में चरितार्थ होती तो विशेष चिन्ता की बात नहीं थी; क्योंकि उससे संसार भर के अमङ्गल की आशंका नहीं होती जैसा आधुनिक वैज्ञानिक युद्ध से होती है। सभ्य देशों के प्राचीन काल के युद्ध में धर्म की छाप रहती थी। इसी से उन दिनों के युद्ध मर्यादित होते थे। दो भिन्न भिन्न पक्ष को लेकर लड़नेवाले सैनिक दल वादी-प्रतिवादी के समान रणक्षेत्र-रूपी न्यायालय में युद्ध-रूपी न्यायाधीश से अपने झगड़े का निर्णय कराके सन्तुष्ट हो जाते थे। ऐसा कभी नहीं होता था कि सैनिक दल सैनिक मर्यादा का उल्लङ्घन कर सभ्य समाज के कक्ष में आतंक उपस्थित करे या अनुचित रीति से शत्रु-संहार का गुप्त उद्योग करे। ऐसे कृत्य युद्ध-धर्म के विरुद्ध माने जाते थे। परन्तु अब ऐसी बात नहीं रह गई है। इसी से आधुनिक युद्ध प्रलय से भयंकर हो रहा है। प्रलय-काल में सर्वनाश हो जाता है। माता-पिता को पुत्रशोक का सन्ताप नहीं होता। स्त्री वैधव्य-दुख का अनुभव नहीं कर पाती। सन्तान जानती ही नहीं कि दुर्दैव ने उसे अनाथ बना दिया है। साहित्य का ज्ञान-भांडार, इतिहास की सामग्रियाँ, सभ्यता और कला की अमूल्य सम्पत्ति आदि का नाश किसी को खलता ही नहीं। सबके सब एक ही समय में एक ही रीति से प्रलय के कराल गाल में साथ-साथ विलीन हो जाते हैं। प्रलय-द्वारा होनेवाला नाश पूर्ण होता है और उसके बाद भूमंडल भर में पूर्ण शान्ति छा जाती है। परन्तु आधुनिक वैज्ञानिक युद्ध से आंशिक नाश होता है; इस कारण संसार पूर्ण अशान्ति का अनुभव करता है और वह दुख, अभाव और प्रतिहिंसा का आगार बन जाता है।

इस बात का सबको अनुभव है कि युद्ध मानव-जीवन और सभ्यता का विनाशक है। घृणा के उदर से जन्म लेने और उन्माद तथा मूर्खता के द्वारा प्रतिपालित होने से वह न तो किसी प्रकार की व्यवस्था ही कर सकता है, न निर्णय। विजित और विजेता दोनों पर अपना क्रूर प्रभाव समान रूप से स्थापित करके दोनों को कष्ट, अभाव और हानि से पुरस्कृत करता है। अन्यायियों को क्षणिक त्राण देकर निरपराधियों को पददलित करते हुए संसार भर के राज्यों की व्यवस्था को विशृंखल कर देता है। यहाँ प्रश्न उठता है कि इतना सब होते हुए उसका आवाहन क्यों किया जाता है। इसके उत्तर में संसार के सभी लोग एक स्वर से यही कहेंगे कि उनके मन में युद्ध के प्रति न तो कभी श्रद्धा होती है, न भक्ति। उनके मन में स्वभावतः पारस्परिक घृणा का भाव भी

अंकुरित नहीं होता है। वे तो सबसे मैत्री रखते हुए अमन-चैन से कालक्षेप करना चाहते हैं। स्थायी विश्व-शान्ति के निमित्त ऐसी कोई बात नहीं है जिसे करने के लिए वे तत्पर न हों। पर संसार में कुछ ऐसे लोग भी हैं जिनका युद्ध ही जीवन है; समराग्नि को प्रज्वलित करते रहने में जिन्हें अपना कल्याण दीखता है। ऐसे लोग राष्ट्रों के बीच प्रथम भय, फिर सन्देह और अंत में घृणा का बीज वपन करते हैं। निर्बल पड़ोसी राज्यों पर अधिकार स्थापनार्थ सक्रिय चेष्टा करते हैं। स्वदेशाभिमान की मिथ्या भावना को लेकर अपने राष्ट्र को सर्वोपरि बनाने की कामना करते हैं। फल यह होता है कि उनकी इस भावना-कामना से भय एवं सन्देह जनित कलह उग्ररूप धारण कर लेता है। जल, स्थल और आकाश को थर्रा देनेवाली रणभेरी बजने लगती है। उन कुछ संसार-द्रोहियों के प्रभाव से मनुष्य मनुष्यत्व को भूल जाता है। वह हिंस्र पशु से अधिक भयंकर क्रूरकर्मा और कृत्रिम हो जाता है। विगत योरपीय महासमर एक सम्राट् के प्रमाद का प्रतिफल था। उसके बाद के युद्ध स्वार्थान्ध राष्ट्र-कर्णधारों की महत्त्वाकांक्षा से प्रसूत हैं।

गत योरपीय महासमर में न्याय का पक्ष लेकर लड़नेवाले मित्रराष्ट्रों ने घोषित किया था कि वे युद्ध का अन्त कर देने के लिए लड़ रहे हैं, जिसमें भविष्य में युद्ध असम्भव हो जाय और मनुष्य अपने बन्धु-बान्धवों का संहार किसी भी परिस्थिति में न कर सके। इसमें सन्देह नहीं कि उनकी यह घोषणा निरी घोषणा नहीं थी। उसमें उनके हृदय का सच्चा उद्गार निहित था, जिससे प्रेरित होकर हज़ारों योधा उनके झंडे के नीचे सोत्साह आ जमे। उनमें से न जाने कितनों ने महासमर की बलिवेदी पर हँसते हँसते आत्म-समर्पण कर दिया। राष्ट्रों की करोड़ों की सम्पत्ति समर-यज्ञ में स्वाहा हो गई। अन्त में न्याय की जीत हुई। मित्र-राष्ट्रों के जी में जी आया। मृत सैनिकों के माता-पिता स्त्री-पुत्र तथा भगिनी-भ्राताओं ने यह सोचकर अपने शोक-संतप्त मन को धीरज दिया कि उनका असाधारण त्याग निष्फल नहीं जायगा। सर्वसाधारण लोगों ने समझा कि अब शक्ति के स्थान में न्याय की स्थापना होगी; युद्ध अनावश्यक और असम्भव समझा जाकर संसार में स्थायी शान्ति के निमित्त उद्योग किया जायगा; सैन्यशक्ति जिसके आतंक से संसार त्रस्त है, निर्बल कर दी जायगी।

सबके विश्वासानुकूल कार्य भी प्रारम्भ हुआ। अमरीका के तत्कालीन अध्यक्ष श्री विलसन महोदय ने कहा कि पारस्परिक ईर्षा-द्वेष को दफ़ना कर मनुष्य-जाति के कल्याणार्थ ऐसा ठोस कार्य करना चाहिए जिसमें भविष्य में संसार की शान्ति न भंग होने पावे। मित्र-राष्ट्रों ने न केवल उनकी बात का स्वागत ही किया, वरन उनके ध्येय को सम्मुख रखकर विश्व-शान्ति के निमित्त प्रबल उद्योग करने में उन्होंने अपनी ओर से कोई बात उठा नहीं रक्खी। राष्ट्रसंघ की उत्पत्ति उनके उसी उद्योग का प्रतिफल है।

राष्ट्रसंघ के राजनीतिज्ञों ने अपने भूतकालीन अनुभव के आधार पर सोचा था कि जब युद्ध के साधन नहीं रह जायँगे तब मनुष्यों के सिर पर युद्ध का भूत नहीं सवार होगा। परन्तु विश्व-कल्याणकारी इस महान् अनुष्ठान की सफलता में कुटिल मनोवृत्ति के कुछ राष्ट्र-कर्णधार आड़े आये। परिणाम यह हुआ कि इस योजना के विपरीत जर्मनी जैसे सर्वोपरि बनने के इच्छुक राज्य तथा उनके भय से भयभीत होनेवाले दूसरे राज्य सामरिक तैयारी में ऐसे तल्लीन हुए जैसा इसके पूर्व कभी भी नहीं हुए थे। यहाँ यह प्रश्न उठता है कि यदि राष्ट्रसंघ-द्वारा योजित निःशस्त्रीकरण सफलीभूत होता तो क्या युद्ध का अन्त हो जाता। इसके उत्तर में हाँ कहते शंका होती है जब कि हम देखते हैं कि युद्ध के इच्छुक जनों के अभिलाषा-पूर्त्यर्थ रसायनशास्त्री सामरिक शस्त्रों एवं सैनिकों से कई गुना अधिक सहायता अपनी रासायनिक क्रियाओं-द्वारा देने के लिए तत्पर हैं। उनकी सहायता से [illegible] हैं। सुनते हैं कि तैयारी किये बिना बड़ी से छोटे राष्ट्र में युद्ध के निमित्त बड़ी से बड़ी सेना को तहस-नहस कर देने की शक्ति आसानी से प्राप्त हो सकती है। हाल में ही जर्मनी ने किसी बात पर बिगड़कर मित्रराष्ट्रों को धमकी दी थी कि अनुचित रीति से किसी तरह विवश किये जाने पर वह अपने उन रासायनिक प्रयोगों का उपयोग करेगी जिनकी कल्पना तक लोग

नहीं कर सकते। विगत महासमर में जर्मनी ने विषैले धूम्र (एसफ़ैक्जिएटिंग गैस) का उपयोग किया भी था, जिससे रणक्षेत्र में आतंक छा गया था और संसार भर के लोगों को उसके फलस्वरूप इनफ़्लुएन्जा की बीमारी हुई थी। अतएव ऐसे गुप्त एवं अमोघ शस्त्रों का भी निःशस्त्रीकरण होना चाहिए। इसके अतिरिक्त संसार भर के राजनीतिज्ञों, लेखकों, पत्रकारों, उपदेशकों और व्याख्यानदाताओं के उन समस्त विचारों का भी निःशस्त्रीकरण परमावश्यक है जिनके द्वारा युद्धीय भाव प्रस्फुटित एवं विकसित होते हैं। परन्तु उन विचारों का निःशस्त्रीकरण तभी सम्भव है जब वे सब यह अनुभव करने लगें कि पृथ्वी के भिन्न भिन्न भागों में निवास करने और भिन्न भिन्न रूप-रंग के होने से मनुष्यों में भिन्नता नहीं आती। इस बात को दूसरे शब्दों में ऐसा भी कह सकते हैं कि संसार भर की जातियों में खान-पान, रहन-सहन और धर्म-कर्म की भिन्नता होने से क्या, जब उन सबकी अन्तर्निहित आत्मा एक है।

इतिहास के जानकारों को प्रकट है कि योरप के विगत दो युद्धों का सूत्रपात दो प्रसिद्ध व्यक्तियों की क़लम से हुआ था। सन् १८७० ईसवी का फ़रासीसी-जर्मन-युद्ध थीर्स महोदय की ओजस्विनी लेखनी का प्रतिफल था और सन् १९१४ का विश्वव्यापी समर हिनरीच व्हान ट्रिसकी के वैमनस्योत्पादक रचना से जागृत हुआ था। वर्त्तमान युद्ध जर्मनी के डिक्टेटर हिटलर और उसके प्रचारकों के कारण हुआ है। इस बात को चित्रित करने के लिए कि जर्मनजाति के मन में अन्य राष्ट्रों के प्रति घृणा का भाव उत्पन्न करने में लेखकों एवं व्याख्यान-दाताओं का कितना ज़बर्दस्त हाथ रहा है, एक हाल की घटना का उल्लेख करते हैं। ब्रिटिश रायल एअर फ़ोर्स के अफ़सरों ने एक जर्मन बमवर्षक उड़ाके का सम्माननीय अतिथि के रूप में सत्कार किया और उसकी निपुणता एवं साहस की सराहना की। वह बन्दी उड़ाका अपने शत्रु के दयालुतापूर्ण व्यवहार से इतना प्रभावित हुआ कि वह सँभल न सका और फूट फूटकर रो पड़ा। उसने कहा कि जर्मनी में यह प्रचार बड़े ज़ोर-शोर से होता आ रहा है कि अँगरेज़ जर्मनों से घृणा करते हैं, अतः प्रत्येक जर्मन का कर्त्तव्य है कि वह अँगरेज़ों से घृणा करे। निःसन्देह लेख, व्याख्यान आदि युद्ध भड़काने या शान्ति स्थापित करने के लिए मन्त्र से भी अधिक प्रभावशाली होते हैं, अतः इनका उपयोग संसार के सब लोगों में सद्भाव स्थापित करने के लिए ही होना चाहिए; युद्ध उत्पन्न करने के लिए नहीं।

यह सब जानते हैं कि हिटलर और उसके अनुयायियों की धाँधली और उद्दण्डता से वर्तमान योरपीय समर का आविर्भाव हुआ है। इतना ही नहीं, रूस को भी नादिरशाही करने का अवसर उसी ने दिया है। युद्धारम्भ के पूर्व ब्रिटेन के प्रधान सचिव ने मानापमान की परवा न करके न्यायोचित रीति से हिटलर को सन्तुष्ट करने और वसुंधरा को निर्दोष जर्मन-प्रजा तथा अन्यान्य राष्ट्र के लोगों के रक्त से रंजित न होने देने के लिए अदम्य उत्साह से पूर्ण प्रयत्न किया था। फ़्रांस और अमरीका के राष्ट्रपतियों की ओर से भी ऐसा ही उद्योग हुआ था। परन्तु हिटलर की उद्दण्ड मनोवृत्ति शान्त होने के बजाय उत्तरोत्तर बढ़ती गई। तब विवश होकर मित्रराष्ट्रों को धधकती हुई युद्ध-ज्वाला को एक बार फिर बुझा देने के लिए समराङ्गण में आना पड़ा। यह जानी हुई बात है कि अन्त में न्याय की जीत होगी और तब हिटलर और उसके अनुयायी पापात्माओं के रूप इतिहास के ृष्ठों में नज़र आवेंगे। उस समय मित्रराष्ट्रों को अपने इस ताज़े अनुभव के बल पर ऐसी सुदृढ़ योजना करनी चाहिए, जिसमें संसार की शान्ति पुनः न भंग होने पावे। उन्हें अपने राष्ट्रसंघ का सुसंगठन भी ऐसा करना चाहिए जिसमें उसका सद्भाव-जनित शासन संसार भर के राष्ट्रों पर रहे, उससे अलग होकर या उसके नियन्त्रण की अवहेलना करके किसी भी राष्ट्र का रह सकना असम्भव ो जाय।

यह निर्विवाद सत्य है कि विश्वशान्ति के निमित्त राष्ट्रसंघ जैसी संस्था ही उपयुक्त हो सकती है। यद्यपि आज स्वार्थान्ध डिक्टेटरों के कारण उसकी महत्ता का मार्तण्ड बर्बरता की बदली से ढँक गया है, उसे जिनेवा से उठ कर पेरिस जाना पड़ा है, यथापि यह निश्चित है कि भविष्य में एक दिन ऐसा आयेगा जब युद्ध की निरर्थक आपत्तियों से त्रस्त होकर लोग आपसे आप कहने लगेंगे कि शान्ति-रक्षण के निमित्त आत्मसंयम, सद्भाव, उदारता, सैन्य-सत्याचरण आदि नैसर्गिक गुणों की आवश्यकता है,

शक्ति की नहीं। उस समय उन्हें यह सोचकर ग्लानि और पश्चात्ताप होगा कि उन्होंने अपने मूर्खतावश राष्ट्र-संघ जैसी महान् और पवित्र संस्था की उपेक्षा करके कितनी भयंकर भूल की है, कितना अकारण दुख झेला है। अपनी इस भूल को समझने में लोग जितना विलम्ब करते जायँगे, उतना ही अधिक सभ्यता का, राष्ट्र का और संसार का अनिष्ट होता जायगा। यदि अभी से लोग सचेत हो जायँ, विश्व-विनाशक युद्ध के उत्तेजक डिक्टेटरों की [illegible]तों के भावावेश में न पड़कर राष्ट्रसंघ पर विश्वास करने लग जायँ तो विश्व-शान्ति स्थापन का कार्य बहुत कुछ सरल और सीधा हो जायगा। वास्तव में राष्ट्रसंघ किसी भी धर्म-महामंडल से न्यून संस्था नहीं है। संसार में जितने प्रचलित धर्म हैं उनमें से हरएक केवल अपने अनुयायियों भर को एक सूत्र में बाँध सकता है। परन्तु राष्ट्रसंघ संसार के समस्त राष्ट्रों को एकता के बंधन में बाँधने की क्षमता रखता है। धर्म उसी दशा में अनुयायियों के निमित्त कल्याणकारी सिद्ध होता है जब उस पर उनकी अटल श्रद्धा होती है। ठीक इसी प्रकार राष्ट्रसंघ राष्ट्रों को विनाश से तभी बचा सकता है जब सब राष्ट्र और राष्ट्र के लोग उस पर ही विश्वास करेंगे। उसकी स्थापना भी तो विश्वास की नींव पर ही हुई है। अतः एकमात्र विश्वास से ही उनके महान् उद्देश्य की सिद्धि हो सकती है। आशा है कि भविष्य में सब लोग विश्व-धर्म-सदृश राष्ट्र-संघ के प्रति श्रद्धा-विश्वास प्रदर्शित करके शान्ति-फल प्राप्त करने की हृदय से कामना करेंगे और शान्ति-स्थापन के कार्य में उसकी अवहेलना करनेवालों के कारण जैसी विकट परिस्थिति उसके समक्ष आज उपस्थित हुई है, वैसा नहीं होने देंगे।

सुस्मृति की झंझा के झोंके

लेखक, श्रीयुत शिवमङ्गलसिंह 'सुमन'

अलस शिथिल पग नूपुर रंजित
अथ-इति हीन मान मद गंजित
कर पद-चापों की प्रतिध्वनि से
व्यथा-कथा अभिव्यंजित,
मुझे बाध्य करते बढ़ने को मेरा ही पथ रोके,
सुस्मृति की झंझा के झोंके।

मुझ मानव का चिर-चंचल चित
आग और पानी से विरचित
यह दिन मुझे देखने पड़ते
हो [illegible]-संयोग स्नेह से वंचित
हाय! जलाते हैं मुझको, मेरी ही आग सँजो के,
सुस्मृति की झंझा के झोंके।

संध्या के नव-नील गगन में
मेरे अलसाये यौवन में
बाँध प्रतीक्षा की डोरी से
आशा के चिर-सुखद स्वप्न में
मुझको ही बिछोह सिखलाते, मुझमें ही लय होके,
सुस्मृति की झंझा के झोंके।

मैं पल पल लगता हूँ तपने
एक उन्हीं की माला जपने,
उनकी वे बातें मनुहारें
बन जातीं प्रभात के सपने,
अब जागृति का पाठ पढ़ाते, मेरे उर में सो के,
सुस्मृति की झंझा के झोंके।

मैं फिर भी रोता रहता हूँ
अपने को खोता रहता हूँ
मन-मन्दिर की कालिख अपने,
दृग-जल से धोता रहता हूँ
सम्भव है उनको पा जाऊँ, अपने ही को खो के,
सुस्मृति की झंझा के झोंके।

लिसबैथ

लेखक, श्रीयुत बालगोविन्दप्रसाद श्रीवास्तव

वह सूनों की लड़की थी। सूनों पहाड़ी जाति का एक निर्धन किसान था। एक साल अकाल पड़ा। ज्वार की फ़सल मारी गई। जंगली जानवरों ने सूनों के मटर के खेत का जो खोटगढ़ की ओर सतलज की घाटी के ऊपर था, सत्यानाश कर डाला। दूसरे साल सूनों के घर में भूँजी भाँग तक न रह गई। परिस्थिति मनुष्य से क्या-क्या नहीं करा सकती? सूनों प्राण-रक्षा के भय से क्रिस्तान हो गया। खोटगढ़ के पादरी ने उसकी नवजात कन्या का नाम एलिज़बैथ रक्खा, परन्तु लोग उसे लिसबैथ कह कर पुकारा करते थे।

कुछ समय के बाद खोटगढ़ की घाटी में हैज़ा का प्रकोप हुआ। सैकड़ों आदमियों ने तड़प-तड़प कर अपने प्राणों का विसर्जन किया। सूनों और उसकी स्त्री ने भी बेचारी लिसबैथ को अनाथिनी बनाकर इस संसार का परित्याग कर दिया। लिसबैथ खोटगढ़ के पादरी साहब की मेम साहब के यहाँ रहने लगी। बालिका लिसबैथ के साथ मेम साहब का व्यवहार अत्यन्त सौजन्य से परिपूर्ण था।

धीरे-धीरे लिसबैथ युवावस्था को प्राप्त होने लगी। लोग उसके सौन्दर्य को देखकर मुग्ध हो जाते। वह आम पहाड़ी लड़कियों की तरह छोटी नहीं, ऊँचे डील की थी। उसका रंग हाथीदाँत की तरह सुन्दर था। उसकी बड़ी-बड़ी आँखें लोगों को चकाचौंध कर देती थीं। मनोरम पहाड़ी दृश्यों के बीच एकाएक उसे देखकर किन्नरी समझ लेना कोई आश्चर्य की बात नहीं थी।

बहुत-सी पहाड़ी लड़कियाँ युवावस्था प्राप्त होने पर क्रिस्तान-धर्म का परित्याग कर फिर अपनी जाति और धर्म में मिल जाती हैं। पर लिसबैथ ने ऐसा नहीं किया। उसकी जातिवाले उससे घृणा करते थे और आपस में कहते—"वह तो मेम साहब बन गई है और दिन में दस बार अपने अंगों को धोती है।" पादरी साहब की मेम साहब स्वयं इस फेर में पड़ी हुई थीं कि वे लिसबैथ से कौन-सा काम करवायें। लिसबैथ ऐसी दैवी प्रतिमा को वे बरतन, तश्तरी आदि साफ़ करने का काम कैसे दे सकती थीं? इसी लिए उसका एकमात्र काम मेम साहब के बच्चों को खिलाना और कभी-कभी रविवार को संडे-स्कूल में पढ़ाने के लिए चला जाना था। मेम साहब कहती थीं—"लिसबैथ, तुम शिमला में जाकर कहीं पर नर्स क्यों नहीं हो जाती हो? मैं अपने पादरी साहब से कह कर ऐसा करवा सकती हूँ।" पर इन बातों को सुनकर वह अधीर हो उठती। वह अपनी जीवन-यात्रा के ढंग से सन्तुष्ट थी और उसमें तिल बराबर भी रद्दोबदल नहीं चाहती थी। मेम साहब के साथ रहने में उसे अतीव आनन्द का अनुभव होता था। जब दूर-दूर के यात्री खोटगढ़ में आते और मेम सहाब के यहाँ ठहरते तब वह मारे डर के अपने कमरे में बन्द रहती। उसे डर था कि कहीं वे लोग उसे बलपूर्वक शिमला को न पकड़ ले जायँ।

लिसबैथ सत्रह साल की हो चुकी थी। यौवन उसके अंग-अंग से दमक रहा था। कई महीनों के बाद एक दिन वह बाहर टहलने निकली। विलायती मेमों की तरह उसे डेढ़-दो मील घूमना और फिर लौट आना नापसन्द था। उसने एक ही चढ़ान में खोटगढ़ और नरकुंडा के बीच का बीस या पचीस मील का रास्ता तय किया। जब वह घर लौट कर आई तब गोधूली-बेला हो चुकी थी। मेम साहब उस समय ऊँघ रही थीं। उन्होंने देखा कि लिसबैथ अपने दोनों हाथों में कोई भारी चीज़ उठाये हुए ला रही है। वह हाँफ रही थी। उसने बोझ को गद्देदार चारपाई पर उतारते हुए कहा—"मेम साहब, यह मेरा पति है। इसे मैंने बागी रोड पर पाया है। इसे चोट लग गई है। हम लोग इसकी सेवा-शुश्रूषा करेंगे और अच्छा हो जाने पर पादरी साहब इसके साथ मेरी शादी कर देंगे।"

यह पहला ही अवसर था कि लिसबैथ ने अपने ब्याह के विषय में मेम साहब से कोई चर्चा की हो। वे उसकी धृष्टता को देखकर दंग रह गईं, पर कुछ न बोलीं। उस आदमी की शीघ्रातिशीघ्र दवा-दारू करना उनका प्रथम कर्त्तव्य था। चोट खाया हुआ आदमी एक अँगरेज़ नवयुवक था। चोट से उसका सिर फट गया था, जिससे वह बेहोश हो गया था। उसको बड़े ज़ोरों से साँस आ रही थी। लिसबैथ ने उसे एक पहाड़ी के नीचे चट्टान पर पड़ा हुआ पाया था।

पादरी साहब ने उसकी दवा-दारू शुरू कर दी। वे स्वयं भी थोड़ी-बहुत डाक्टरी जानते थे। लिसबैथ इस आशा में दरवाज़े पर खड़ी रहती कि शायद उसका भी कोई काम आ पड़े। उसने पादरी साहब से कहा—"धर्म-पिता, मैं इसी आदमी से अपना ब्याह करना चाहती हूँ।" पादरी और मेम साहब ऐसी अनर्गल बातों को सुनकर और चुप्पी न साध सके और उन्होंने बे-सिर-पैर की बातों पर उसे बेतरह फटकारा। लिसबैथ ने धैर्य धारण कर उन दोनों की बातों को सुन लिया, पर अपना हठ नहीं छोड़ा। मेम साहब ने कहा—"पूरब की ज़ातियों में जो असभ्यता के चिह्न पाये जाते हैं—जैसे प्रथम मिलन में ही आत्मसमर्पण—उन्हें ईसाई-धर्म भी एकाएक पूर्णरूप से नहीं मिटा सकता। लिसबैथ को आश्चर्य होता—"आखिर मेम साहब मुझे चुप रहने के लिए क्यों कहती हैं! मेरा प्रियतम मुझे मिल गया है। फिर मैं चुप्पी क्यों साधूँ? हाँ, जब तक वह पूर्ण रूप से अच्छा न हो जाये तब तक मैं ब्याह करने के लिए किसी प्रकार भी बाध्य नहीं करूँगी। तब तक तो मैं उसकी सेवा-शुश्रूषा करके ही अपने को कृत्यकृत्य समझूँगी।"

यही उसका छोटा-सा प्रोग्राम था। दस-पन्द्रह दिन के पश्चात् कुछ बुखार आदि के बाद युवक अच्छा हो गया। अच्छा होने के बाद उसने पादरी साहब, मेम साहब और लिसबैथ के प्रति अपनी हार्दिक कृतज्ञता प्रकट की। उसने अपना परिचय देते हुए बतलाया कि वह विलायत से पूर्वीय देशों का भ्रमण करने के उद्देश्य से निकला था। देहरादून से वह शिमला की पहाड़ियों में कुछ जड़ी-बूटियों का अन्वेषण करने आया था। इसी कारण शिमला में उसरो किसी से भी परिचय नहीं है। उसने बतलाया—"कदाचित् मैं किसी चट्टान पर ऊँचाई से गिर पड़ा और बेहोश हो गया। मेरे कुलियों ने अवश्य ही मुझे बेहोश पड़ा हुआ समझ कर मेरे माल-असबाब को अपना लिया होगा और फिर वे चलते बने होंगे।" उसने शिमला में और कुछ दिनों तक रहने की अनिच्छा प्रकट करते हुए कहा—"जैसे ही मुझमें कुछ और शक्ति का संचय हो जायगा, मैं तुरन्त यहाँ से रवाना हो जाऊँगा। अब मुझे और पहाड़ी सैर करने की बिलकुल इच्छा नहीं है।"

धीरे-धीरे युवक के निर्बल शरीर में बल का संचार होने लगा। उसने शिमला से चले जाने की कोई जल्दी नहीं दिखलाई। लिसबैथ उसका चला जाना सुनकर अधीर हो उठती। मेम और पादरी साहब की बातों से उसे तनिक भी आश्वासन न होता। मेम साहब ने जब इस अँगरेज़ नवयुवक से लिसबैथ की प्रेम की बातें प्रकट कीं तब वह हँसते हँसते लोट-पोट हो गया। उसने कहा—"हिमालय की पहाड़ी लड़कियों के प्रेम करने का ढंग भी सचमुच सुन्दर पर निराला होता है। मेम साहब इस विषय में निश्चिन्त रहिए। मैंने पहले से ही एक अँगरेज़ बालिका के पाणिग्रहण का निश्चय कर लिया है और उसने भी मुझे अपने प्रणय की भिक्षा दे दी है। पर मैं लिसबैथ से प्रेम-पूर्वक बोलता, हँसता और साथ ही साथ टहलने भी जाता हूँ, इसमें न जाने क्यों उसे एक अज्ञात आनन्द का अनुभव होता। जब प्यार के नामों से वह लिसबैथ को पुकारता तब वह आनन्दमग्न हो जाती। उसके लिए तो वह सब खिलवाड़ था, पर बेचारी लिसबैथ के लिए तो वह खिलवाड़ ही संसार में सब कुछ था। संसार में वह अपने को सबसे अधिक सुखी समझ रही थी, क्योंकि उसे एक मनुष्य ऐसा मिल गया था जिसके सामने वह निःसंकोच भाव से अपना हृदय खोलकर रख सकती थी, जिसे वह संसार में सबसे अधिक प्यार कर सकती थी। लोग सभ्यता और असभ्यता किसे कहते हैं, इसका उसे ज्ञान नहीं था। वह अपने प्रियतम से अपने भावों को तनिक भी छिपाने का प्रयत्न न करती। युवक को यह देख-देखकर मज़ा आता।

जब वह जाने लगा तब वह उसे नरकुंडा तक पहुँचाने गई। जब वह लौटी तब शोकाकुल और जर्जरित हो रही थी। मेम साहब ने जब देखा कि उसके समझाने पर

लिसबैथ किसी भाँति भी न मानेगी तब उन्होंने उस अँगरेज़ युवक को समझा कर कह दिया था—"लिसबैथ को एकाएक निराश मत कर देना। उससे कह देना कि तुम शीघ्र ही उससे ब्याह करने के लिए फिर लौटकर आओगे। तुम जानते हो कि वह निरी बच्ची है। और मुझे तुमसे यह बताते हुए डर लगता है कि वह हृदय से अब भी ख्रीस्ट-धर्म को अपना नहीं सकी है।" अतः वह लिसबैथ के गले में हाथ डालकर बार-बार समझाता कि वह उससे ब्याह करने के लिए पुनः आवेगा। वह उससे बार बार यह प्रतिज्ञा करवाती। फिर भी उसे सन्तोष न होता। जब वह चला गया तब लिसबैथ एकटक लगाकर उसी ओर देखती रही, जब तक कि वह आँखों से ओझल नहीं हो गया। नरकुंडा की एक चट्टान पर बैठकर वह बहुत देर तक रोती रही।

उसने अपने अश्रु-बिन्दुओं को पोंछ डाला, और फिर मन्द चाल से खोटगढ़ की ओर चली। मेम साहब को देखकर उसके धैर्य का बाँध टूट गया। उसने कहा—"मेम साहब, वह चला गया। पर शीघ्र ही लौट कर आयेगा और मुझसे ब्याह करेगा। वह अपने देश में अपने देशवासियों को इस बात की सूचना देने गया है।" मेम साहब ने उसे आश्वासन देते हुए कहा—"हाँ, उसने शीघ्र ही लौट आने का हम लोगों को वचन दिया है।"

दो महीने के पश्चात् वह व्याकुल हो उठी। मेम साहब ने उसे बतलाया कि वह समुद्र के उस पार विलायत में होगा। वह जानती थी कि विलायत कहाँ पर है, क्योंकि उसने थोड़ा-सा भूगोल भी पढ़ा था। अपनी कल्पना के सहारे वह उस नवयुवक को विलायत में अपने प्रेम में पागल घूमते देखती थी। वह कभी-कभी संसार का मानचित्र सामने रखकर उसे घंटों देखती रहती, कभी घबरा कर रोने लगती। उसकी समझ में न आता कि उसका प्रियतम जिसको उसने अपना सर्वस्व समर्पण कर दिया है, कहाँ चला गया! पर उसके इस घबराने से क्या होने-वाला था? क्या यह कभी सम्भव था कि एक अँगरेज़ नवयुवक लौट कर फिर एक पहाड़ी लड़की से ब्याह करने आता। आसाम तक पहुँचते-पहुँचते उसे बेचारी लिसबैथ के साथ गुंथी हुई स्मृतियाँ एकदम से भूल गईं। कुछ दिनों के पश्चात् उसने पूर्व के सम्बन्ध में एक पुस्तक लिखी, पर उसमें लिसबैथ का कहीं भी उल्लेख न था।

लगभग तीन महीने बीत चुके थे। अब लिसबैथ प्रतिदिन प्रातःकाल नरकुंडा को जाया करती—यह देखने के लिए कि कहीं उस पथ से आता हुआ उसका प्रियतम न दिखाई पड़ जाय। उसे इस कार्य से बहुत कुछ सन्तोष हो जाता और वह कुछ प्रसन्न हो उठती। मेम साहब को आशा होने लगी कि धीरे-धीरे उसकी अवस्था सुधर जायगी। पर यह अवस्था अधिक दिनों तक स्थिर न रह सकी। उसने नरकुंडा जाना भी बन्द कर दिया। उसकी अवस्था फिर प्रतिदिन शोचनीय हो चली। अब मेम साहब ने उसे सारी बातें बता देना ही अपना कर्तव्य समझा। उन्होंने कहा—"लिसबैथ, उस नवयुवक ने तुम्हारे धैर्य के निमित्त ही ये सब बातें कही थीं। यह तुम्हारी मूर्खता के सिवा और क्या है जो तुम एक अँगरेज़ से ब्याह करना चाहती हो! फिर वह एक अँगरेज़ बालिका को उसका पाणि-ग्रहण करने का वचन भी दे चुका है। लिसबैथ ने कहा—"ये सब बातें मुझे असम्भव प्रतीत होती हैं। मेम साहब, तुम्हीं ने तो कहा था कि वह लौटकर फिर आवेगा। यही बात उसने भी कही थी। फिर सब बातें कैसे झूठ हो सकती हैं?"

"मैंने ये बातें तुम्हें धैर्य्य देने ही के लिए कही थीं लिसबैथ!" मेम साहब ने कहा।

लिसबैथ अधीर हो उठी। उसने कहा—"तब, मेम साहब, तुमने मुझसे सब झूठी बातें कहीं—तुमने और उसने!" मेम साहब का सिर झुक गया। वे मौन रहीं। लिसबैथ भी चुप रही। एक क्षण के लिए निस्तब्धता छा गई। लिसबैथ घाटी की ओर चली गई और फिर पहाड़ी लड़कियों के देश में आई। उसके कपड़े मैले थे पर नाक और कान में बालियाँ नहीं थीं। पहाड़ी लड़कियों की तरह उसके बालों की गुथी हुई चोटियाँ झूम रही थीं।

उसने कहा—"मेम साहब, मैं अपनी जाति में फिर जा रही हूँ। तुमने लिसबैथ को मार डाला है। तुम्हारे सामने सूनों की बेटी, पहाड़ी की लड़की, और तारादेवी की लौंड़ी खड़ी है—लिसबैथ नहीं! ओफ़! तुम सब... तुम सब अँगरेज़ निरे मिथ्यावादी होते हो!"

मेम साहब इन बातों को सुनकर अवाक् रह गईं। इस बात से उन्हें गहरा मानसिक आघात पहुँचा। लिसबैथ चली गई और फिर अपने पूर्वजों के देवताओं की उपासिका बन गई। फिर वह कभी न लौटी।

वह अपनी जाति के उन्हीं लोगों में मिल गई जिन्हें लोग [illegible] कहकर पुकारा करते हैं। कुछ काल के बाद उसने एक लकड़हारे से अपना ब्याह भी कर लिया, जो उसे और पहाड़ियों की तरह पीटता भी था! उसका सौन्दर्य लोप होने लगा।

कभी कभी मेम साहब कह उठतीं—"मूर्तिपूजकों के विषय में कोई भी सिद्धान्त स्थिर करना सर्वथा असम्भव है। मुझे विश्वास है कि लिसबैथ ने हृदय से ख्रीस्ट-धर्म को कभी स्वीकार नहीं किया था।" पर क्या मेम साहब के इस कथन में सत्य का कुछ भी आधार था? जब लिसबैथ चर्च में लाई गई थी, क्या उस समय उसकी उम्र पाँच सप्ताह से भी कम नहीं थी?

लिसबैथ बहुत दिनों तक जीवित रही और जब मरने लगी तब बहुत बुढ्ढी हो चुकी थी। वह खूब फर्राटे के साथ अँगरेज़ी भी बोल लेती और कभी कभी बहुत शराब पी लेती तब नशे में अपनी अतीत काल की प्रेम-कथा का सारा हाल लोगों को सुनाती।

फटे-पुराने चिथड़े पहने हुए सूखी और जर्जर लिसबैथ को देखकर क्या कोई कह सकता था कि वह खोटगढ़ मिशनवाली लिसबैथ है?

सवैया

लेखक, साहित्यशिरोमणि पंडित गिरिधर शर्मा, नवरत्न, काव्यालङ्कार

(१)

द्विजराज हुए से हुआ फल क्या
यदि ज्ञान के दीप लगाये नहीं।
धिक क्षत्रिय-जाति में जन्म लिया
यदि लोक के त्रास नसाये नहीं।
सब व्यर्थ है वैश्य के गेह हुए
यदि विश्व में वैभव छाये नहीं।
किस काम को मानव-जन्म लिया
यदि मानव-काम में आये नहीं॥

(२)

कह दो उनसे हम भारतवासी
सुधी जन हैं कुछ क्रूर नहीं।
हम वीर हैं वीरता-गाहक हैं
जग-नाशक दानव क्रूर नहीं।
मिलना यदि हो हमसे मिल लो
हिय माते हैं आनँदपूर नहीं।
तुम हो हमसे यदि दूर नहीं
हम हैं तुमसे कुछ दूर नहीं॥

(३)

हम आर्य हैं नीति-उपासक हैं
अनरीति गहेंगे कभी कुछ ना।
हड़पेंगे नहीं हक़ और का त्यों
अपना भी तजेंगे कभी कुछ ना।
श्रम सेंत में लेंगे किसी से नहीं
धन सेंत में देंगे कभी कुछ ना।
उपकार करेंगे सदा सबका
अपकार करेंगे कभी कुछ ना॥

अशोक के प्रस्तर-लेख

लेखक, श्रीयुत विजयेन्द्रकुमार माथुर

कार्लाइल ने एक स्थान पर कहा है कि उस देश को जिसका प्राचीन इतिहास नितान्त शून्य हो, परम सौभाग्यशाली समझना चाहिए। किन्हीं अंशों में इस विचारविज्ञ की यह उक्ति बहुत कुछ ठीक है, किन्तु मेरी समझ में यह उन्हीं देशों पर अधिक लागू होती है जिनकी प्राचीन सभ्यता संसार के इतिहास में अपना कोई महत्त्व-पूर्ण स्थान नहीं रखती। नहीं तो भारत जैसे देश के सम्बन्ध में जिसकी पुरातन सभ्यता और संस्कृति आज इस बीसवीं शताब्दी के नवीन युग में भी लोगों को विस्मित कर देती है और जिसका गौरव-पूर्ण प्राचीन इतिहास हमारी इस दुरवस्था में भी हमें सान्त्वना देकर आगे बढ़ने के लिए प्रोत्साहित करता है ऐसे देश के लिए यह कहना कि यदि उसका प्राचीन इतिहास न होता तो वह उन्नति के पथ पर अब तक कहीं आगे निकल गया होता, विचारहीनता का ही द्योतक है।

हमारे देश के प्राचीन इतिहास के जीर्णोद्धार का कार्य अभी आरम्भ ही हुआ है। यों तो अठारहवीं सदी से ही अँगरेज़ों की प्रभुता के विकास के साथ साथ योरप के अनेक विद्वानों ने हमारे इतिहास के निर्माण में हाथ लगाया है और उसे समझने की कोशिश की है और हमें इसके लिए उनका कृतज्ञ होना चाहिए, किन्तु धीरे-धीरे भारतीय इतिहास की प्राचीनता इतनी अधिक बढ़ती जाती है कि महासागर की भाँति उसकी थाह पाना ही कठिन प्रतीत हो रहा है। बड़े-बड़े इतिहासज्ञ यह समझने लगे हैं कि तद्विषयक हमारा ज्ञान अभी बहुत ही थोड़ा है। वुली साहब ने जो संसार के प्रसिद्ध पुरातत्त्वज्ञ हैं, हाल में ही 'टाइम्स' के द्वारा भारत में की गई खोजों का वर्णन करते हुए यह सम्मति प्रकट की है कि यदि संगठित रूप से पुरातत्त्व-विषयक खोज की जाय तो बहुत कुछ आशा है कि इस देश में मनुष्य की प्राचीनतम सभ्यता के अवशेष मिलें।
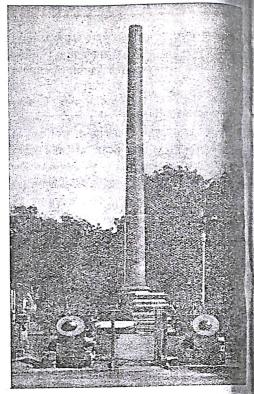
[इलाहाबाद के क़िले में अशोक की लाट]

यहाँ पुरातत्त्व के विषय को न लेकर हम भारत के मुखोज्ज्वलकारी महान् सम्राट् अशोक के विषय में कुछ कहना चाहते हैं। हमारे इतिहास में क्या, संसार के इतिहास में धर्मराज अशोक की समता नहीं मिलती। इसको पाश्चात्य इतिहासकार भी स्वीकार करते हैं। श्री० एच० जी० वेल्स ने अपने संसार के इतिहास में अशोक को सर्वश्रेष्ठ सम्राट् माना है।

अशोक का राजत्वकाल तीसरी शताब्दी ई० पू० (२६६ ई० पू०-२३७ ई० पू०) निश्चित हुआ है। हमारा प्राचीन इतिहास अधिकतर अन्धकार के गर्त में ही पड़ा हुआ है, किन्तु यह सौभाग्य का विषय है कि अशोक-काल की अनेक बातों का पता स्वयं अशोक के लिखवाये हुए लेखों-द्वारा लग जाता है। इतिहास का साधारण विद्यार्थी
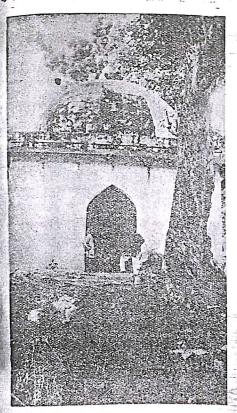
[शिला-लेखवाले मकान का बाहर से लिया गया चित्र]

भी जानता है कि अशोक सम्राट् चन्द्रगुप्त का जिसने सर्वप्रथम भारत को राष्ट्रीय एकता के सूत्र में बाँधा, पौत्र और महाराज बिन्दुसार का पुत्र था। कलिङ्ग के प्रलयङ्कर युद्ध के बाद अशोक की जीवन-धारा की गति में महान् परिवर्तन हुआ और वह राजनैतिक अथवा भौतिक विजय से उदासीन होकर बौद्ध-धर्म में प्रविष्ट हुआ तथा उसने धर्म-द्वारा संसार को विजय करने का मार्ग ग्रहण किया। भारत के कोने-कोने में उसने धर्म का डङ्का बजवा दिया और संसार के सम्मुख ऐसा ऊँचा किन्तु व्यवहार-गम्य आदर्श रक्खा जो इतिहास में अभी तक बेजोड़ है।

इस कार्य के लिए अशोक ने जो साधन ग्रहण किये उनमें सबसे अधिक उपयोगी सिद्ध हुए उसके प्रस्तर-लेख। इनमें उसने अपने धर्म-सम्बन्धी सिद्धान्तों का प्रतिपादन, धर्म की परिभाषा, अपनी प्रजा और राज-कर्मचारियों के नाम विज्ञप्तियाँ और अपने जीवन से सम्बन्ध रखनेवाली घटनाओं को सन्निहित किया है। इन लेखों में उसने अपने हृदय की उमड़ी हुई भावनाओं को इस प्रकार सत्यता और सरलता से व्यक्त किया है कि आज भी २,००० वर्षों के पहले के लिखे हुए इन लेखों को पढ़कर उस महान् आत्मा के लिए हमारा मस्तक श्रद्धा से नत हो जाता है। वास्तव में ये लेख पत्थर की लकीर के समान ही अमर हो गये हैं और आनेवाले युगों को अपनी धर्म-ज्योति की ज्वाला से सदैव प्रकाशमान करते रहेंगे।

अशोक के प्रस्तर-लेखों को तीन भागों में विभक्त किया जा सकता है—

(१) **१४ शिला-लेख**—इसी श्रेणी में लघु शिला-लेख भी शामिल हैं।

(२) **७ स्तम्भ-लेख**—इसी श्रेणी में लघु स्तम्भ-लेख भी शामिल है।

(३) **गुफा लेख**—ये सब लेख कुछ आवश्यक फेर-फार के साथ तत्कालीन जनता की भाषा पाली तथा ब्राह्मीलिपि में अङ्कित हैं।

१४ शिला-लेख—ये लेख एक क्रम से गिनती में १४ हैं और भारतवर्ष के ७ विभिन्न स्थानों में मिले हैं। उन स्थानों के नाम ये हैं—

(१) शाहबाज़गढ़ी (पेशावर-ज़िले के यूसुफ़ज़ाई-डिवीज़न में)—जनरल कोर्ट ने सर्वप्रथम इसकी खोज की थी। यह शिला २४ फ़ुट लम्बी, १० फ़ुट ऊँची और १० फ़ुट चौड़ी है। कनिंघम साहब के मत से प्राचीन बौद्धतीर्थ पोलुश इसी प्रदेश में स्थित था। सम्भवतः यह स्थान अशोक के यवन-प्रान्त की राजधानी था।

(२) मानसेहरा—यह स्थान भी आधुनिक सीमा-प्रान्त के अबूताबाद नामक नगर से १५ मील उत्तर है। अशोक के लेख यहाँ ३ चट्टानों पर खुदे हुए हैं। यह स्थान उत्तर-पश्चिम में स्थित देशों और भारतवर्ष को मिलानेवाले पथ पर स्थित है। अतएव अशोक के धर्मप्रचार के लिए उचित केन्द्र रहा होगा।

(३) कालसी—यह स्थान देहरादून के पास और टोंस और यमुना के सङ्गम पर स्थित है। कालसी के लेख का पता सर्वप्रथम १८६० ईसवी में फ़ोरेस्ट साहब ने लगाया था। यहाँ की चट्टान १० फ़ुट लम्बी, १० फ़ुट ऊँची और ८ फ़ुट मोटी है। लेखों से दाहने हाथ की ओर एक हाथी का चित्र बना हुआ है, जिस पर 'गजतम' लिखा है। इसका सम्बन्ध बुद्ध से है। (बौद्धधर्म के विविध चिह्नों में से हाथी भी एक है)। यह चित्र अशोक के बौद्धधर्मी होने का प्रमाण है।

(४) गिरनार—यह काठियावाड़ के जूनागढ़ नगर से आध मील पूर्व में है। कर्नल टॉड ने १८२२ ईसवी में यहाँ के शिला-लेख को सर्वप्रथम खोजा था। इसी शिला पर स्कन्दगुप्त और रुद्रदामन के प्रसिद्ध लेख भी खुदे हुए हैं।

(५) सोपारा—यह बम्बई के थाना नामक ज़िले में है। यहाँ आठवें धर्मलेख का कुछ भाग एक टूटी चट्टान पर लिखा पाया गया है। सम्भवतः यहाँ भी और स्थानों की भाँति चौदह लेख रहे होंगे। सुपारा सुपारक नाम से प्राचीन समय में प्रसिद्ध बन्दरगाह था, जिसका वर्णन महाभारत तथा टालेमी और पेरीप्लस की पुस्तकों में मिलता है।

(६) और (७) ये दो स्थान धौली (उड़ीसा के पुरी नामक ज़िले में) और जोगड़ा में (मदरास के गञ्जाम-ज़िले से १८ मील उत्तर-पश्चिम में) हैं। अशोक के समय में ये दोनों नगर कलिङ्ग के प्रान्त में स्थित थे। इन दोनों स्थानों पर चौदह लेखों में से ११ वाँ, १२ वाँ और १३ वाँ लेख नहीं है, किन्तु उनके स्थान में २ भिन्न लेख खुदे हुए हैं, जो इन स्थानों के प्रान्तीय अधिकारियों के नाम भेजे हुए आदेश हैं।

यह बात विचारणीय है कि ये शिला-लेख भारत की चतुर्दिक् सीमाओं में स्थित हैं और अशोक के महान् सम्राज्य के विस्तार के द्योतक होने के अतिरिक्त सम्राट् की राजनैतिक कुशलता के भी परिचायक हैं। वस्तुतः अशोक का विचार यही रहा होगा कि सीमा-प्रान्त के आस-पास रहनेवाले लोग भी जो प्रायः राज्य के लिए दुःखदायी सिद्ध होते हैं, उसकी धार्मिक और सरल मनोवृत्ति से परिचित हो जायँ।

[शिला-लेख का अन्दर जाकर लिया गया चित्र इस पत्थर पर शिला-लेख खुदा है]

शिला-लेखों का विषय—ऊपर कहा गया है कि ये लेख एक क्रम से गिनती में १४ हैं। संक्षेप में प्रत्येक का विषय निम्नलिखित है—

(१) यह धर्म-लिपि प्रियदर्शी देवानांप्रिय (अशोक की उपाधियाँ) ने लिखवाई। यहाँ किसी जीव की हत्या न होनी चाहिए और न कोई यज्ञ ही। पिछले समय में देवानांप्रिय प्रियदर्शी के रसोई-घर में सहस्रों जीवों की हत्या होती थी, परन्तु इस धर्मलिपि के लिखे जाने के समय केवल दो मयूर और एक हरिण मारे जाते हैं। परन्तु अब से ये जन्तु भी न मारे जायँगे।

(२) प्रियदर्शी देवानांप्रिय के साम्राज्य के प्रत्येक स्थान में और वैदेशिक सामन्तों के राज्यों में भी चोल, पांड्य, सातियपुत्र और केरलपुत्र और ताम्रपर्णि (लङ्का) तक, यवनराजा अंतियक या जो उसके समीपवर्ती राजा हैं, इन सबके राज्यों में प्रियदर्शी ने मनुष्यों और जानवरों की चिकित्सा का प्रबन्ध किया है। जहाँ ओषधियाँ नहीं थीं, वहाँ वे बाहर से मँगवाकर लगवा दी गई हैं। सड़कों पर कुएँ और वृक्ष मनुष्यों और जानवरों के हित के लिए खोदे और लगवाये गये हैं।

(३) प्रियदर्शी देवनांप्रिय का आदेश है—यह लिपि मेरे राज्याभिषेक से १२ वें साल में लिखी गई। मेरे राज-कर्मचारी युक्त राजुक और प्रादेशिक मेरे राज्य में प्रत्येक ५वें वर्ष पर धर्म का प्रचार करने के लिए भ्रमण करेंगे। वे बतावेंगे कि माता-पिता का आज्ञा-पालन, मित्रों, सम्बन्धियों, परिचितों, ब्राह्मणों और श्रमणों के साथ उदारता, अहिंसा, मितव्ययता और संतोष धार्मिक कृत्य हैं।

(४) प्राचीन समय से धार्मिक कृत्यों की अवहेलना की जा रही है, किन्तु जब से प्रियदर्शी ने धर्म का प्रचार प्रारम्भ किया है, युद्ध के ढोल की ध्वनि धर्म की ध्वनि हो गई है और सर्व जनता को विविध प्रकार के धार्मिक प्रदर्शन, जैसे विमान, हाथी, और अग्नि-समूह इत्यादि दिखलाये जाते हैं। सबसे श्रेष्ठ कार्य धर्म की शिक्षा है। मेरे बाद मेरे पुत्र, पौत्र इत्यादि प्रलयकाल तक धर्म का प्रचार करते रहेंगे।

(५) पुण्यकार्य का करना कठिन है, किन्तु मैंने इस कठिन कार्य को किया है। मैंने राज्याभिषेक के १३ वें वर्ष में धर्म महामात्रों की नियुक्ति की, जिनका कार्य धर्म-प्रचार है।

(६) पिछले समय में राज्य-कार्य करने में शीघ्रता का विचार नहीं रक्खा जाता था, किन्तु मेरा आदेश है कि आवश्यक कार्य होने पर मुझे तुरन्त ही बताया जाय, चाहे मैं कहीं भी और किसी दशा में भी क्यों न होऊँ।

(७) प्रियदर्शी आदेश करता है कि किसी भी धर्म के माननेवाले किसी भी स्थान में रह सकते हैं।

(८) प्राचीनकाल में राजाओं का विहार-यात्राओं से बहुत प्रेम था। आखेट इत्यादि उनके मनोरञ्जन थे। इसके विपरीत प्रियदर्शी ने राज्याभिषेक से १० वें वर्ष में सम्बोधि की यात्रा की और उसी का फल यह धर्म-यात्रा है, जिसमें ब्राह्मणों, श्रमणों और वृद्ध पुरुषों की सेवा की जाती है और उन्हें दान इत्यादि दिया जाता है।

(९) बहुत-से मनुष्य अनेक प्रकार के अन्ध-विश्वासजन्य उत्सवों को रोग, विवाह, जन्म इत्यादि के अवसरों पर करते हैं—विशेषकर स्त्रियाँ तो बहुत-सी व्यर्थ की रीतियाँ बर्तती हैं। वास्तव में यह सब व्यर्थ है। धर्म मङ्गल ही सर्वफलों का देनेवाला है, जिसके अर्थ अहिंसा, दान, आज्ञापालन, सेवकों से अच्छा बर्ताव इत्यादि हैं।

(१०) प्रियदर्शी धर्म को ही सबसे बड़ा यश समझता है। इसका पालन करने में एकाग्रता और परिश्रम की आवश्यकता है।

(११) धर्म से अधिक कोई दान नहीं। पिता, पुत्र, भ्राता, स्वामी, मित्र परिचित और पड़ोसी सबको सर्वदा धर्म का ही उपदेश करना चाहिए।

(१२) प्रियदर्शी सब धर्मों के अनुयायियों का सम्मान करता है। मनुष्यों को चाहिए कि अपने चित्त को वश में रक्खें और सब धर्मों का समानभाव से आदर करें।

(१३) राज्याभिषेक से ८ वें वर्ष में प्रियदर्शी अशोक ने कलिङ्ग को विजय किया। इस युद्ध में एक लाख पचास हज़ार मनुष्य बन्दी बनाये गये। एक लाख आहत हुए और इसके कई गुने अधिक मनुष्य घायल हुए। प्रियदर्शी के लिए इस युद्ध का दृश्य बहुत ही दुःख का कारण हुआ और उसके प्रायश्चित्त में उसने धर्म का प्रचार प्रारम्भ किया। अब जितने मनुष्य आहत हुए उसका सहस्रांश भी उसे अत्यन्त व्यथा का कारण होता है। प्रियदर्शी अब धर्म-विजय को सबसे महान् विजय समझता है। उसकी धर्म-शिक्षाओं का अनुसरण राज्यसीमाओं पर स्थित विभिन्न राज्यों के निवासी भी करते हैं। यह धर्मलिपि इसी अर्थ के लिए लिखवाई गई है कि मेरे उत्तराधिकारी

शस्त्र-सम्बन्धी विजय को विजय न समझकर धर्म-विजय के लिए ही सतत प्रयत्न करें।

(१४) यह धर्मलिपि-समूह प्रियदर्शी राजा देवानांप्रिय ने लिखवाया। मेरा राज्य अति विस्तृत है। बहुत कुछ लिखवाया जा चुका है और मैं अभी बहुत कुछ लिखवाऊँगा।

कहीं कहीं इन लेखों में विषय के प्रेम के कारण पुनरावृत्ति कर दी गई है और इस कारण भी कि मनुष्य उन पर आचरण करें।

लघु शिला-लेख—ये दो लेख हैं, जिनमें से पहला उत्तरी मैसूर के सिद्धपुर और ब्रह्मगिरि में, हैदराबाद रियासत के मास्की में, सहसराम (शाहाबाद-बिहार) में, रूपनाथ (जबलपुर) में तथा वैराट (जयपुर) में मिला है। दूसरा लेख केवल मैसूर की प्रतियों में शामिल है।

पहला लेख स्वर्णगिरि के महामात्राओं और आर्य-पुत्र के द्वारा इसिला के महामात्राओं को प्रेषित किया गया है। अशोक का कहना है कि दो वर्ष से कुछ अधिक समय से मैं उपासक हूँ। एक वर्ष तक मैंने धर्मप्रचार का प्रयत्न नहीं किया, किन्तु एक वर्ष से कुछ अधिक हुआ है कि मैं संघ के साथ रहता हूँ और इस समय मैंने कठिन परिश्रम किया है। सर्व जम्बूद्वीप में मैंने देवताओं को मनुष्यों से मिला दिया है। यह कार्य केवल बड़े ही नहीं, किन्तु छोटे राज्य-कर्मचारियों के करने का भी है।

दूसरे लेख का विषय माता-पिता का आज्ञापालन, सर्वप्राणियों के प्रति दयाभाव, सत्य, गुरु के प्रति सम्मान इत्यादि है।—वैराट (जयपुर) में स्थित एक शिला पर अङ्कित भब्रू नामक लेख बौद्धधर्म-पुस्तकों में से उद्धरित कुछ वाक्यों की महत्ता प्रदर्शित करता है।

२ स्तम्भ-लेख—ये ७ लेख ६ स्थानों पर स्थित स्तम्भों पर पाये गये हैं। वे स्थान ये हैं—(१) तथा (२) दिल्ली में हैं। पहले ये स्तम्भ तोपरा तथा मेरठ में थे। वहाँ से फ़ीरोज़शाह तुग़लक ने उन्हें दिल्ली में मँगवा लिया—जैसा कि उसके समकालीन शम्स-ए-सिराज ने लिखा है। (३) इलाहाबाद में है। पहले यह स्तम्भ कौशाम्बी में स्थित था। संभवतः अकबर के राज्यकाल में यह इलाहाबाद के क़िले में लाया गया। (४) लौरिया अराराज में (५) लौरिया नन्दनगढ़ में और (६) रामपुरवा में हैं। ये तीनों स्थान बिहार के चम्पारन-ज़िले में हैं।

इन स्तम्भ-लेखों का विषय इस प्रकार है-

(१) धर्म का कार्य करना कठिन है, किन्तु धर्म-प्रेम, आत्म-परीक्षा और उत्साह इस कार्य को सरल बना देते हैं।

(२) धर्म, सुरुचि, दया, उदारता, सत्यता और पवित्रता का पर्याय है। मैंने मनुष्य, पशु-पक्षियों तथा सर्वजन्तुओं के हित के लिए अनेक पुण्यकार्य किये हैं। यह धर्मलिपि इसलिए अङ्कित करवाई गई है कि दूसरे लोग भी इस पर आचरण करें।

(३) मनुष्य को उचित है कि वह अपने किये हुए कार्यों की पूर्ण परीक्षा करे और कुकर्मों को सदा ध्यान में रखता हुआ उनसे बचे।

(४) प्रियदर्शी ने अपने राज्याभिषेक के २६वें वर्ष में राजुक नामक राजकर्मचारियों को सहस्रों मनुष्यों का नायक बनाते हुए उन्हें शासन के सर्वाधिकार दिये। राजुकों को उचित है कि धर्मपूर्वक न्याय करें। मृत्यु-दण्डप्राप्त बन्दियों को तीन दिन का अवकाश दिया जाता है, जिसमें वे प्रार्थना इत्यादि कर सकें और उनके सम्बन्धी लोग न्यायाधीश से विनय कर सकें कि वह मृत्युदण्ड न दे।

(५) प्रियदर्शी देवानांप्रिय के आदेश से कई प्रकार की चिड़ियाँ, चीटियाँ, कछुवे तथा अनेक भाँति के चौपाये इत्यादि वध करने के अयोग्य विज्ञापित कर दिये गये हैं। वनों में अग्नि न लगाई जाय। विशेष दिनों के अवसर पर पशुओं को दुःख पहुँचानेवाले कार्य न किये जायँ। अपने २६वें वर्ष के राज्यकाल में मैंने २५ बार बन्दियों को मुक्त किया है।

(६) प्रियदर्शी का कथन है कि अपने राज्याभिषेक के १२वें वर्ष से मैंने धर्मलिपियाँ लिखवाईं, जिससे सर्व-जनों का हित हो। सर्व धर्मों को मैं विविध भाँति से सम्मानित करता हूँ, किन्तु स्वेच्छा से धर्म-परिवर्तन को मैं विशेष बात समझता हूँ।

(७) प्राचीन समय के राजाओं ने धर्म की उन्नति के लिए प्रयत्न किया, किन्तु उसका प्रचार सब मनुष्यों

में न हो सका। प्रियदर्शी ने विविध भाँति के उपाय धर्म-प्रचारार्थ किये जैसे, धर्म की शिक्षा का दान, पुरुषों और राजुकों की नियुक्ति जिनका कार्य धर्म-प्रचार है। पुनश्च मैंने धर्म-स्तम्भ स्थापित किये, धर्म-महामात्रों को नियुक्त किया तथा और भी सर्वसाधारण के हित के लिए अनेक कार्य किये।

इस लेख में अशोक ने अपने धर्मार्थ किये गये कार्यों का संक्षिप्त विवरण दिया है।

लघु स्तम्भ-लेख—इस श्रेणी के अन्तर्गत निम्न-लिखित लेख हैं—इलाहाबाद के स्तम्भ के दो लेख, जिनमें पहला जो रानी का आदेश कहलाता है, अशोक की दूसरी रानी और तीवर की माता कारुवाकी की दान-वस्तुओं का वर्णन करता है और दूसरा लेख बौद्ध-संघ में विभेद उत्पन्न करनेवाले भिक्षु और भिक्षुणियों के लिए दण्ड नियत करता है। यह लेख अशोक के तत्त्वाविधान में होनेवाली बौद्ध-महासभा के उपरान्त अङ्कित करवाया गया था। इसी लेख की प्रतिलिपि सारनाथ (बनारस) और साँची (भूपाल) के स्तम्भों पर भी मिलती है। किन्तु सबसे महत्त्वशाली लघुस्तम्भ रुमिनीदइ (बस्ती ज़िले के उत्तर और नैपाल की तराई में स्थित) का है। यहाँ के लेख में अशोक अपनी बुद्ध के जन्मस्थान लुम्बिनी की यात्रा का वर्णन करता हुआ कहता है कि इसी स्थान पर शाक्यमुनि का जन्म हुआ था और इस कारण यहाँ मैंने प्रस्तर की भित्ति और प्रस्तर स्तम्भ बनवाये। इस लेख से बुद्ध के जन्म-स्थान का ठीक पता मिल जाता है। इस स्थान के पास ही नीगलीव ग्राम के पास एक और स्तम्भ लेख मिला है, जिसमें अशोक राज्याभिषेक के १४वें वर्ष में कोनाकमन बुद्ध के स्तूप को बड़ा करवाने और २०वें वर्ष में इस स्थान की यात्रा और स्तम्भ-निर्माण का वर्णन करता है। १९२८ ईसवी में श्री वीरेन्द्रनाथ राय को भुवनेश्वर के लिङ्गराज मन्दिर के पास कपिलेश्वर नामक ग्राम में एक पाषाण मिला, जिस पर रुमिनीदइ लेख की प्रतिलिपि अङ्कित है।

३. गुफा-लेख—ये लेख गया के समीप स्थित 'बराबर' और 'नागार्जुनी' नामक गुफाओं में प्राप्त हुए हैं। बराबर की ४ गुफाओं में से तीन पर अशोक के लेख हैं। इनमें कहा गया है कि ये गुफायें अशोक ने राज्याभिषेक के १२वें वर्ष में आजीवकों के निवास करने के लिए दान में दीं। ये लेख अशोक की धर्म-सहिष्णुता का ज्वलंत प्रमाण हैं, क्योंकि आजीवक लोग बुद्ध के धर्म के माननेवाले नहीं थे।

ऊपर अशोक के शिलालेखों का संक्षिप्त वर्णन किया गया है। कहने की आवश्यकता नहीं है कि ये लेख इस सम्राट् को केवल एक कुशल राजनीतिज्ञ ही नहीं सिद्ध करते, वरन उसको संसार के महापुरुषों और धर्मोपदेशकों में एक विशिष्ट स्थान का अधिकारी बना देने के लिए भी पर्याप्त हैं। इस ज़माने में जब संसार के प्रमत्त और लोलुप राष्ट्रों ने युद्ध, हिंसा, अस्त्र-शस्त्र और अत्याचार को एक राजनैतिक 'आर्ट' का रूप दे दिया है, अशोक की धर्म-लिपियों की मधुर ध्वनि जिसने आज से २००० वर्ष पहले सभ्य संसार को सुख और शान्ति का संदेश तथा अभयदान दिया था, एक विस्तृत स्वप्न की सुखद स्मृति-सी प्रतीत होती है। क्या यह स्वप्न कभी फिर सत्य होगा?

आवेदन

लेखिका, श्रीमती सुमित्राकुमारी सिनहा

मेरे प्यार, तनिक तो बोलो !

तारों का वितान तन हिमकर मेघ-परी से किलक रहा है,
चाँदी की रातों की बातों का रस छल छल छलक रहा है,
मन्दिर भीतर दीपक जलता, द्वार बन्द हैं आओ खेलो।
मेरे प्यार, तनिक तो बोलो !

ओ मेरे सपनों के राजा, हिय-आकाश समाये क्यों थे ?
प्राणों के प्राणों को देकर मुरझे प्राण खिलाये क्यों थे ?
मेरे गीतों में गति भरने निज स्वर की पाँखें तो खोलो !
मेरे प्यार, तनिक तो बोलो !

कसक-क़ण्टकों की टोली में स्वर के फूल खिला तो जाओ,
कनक-रश्मि से स्वर-सुहाग भर अंचल में बरसा तो जाओ,
पंछी थक सोया है मेरा प्राणों में मधु कलरव घोलो !
मेरे प्यार, तनिक तो बोलो !

झूम छननकर नाच उठे मेरी बेहोशी यह इतराकर,
बोलो प्राण, बिना बोले यह गीत चले कैसे इठलाकर,
इस तपती जगती में बोलो, बोलो, मलय पवन-से डोलो !
मेरे प्यार, तनिक तो बोलो !

लघु-पथ की पंथी मैं तो थी, क्यों तुमने पद-चिह्न बिखेरे ?
ले बटोर, अंचल भर, चल दी मंज़िल में ले याद बसेरे ?
किन्तु कठिन पथ घोर तमिस्रा, बोलो, किरणों का घर खोलो !
मेरे प्यार, तनिक तो बोलो !

मौन रहे तो युग युग बीते, पीते कसक, भरे क्षण रीते,
आज पिला दो स्वर का अमृत रोम रोम ध्वनि पी कर जीते,
आज गूँजती ध्वनि, प्रतिध्वनि से, तन मन, झरते स्पन्दन तोलो,
मेरे प्यार, तनिक तो बोलो !

दीर्घ मौन का आश्रय लेकर अन्तस बीच छिपोगे कब तक ?
बिन बरसे मेघों से व्याकुल मँडराते डोलोगे कब तक ?
ओ मानी, मस्तानी तानों से दामिनि की कारा खोलो !
मेरे प्यार, तनिक तो बोलो !

एक प्राचीन हिंदी-व्याकरण

लेखक, श्रीयुत कालिदास मुकर्जी, एम० ए०, एम० आर० ए० एस०

ज तक कई एक हिन्दी-व्याकरण लिखे जा चुके हैं, परन्तु उनमें सबसे प्राचीन कौन है, इसका पता लगाना कुछ हँसी-खेल नहीं है। कुछ विद्वानों की यह राय है कि बाबू हरिश्चन्द्र जी के समय में ही प्रथम हिन्दी-व्याकरण लिखा गया था, परन्तु कोई निश्चित राय इस विषय में आज तक प्रकट नहीं की गई है और अपनी राय प्रकट करना भी बला मोल लेना-सा है। पण्डित रामचन्द्र जी शुक्ल अपने हिन्दी-साहित्य के इतिहास में लिखते हैं--"यह पहले कहा जा चुका है कि भारतेंदु जी और उनके सहयोगी लेखकों की दृष्टि व्याकरण के नियमों पर अच्छी तरह जमी नहीं थी। वे "इच्छा किया," "आशा किया" ऐसे प्रयोग भी कर जाते थे और कभी कभी वाक्य-विन्यास की सफ़ाई पर भी ध्यान नहीं रखते थे। पर उनकी भाषा हिन्दी ही होती थी, मुहावरे के खिलाफ़ प्रायः नहीं जाती थी। पर द्वितीय उत्थान के भीतर बहुत दिनों तक व्याकरण की शिथिलता और भाषा की रूपहानि दोनों साथ साथ दिखाई पड़ती रहीं। ......पर जो कुछ हुआ वही बहुत हुआ और उसके लिए हमारा हिन्दी-साहित्य श्रीयुत ंडित महावीर-प्रसाद द्विवेदी का सदा ऋणी रहेगा। व्याकरण की शुद्धता और भाषा की सफ़ाई के प्रवर्त्तक द्विवेदी जी ही हैं" (पृष्ठ ४५७)। शुक्ल जी की राय से यह सूचित होता है कि द्विवेदी जी के समय से ही लोगों ने व्याकरण-सम्बन्धी नियमों पर विशेष ध्यान दिया। लेकिन क्या उस समय कोई हिन्दी-व्याकरण लिखा गया था, इस विषय में उन्होंने कुछ नहीं लिखा है। कुछ भी हो, प्राचीन पुस्तकों की खोज में मुझे एक हिन्दी-व्याकरण मिला है, जो द्विवेदी जी क्या, भारतेंदु जी के पूर्व का लिखा हुआ है। लेखक हैं एक अँगरेज़--हिन्दुस्तानी सज्जन नहीं। नीचे उस व्याकरण का परिचय दिया जा रहा है।

आलोच्य पुस्तक की लम्बाई ८·५ इंच तथा चौड़ाई ५·८ इंच है। पुस्तक में कुल ७० पृष्ठ हैं। आख्यापत्र की नक़ल यह है—पादरी आदम साहिब कर्के/रचित/बालकों के सिखाने के लिए/प्रश्नोत्तर की रीति से स्पष्ट हिन्दी-भाषा का/व्याकरण।/A/Hindee Grammar/For/The Instruction of The Young,/in the/form of easy Questions and Answers./By/The Rev. M. T. Adam./C. S. B. S./Calcutta./Printed at the School-Book Society's Press, Circular Road; and Sold at the Depository./1827./1000 Copies Sept. 1827.

इसके बाद दूसरे पृष्ठ में "सूचीपत्र" दिया हुआ है। उसकी नक़ल यह है--

इसके बाद एक पृष्ठ "शुद्धिपत्र" दिया हुआ है। इसमें छपाई की भूलें सुधारी हुई दी गई हैं।

आलोच्य पुस्तक नौ-खण्डों में विभक्त है। प्रत्येक खण्ड में कुछ पाठ दिये हुए हैं। इस प्रकार प्रथम खण्ड में पाँच पाठ, द्वितीत खण्ड में पाँच पाठ, तृतीय खण्ड में तीन पाठ, चतुर्थ खण्ड में सात पाठ, पञ्चम खण्ड में चार पाठ, षष्ठ खण्ड में केवल एक पाठ—"रचना की रीति के विषय में", सप्तम खण्ड में दो पाठ, अष्टम खण्ड में पाँच पाठ तथा नवम खण्ड में चार पाठ दिये हुए हैं। तदनन्तर 'कोष' दिया हुआ है। इस पाठ में कुछ शब्दों के अर्थ दिये गये हैं।

जैसा कि आख्यापत्र से विदित होता है, आलोच्य पुस्तक प्रश्नोत्तर की रीति में लिखी हुई है। उदाहरण-स्वरूप प्रथम खण्ड के १ पाठ का पहला प्रश्न यह है—

"प्रश्न। हिन्दी भाषा" की वर्णमाला के प्रकार से विभाग किई गई है?

उत्तर। हिन्दी वर्णमाला में दो भाग हैं, अ आदि जो : विसर्गान्त अक्षर के स्वर कहे जाते हैं, यह एक भाग; और क आदि क्ष पर्य्यन्त जो अक्षर वे व्यञ्जन कहे जाते हैं, यह दूसरा भाग है।"

आलोच्य पुस्तक की भाषा का एवं लेखन-प्रणाली का भी यही नमूना है।

अब आलोच्य पुस्तक के उन पाठों का परिचय दिया जा रहा है जो रोचक हैं अथवा वे पाठ जिनका आधुनिक व्याकरण से पार्थक्य है—

२ प्र०। संज्ञा कितने प्रकारों से भेद किई जाती है?

उ०। प्रकृत नामवाचक, जातिवाचक, भाववाचक, और क्रियावाचक; इन् चार प्रकारों से संज्ञा भेद किई जाती है।

३ प्र०। प्रकृत नामवाचक किस्को कहते हैं?

उ०। प्रत्येक मनुष्य के नाम वा नगर वा देश नदी वा पर्वत इत्यादि के नाम को प्रकृत नामवाचक कहते हैं; जैसा राममोहन, पटना, कुरुक्षेत्र, गङ्गा, विन्ध्य।

७ प्र०। क्रियावाचक किस्को कहते हैं?

उ०। धात्वर्थ मात्र को क्रियावाचक कहते हैं; जैसा, कर्ना, सोना, जाना, खाना, आना, रखना, सुनना, सूंघना, देखना, बोलना इत्यादि। (दूसरा खण्ड, १ पाठ।)

२ प्र०। व्यञ्जनान्त पुल्लिङ्ग संज्ञा का कारक कैसा है?

उ०। वह इस् प्रकार का है।

एकवचन	बहुवचन
कर्त्ता, बालक	कर्त्ता, बालके
कर्म, बालक को	कर्म, बालकन् वा—कों, —को
करण, बालक कर्के	करण, बालकन् वा—कों,—कर्के
सम्प्रदान, बालक के लिये वा बालक को	सम्प्रदान, बालकन्, वा—कों के लिये, वा बालकन् वा—कों, —को
अपादान, बालक से	अपादान, बालकन् वा —कों से
सम्बन्ध, बालक का —के, —की	सम्बन , बालकन् वा —कों का, —के, —की
अधिकरण, बालक में वा बालक के विषय	अधिकरण, बालकन् वा कों मे, बालकन् वा —कों के विषय
सम्बोधन, हे बालक	सम्बोधन, हे बालको

(दूसरा खण्ड ३ पा)

१ प्र०। स्वरान्त स्त्रीलिङ्ग संज्ञा में किस् प्रकार से कारकों की घटना होती है?

उ०। उस्में इस् प्रकार से घटना होती है।

एकवचन	बहुवचन
कर्त्ता, लड़की	कर्त्ता, लड़कियाँ
कर्म, लड़की को	कर्म लड़कियों वा—कीन् को
करण, लड़की कर्के	करण, लड़कियों वा —कीन् कर्के
सम्प्रदान, लड़की के लिये वा लड़की को	सम्प्रदान, लड़कियों के वा —कीन् के लिये वा लड़कियों वा —कीन को
अपादान, लड़की से	अपादान, लड़कियों वा —कीन् से
सम्बन्ध, लड़की का, के, की	सम्बन्ध, लड़कियों वा —कीन् का, के, की
अधिकरण, लड़की में वा लड़की के विषय	अधिकरण, लड़कियों वा कीन् में वा लड़कीयां वा —कीन् के विषय
सम्बोधन, हे लड़की	सम्बोधन, हे लड़कियों

२ प्र०। आकारान्त स्त्रीलिङ्ग संज्ञा में कारकों की घटना किस् प्रकार से होती है?

उ०। सो एकवचन में ईकारान्त शब्द के समान है परन्तु बहुवचन में घटना इस् प्रकार से होती है; जैसा कि माता शब्द।

बहुवचन

कर्त्ता, माता
कर्म, मातान् को
करण, मातान् कर्के
सम्प्रदान, मातान् के लिये वा मातान् को
अपादान, मातान् से
सम्बन्ध, मातान् का, के की
अधिकरण, मातान् में वा मातान् के विषय
सम्बोधन, हे मातो

३ प्र०। अकारान्त और हलन्त स्त्रीलिङ्ग संज्ञा शब्द में कारकों की घटना किस् प्रकार से होती है?

उ०। एकवचन में वे भी ईकारान्त की समान हैं, परन्तु बहुवचन में घटना स प्रकार से होती है, जैसा कि बात शब्द।

बहुवचन

कर्त्ता, बातें
कर्म, बातों को
करण, बातों कर्के
सम्प्रदान, बातों के लिये, वा बातों को
अपादान, बातों से
सम्बन्ध, बातों का, के, की
अधिकरण, बातों में वा बातों के विषय
सम्बोधन, हे बातों

(दूसरा खण्ड ४ पाठ)

३ ०। गुणवाचक शब्द का लिङ्ग कैसें निर्णय किया जाता है?

उ०। नपुंसक लिङ्ग के विषें गुणवाचक शब्द से जो प्रत्यय है, मत् और वत् उसकी पुलिङ्ग में मात् और वान् होता है; जैसा कि, श्रीमात् श्रीमात्, रूपवान्। परन्तु स्त्रीलिङ्ग में मती और वती होता है; जैसा, श्रीमत् श्रीमती, रूपवत् रूपवती। और सब शब्दों का पहिले लिङ्ग की न्याईं जानना; जैसा, सुन्दर, सुन्दरी, भला भली (दूसरा खण्ड ५ पाठ)।

४ प्रश्न। कोई सर्वनाम आपस में युक्त होने सक्ता है क्या नहीं?

उत्तर। हाँ होने सक्ता है स् प्रकार से; जैसा जो जो, जो कोई, जो कुछ् इत्यादि; और इन् से कारक की घटना कर्ने से दोनों कारकत्व को पावते हैं; जैसा, जिस् जिस्को जिस् किसी का, जिस् किस् कर्के इत्यादि (तीसरा खण्ड ३ पाठ)

१० प्र०। क्रिया का काल अथवा नियम किस् प्रकार से कहा जाता है?

उ०। सो स् प्रकार से कहा जाता है।

अकर्मक क्रिया होना
स्वार्थ नियम
वर्तमान काल

एकवचन	बहुवचन
मैं हूं	हम् हैं
तू है	तुम हो
वह है	वे हैं

अपूर्ण भूतकाल

एकवचन	बहुवचन
मैं था	हम् थे
तू था	तुम् थे
वह् था	वे थे

अद्यतन भूतकाल

एकवचन	बहुवचन
मैं हुवा हूं	हम् हुवे हैं
तू हुवा है	तुम् हुवे हो
वह् हुवा है	वे हुवे हैं

अनद्यतन भूतकाल

एकवचन	वहुवचन
मैं हुवा था	हम् हुवे थे
तू हुवा था	तुम् हुवे थे
वह् हुवा था	वे हुवे थे

भविष्यत् काल

एकवचन	वहुवचन
मैं हूंगा, वा होऊंगा	हम् होंगे, वा होवेंगे
तू होगा, वा होवेगा	तूम् होगे, वा होवोगे
वह् होगा, वा होवेगा	वे होंगे, वा होवेंगे

भविष्यत् भूतकाल

एकवचन	वहुवचन
मैं हो चुकूंगा	हम् हो चुकेंगे
तू हो चुकेगा	तुम् हो चुकोगे
वह् हो चुकेगा	वे हो चुकेंगे

अनुमत्यर्थ नियम

२ प्र०। अनुमत्यर्थ नियम से क्या समझा जाता है?

उ०। उस्से केवल आज्ञा और विन्ती समझी जाती है; जैसा कि, ईश्वर की आज्ञान् का पालन करो; हे प्रिय वन्धु लोगो, तुम् वुरे व्यवहारों को त्याग करो।

शक्त्यर्थ नियम।

१ प्र०। शक्त्यर्थ नियम से क्या समझा जाता है?

उ०। उससे साध्यता वा शक्ति समझी जाती है; जैसा, हम सब वहां आज पहुंचने सकें; ऐसा नहीं होने से आज हम् नहीं पहुंचने सक्ते।

(चौथा खण्ड, २ पाठ)

१ प्र०। कर्मणिवाच्य क्रिया किस् प्रकार से कही जाती है?

उत्तर। सो स् प्रकार से, किया जाना।

स्वार्थ नियम

वर्तमान काल

एकवचन	वहुवचन
मैं किया जाता हूं	हम् किये जाते हैं
तू किया जाता है	तुम् किये जाते हो
वह किया जाता है	वे किये जाते हैं

अपूर्ण भूतकाल

एकवचन	वहुवचन
मैं किया जाता था	हम् किये जाते थे
तू किया जाता था	तुम् किये जाते थे
वह् किया जाता था	वे किये जाते थे

अद्यतन भूतकाल

एकवचन	वहुवचन
मैं किया गया हूं	हम् किये गये हैं
तू किया गया है	तुम् किये गये हो
वह किया गया है	वे किये गये हैं

अनद्यतन भूतकाल

एकवचन	वहुवचन
मैं किया गया था	हम् किये गये थे
तू किया गया था	तुम् किये गये थे
वह् किया गया था	वे किये गये थे

भविष्यत् काल

एकवचन	वहुवचन
मैं किया जाऊंगा	हम् किये जांयगे
तू किया जायगा	तुम किये जावोगे
वह् किया जायगा	वे किये जांयगे

भविष्यत् भूतकाल

एकवचन	वहुवचन
मैं किया जा चुकूंगा	हम् किये जा चुकेंगे
तू किया जा चुकेगा	तुम् किये जा चुकोगे
वह् किया जा चुकेगा	वे किये जा चुकेंगे

अनुमत्यर्थ नियम

एकवचन	वहुवचन
मैं किया जाऊं	हम् किये जांय
तू किया जा, वा आप किये जाइये।	तुम् किये जाओ, वा आप लोग किये जाइये
वह् किया जाय	वे किये जांय

शक्त्यर्थ नियम

एकवचन	वहुवचन
मैं किया जाऊं, वा किया जा सकूं	हम् किये जांय, वा किये जा सकें
तू किया जा, वा किया जा सके	तुम् किये जाओ, वा किये जा सको
वह् किया जाय, वा किया जा सके	वे किये जांय, वा किये जा सकें

अपूर्ण भूतकाल

एकवचन	वहुवचन
मैं किया जा सक्ता	हम् किये जा सक्ते
तू किया जा सक्ता	तुम् किये जा सक्ते
वह् किया जा सकता	वे किये जा सक्ते

अद्यतन भूतकाल

एकवचन	वहुवचन
मैं किया जा सका हूं	हम् किये जा सके हैं
तू किया जा सका है	तुम् किये जा सके हो
वह् किया जा सका है	वे किये जा सके हैं

अनद्यतन भूतकाल

एकवचन	वहुवचन
मैं किया जा सका था	हम् किये जा सकेंगे
तू किया जा सका था	तुम् किये जा सकोगे
वह् किया जा सका था	वे किये जा सकेंगे

आशंकाथ नियम

वर्तमानकाल

एकवचन	वहुवचन
जो मैं किया जाऊं	जो हम् किये जावें, वा जायं
जो तू किया जाय	जो तुम् किये जावो
जो वह् किया जाय	जो वे किये जावें, वा जांय

अपूर्ण भूतकाल

एकवचन	वहुवचन
जो मैं किया जाता	जो हम् किये जाते
जो तू किया जाता	जो तुम् किये जाते
जो वह् किया जाता	जो वे किये जाते

(चौथा खण्ड, ६ पाठ)

१ प्रश्न। नकार सहित क्रिया किस् प्रकार से कही जाती है?

उत्तर। जिस् क्रिया के साथ नहीं, वा न, वा मत, इनका योग होय, वही नकार सहित क्रिया कहलावती है; परन्तु इन्में से मत का केवल अनुमत्यर्थ के साथ योग होता है; जैसा कि, मैंने नहीं किया, वह् न करे, तू मत कर।

(चौथा खण्ड, ७ पाठ)।

४ प्र०। किन् शव्दों को परवर्त्ती कहते हैं?

उ०।

तले	सहित	नीचे	सह
साथ	ऊपर	लिये	पास
कारण	निमित्त	वीच	द्वारा
लग	निकट	सङ्ग	मध्य
हेतु	विना	व्यतिरेक	व्यतीत
कर्त्तृक	करणक	पूर्वक	होके
देके	कर्के	अवधि	पर्य्यन्त
लौं	परे	पहले	पश्चात्
आगे	ठिकाने	समीप	पीछे
विपरीत	सन्मुख	ओर	इत्यादि।

ये सव शव्द परवर्त्ती प्रसिद्ध हैं।

(पांचवां खण्ड, २ पाठ)।

जैसा कि ऊपर वतलाया गया है छठवें खण्ड में केवल १ पाठ है, उस पाठ की नकल नीचे दी जा रही है—

छठवा खण्ड

१ पाठ

रचना की रीति के विषय में।

१ प्र०। वाक्य की रचना में कर्त्ता, कर्म, क्रिया, इन्की किस् प्रकार से घटना होती है?

उ०। इस् रीति से।

१—जो केवल कर्त्ता कर्म क्रिया से वाक्य की रचना होय, तव कर्त्ता पहिले, कर्म दूसरे, क्रिया तीसरे होय; जैसा, राजा मन्त्री को आज्ञा देता है।

२—जो वढ़ती वातें होंय, तव सव वातें कर्त्ता के आगे में कही जांय; जैसा कि, एक दुष्ट लोग राजा के आगे प्रधान मन्त्री की वड़ी निन्दा कर्त्ता है।

३—गुणवाचक शव्द संज्ञा के पहिले रक्खा जाय; जैसा सत् गुरु अपनी अटकल् से शिष्य को दण्ड देता है।

४—जो वाक्य की रचना लम्वी होय, अथवा नाना प्रकार की वात एक क्रिया के कर्मकारक का निर्णय करें, तव यही वड़ी वात पहिले कही जाय, पीछे इन् सवके द्वारा निर्णय हुई जो वात, वह् कर्मकारक के प्राप्त होने से पीछे, क्रिया का कर्त्ता उक्त होय; जैसा, जो वालक पैठ के विद्या को सीखे और सदा विद्या के

सीखने में लगा रहे, उसको पण्डित लोग भला जानते हैं।"

अब अन्त में अन्तिम अध्याय "कोष" के विषय में लिखकर स लेख को समाप्त करना है। स अध्याय में कुल १४८ शब्द अर्थ-सहित दिये हुए हैं, उनमें से कुछ ये हैं—

अग्रसर, जो आगे चले अर्थात् अगुवा।
अधिकन्तु, और भी, विशेष से
एवं, ऐसे, और।
कीट, कीड़ा, दिया का मैल।
गौड़, बङ्गदेश, ब्राह्मण की जाति।
घटना, रचना।
घोषणा, स्पष्ट करके कहना।
नायक, प्रापक, स्वामी।
स्वार्थ, अपना, काम।

पाठक सम्भवतः आलोच्य पुस्तक का कुछ परिच[य] पा चुके हैं। इस व्याकरण में कुछ त्रुटियाँ भी हैं। भाषा खड़ी बोली की प्रारम्भिक अवस्था है। उच्चारण के अनुसार शब्द लिखे गये हैं। परन्तु तनी त्रुटियाँ र[हते] हुए भी इस बात पर सान्त्वना होती है कि यह व्याकरण एक अँगरेज-द्वारा सन् १८२७ में लिखा गया था जब कि खड़ी बोली 'प्रेमसागर' के रूप में दिखलाई प[ड़] रही थी, तथा भारतेन्दु जी का उदय उस समय हिन्दी-साहित्याकाश में नहीं हुआ था।

मेरी निर्बलता

लेखक, श्रीयुत श्यामबिहारी शुक्ल 'तरल'

सचमुच मैं कितना निर्बल हूँ!
प्रतिक्षण मेरा जीवन बन्दी,
प्रतिक्षण मेरा यौवन बन्दी;
बन्दी है मेरा मदिर हास,
प्रतिक्षण मेरा क्रन्दन बन्दी;
अज्ञात इंगितों पर बहनेवाला मैं निर्झर का जल हूँ!
देखो मैं कितना निर्बल हूँ!
अपना अस्तित्व न ज्ञात मुझे,
अपना अपनत्व न ज्ञात मुझे;
अपनी लघुता का—गुरुता का-
सम्पूर्ण महत्त्व न ज्ञात मुझे;
मैं सरिता के उर से निकली चीत्कारभरी ध्वनि कल-कल हूँ!
सचमुच मैं कितना निर्बल हूँ!
जीवन यह क्षण-क्षण से निर्मित,
मेरा तन कण-कण से निर्मित;
जड़ता मेरी संज्ञा, मेरा—
अपनापन व्रण-व्रण से निर्मित;
जाने किस विद्युद्धारा से फिर भी इतना मैं चञ्चल हूँ!
जग में मैं कितना निर्बल हूँ!

समुद्र में संध्या

रिक्ता
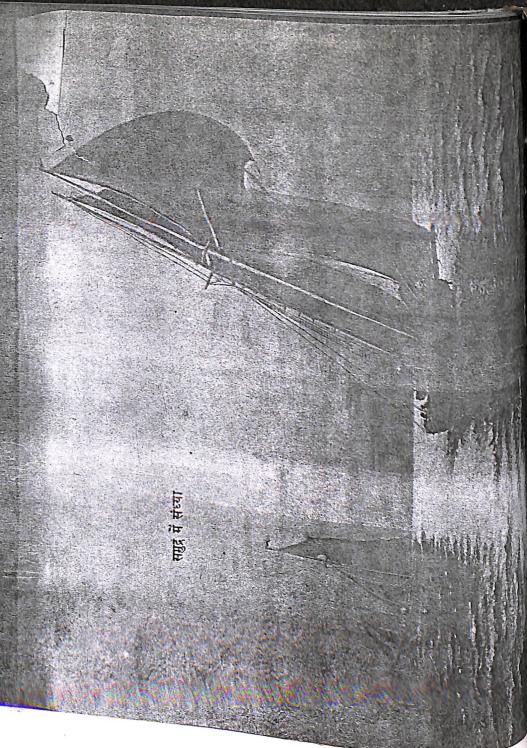
अनुवादक, पण्डित ठाकुरदत्त मिश्र

विवाह के बाद सविता के नाना उसे बुलाने का साहस नहीं कर सके। कारण वे स्वयं उसके श्वशुर जगत बाबू के समान समृद्धिशाली व्यक्ति तो थे नहीं, इस परिवार में उनकी दौहित्री का विवाह हो गया, यही उनके लिए बड़ी बात थी। परन्तु यहाँ सविता को जो उपेक्षा का जीवन बिताना पड़ता था उसका हाल वह माता तथा नाना को नहीं मालूम होने देना चाहती थी। अतएव काशी-यात्रा के सिलसिले में उन लोगों ने जब उसे देखने आने की सूचना दी तो सविता ने उन्हें यहाँ आने से रोक दिया। इस कारण सविता की माता स्टेशन पर ही रुकी रहीं, केवल उसके नाना आकर उसे देख गये।

(११)

जोरों का जाड़ा पड़ रहा था। तिस पर रात भर बराबर पानी बरसता रहा। सवेरा होते होते बूँदों की झड़ी तो बन्द हो गई, परन्तु सूर्य्य भगवान् दस बजे तक मेघों की आड़ में ही छिपे रहे। इतनी देर के बाद उन्होंने ज़रा ज़रा-सी झलक भर दिखानी आरम्भ की। असमय की वर्षा के कारण सर्दी इस तरह विकराल रूप धारण करती जा रही थी कि उसका सहन करना अत्यन्त ही क्लेशकर हो उठा था। गरम कपड़े न होने के कारण जिन लोगों को आग की आँच ही सर्दी से बचने का एकमात्र आधार होती है, केवल वे दीन-दुखिया लोग ही यह अनुभव कर पाते हैं कि इस तरह के दिन कितने दुःखदायी होते हैं। या इसे वे अनुभव कर पाते हैं जिन्होंने दुःख की सृष्टि की है और इस मतलब से की है कि दुःख का आघात लगने के कारण लोग दुःखों का हरण करनेवाले का स्मरण कर सकें।

मेघों से आच्छादित इस तरह के उदास दिन में भी स्टीम भरे हुए इंजन की तरह मनुष्य की जीवन-यात्रा की गति बराबर जारी रही, परन्तु किसी भी काम में हाथ प्रायः किसी का भी तेज़ी से नहीं चल रहा था। इस प्रकार की शिथिलता—आलस्य में एक गुण और है। इसके कारण हाथ-पैर को पङ्गु बनाकर मन चाबुक खाये हुए घोड़े के से वेग से किसी कल्पना-लोक को उन्मत्तभाव से दौड़ जाता है। अतीत का खोया और भूला-भुलाया हुआ दृश्य पट काले हृदय को उज्ज्वल करके जाग उठता है। पुराने बन्धु-बान्धवों की, खोये हुए शैशव की ऐसे दिन में अधिक याद आती है।

धरित्री के जलते हुए वक्ष को शीतल करके एक स्निग्ध, सुगन्धिमय श्वास बहता जा रहा था। धूम्र वर्ण की शाल से पैर तक ढँके हुए अरुण बैठा एक पुस्तक पढ़ रहा था।

गत रात्रि में जो वर्षा हुई थी उसके कारण कोई पुस्तक भीगी तो नहीं, यह देखने के लिए ही अरुण ने कमरा खोला था। परन्तु पन्ने उलटते उलटते एक किताब में वह रुक गया। शुभेन्दु ने आकर कहा— भैया, इस ओरवाली आलमारी की कुंजी ज़रा मुझे तो दे दो।

"क्यों कुंजी क्या करोगे?"

"मुझे थोड़ी-सी पुस्तकें निकालनी हैं।"

"इस समय पुस्तकें क्या होंगी?"

"होंगी क्या? पहले तुम कुंजी तो दो।"

अरुण ने ड्रार में से निकालकर कुंजी शुभेन्दु को दे दी। शुभेन्दु आलमारी खोलकर पुस्तकें छाँटने लगा।

कमरे से बाहर बरामदे के नीचे ऊपरवाले हिस्से के नल से पानी गिरता था, इससे ज़मीन कुछ कट गई थी और वहाँ पानी भर जाया करता था।

छप छप शब्द सुनकर अरुण ने कहा—कौन है वहाँ?

उत्तर आया—मैं हूँ, मैं हूँ।

"तुम कौन हो?"

"मैं हूँ पुलक बाबू।"

हँसते हँसते अरुण ने शुभेन्दु को पुकारकर कहा—पटला, ज़रा निकलकर देख तो। बाबू कौन-सी बाबूगिरी कर रहे हैं। शुभेन्दु निकलकर देखा तो जूते-मोज़े के सहित पैर को जल में डुबाये हुए पुलक बड़े उल्लास से छप छप कर रहा है। शुभेन्दु को देखते ही वह खिलखिला कर हँस पड़ा।

शुभेन्दु ने कहा—तो क्या तू यहीं बाबूगिरी कर रहा है रे बन्दर! चल, जल्दी चला आ वहाँ से?

हँसकर मस्तक हिलाते हुए पुलक ने कहा—न, मैं तो न आऊँगा यहाँ से।

शुभेन्दु ने कहा—न अयेगा तो मार न खायगा!

पुलक ने अकड़ के साथ कहा—हुत्! मारोगे तो मैं मा से कह दूँगा।

पुलक को इसके सिवा धमकी की और कोई बात मालूम नहीं थी। परन्तु यहाँ उसकी धमकी काम न दे सकी। शुभेन्दु ने उसे पानी में से निकाल लिया और मा के पास ले जाकर कहने लगा—मा, ज़रा अपने पुलक की करतूत तो देखो।

मेनका उस समय पूजा कर रही थी। द्वार के पास खड़ी होकर सविता ने कहा—मा पूजा कर रही हैं।

"यह देखो भाभी। ज़रा अपने पुलक बाबू की करतूत देख लो। इन्होंने जूता-मोजा सब भिगो लिया है। बड़े भारी बाबू हैं ये।"

पुलक का भीगा हुआ जूता-मोजा उतारते उतारते सविता ने कहा—ऐसे दुष्ट लड़के से हम लोग कोई भी बात न करेंगे।

सविता के कन्धे पर हाथ रक्खे हुए पुलक ने कहा—तुम? भाभी जी, तुम न बात करोगी?

सविता ने कहा—नहीं।

पुलक सविता के गले से लिपट गया। वह कुण्ठित स्वर से कहने लगा—अब मैं कभी किसी प्रकार की दुष्टता न करूँगा। भाभी, कभी न करूँगा।

शुभेन्दु की नव विवाहिता बधू आशा सात दिन तक रहकर फिर अपने पित्रालय को चली गई थी। मेनका ने कहा—यह तो सविता की तरह के गये-गुज़रे घर की लड़की है नहीं। यह क्यों पिता के घर नहीं जायगी। विशेषतः ऐसी परिस्थिति में जब कि इन्हीं इतने दिनों में रो-धोकर आशा ने घर भर को परेशान कर दिया था। वह कुछ शान्त रहा करती थी केवल सविता के पास। सविता विवाह के बाद से मायके नहीं जा सकी, यह सुनकर तो वह बेचारी मारे भय के सकपका गई थी। उसे भय था कि कहीं ये लोग मुझे भी न जाने दें।

आशा को बुलाने के लिए जब आदमी आये तब मेनका की इच्छा हुई कि इसे दो-चार दिन और रोक लिया जाय। परन्तु अरुण ने कहा—उसे रोकने की क्या ज़रूरत है? नई बहू ठहरी यह। इसे रोकने से क्या लाभ? लोग बुलाने आये हैं तो जाने दो।

मेनका और कुछ नहीं बोलीं। आशा मायके भेज दी गई। सविता मन ही मन हँसी। वह सोचने लगी कि केवल मेरे ही लिए विधि-व्यवस्था और प्रकार की है। मैं इन लोगों की कृपा के द्वारा खरीदी गई दासी भर हूँ। क्या मेरा पावना अब एक कानी कौड़ी भी नहीं, सब विवाह के ही समय अदा हो गया?

आशा को छोड़ कर शुभेन्दु ससुराल से लौट आया था। सविता ने उससे कहा—तुमने मुझे जो किताब देने को कहा था, शुभेन्दु वह दी नहीं फिर।

शुभेन्दु कुछ लज्जित-सा हो गया। वह कहने लगा—उस दिन मैंने किताबें निकाल तो ली थीं भाभी जी, किन्तु पुलक ने गड़बड़ कर दिया। अच्छा, अब लाये देता हूँ।

लज्जित होने के कारण शुभेन्दु पुस्तकें लाने के लिए इतना उतावला हो उठा था कि एक एक छलांग में दो-दो, तीन-तीन सीढ़ियों को पार करता हुआ नीचे उतर गया। उसका आग्रह देखकर सविता हँस पड़ी।

थोड़ी-सी किताबें निकालकर शुभेन्दु आलमारी की कुंजी अरुण को देने गया। अरुण ने हँसकर कहा—इतनी पुस्तकें क्या करेगा रे? भीतर से माँग हुई है क्या?

शुभेन्दु ने उतावली के साथ कहा—हाँ। अरुण ने अवज्ञा की हँसी हँस दी, परन्तु वह कुछ बोला नहीं। वह सोचने लगा—यह शुभेन्दु का पागलपन है।

पुस्तकें देखकर सविता ने कहा—ओह! तुम तो

बहुत-सी पुस्तकें उठा ले आये। ये सब मुझे एक साथ दे दोगे तो मैं चिन्ता में पड़ जाऊँगी। ये हमारे पुलक तो ज़रा भी भले आदमी नहीं हैं।

शुभेन्दु ने कहा—इससे मेरा कोई मतलब नहीं। कम से कम मेरी तो तक़ाज़े से जान छूट गई।

"हाँ, तुम्हारे ऊपर तो तकाज़ा नहीं रहा। परन्तु क्या इन पुस्तकों के मालिक तुम्हीं हो? यदि हाँ तो भी मुझे बहुत कुछ भरोसा हो जाता।"

"मालिक कोई भी हो, आपका तो पढ़ने से ही मतलब है।"

"ऐसी बात नहीं है,—तो भी निर्भय हो सकती हूँ, यदि संयोगवश किसी पुस्तक का कोई पृष्ठ फट जाय या कहीं किसी प्रकार का धब्बा पड़ जाय।"

शुभेन्दु ने हँसकर कहा—कम से कम पुस्तकें दूसरे की नहीं हैं। आप उन्हें निर्भय होकर पढ़ सकती हैं और यदि चाहें तो फाड़ भी सकती हैं, दण्ड न देना पड़ेगा।

"तब तो ठीक है!"

नहीं, इसके लिए बिलकुल चिन्ता नहीं है!—यह कह कर शुभेन्दु चला गया।

सविता ने सोचा कि अवकाश के समय इन्हें पढ़ा करूँगी, इससे वह उठाकर उन पुस्तकों को उपयुक्त स्थान पर रखने लगी। इतने में उसने देखा कि प्रत्येक पुस्तक पर अरुण का नाम लिखा हुआ है। उसका मुँह लाल हो गया। पुस्तकों को उसने चुपचाप रख दिया।

कुछ दिनों के बाद जगत बाबू कुछ अस्वस्थ हो गये। वे मकान के भीतर लेटे हुए थे। उनकी मुखाकृति से उनके शरीर की अवस्था का भली-भाँति अनुभव नहीं हो पाता था। हृद्रोग के कारण उन्हें यदा-कदा शय्या-ग्रहण करने के लिए बाध्य होना पड़ता था। उस दिन भी वे हृदय की ज़ोरों की धड़कन के कारण व्याकुल होकर चारपाई पर पड़े थे। पास ही बैठी हुई मेनका उनके मस्तक पर हाथ फेर रही थी।

हाथ में एक टेलीग्राम लिये हुए अरुण घर में प्रवेश करते करते चिन्तितभाव से बरामदे में खड़ा हो गया। टेलीग्राम कटक से आया था। वहाँ मेनका की माता की तबीअत बहुत ज़्यादा ख़राब थी। काफ़ी वृद्ध भी हो चुकने के कारण उनके जीवन की आशा नहीं थी। इससे वे मेनका से अन्तिम भेंट करने के लिए बहुत व्याकुल थीं। यही बात अरुण के मामा ने संक्षेप में सूचित की थी।

परन्तु मा को यह बात इस समय बतलाना ठीक है या नहीं, अरुण इसी चिन्ता में पड़ा था।

उसी दालान के एक दूसरे कोने में बैठी हुई सविता बिस्कुट के एक खाली डिब्बे में थोड़ी-सी सूखी हुई बड़ियाँ भर रही थी। वहाँ खड़े-खड़े सविता को संकुचित करने की अपेक्षा अरुण स्वयं ही अधिक संकुचित हो रहा था।

इस लड़की का विवाह हुआ था किशोर-अवस्था की सीमा में आकर। अब इसके यौवन की तीव्र और उज्ज्वल दीप्ति आँखों में लगती थी, चाहे वह अच्छी लगती रही हो या बुरी लगती रही हो। उसके ऊपर अपना कोई कर्तव्य या दायित्व है, यह अरुण किसी दिन भी न स्वीकार करता। उसके सुख-दुख से अपना किसी प्रकार का सम्पर्क है, इस बात की कल्पना तक से वह क्रुद्ध हो उठता। अत्यन्त अनिच्छा होने पर भी उसे वह विवाह करना पड़ा था। अतएव उसने निश्चय किया था कि इस विवाह को ठीक उसी तरह उड़ा दूँगा जिस तरह आदमी किसी रात को कोई बुरा सपना देखता है और फिर उसे भुला देता है। इसलिए उपेक्षा और अवज्ञा के कारण अरुण किसी दिन सविता से कोई बात तक नहीं करता था।

अरुण के मन में यह बात आया करती कि जिससे मैं किसी प्रकार की कामना नहीं करता हूँ वही मुझसे किसी प्रकार की कामना किस अधिकार से करने लगी।

सविता मस्तक झुकाये हुए काम कर रही थी। अरुण को देखकर भी मानो उसने उसे देखा नहीं, वह बराबर अपना काम करती रही। न तो उसने किसी प्रकार का आग्रह प्रदर्शित किया और न किसी प्रकार का सङ्कोच ही प्रदर्शित किया।

अरुण को देखकर पुलक ने कहा—देखो बहू, उधर बड़े मामा खड़े हैं।

अरुण ने पुकारा—पुलक, ज़रा सुनो तो!

सविता की ओर बढ़ते-बढ़ते मुँह फेरकर पुलक ने कहा—क्या है ?

"मैं कहता हूँ कि इधर आओ ।"

एक विज्ञ पुरुष के समान पुलक ने कहा—इतने ज़ोर से मत बोलो, नाना जी की तबीअत ख़राब है ।

"अच्छा, अब ज़ोर से न बोलूँगा । तुम आओ ।" घड़ियाँ भर चुकने के बाद सविता उठ गई ।

मेनका ने आकर कहा—तू यहाँ खड़े खड़े क्या कर रहा है, अरुण ?

"कुछ नहीं कर रहा हूँ । एक काम है । बाबू जी क्या सोये हैं ?"

"नहीं, वे तो जाग रहे हैं ।"

"कैसी तबीअत है उनकी ?"

"कहते तो हैं कि अब कुछ अच्छी है । तू जाता क्यों नहीं, देख न आ ।"

अरुण ने पिता के कमरे में प्रवेश किया । तार पढ़कर उसने उन्हें सुनाया । उन्होंने स्वयं उसे लेकर एक बार पढ़ा और कहने लगे—तब उन्हें जाना ही होगा ।

अरुण ने कहा—आपका शरीर अच्छा नहीं है । ऐसे समय में क्या मा जा सकेंगी ?

"जा क्यों न सकेंगी ? मेरा शरीर वैसा ख़राब नहीं है । पटला उन्हें लेकर चला जाय और वहाँ दो दिन रहकर साथ में लिये हुए फिर चला आवे । तुम उन्हें बुलाओ तो बताऊँ ।"

अरुण ने कहा—पटला की अपेक्षा तो मेरा ही जाना अच्छा होगा। रास्ता आदि भी मुझे सब अच्छी तरह मालूम है ।

पिता ने कर्कश स्वर में कहा—नहीं, अब वहाँ तुम्हारे जाने का कोई काम नहीं है ।

अरुण का मुँह लाल हो उठा । उसने समझ लिया कि पिता ने यह बात किस अभिप्राय से कही है । इससे उसने अपने आपको बहुत अपमानित अनुभव किया । उसने सोचा कि मेरे सम्बन्ध में इस प्रकार की धारणा करना पिता का बहुत बड़ा अन्याय है, मेरे प्रति उनका यह अत्याचार है । अन्त में माता को बुलाकर उसने सारी बातें बतला दीं और यात्रा की व्यवस्था के लिए शुभेन्दु को बुला दिया, तब वहाँ से वह स्वयं खिसक गया । निश्चय हुआ कि सविता घर में रहकर गृहस्थी सँभालेगी और मेनका कटक जायँगी ।

माता की बीमारी का हाल सुनते ही मेनका ने आँसू बहाना आरम्भ कर दिया । उनकी तबीअत अब ज़रा भी नहीं लगती थी । सविता को घर-गृहस्थी के सम्बन्ध की दस तरह की बातें समझाकर वे चली गईं ।

मेनका जिस समय गाड़ी पर बैठ रही थीं, सविता मस्तक झुकाकर उन्हें प्रणाम करने लगी । इतने में उन्होंने उसे छाती से लगा लिया और उसके मस्तक पर हाथ रक्खा ।

सास से इस तरह का कोमल व्यवहार कभी प्राप्त हो सकेगा, इस बात की सविता ने कभी कल्पना तक नहीं की थी । इससे मेनका के आज के व्यवहार से सविता को कुछ आश्चर्य हुआ । वह ज़रा कुछ दुःखी भी हुई । समझ में न आया कि इसका क्या अभिप्राय है ।

रुँधे हुए गले को साफ़ करके मेनका ने मृदु कण्ठ से कहा—सुनो बहू, अभी तुम सारी बातों को अच्छी तरह समझ नहीं पाती हो । अब तुम यहाँ अकेली ही रहोगी, अब ज़रा इस बात के लिए प्रयत्न करना, जिससे जीवन एकदम व्यर्थ ही न जाय । ऐसे घर में आकर भी तुम सुखी नहीं हो सकी हो, इसमें क्या हम लोगों की कम बदनामी नहीं है ? यदि तुममें ज़रा भी चतुरता आ जाती !

मेनका और भी कुछ कहने जा रही थीं, किन्तु शुभेन्दु की उतावली के कारण उन्हें मुँह बन्द कर लेना पड़ा । वह बार बार ताकीद कर रहा था कि अब समय नहीं है, जल्दी चलो, नहीं तो गाड़ी न मिल सकेगी ।

सविता की समझ में कोई बात न आई । सास के हृदय में इस प्रकार की दया, सहानुभूति की इस प्रकार की बाढ़ एकाएक कैसे आगई ? वह हक्का-बक्का-सी होकर कुछ क्षण तक खड़ी रही ।

गाड़ी फाटक के बाहर चली गई । सविता लौटकर अन्यमनस्कभाव से दालान में प्रवेश करने जा रही थी । इतने में जगत बाबू ने पुकारा—बहू !

सविता बहुधा श्वशुर के सामने निकलती नहीं थी, उनसे बोलती भी नहीं थी । इससे उनके पुकारने

पृष्ठ-संख्या ७२ और मूल्य बारह आना है । पुस्तक सजिल्द है और छपाई अच्छी है ।

'अर्घ्य' छोटी-बड़ी अट्ठाईस कविताओं का संग्रह है ।

प्रत्येक नवयुवक कवि जो अपनी पहली रचनाओं को पाठक के सामने उपस्थित करता है, यही आशा करता है कि उसको सहानुभूति और प्रोत्साहन मिले । समालोचक को उस समय तक कवि और उसके पाठक के बीच में बाधक होने की आवश्यकता नहीं, जब तक उसे यह विश्वास हो कि कवि की अमुक कृति पाठकों की रुचि को विकृत न करेगी । यों तो हिन्दी में कविताओं की कुछ ऐसी बाढ़ है कि आये दिन एक नया कविता-संग्रह सामने आ जाता है । फिर भी इसी बाढ़ में से आगे चलकर बहुत कुछ उपयोगी सामग्री भी हाथ लग जाती है। इसलिए अर्घ्य के कवि को हम सहानुभूति और प्रोत्साहन दिये बिना नहीं रह सकते ।

'अर्घ्य' की अधिकांश कवितायें भावना में उसी ढंग में की हैं जो छायावादी—रहस्यवादी के नाम से पुकारी जाती हैं, और जो आधुनिकतम यथार्थवाद एवं भौतिकवाद के प्रवाह के कारण कुछ पीछे-सा पड़ गई हैं । कवि की भावुकता संयत और कल्पना मधुर है । वे होनहार प्रतीत होते हैं । कुछ कवितायें वास्तव में सरस हैं। हम पाठकों से उनके इस पहले संग्रह को पढ़ने की सिफ़ारिश करते हैं ।

४—**युगवाणी**—लेखक, श्री सुमित्रानन्दन पन्त और प्रकाशक, भारती-भण्डार, लीडर प्रेस, इलाहाबाद हैं। पृष्ठ-संख्या ११३ और मूल्य १।) है। छपाई-सफ़ाई तथा गेट-अप उत्तम है ।

'पल्लव' के तीव्र और स्थायी 'सा' के बाद 'रे' के तीव्रता और कोमलता मिश्रित उन्मन 'गुञ्जन' को सुनकर यह आशंका होने लगी थी कि कहीं यह कवि अनुभूति के उद्गार व्यक्त कर लेने के बाद कल्पना के सुनहरे आकाश में भटक तो नहीं जायगा। यह आशंका उनके कल्पना-नाटक 'ज्योत्स्ना' ने और दृढ़ कर दी थी । परन्तु युग की पुकार सुनकर उन्होंने आकाश के बनती-मिटती नीहारिका की ओर से दृष्टि फेर ली, और अपने मन से कहा—

देखो भू को !
जीवप्रसू को ।
हरित भरित
पल्लवित मर्मरित
कुंजित, गुंजित
कुसुमित
भू को !

और अपने सौन्दर्योपासक मन की सहज-वृत्ति को ही भुला देने का प्रयास आरम्भ कर दिया, और 'ताजमहल' जैसी सौन्दर्य की अभिनव सृष्टि को 'मृत्यु का अमर अपार्थिव पूजन' कहकर अपनी पुरानी कविता का 'युगान्त' कर दिया ।

'युगवाणी' में कविता के नये युग की ओर बढ़ने का सन्देश है । हिन्दी के कई कवियों ने विद्रोह-मूलक कवितायें लिखी हैं, जिनमें नई संस्कृति, नये संसार और नये ढंग से वस्तुओं के मूल्यांकन के पर्याप्त लक्षण और संकेत मिल जाते हैं । परन्तु इस तैयारी के साथ सिद्धान्त को इस प्रकार समझ-बूझकर और उसकी व्याख्या करने के बाद नवीन विचार-धारा की कविता लिखने का उपक्रम पन्त जी का अपना अकेला है । कदाचित् कवि को अपने सौन्दर्य-प्रेमी मन को समझाने के लिए और उसे दूसरी दिशा में मोड़ने के लिए इस बौद्धिक उपचार की आवश्यकता अनिवार्य जान पड़ी । 'युगवाणी' गीत-गद्य है, जिसमें, कवि के ही शब्दों में, 'युग के गद्य को वाणी देने का प्रयत्न किया गया है ।' अतः युगवाणी की आलोचना करते समय हम काव्य की दृष्टि को भुलाकर यह देखने का प्रयास करेंगे कि कवि युग की गद्य-भावना को व्यक्त करने में कहाँ तक सफल हुआ है और भविष्य में जिस काव्य का वह निर्माण करेगा (यदि करे तो), उसका क्या स्वरूप होगा । तुलना करके समझना मोटी अक़्ल का काम होता है, फिर भी कामचलाऊ ढंग से हम कह सकते हैं कि पन्त जी की ये रचनायें भारतेन्दु की खड़ी बोली की रचनाओं के समान कही जा सकती हैं; जिनमें काव्य के प्रकृतगुणों का अपेक्षाकृत अभाव होते हुए भी भावी कविता की ओर एक संकेत था, देश-भक्ति की कविताओं की भूमिका थी । देश-भक्तिपूर्ण राष्ट्रवाद और साम्यवाद में जो अन्तर अनिवार्य है वही अन्तर

लगभग भारतेन्दु और पन्त जी की कविताओं में है। प्रेरणा एक ही है, प्रवृत्तियाँ भिन्न हैं।

परम्पराओं का उन्मूलन—चाहे वे परम्परायें साहित्य में हों, चाहे समाज में—'युगवाणी' का सर्वव्यापी भाव है—

> खुल गये छन्द के बंध,
> प्राश (स?) के रजत पाश,
> अब गीत मुक्त
> औ' युगवाणी बहती अयास !
> बन गये कलात्मक भाव
> जगत् के रूप नाम
> जीवन संघर्षण देता सुख
> लगता ललाम
> सुन्दर, शिव, सत्य
> कला के कल्पित माप-मान
> बन गये स्थूल,
> जग-जीवन से हो एक प्राण।
> मानव स्वभाव ही
> बन मानव-आदर्श सुकर
> करता, अपूर्ण को पूर्ण
> असुन्दर को सुन्दर।

यह स्थूलता की प्रतिष्ठा ही नई दृष्टि को अभीष्ट है, क्योंकि स्थूलता में ही सत्य है, कल्पना में नहीं। जब यह बात है, तो समाज और साहित्य सभी को आदर्श और कल्पनात्मक दृष्टिकोण से न देखकर स्थूल, भौतिक दृष्टिकोण से देखना पड़ेगा। निश्चय ही यह दृष्टिकोण मार्क्स-द्वारा प्रचारित समाजवाद के दार्शनिक पक्ष, द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद का दृष्टिकोण है। मानव-जगत् से सम्बन्धित प्रत्येक प्रश्न पर इसी दृष्टिकोण से विचार किया गया है। हमारी अब तक की समाज-व्यवस्था जिसका आधार पूँजीवाद है और जिसका इतिहास वर्ग-संघर्ष का इतिहास है, काल्पनिक स्वर्ग के लोभ में जन-समूह की उठती हुई आकांक्षाओं को दबाये रही है। उस जन्नत की हक़ीक़त को जान लेने के बाद हमारा कवि महज़ दिल को खुश रखने के लिए—केवल व्यक्तिगत स्वार्थ-सिद्धि के हेतु—इस खयाल को बनाये रखना नहीं चाहता। यदि जन-समूह को अपने जर्जर शरीर के पोषण के लिए रक्त-मांस की आवश्यकता है तो वह उन्हें स्वादिष्ठ भोज्य के काल्पनिक चित्र पर खींच कर भरमाना नहीं चाहेगा, वह तो उनके लिए स्थूल खाद्य के ढूँढ़ने का प्रयत्न करेगा। 'युगवाणी' में युग की इस आवश्यकता की माँग का अनुभव किया गया है! भले ही यह माँग सभी जगह परिस्थितियों की विषमता के कारण कानों से न सुनाई दे रही हो; परन्तु उसके अस्तित्व और सत्य में तनिक भी सन्देह नहीं किया जा सकता। युग की इस मूक-भावना को समझने और उसको वाणी प्रदान करने में ही 'युगवाणी' की सार्थकता है। केवल इतने से ही हम 'युगवाणी' की सफलता घोषित कर सकते हैं।

जैसा कि पहले कहा जा चुका है, 'युगवाणी' में सिद्धान्त की बात विशेष रूप से कही गई है। यह अवश्य है कि कवि की भावुकता यत्र-तत्र बिखरकर इस सिद्धान्त-निरूपण में भी काव्य और कल्पना का संचार कर देती है—विशेषकर प्राकृतिक चित्रों के उपस्थित करने में। परन्तु ऐसा कवि ने जान-बूझकर नहीं, कदाचित् स्वभाव से विवश होकर कर दिया है। काव्य-प्रेमियों को सम्भवतः ऐसे ही स्थल विशेष प्रिय होंगे। परन्तु कवि को इससे विशेष हर्ष नहीं हो सकता। उसे तो हर्ष तब होगा जब मनुष्य पहले भौतिकवाद को अपना ले और अपने सामूहिक सुख के लिए व्यक्तिवाद और व्यक्तिगत स्वार्थों को छोड़कर एक सम्पन्न, समृद्ध मानव-परिवार बनाने का प्रयत्न करने लगे। इतनी व्यवस्था हो जाने के बाद वह कदाचित् स्थूल भौतिकवाद को छोड़कर आत्मा और आदर्श की महत्ता को भी स्वीकार कर लेगा। संकीर्ण भौतिकवादियों से उसने स्वयं कहा है—

> आत्मवाद पर हँसते हो भौतिकता का ले नाम ?
> मानवता की मूर्ति गढ़ोगे तुम सँवार कर चाम ?
> वस्तुवाद ही सत्य, मृषा सिद्धान्तवाद, आदर्श ?
> बाह्य परिस्थिति के आश्रित अन्तर जीवन उत्कर्ष ?
> मानव कभी भूल से भी क्या सुधर सकी है भूल ?
> सरिता का जल मृषा सत्य केवल उसके दो कूल ?

भौतिकवाद की इतनी स्पष्ट और खरी आलोचना क्या किसी भौतिकवादी के मुख से निकल सकती है?

निम्न पंक्तियों से तो वह फिर रहस्यवाद की ओर लौटता-सा जान पड़ता है—

> भौतिकता, आध्यात्मिकता केवल उसके दो कूल,
> व्यक्ति-विश्व से, स्थूल-सूक्ष्म से परे सत्य के मूल।

'समाजवाद-गांधीवाद' शीर्षक रचना में तो वह इन दो विरोधी समझे जानेवाले विचारों में सामञ्जस्य करने का प्रयत्न करता है। और 'बापू !' में वह सत्य, अहिंसा, प्रेम के मधुर-स्वर्ग और आत्म-शक्ति की महिमा को स्वीकार करता है। अपनी विचार-शैली समझाने के लिए उसने लिखा है—

> भूतवाद उस स्वर्ग के लिए है केवल सोपान,
> जहाँ आत्मदर्शन अनादि से समासीन अम्लान।

केवल रूप में विश्वास करनेवाले जड़वादी अपने विचारों से इस शैली का मेल नहीं मिला सकते। अनादि, आत्म-दर्शन और स्वर्ग आदि की शब्दावली में विचार करने का उनका ढंग नहीं है। उनके विचार से तो कवि ने सच्ची बात वहीं कही है जहाँ वह कहता है—

> रूप रूप बन जायँ भाव स्वर,
> या
> आत्मा ही बन जाय देह नव
> और
> स्वप्न वस्तु बन जाय सत्य नव,
> स्वर्ग मानसी ही भौतिक भव,
> अन्तर जग ही बहिर्जगत
> बन जावे, वीणापाणि, इ!
> युग की वाणी!

किन्तु गीत-गद्य लिखते हुए भी कवि अपने सहज गुण को कैसे छोड़ सकता है! यदि उसे पूर्ण भौतिकवादी बनना होगा तो वह गद्य ही लिखेगा जिसका गीत होना आवश्यक न होगा। दूसरे, भारत में रह कर यदि कोई 'युगवाणी' लिखने बैठेगा तो महान् युग-पुरुष गांधी को वह कैसे भूल सकेगा? आदर्शवादी और आत्मवादी होते हुए भी क्या गांधी ने ही भूखी जनता के भौतिक सुखों की अनिवार्य माँग की पुकार विश्व के कोने कोने में नहीं गुँजा दी है?

आशा है कि हमारे लेखक और कवि इस 'युगवाणी' को समझेंगे और अपने आख्यानों और छन्दों के माध्यम से उसे जन-जन के स्वर से उच्चरित करवाकर उसकी पुकार को अदमनीय और अपरिहार्य बना देंगे। वास्तव में 'युगवाणी' का स्वर अभी इतना ऊँचा नहीं है कि वे लोग इसको सुन और समझ सकें जिनके भावों को भाषा प्रदान करने का इसमें प्रयास किया गया है। इसकी अपील अभी कदाचित् उन्हीं लोगों से है जिन्होंने अकिंचनों के शोषण से मोटे होकर मानव-संस्कृति को 'ऊर्ध्व-मूल' बना रक्खा है। 'युगवाणी' कदाचित् उनके लिए इस बात की चेतावनी भी है कि शीघ्र ही इस बालू की भीत का भरभराकर गिर पड़ना अनिवार्य है। सम्भवतः इसके बाद स्वयं पन्त जी भी सीधे उन लोगों के समीप पहुँचकर 'युगवाणी' का सन्देश दे सकने में समर्थ होंगे जिनके सामूहिक प्रयास के बिना कवि की नई मानव-सृष्टि की कामना केवल स्वप्न रह जायगी। 'युगवाणी' उस अधिक आवश्यक कार्य की तैयारी और भूमिका मालूम होती है। जनता की आकांक्षाओं, उसके उत्साह और रोष तथा विद्रोह एवं संघर्ष के बढ़ते हुए अरमानों का चित्रण करने के लिए काव्य की प्रकृत-प्रवृत्ति से संन्यास लेने की कदाचित् कोई आवश्यकता न होगी। उस समय कवि को संध्या-समय गंगा के किनारे एकांत में सौन्दर्य-सुख भोगने का क्षणिक लोभ भी नहीं होगा। क्या पंत जी विद्रोह का बिगुल बजाकर 'युगवाणी' को भीड़ का कोरस गान बना सकेंगे?

ब्रजेश्वर

हिन्दी का स्वरूप

लेखक, श्रीयुत सन्तराम, बी० ए०

एक समय की बात है, भाई परमानन्द जी अमरीका में थे। वे जिस अमरीकन परिवार में ठहरे हुए थे उसका एक बालक उनसे बहुत हिल-मिल गया था। एक दिन भाई जी को डाक में भारत से एक चिठ्ठी मिली। उस समय वह बालक भी उनके निकट ही बैठा था। उसने भाई जी से कहा, यह चिठ्ठी तनिक मुझे दीजिए; मैं देखना चाहता हूँ कि आप लोगों की लिपि और भाषा किस प्रकार की है। परन्तु चिट्ठी को अँगरेज़ी में लिखी देख उसके आश्चर्य की कोई सीमा न रही। वह चकित होकर बोला--एं ! यह क्या ? यह तो हमारी भाषा है। क्या आपकी अपनी कोई भाषा नहीं ? श्री भाईजी के हृदय पर बालक के मुख से अनायास निकले इन शब्दों से भारी चोट लगी। वे कोई उत्तर न देकर चुप रह गये।

भारत में गांधी-युग के पूर्व के राजनैतिक नेता और राष्ट्रकर्मी लोग अँगरेज़ी-भाषा में ही परस्पर विचार-विनिमय किया करते थे। भारतीय राष्ट्रवादी कहलाते हुए एक विदेशी भाषा को अपनाने में उन्हें कभी लज्जा का अनुभव ही न होता था। गांधी-युग के आरम्भ में ही लोगों को इस लज्जा का अनुभव हुआ। विदेशी लोग भारतीयों से पूछते थे कि यदि भारत एक राष्ट्र है तो जैसे फ़रासीसी राष्ट्र की भाषा फ़्रेंच, जैसे जर्मन राष्ट्र की भाषा जर्मन और जैसे इटालियन लोगों की भाषा इटालियन है, वैसे आपकी राष्ट्र-भाषा कौन है ? स पर भारतीय भाषाओं में से एक ऐसी भाषा को चुनने की चेष्टा की गई जिसके बोलने और समझनेवाले लोग भारत में सबसे अधिक हों। इस प्रकार सर्व-सम्मति से 'हिन्दी' ही भारत की राष्ट्र-भाषा निर्वाचित हुई। यहाँ यह न समझा जाय कि किसी पक्षपात से या गुण-दोष की परीक्षा किये बिना ही हिन्दी को यह पद दे दिया गया। अँगरेज़ी-भाषा के आगमन से पूर्व चार धाम और सात पुरियों की यात्रा करनेवाले साधु-सन्त और भक्त यात्री इसी भाषा में एक-दूसरे से बातचीत किया करते थे। परन्तु हिन्दी को राष्ट्र-भाषा का आसन प्रदान कर देने के बाद महात्मा गांधी आदि राष्ट्र-नेताओं के सामने एक बड़ी कठिनाई आई। यद्यपि बंगाल, बिहार, उड़ीसा, मदरास, बम्बई, गुजरात, मध्यप्रदेश, सिंध और पंजाब के मुसलमान उर्दू अर्थात् अरबी-फ़ारसी के शब्दों से भरी हुई लश्करी भाषा से उतने ही अनभिज्ञ थे जितने कि उन प्रान्तों के हिन्दू, तो भी उन्होंने मुस्लिम सभ्यता और संस्कृति की रक्षा के नाम पर हिन्दी का विरोध करना आवश्यक समझा। परिणाम यह हुआ कि स्वच्छ हिन्दी को गँदला करके 'हिन्दी यानी हिन्दोस्तानी' का नाम एवं रूप देने की चेष्टा आरम्भ हुई। इस नवीन राष्ट्र-भाषा का रूप देखना हो तो श्री जवाहरलाल जी की जीवनी का हिन्दी-संस्करण, कानपुर के राष्ट्रवादी पत्र 'प्रताप' या 'स्वाधीन भारत' को देख सकते हैं। इस भाषा का प्रचार करने के लिए हिन्दी में बलात् फ़ारसी अरबी के गला-घोंटू शब्द ठूँसे जाने लगे। जैसे कोई व्यक्ति अपने को हिन्दू-मुस्लिम एकता का कट्टर भक्त प्रकट करने के लिए अपनी दाईं ओर की मूँछ और दाढ़ी उस्तरे से चट्ट कराकर बाईं ओर की मूँछ और दाढ़ी रख ले, और दाईं टाँग में धोती एवं बाईं टाँग में सिलवार पहनकर फिरने लगे, वैसे ही नमूने की यह 'हिन्दी यानी हिन्दोस्तानी' बनने लगी है। उस दिन १८ जून सन् १९३८ के 'स्वाधीन भारत' में 'फ़िरका-परस्त स्वयम्भू नेता,' 'खत किताबत का विवरण और क़ौम परस्ती छोड़ मुल्क का सारा हक ले लें' प्रभृति वाक्य देख जी मचलाने लगा। फिर एक बड़े आश्चर्य की बात यह है कि जिन लोगों को फ़ारसी-अरबी के शब्दों का कुछ भी ज्ञान नहीं वे इन शब्दों का उपयोग करके बहुत प्रसन्न होते हैं और अपने को ऐसी घिनौनी भाषा के कट्टर पक्षपाती प्रकट करते हैं। एक मित्र ने सुनाया कि ऐसी आधा तीतर आधा बटेरवाली भाषा के प्रचारक एक महाराष्ट्र सज्जन लाहौर में स्त्रियों की एक सभा में भाषण करने गये। वहाँ जाकर आप कहने लगे—"बहनो, आपको चरखा कातते देख मैं इतना खुश हुआ हूँ कि आप पर आशिक़ हो गया हूँ"।

यह ठीक है कि विदेशियों के सामने कहने के लिए भारतीय राष्ट्रवादियों के पास 'हिन्दी यानी हिन्दोस्तानी' भाषा हो गई है, परन्तु यदि कोई विदेशी इनसे पूछ बैठे कि जैसे फ़्रेंच में, इँग्लिश में, रशियन में उच्च कोटि का

साहित्य है, जिसका रसास्वादन करने के लिए ही अनेक विदेशी उन भाषाओं का अध्ययन करते हैं, वैसे भारत ऐसे विशाल राष्ट्र की राष्ट्र-भाषा 'हिन्दी यानी हिन्दोस्तानी' में कौन-सा ऐसा साहित्य है, तो हमारे राष्ट्रवादी लोग उसे क्या उत्तर देंगे। हिन्दी में तुलसीदास, सूरदास, बिहारी, भूषण आदि कई ऐसे कवि और महात्मा हो गये हैं जिनकी कृतियों का आनन्द लेने के लिए अन्य भाषा-भाषी लोग भी इस भाषा का अध्ययन करने के लिए तैयार हो सकते हैं। परन्तु 'हिन्दोस्तानी' का तो इस दृष्टि से दीवाला ही निकला हुआ है। उसके पास तो इतनी भी सम्पत्ति नहीं जिसे पाने के लिए विदेशियों का तो कहना ही क्या, बंगाली, महाराष्ट्र, तेलगू, तामिल और गुजराती आदि स्वदेशी लोग भी लालायित हों। भारत के इन विभिन्न प्रान्तों की भाषाओं का साहित्य अब भी इतना उन्नत है कि 'हिन्दी यानी हिन्दोस्तानी' को उनकी बराबरी करने को सौ वर्ष चाहिए। उन लोगों को क्या आवश्यकता है कि अपनी उन्नत साहित्यवाली भाषाओं को छोड़कर एक घिनौनी-सी भाषा को अपनायें। भारत की राष्ट्र-भाषा में अपना भी कोई सहज गुण होना चाहिए, जिससे लोग उस पर प्रेम करने लगें। केवल डण्डे के डर या धींगाँ-मुश्ती से ही सब लोग उसके अनुरागी नहीं हो सकते।

आजकल एक और भी प्रवृत्ति देखने में आ रही है। उर्दू और अँगरेज़ी चाहे कितनी भी क्लिष्ट हों, कोई उन्हें क्लिष्ट नहीं कहेगा। परन्तु हिन्दी में संस्कृत का एक भी शब्द आ जाने पर राष्ट्रवादी लोग उसे क्लिष्ट और पंडिताऊ कहकर छिः-छिः करने लगते हैं। इन्होंने समझ रखा है कि हिन्दी में केवल बच्चों को सुनानेवाली कहानियाँ या मनोविनोद की बातें ही होनी चाहिए, उच्च दार्शनिक और वैज्ञानिक विषयों की पुस्तकों की हिन्दी में आवश्यकता ही नहीं। यदि आवश्यकता है तो फिर वे बतायें कि बोल-चाल की भाषा में जिसे वे 'हिन्दोस्तानी' कहते हैं, वे पुस्तकें कैसे लिखी जा सकती हैं। ये लोग समद्विभुज, त्रिकोण, समकोण, त्रिभुज या तापमापक को तो कठिन कहेंगे, परन्तु मुसल्लस मुतसावी उल-साक़ैन, मुसल्लस मुतसावी-उल ज़वाया, मिक्यासुल हरारत यादोज़नका पर इनको कोई आपत्ति न होगी। ये पारिभाषिक शब्द पंजाब में लोअर मिडिल के लड़कों को याद कराये जाते हैं।

पंजाब में फ़ारसी-अरबी के शब्दों का प्रचार पहले बिलकुल न था। यहाँ के लोग क़, ख़, ग़, ज़, फ़ आदि विदेशी वर्णों का ठीक ठीक उच्चारण कर ही नहीं सकते। परन्तु आरम्भ से उर्दू पढ़ाकर उर्दू कोर्सों के साथ फ़र्हङ्गें (शब्दार्थ कोष) रटाकर, हैदराबाद (दक्षिण) के सदृश यहाँ भी इनका ख़ूब प्रचार किया गया है। अब तो अवस्था यह ह कि जिनके माता-पिता संस्कृत के विद्वान् थे, जिनके कुल में सनातन परिपाटी चली आती थी, वे ब्राह्मण-बालक भी वालिद, वालिदा, हमशीरा, इल्म, मज़हब, इंसाफ़, दुआ आदि शब्द घरों में बोलते हैं, यद्यपि ग्रामीण लोग अब भी माँ-बाप, बहन, ज्ञान, धर्म, न्याय, असीस कहते हैं। पंजाबी भाषा बड़ी मीठी है। इसमें शुद्ध संस्कृत-शब्द बहुत हैं। पंजाब के मुसलमान लेखकों तक ने उनका उपयोग किया है। परन्तु उर्दू के इस बलात् प्रचार से वे शब्द धीरे-धीरे लुप्त होते जा रहे हैं। आज से कोई चालीस-बयालीस वर्ष पहले जब मैं तीसरी कक्षा में पढ़ा करता था तब हमें 'तौबातुननसूह' नाम की एक पुस्तक पढ़ाई जाती थी। उसकी भाषा का एक नमूना आगे देता हूँ—

"ज़िन्दगी के तमामतर एहतमालात ज़ुईफ़ थे। आखिर चारोनाचार उसे समझना पड़ा कि अब मैं दुनिया में चन्द साअत मिहमान और हूँ। अज़आने मर्ग के साथ पहला क़लक़ उसको दुनिया की मुफ़ारक़त का था। मरना वह सफ़र है जिसका इनक़ताअ नहीं, वह जुदाई है जिसके बाद वसाल नहीं, वह गुमशुदगी है जिसकी कभी बाज याफ़्त नहीं।

"इलाही ख़िलअते हफ़्त पार्चए हवासे खमसा व अक़्लो रूह से सरफ़राज़ी दी है तो मनसबे ईमानदारी भी अता कर कि ख़िताबे अशरफ़ुल-मख़लूक़ात मेरी हालत के मुनासिब हो। ख़ुदावन्दा, अपने हबीब का उम्मती बनाने से इम्तियाज़ बख़्शा है तो तक़रीबे इबादत भी नसीब कर कि अलताफ़ करीमानए शिफ़ाअत और अवातफ़े ख़ुसदवानाए रहमत की मुझ को क़ाबिलियत हो।"

तीसरी कक्षा के बच्चे के लिए जिसकी मातृ-भाषा पंजाबी हो, उपरिलिखित पाठ कितना कठिन है, इसका

अनुमान पाठक स्वयं ही करें। परन्तु रोज़ के प्रचार से जिस बात का अभ्यास हो जाता है वह फिर कठिन नहीं रहती। बंगाल और महाराष्ट्र में संस्कृत के जैसे सुन्दर शब्द घरों में स्त्रियाँ तक बोलती हैं वे उर्दू-आक्रान्त संयुक्त प्रान्त के पढ़े-लिखे लोगों को भी क्लिष्ट जान पड़ते हैं। ग़ालिब, मीर, ज़ौक, अनीस आदि उर्दू-कवियों का अनन्य भक्त संयुक्त-प्रान्त संस्कृत से दूर भागकर अपने पाँव पर आप कुल्हाड़ा चला रहा है। नवीन और उच्च भावों को प्रकट करने में जितनी सहायता संस्कृत से मिल सकती है, उतनी 'हिन्दी यानी हिन्दोस्तानी' से नहीं। बंगाली और मराठी में जितने उच्च कोटि के ग्रन्थ मिलते हैं, उतने हिन्दी में नहीं। इसका प्रधान कारण भी संयुक्त-प्रान्तवालों का संस्कृत का संसर्ग छोड़कर फ़ारसी-अरबी की दासता स्वीकार करना है। संयुक्त-प्रान्त हिन्दी का घर समझा जाता है। हिन्दी सीखने के लिए दूसरे प्रान्तों के लोग स्वभावतः यहाँवालों का अनुकरण करना चाहते हैं। परन्तु संयुक्त-प्रान्त की अब तक भी अवस्था ऐसी है कि वहाँ सौ पीछे दो भी वकील, मुंसिफ़ या जज ऐसे न मिलेंगे जो उर्दू के स्थान में अपना काम हिन्दी में करते हों। परमात्मा को धन्यवाद है कि अब डाक्टर धीरेन्द्र वर्मा और पण्डित बाबूराव पराडकर प्रभृति कुछ सज्जन ऐसें दृष्टिगोचर होने लगे हैं जो 'हिन्दी यानी हिन्दोस्तानी' की हानियाँ समझाकर संयुक्त-प्रान्त के हिन्दी-लेखकों को सन्मार्ग पर लाने का यत्न कर रहे हैं। उर्दू-आक्रान्त संयुक्त प्रान्त के कुछ लेखकों को छोड़कर शेष सभी प्रान्तों के लेखकों की प्रवृत्ति स्वभावतः संस्कृत-बहुल हिन्दी लिखने की ओर है। कारण यह कि संस्कृत एक ऐसा भाण्डार है जिसमें से भारत की सभी भाषायें शब्दों का दान प्राप्त करती रही हैं। नीचे मैं एक बंगाली और एक महाराष्ट्र हिन्दी-लेखक के लेख का नमूना देता हूँ। इससे स्वच्छ, सुन्दर और सरस हिन्दी का संयुक्त-प्रान्त के राष्ट्रवादी लेखकों की घिनौनी एवं गँदली हिन्दी से अन्तर स्पष्ट देख पड़ेगा।

"पशु-जीवन की आलोचना करने पर यह ज्ञात हुआ है कि पशुओं में भी सामाजिक जीवन का विकास हुआ है। ऐसे विकासों के अन्तराल में किस शक्ति की लीला है, जिसके कारण प्राणियों में समकक्ष की ओर प्रधावित होने की प्रवृत्ति परिलक्षित होती है? प्रकृति के नियमानुसार संसार में अव्यवस्था से व्यवस्था की ओर, निष्प्रयोजन से प्रयोजन-मूलक कार्य की ओर, अज्ञान से ज्ञानमूलक कर्म-प्रचेष्टा की ओर प्राणियों का विकास हो रहा है।"—सितम्बर सन् १९३९ के मासिक 'विश्व-मित्र' में श्री शचीन्द्रनाथ सान्याल।

और—

"मैं गद्गद हो गया; इस कारण कि उसके मुख पर एक स्वर्गीय आलोक उदित हो उठा था। आँखों में एक पुण्यमय आभा प्रज्वलित हो गई थी। जिसे जनता 'पगली' कहकर पुकारती है, वास्तव में वह अनन्त रहस्य की एक झलक-मात्र है।"—मासिक 'विश्वमित्र' में श्री नारायण श्यामराव चिताम्बरे।

सरल और क्लिष्ट दो सापेक्ष परिभाषायें हैं। जिस शब्द को आज क्लिष्ट अथवा कठिन समझा जाता है उसका अधिक प्रचार हो जाने से वही कल सरल जान पड़ने लगता है। इसलिए हिन्दी में से संस्कृत या प्रान्तीय शब्दों को निकालकर और उनके स्थान में अरबी-फ़ारसी के शब्द बलात् ठूँसकर उसे सरल भाषा मानना भारी भूल है। मैं ऊपर कह चुका हूँ कि पंजाब में बलात् उर्दू का प्रचार किया गया है और किया जा रहा है। ग्रामीणों की पंजाबी बोली में अब तक भी ५० प्रतिसैकड़ा के लगभग शब्द संस्कृत या उसके अपभ्रंश हैं। परन्तु न्यायालयों की भाषा उर्दू होने और सभी सरकारी विद्यालयों में बच्चों को आरम्भ से ही उर्दू पढ़ने पर विवश होने के कारण बोल-चाल में फ़ारसी-अरबी के शब्दों का प्रचार दिन पर दिन बढ़ रहा है। यहाँ तक कि जो अध्यापक स्कूलों और कालेजों में संस्कृत पढ़ाते हैं वे भी हिन्दी-संस्कृत के स्थान में अपनी बोल-चाल और चिट्ठी-पत्री में अरबी-फ़ारसी के शब्दों का ही व्यवहार करते हैं। उस दिन मुझे होशियारपुर के दयानन्द ऐंग्लो वैदिक कालेज से निकलनेवाले 'आर्यकुमार' नामक विद्यार्थियों के पत्र के कुछ अंक देखने का अवसर मिला। मुझे यह देखकर आश्चर्य और दुःख हुआ कि कालेज के संस्कृतोपाध्याय 'आर्यकुमार' में हिन्दी को छोड़कर उर्दू में—अरबी-फ़ारसी के शब्दों से मुँहामुँह भरी उर्दू में—कविता लिखते हैं। जिन लोगों की पृष्ठभूमि उर्दू-फ़ारसी है वे संस्कृताध्यापक

हो जाने पर भी हिन्दी को कुछ लाभ नहीं पहुँचा सकते, वरन अपने आचरण से उसकी घोर हानि करते हैं। इसी 'आर्यकुमार' के जुलाई, १९३९ के अंक में ग्यारहवीं कक्षा के एक हिन्दू विद्यार्थी का उर्दू में 'तालीम मखलूत व आज़ादिए निसवाँ' शीर्षक का एक लेख छपा है। उसका कुछ अंश मैं नीचे उद्धृत करता हूँ—

"दुनिया की कोई क़ौम आफ़ताबे इल्म की दरख़शाँ तजल्ली से मुनव्वर हुए बग़ैर न तो जादए रास्त पर गाम-ज़न होने के क़ाबिल होती है, न ही मंज़िले मक़सूद पर पहुँच सकती है। वे इल्म फ़र्दे बशर फ़ज़ाए आलम से बाला ज़ब्वे कायनात की फ़ज़ाओं से कमाहक़्क़हु लुत्फ़ अन्दोज़ नहीं हो सकता। क्योंकि इन सरूर अँगेज़ तबक़ात के हद्दूद तक उसकी रसाई नामुमकिन है। इल्म एक ऐसा चश्मए ख़ुशगवार है जिससे मुस्तफ़ीद होकर इंसान बक़ाए दवाम हासिल कर सकता है। और आसमाने शुहरत पर मिस्ले माह व पर्वी ख़ुरशीदे अनवर व कहकशाँ दरख़शाँ होता है।"

यह उस कालेज की मासिक पत्रिका की बात है जिसका एक बड़ा उद्देश्य हिन्दी-संस्कृत का प्रचार बताया जाता है। इस्लामिया कालेजों की पत्रिकाओं की क्या अवस्था होगी, यह पाठक स्वयं अनुमान कर सकते हैं। पंजाब के हिन्दू राष्ट्रकर्मी लोगों की भाषा एक विचित्र ख़ुरासानी रूप धारण कर रही है। जो नवयुवक संस्कृत-हिन्दी पढ़े हैं और जो नवयुवतियाँ उर्दू पढ़ तक नहीं सकतीं वे भी अपने नेताओं की हिन्दोस्तानी भाषा का अनुकरण करते हुए ग्रामों में जाकर "हमारा नसबुल ऐन (ध्येय) कम्प्लीट इंडिपेंडेंस (पूर्ण स्वराज्य) है" और "पोलीटिकल फ़ज़ा मुक़द्दर हो रही है" प्रभृति वाक्य बोलती हैं।

परन्तु यदि बारहवीं कक्षा की हिन्दी पाठ्य-पुस्तक में कोई निम्नलिखित प्रकार की वाक्यावली आ जाय तो विद्यार्थी तो दूर, उनके एम० ए० और शास्त्री अध्यापक तक "कठिन, कठिन" कहकर चिल्ला उठते हैं—

"जहाँ महा मानव के कलरव से आकाश मुखरित हो रहा हो, जहाँ सर्वहारा नर-नारियों के वक्षस्थल को विदीर्ण करके उसके अन्तस्तल की मर्मान्तिक मर्मवाणी अनवरत समुत्थित हो रही हो, जहाँ नर-नारायण के दुःख-दारिद्र्य का संग्राम चल रहा हो, वहीं महापुरुष का कार्य-क्षेत्र होता है।"—वीर-गाथा।

अथवा—

"इस सारी कविता में निखिल सृष्टि के ऊपर इसी माया कुहेलिका-द्वारा छाये हुए अन्धकारमय आवरण-पट को विदीर्ण करके चिरमुक्त आलोक में प्रवेश करने की जीवात्मा की उत्कण्ठा प्रतिध्वनित हुई है। आत्मविलास की स्वार्थमयी वासना के धूम्र-मलिन संकीर्ण हवन-कुण्ड से उदार प्रेमालोकित विश्व-मानवाकाश के चिदानन्दमय भास में उड़ान भरने की जो चिराकांक्षा मनुष्य के अज्ञात मन में सन्निहित है उसी को कवि ने इस अमर नाट्य-ग्रन्थ में प्रदर्शित किया है।"—माधुरी, जून १९३९।

इस सम्बन्ध में एक बात स्मरण रखने योग्य है। उपरिलिखित उर्दू-वाक्यों में अरबी-फ़ारसी के जो शब्द आये हैं वे भारत के लोगों के लिए चाहे कठिन प्रतीत हों, परन्तु जिन देशों में ये भाषायें बोली जाती हैं वहाँ ये कुछ भी कठिन प्रतीत नहीं होते। इसके विपरीत ऊपर दिये हिन्दी-वाक्यों में व्यवहृत संस्कृत-शब्दों का यदि इस देश में भी बहिष्कार किया जायगा तो फिर संस्कृत-शब्दों का प्रचार क्या तुर्किस्तान में होगा? आवश्यकता इस बात की है कि इनका बहिष्कार न करके अधिकाधिक प्रचार और व्यवहार के द्वारा इनको प्रचलित एवं सुबोध बना दिया जाय। यदि रामदेवी इनकी रक्षा न करेंगी तो क्या फ़ातिमा और हेलन करेंगी? इस विषय में संयुक्त-प्रान्त के हिन्दी-प्रेमियों और साहित्य-सेवियों का उत्तर-दायित्व बड़ा भारी है। उन्हें इधर-उधर की बहकावट में आकर सन्मार्ग से भटक नहीं जाना चाहिए। यदि वे हिन्दी को कूड़ा-करकट से साफ़ रखने का यत्न करेंगे तो भारत के शेष प्रान्त उनके इस कार्य में अवश्य उनका अनुकरण करेंगे। उन्हें अपने पथ पर दृढ़ रहना चाहिए।

जो लोग समझते हैं कि हिन्दी को आधा तीतर आधा बटेर बनाने से हिन्दू-मुस्लिम-एकता हो जायगी वे हिन्दू-मुस्लिम-वैमनस्य के मूल-कारण को नहीं समझते। मस्जिद के सामने बाजा, गोवध, हिन्दी, सरकारी नौकरियाँ, राज-नैतिक अधिकार इत्यादि बातें झगड़े का मूल कारण नहीं। ये तो उस कारण के बाह्य कार्य या परिणाम हैं। जैसे ज्वराक्रान्त व्यक्ति को ठंडे जल में बैठा देने से उसका ज्वर शान्त नहीं हो सकता, वैसे ही उपर्युक्त बातों को रोक देने से साम्प्रदायिक वैमनस्य दूर नहीं हो सकता।

वैमनस्य का मूल कारण यह है कि जो हिन्दू लालच, भय या किसी दूसरी गिरावट से मुसलमान बनने पर विवश हुए थे उन्होंने पुनः हिन्दू होने का बहुत यत्न किया। परन्तु हिन्दुओं ने न तो उनको शुद्ध करके उनके साथ रोटी-बेटी का व्यवहार करना स्वीकार किया और न उनसे घृणा करना ही छोड़ा, वरन सामाजिक बहिष्कार से उनको मर्माहत करने में कोई कसर न उठा रक्खी। हिन्दुओं की संख्या अधिक और मुसलमानों की बहुत कम होने से मुसलमानों को भय रहता है कि ये हिन्दू कहीं हमें भी अछूत न बना दें। इसलिए भारत में हिन्दुओं के साथ स्वाभिमानपूर्वक इकट्ठे रहने का और कोई उपाय न देख उनके मन में स्वभावतः यह इच्छा होती है कि हमारी संख्या इतनी अधिक हो जाय कि फिर ये हिन्दू हमें दबा या हमसे घृणा न कर सकें। इसलिए प्रत्येक मुस्लिम बच्चे-बूढ़े, स्त्री-पुरुष का प्रयत्न ग़ैर-मुस्लिमों को जैसे भी हो मुसलमान बनाने का रहता है। अपने हीनता के भाव को दूर करने के लिए ही मुस्लिमों को छेड़छाड़ करनी पड़ती है। उधर हिन्दू भी सच्चे हैं। उन्हें एक-दूसरे को नीच और छोटा या अछूत समझने का स्वभाव-सा हो चुका है। वे अनुभव ही नहीं करते कि दूसरे को छोटा या अपवित्र कहने या उसके हाथ का अन्न-जल ग्रहण करने से इनकार करने से उसके स्वाभिमान पर आघात पहुँचता है। उनकी सारी समाज-रचना ही फूट और असमता-मूलक है। वे समता और बन्धुता जानते ही नहीं। उनमें तो जो व्यक्ति दूसरों से जितना पृथक् रहता, दूसरों के स्पर्श-मात्र से अपने को अपवित्र मानता है, उतना ही वह श्रेष्ठ और महात्मा है। हिन्दुओं में ऐसे भी अनेक नमूने हैं जो किसी दूसरी जाति के हिन्दू का भोजन करना तो दूर, जो स्वयं अपनी स्त्री के हाथ का बनाया अन्न भी नहीं खाते। ऐसी अवस्था में न तो हिन्दुओं को मुसलमानों का मनोभाव समझ में आता है और न मुसलमानों को हिन्दुओं का। यदि हिन्दू किसी प्रकार वर्ण-भेद की महाव्याधि से मुक्त हो जायँ तो लाखों मुसलमान, ईसाई, यहूदी आज भी हिन्दू होने को तैयार हैं। आर्य-समाज 'शुद्धि' अवश्य करता है, परन्तु उसकी 'शुद्धि' सिर मूँड़ने और गले में जनेऊ डाल देने तक ही परिमित है। नवागतों के साथ रोटी-बेटी-व्यवहार करने में वह वैसा ही असमर्थ है जैसा कि दूसरे कट्टर-पंथी हिन्दू। यदि वर्ण-भेद मिट जाय तो नवागतों के साथ सामाजिक सम्बन्ध स्थापित करने में कुछ भी कठिनाई न रहे और वे हिन्दू-समाज में ऐसे मिल जायँ जैसे दूध में शक्कर। जब तक ऊँच-नीचमूलक जाति-भेद है जब तक अपने वर्ग के बाहर विवाह करने को हिन्दू पाप समझते हैं, तब तक हिन्दू-मुस्लिम-एकता असम्भव है, चाहे 'हिन्दी यानी हिन्दोस्तानी' को छोड़ अरबी को ही क्यों न भारत की राष्ट्र-भाषा बना दिया जाय। क्या मुग़ल-काल में और उसके बाद भी हिन्दू अरबी-फ़ारसी नहीं पढ़ते रहे? क्या तब दोनों जातियों का ऐक्य स्थापित हो सका था? एक राष्ट्र बनने के लिए जहाँ एक भाषा की आवश्यकता है, वहाँ उसके सदस्यों में रोटी-बेटी-व्यवहार का होना. उससे भी कहीं अधिक आवश्यक है परन्तु खेद है कि हिन्दू इस ओर ध्यान देकर अपनी त्रुटि को दूर करने के स्थान में अपनी अच्छी वस्तु को ही खराब कर रहे हैं। हिन्दी को बिगाड़कर हिन्दू-मुस्लिम-एकता कभी नहीं होगी। उसका एकमात्र उपाय वही है जो मैंने ऊपर बताया है।
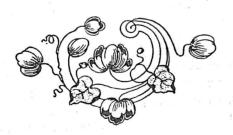
चर्खा ही

महात्मा गांधी लिखते हैं—

बड़ौदा-कालेज के एक विद्यार्थी का कहना है कि यहाँ के हाई स्कूलों और कालेजों के लड़के बहुत कम खादी इस्तेमाल करते हैं। कातता तो शायद ही कोई हो। बरार के एक लगनवाले कार्यकर्त्ता यह दलील देते हैं कि "आप नहीं समझते कि आपकी खादी-सम्बन्धी शर्त सचमुच पूरी होने के लिए है तो स्वराज्य कभी मिलने-वाला नहीं? आपकी भाईचारेवाली दूसरी शर्त भी उतनी ही असम्भव दिखाई देती है।" यह भाई खुद खादी के प्रेमी हैं, नियम से कातते हैं और सबके साथ भाईचारा बढ़ाने की कोशिश करते हैं। मगर उन्हें सचमुच यह शंका है। चर्खे के अलावा अहिंसा के विषय में भी यह सज्जन यही बात और उतने ही ज़ोर के साथ कह सकते थे। मगर शायद उन्हें इस बारे में कोई शक नहीं है कि चर्खा और भाईचारा अहिंसा की बाहरी और भीतरी निशानियाँ हैं। कालेज के विद्यार्थी और बरारवाले सज्जन दोनों को मेरा एक ही जवाब है। उन्होंने जो कुछ कहा है उससे मैं बेखबर नहीं हूँ। एक खास मियाद के भीतर इन शर्तों को पूरा कराने में जो कठिनाई है उसे मैं जानता हूँ। ऐसी मियाद बताई नहीं गई, पर समझनी तो चाहिए ही। मगर मैं भी क्या करूँ? मैंने यूँही ज़िद तो पकड़ नहीं ली। सम्भव होता तो मैं और किसी वजह से न सही, अपनी नेकनामी की खातिर ही दूसरी और ज़्यादा आसान शर्तें रख देता। मगर बात यह है कि जैसे दो भाग हाईड्रोजन और एक भाग आक्सीजन मिलाने से ही पानी बन सकता है, वैसे ही चर्खा और भाईचारा अहिंसा की ज़रूरी शर्तें और निशानियाँ हैं। मेरा यह पक्का विचार होने के कारण मैं ज़रा भी भरोसे के साथ सामूहिक सविनय-भंग का एलान कर सकूँ, इसके पहले मुझे इन शर्तों के पूरा होने पर ज़ोर देना ही पड़ेगा।

मेरा ईश्वर पर विश्वास है, इसी लिए जनता पर भी है। अगर उसकी मर्ज़ी होगी कि मैं एक लड़ाई और लड़ लूँ तो वह जनता के दिल भी बदल देगा। मेरी बताई हुई शर्तें ऐसी तो नहीं जो किसी तरह पूरी हो ही न सकें। लोग इरादा कर लें तो आज भी कताई और खादी को अपना सकते हैं, वे संकल्प कर लें तो सारी मानवजाति के मित्र बन सकते हैं। चमत्कारों का युग खत्म नहीं हो गया है, वे आगे भी हो सकते हैं। मगर फ़र्ज़ कीजिए कि ये शर्तें पूरी न हुईं तो क्या होगा? तना ही न कि हिन्दुस्तान और दुनिया मुझ पर हँसेगी और मैं सेनापति के सिंहासन से नीचे उतर जाऊँगा। मगर इसमें तो मुझे खुशी ही होगी। सबसे बढ़कर सन्तोष मुझे यह होगा कि मैं अपने प्रति सच्चा रहा। इस ज़ाहिरा असफलता में मैं ईश्वर का हाथ ही देखूँगा कि ये शर्तें एक ऐसा भ्रम थीं जो उसने राष्ट्र को खड्ड में डालनेवाले युद्ध से बचाने के लिए पैदा किया था।

शुद्ध व्यावहारिक दृष्टि से देखें और मेरी शर्तों को अलग रख दें तो भी कांग्रेस का ढाँचा बिखरने के आसार दिखाई देने लगे हैं। बंगाल की कमेटी ने साफ़ तौर पर विद्रोही रुख अख़्त्यार कर लिया है। उड़ीसा में दो दल हो गये हैं। कर्णाटक का हाल भी कुछ अच्छा नहीं। केरल से एक सज्जन लिखते हैं कि प्रान्तीय कमेटी की मौजूदा नीति और नेताओं पर विश्वास नहीं है और वह कार्य-समिति के कार्यक्रम की खिल्ली उड़ाकर उसका असर हर तरह कम करने की कोशिश कर रही है। पंजाब की दशा पहले से ही खराब थी। फिर भी मुझे मालूम है, बात इतनी नहीं बिगड़ी है कि बन ही न सके। मैं यह आशा रखता हूँ कि हालात सुधर जायँगे। पर न सुधरे तो ऐसी बिना अनुशासन की फ़ौज के सहारे इस शंभु-मेले को साथ लेकर मैं विजय प्राप्त नहीं कर सकता। यह कह देना आसान है कि मेरे 'युद्ध' के एलान करने भर की देर है, फिर सब अपने आप ठीक-ठाक हो जायगा। मैं स सिद्धान्त को नहीं मान सकता।

एक और विचार भी रक्खा गया है। जब इतने प्रान्तों में अनुशासन नहीं है, तब क्या यह नहीं हो सकता कि दोष कमेटियों के बजाय नेताओं का अधिक हो। मैं इस धारणा को यूँही फेंक देने को तैयार नहीं हूँ, लेकिन नेता लोग भी क्या करें? उन्हें अपनी समझ से जो ठीक लगता है वही करते हैं। जब तक एक बड़े बहुमत का उन पर विश्वास बना है तब तक वे अपनी जगह नहीं छोड़ सकते। असहयोग के शुरू-शुरू में जब मैंने जगह छोड़ने की बात सुझाई थी तब मौलाना मुहम्मदअली साहब ने कहा था कि "जब लोग हमें चाहते हैं तब हम जगह कैसे छोड़ सकते हैं? ऐसी हालत में जगह छोड़ना तो कायरता है। हाँ, निकाल दिये जाने में बहादुरी है।" मैं उनकी इस बात से उस वक्त भी पूरी तरह सहमत न था और अब भी नहीं हूँ, पर इस दलील में सार बहुत है। कांग्रेस की बागडोर हलके हाथों पकड़नी चाहिए। ज़रूरत होने पर उसे पल भर में छोड़ देने की तैयारी होनी चाहिए। पीछे से डोर नहीं हिलाना चाहिए। पदों से चिपटे रहने की कोशिश नहीं होनी चाहिए। कांग्रेस का संचालन कोई अफ़सरी नहीं है। यह तो सेवा का काम है। राष्ट्रपति देश के प्रथम सेवक हैं। जहाँ तक मैं कार्यसमिति के सदस्यों को जानता हूँ, मुझे विश्वास है कि स ज़िम्मेदारी से छूट जाने पर उन्हें खुशी होगी। नये चुनाव भी आ रहे हैं। कांग्रेसवाले जिसे चाहें चुन सकते हैं। इसमें कोई रुकावट नहीं। जवान पीढ़ी के लोग आगे आकर काम सँभाल लें।

विधान-सम्मेलन और सुभाष बाबू

कांग्रेस की इस समय की माँग, विधान-सम्मेलन है। परन्तु श्रीयुत सुभाषचन्द्र वसु इसके विरुद्ध हैं। वे अपने एक लेख में लिखते हैं—

अग्रगामी नीति ग्रहण न करने के पिछले सितम्बर में दो कारण तो बताये ही गये थे। एक तीसरा कारण यह बताया गया है कि सत्याग्रह-आन्दोलन से हिन्दू-मुस्लिम दंगे होने लगेंगे। पंजाब के मजलिस-ए-अहरार ने सितम्बर में अपनी लड़ाई छेड़ दी। तब से क्या हुआ है? यदि कुछ शरारती लोग इधर-उधर साम्प्रदायिक सङ्कट उत्पन्न करने में सफल होते हैं तो इससे क्या? क्या इस तरह छुट पुट दंगे १९२१, १९३० और १९३२ में नहीं होते थे? यदि इस कारण को बिना चुनौती के ही छोड़ दिया जायगा तो अग्रगामी नीति को व्यर्थ करने के लिए यह सब सदैव ही हम पर लादा जा सकता है।

सबसे विचित्र बात जो पिछले सितम्बर से हुई है वह स्वराज्य की माँग को त्याग देना और उसके बदले में तथा कथित विधान-सम्मेलन की माँग करना है। नीचे से आनेवाले जनता के दबाव को रोकने के लिए कांग्रेस हाई कमाण्ड ने चतुराई से स्वराज्य के मुख्य प्रश्न को एक कोने में रखकर एक झूठे प्रश्न को सामने खड़ा कर दिया।

पिछले सप्ताह हमने विधान-सम्मेलन के प्रस्ताव का अध्ययन किया था और कहा था कि कांग्रेस-कार्य-समिति अब जो माँग पेश कर रही है वह वास्तव में विधान-सम्मेलन नहीं है। ऐसा सम्मेलन एक साम्राज्यवादी सरकार के अन्तर्गत नहीं बुलाया जा सकता। विधान-सम्मेलन तभी बुलाया जा सकता है जब युद्ध में सफलता प्राप्त होने पर शक्ति राष्ट्रीय सरकार के हाथ में आ जाय। झगड़ा बचाने के लिए और इसलिए कि ब्रिटेन के सलाहकार कहते हैं कि ऐसी माँग पूरी कराने का और मौक़ा आनेवाला है, कांग्रेस हाई कमांड ने राष्ट्रीय माँग को ताक़ पर रख दिया है। हम आशा कर सकते हैं और प्रार्थना करते हैं कि यह माँग (विधान-सम्मेलन) ब्रिटिश सरकार-द्वारा पूरी नहीं की जायेगी, क्योंकि यदि ऐसा होता है तो कांग्रेस नष्ट-भ्रष्ट हो जायगी। सर्वप्रथम पृथक् निर्वाचन जिसको वर्किंग कमेटी ने अङ्गीकार कर लिया है, हमारे सामने है ही; विधान-सम्मेलन की बनावट भी ऐसी होगी कि वह साम्प्रदायिक शक्तियों का रणक्षेत्र बन जायगा और भारत के शत्रु अँगुली दिखायेंगे कि ऐसे दुःखान्त विषय का कारण कांग्रेस ही रही है।

यदि यह विधान-सम्मेलन विधान तैयार करने में सफल भी हो जाता है तो ब्रिटिश सरकार को वह विधान भारत में न लागू करने का सदैव एक न एक बहाना मिल जायगा। यदि वर्तमान अन्तर्राष्ट्रीय परिस्थिति बीच में ही सुलझ जाती है तब तो ऐसी दशा होगी ही।

हमें बड़ा ताज्जुब होता है कि हमारे बड़े नेताओं की समझ में यह नहीं आता कि विधान बनाने के लिए बैठने के पहले वे विधान बनाने की शक्ति प्राप्त करें। हम पूछ सकते हैं कि क्या उन्होंने यह शक्ति पा ली है? नहीं। यही कारण है कि हम कहते हैं कि असली विधान-सम्मेलन राष्ट्रीय या स्थानान्तरित राष्ट्रीय सरकार द्वारा ही बनाया जा सकता है।

हिन्दू-महासभा

हिन्दू-महासभा के सम्बन्ध में 'अमृत-बाज़ार-पत्रिका' ने जो अग्रलेख लिखा है वह 'अभ्युदय' में छपा है। उसका अधिकांश यह है—

कलकत्ते में होनेवाली हिन्दू-महासभा के अधिवेशन ने हिन्दू-बंगाल में जो उत्साह उत्पन्न कर दिया है उससे हमारे कांग्रेस-नेताओं को विचार करने का कुछ चारा मिलाना चाहिए। इसको प्रत्याघाती साम्प्रदायिक विचारों का उबाल समझकर विचार न करना बड़ी ही नादानी होगी, क्योंकि हिन्दू-बंगाल काफ़ी कांग्रेसी दृष्टिकोण का है इस मानी में कि वह पूर्ण राष्ट्रीय स्वतन्त्रता के ध्येय में सच्चा विश्वास रखता है। भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस को वैध संस्था क़रार दिये जाने से बहुत पहले बंगाल के हिन्दुओं का यह ध्येय रहा था। उन्होंने अपना जीवन देकर भी इसको अपना ध्येय घोषित किया और आज भी स ध्येय को प्राप्त करने के लिए वे हमेशा की तरह सब प्रकार का कष्ट उठाने और बलिदान करने को तैयार हैं। और न यह उत्साह जो आज हम अपने नवयुवकों में देखते हैं मुस्लिम-विरोधी पक्षपात का फल है। यद्यपि बंगाल के हिन्दू अल्पसंख्यक हैं, फिर भी उन्होंने सदा संयुक्त निर्वाचन का समर्थन किया है—यह जानते हुए भी कि यह प्रथा वैधानिक हिन्दू-हितों को क्षति पहुँचा सकती है। उन्होंने अपने लिए खास रियायतों और रक्षा के आश्वासन की माँग कभी नहीं की और उन्होंने हमेशा अपनी यही राय ज़ाहिर की है कि हिन्दू और मुस्लिम जनता के बीच पृथक् निर्वाचन की जो बनावटी दीवाल खड़ी कर दी गई है यदि वही तोड़ दी जाय तो दोनों क़ौमें स्वतंत्र राष्ट्रीय जीवन के निर्माण के लिए आर्थिक और राजनीतिक क्षेत्र में एक-दूसरे से प्रेमपूर्वक मिलकर काम करेंगी।

फिर क्या कारण है कि हिन्दू-बंगाल राष्ट्रीयता का अन्यतम पुजारी होते हुए भी हिन्दू-महासभा में एकत्र होता जा रहा है, यद्यपि हिन्दू-महासभा को कांग्रेस ने साम्प्रदायिक संस्था और सच्चे राष्ट्रवादियों की निष्ठा के अयोग्य संस्था क़रार दिया है। इसका जवाब सिर्फ़ यही हो सकता है कि हिन्दू-बंगाल ने कांग्रेस के निर्णय को सही नहीं माना है। हमारे नवयुवक कहते हैं कि हिन्दू-महासभा ने निस्सन्देह कांग्रेस के समान ही राष्ट्रीय स्वतन्त्रता को अपना ध्येय घोषित किया है और हिन्दुओं के लिए उसने उन किसी भी राजनैतिक अधिकारों की माँग नहीं की है जिनको कि वह मुसलमानों के साथ बराबरी का हिस्सा-बाँट करने को तैयार नहीं है। अल्पसंख्यक समुदाय के उसके संस्कृति, धर्म और भाषा की रक्षा के हक़ को मनाते हुए इस बात में हिन्दू-महासभा विश्वास नहीं करती कि हिन्दू और मुसमलानों में सच्चा मेल उन साम्प्रदायिक संस्थाओं की लालच को पूरा करने के लिए रियायतें पर रियायतें देने पर हो सकता है, जो संस्थायें भारतीय राजनीति में अपना अधिकारपूर्ण स्थान बनाये रखने के लिए विदेशी साम्राज्यवादियों की सहायता प्राप्त करना चाहती हैं। ऐसी रियायतें दूसरे समुदायों के लिए अन्याय तो हैं ही, वे भविष्य में भारतीयों को भिन्न भिन्न साम्प्रदायिक संस्थाओं में विभाजित करने का भी काम करती हैं और राष्ट्रीय आदर्श पर, जिसका तात्पर्य संयुक्त राष्ट्र है, उलटा असर डालती हैं।

हमारे युवक यह विश्वास करने लगे हैं कि इन बातों में बहुत सचाई है और ब्रिटिश सरकार के अन्यायपूर्ण और अराष्ट्रीय साम्प्रदायिक निर्णय के सम्बन्ध में कांग्रेस ने जो रुख अख़्त्यार किया है उससे उनका विश्वास और भी पक्का हो गया है। इस निर्णय ने, जैसा कि सर्वविदित है, हिन्दू-बंगाल पर बहुत सख़्त चोट पहुँचाई है।

× × ×

सन्देह और निराशा के कारण ही बंगाल के हिन्दू इस निश्चय पर पहुँचे हैं कि वे अपनी ही शक्ति का संगठनकर साम्प्रदायिक या राष्ट्रीय समस्या का सन्तोषजनक हल निकालने की आशा कर सकते हैं। कदाचित् यही कारण है जिसमें यह साफ़ हो जाता है कि हिन्दू-महासभा (जो कि वर्तमान कठिनाई से निकलने का एक ज़रिया है) के लिए उनमें इतना उत्साह है।

दहेज़ के सम्बन्ध में एक विचार

लेखिका, श्रीमती एल० पी० राज़दान

आजकल स्त्रियों में दाम्पत्य जीवन के सम्बन्ध में असन्तोष फैल रहा है। जो सामाजिक कठिनाइयाँ स्त्रियों के दाम्पत्य जीवन में पेश आ ही हैं उनको दूर करना बहुत ज़रूरी मालूम पड़ता है। वर्तमान समय में हर एक स्त्री स्वयं को असहाय समझती है। इसका कारण केवल यही है कि आजकल के प्रचलित क़ानून स्त्रियों के सम्बन्ध में बहुत अनुदार हैं। पहले मैं एक ही क़ानून की ओर ध्यान दिलाना चाहती हूँ जो कि आजकल स्त्रियों के विरासत के सम्बन्ध में है। एक हिन्दू स्त्री के जीवन को ले लीजिए। मा-बाप लड़की के पालन और शिक्षण पर इतना धन ख़र्च करना नहीं चाहते जितने के वे अधिकारी होते हैं। वे उन्हें केवल प्रारम्भिक शिक्षा दिलाकर बस कर देते हैं जो कि लड़कियों के लिए बजाय फ़ायदेमन्द होने के उलटी हानिकारक है। अच्छी शिक्षा दिलवाने का ख़र्च बहुत बैठता है और मा-बाप सोचते हैं कि लड़की को ऊँची शिक्षा दिलवाने में जितना धन ख़र्च होगा वह उसके दहेज़ के लिए क्यों न बचा लिया जाय। पर लड़के के विषय में मा-बाप यही ख़याल करते हैं कि यदि ख़र्च ज़्यादा हो जायगा तो हम बाद में किसी अच्छे घर की लड़की से ब्याह करके सब वसूल कर लेंगे। यही सोचकर लड़के के मा-बाप शादी के समय वधू के रूप और शिक्षा की ओर कम ध्यान देते हैं और दहेज़ की रक़म की ओर अधिक।

[शेरकोट की रानी फूलकुमारी साहबा। आप संयुक्तप्रान्त की प्रसिद्ध महिला तथा लखनऊ-विश्वविद्यालय की सदस्या हैं।]

क्योंकि वे जानते हैं कि यदि बहू अच्छा दहेज लायेगी तो हमारे घर के रुपये में जो कमी लड़के की शिक्षा के कारण हो गई है वह पूरी हो जायगी। मेरा विचार है कि इस दशा में अधिकांश लड़कियाँ भी यही

[कुमारी शेरन डी० डोंगर्जी, आप अमेरिका से गार्हस्थ्यशास्त्र में डिगरी लेकर भारत वापस आई हैं।]

चाहती हैं कि अगर हम किसी ग़रीब घर में ब्याही जायँ तो अच्छा है जिससे हमारे मा-बाप दहेज के कारण कष्ट में न पड़ें। भले ही हमारी ज़िन्दगी दुःखपूर्ण क्यों न हो। बेचारी लड़कियाँ अपना ही बलिदान करना चाहती हैं; पर क्या यह लड़की के लिए अच्छी बात है? और क्या ऐसी बातें, जो कि हिन्दू समाज में हो रही हैं, सन्तोषजनक हैं? मैं देखती हूँ कि हमारी विवाहिता बहनों में से भी अधिकांश का जीवन ऐसा दुःखी रहता है कि वे रात-दिन भगवान् से मृत्यु की याचना किया करती हैं। क्योंकि दाम्पत्य जीवन की लाञ्छनाओं और बेगार-पूर्ण ज़िम्मेदारियों से छुटकारा पाने के लिए मौत के सिवा और कोई इलाज ही उनके पास नहीं है।

आजकल असेम्बलियों या काउन्सिलों में भी बिल पेश किये जाते हैं कि औरतों को भी जायदाद में से हिस्सा मिलना चाहिए; या उसको अपनी जायदाद में बराबर हक़ रहे। पर देखना है कि क्या इस प्रकार के बिल हमारी मौजूदा दशा में कुछ लाभदायक हो सकेंगे। मेरा ख़याल है कि यह भी मुनासिब नहीं है कि स्त्रियों को एकदम इतनी आज़ादी दे दी जाय कि वे अपने अभिभावकों के अधीन ज़रा भी न रहें। क्योंकि ऐसा होने पर पारिवारिक जीवन में सुव्यवस्था न रह सकेगी। मैं इसका भी एक हल पेश करती हूँ। सम्भव है कि मेरी कुछ बहनें, जो आज़ादी में बहुत आगे हैं, मेरे ख़याल से सहमत न हों, लेकिन मेरे समझदार और बुज़ुर्ग भाई मेरी तुच्छ सम्मति से अवश्य सहमत होंगे।

एक लड़की के दाम्पत्य जीवन को सुखी बनाने के लिए उसके मा-बाप का कर्तव्य यह नहीं है कि वे उसको उच्च शिक्षा, या जो शिक्षा कि लड़कियों को नुमायशी गुड़िया बनाने की चीज़ है, दिलायें और उसे योग्य भार्या या योग्य माता बनाने के लिए कुछ भी फ़िक्र न करें। न यही है कि लड़की की शादी पर भारी दहेज़ दे दें या जायदाद में से कुछ हिस्सा उसे दे दें। न इसी से कुछ लाभ हो सकता है कि मा-बाप के मरने पर उनकी जायदाद का कुछ हिस्सा लड़की को मिल जाय। बल्कि मा-बाप को यह ध्यान रखना ज़रूरी है कि वे लड़की की शादी ऐसे योग्य और ज़िम्मेदार लड़के के साथ करें जो रूप, गुण, चरित्र

[कुमारी मुक्ताबाई सुब्बाराव (एम० ए० आनर्स) आप निज़ाम सरकार की ओर से छात्रवृत्ति पाकर इँगलेंड में शिक्षा पा रही हैं।]

और व्यक्तिगत विशेषताओं का भूखा हो, या किसी गुण की वजह से ही ब्याह करे। इससे उसक दाम्पत्य जीवन सुख से व्यतीत होगा और यह तभी हो सकता है जब किसी क़िस्म का लालच लड़के के मा-बाप को न हो। इसी सूरत में स्त्री पति के घर में जीवन-संगिनी बन कर रहेगी। ऐसी हालत में आजकल जो घर में लड़ाई झगड़े होते रहते हैं वे भी न होंगे। अब सवाल यह है कि स्त्रियों के लिए कौन-सा ऐसा रास्ता है जिससे वे घर में मालकिन की हैसियत से रह सकती हैं? स्त्री के तमाम सुख-दुःख का साथी उसका पति है और स्त्री को पुरुष के भाग्य-अभाग्य में भाग बटाना पड़ता है। फिर क्या कारण है कि जायदाद वग़ैरह में स्त्री अपने पति से अलग कर दी जाय? एक पुरुष अगर ३०) महीना ले आता है तो स्त्री अपने भाग्य का बदा समझकर उसी पर सन्तोष करती है; लेकिन उसका पति जायदाद वग़ैरह में उसकी राय लेना केवल इसलिए फ़िज़ूल समझता है कि उसका मालिक सिर्फ़ वही है। उसमें स्त्री को राय देने का या दख़ल देने का अधिकार वह नहीं मानता। यह दोष इस प्रकार दूर हो सकता है कि स्त्री को अपने पति की जायदाद पर विवाह के दिन से ही आधे का मालिक बना दिया जाय। ऐसा नियम कर दिया जाय कि पति अपनी जायदाद को—चाहे वह पाँच रुपये ही की क्यों न हो बिना स्त्री के दस्तख़त के न रेहन रख सकता है और न बेच सकता है। अर्थात् यदि पति बेचना चाहता है और पत्नी की राय नहीं है तो वह पत्नी के आधे हिस्से को अलग करने के बाद अपने हिस्से को बेच या रेहन कर सकता है, लेकिन उसके बाद अपनी बीबी के हिस्से पर उसे कुछ भी अधिकार न हो। जब तक बीबी ज़िन्दा रहे वह उसकी मालकिन रहे। पत्नी के मरने के बाद भी उस जायदाद का मालिक पति नहीं बल्कि बच्चे होंगे लेकिन बाप की ज़िन्दगी में ही नहीं, बल्कि बाप के मरने के बाद। और अगर बाक़ी जायदाद या कुछ हिस्सा है तो उसमें से मा के हिस्से का बँटवारा होना चाहिए, या कोई पैतृक जायदाद हो तो उसका मालिक स्त्री नहीं मर्द रहेगा। लेकिन ये बातें अभी चन्द साल तक ही रहेंगी; क्योंकि जब नये क़ानून के मुताबिक़ स्त्री भी पति की जायदाद की बराबर की हिस्सेदार बना दी जायगी तब पैतृक की सूरत ही नहीं रहेगी। फिर मा-बाप की ही जायदाद कहलायेगी और उसके वारिस उन्ह के बच्चे होंगे। प्रश्न किया जा सकता है कि अगर पत्नी फ़िज़ूल ख़र्च करे, या पति फ़िज़ूलख़र्च हो, और वह अपनी जायदाद को तबाह करने के लिए ही उसको रेहन या बेचना चाहता हो तो उसकी भी रोक-थाम ज़रूरी है। ऐसी हालत में पत्नी या पति को अधिकार होना चाहिए कि इस हिस्से को बचाने के लिए कोर्ट का दरवाज़ा खटखटाये। इसका मतलब यह है कि इस हिस्से पर उसका क़ब्ज़ा हो जायगा बल्कि वह उस हिस्से को अपने बच्चे के लिए किसी ट्रस्टी के मातहत कर सकता है। अगर दोनों ही उसको तबाह कर सकते हैं तो बच्चे की तरफ़ से कोई रुकावट डाली जा सकती है। सवाल यह है कि कोई भी हिस्सेदार यानी स्त्री या पति में से कोई भी अपने हिस्से को किसी सोसाइटी या और ही तरीक़े पर दान करना चाहे या अपने किसी सम्बन्धी को उसमें से कुछ देना चाहे तो न कर सकेगा। उस क़ानून में यह उपधारा रखनी चाहिए कि पति या पत्नी अपनी जायदाद अपने मरने के बाद जिस तरह भी चाहें कर जायँ कोई भी इसमें हस्तक्षेप नहीं कर सकता। हर एक स्त्री फ़िज़ूलख़र्च नहीं होती और न हर एक पुरुष ही जायदाद को बढ़ाने के लायक़ रहता है। बढ़ाना तो दूर, बहुत ही कम पुरुष जायदाद को बनाये रखते हैं। अगर हम ग़ौर से आजकल के पुरुषों की दशा देखें तो हमको बहुत ही कम पुरुष अपनी जायदाद को बढ़ानेवाले नज़र आयेंगे। आमतौर पर हमारी नज़र में ऐसे ही पुरुष आते हैं जो कम-से-कम किसी भी स्त्री की राय लेना न चाहेंगे, चाहे वह उसकी बुज़ुर्ग मा ही क्यों न हो। मैं एक बात और यह कहना चाहती हूँ कि कम-से-कम स्त्रियों का हक़ उसकी ज़िन्दगी तक तो अपनी जायदाद पर ज़रूर रहना चाहिए ताकि हमारी सोहागिन और बेवा बहनें तो आराम से ज़िन्दगी बिता सकें। भविष्य की लड़कियाँ तो ख़ुद ही अपने लायक़ कोई न कोई रास्ता सोच ही निकालेंगी क्योंकि उनमें स्वतंत्रता का बीज आजकल के पुरुषों की शिक्षा से बो गया है। भविष्य में वे किसी के अधीन होकर रह ही नहीं सकतीं।

विशेष-सूचना

वर्ग नं० ४२ की शुद्ध-पूर्ति में 'अनुसमन' भूल से छप गया है। इसके लिए वर्ग-सम्पादक क्षमा-प्रार्थी हैं। शुद्ध शब्द 'अनुगमन' होना चाहिए। वर्ग-सम्पादक के बाहर से लौट आने पर सरस्वती-सम्पादक ने उनके समक्ष यह मामला पेश किया। फलतः उन्होंने 'अनुसरन' और 'अनुगमन' दोनों शब्दों को शुद्ध मानने की आज्ञा दी। अतः पुरस्कार-विजेताओं की पहली सूची, जो छप चुकी थी, रद्द कर दी गई है और उसके स्थान में यह नई सूची लगाई गई है। प्रतियोगिताइसे ही ठीक समझें। इसी कारण सरस्वती इस बार कुछ लेट हो गई है। आशा हमारे उदार पाठक क्षमा करेंगे।

—सम्पादक

वर्ग नं० ४२ का नतीजा

प्रथम पुरस्कार ३००) (शुद्ध पूर्ति पर)

यह पुरस्कार निम्नलिखित १८ व्यक्तियों को दिया गया। प्रत्येक को १६।।।) मिले।

(१) मदनगोपाल माहेश्वरी, चौक, मथुरा। (२) चनणमल, करसियाँग, दारजिलिंग। (३) सीताराम हेडमास्टर, धर्मजयगढ़, उदयपुर। (४) लोकाबाई, जासूस आफ़िस, बनारस। (५) मिसेज़ बी० आर० दुबे, रंगून। (६) आर० एस० शर्मा, जनरलगंज, कानपुर। (७) आर० के० अग्निहोत्री, पुरवा, उन्नाव। (८) हरगोपाल वर्मा, आसौदा, रोहतक। (९) शिवदत्तप्रसाद वाजपेयी, अजगैन, उन्नाव। (१०) निमादेवी, बरेली बैंक, फ़र्रुख़ाबाद। (११) मदनसिंह, बन्दरोड, इलाहाबाद। (१२) ओम्प्रकाश, बहादुरगंज शाहजहाँपुर। (१३) श्यामप्रसाद, नजीबाबाद। (१४) गंगासिंह, नजीबाबाद (१५) नरोत्तमदास अग्रवाल, मीरगंज, इलाहाबाद। (१६) पृथ्वीपाल गुप्त, कटरा, इलाहाबाद। (१७) केदारनाथ शर्राफ़, बड़ा बाजार, अलीगढ़। (१८) हर-किशनलाल अग्रवाल, पचमढ़ी।

द्वितीय पुरस्कार २००) (एक अशुद्धि पर)

यह पुरस्कार निम्नलिखित ८५ व्यक्तियों में बाँटा गया। प्रत्येक को २।=) मिले।

(१) संगम लाल, कटरा, इलाहाबाद। (२) गिरीश-चन्द्र, इलाहाबाद। (३) वेदपाल गुप्त, इलाहाबाद। (४) अमीचन्द चोपड़ा, लाहौर। (५) ए० चन्द्र, हथरोई जैपुर। (६) गोविन्द प्रसाद पांडे, फ़ैज़ाबाद। (७) सकलादेवी, नई दिल्ली। (८) कृष्णगोपाल, मथुरा। (९) वृजगोपाल, मथुरा। (१०) बलवीर सहाय, नवीनगर। (११) अयोध्या प्रसाद सिंह, बाँसी। (१२) रामदत्त जोशी, देवलीखेत। (१३) सूरजनारायण चौधरी कानपुर। (१४) चन्द्रमोहन सिंह, कानपुर। (१५) (१५) द्वारका प्रसाद शर्मा, गुमला। (१६) ख़ुशीराम शर्मा, जैतू। (१७) विनायक राव भट्ट, ललितपुर। (१८) गोबिनराव भट्ट, ललितपुर। (१९) श्यामकुमार सिनहा, मुज़फ़्फ़रपुर। (२०) भरतसिंह खत्री, देहली। (२१) उदयचंद, जालौर। (२२) भगवती देवी, ललितपुर। (२३) सुषमाकुमारी, बीकानेर। (२४) सीतादेवी, महम। (२५) मित्रदेव उपाध्याय, चौषखिया। (२६) लालसिंह, सोंगरा। (२७) नारायण प्रसाद सक्सेना, बाबरपुर। (२८) ठाकुरदास, अल्मोड़ा। (२९) रामगोविन्द, सहतवार। (३०) ओम प्रकाश, गांधीनगर (कानपुर)। (३१) शकुन्तलादेवी, कानपुर। (३२) द्वारका प्रसाद, शिकारपुर। (३३) रामचन्द्र मिश्र, कानपुर। (३४) कल्याण, मलहौसी। (३५) एच० एन० शर्मा, कानपुर। (३६) ओ० एच० राठौर, कोटा। (३७) प्रेमचन्द गुप्त, एटा। (३८) शारदा-प्रसाद, कलकत्ता। (३९) ठाकुर शरणदास, गोरखपुर। (४०) त्रिभुवन नारायण सिंह, धौरूआ, स्टेट। (४१) सुनील कुमार, देहरादून। (४२) भगवती सिंह, कानपुर। (४३) ओमकार दास पाठक, हमीरपुर।

(४४) ठाकुर बाबूसिंह, मानपुर। (४५) श्यामा अग्रवाल, इलाहाबाद। (४६) मोतीलाल मोहन भाई पटेल, खलघाट। (४७) कुँवर वी० सिंह, आगरा। (४८) कुमारी उर्मिला, पंडितपुर। (४९) देवेन्द्र सिंह शास्त्री, मुरादाबाद। (५०) केसर सिंह मुल्तानी, नई दिल्ली। (५१) बरकत राम, पिलानी। (५२) भगवतस्वरूप, फ़िरोज़ाबाद। (५३) कुंजीलाल शर्राफ़, अलीगढ़। (५४) राजाराम श्रीवास्तव, वलुआ। (५५) जनार्दन-लाल, राँची। (५६) बलूराम नरायण, गोरखपुर। (५७) मिसेज़ पी० ए० सिन्हा, इलाहाबाद। (५८) कुमारी सावित्री देवी, कलकत्ता। (५९) गंगाशरण, खड्गपुर। (६०) श्रीनाथसाह, पुरुलिया। (६१) सी० पी० गुप्ता, खान मथुरा। (६२) मार्कण्डेय शुक्ल, इलाहाबाद। (६३) शिवबालक प्रसाद, इलाहाबाद। (६४) जयनारायण लाल, पूर्णिया। (६५) रघुनाथ प्रसाद, ज्ञानपुर। (६६) छोटेसिंह चौहान, नँदगवा। (६७) बच्चनासिंह, बनारस। (६८) धर्मेश्वरी प्रसाद, फूलपुर। (६९) रामचन्द्र अग्रवाल, भट्टकलाँ। (७०) प्रतापि-मनोहर सांडल, वृन्दावन। (७१) सुशीला, गांधीनगर, कानपुर। (७२) राजकुमार मित्तल, खुर्जा। (७३) रमाशंकर त्रिपाठी, कानपुर। (७४) आर० के० पंडित, कानपुर। (७५) सुखवासीलाल, रतननगर। (७६) इंदिरादेवी, नई दिल्ली। (७७) माधोप्रसाद, अजगैन। (७८) सुशीला देवी, फ़िरोज़ाबाद। (७९) नंदकिशोर चौबे, बेतिया। (८०) त्रिलोकसिंह, मारकुना। (८१) ब्रजकिशोर, बलरई। (८२) शंकरलाल, सरसावा। (८३) पी० सी० हालन मीरगंज। (८४) शहज़ादेलाल, कानपुर। (८५) काशीलाल, लखनऊ।

उपर्युक्त सब पुरस्कार फ़रवरी के अन्त तक भेज दिये जायँगे।

नोट—जाँच का फ़ार्म ठीक समय पर आने से यदि किसी को और भी पुरस्कार पाने का अधिकार सिद्ध हुआ तो उपर्युक्त पुरस्कारों में से जो उसकी पूर्ति के अनुसार होगा वह फिर से बाँटा जायगा। केवल वे ही लोग जाँच का फ़ार्म भेजें जिनका नाम यहाँ नहीं छपा है, पर जिनको यह सन्देह हो कि वे पुरस्कार पाने के अधिकारी हैं।

नियमः—

(१) किसी भी व्यक्ति को यह अधिकार है कि वह जितनी पूर्तियाँ भेजना चाहे, भेजे, किन्तु प्रत्येक वर्ग-पूर्ति सरस्वती पत्रिका के ही छपे हुए फ़ार्म पर होनी चाहिए। इस प्रतियोगिता में एक व्यक्ति को केवल एक ही इनाम मिल सकता है। इंडियन-प्रेस के कर्मचारी इसमें भाग नहीं ले सकेंगे। प्रत्येक वर्ग की पूर्ति स्याही से की जाय। पेंसिल से की गई पूर्तियाँ स्वीकार न की जायँगी। अक्षर सुन्दर, सुडौल और छापे के सदृश स्पष्ट लिखने चाहिए। जो अक्षर पढ़ा न जा सकेगा अथवा बिगाड़ कर या काटकर दूसरी बार लिखा गया होगा वह अशुद्ध माना जायगा।

(२) प्रतियोगिता में शामिल होने के लिए जो फ़ीस वर्ग के ऊपर छपी है, दाखिल करनी होगी। फ़ीस मनी-आर्डर-द्वारा या सरस्वती-प्रतियोगिता के प्रवेश-शुल्क-पत्र (Credit voucher) के द्वारा दाखिल की जा सकती है। इन प्रवेश-शुल्क-पत्रों की किताबें हमारे कार्यालय से ३) या ६) में खरीदी जा सकती हैं। ३) की किताब में आठ आने मूल्य के और ६) की किताब में १) मूल्य के ६ पत्र बँधे हैं। एक ही कुटुम्ब के अनेक व्यक्ति जिनका पता-ठिकाना भी एक ही हो, एक ही मनीआर्डर-द्वारा अपनी अपनी फ़ीस भेज सकते हैं और उनकी वर्ग-पूर्तियाँ भी एक ही लिफ़ाफ़े या पैकेट में भेजी जा सकती हैं। वर्ग-पूर्ति की फ़ीस किसी भी दशा में नहीं लौटाई जायगी। मनीआर्डर व वर्ग-पूर्तियाँ 'प्रबन्धक, वर्ग-नम्बर ४३, इंडियन प्रेस, लि०, इलाहाबाद' के पते से आनी चाहिए।

(३) लिफ़ाफ़े में वर्ग-पूर्ति के साथ मनीआर्डर की रसीद, पोस्टल आर्डर या प्रवेश-शुल्क-पत्र नत्थी होकर आना अनिवार्य है। कूपन में दिए हुए स्थान पर इनका नम्बर अवश्य लिख देना चाहिए। ऐसा न होने पर वर्ग-पूर्ति की जाँच न की जायगी।

(४) जो वर्ग-पूर्ति २६ फ़रवरी तक नहीं पहुँचेगी, जाँच में शामिल नहीं की जायगी। स्थानीय पूर्तियाँ २४ फ़रवरी को पाँच बजे तक बक्स में पड़ जानी चाहिएँ और दूर के स्थानों (अर्थात् जहाँ से इलाहाबाद को डाक गाड़ी से चिट्ठी पहुँचने में २४ घंटे या अधिक लगता है) से भेजनेवालों की पूर्तियाँ २ दिन बाद तक ली जायँगी। वर्ग-सम्पादक का निर्णय सब प्रकार से और प्रत्येक दशा में अन्तिम तथा मान्य होगा। शुद्ध वर्ग-पूर्ति की प्रतिलिपि सरस्वती पत्रिका के अगले अङ्क में प्रकाशित होगी, जिससे पूर्ति करनेवाले सज्जन अपनी अपनी वर्ग-पूर्ति की शुद्धता-अशुद्धता की जाँच कर सकें।

(५) वर्ग-निर्माता की पूर्ति से, जो मुहर लगा करके रख दी गई है, जो पूर्ति मिलेगी वही सही मानी जायगी। इस संबंध में किसी प्रकार का वाद-विवाद न माना जायगा। यदि कोई पूर्ति शुद्ध न निकली तो मैनेजर शुद्ध पूर्ति का इनाम जिस तरह उचित समझेंगे, बाँटेंगे।

२००) शुद्धपूर्ति पर **व्यत्यस्त-रेखा-शब्द-पहेली** १००) न्यूनतम अशुद्धियों पर

अङ्क-परिचय नं० ४३

बाँयें से दाहिने

१—हनुमान जी। ४—पहाड़। ६—समाचार।
७—इसके लिए एक से अधिक की आवश्यकता पड़ती है।
९—विवाह में इसे खिलाने के लिए हिन्दुओं को काफ़ी रक़म खर्च करनी पड़ती है।
१०—इसका व्यवहार फोड़े आदि चीरने में होता है।
१२—इसके उदय होने पर ही सज़ा भुगतनी पड़ती है।
१४—मूर्ख अपनी कितनी ही रक़म इसी में खर्च कर डालता है। १६—एक प्रकार का सिक्का।
१८—दूसरे के देश पर अधिकार करते समय राजा लोग प्रजा का मनमाना यह करते हैं।
१९—ठोकर लगने पर भी कुछ लोग ऐसे नहीं होते।
२१—दुश्मन या यह भी संदेह की दृष्टि से देखा जाता है।
२३—शब्द उलटते ही तपस्या पूरी हो जायगी।
२५—रास्ता।
२६—रामायण का एक प्रसिद्ध गिद्ध।
२७—जाड़े का एक प्रिय ओढ़ना।
२८—इसका अस्तित्व आनन्द का कारण है।
२९—जनता इसी से वश में आती है।

ऊपर से नीचे

१—पूर्व काल का एक बड़ा युद्ध। २—अवस्था।
३—युद्ध में प्रायः इसकी कमी ही पराजय का कारण होती है। ४—ईश्वर।
५—शिथिल होने पर प्रायः टूट जाया करता है।
८—कहते हैं कि इसके दिन ब्रह्म-भोज कराने से घर पवित्र हो जाता है।
११—प्रायः इसका डर लोगों को भयानक पापों से बचा देता है।
१३—ताज़िये की शोभा इसी से होती है।
१५—ऐसे टिकट प्रायः रियायती दाम पर मिलते हैं।
१६—जैसी रुचि बदलती है वैसा ही इसमें परिवर्तन किया जाता है।
१७—हाथी। १८—घुड़कना।
१९—युगों में सर्वश्रेष्ठ युग यही माना जाता है।
२०—कुछ हिन्दू-स्त्रियाँ विवाहों में इसका न होना अशुभ समझती हैं।
२२—युद्ध में प्रायः इसी की अधिकता होती है।
२३—लोहे की एक प्रकार की पट्टी।
२४—कहा जाता है कि गजराज की यह सुन कर श्री कृष्ण ने नंगे पाँव दौड़ कर उसकी सहायता की थी।

अपनी याददाश्त के लिए वर्ग ४३ की पूर्तियों की नक़ल यहाँ पर कर लीजिए और इसे निर्णय प्रकाशित होने तक अपने पास रखिए।

म	ह्ला	वी	र		प	र	ब	त	
ठा	ल		स	मि	ति		तै		ब
भा	त		द				न	स्त	स
र					पा				ी
तं	ा	जा		चं		नी			
			दं		न		सं	ज	
	सीं	धा		न		प			
८		ा			जं	ा	यु		ा
ा			ना				ग		
रं	ा	ई		सौं		न		सें	ा

म	ह्ला	वी	र		प		ब	त	
ा	ल			मि	ि				ब
भा			द				न	स्त	
					पा				ी
तं	ा	जा		चं		नी			
			दं		न		सं	ज	
	सीं	धा		न		प			
८		ा			जं	ा	यु		ा
ा			ना				ग		
रं	ा	ई		सौं		न		सें	ा

वर्ग नं० ४२ की शुद्ध पूर्ति

वर्ग नम्बर ४२ की शुद्ध पूर्ति जो बन्द लिफ़ाफ़े में मुहर लगाकर रख दी गई थी, यहाँ दी जाती है।

बा	ल	स	खा		पा	र	स	ना	थ
र			ट	म	ट	म			
ह	ब	शी		त			र	ज	नी
सिं	ह	ल			वा	र	द		ल
गा	ली		अ	उ	स	म	न		गा
				मा	र	ना		चा	य
ब	न			इ			खा	त	
	दी	न		श	च		ऊ	क	
त		ख	ल		प	द	वी		भा
प	थ			प	त	वा	र		व

वर्ग नं० ४२ (जाँच का फ़ार्म)

मैंने सरस्वती में छपे वर्ग नं० ४२ के आपके उत्तर से अपना उत्तर मिलाया। मेरी पूर्ति

नं०...में } कोई अशुद्धि नहीं है। / १,२,३ अशुद्धियाँ हैं।

मेरी पूर्ति पर जो पारितोषिक मिला हो उसे तुरन्त भेजिए। मैं १) जाँच की फ़ीस भेज रहा हूँ।

हस्ताक्षर ____________

पता ____________

____

बिन्दीदार लाइन पर काटिए

नोट—जो पुरस्कार आपकी पूर्ति के अनुसार होगा वह फिर से बँटेगा और फ़ीस लौटा दी जायगी। पर यदि पूर्ति ठीक न निकली तो फ़ीस नहीं लौटाई जायगी। जो समझें कि उनका नाम ठीक जगह पर छपा है उन्हें इस फ़ार्म के भेजने की ज़रूरत नहीं। यह फ़ार्म १५ फरवरी के बाद नहीं लिया जायगा।

इसे काटकर लिफ़ाफ़े पर चिपका दीजिए।

मैनेजर वर्ग नं० ४३

इंडियन प्रेस, लि०,

इलाहाबाद

मुफ़्त कूपन की नक़ल यहाँ कीजिए।

म	ह्ला	वी	र		प		ब	त	
ा	ल			मि	ि				ब
भा			द				न	स्त	
					पा				ी
तं	ा	जा		चं		नी			
			दं		न		सं	ज	
	सीं	धा		न		प			
८		ा			जं	ा	यु		ा
ा			ना				ग		
रं	ा	ई		सौं		न		सें	ा

इस लाइन से काटिए

रिक्त कोष्ठों के अक्षर मात्रारहित और पूर्ण हैं।

अन्य आवश्यक सूचनायें—

(१) पाठक देखेंगे कि एक कूपन में एक नाम से अधिक भरने की गुंजाइश नहीं है परन्तु प्रत्येक कूपन में ऐसी सुविधा की गई है कि वर्ग नं० ४३ की तीन पूर्तियाँ एक साथ भेजी जा सकेंगी। दो आठ-आठ आने की और तीसरी मुफ़्त। मुफ़्त पूर्ति सिर्फ़ उन्हीं की स्वीकार की जायगी जो दो पूर्तियों के लिए १) भेजेंगे। और तीनों पूर्तियाँ एक ही नाम से भेजेंगे। एक पूर्ति भेजनेवाले को भी पूरा कूपन काट कर भेजना चाहिए और दो खाने खाली छोड़ देने चाहिए। अन्यथा उनकी पूर्ति स्वीकार न की जायगी।

(२) स्थानीय पूर्तियाँ 'सरस्वती-प्रतियोगिता-बक्स' में जो कार्यालय के सामने रक्खा गया है, दिन में दस और पाँच के बीच में डाली जा सकती हैं।

(३) वर्ग नम्बर ४३ का नतीजा जो वन्द लिफ़ाफ़े में मुहर लगाकर रख दिया गया है, ता० २८ फ़रवरी सन् १९४० को सरस्वती-सम्पादकीय विभाग में शाम को ४-५ वजे के बीच में सर्वसाधारण के सामने खोला जायगा। उस समय जो सज्जन चाहें स्वयं उपस्थित होकर उसे देख सकते हैं।

(४) नियमों का पालन पूर्ति भेजने की खास शर्त है। यदि कोई पूर्ति देर से पहुँचे या खो जाय तो कार्यालय उसके लिए उत्तरदायी नहीं है। इस संबंध में किसी प्रकार का कोई उत्तर न दिया जायगा।

(५) पहेली की फ़ीस जो प्रतियोगी इंडियन प्रेस के 'प्रवेश-शुल्क-पत्रों' के रूप में भेजते हैं उन्हें जान लेना चाहिए कि ये प्रवेश-शुल्क-पत्र जिस व्यक्ति के नाम से लिये जायँ, वही उनका उपयोग कर सकता है। जो प्रतियोगी दूसरे के नाम से लिये गये शुल्क-पत्र अपने कूपन के साथ भेजेगा उसकी पूर्ति अनियमित ठहराई जायगी।

विशेष-सूचना

'सरस्वती' के वर्ग-प्रतियोगियों को सूचना दी जाती है कि इस फ़रवरी के अंक का वर्ग नं० ४३ सरस्वती का अन्तिम वर्ग है। इसके वाद से 'सरस्वती' में वर्ग-प्रतियोगिता नहीं रहेगी।

लोचन

[पाठकों को वश में करने योग्य वेशभूषा से सुसज्जित एक प्रगतिशील कविता]

लेखक, श्रीयुत श्रीवर चतुर्वेदी

कैसे आज बताऊँ लोचन?
कमल-नयन यदि कहता हूँ
तो कहलाऊँगा दक़ियानूसी
मृग-लोचनी बताता हूँ तो
बन जाऊँगा भक्षक भूसी।
(प्रगतिशील उपमा की इच्छा
सुन्दर न, हो सत्य अलबत्ता,
यह उनका मत है हे प्रेयसि!
बसते जो कि निकट कलकत्ता!)
परवल से है उपमा कैसी?
प्रेम-रोग में अनोपान का काम सदा देती हैं आँखें,
या वे उछल हृदय पर चढ़तीं ज्यों मेढक की पिछली टाँगें।
कहो रही यह उपमा कैसी?
(बुरा मान मत जाना प्रेयसि!
मेढक अपने में महान् है।
आलोचक जो प्रगतिशील हैं
उनका यह निश्चित विधान है।)
आँख अड़ूसे की है पत्ती,
या वह नीम-पात से मिलती।
प्रेम-रोग जो सर्दी-जाड़ा
उसमें उनका बनता काढ़ा;
किन्तु नहीं, आलोचकगन को यह भी उपमा अरे! न भाई!
एक प्रयास और करता हूँ।
प्रिये! क्रुद्ध यदि हो जाओगी
घर में कुछ उत्पात मचाकर
फ़ायर जिन के पानी के
हौज़ सदृश कुछ वारि बहाकर
निश्चय है, चुप हो जाओगी।
किन्तु काव्य के आलोचकगन
मेरी इस युग की कविता में
(जिस युग में रुचि की विकृति है
जहाँ उछलना होती गति है)
उपमा रम्य देख जो लेंगे
तो वे निश्चय बेचारी को
कर देंगे प्रवाह सरिता में।
इससे प्रिये! विवश हूँ बिलकुल
मैं दूँगा नवीन ही उपमा
जाना पड़े मुझे फिर चाहे
चहबच्चे में तजकर जमुना।
(चहबच्चा निज में महान् है!)
(अतएव)— सदृश करेला आँख तुम्हारी
वैसी कड़ुई
वैसी तीखी
वैसी नोकें प्रिये! तुम्हारी!
औ जब कभी कुपित हो होतीं
जब तुम नयन फाड़ हो देतीं
नीम चढ़े तब तिक्त करेले की उपमा पूरी कर देतीं।
यद्यपि कड़ुआ बहुत करेला
पर बनता स्वादिष्ठ करेला
तेल भुना—खट्टा नमकीन
झंकृत करता उर की वीन।
रँग की केवल एक कमी है
वैसे तो है पूरी उपमा
प्रगतिशील तुम बनकर बिल्ली,
सजनी! हरे करो निज नैना!
पुनश्च— इस कविता में तुक-बेतुक हैं।
अलंकार? वे भी ग़ायब हैं।
स-सुर नहीं, बिलकुल बेसुर है
किन्तु 'आइडिया' तो भीतर है
(पिंजड़े में जैसे तीतर है।)
बोल रहा है गला फाड़कर
संवेदन उठता पाठक उर।
वह हो जाता है मजबूर
सोचेगा सिर धर भरपूर।
ऐसे यह आदर्श नमूना;
और पुरानी कविताओं को
लग जावेगा इससे चूना!

ब्राडकास्ट निवेदन

काकुशील कवियों से मेरी विनती है हे कृपानिधान!
कविसम्मेलन में यह कविता पढ़कर करो लोककल्यान।'

नोट—जनवरी की 'सरस्वती' में श्री हजारीप्रसाद द्विवेदी 'कविता का भविष्य' में लिखते हैं—"हे प्रिये, तुम सूर्य से भी बड़ी हो, समुद्र से भी और मेढक से भी।" क्योंकि उसकी दृष्टि में अपनी व्यक्तिगत आसक्ति नहीं है। सूर्य और समुद्र अपने आपमें जितने महान् हैं, मेढक भी अपने आपमें उतना ही महान् सत्य है"। "यद्यपि उसकी दृष्टि में कमल का फूल और करैले के फल अपने आपमें समान भाव से सुन्दर हैं, तथापि वह अपनी प्रियतमा की आँख से कमलपुष्प को तुलनीय नहीं बनायेगा। (क्योंकि) उसे इस बात की आशंका रहती है कि पाठक पुराने संस्कारों से बद्ध होने के कारण कहीं उसके नवीन दृष्टिकोण को ग़लत न समझ लें।" "आखिर जो कविता छन्द को भी नहीं मानती, अलंकार को भी नहीं मानती, सुर को भी नहीं मानती, उसको हम कविता कहें ही क्यों? इसलिए कि कविता को जो कार्य अनादिकाल से रहा है—वह कार्य यह कविता कर रही है। वह पाठक को संवेदनशील बनाती है, उसे सोचने समझने को मजबूर करती है, कविता वही है, पाठक बदल गये हैं। इसी लिए उसने पाठक को वश में करने लायक़ वेश-भूषा धारण की है।"
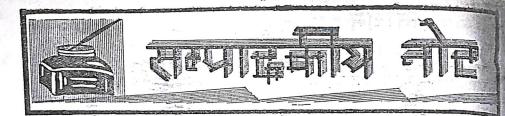
भारतीय समस्या का हल

भारतीय समस्या के हल हो जाने के लक्षण अब दिखाई दे रहे हैं। बम्बई के ओरियंटल क्लब में वाइसराय महोदय ने जो भाषण उस दिन किया है उसमें स्पष्ट शब्दों में कहा है कि भारत को वही डोमीनियन पद दिया जायगा जो कनाडा आदि को दिया गया है। और वाइसराय महोदय के स महत्त्वपूर्ण भाषण को महात्मा गान्धी ने 'हरिजन' के अपने लेख में समझौता के लिए अच्छा आधार माना है। फिर यह बात भी अखबारों में छ ी है कि महात्मा जी की वाइसराय महोदय से फ़रवरी के महीने में भेंट होनेवाली है। ऐसी दशा में इस बात की पूर्ण सम्भावना जान पड़ती है कि इस बार की भेंट में कांग्रेस का ब्रिटिश सरकार से समझौता हो जाने का मार्ग बहुत कुछ खुल जायगा। वास्तव में यह नितान्त आवश्यक बात होगी, क्योंकि संसार के वर्तमान संकट-काल में भारत में भी विषम परिस्थिति का उत्पन्न हो जाना किसी भी पक्ष के लिए हितकर न होगा। और यद्यपि समझौता हो जाने की आशा का उपयुक्त वातावरण अस्तित्व में आ गया है, तथापि समस्या का हल हो जाना उतना सरल नहीं है। यह सच है कि वाइसराय महोदय ने भारत को डोमीनियन का पद दिये जाने का वचन दे दिया है, परन्तु आज कांग्रेस जो वस्तु माँग रही है उसके देने का वचन तो उन्होंने नहीं दिया है। कांग्रेस चाहती है कि भारत का शासन-विधान स्वयं भारतवासी ही बनावें। यद्यपि इस सम्बन्ध में वाइसराय महोदय ने कुछ भी नहीं कहा है, तो भी कांग्रेस की उक्त माँग डोमीनियन पद दिये जाने की बात के भीतर अपने आप ही आ जाती है। कदाचित् यही सब समझकर महात्मा जी ने वाइसराय महोदय के उक्त भाषण को समझौते के लिए वाञ्छित आधार मान लिया है। महात्मा जी के सिवा देश के दूसरे दलों के नेताओं ने भी उक्त भाषण का स्वागत किया है और कहा है कि अब झगड़े की कोई बात नहीं रह गई है। इसमें सन्देह नहीं है कि वाइसराय महोदय के उक्त महत्त्वपूर्ण भाषण से भारत को उसका साम्राज्य में उचित स्थान प्राप्त हो जाता है, अतएव कांग्रेस को आगे आकर ब्रिटिश सरकार से अब समझौता कर ही लेना चाहिए। इस समय राजनीतिज्ञता की भी यही माँग है कि कांग्रेस और ब्रिटिश सरकार में मेल हो ही जाना चाहिए।

योरपीय महायुद्ध तथा फ़िनलैंड का संकट

जर्मनी का फ़्रांस और ब्रिटेन से जो युद्ध छिड़ा हुआ उसमें इधर मार्के की कोई वैसी घटना नहीं हुई है। स्थल में तो कोई युद्ध हो ही नहीं रहा है। हाँ, कभी कभी गश्त लगानेवाले दस्तों में मुठभेड़ हो जाया करती है। दोनों ओर की सेनायें अपने अपने मोर्चों पर अवसर की प्रतीक्षा में जमी बैठी हुई है। इसी प्रकार जल तथा आकाश में भी यदा-कदा ही भिड़न्त हो जाया करती है। कहने का तात्पर्य यह है कि युद्ध जिसे कहते हैं वह हो नहीं रहा है। हाँ, उत्तरी समुद्र के मार्ग से जर्मनी में बाहर का माल पहुँच नहीं रहा है। उस दिशा में अँगरेज़ी जंगी बेड़े ने उसे पूर्णरूप से घेर लिया है।

परन्तु फ़िनलैंड में अलबत्ता घमासान मचा हुआ है। उस पर जल, स्थल और आकाश से रूस के आक्रमण पर आक्रमण हो रहे हैं और आश्चर्य की बात यह है कि फ़िनलैंड ने उसका वीरता से सामना ही नहीं किया है किन्तु कतिपय क्षेत्रों में उसने उसको बुरी तरह से हराया भी है। इस प्रकार रूस का यह पहला आक्रमण विफल ही नहीं हो गया है, साथ ही उसकी प्रतिष्ठा को भी भारी ठेस पहुँची है। बात भी ठीक है। कहाँ रूस और कहाँ फ़िनलैंड ! दोनों में आकाश-पाताल का अन्तर है! परन्तु यह सत्य है कि रूस आक्रमण करके फ़िनलैंड का अभी तक कुछ बना-बिगाड़ नहीं सका। इसके लिए फ़िनलैंड-वालों की जितनी भी प्रशंसा की जाय, थोड़ी होगी।

अब रूस फ़िनलैंड पर पुनः आक्रमण करने का आयोजन कर रहा है। इसके लिए उसे जर्मनी से विशेषज्ञ बुलाने पड़े हैं। उधर फ़िनलैंड को ब्रिटेन, फ़्रांस, अमरीका, इटली आदि यथाशक्य एवं यथासम्भव सहायता करने में लगे हुए हैं। यदि इन राज्यों की समुचित सहायता उसे मिलती गई तो फ़िनलैंड में महाभयानक युद्ध होगा। यह तो प्रकट ही है कि रूस के आगे फ़िनलैंड की कोई गिनती नहीं, परन्तु बाहरी मदद के मिल जाने पर वह अपने भरसक रूस का सामना डटकर करेगा, भले ही अन्त में पोलैंड की तरह उसका नाश ही क्यों न हो जाय।

मुस्लिम लीग का मिथ्या आरोप

मुस्लिम लीग ने कांग्रेसी सरकारों पर नाना प्रकार के मिथ्या दोषारोपण करके उसे बदनाम करने की कुचेष्टा की है। उसके उन अन्यायपूर्ण अभियोगों को सुन सुनकर हिन्दुओं की भी आँखें खुली हैं और उनका भी ध्यान अपनी दयनीय दशा की ओर गया है। नये शासन-विधान के प्रचलित होने पर घाटे में वस्तुतः हिन्दू ही रहे हैं। मुसलमानबहुमत प्रान्तों में उन पर जो बीती है, सो तो बीती ही है, हिन्दूबहुमतप्रधान प्रान्तों में भी कांग्रेसी सरकारों के होने से मुसलमानों को सन्तुष्ट रखने की नीति के कारण बेचारे हिन्दू ही दबाये गये हैं। इस तरह उन पर दोनों प्रकार के प्रान्तों में मार पड़ी है। परन्तु बुद्धू होने के कारण उन्होंने सब कुछ चुपचाप सह लिया और चूँ तक न की। उधर मुसलमान अधिक चतुर निकले। सोचा, कहीं उनके अनाचारों की बात लेकर हिन्दू-महासभावाले हो-हल्ला न मचावें, पहले से ही कांग्रेसी सरकारों के विरुद्ध अपना कल्पना-मूलक अभियोगों का चिट्ठा ही नहीं प्रकाशित कर दिया, किन्तु यह मिथ्या आरोप भी किया कि मुसलमानों पर हिन्दुओं का राज्य क़ायम हो गया है। भला हो बंगाल के भूतपूर्व मन्त्री श्रीयुत नलनीरंजन सरकार का जिन्होंने मुसलमानों के इस निराधार आरोप का सप्रमाण उत्तर अपनी हाल की एक लेखमाला में दे दिया है।

सरकार महोदय ने अपने उस लेख में आँकड़े देकर बताया है कि बंगाल, पंजाब, सीमा-प्रान्त और सिन्ध के जो मुस्लिम बहुमत प्रान्त हैं उन चारों प्रान्तों में २ करोड़ ९० लाख हिन्दू बसते हैं। इधर आसाम को छोड़कर शेष हिन्दू बहुमत प्रान्तों में १ करोड़ ६५ लाख मुसलमान बसते हैं। देशी राज्यों में—बड़ौदा, ग्वालियर, काश्मीर, ट्रावन्कोर, राजपूताना और मैसूर के हिन्दू-राज्यों में ५० लाख मुसलमान हैं। उधर मुस्लिम राज्य हैदराबाद में १ करोड़ २२ लाख हिन्दू हैं। ऐसी दशा में यह आरोप करना कि मुसलमानों पर हिन्दुओं का राज्य स्थापित हो गया है, सरासर झूठा ही नहीं, अन्यायपूर्ण भी है, क्योंकि इन आँकड़ों से तो उलटी ही बात सिद्ध होती है, अर्थात् मुसलमानों की अपेक्षा अधिक संख्या में हिन्दू ही मुसलमानों-द्वारा शासित प्रदेशों में हैं। परन्तु यह तो प्रचार का युग है और इस कला में मुसलमान राजनीतिज्ञ हिन्दुओं को पीछे कर चुके हैं। लाख सरकार महोदय जैसे लोग उनके आरोपों का खण्डन करते रहें, वे तो अपनी ही कहते जायँगे।

इटली और बाल्कन

इटली का क्या दृष्टिकोण है, यह अब धीरे धीरे स्पष्ट होने लगा है। वह यह नहीं चाहता कि बाल्कन के राज्यों में रूस की प्रतिपत्ति बढ़ जाय। यही नहीं, उसने रूस को एक प्रकार की धमकी भी दे दी है। उसने कह दिया है कि रूस अपनी सीमा में ही रहे। परन्तु यदि अपनी सीमा से निकलकर वह बाल्कन में अपना प्रभाव बढ़ाने का प्रयत्न करेगा तो इटली उसका मुक़ाबला करेगा। पोलैंड का एक भाग पा जाने से रूस की सीमा हंगरी से आ लगी है। यह देखकर इटली हंगरी से मैत्री बढ़ाने में संलग्न हो गया। इसी जनवरी में दोनों देशों के वैदेशिक मंत्रियों से वेनिस में गम्भीर परामर्श ही नहीं हुआ है, किन्तु उनमें इस प्रकार की सन्धि भी हो गई है कि हंगरी पर आक्रमण होने पर इटली उसकी सहायता करेगा। यह एक प्रकट बात है कि इटली को रूस फूटी आँख नहीं सुहाता है। रूस का

राजदूत रोम से चला ही गया है, अब इटली ने भी अपने राजदूत को मास्को से बुलवा लिया है। रूस से जर्मनी ने जो मित्रता कर ली है उसके फलस्वरूप इटली और जर्मनी में पहले जैसा सौहार्द्र अब नहीं है। तथापि इटली जर्मनी को अपनी ही ओर खींचे रहना चाहता है। इसके लिए वह इस बात का प्रयत्न कर रहा है कि जर्मनी और ब्रिटेन-फ़्रांस में मेल हो जाय और सब राष्ट्र मिलकर रूस के विरुद्ध अपना एक गुट्ट बनायें। परन्तु इटली अपने इस प्रयत्न में सफल नहीं हो रहा है। तना तो प्रकट ही है कि वह इस युद्ध में कम से कम जर्मनी का साथ नहीं देगा। हाँ, यदि बाल्कन में किसी तरह का गड़बड़ होगा तो अपना हिस्सा लेने के लिए वह भी शस्त्र ग्रहण करेगा। और लक्षणों से जान पड़ता है कि बाल्कन में गड़बड़ ज़रूर होगा। यदि ऐसा न होता तो रुमानिया को यह कहने की क्या ज़रूरत थी कि वह बेसेबेरिया प्रदेश को जो महायुद्ध के पहले रूस का था, अपने हाथ से नहीं जाने देगा। इधर रूस ने बल्गेरिया से यह माँग की है कि वह अपने समुद्री तट पर काले सागर में उसे जंगी अड्डे क़ायम करने दे। और बल्गेरिया से उसका मेल भी हो गया है। जान पड़ता है कि उत्तर की तरह दक्षिण में भी युद्ध छिड़े बिना न रहेगा और तब इटली को भी उसमें भाग लेना पड़ेगा। पर वह किसकी ओर लड़ेगा, यह कहना कठिन है।

हिन्दू-महासभा का ज़ोर

मुस्लिम लीग और हिन्दू-महासभा—दोनों संस्थायें सम्प्रदायवादी संस्थायें मानी जाती हैं, क्योंकि ये दोनों ही अपने अपने सम्प्रदायों के हितों की रक्षा के लिए ही काम करती आई हैं। इनमें मुस्लिम लीग का ही बल अभी तक बढ़ा-चढ़ा था, क्योंकि उसे मुसलमानों का प्रारम्भ से ही पूरा बल प्राप्त रहा है। रही हिन्दू-महासभा, सो हिन्दुओं की उपेक्षा के कारण वह कोरी 'सभा' की 'सभा' ही बनी रही। परन्तु इधर जब से उसको वीर सावरकर का सहयोग प्राप्त हुआ है तब से उसमें नई जान-सी आ गई है। पिछले दिनों हैदराबाद-राज्य में जो सत्याग्रह हुआ था उसमें उसने अपने बल का समुचित परिचय भी दिया था। परन्तु उसका कलकत्ते में जो २१वाँ अधिवेशन हाल में हुआ है और वह अधिवेशन जिस सफलता के साथ सम्पन्न हुआ है उसको देखते कहना पड़ता है कि हिन्दू-महासभा पहले की तरह नगण्य नहीं रह सकेगी। उसकी इस सफलता का कारण बंगाल के हिन्दुओं का सहयोग भी है। महाराष्ट्र का सहयोग तो उसे प्राप्त ही था, अब बंगाल का भी सहयोग उसे प्राप्त हो गया है। और इन दोनों प्रान्तों का विद्वत्समाज ही गत ५० वर्ष से भारत का नेतृत्व करता आ रहा है। ऐसी दशा में यदि हिन्दू-महासभा ज़ोर पकड़ जाय तो कोई आश्चर्य नहीं, क्योंकि इधर कांग्रेस ने मुसलमानों को सन्तुष्ट करने के लिए जो नीति ग्रहण की थी उससे हिन्दुओं का एक बड़ा समुदाय कांग्रेस को सन्देह की दृष्टि से देखने लगा है। यदि मुसलमानों की तरह हिन्दुओं में भी सम्प्रदायवाद ज़ोर पकड़ गया तो यह बात राष्ट्रीयतावादी भारत के लिए बड़ी भयानक होगी। चाहे जो हो, इस समय हिन्दू-महासभा ज़ोर पकड़ रही है।

चीन का आत्मबल

गत तीन वर्ष से प्रबल जापान चीन को पदाक्रान्त कर रहा है। उसके सारे समुद्रतटवर्ती प्रान्तों पर जापान का पूर्ण अधिकार हो गया है और उसका समुद्र के मार्ग से संसार के अन्य देशों से जो सम्बन्ध था वह भंग हो गया है। यह सब कुछ हो गया है, परन्तु चीन इतने पर भी अपने निश्चय पर दृढ़ है। उसके राष्ट्रपति चियाँग काई-शेक अन्त में विजयी होने की आशा का सुखस्वप्न ही बैठे नहीं देख रहे हैं, किन्तु देश के भीतरी भाग की अपनी चुंगकिंग नाम की राजधानी से विजय प्राप्त करने की योजना में भी दृढ़ता से संलग्न भी हैं। उनका सैन्य-बल पूर्ववत् सुसंगठित और सुव्यवस्थित है। यही नहीं, उनके अधीनस्थ प्रान्तों में उनकी शासन-व्यवस्था भी नियमपूर्वक जारी है। इसके सिवा समुद्र-मार्ग न रह जाने से संसार के देशों से उनका जो सम्बन्ध भंग हो गया है उसके अभाव की पूर्ति के लिए भी वे ब्रह्मदेश की सीमा तक एक नया रेल-पथ बनवाने जा रहे हैं।

यह चेंगतू, चुंगकिंग और कुन्मिंग से होकर सीधा ब्रह्मदेश की सीमा तक आयेगा और इस रेल-मार्ग से ब्रह्मदेश के द्वारा चीन का संसार के दूसरे देशों से सम्बन्ध स्थापित हो जायगा। यह रेलमार्ग १५० किलोमीटर लम्बा होगा और इसके बनवाने में एक करोड़ पौंड ख़र्च होगा तथा इसके बनने में तीन वर्ष लगेंगे। इसका निर्माणकार्य अगले वसन्त से प्रारम्भ हो जायगा। राष्ट्रपति चिआंग-काई-शेक ने हाल में एक और भी दूरदर्शिता का काम किया है। उन्होंने हुनान, किआंग्सी और ऐन्ह्वेई प्रदेश की फ़सलों की बचत का अन्न ख़रीद लेने की भी आज्ञा दे दी है। इन प्रदेशों में युद्ध के कारण प्रजा की जो दुर्दशा हुई है राष्ट्रीय सरकार की इस व्यवस्था से उसकी आर्थिक अवस्था के सँभलने में सहायता मिलेगी। ६,२३,२५,००० डालर का १,२७,५०,००० पिकल गेहूँ और चावल ख़रीदा जायगा। और यह अन्न अगली वर्षा-ऋतु में काम आने के लिए ख़रीदा जा रहा है। राष्ट्रीय सरकार की इन तथा ऐसी दूसरी व्यवस्थाओं से प्रकट होता है कि उसका उत्साह ज्यों का त्यों बना हुआ है और युद्ध में भारी हानि उठा चुकने पर भी उसका साहस भंग नहीं हुआ है। उधर जापान की सरकार बार बार बदल रही है, जिससे प्रकट होता है कि चीन के युद्ध में वह बोल गया है। अभी हाल में वहाँ जो नई सरकार क़ायम हुई है उसने उदारनीति ग्रहण करने की घोषणा की है। आश्चर्य नहीं कि वह चीन से भी समझौता करने को तैयार हो जाय। ऐसा होने में ही उन दोनों देशों की भलाई है।

तुर्की पर महान् विपत्ति

तुर्की का दुर्भाग्य है कि इस संसार-संकट के समय वह भयानक भूकम्प के फेर में आ गया। पिछले दिसम्बर में वहाँ ऐसे ज़ोर का भूकम्प आया कि उसका एक प्रान्त का प्रान्त तहस-नहस हो गया। पिछले बिहार के भूकम्प में तथा क्वेटा के भूकम्प में हमारे धनजन का जो संहार हो चुका है वह हमें भूला नहीं है। वैसी ही आपदा का इस बार तुर्की को सामना करना पड़ा है। वहाँ की सरकार का कहना है कि इस भूकम्प में २५ हज़ार आदमियों का संहार हुआ है तथा ८० हज़ार आदमी सांघातिक रूप से घायल हो गये हैं। और सम्पत्ति की तो अपार हानि हुई ही है। सैकड़ों गाँवों का चिह्न तक नहीं रहा तथा कई शहर भी ध्वंस हो गये हैं।

जब यह भूकम्प वहाँ आया था, सरकार जिस त्वरा के साथ आपद्ग्रस्तों की सहायता के लिए अग्रसर हुई थी उससे प्रकट होता है कि तुर्की आज कितना उन्नत हो गया है। और अब तो उसे संसार के भिन्न भिन्न देशों से भी आर्थिक सहायता भेजी जा रही है। हमारे भारत से भी तत्काल ही सहायता भेजी गई है।

इस समय तुर्क-सरकार सब काम पीछे डालकर भूकम्प-पीड़ित अंचल के बचे हुए लोगों की सहायता करने में व्यस्त है। इसमें सन्देह नहीं कि इस प्रकृति के कोप से तुर्की को भारी हानि सहनी पड़ी है।

सीमा-प्रान्त में क्या हो रहा है ?

सीमा-प्रान्त के एक भाग में लूट-मार का बाज़ार फिर गर्म हो उठा है और वहाँ के शान्त और निःशस्त्र नागरिक स्वतंत्र इलाक़े के डाकुओं के शिकार बनाये जा रहे हैं। बन्नू-ज़िले में उन्होंने जो ऊधम मचा रक्खा है उस सम्बन्ध में लोगों को सान्त्वना देने के लिए असोशिएटेड प्रेस ने हाल में यह वक्तव्य छपवाया है कि इस ऊधम के मच जाने का मूल-कारण यह है कि सरकार ने शाबी-खेल महसूदों के साथ कुछ कड़ाई का व्यवहार किया था, और अब कुछ ही समय में वहाँ फिर शान्ति स्थापित हो जायगी। शान्ति तो स्थापित होवेगी ही, परन्तु सीमा-प्रान्त के उस अंचल में लोगों पर जो बीत रही है उसकी कथा त्रासजनक है। और वहाँ का यह अनाचार कोई नई बात नहीं है। यह तो मौसमी रोग की तरह बराबर फूटता आ रहा है। आश्चर्य है कि अँगरेज़ सरकार की महान् शक्ति वहाँ के डाकुओं को आज तक अपने वश में न ला सकी। पचीसों बार सरकार से यह निवेदन किया जा चुका है कि जब वह स्वतंत्र इलाक़े के न दुर्धर्ष डाकुओं से अपने निःशस्त्र नागरिकों की रक्षा नहीं कर पाती है तब उसे कम से कम अपने प्रजाजनों को सशस्त्र

तो कर ही देना चाहिए ताकि वे कुत्ते की तरह मारे तो न जा सकें। परन्तु सरकार उतनी उदारता दिखाने को तैयार नहीं है। हाँ, इधर अखबारों में जरूर छपा है कि उसने बन्नू में कुछ आदमियों को आत्मरक्षार्थ बन्दूकें देने की कृपा की है। इससे जान पड़ता है कि सरकार का ध्यान इस ओर अब गया है। इसमें संदेह नहीं कि सीमा-प्रान्त में जो भयानक परिस्थिति उत्पन्न हो गई है उसको सुधारने के लिए सरकार कठोर से कठोर कार्रवाई करेगी परन्तु उतने से ही काम न चलेगा। उसे अब वहाँ के प्रजाजनों को इतना समर्थ बनाना ही होगा कि संकट आ पड़ने पर वे उसका मनुष्य की तरह सामना भी कर सकें। ऐसा करने ही पर यह समझा जा सकेगा कि सरकार ने वास्तव में अपने कर्तव्य का पालन किया है। आशा है, सरकार इस बात की ओर समुचित ध्यान देने की कृपा करेगी।

हिन्दी का प्रश्न

संयुक्त-प्रान्त के निवासियों की मातृभाषा हिन्दी है, पर वहीं वह अपने स्वाभाविक अधिकार से वञ्चित रक्खी गई है। इसका मूल कारण है वहाँ के हिन्दी-भाषियों की अकर्मण्यता और कापुरुषता। यह जरूर है कि आज से ६० वर्ष पहले जब राजा शिवप्रसाद गुप्त ने स्कूलों की पाठ्य-पुस्तकों में हिन्दी को उर्दू में परिणत करने का दूषित प्रयत्न किया था तब हिन्दी-भाषियों ने उसका ज़ोरों से विरोध करके भारतेन्दु बाबू हरिश्चन्द्र के नेतृत्व में हिन्दी में नये प्राणों का सञ्चार ही नहीं किया था, किन्तु पंडित मदनमोहन मालवीय के नेतृत्व में इस बात का घोर आन्दोलन भी किया था कि सरकारी अदालतों में हिन्दी को उसका उचित स्थान दिया जाय। और यद्यपि तत्कालीन प्रान्तीय लाट सर एन्थानी मैकडानल ने अपनी हिन्दी-भाषी प्रजा की न्यायोचित माँग को सुनकर उसकी आंशिक पूर्ति कर देने की उदारता दिखाई, परन्तु उसके बाद सब मामला खटाई में पड़ गया। सरकारी कचहरियों से सम्बन्ध रखनेवाले हिन्दुओं ने अपनी मातृभाषा के साथ विश्वासघात किया, इधर अकर्मण्य हिन्दीभाषी अपनी तू-तू मैं-मैं में पड़ गये। इसमें सन्देह नहीं कि इस काल में हिन्दी की काफ़ी अधिक उन्नति हुई और उसका प्रचार भी खूब हुआ, परन्तु उसके अहम्मन्य नेता उसको उसका राजनैतिक महत्त्व दिलाने को भूलकर भी आगे नहीं आये। उनकी यही कर्त्तव्यविमुखता आज हिन्दी के बने-बनाये खेल के विनाश का कारण हो रही है। 'हिन्दुस्तानी' के रूप में आज दो वर्ष से हिन्दी की प्रगति के मार्ग में जो खाई खोदी जा रही है वह सब हमारे इन महारथियों को ज्ञात है, पर उनके कानों पर आज तक जूँ तक नहीं रेंगी। हिन्दी को खिचड़ी भाषा बनाने का, उसकी लिपि को गुजराती का रूप देने का निश्चय ही नहीं हो गया है, किन्तु वे निश्चय धीरे धीरे कार्य में परिणत किये जा रहे हैं। इतने पर भी संयुक्त-प्रान्त के हिन्दी के कर्णधार अभी चादर ताने पड़े सो ही रहे हैं। रहे यहाँ के नवयुवक साहित्यकार सो वे या तो अनन्त की खोज में अपने को गँवा चुके हैं या सखी-सहेलियों के पीछे पागल बने फिर रहे हैं। उन्हें इसका ध्यान ही नहीं है कि मातृभाषा के प्रति उनका भी कुछ कर्त्तव्य है। ऐसी दशा में हिन्दी अपनी पुकार करे तो किससे करे, हिन्दीवालों के आगे यही इस समय सबसे बड़ा प्रश्न है। देखें कौन हरिश्चन्द्र या मदनमोहन फिर उसकी रक्षा के लिए इस संकट-काल में आगे आता है।

सिन्ध की सरकार और सक्खर का दंगा

सिन्ध मुस्लिम प्रान्त है, परन्तु वहाँ का मुस्लिम-प्रधान मन्त्रिमंडल मुस्लिम लीगी मन्त्रिमंडल नहीं है। वहाँ के प्रधान मन्त्री श्री अल्लाबख्श उदार विचार के व्यक्ति हैं और उनमें साम्प्रदायिकता की संकीर्णता भी नहीं है। यही नहीं, कांग्रेसी सदस्यों का सहयोग न पाकर भी वे अपने निश्चय पर दृढ़ हैं और उसी निश्चय के अनुसार वे शासन-दंड का परिचालन कर रहे हैं। परन्तु साम्प्रदायिकतावादी मुसलमान या यह कहें कि मुस्लिम लीगी उन्हें सुख की नींद नहीं सोने देना चाहते। सक्खर में मंजिलगाह का आन्दोलन ऐसे ही लोगों का काम है। इसके द्वारा उनके मन्त्रिमंडल को बदनाम करके अपदस्थ करने का उपक्रम किया गया है। इस सिलसिले में उनकी

सरकार से मुसलमानों का जो संघर्ष हुआ उसमें बेचारे हिन्दुओं को बुरी तरह पिस जाना पड़ा। सक्खर के दंगे के फलस्वरूप दूर दूर के देहातों के हिन्दुओं पर जो बीती है उसका विवरण जानकर उन्होंने देहात के हिन्दुओं को यह सलाह दी है कि वे अपने गाँवों को छोड़कर शहर में आ बसें, क्योंकि सरकार उनकी देहातों में रक्षा करने में असमर्थ है। उन्होंने यह भी कहा है कि जो हिन्दू देहात छोड़कर शहरों में आ बसेंगे, सरकार उन्हें ज़मीन तथा दूसरी आवश्यक सहायता भी देगी। प्रधान मन्त्री की इस सलाह से उनकी सद्भावना का पता तो मिलता ही है, साथ ही इस बात का भी कि सिन्ध में ऐसे मुसलमानों की संख्या कम नहीं है जो हिन्दुओं तथा दूसरे अल्पसंख्यकों के हितों के क़ायल हैं और उनकी रक्षा भी करना चाहते हैं। यह वास्तव में आशाजनक स्थिति है। सक्खर के दंगे के सम्बन्ध में जो सरकारी विवरण अभी हाल में प्रकाशित हुआ है वह इस प्रकार है—

१० हिन्दू जीवित जलाये गये, १४२ हिन्दू क़त्ल किये गये, ५८ हिन्दू घायल हुए, जिनमें ९ मर गये।

१४ मुसलमान क़त्ल किये गये और १२ घायल हुए।

१६४ मकान जलाये गये, जिनमें अधिकांश हिन्दुओं के थे। इसमें १,४८,००० रुपये की सम्पत्ति का विनाश हुआ। ४६७ घर लूटे गये, जिसमें ६५,३३,००० रुपये का माल लूट गया।

३ हिन्दू स्त्रियाँ उड़ाई गईं जो बाद को वापस लाई गईं।

पुलिस की मुठभेड़ों में ७ डाकू मारे गये।

इस दंगे के सिलसिले में ७०० आदमी गिरफ़्तार हैं।

आगमार्का घी

अगस्त की 'सरस्वती' में आगमार्का घी पर एक सम्पादकीय नोट प्रकाशित हुआ था। वह नोट इलाहाबाद के 'लीडर' के आधार पर लिखा गया था। इसके बाद 'अमृतबाज़ार-पत्रिका' में छपा कि आगमार्का घी वानस्पतिक घी है, फलतः हमें दूसरा नोट लिखना पड़ा, जो 'सरस्वती' के सितम्बर के अंक में छपा। हमारे इस पिछले नोट पर भारत-सरकार के 'एग्रीकलचरल मार्केटिंग एडवाइज़र' का ध्यान गया और उन्होंने हमें १३-१२-३९ के पत्र में उसका प्रतिवाद करने का आदेश किया। हमने निवेदन किया कि आगमार्का घी-सम्बन्धी प्रामाणिक विवरण यदि आप भेज देने की कृपा करें तो हम उसके आधार पर एक नोट लिखकर अपने पिछले नोट की ग़लतफ़हमी दूर कर दें। परन्तु वहाँ से तो हमें कोई उत्तर नहीं मिला, अलबत्ता लखनऊ से 'प्राविंशियल मार्केटिंग आफ़िसर' का १०-१-४० का एक पत्र मिला, जिसमें उस आदेश-पत्र का हवाला देते हुए यह आदेश किया गया कि हम अपने उक्त नोट का प्रतिवाद कर दें। ऐसी दशा में हमारा यहाँ केवल यही कहना है कि पाठक हमारे सितम्बरवाले नोट को भ्रमपूर्ण समझें और आगमार्का घी के सम्बन्ध में जो नोट अगस्त के अंक में छपा है उसे ठीक समझें।

डाक्टर बलदेवप्रसाद मिश्र

हिन्दी के डाक्टरों में एक की और वृद्धि हुई है। अभी तक हिन्दी में चार ही डाक्टर थे। एक डाक्टर पीताम्बर दत्त बड़थ्वाल, दूसरे डाक्टर धीरेन्द्र वर्मा, तीसरे डाक्टर रामशंकर शुक्ल 'रसाल' और चौथे राजा डाक्टर श्यामबिहारी मिश्र ही थे। अब रायगढ़-राज्य के दीवान पंडित बलदेवप्रसाद मिश्र को उक्त गौरवपूर्ण पदवी नागपुर-विश्वविद्यालय ने उनके 'तुलसी-दर्शन' नामक ग्रन्थ पर प्रदान की है। मिश्र जी हिन्दी के सुलेखक ही नहीं, सुकवि भी हैं। अब तक आप कई पुस्तकें लिख चुके हैं। राजकाज करते हुए भी हिन्दी की सेवा के लिए आप जो समय निकाल लेते हैं वह आपके हिन्दी के असीम अनुराग का ही द्योतक है। ऐसी दशा में आपको जो यह गौरवपूर्ण पदवी प्रदान की गई है उसके लिए प्रत्येक हिन्दी-प्रेमी को हर्ष होगा।

ताकत

और

जवानी

को

कायम

रखने

के लिए

ओकासा खाइये

जीवन का आनन्द

इन्सान मर्द हो या औरत तभी जीवन का पूरा आनन्द प्राप्त कर सकता है जब उसकी ताक़त और जवानी कायम हो। ज्यों उम्र बढ़ती जाती है इन्सान की हर ताक़त अमूमन जिन पर जीवन के आनन्द का दारोमदार है कम होती जाती है औरत बुड्ढी होती जाती है और मर्द कमज़ोर। साइन्स की जदीद तहक़ीक़ात से कुदरत के वह गुप्त राज मालूम हो गये हैं जिनसे आप अपनी जवानी और ताक़त को अर्सा दराज तक कायम रख सकते हैं। जर्मनी के मशहूर डाक्टर लाहोजन ने इसके लिए एक मशहूर और बे नजीर दवा जिसको **ओकासा** कहते हैं ईजाद की है। **ओकासा** के इस्तेमाल से आप तमाम उन मरकजों पर जिन पर कि आपकी ताक़त और जवानी का दारोमदार है ताक़त पहुँचेगी। ओकासा कोई गर्मी पैदा करनेवाली दवा नहीं है वह जिस्म के अन्दर के ग्लांडस (Glands) के लिये गिज़ा है। आज ही से ओकासा खाना शुरू कर दीजिये।

सावधान

ओकासा की क़ीमत में कोई ज़्यादती नहीं हुई है। १०० गोलियों की क़ीमत १०) और ३० गोलियों की क़ीमत ३।।।)। अगर कोई भी दूकानदार इससे ज़्यादा मांगें तो सीधे

ओकासा कम्पनी लिमिटेड, पोस्टबक्स ३९६, बम्बई से मँगवाइये।

हम सब लोग इसको व्यवहार में लाते हैं

दादी, नानी से लेकर बच्चे तक सबके चर्म के आराम के लिए क्यूटीक्यूरा टैलकम बुकनी (Cuticura Talcum Powder) की आवश्यकता है। क्योंकि क्यूटीक्यूरा टैलकम (Cuticura Talcum) इस प्रकार से तैयार किया जाता है कि चर्म को ठंढक और आराम मिलता है। जहाँ पर चर्म रगड़ उठा हो वहाँ फ़ौरन आराम पहुँचाता है और पसीना सूख जाता है। यह बहुत ही शुद्ध बना होता है और इससे पूरा आराम मिलता है। अतः डाक्टर लोग बच्चों तथा बीमारों को व्यवहार में लाने के लए इसकी सिफ़ारिश करते हैं। क्यूटीक्यूरा टैलकम (Cuticura Talcum) की सुगन्ध से बदन घंटों महकता रहता है।

आप स्वयं व्यवहार करके देखें कि इसके उपयोग से दिल को कितनी प्रसन्नता प्राप्त होती है। आजही एक टिन ख़रीदें। बाल बनवाने के बाद क्यूटीक्यूरा टैलकम (Cuticura Talcum) लगाना बहुत ही लाभदायक है।

(प्रत्येक दवाखानों में मिलता है)

क्यूटीक्यूरा टैलकम बुकनी
CUTICURA TALCUM POWDER

युद्ध की डायरी

१७ दिसम्बर—'सान्योमारू' नामक जापानी जहाज़ को ब्रिटिश तट के पास रोक कर उसकी तलाशी ली गई। इस जहाज़ पर जर्मन-माल होने का सन्देह किया गया था। ग्रेफ़स्पी नामक जहाज़ ने माण्टिविडियो में लंगर डाल दिया।

१८ दिसम्बर—"ग्रेफ़स्पी" उरगुई से ३ मील दूर पर समुद्र में निमग्न हो गया।

२० दिसम्बर—ग्रेफ़स्पी के कमांडर लैंग्सडार्फ़ ने रिवाल्वर से आत्महत्या कर ली।

२१ दिसम्बर—ब्लूचर नामक जर्मन-क्रूज़र को ब्रिटिश टारपीडो ने गहरी क्षति पहुँचाई। मोशिये दलादिये ने एक वक्तव्य में बतलाया कि ३० नवबर तक फ़्रांस की स्थल-सेना में ११,३६६, जल-सेना में २५६ और वायुसेना में ४२ सैनिकों की मृत्यु हुई।

२२ दिसम्बर—मेगीनाट लाइन पर ब्रिटिश व जर्मन वायुयानों में मुठभेड़ हो गई। दो ब्रिटिश विमान गिरा दिये गये और उनके चालक मर गये। रशियन वायुयानों ने फ़िनलैंड में गोलाबारी की जिसमें १६ मरे व ४३ घायल हुए।

२३ दिसम्बर—दो स्वीडिश जहाज़ उत्तरी सागर में डुबा दिये गये।

२६ दिसम्बर—कुहमल प्रदेश में फ़िनिशों ने दो रशियन कम्पनियों को नष्ट कर डाला।

२८ दिसम्बर—रूसी सेनायें ५० मील पीछे हट गई।

२९ दिसम्बर—लेडोगा झील के तट पर फ़िनिश व रूसी सेनाओं में गहरी लड़ाई हुई।

३० दिसम्बर—रूस के सात वायुयान फ़िन लोगों ने पकड़ लिये। ये वायुयान पेट्रोल समाप्त हो जाने के कारण इनारी झील पर, जो बर्फ़ से ढकी हुई है, उतरे थे।

१ जनवरी—५,६७७ टन का ब्रिटिश जहाज़ 'बाक्सहिल' उत्तरी सागर में डूब गया। 'सेण्टडलफ़िनों' जहाज़ को भारी क्षति पहुँची। ३ स्वीडन के जहाज़ माइनों से टकरा कर डूब गये।

३ जनवरी—जर्मन-तट के पास हवाई युद्ध हुआ। जर्मनी के ३ और ब्रिटेन का १ वायुयान नष्ट हुए।

४ जनवरी—ब्रिटेन, इटली व फ़्रांस के राजदूत मास्को से रवाना हो गये।

७ जनवरी—'मारसलीज़' नामक ब्रिटिश जहाज़ सुरंग से टकरा कर डूब गया।

८ जनवरी—एक जर्मन-जहाज़ डूब गया।

१० जनवरी—जर्मन-हवाई जहाज़ों ने व्यापारिक जहाज़ों पर बम-वर्षा की। ब्रिटेन का 'डनवर कैसल' जहाज़ जर्मन-सुरंग से टकरा कर डूब गया।

साला के निकट रूस-फ़िन सेनाओं में संघर्ष हुआ।

११ जनवरी—इँगलैंड व स्काटलैंड के अनेक स्थानों पर जर्मन वायुयानों ने एक साथ धावा किया। ३ जर्मन वायुयान गिराये गये। ल्योनार्ड नामक ब्रिटिश जहाज़ डूब गया।

१३ जनवरी—लक्समबर्ग के निकट ब्रिटिश व जर्मनी वायुयानों में हवाई युद्ध हुआ। हेलसिन्की पर ४०० रूसी वायुयानों ने हमला किया। डच सीमा पर जर्मन-सेनायें जमा हुईं।

१४ जनवरी—हेंगो और टामसाटी पर रूसी वायुयानों ने भयानक बम गिराये।

१६ जनवरी—जर्मनों ने ३ ब्रिटिश पनडुब्बियाँ डुबा दीं।

१७ जनवरी—लाडोगा झील के उत्तर में रूसी लाल सेना की करारी हार हुई।

१९ जनवरी—४ जहाज़ सुरंग से टकरा कर डूब गये। इनमें एक केरन, एक स्वीडिश, एक ब्रिटिश और एक जर्मन था।

... The Indian Press, Ltd., ALLAHABAD

इस अंक के महत्त्वपूर्ण लेख

कविताएँ

कहानियाँ

सचित्र मासिक पत्रिका
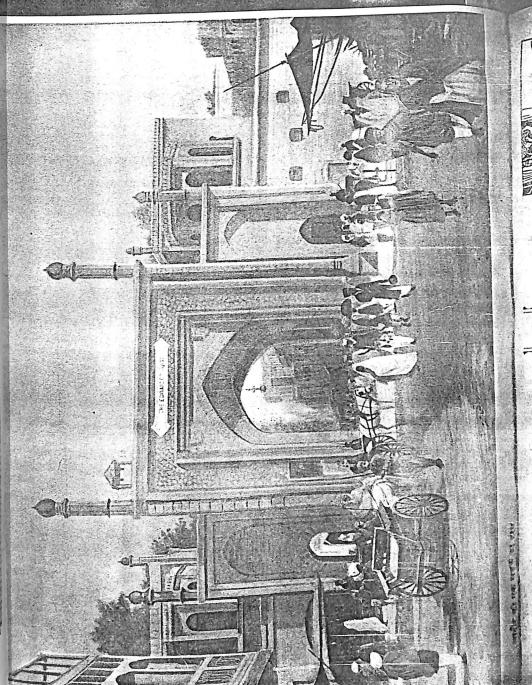
सम्पादक

देवीदत्त शुक्ल—उमेशचन्द्र मिश्र

मार्च १९४० } भाग ४१, खंड १ संख्या ३, पूर्ण संख्या ४८३ { फाल्गुन १९९६

फूल

लेखक, श्रीयुत ठाकुर गोपालशरणसिंह

में हूँ फूल विश्व-छवि-मूल।

चाहे मुझ पर फेंक उपल दो,
अथवा हाथों से ही मल दो,
या पैरों के तले कुचल दो,
पर तुम मानव! अन्ध-स्वार्थ-वश
इसे कभी मत जाना भूल।
में हूँ फूल विश्व-छवि-मूल।

भौंरा आकर मुझे चिढ़ाता,
तीव्र वायु है धूल उड़ाता,
भीष्म ग्रीष्म है मुझे जलाता,
पर में मन में रोष न लाकर,
रहता हूँ सबके अनुकूल।
में हूँ फूल विश्व-छवि-मूल।

जो नर मुझे तोड़ ले जाता,
लता-अङ्क से दूर हटाता,
मेरा सुख-सर्वस्व मिटाता,
में उसको भी सौरभ देकर,
रखता हूँ निज उर में शूल।
में हूँ फूल विश्व-छवि-मूल।

[जैन-मन्दिर]

विजयनगर की पराजय

लेखक, श्रीयुत श्रीमन्नारायण अग्रवाल, एम० ए०

जब हम पुराने विशाल नगरों के खँडहरों को देखने जाते हैं तब हमारे मन में एक प्रकार के भय और निराशा का अनुभव होता है। हममें से बहुत-से लोग अपने दैनिक जीवन में इस तरह व्यवहार करते हैं, मानो हम अमर हैं। परस्पर ईर्ष्या, द्वेष, छल-कपट, कूटनीति का व्यवहार यह प्रकट करता है कि हम दूसरों को दबाकर और नष्ट करके ख़ुद आनन्द भोगना चाहते हैं, मानो दूसरों के मर जाने पर हम हमेशा ज़िन्दा ही बने रहेंगे। इसी प्रकार एक राष्ट्र दूसरे राष्ट्र को पराजित करके अपना अमरत्व स्थापित करना चाहता है। किन्तु समय के विनाश-चक्र से कोई भी नहीं बचता। व्यक्तियों का नाम-निशान भी नहीं रहता; बड़े बड़े शहर धूल में मिल जाते हैं और उनके खँडहर मनुष्य के अभिमान और अमर-जीवन पाने की निष्फल आकांक्षा के स्मृति-चिह्न बन जाते हैं।

विजयनगर या हंपी के खँडहर देखकर मेरे मन में इसी तरह के विचार उमड़ने लगे। जिस जगह इतना विशाल और भव्य नगर बसा हुआ था, वहाँ आज केवल वही ज़मीन उपयोग में आती है वहाँ कोई इमारतें नहीं हैं। बड़े-बड़े महल और मन्दिर तो टूट-फूट कर क़रीब-क़रीब मिट्टी में मिल गये हैं। वहाँ की भूमि बेकार पड़ी है। किन्तु इमारतों के बीच ख़ाली ज़मीन में आज कुछ किसान खेती करके अपनी जीविका चलाते हैं। जो नगर किसी समय मनुष्यों की चहल-पहल और हलचल से गूंजता था, वहाँ आज कुछ किसानों और वानरों के सिवा कोई नहीं दीख पड़ता। क्या यह समय का मनुष्य-कृति के प्रति उपहास नहीं है?

हंपी के खँडहर होसपेट शहर के पास मदरास-प्रान्त के बिलारी ज़िले में हैं। ये खँडहर क़रीब नौ वर्गमील के अन्दर बिखरे हुए हैं। चारों ओर छोटी-बड़ी पथरीली पहाड़ियाँ हैं, जिन पर हरियाली नहीं है। पत्थरों के ऊपर दूसरे बड़े-बड़े पत्थर इस तरह रक्खे हैं, मानों वे प्रकृति के बजाय मनुष्यों के हाथों से सजाये गये हों। यह विचित्र दृश्य तो मैंने और कहीं नहीं देखा। जिस तरह छोटे बच्चे पत्थरों से खेलते हैं और उनको एक-दूसरे पर रख कर तरह तरह के टीले बनाते हैं, बिलकुल उसी तरह उन बड़े बड़े पत्थरों की व्यवस्था देखकर बहुत आश्चर्य-चकित होना पड़ा। खँडहरों के उत्तर की तरफ़ तुङ्गभद्रा नदी पहाड़ियों के बीच में से बहती है। नदी के बीच में कई मूर्तियाँ खण्डित पड़ी हुई नज़र आती हैं।

विजयनगर का इतिहास भी काफ़ी रोमांचकारी

है। चौदहवीं शताब्दी के आरम्भ में अलाउद्दीन खिलजी के समय में मुसलमानों का आक्रमण दक्षिण की तरफ़ ज़ोरों से होने लगा, और वहाँ के हिन्दू-राज्य की नींव ही उखड़ने-सी लगी। उसी समय मुसलमानों के आक्रमण को रोकने के लिए विजयनगर-साम्राज्य की स्थापना हुई और दो शताब्दियों तक हमले का भय न रहा।

[विट्ठल-मन्दिर]

विजयनगर के सबसे वैभवशाली नरेश कृष्णदेव राय थे। उन्होंने मुसलमानों को बुरी तरह पराजित किया। किन्तु उनके बाद मुसलमानों का भी ज़ोर बढ़ता गया और अन्त में सन् १५६५ में दक्षिण के सब मुसलमान राजाओं ने मिलकर विजयनगर पर आक्रमण किया और विजयनगर के राजा को हरा दिया। पराजय के बाद मुसलमानों ने शहर को खूब लूटा और लोगों को मार-काट कर खून की नदियाँ बहा दीं। उसी समय से यह नगर बिलकुल ध्वंस हो गया और दक्षिण में हिन्दू-राज्य का अन्त हो गया।
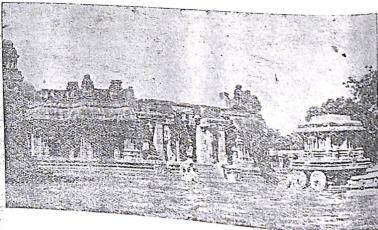
कहा जाता है कि विजयनगर के बसने के पहले तुङ्गभद्रा नदी के पास इसी जगह रामचन्द्र जी के समय में एक शहर था, जिसका नाम 'किष्किन्धा' था। बालि और सुग्रीव दोनों भाई वहाँ के राजा थे। लड़ाई हो जाने

[हम्पी की प्रधान सड़क]

पर बालि ने सुग्रीव को भगा दिया और सुग्रीव हनुमान् जी के साथ ऋष्यमूक पर्वत के जंगल में जाकर रहने लगा। जब रामचन्द्र जी सीता जी की खोज में लंका की ओर जा रहे थे, तब उन्हें मालूम हुआ कि सुग्रीव से सीता जी के बारे में सूचना मिल सकती है। सुग्रीव ने रामचन्द्र जी को बतलाया कि रावण सीता जी को ले गया है। सीता जी
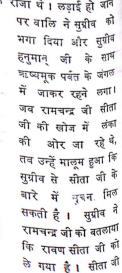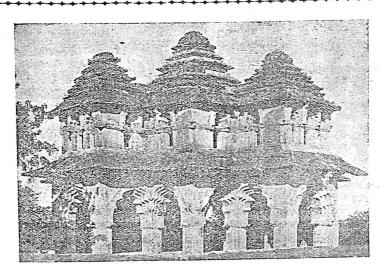
[पद्म-महल]

ने अपना एक गहना और एक वस्त्र नीचे डाल दिया था। सुग्रीव ने इनको अपनी गुफ़ा में सुरक्षित रख छोड़ा था। जिस जगह गहना गिरा था, वहाँ लोगों ने अब तक एक चिह्न बना रक्खा है। बहुत-से लोगों का विश्वास है कि किष्किन्धा नगरी उसी जगह थी, जहाँ आज विजयनगर के खँडहर हैं। खँडहरों में चारों ओर दुबले और भूखे वानरों को घूमते हुए देखकर रामायण का किष्किन्धा-काण्ड अवश्य स्मरण हो आता है। इन वानरों को उन खँडहरों में खाने के लिए बहुत कम मिलता है। और इसलिए वे अधमरे से दीखते हैं। फिर भी वे उस जगह को क्यों नहीं छोड़ भागते, यह काफ़ी आश्चर्य की बात मालूम पड़ती है! वहाँ के ब्राह्मण कहते हैं कि ये वानर बालि और सुग्रीव के वंशज हैं! यह कथन तो मज़ाक़-सा ही है। किन्तु वहाँ के वातावरण में इन वानरों की उपस्थिति कुछ विचित्र-सी अवश्य मालूम होती है।

होसपेट से विजयनगर के खँडहरों की ओर जाते हुए पहले अनन्तशयन-मंदिर दिखलाई देता है। इसका गुंबद और मूर्ति के सामने का बड़ा हाल देखने लायक़ है। रास्ते में एक विशाल और रमणीक तालाब भी मिलता है। आगे जाने पर एक पुराना बँगला मिलता है जहाँ यात्रियों के लिए ठहरने की व्यवस्था कर दी गई है। जब हम खँडहरों की ओर बढ़ते हैं, तब हमें एक पक्का तालाब मिलता है, जिसमें से पत्थर की बड़ी नाली द्वारा अन्य छोटे तालाबों और स्नान-कुंडों में पानी ले जाया जाता था। खँडहर के बीच में एक बहुत बड़ा और ऊँचा चबूतरा है, जिस पर विजयनगर का सम्राट् दरबार के समय बैठा करता था। महल के सामने हज़ारराम-मंदिर है, जिसमें चारों ओर दीवारों पर रामायण की कथा चित्रित है। पास ही रानी के महल के पास 'लोटस महल' है, जिसकी शकल कमल जैसी है। यह बहुत सुन्दर बना हुआ है। इसके पूर्व में हाथियों का हथसार है, जिसके गुम्बद देखने लायक़ हैं। महल के पास एक मंदिर है, जो ज़मीन के नीचे बना है। हम लोग नीचे गये, किन्तु पानी भरा होने के कारण मूर्ति तक न पहुँच सके। यह मंदिर शायद राजा के लिए आपत्तिकाल में पूजन करने के लिए बनवाया गया होगा।

विजयनगर के खँडहरों में हमें अधिकांश तो मंदिर ही मंदिर दीख पड़े। वीरभद्र, चंडिकेश्वर, कृष्ण, विरूपेश्वर, दत्तात्रेय, हज़ारराम, कोदंडराम, और विट्ठलराम के मंदिर विशेषरूप से उल्लेखनीय हैं। विट्ठल-मंदिर

की कला बहुत सुन्दर है और पत्थर का काम देखने योग्य है। इसमें एक पत्थर का रथ उस समय की शिल्प-कला का एक सुन्दर नमूना है। इन्हीं मंदिरों के पास नृसिंह की एक बहुत बड़ी बैठी हुई मूर्ति है, जो एक ही पत्थर की बनी है।

[हथसार]

इन सब मंदिरों और मूर्तियों को इस दशा में देखकर मेरे मन में कई विचार आये। मनुष्य किस प्रकार अपनी सांत्वना के लिए तरह तरह के मंदिर बनवाता है, उनकी मूर्तियों को बड़ी भक्ति और श्रद्धा से पूजता है। मंदिर बनवाने में लाखों रुपये खर्च करता है। किन्तु ये सब देवालय आन्तरिक साधना और तपस्या के बिना व्यर्थ ही हैं, और आखिर मिट्टी में ही मिल जाने-वाले हैं। राजाओं ने अपने साम्राज्य को विस्तृत और स्थायी बनाने के लिए भिन्न-भिन्न देवताओं के मंदिर बनवा-कर उनकी आराधना की। अपना स्वार्थ साधने के लिए मानो देवताओं को धन के बल पर खुश करने की कोशिश की। किन्तु इस प्रकार की धर्मभावना का क्या नतीजा हुआ! विशाल मंदिरों के होते हुए भी विजयनगर पराजित हो गया और सारा साम्राज्य ख़त्म हो गया। अगर हिन्दू राजाओं ने मंदिरों के ऊपर लाखों रुपय खर्च न करके अपने जीवन को साधनामय बनाया होता और अपनी ग़रीब प्रजा को ही दरिद्रनारायण के रूप में पूजा होता तो शायद भारतवर्ष की यह दशा न होती जो आज हमारा सिर नीचा किये है।
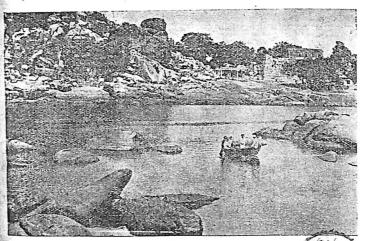
[आनीगोन्दा नद]

महात्मा जी के प्रति

लेखक, श्रीयुत सुमित्रानन्दन पन्त

निर्वाणोन्मुख आदर्शों के अन्तिम दीप-शिखोदय !
जिनकी ज्योति-छटा के क्षण से प्लावित आज दिगञ्चल !
गत आदर्शों का अभिभव ही मानव आत्मा की जय,
अतः पराजय आज तुम्हारी जय से चिर-लोकोज्ज्वल !
मानव-आत्मा के प्रतीक ! तुम आदर्शों से ऊपर
निज उद्देश्यों से महान्, निज यश से विशद चिरन्तन;
सिद्ध नहीं तुम लोक-सिद्धि के साधन बने महत्तर,
विजित आज तुम, नर-वरेण्य ! गण-जन विजयी साधारण !
युग युग की संस्कृतियों का चुन तुमने सार सनातन
नव संस्कृति का शिलान्यास करना चाहा भव-शुभकर,
साम्राज्यों ने ठुकरा दिया युगों का वैभव-पाहन,
पदाघात से मोह-मुक्त हो गया आज जन-अन्तर !
दलित देश के दुर्दम नेता ! हे ध्रुव धीर धुरन्धर !
आत्म-शक्ति से दिया जाति-शव को तुमने जीवन-बल
विश्व-सभ्यता का होना था नख-शिख नव-रूपान्तर
राम-राज्य का स्वप्न तुम्हारा हुआ न यों ही निष्फल !
विकसित व्यक्तिवाद के मूल्यों का विनाश था निश्चय,
वृद्ध विश्व सामन्त-काल का था केवल जड़ खँडहर,
हे भारत के हृदय ! तुम्हारे साथ आज निःसंशय
चूर्ण हो गया विगत सांस्कृतिक हृदय जगत् का जर्जर !
गत संस्कृतियों का, आदर्शों का था नियत पराभव,
वर्ग-व्यक्ति की आत्मा पर थे सौध-धाम जिनके स्थित,
तोड़ युगों के स्वर्ग-पाश अब मुक्त हो रहा मानव,
जन-मानवता की भव-संस्कृति आज हो रही निर्मित !
किये प्रयोग नीति-सत्यों के तुमने जन-जीवन पर,
भावादर्श न सिद्ध कर सके सामूहिक जीवन-हित,
अधोमूल अश्वस्थ विश्व, शाखायें संस्कृतियाँ वर
वस्तु-विभव पर ही जन-गण का भाव-विभव अवलंबित !
सफल तुम्हारा सत्यान्वेषण मानव सत्यान्वेषक,
धर्मनीति के मान अचिर सब, अचिर शास्त्र-दर्शन-मत,
शासन, जन-गण-तंत्र अचिर, युग-स्थितियाँ जिनकी प्रेषक
मानव-गुण, भव-रूप-नाम होते परिवर्तित युगपत् !
पूर्ण पुरुष, तुम विकसित मानव, जीवन-सिद्ध अहिंसक
मुक्त-हुए तुम-मुक्त-हुए-जन, हे जग-वन्द्य महात्मन् !
देख रहे मानव-भविष्य तुम मनश्चक्षु बन अपलक
धन्य तुम्हारे श्रीचरणों से धरा आज चिर-पावन !

तस्मादुत्तिष्ठ !

लेखक, श्रीयुत पण्डित मोहनलाल महतो

[आज का हिन्दी-लेखक परेशान हो गया है। उसकी समझ में नहीं आता कि वह आखिर 'साधना' के नाम पर कब तक आँख मूँद कर वर्ग-विशेष की आराधना करता रहे, और वह भी अपने आश्रितों के जीवन के मूल्य पर! और यदि ऐसा न भी करे तो करे क्या ? इस लेख में महतो जी ने इन्हीं प्रश्नों का उत्तर देते हुए हिन्दी-लेखक के लिए उपयुक्त दिशा का निर्देश किया है।]

अपने लेखकों से--

न केवल आप ही वल्कि मैं भी एक मामूली लेखक हूँ और स्वयम् आग की एक नन्हीं-सी चिनगारी रहते हुए भी मुझे इस बात का ध्यान बराबर रहता है कि मैं भी उस महादावानल का एक अंश हूँ जो सारे संसार को क्षण भर में ही खाक में मिला दे सकता है; स्वयम् एक बूंद जल रहते हुए मैं यह सदा याद रखता हूँ कि कल्लोलित प्रशान्त सागर का ही एक हिस्सा होने का गौरव मुझे भी प्राप्त है जिसके भीतर लाखों हिमालय जैसे पहाड़ पड़े हैं; जिन्हें कभी दिवाकर की कोमल किरणों का स्पर्श नसीब नहीं हुआ है। एक तुच्छ रजकण होते हुए भी मैं यह सदा याद रखता हूँ कि मैं विशाल विश्वप्रपंच का एक हिस्सा हूँ। लघुता तो विशालता का बोधक है और उसका पूरक एक अंश भी। हाँ, मैं भी आपकी ही तरह एक लेखक हूँ और मेरी क़लम जब कोरे काग़ज़ पर नाचती है तब मेरे हृदय में बैठकर कोई कहता है कि "तू विश्व का नियन्ता और संहारकर्त्ता है। ईमानदारी से अपनी क़लम चला और रोशनाई की एक बूँद भी व्यर्थ मत जाने दे। जंगल की ग़रीब लकड़ी की क़लम में विधाता ने वह शक्ति छिपा दी है कि यदि उसका उपयोग तू सचाई के साथ कर सका तो संसार का कायापलट उतनी ही देर में हो जायगा, जितनी देर में तेरी लिखी हुई अगली सतर की रोशनाई सूखेगी !"

उस समय मैं थर्रा उठता हूँ और लिखना बन्द करके अपने विषय में सोचने लगता हूँ। संसार के विषय में तो लाखों बार सोच चुका हूँ, पर अपने विषय में कुछ सोचने की फ़ुर्सत ही कहाँ मिलती है। आदत भी ऐसी नहीं है, पर सोचने लगता हूँ।

मेरे लिखने-पढ़नेवाले कमरे के सामने कोई सहन या मैदान नहीं है। कई खिड़कियाँ हैं और उन खिड़कियों से मैं दूर-दूर तक देखता हूँ। सामने वस्ती है। ऐसा लगता है कि मकानों का ढेर हो। यही लोकालय है और अपने सुख-दुःख का भार वहन करते हुए हम इन्हीं घरों में रहते हैं। ये घर न केवल प्रकृति से ही हमारी रक्षा करते हैं वल्कि इनकी आड़ में हम अपने आपको छिपाकर एक-दूसरे को धोखा भी दिया करते हैं। अपनी ग़रीबी और कष्ट के दिनों में हम अपने को इन्हीं के भीतर छिपाये रहते हैं। बाहर जब निकलते हैं तब फटी-पुरानी कथरी उतारकर, एक साफ़ कपड़ा पहनकर ही बाहर निकलते हैं। हम दुनिया को यह दिखलाना चाहते हैं कि अन्न-वस्त्र का अभाव हमारे नित्य जीवन को नहीं सताता। इन्हीं घरों की आड़ में अपनी इज़्ज़त की रक्षा करते हैं।

मैंने एक रात को दूर से रोने की आवाज़ आती सुनी। रात का सन्नाटा और रोने की तीखी आवाज़, मेरा हृदय कराह उठा और आँखों से नींद ग़ायब हो गई। मुझे पता चला कि मेरे मुहल्ले के आखिरी छोर पर जो महरिन रहती है उसका जवान बेटा दम तोड़ रहा है। मरना और जन्म लेना एक साधारण घटना-मात्र है, पर इस साधारण घटना के भीतर जो असाधारणता छिपी हुई है वही है संसार। इसी 'असाधारणता' की ओर मंगल-कामना की नेक नज़र रखनेवाले महापुरुषों की दृष्टि रहती है। उस ग़रीब परिवार का अपना एक कच्चा घर है, पर घर के भीतर कुछ लाचार मानव-मूर्तियों के अतिरिक्त और कुछ भी नहीं है। घोर दरिद्रता का जो अन्धकार वहाँ फैला हुआ है वह उस घर के स्वामी को अन्धा बनाकर अपने भीतर भुलाये हुए है। मैं जानता हूँ कि उस परिवार को क्या चाहिए और मैं उसके लिए क्या कर सकता हूँ, पर उस परिवार की ज़रूरतें असीम हैं और ठीक इसके विपरीत मेरी शक्ति स्वल्प है। मैं एक कहानी लिखने जा रहा था। कहानी का प्रधान हीरो था करोड़पति का इकलौता, और प्रधान हिरोइन थी किसी बहुत बड़े ताल्लुक़ेदार की लाड़ली। दोनों एम० ए०

थे। इससे बढ़कर सुख और क्या हो सकता है कि पास में करोड़ों की सम्पत्ति हो, एम० ए० पास खुद हों और उठती जवानी हो, उस पर जो प्रेमिका मिले वह भी धन, मान, ज्ञान और रूप में बेजोड़।

जिस समय मेरी कहानी का हीरो 'रोल्सरायस मोटर' पर चढ़कर जिसकी क़ीमत शायद १ लाख तक है, अपनी प्रेयसी के विरह में रोने के लिए कलकत्ता के 'मैट्रो-सिनेमा' में जा रहा था उसी समय मेरे कानों ने रोने की दर्दभरी आवाज़ सुनी। क़लम रखकर मैं सोचने लगा कि दुनिया में केवल रोल्सरायस मोटर ही नहीं है और न एम० ए० पास करोड़पति के इकलौते हैं। कुछ लोग ऐसे भी हैं जो रोया करते हैं, रात दिन बिसूरा करते हैं और अपनी ग़रीब आँखों को नोनहले जल से धोया करते हैं, पर हम उनकी ओर ध्यान ही कहाँ देते? खुद मेरे ही यहाँ मोटर कहाँ है। एक राजा साहब ने दया करके एक गाड़ी बख़्शी भी तो पेट्रौल की उस राक्षसी को बेच कर मैंने राहत की साँस ली। देखता हूँ, मेरे मित्र अपनी अपनी शानदार गाड़ियों पर हवाख़ोरी को निकलते हैं, पर मेरा मन नहीं ललचता। मुझे अपने इस सन्तोषी मन पर नाज़ है, यह मैं स्वीकार नहीं कर सकता। मैं जानता हूँ कि इस सन्तोषवृत्ति का परिणाम ही यह है जो अपनी कहानी के हीरो की तरह मैं भी एक दामी रोल्सरायस आज तक नहीं ख़रीद सका।

हम कहानियाँ लिखते हैं और उन कहानियों में ऊँचे दर्जे की अमीरी और शान-शौक़त का वर्णन करते हैं। आख़िर इस तरह के वर्णनों में हम क्या पाते हैं? सच बात तो यह है कि हम अपनी सुख-सम्बन्धी लालसाओं का चित्रण कहानियों के भिन्न-भिन्न पहलुओं में करते हैं या हमारे लिए रोल्सरायसवालों के अतिरिक्त दूसरा कोई स्थान ही नहीं है, जहाँ हमारी कल्पना को आगे बढ़ने की गुंजाइश हो। इस तरह हम लगातार एक ऐसा कुत्सित साहित्य पैदा करते जा रहे हैं जिसका अधिकारी कोई भी नहीं है और न जिस साहित्य का अपना कोई उद्देश्य या लक्ष्य ही है।

लेखकों को यदि एक वर्ग या जाति मान लें तो एक और भी विचित्र प्रश्न हमारे सामने उपस्थित हो जाता है। मैं कभी-कभी सोचता हूँ तो मुझे आश्चर्य होता है। हमारे अधिकांश साहित्य-निर्माता मध्यवर्ग के हैं और वे ग़रीबी के बहुत निकट हैं; और इतना ही नहीं, कुछ तो सच्चे अर्थों में ग़रीब भी हैं। मैं दरिद्रता को निर्धनता से अलग समझता हूँ। निर्धनता है धनाभाव का द्योतक और दरिद्रता है मानसिक रिक्तता का परिचायक शब्द। हमारे साहित्य-निर्माता निर्धनता के उस वर्ग में हैं, जहाँ प्रवृत्ति तो है पर प्रगति नहीं है। यों तो मैं संसार में दो ही वर्ग मानता हूँ, पहला अमीर और दूसरा ग़रीब, पर साधारणतः हमें यह बतलाया गया है कि इन दोनों वर्गों के बीच में एक तीसरा वर्ग भी है, जिसका नाम है 'मध्यवर्ग'। यह वर्ग शायद न अमीर ही कहा जा सकता है और न ग़रीब। यदि आप विचार करें तो इस मध्यवर्ग की स्थिति और भी बुरी है। इस वर्ग की अवस्था अनिश्चित-सी है, याने यह वर्ग जितना निकट अमीरी से है, उतना ही निकट ग़रीबी से भी है।

अब मैं यह सोचने की कोशिश करता हूँ कि हमारे साहित्य-निर्माता किस वर्ग के हैं। साहित्यिकों की जो जीवनियाँ हमारे सामने हैं उनसे यह पता चलता है कि न तो शेक्सपीयर ही अमीर-वर्ग का था और न हमारे कवि चन्द बरदाई को ही कोई अमीर कह सकता है। मिल्टन की सामाजिक स्थिति चाहे जितनी उच्च रही हो, पर बाबा तुलसीदास से अच्छी स्थिति में वह अन्धकवि नहीं था। आज भी आचार्य महावीरप्रसाद जी आदि के नाम हम अदब से ले सकते हैं; पर यह तो स्वीकार करना ही होगा कि इनमें कोई करोड़पति क्या पचास-लाखपति भी नहीं कहा जा सकता। जो वर्ग भाग्य से हाथापाई करके कुछ आगे बढ़ा है उसने धन तो उतना नहीं पाया, पर समाज और संसार के भविष्य का वह निर्माता और रक्षक बनाया गया। यहीं से हम साहित्य और साहित्य-निर्माताओं का श्रीगणेश पाते हैं।

ग़रीबी में सौन्दर्य नहीं है और न ग़रीबी कुछ ऐसी चीज़ है जो किसी कलाकार की भावनाओं में स्फूर्ति प्रदान कर सके। यह बात मैं अपनी ओर से नहीं कहता, पर मेरा जो अनुभव है वह मुझे ऐसी बात कहने को लाचार कर रहा है। मुझे विश्वास है कि यह सिद्धान्त ग़लत है, पर न जाने क्यों जब मेरी लेखनी उठती है तब वह लखपतियों और करोड़पतियों के ही चित्र बनाती है। यह दूसरी बात है कि ऐसे चित्रों में पायदारी और असलियत की जगह पर कुछ घिनौनापन होता हो, जिसे हृदयवान् पाठक भाँप लेते हैं। उस रात को जो दिल दहला देनेवाली पतली और थकी हुई चीख़ मेरे कानों में घुसकर हृदय को रुला जाती थी उस चीख़ को अपने और उस रोनेवाली के बीच का पुल बनाकर अपनी समस्त कल्पनाशक्ति, सारी भावुकता को मैं उस व्यग्र-अन्तर तक नहीं पहुँचा सका जहाँ से कराह चीख़ बनकर निकल रही थी और सामने उस अभागिनी का इकलौता पड़ा दम तोड़ रहा था। दवा के नाम पर गंगाजल और चिकित्सक की जगह पर माता की शुभ-कामनायें उस मरनेवाले नौजवान के सन्तोष के लिए क्या आप पर्याप्त समझ सकते हैं?

मैं आँखें बन्द करके कल्पना के अमूल्य रत्न प्राप्त करता हूँ और उन रत्नों को अपनी कविताओं में जड़ कर संसार के सामने रखता हूँ। ऊँचे दर्जे के विलासी जीवन की रंगीनियों का चित्रण अपनी कल्पना के बल पर करता हूँ और यह भी चाहता हूँ कि मेरी कल्पना की निधि संसार के सभी धनियों को नीचा दिखलानेवाली हो। पर जैसे ही मैं अपने मन को उस रात के अन्धकार को चीर कर आनेवाली चीख़ की ओर ठेल-धकेल कर भेजता हूँ, वैसे ही मुझे पता चलता है कि मेरे बहुत प्रयत्न करने पर भी मैं सफल नहीं हो सका। रोल्सरायस की मुलायम गद्दियों पर मचलनेवाला मन वहाँ नहीं जाना चाहता, जहाँ खाट के नीचे एक जवान का निर्जीव शरीर पड़ा हो और उसकी माता अपनी आशाओं के खँडहर पर पछाड़ खा-खाकर गिर रही हो। उस पर तुर्रा यह कि दीआ का तेल समाप्त हो चला हो और उस घर में एक मुर्दा और जीवित मा के अतिरिक्त तीसरा कोई भी न हो। मा अपने बेटे की लाश को छोड़कर तेल लाने बाज़ार कैसे जाय और यदि जाय भी तो उसके पास पैसे कहाँ!

रात आधी बीत गई थी। चारों ओर सन्नाटा था। आकाश घटाओं से भरा हुआ था और बूँदा-बूँदी भी हो रही थी। सावन का महीना था। मैंने देखा, मेरी जीवन-सहचरी आराम से सो रही है। आज की ही लगाई हुई मेंहदी उसकी कोमल तलहथियों में चमक रही थी, जिसमें से भीनी-भीनी महक भी निकल रही थी। वह आराम की मीठी नींद सो रही थी। उसकी लम्बी और बन्द पलकों के नीचे निश्चय ही सुख-स्वप्नों का मनोरम नाटक हो रहा होगा। दूसरी ओर खुली हुई खिड़कियों से बाहर अन्धकार का जाल-सा बुना हुआ था। सामने सारा शहर निद्रामग्न था। कहीं से कुछ भी जागृति का परिचय नहीं मिलता था, पर बीच बीच में हवा में लिपटी हुई एक पतली चीख़ सुन पड़ती थी और मेरे शान्त कमरे के कोने-कोने में गूँज जाती थी।

मैं लेखक हूँ। मैं अपने सहकर्मियों से यह पूछना चाहता हूँ कि हम क्या लिखें? 'स्व' और 'पर' तथा 'घर' और 'बाहर' इनका जहाँ एकान्त मिलन हो जाता है, वहीं से सच्ची मानवता का आरम्भ होता है। साहित्य मानवता का एक रूप है न कि दोनों दो भिन्न-भिन्न तत्त्व हैं। हमने बहुत कोशिश करके मानवता और साहित्य का अलगाव किया है। हमारी यह चेष्टा बराबर रही है कि साहित्य मानवता से जितना दूर रह सके उतना ही अच्छा।

दुर्बुद्धि का यह अभिशाप हमारी पतितावस्था की अवधि को बढ़ानेवाला सिद्ध हुआ, यह कहते मुझे बहुत ही परिताप होता है। मुझे यह मालूम है कि मैं केवल अपनी बातें कहने का ही अधिकार रखता हूँ। उपदेश देना तो उन गुरुजनों का काम है जिन्हें अपनी सुफ़ेद मूँछों पर नाज़ हो और जो हम नये लेखकों को 'कल के बच्चे' कहकर हमारी बातें सुनने को भी तैयार न हों।

मैं एक कहानी कहूँगा। बात सच्ची है और उसकी सचाई पर मुझे कोरा नाज़ ही नहीं भरोसा भी है। मैं अपने एक बहुत बड़े धनी मित्र के साथ कपड़े की एक नामी दूकान पर गया। उन दिनों मेरा हाथ ख़ाली था और गोकि बहुत ही ज़ोरदार सर्दी पड़ रही थी, पर मेरे बच्चे गत वर्ष के पुराने और कुछ कुछ फटे कपड़ों पर ही दिन काट रहे थे। यह दृश्य मेरे लिए दिल दहलानेवाला था और रह रह कर मेरा दिमाग़ विद्रोही की तरह गरम हो उठता था। यद्यपि मुझे अपने सूती कोट की ओर ध्यान देने का अवसर न था, तो भी बच्चों की ओर नज़र पड़ते ही हृदय विषधर की तरह फुफकार मारने लगता था। धिक्कारता था मैं अपने को कि मुझमें इतनी क्षमता

भी नहीं है कि मैं अपने प्राणों जैसे बच्चों के लिए कपड़े भी बनवा सकूँ और वे पुराने फटे गन्दे कपड़ों के भरोसे बढ़ती हुई सर्दी और पाले का कठोर सामना करने को मेरी दरिद्रता के चलते तैयार किये गये हैं। तना ही नहीं, मेरी छोटी बच्ची के नन्हें से कोमल शरीर पर वह पुराना ऊनी कपड़ा भी नहीं था। वह खद्दर का एक मोटा 'फ़्राक' पहने हाथ पैर सिकोड़े अपने अभागे पिता के नाम पर हर घड़ी काँपा करती थी। मैं झूठी शान का जामा पहने इस दृश्य को बहुत ही बेशर्मी के साथ देखता और देखकर भी भूल जाने की कोशिश करता। कभी-कभी दिल में जो आग पैदा होती भी तो उसे एक-दो कहानियाँ लिखकर बुझा दिया करता था।

हाँ, तो अपने एक धनी मित्र के साथ मैं कपड़े की दूकान पर गया, जहाँ उन्होंने अपने एक दर्जन बच्चों के लिए कपड़े खरीदे। १०) गज़ से कोई कपड़ा कम क़ीमत का न था और उस पर यह शिकायत थी कि दूकानदार दामी कपड़े अब नहीं मँगवाते और लाचार होकर उन्हें रद्दी और दरबानों के योग्य कपड़े अपने बच्चों के लिए खरीदने पड़ रहे हैं। इतना ही नहीं, इसके बाद उन्होंने एक 'तूश' भी खरीदा, जो ठेठ काश्मीर का बना हुआ था और उसकी क़ीमत थी ४५)। यद्यपि उनके पास दर्जनों शाल और तूश थे, पर रंग पसन्द आजाने के कारण एक और तूश उन्होंने खरीद ही तो लिया। मैं हक्का-बक्का-सा बैठा यह सब देखता रहा और लाचार मुझे भी उनके पसन्द किये हुए कपड़ों पर अपनी सम्मति देनी पड़ी। यह कितना कठोर काम था। उफ़्! एक मामूली सूती कोट पहने जड़ाता-काँपता जब मैं १० बजे रात को घर लौटा तब वहाँ अपनी जीवन-सहचरी को जूट की एक अधफटी-सी नीमास्तीन पहने आग तापते पाया और देखा अपने बच्चों को कम्बल और तीन साल की पुरानी रज़ाई में लिपटकर सोते—जिस रज़ाई का उपल्ला और निचल्ला फट गया था और जगह जगह से अभागी रुई बेशर्म की तरह झाँक रही थी। उस तूश और पश्मीने की खरीद-बिक्री का दृश्य मैं कैसे भूलता और मैं कैसे भूलता अपने बच्चों के फटे कपड़ों को जिनसे वे बेचारे अपनी कोमल और ठिठुरती हुई देह को ढाँके किसी तरह भयानक पूस-माघ से लड़ने की तैयारी कर रहे थे।

मैं पूछता हूँ अपने लेखकों से, क्या हमारी सेवाओं का यही पुरस्कार है? और क्या यह ग़रीबी हमारे हृदय को क्षण भर के लिए भी विद्रोही नहीं बना सकती है? हम तो आसमान के मज़मून बाँधते हैं, पर हमारे चारों ओर जिस निराशा और हाहाकार का जाल-सा बुना हुआ है उस ओर हमारा ध्यान क्यों नहीं जाता? हम मध्यवर्ग के हैं और उच्चवर्ग से हमारा कोई वास्ता नहीं! निम्नवर्ग से अभी-अभी ऊपर उठकर हम दो क़दम आगे बढ़े हैं। कल तक हम निम्नवर्ग में एकाकार थे। क्या हम यह भूल गये कि उच्चवर्ग हमें अपने मनोरंजन का खिलौना समझते हैं? उन्हें साहित्य से कोई मतलब नहीं और न उन्हें हमारी लिखी जानदार चीज़ों से ही कोई वास्ता। वे अपने धन, अपने व्यसन, अपने व्यभिचार, अपनी मोटरगाड़ी, अपने मित्र, अपनी शानदार कोठी, अपनी लूटमार, अपनी निर्दयता, अपने ओछेपन और अपने खुशामदी कर्मीने दरबारियों से मतलब रखते हैं। वे पाखाने में बैठकर भी आपकी कला का रसास्वादन करने को प्रस्तुत नहीं हैं, जहाँ बैठकर वे सुबह के अखबार पढ़ा करते हैं! उनके लिए विलायत में किताबें छपा करती हैं और उन दामी पुस्तकों की सुन्दर सुनहली जिल्दों से वे अपने कमरों की शोभा बढ़ाया करते हैं! दामी आलमारियों में आपकी काग़ज़ की जिल्दवाली मामूली काग़ज़ पर छपी हुई किताबें स्थान नहीं पा सकतीं! मैं पूछता हूँ, फिर आप किस उम्मीद में अनार समझकर सेमर के वृक्ष की सेवा कर रहे हैं? आपकी इस मूर्खता का कभी अन्त भी होगा या यह आपकी 'अनन्त-साधना' का ही एक अंग है?

मैं कहता हूँ कि अब आपको अपने विषय में कुछ सोचना चाहिए और निर्भय होकर सोचना चाहिए। आपकी लेखनी जिस ओर घूमेगी उसी तरफ़ सारा संसार घूम जायगा। ये मोटर और पश्मीनावाले जनप्रवाह को रोक नहीं सकेंगे। यदि ये आपके पैदा किये हुए तूफ़ान के विरोध में खड़े होने की हिम्मत करेंगे तो इनका खाक में मिल जाना उतना ही निश्चित है जितना बारूदखाने में घुसकर आग की फुलझड़ियाँ छोड़ने की बेवकूफ़ी करनेवाले का विनाश निश्चित है।

मैं यह नहीं कहता कि दुनिया धनिकों के वैभव को देखकर जले, मैं यह नहीं कहता कि हम ग़रीबी की मार से खुद पैदल चलते हुए उन मोटरवालों को जलती आँखों से देखें जो हमारी सुरत पर धूल उड़ाते हुए तीर की तरह बग़ल से आगे निकल जाते हैं, मैं यह नहीं कहता कि ऊँची कोठीवालों की उन कोठियों से दुश्मनी का नाता हम रक्खें, जिनकी सुन्दर खिड़कियों में से बिजली की चमकदार रोशनी निकलती हो, जाड़े की रात को उनमें से किसी मदमत्ता के भर्राये हुए कंठ से थकी हुई संगीत-ध्वनि निकलती रहती हो। मैं किसी की अमीरी पर गरम आँसू बरसाने की बात कभी नहीं सोचता और न किसी के विलास को अपने अभिशाप से मरघट की चहल-पहल ही बनाने की कल्पना करता हूँ। जो भी हो, पर यह मैं जानता हूँ कि हमारे वे साहित्यकार उन बहुसंख्यक अमीरज़ादों से सांस्कृतिक दृष्टि में बहुत ही उच्च हैं, जो फ़क़त अपने पैसों के चलते ही लोकपूज्य हैं, वरना किसी भले आदमी के मुहल्ले में क़दम रखने भर की भी इन्सानियत उनमें नहीं पाई जा सकती। मैं सोचता हूँ कि हम साहित्यिकों और किसानों में कोई विशेष अन्तर नहीं है। यदि किसान पेट के लिए खुराक पैदा करते हैं तो हम भी तो दिमाग़ की भूख मिटाने के लिए ही मरते-खपते रहते हैं।

यहाँ मैं किसानों और साहित्य-निर्माताओं को और भी एक-दूसरे के निकट पाता हूँ जब हम दोनों को ही अनधिकारियों के लिए कठोर परिश्रम करते देखते हैं। यह बात सही है कि किसान ज़मींदारों के लिए अन्न पैदा करता है तो एक साहित्यिक ऊँची कोठीवालों के लिए ही लिखता है। किसान तो लाचार होकर अपने शोषकों के खज़ाने भरता है, पर हमारे सामने कोई लाचारी नहीं है। आज से हम यह निश्चय कर सकते हैं कि हम अमीरों के लिए नहीं, उनके बिगड़े दिमाग़ों के लिए नहीं, उनकी विलासपूर्ण वृत्तियों की तृप्ति के लिए नहीं बल्कि उनकी तानाशाही के विनाश के लिए लिखेंगे। उन्होंने आज तक अन्यायरूप से जो कुछ खाया है उसका कण-कण वसूल करने के लिए लिखेंगे और उन्हें मानवता की शिक्षा देने के लिए लिखेंगे तो इसमें कोई लाचारी नहीं है।

जब मैं अपने चारों ओर निर्धनता और बेबसी का घोर हृदय-विदारक रूप देखता हूँ और देखता हूँ अपने आपको उस नरक में जलता हुआ, तब आत्मा कराह उठती है और मानसिक शान्ति का अन्त हो जाता है। मैं चाहता हूँ कि 'मेघदूत' पढ़ूँ, जिसमें विरह का व्यापक प्रसार स्वर्ग से लेकर रामगिरि पर्वत तक वर्णन किया गया है। जिस कवि ने अपने छन्दों के ताल पर जड़ मेघ को भी नचाया उसकी कल्पना से अब हमारी व्यग्र आत्मा नहीं नाचती। मन की सूखी पंखुरियाँ नहीं विकसित होतीं।

'अभिज्ञानशाकुन्तल' से जी बहलाना चाहता हूँ। पढ़ता हूँ प्रेमविकल राजा दुष्यन्त शकुन्तला से कह रहा है कि—

> "अंके निधाय करभोरु यथासुखं ते
> संवाहयामि चरणावुत पद्मताम्रौ"

यहाँ राजा दुष्यन्त अपनी प्रेमिका के पैर दबाने का प्रस्ताव कर रहा है और उधर से श्रीमती जी ने आकर सन्देश दिया कि घर में खाने को एक दाना भी नहीं है, और आज बनिया उधार देना भी नहीं चाहता!

आप सोचिए, क्या हम इसी लिए साहित्य का निर्माण कर रहे हैं? क्या हम संसार की संस्कृतियों की रक्षा और निर्माण इसी लिए कर रहे हैं? क्या हम देश के भविष्य को अपने और अपने बच्चों के गरम खून से इसी लिए सींच रहे हैं कि नंगे और भूखों मर कर साहित्य-सेवा करें? यह तो बर्दाश्त होने लायक़ बात नहीं है और सही बात यह है कि हमारी शान्त भावनाओं के साथ जी भर कर खेलवाड़ भी किया जा चुका है।

हम अपने लिए सदा कष्ट और आपदा चुनते रहे और दूसरों के लिए फूल की डाली सजाते रहे, पर अब युग पलटता है! इस सत्य के सामने सभी कोई सिर झुकाने के लिए तैयार होगा कि युग पलटता है; जो अपना सिर झुकाना नहीं चाहेगा उसे अपने सिर के प्रति शत्रुता करने का पाप लगेगा।

मैं कहता हूँ कि—

"तस्मादुत्तिष्ठ !"

दो साथी

लेखक, श्रीयुत नरेन्द्र

मैंने देखा, मैं जिधर चला
मेरे सँग-सँग चल दिया चाँद!

(१)

घर लौट चुकी थी थकी साँझ!
था भारी मन, दुर्बल काया,
था ऊब गया बैठे-बैठे
मैं अपनी खिड़की पर आया!
टूटा न ध्यान, सोचता रहा—
गति जाने अब ले चले किधर!
थे थके पाँव बढ़ गये किन्तु
चल दिये उधर, मन हुआ जिधर!
पर जाने क्यों मैं जिधर चला
मेरे सँग-सँग चल दिया चाँद!
पीले गुलाब-सा लगता था
हलके रंग का हलदिया चाँद!

(२)

साथी था, फिर भी मन न हुआ
हलका, हो गया भार दूना!
वह भी बेचारा एकाकी—
उसका भी जीवन-पथ सूना!
क्या कहते दोनों ही चुप थे,
अपनी-अपनी चुप सहते थे,
दुख के साथी बस देख-देख,
बिन कहे हृदय की कहते थे!
था ताल एक; मैं बैठ गया
मैंने संकेत किया, 'आओ
रवि-मुकुर! उतर आओ—
अस्थिर कवि-उर को दर्पण बन जाओ!'
मैं उठा, उठा वह; जिधर चला,
मेरे सँग-सँग चल दिया चाँद!
मैं गीतों में, वह ओसों में
बरसा औ' रोया किया चाँद!

(३)

क्या पल भर भी कर सकी ओट
झुरमुट या कोई तरु-डाली,
पीपल के चमकीले पत्ते
या इमली की झिलमिल जाली?
मैं मौन विजन में चलता था,
वह शून्य व्योम में बढ़ता था;
कल्पना मुझे ले उड़ती थी
वह नभ में ऊँचा चढ़ता था!
मैं ठोकर खाता, रुकता वह;
जब चला साथ चल दिया चाँद!
पल भर को साथ न छोड़ सका
ऐसा पक्का कर लिया चाँद!

(४)

अस्ताचलगामी चाँद नहीं क्या
मेरे ही टूटे दिल-सा?
टूटी नौका-सा डूब रहा
जिसको न निकट का तट मिलता!
वह डूबा ज्यों तैराक थका,
मैं भी श्रम से, दुख से टूटा!
थे चढ़े साथ, हम गिरे साथ
पर फिर भी साथ नहीं छूटा!
अस्ताचल में ओझल होता शशि,
मैं निद्रा के अञ्चल में,
वह फिर उगता, मैं फिर जगता
घटते-बढ़ते हम प्रतिपल में!
मैंने फिर फिर अजमा देखा
मेरे सँग-सँग चल दिया चाँद!
वह मुझ-सा ही जलता बुझता
बन साँझ-सुबह का दिया चाँद!

राजमहलों की एक भावपूर्ण कहानी

अनंगलेखा

लेखक, श्री विजयबहादुर श्रीवास्तव, बी० एस-सी०, एल-एल० बी०

अनंगलेखा राजकुमारी थी। ऐसे-वैसे की लड़की नहीं, काश्मीर के सार्वभौम महाराज बालादित्य की लाड़ली बेटी थी। उसकी अवस्था अभी केवल तेरह वर्ष की थी। इसलिए स्वतंत्रता-पूर्वक वह राजदरबार में उपस्थित रह सकती थी।

एक दिन राज-सभा में पण्डितों का जमघट था। श्वेत पत्थर के नक्काशीदार सत्ताईस खम्भों की बनी एक बारहदरी थी। वह तीन ओर से खुली थी, चौथी ओर महल था। इसी ओर पाँच हाथ ऊँचे सिंहासन पर महाराज बालादित्य विराजमान थे। पीछे चार दासियाँ खड़ी थीं। दो चँवर डुला रही थीं; एक पानदान लिये थी और एक सुगन्धित पात्र। राजा का हाथ हर आधी घड़ी में उठता था और कन्धे तक जाता था। दासी उसके समीप पान कर देती थी। राजा उठाकर चर्वण करने लगता था।

बालादित्य के समीप ही वाम पार्श्व में अनंगलेखा बैठी थी। वह सौन्दर्य की मूर्ति और कला का केन्द्र थी। उसके गायन-नर्तन की प्रशंसा चारों ओर फैल रही थी। सब उसकी ओर देखते थे और मुग्ध हो जाते थे। 'न जाने किस बड़भागी की वह अर्धांगिनी होगी' यही सबकी निःश्वासों के साथ निकलता था।

राजसिंहासन के सामने, कुछ नीचे, एक लम्बा-चौड़ा काले पत्थर का तख्त था। उस पर पाँच मंत्री बैठे थे; दो दायें, दो बायें और एक बीच में। बीचवाला पुरुष बहुत सुन्दर, सुडौल और चपल था। उसकी अवस्था पच्चीस वर्ष से ऊपर नहीं थी। वृद्ध मंत्री के मरने के उपरान्त उसका ही पुत्र प्रधान बना दिया गया था। यद्यपि वह अभी अल्पायु था तो भी बहुत चतुर और वाक्पटु था। राजनीति, कूटनीति, सेना-संचालन, न्याय आदि किसी भी विषय में कोई उसकी बराबरी नहीं कर सकता था।

मंत्रियों के सामने एक चौरस फ़र्श बिछा हुआ था। इस पर बहुत-से पण्डित बैठे थे। उनकी वेश-भूषा से विदित होता था कि कान्यकुब्ज, वाराणसी, अवन्ति, स्थानेश्वर, मूलस्थानपुर तथा दक्षिणपथ के अनेक पण्डित आकर इस सभा में उपस्थित हुए थे। स्थानीय पण्डितों की तो कमी ही नहीं थी।

पण्डितों के दायें-बायें सामन्त महासामन्त तथा अन्य अधिकारिगण बैठे थे। उनके उपरान्त राजदूत तथा अन्य दरबारी थे। इस सब जनसमुदाय के आस-पास सशस्त्र सैनिक थोड़े थोड़े अन्तर से खड़े हुए थे। उनके पीछे, बारहदरी के बाहर, प्रजा के प्रतिष्ठित सज्जन विराजमान थे। तदुपरान्त अश्वारोही सैनिक सम्पूर्ण राज-सभा को घेरे हुए थे। भीतर आने जाने को तीन मार्ग थे; किन्तु बहुत जाँच-पड़ताल और परिचय के बाद व्यक्ति प्रवेश कर पाते थे।

समस्त सभामण्डप सैकड़ों प्रदीपों से आलोकित था। धूप और सुगन्ध के कारण वायुमण्डल सघन हो रहा था। सुरभित जल के फ़व्वारे छूट रहे थे। बीच बीच में रखे हुए पुष्प-पात्र वायु से विलोडित हो रहे थे।

घण्टों से पण्डितों का शास्त्रार्थ हो रहा था। एक के उपरान्त एक अपने मत की पुष्टि में भाषण देता था। दूसरे सब शान्ति-पूर्वक श्रवण करते थे। न 'हू-हू' होता था और न हल्ला। राजसभा का अनुशासन और प्रबन्ध आदर्श था। बाहर से आये हुए सभी पण्डित अचम्भित थे।

शास्त्रार्थ के उपरान्त ज्योतिषियों की बारी आई। आर्यभट्ट और वाराहमिहिर के सिद्धान्तों का खण्डन-मण्डन और विवेचन हुआ। पुलिश के सिद्धान्तों पर भी टीका-टिप्पणी हुई। पण्डितगण अपने मतों का प्रतिपादन ऐसे उत्तम ढंग से करते थे कि कहा नहीं जा सकता था कि किससे बढ़कर कौन है! अन्त में अवन्ति के पण्डित विश्वेशभट्ट की जीत हुई। वे सभा के रत्न घोषित किये गये।

राजा ने उनकी ओर देखा । फिर सोच समझकर अपने समीप बुलाया । उन्हें पाँचों वस्त्र और बहुत सी बहुमूल्य भेंट पुरस्कार में दी । रजतपत्र पर लिखा हुआ एक प्रमाणपत्र भी दिया गया । ब्राह्मण देवता ने राजा के आशीर्वाद और प्रशंसा में पाँच श्लोक पढ़े । फिर समीप बैठी हुई अनंगलेखा की ओर देखा । उसके अंगों और मुख-मण्डल पर अंकित चिह्नों को देखकर पण्डित को आश्चर्य हुआ । राजा ने कन्या का भविष्य बतलाने का आग्रह किया । पण्डित ने भोजपत्र पर कुछ लिखकर राजा के हाथ में दे दिया । बालादित्य का चेहरा मलिन हो गया । मुख का पान उगल दिया । राजसभा विसर्जित कर दी । एकाएक अन्तःपुर में चले गये और विश्राम करने लगे ।

(२)

तीन वर्ष बीत चुके थे । अनंगलेखा षोडशी हो चुकी थी । उसके विवाह के लिए कान्यकुब्ज के महाराज ने इच्छा प्रकट की थी । अवंतीश्वर ने भी सन्देश भेजा था । थानेश्वर और पाटलिपुत्र के राजा भी प्रस्तुत थे । किन्तु न जाने क्यों बालादित्य सबको इन्कार करते गये ।

यदि दूर देशों में अपनी कन्या नहीं देना चाहते थे तो पास भी तो उनके मित्रों और अधीनस्थ राजाओं की रियासतें थीं । जालन्धर, काम्बोज, ग़ान्धार, लोहर अथवा राजपुरी किसी भी स्थान में वे अनंगलेखा को विवाह सकते थे ।

मान लो ये सब बाहर के थे । यदि काश्मीर के बाहर नहीं जाना था तो वहाँ ही कितने ही श्रेष्ठ पुरुष मिल सकते थे । महासेनापति तथा महासामन्त राज्य के अग्रगण्य पुरुष थे । यदि उनकी अवस्था अधिक थी तो प्रधान मंत्री तो अभी बिलकुल नवयुवक थे । उन जैसा व्यक्ति काश्मीर क्या समस्त भारत में ढूँढ़े नहीं मिलता । किन्तु न जाने राजा को क्या सूझा कि समस्त संसार छोड़कर उन्होंने अपनी लड़की अश्वघास कायस्थ दुर्लभवर्द्धन को ब्याह दी ।

"धन्य है रे भाग्य ! क़िस्मत बड़ी चीज़ है । बाप-दादे क़लम घिसते-घिसते मर गये । कभी काग़ज़ और स्याही से पीछा नहीं छूटा । इस दुर्लभा की ज़िन्दगी भी घुड़सालें और घास-दाने का हिसाब लिखते-लिखते बीत जाती । किन्तु भाग्य की बात है । आज वह राजसभा में सिंहासन पर बैठता है । राजमहलों में पैर पुजवाता है । राजा ने अपनी लड़की का मुँह नहीं देखा । कंजूसी की ! देखो तो बेचारी कितनी उदास रहती है । उसका कमल सा मुख सूखकर तुषार-कैसा मारा हो गया है ।"

संसार की ये बातें थीं किन्तु इनसे क्या ? कहीं ब्रह्मा के अंक झूठे पड़ सकते थे । परन्तु ब्याह हो जाने से क्या था । अनंगलेखा की प्रीति दुर्लभवर्द्धन से रत्ती भर भी नहीं थी । उसका जी तो प्रधान मंत्री खंख ने चुरा लिया था । वही उसकी आँखों का तारा, हृदय का दुलारा था । उसके दर्शन से अनंगलेखा के हृदय में अमृत-वर्षा होती थी । उसे आँखों से ओझल नहीं होने देना चाहती थी । किन्तु दुर्लभवर्द्धन के तो नाम तक से 'फुरहरी' आती थी । रोएँ खड़े हो जाते थे ।

दुर्लभवर्द्धन था कितना कुरूप ! राजकुमारी की तो कौन कहे दासियाँ तक उससे घृणा करती थीं । ऊँचा पूरा, गोरा नारा, हृष्ट-पुष्ट सब था । नाक-नक्शा, आँख-भौंहें सब अच्छी थीं । हँसता मुस्कराता भी अच्छा अच्छा था । इतना होने पर भी अच्छा नहीं था । काट-छाँट तो अच्छा था पर छवि तो थी ही नहीं । उसकी चाल-ढाल चितवन, बोल-चाल कुछ भी तो अच्छा नहीं थी । और की तो बात क्या है छाया तक कुरूप थी । महाराज का भय था, इससे महलों में आ लेता था । नहीं तो अगर दासियों की चलती, तो 'दुर्लभा' को सिंहपौर के भीतर पैर न रखने देतीं । इतना डाँटती फटकारती थीं, इतने जले-कटे बोल बोलती थीं, तो भी वह सुनता रहता था । मुस्कराता रहता था । बड़ा निर्लज्ज था ।

यदि कभी कोई दासी दुर्लभवर्द्धन का पक्ष ले लेती थी तो उस पर आफ़त आजाती थी । फ़ौरन वह 'जाति के बाहर; उसका हुक़्क़ा पानी बन्द ।' इतना ही नहीं उसे राजकुमारी की कचहरी से कड़ा दण्ड मिलता था । इनाम-इक़राम बन्द हो जाता था । उसकी ज़िन्दगी किरकिरी हो जाती थी ।

किन्तु खंख का हाल ही दूसरा था । वह सब गुणों का आगार, विद्या-बुद्धि का केन्द्र, धन का कुबेर और रूप का मदन था । उसे सब स्वतन्त्रता थी । जहाँ चाहे जाता, जब तक चाहे ठहरता; जिससे चाहे बोलता था और जिसको चाहता डाँटता था । वह प्रधान मंत्री था । धन और मान की वर्षा करता था । चाहे जिसको क्षण में बना सकता था और क्षण में बिगाड़ सकता था । वैसे ही लोग उससे घबड़ाते थे फिर राजकुमारी की उस पर विशेष कृपा थी । दास-दासी, द्वार-पाल, कंचुकी, यहाँ तक कि महा-प्रतिहार तक उसके वश में थे । अन्तःपुर महारानी का महल तथा अनंग-भवन सब उसे बराबर थे । किन्तु उसके आकर्षण का केन्द्र केवल अनंग भवन ही था । वहीं उसकी प्यास बुझती थी ।

दुर्लभवर्द्धन के मार्ग में दास-दासी बात बात में आते थे । वह अनंग-भवन की ओर जाता था, तुरन्त रोक दिया जाता था । 'कुमारी जी अस्वस्थ हैं । उनकी इच्छा नहीं है कि कोई आवे ।' 'उनके पास भद्र महिलायें बैठी हैं ।' 'महारानी जी पधारी हैं ।' 'वे शृंगार कर रही हैं ।' 'स्नानागार में हैं ।' 'यह उनकी पूजा का समय है ।' 'वे आराम कर रही हैं ।' 'कृपया फिर कष्ट उठाइए ।' ऐसे ही उत्तर मिलते थे । बेचारा दुर्लभ परेशान था । यदि कभी धृष्टता-पूर्वक घुस भी जाता था तो अनंगलेखा शायद मिलती थी । वह रात-रात भर प्रतीक्षा करता था, किन्तु वह आती ही नहीं थी । पता चलता था 'आज महारानी बिम्बा ने रोक लिया है ।' 'आज महारानी चित्रा के कक्ष में विश्राम करेंगी ।' ऐसे ही ऐसे कितने ही दिन बीत गये ।

(३)

एक दिन अमावस्या की रात थी । पानी रिमझिम-रिमझिम बरस रहा था । बादल छाये हुए थे । बिजली चमक चमक कर रह जाती थी । दुर्लभवर्द्धन अपने शयनागार में अकेला था । कभी बिस्तर पर लेटता था । कभी उठ बैठता था । कभी कमरे में घूमने लगता था । फिर कभी खिड़की खोलकर अन्धकार में देखने लगता था ।

रात्रि के दो पहर बीत चुके थे । तीसरा भी आधा-सा जा चुका था । धीरे-धीरे किसी की पदध्वनि सुन पड़ी । दबे पैरों कोई आरहा था । दुर्लभवर्द्धन ने किवाड़ खोले । एक व्यक्ति भीतर आया । वह सिर से पैर तक ढँका था । आवरण उसका काला था । चुपचाप उसने प्रणाम किया । फिर दुर्लभवर्द्धन से कुछ कहा ।

दुर्लभवर्द्धन विना बोले अपनी सेज तक गया । [illegible] पर बैठकर धीरे-धीरे उसने वस्त्र धारण किये । उस पहिना । शिरस्त्राण कसा । पादत्राण भी बाँधे । एक लम्बी सी तलवार बाईं ओर लटकाई । एक कटार भी कमरबन्द में कस ली । पूर्ण सुसज्जित होकर एक काला चोगा पहिना । इससे समस्त शरीर ढँक गया ।

आगे नवागन्तुक हो गया । पीछे दुर्लभवर्द्धन चला । दोनों राजमहल के पीछे एक छोटे से द्वार पर पहुँचे । दरवाज़ा खुला था । ये प्रविष्ट हो गये । स्थान-स्थान पर द्वारपाल बैठे थे । किसी भाँति उनकी दृष्टि बचाते हुए ये बढ़ते गये । अनंग-भवन के दरवाज़े पर पहुँच गये ।

द्वारपाल नशे में चूर था । उसे लाँघ कर ये भीतर घुस गये । एक कमरा विशेष प्रदीप्त था । उसमें दुर्लभवर्द्धन ने प्रवेश किया । एक शय्या पर दो व्यक्ति सो रहे थे ।

उनके वस्त्र अस्तव्यस्त थे । स्त्री के श्वास-निःश्वास अत्यन्त तीव्र थे । उसका वक्ष खुला था । नखाघातों में रक्तिमा दौड़ रही थी । दन्तक्षत कपोल अभी सूखे नहीं थे । दृश्य अद्रष्टव्य था । दुर्लभवर्द्धन की आँखों में ख़ून उतर आया ।

वह एक क़दम पीछे हटा । झटके से हाथ मूठ पर गिरा । तलवार खिंच आई । सन्न से ऊपर गई और एक क्षण में वेग से नीचे गिरी । किन्तु यह क्या ? दुर्लभवर्द्धन का चेहरा क्यों उतर गया ? उसके मस्तिष्क में कौन-सी विचार धारा दौड़ रही थी ? वह सोच रहा था–"हूँ ! यह स्त्री मेरी है । क्यों ? पिता ने इसे मुझे विवाह दिया है ? किन्तु इसने मुझे क्या अधिकार दिया है ? पिता को अपनी सन्तान पर इतना अधिकार है ?" वह बोल उठा–ईश्वर बल दे ।

एकाएक उसका हाथ रुक गया । तलवार क्रमशः म्यान की ओर गई । उसमें बन्द हो गई । उसने पुरुष के सिरहाने की ओर देखा । उसका पटुका उठाया । उसे पृथ्वी पर बिछाया । अपनी कमर से कटार निकाली । उसे अपनी तर्जनी पर रक्खा । हलका-सा धक्का मारा । रक्तधारा बह निकली । पटुके पर अपना त्याग-पत्र लिख दिया । अनंगलेखा से विच्छेद हो गया । मंत्री खंख को प्राण-दान दे दिया ।

(४)

काश्मीरनरेश बालादित्य मृत्यु-शय्या पर पड़े थे । आँखों से आँसू बह रहे थे । उनके कोई पुत्र नहीं था । केवल

एक पुत्री थी। वह भी परित्यक्ता। उनके आस-पास राज्य के सभी कर्मचारी खड़े थे। वृद्ध महाराज की दृष्टि एक एक पर जाती थी। वह किसी को खोज रही थी। वह दिखता नहीं था। क्षीण स्वर में कष्टपूर्वक बोले-'दु-र्ल-भ-व-र्द्ध-न।' किन्तु दुर्लभवर्द्धन कहाँ था। वह तो विरक्त था—वैरागी था। उसे संसार से कुछ प्रयोजन नहीं था। ख़ैर, खोज कर बुलाया गया।

राजा ने दुर्लभवर्द्धन को समीप बुलाया। बैठने का संकेत किया। उसके मस्तक पर हाथ रक्खा। उसे अपना उत्तराधिकारी घोषित किया। अनंगलेखा को समीप बुलाकर, उसके चरणों पर लिटा दिया। खंख की ओर देखा। उसने घुटनों को टेक कर सिर झुकाया और स्वामि-भक्ति की शपथ खाई। अब राजा के प्राण निकल रहे थे। उन्हें विश्वेश भट्ट के शब्द स्मरण आते थे—'तुम्हारा उत्तराधिकारी........इस........कन्या का.. पति...होगा।'

भला रेख पर मेख कौन मार सकता है? ग़रीब से ब्याह करने से क्या होता है? दुर्लभवर्द्धन के भाग्य में राज का योग था। अनंगलेखा उसकी रानी थी; किन्तु पत्नी नहीं।

बम-वर्षक वायुयान

लेखक, श्रीयुत श्रीनिधि द्विवेदी

नभ की छाती को चीर चला गति-हुङ्कारों से वायुयान,
फूँकता नगर घर-वार बढ़ा भर फूत्कारें जाज्वल्यमान!
दूरी को दौड़ कुचलता-सा
विध्वंस विनाश उगलता-सा,
सुख-शान्ति और सीमाओं को—
कर चकनाचूर निगलता-सा।
सर-सर से शरमाया समीर,
छिप गये जलद जल-जल अधीर,
नभ थर्राया काँपी पृथ्वी—
खौलने लगा-सा सिन्धु-नीर।
मिटने का और मिटाने का लेकर साहस मन में महान्,
संदेश प्रलय के दुहराता आता विध्वंसक वायुयान।

ख़तरे का बिगुल बजा, भय से—
घर-घर से गूँज उठा घर घर,
छाती में छिपा दुधमुँहों को—
मातायें काँप उठीं थर-थर।
बम बरसे वज्राघातों-से
उत्पातों उल्कापातों-से,
गृह महल ढहे जल उठे, मार्ग—
रुक गये अग्नि-संघातों से।
हलचल, कोलाहल, उथल-पुथल, चीत्कारें, रोदन, त्राण! त्राण!
वेधता शान्ति का वक्षःस्थल आया बम-वर्षक वायुयान।

आगई बाढ़ सत्ता के मद—
वैभव के नद उफ़नाने को,
मानव ही तो कटिबद्ध हुए—
मानवता के दफ़नाने को।
बम का उत्तर गोलों से दे—
तोपों ने धधकाया विरोध;
जनता का सेना का विनाश
सत्ताधीशों का क्षोभ-क्रोध।
छोड़ता धुएँ की धारा-सी कर मुख नीचा तज धैर्य प्राण,
जुड़ गया दर्शकों का मेला गिर पड़ा टूट कर वायुयान!

विश्व में दीर्घ जीवन तथा सन्तानोत्पत्ति की समस्या

लेखक, श्रीयुत परिपूर्णानन्द वर्म्मा

संसार में उत्पत्ति अर्थात् जन-संख्या की वृद्धि किस प्रकार हो रही है और हर प्रधान देश के नागरिकों की संख्या बढ़ाने में वहाँ की मातायें कितना भाग ले रही हैं, यह सब विषय बहुत ही रोचक है और इसकी रोचकता उस समय और भी बढ़ जाती है जब हम यह तुलना करते हैं कि हमारी सन्तान तथा हमारी उम्र का औसत क्या है। हम और कितने वर्ष जीवित रहेंगे, यह प्रश्न केवल फलित ज्योतिष का ही नहीं है, किन्तु इसको गणितज्ञ भी हल करता है और इसके लिए उसे फलित के ज्योतिषी से ज़्यादा छान-बीन करनी पड़ती है।

ईश्वर ने सृष्टि की रचना बहुत ही अच्छे ढंग से की है। यदि मनुष्य ईश्वरीय नियमों के अनुसार चले तो उसको कभी कोई परेशानी न उठानी पड़े। लेकिन जहाँ मनुष्य ईश्वर के नियमों को भङ्ग करता है, वहीं समस्यायें उठ खड़ी होती हैं। यह तो पाठक जानते ही हैं कि आज योरप के बहुत-से देशों में पिछले महासमर के बाद से स्त्रियों की संख्या पुरुषों से कहीं ज़्यादा हो गई है, जिस कारण फ़्रांस, जर्मनी, इँग्लेंड जैसे देशों में विकट सामाजिक दुरवस्था उत्पन्न हो गई है। पर उत्पत्ति के साधारण नियम के अनुसार ईश्वर ने दोनों को आवश्यकतानुसार ही पैदा होने का नियम रक्खा है। राष्ट्र-परिषद् की रिपोर्ट के अनुसार प्रतिवर्ष ५१.५ प्रतिशत बालक और ४८.५ प्रतिशत बालिकायें पैदा होती हैं। कन्याओं की उत्पत्ति ४८.२ से ४९.१ प्रतिशत से अधिक नहीं होती। इसलिए हर एक देश की आवश्यकता पर लड़के-लड़की का हिसाब बैठ जाता है। पर अगर कोई राज्य लड़कर अपने लड़के कटा ही डाले तो फिर भगवान् क्या कर सकते हैं?

अस्तु, हिसाबों को जोड़कर निश्चित संख्या तक पहुँच जाने का काम बड़ी जोखिम का है। इस हिसाब-किताब में अमरीका की मेट्रोपोलिटन बीमा कम्पनी जैसी बड़ी कम्पनियों ने काफ़ी मेहनत की है। असल में उनके परिश्रम से अमरीका के संयुक्त राज्यों की 'जर्नल आव दि अमेरिकन स्टैटिस्टिकल असोसिएशन जैसी पत्रिकाओं ने काफ़ी फ़ायदा उठाया है और राष्ट्र-परिषद् के गणितज्ञों को भी काफ़ी परिश्रम से बच जाना पड़ा है। फिर भी हर एक देश की संख्यायें एकत्र करने का अपना नया ढंग, नया विचार है। जो अपनी जितनी ज़रूरत समझता है, उतना ही काम करता है। उदाहरण के लिए इँग्लेंड को लीजिए। वहाँ बच्चा पैदा होने पर माता की उम्र नहीं लिखी जाती। इसलिए किस उम्र की माताओं के कितने बच्चे पैदा होते हैं, इसका औसत निकालने के लिए जनगणना की रिपोर्ट से बहुत कुछ अन्दाज़ लगाना पड़ता है। जर्मनी में गर्भाधान होते ही उम्र लिख ली जाती है, पर गर्भ गिर गया या बच्चा पैदा हुआ, इसका अन्दाज़ मुश्किल से मिलता है। अमरीका के संयुक्त राज्यों में कुछ स्थानों में उम्र आदि लिखी जाती है और उसी से देश भर का अनुमान कर लिया जाता है। इस प्रकार वहाँ का हिसाब भी पक्का नहीं कहा जा सकता। बहुत-से ऐसे देश हैं, जहाँ 'उत्पत्ति' में मरा हुआ बच्चा अगर पैदा हो तो वह भी लिख लिया जाता है। कई देशों में जुड़वाँ बच्चा पैदा होने पर एक ही गिना जाता है।

आँकड़ों की भूल-चूक

इसलिए इस विषय पर क़लम उठानेवाले को पहले ही माफ़ी माँग लेनी पड़ती है। उसकी दी हुई संख्यायें रुपये में चौदह आने से अधिक सही नहीं हो सकतीं और उनमें भी कुछ छूट हो सकती है। पर इसका अर्थ यह नहीं है कि छान-बीन करने में कोई कमी की गई है या जानबूझ-कर किसी प्रकार की भूल रहने दी गई है। इन सभी त्रुटियों को ध्यान में रखते हुए एक निश्चित प्रणाली के अनुसार संख्यायें एकत्र की गई हैं। सभी देशों की एक

ही साल की संख्यायें उपलब्ध नहीं हैं, इसलिए यथाशक्य निकटतम वर्ष की संख्यायें लेनी पड़ी हैं। पर कहीं-कहीं तुलना में कठिनाई ज़रूर पड़ेगी।

सन्तान उत्पन्न करनेवाली माताओं की उम्र में भी भेद है। हमने उम्रों के अलग टुकड़े बाँट दिये हैं। बहुत-सी पैदायश काफ़ी बूढ़ी माताओं से अथवा निरी अबोध कुमारियों से होती है। अतएव उनकी उम्रों के आगे एक प्रश्नवाचक चिह्न (?) देकर ही उत्पत्ति की संख्या बतला दी गई है। हमने 'बीस' वर्ष तक की माताओं का जो हिसाब रक्खा है उससे तात्पर्य १५ से १९ वर्ष तक की स्त्रियों से है। पन्द्रह से पहलेवाली उम्र की मातायें ४५ से ऊपर बूढ़ी स्त्रियों के साथ शामिल कर दी गई हैं।

उत्पादन-शक्ति

नीचे कुछ देशों की माताओं की, उम्र के हिसाब से, उत्पादन-शक्ति दी जाती है, अर्थात् वे कितने बच्चे पैदा कर सकती हैं या करती हैं। हर एक उम्र की कुल १००० स्त्री पीछे औसत—

देश	अवधि	उम्र २०	२०।२४	२५।२९	३०।३४	३५।३९	४०।४४	४५ x
संयुक्तराज्य (अमरीका)	१९२९-३१	४३.३	१२३.१	१२०.१	८८.२	५६.५	२१.९	२.३
जापान ..	१९३०	३१.५	२००.२	२४८.६	२१७.०	१६३.१	७१.६	१०.३
जर्मनी ..	१९३४	२७.५	१०९.०	१२७.४	८७.१	४९.८	...	११.९...
फ़्रांस ..	१९३५	२७.४	१२३.६	११८.९	७८.५	४३.७	१५.६	१.४
इटली ..	१९३५	१९.९	८४.५	१६०.४	१३८.१	१०३.७	४७.०	५.०
इँग्लेंड-वेल्स ..	१९३१	१२	७७.०	११२.०	९४.०	६१.०	२४.०	...
पोलेंड ..	१९३१-३२	२४.७	१४५.३	१८९.३	१६४.०	११७.८	५३.४	१०.४

इन संख्याओं के योग से पाठकों को दो बातें मालूम होंगी—

फ़ी १००० औरत पीछे सन्तानोत्पत्ति का योग

१—संयुक्तराज्य (अमरीका)	.. २,२७७
२—जापान	.. ४,७१२
३—जर्मनी ..	.. २,०८१
४—फ़्रांस ..	.. २,०४५
५—इटली ..	.. २,७९३
६—इँग्लेंड-वेल्स	.. १,९२०
७—पोलेंड ..	.. ३,५२५

पहली रोचक बात यह है कि इँग्लेंड में बच्चे बहुत कम पैदा हो रहे हैं। दूसरी बात यह कि फ़्रांस की उत्पत्ति जर्मनी से भी कम है। संयुक्तराज्य (अमरीका) के आँकड़े केवल गोरों की सन्तानों के हैं। वहाँ के कालों की उत्पत्ति का औसत २,२३९ है। पर गोरों में, ज्यों ज्यों उम्र बढ़ती जाती है, कालों की अपेक्षा उत्पत्ति बढ़ती जाती है। बीस वर्ष से कम उम्रवाली गोरी माताओं की सन्तान-उत्पत्ति का औसत ४३.३ है और ४० वर्ष से ऊपर २१.९ है। परन्तु काली माताओं की २० वर्ष से कम उम्र में उत्पत्ति का औसत ८४.९ और ४० वर्ष से ऊपर २०.१ है। इससे यह प्रकट होता है कि वहाँ काले लोगों में शीघ्र विवाह की प्रथा है। भारतवर्ष की संख्यायें हमें नहीं मिल सकीं, चीन की संख्याओं का मिलना ही असम्भव है।

ऊपर लिखे सात देशों के बारे में एक और रोचक बात जान लेनी चाहिए। जितनी सन्तानें उत्पन्न होती हैं, उनमें कितनी लड़कियाँ होती हैं जिनसे भावी सन्तान उत्पन्न होगी। इस संख्या को अँगरेज़ी में 'रिप्रोडक्शन-रेट' कहते हैं और इसकी पूरी यथार्थता के विषय में अर्थ-पंडितों में काफ़ी मतभेद है।

भावी माताओं की उत्पत्ति—फ़ी १००० माताओं-द्वारा

	सन्	
१—संयुक्तराज्य (अमरीका)	१९२९।३१	१,१०६
२—जापान ..	१९३०	२,२९५
३—जर्मनी ..	१९३४	९७९ (?)
४—फ़्रांस ..	१९३५	१,००३
५—इटली ..	१९३५	१,३६१
६—इँग्लेंड-वेल्स ..	१९३१	९३७ (?)
७—पोलेंड ..	१९३१।३२	१,७०५

जर्मनी और इँग्लेंड की संख्याओं में कुछ सौ की भूल मालूम होती है, यद्यपि रिपोर्टों में यही दिया है। जो हो, इसके पहले पूरी उत्पत्ति का जो औसत हमने दिया है उससे मिलान करने पर अधिकांश वही औसत निकलेगा जिसका हम पहले ज़िक्र कर आये हैं।

इस लेख से यह साफ़ मालूम हो जाता है कि सृष्टि के विकास के लिए क्या हो रहा है। गर्भ-निरोधक ओषधियों की बाढ़ तथा विद्वानों-द्वारा सन्तानोत्पत्ति रोकने के तरीक़ों की काफ़ी छानबीन होते रहने पर भी संसार में उत्पत्ति और उत्पत्ति करनेवाली माताओं की किस प्रकार बढ़ती हो रही है, यह पाठक अच्छी तरह समझ जायँगे।

हम कितने वर्ष तक ज़िन्दा रहेंगे ?

अब यह विचार करना है कि यदि संसार में युद्ध-जैसी कोई परिस्थिति न आ पड़े तो देश की वर्तमान परिस्थिति में वहाँ के रहनेवालों की उम्र का औसत क्या होगा। इसकी जाँच से यह भी पता चल जायगा कि कौन देश कितना स्वस्थ है या अमीर है और कहाँ की जलवायु दीर्घायु के लिए हानिप्रद और ग़रीबी दीर्घायु का शत्रु है।

इस विषय में जो सूचनायें प्राप्त हैं उनके आँकड़ों की यथार्थता के बारे में केवल इतना ही कहा जा सकता है कि उनके संग्रह करने में बड़े बड़े विद्वानों ने माथा-पच्ची की है। कुछ तो राष्ट्र-परिषद् की रिपोर्ट के आधार पर हैं, कुछ मेट्रोपोलिटन इंश्योरेन्स कंपनी (अमरीका) के आधार पर और कुछ लन्दन स्कूल आफ़ इकोनोमिक्स के डिपार्टमेंट आफ़ डिमोग्रोफ़ी की छानबीन पर निर्भर करते हैं। अन्त में हम 'जीवन की आशा' के जो आँकड़े दे रहे हैं उनका यह तात्पर्य है कि लिखी हुई उम्र के स्त्री-पुरुष कितने समय तक और जीने की उम्मीद करें। पर इस औसत से लोग घबराकर अपनी परलोक-यात्रा की तैयारी न करने लगें। ईश्वर करे, ये संख्यायें उनके लिए ग़लत ही साबित हों।

इन संख्याओं से बहुत-सी रोचक बातें मालूम होती हैं। एक वर्ष से कम उम्रवाले बच्चों की उम्र का अन्दाज़ लगाना कठिन होता है। उनके वातावरण, स्वास्थ्य-सम्बन्धी परिस्थितियों का ध्यान रखना पड़ता है। ऐसी दशा में उनकी उम्र का औसत कम बैठता है।

दूसरी रोचक बात यह है कि उम्र का अन्दाज़ लगाने से यह साफ़ ज़ाहिर होता है कि भारत को छोड़कर अन्य सभी प्रमुख देशों में स्त्रियाँ पुरुषों से अधिक दिन तक जीवित रहती हैं। स्त्रियों के दीर्घ जीवन का कारण बहुत कुछ बतलाया जा सकता है, पर यहाँ उसके लिए स्थान नहीं है। इस प्रकार यह मालूम होता है कि एक ओर युद्ध इत्यादि के कारण, दूसरी ओर प्राकृतिक नियम के अनुसार भी पुरुष कम और स्त्रियाँ अधिक होती जा रही हैं, यद्यपि लड़कियों की अपेक्षा लड़के ज़्यादा पैदा होते हैं।

तीसरी महत्त्वपूर्ण बात यह है कि भारत में बचपन से लेकर चालीस वर्ष की उम्र तक पुरुषों की अपेक्षा स्त्रियाँ ज़्यादा मरती हैं। इसका कारण दरिद्रता, बच्चा पैदा होने के समय का कष्ट, कुप्रबन्ध, रोग, मकानों की गन्दगी इत्यादि ही है। लेकिन ज्यों-ज्यों बुढ़ापा आता जाता है, पुरुष ज़्यादा मरते हैं, स्त्रियाँ कम। बूढ़े से बुढ़िया ज़्यादा जीती है। इसी कारण हमारे देश में बूढ़ी विधवाओं की बहुत बड़ी संख्या है।

अब चौथी और सबसे महत्त्वपूर्ण बात सुनिए। आपके सम्मुख १४ देशों के आँकड़े हैं। उनमें दक्षिण-अफ़्रीका जैसे काले देश और आयर्लेंड जैसे टापू भी शामिल हैं। आपको यह देखकर दुःख, आश्चर्य, क्षोभ और अपने देश की दरिद्रता पर जो हमारी ग़ुलामी का प्रसाद है, अत्यन्त लज्जित होना पड़ेगा कि सबसे कम उम्र हमारी है। इस दुर्लभ नरतन को पाकर हम उसे सबसे जल्दी छोड़ देते हैं। हम जीवन का पूरा आनन्द भी नहीं ले पाते कि हमको परलोक से बुलावा आ जाता है। इधर कुछ समय से हमको अपने इस ह्रास और उसके कारणों की ओर स्वयं ध्यान देकर अपना क़दम आगे बढ़ाना पड़ा है। उसका परिणाम भी निकला है। सन् १९११ के उम्र के औसत में और १९३९ के औसत में तीन या ढाई वर्ष का फ़र्क़ पड़ गया है—वृद्धि हुई है। बच्चों की मृत्यु की तादाद भी घटी है। अगर देश में स्वास्थ्य सुधारने की धुन सवार हो जाय तो भारतमाता का बड़ा कल्याण हो।

जीवन की आशा

[नीचे की संख्यायें दशमलव में हैं। वर्ष के बाद महीना बतलाने के लिए १२ (महीने) को १०० से भाग देकर उसको '.' के रूप में दिया है।]

देश	वर्ष	स्त्री तथा पुरुष	उम्र ०	१	१०	२०	३०	४०	५०	६०	७०
मिस्र ..	१९१७-२७	पु०	३१	.	३८.०६	३२.९२	२७.८०	२२.८२	१८.०७	१३.६५	९.६३
		स्त्री	३६	.	४१.६४	३५.७७	३०.०४	२४.५३	१९.३६	१४.५८	१०.२७
दक्षिण-अफ़्रीका	१९२५-२७	पु०	५७.७८	६१.४०	५५.१७	४६.२७	३७.८७	२९.७८	२२.१७	१५.३१	९.५४
		स्त्री	६१.४८	६४.५८	५८.३३	४९.३४	४०.७७	३२.४७	२४.२८	१६.७६	१०.४२
कनाडा ..	१९३०-३२	पु०	५८.९६	..	५७.६५	४८.७४	४०.२४	३१.६०	२३.३३	१५.९६	९.७१
		स्त्री	६०.७३	..	५८.६७	४९.३६	४१.२८	३२.९२	२४.६९	१७.०५	१०.५३
*संयुक्तराज्य (अमरीका)	१९३५	पु०	६०.७२	६३.१५	५५.६५	४६.५७	३७.८७	२९.४३	२१.६१	१४.७३	९.२१
		स्त्री	६४.७२	६६.५१	५८.८९	४९.६२	४०.८०	३२.१५	२३.८५	१६.२८	१०.०६
भारत ..	१९३१	पु०	२६.९१	३४.६८	३६.३८	२९.५७	२३.६०	१८.६०	१४.३१	१०.२५	६.३५
		स्त्री	२६.५६	३३.४८	३३.६१	२७.०८	२२.३०	१८.२३	१४.६५	१०.८१	६.७४
जापान ..	१९२६-३०	पु०	४४.८२	५१.०७	४७.९३	४०.१८	३३.४३	२५.७४	१८.४९	१२.२३	७.४३
		स्त्री	४६.५४	५२.१०	४९.१८	४२.१२	३५.९८	२९.०१	२१.६७	१४.६८	८.८८
जर्मनी ..	१९३२-३४	पु०	५९.८६	६४.४३	५७.२८	४८.१६	३९.४७	३०.८३	२२.५४	१५.११	९.०५
		स्त्री	६२.८१	६६.४१	५९.०९	४९.८४	४१.०५	३२.३३	२३.८५	१६.०७	९.५८
फ़्रांस ..	१९२८-३३	पु०	५४.३०	५८.६३	५२.०६	४३.३०	३५.४२	२७.६२	२०.३३	१३.७६	८.२९
		स्त्री	५९.०२	६२.५३	५५.९५	४७.४०	३९.५४	३१.३७	२३.३९	१५.९४	९.५८
इँग्लेंड और वेल्स	१९३६	पु०	६०.१३	६३.३८	५६.४५	४७.३१	३८.५४	२९.७८	२१.५५	१४.४६	८.६१
		स्त्री	६४.३९	६६.७९	५९.७४	५०.५५	४१.७५	३२.९२	२४.४१	१६.६२	१०.०८
स्काटलेंड ..	१९३०-३२	पु०	५६.०	६०.७	५४.९	४६.०	३७.४	२९.१	२१.३	१४.१	८.४
		स्त्री	५९.५	६३.१	५७.२	४८.३	३९.८	३१.४	२३.३	१५.९	९.६
सोवियट रूस (योरप में)	१९२६-२७	पु०	४१.९३	५१.४०	५१.६५	४३.२४	३५.६५	२८.०२	२०.९९	१४.८५	९.६५
		स्त्री	४६.७९	५५.४६	५५.७२	४७.३६	३९.७५	३२.१२	२४.४१	१७.०७	१०.९६
आस्ट्रेलिया ..	१९३२-३४	पु०	६३.४८	६५.४९	५८.०२	४८.८१	३९.९०	३१.११	२२.८३	१५.५७	९.६०
		स्त्री	६७.१४	६८.६७	६१.०२	५१.६७	४२.७७	३४.०४	२५.५८	१७.७४	१०.९८
इटली ..	१९३०-३२	पु०	५३.७६	५९.७१	५५.४६	४६.७५	३८.५८	३०.३९	२२.४५	१५.१६	९.०५
		स्त्री	५६.००	६१.३२	५७.१५	४८.४९	४०.४१	३२.१४	२३.८९	१६.१३	९.६१
आयरलेंड ..	१९२५-२७	पु०	५७.३७	६१.१५	५५.२०	४६.४०	३८.३९	३०.४३	२२.६७	१५.७५	१०.०२
		स्त्री	५७.९३	६०.८३	५४.९२	४६.३६	३८.६०	३०.८३	२३.१९	१६.३६	१०.७=

* संयुक्तराज्य (अमरीका) की गणना केवल गोरों की है और उसमें कालों का टेक्सस प्रान्त नहीं शामिल है।

आधुनिक हिन्दी-कवि और प्रकृति

लेखक, श्रीयुत विश्वम्भर शांडिल्य, एम० ए०

एक समय वह था जब कभी आत्मरक्षा के लिए और कभी ऐसी नायिकाओं के लिए जिनकी बाल्यावस्था में ही शशि उनके निकट बैठकर अमृतरस पीता था, लोहा बजता था, और प्रकृति रक्त से रँग जाती थी, एक समय वह था जब 'बढ़ई' को देखकर तरुवर डोलने लगते या रोकर बारह मास गँवा दिये जाते; एक समय वह था जब गिरि बूँद-आघात उसी प्रकार सहते, जैसे खल के वचनों को संत सहते हैं या 'गुपाल' के साथ तो प्रकृति प्यारी लगती, पर बिन गुपाल के जमुना का बहना, खगों का बोलना, कमलों का फूलना, अलियों का गुंजारना व्यर्थ लगता था; और एक समय वह भी आया जब 'कीर, कमल, कोयल, कुरंग, अहि, कपि, सिंह, मराल' एक ही डाल पर लटका दिये गये। आज वह समय है जब यह माना जाने लगा है कि प्रकृति का भी अपना अस्तित्व है, उसके वस्त्रों में ही आकर्षण नहीं, हृदय में भी मधु है, वह दूती ही नहीं, अभिसारिका भी है। आज का कवि 'उषा के गाल' चूमने का साहस करता है और अपने उपवन में चंपा, कुंद, जुही, कमल के साथ डेफ़ोडिल, डेज़ी, पैंज़ी, ट्यूलिप में खिलाता है। आधुनिक हिन्दी-कविता में जो सम्मानित पद प्रकृति को मिला है, वह अपने जिस निखरे प्यारे रूप में हिन्दी-प्रेमियों के सामने आई है, उसका बहुत कुछ श्रेय निःसंदेह श्री सुमित्रानन्दन पन्त को प्राप्त है।

'पन्त' के हृदय को प्रकृति ने बड़े वेग से आकर्षित किया है। जिसका जन्म ही रम्य प्राकृतिक दृश्यों से पूर्व-प्रदेश में हुआ हो, जो अपने शैशव से ही सुमनों, निर्झरों, बादलों, पर्वतों के साहचर्य में रहा हो, उसके उर में प्रकृति अपना सदन बनायेगी ही, वह प्रकृति के मोहक रूप से प्रभावित होगा ही। उस प्रेम के विरोध में स्रष्टा की अन्य शक्ति भी जब अपना मधुर मायाजाल लेकर खड़ी होती है, जब प्रेम में बँटवारा चाहती है, तब कवि सकुचता है। वह अपनी प्यारी वस्तु को पकड़े रहता है, नवीन आकर्षण के सम्मुख आत्म-समर्पण नहीं करता—

छोड़ द्रुमों की मृदु छाया
तोड़ प्रकृति से भी माया
बाले! तेरे बाल-जाल में कैसे उलझा दूँ लोचन।
भूल अभी से इस जग को।

[श्रीमती महादेवी वर्मा]

वर्ड्सवर्थ ने अपनी एक कविता में लूसी नाम की एक बालिका को प्रकृति की संरक्षकता में छोड़ा है। प्रकृति के संसर्ग में उसके सौंदर्य का, उसके हृदय का विकास होता है। प्रकृति अपने अकृत्रिम ढंग से उसका लालन-पालन करती है। पर्वत और मैदान, पृथ्वी और आकाश, घाटी और कुंजों के दृश्यों के साँचे में उसका मन ढालती है। फिर स्वभावतः ही—

The stars of midnight shall be dear
To her; and she shall lean her ear
In many a secret place
Where rivulets dance their wayward
round,
And beauty born of murmuring sound
Shall pass into her face.
—*The Education of Nature*

[श्री सुमित्रानन्दन पन्त]

अर्थात् उक्त वालिका को निशीथ के नक्षत्र प्रिय होंगे। वह अनेक एकांत स्थानों में जहाँ लघु नद नृत्य करते हुए चक्कर काटते हैं अपने कान लगावेगी। उन नदों की कल-कल-ध्वनि से जो सुषमा उत्पन्न होगी वह उसके आनन में समा कर फूट निकलेगी।

पन्त जी पर भी प्रकृति का ऐसा ही स्नेह विखरता रहा है। इसे कवि ने 'वीणा' में स्वीकार किया है।

पन्त जी ने प्रकृति को चेतना प्रदान की है। कवि ने उसके वाह्यरूप को ही नहीं, प्राणों को भी पहचाना है। उसकी प्रकृति मानवीय क्रिया-कलापों के अनुकरण की क्षमता भी रखती है। पन्त जी के पल्लव विश्व पर विस्मित चितवन डालते हैं। उनका पर्वत सुमन-दृगों से अवलोकन करता है, उनका उपवन फूलों के प्यालों में अपना यौवन भर भर कर मधुकर को पिलाता है, उनके मेघों के बाल मेंमनों-से गिरि पर कुदंकते हैं, उनकी लहरें किरणों के हिंडोल पर नाचती हैं, विटपी की व्याकुल प्रेयसी छाया बाँह खोलकर कवि को गले लगाने का सामर्थ्य रखती है, उनकी दृष्टि में दशमी का शशि अपने तिर्यक् मुख को लहरों के घूँघट से झुकझुककर रुकरुककर मुग्धा-सा दिखलाता है, उनका मलयानिल उर्वी के उर से तंद्रिल छायांचल सरका देता है।

पर प्राकृतिक जगत् में मानवीय भावों को भरने और उस जगत् को मानवीय क्रीड़ा-कौतूहल से पूर्ण करने में जो सफलता निराला जी को 'जुही की कली' में मिली है वह भी प्रशंसनीय है। रीतिकालीन कवियों की इस दुर्बलता को पकड़कर कि उन्होंने अपनी कविता में शृंगार की भरमार की है, समझदार से समझदार साहित्यिकों ने उनके विरुद्ध जो मन में आया, कह डाला। एक ओर 'बावरी जो पै कलंक लग्यौ तौ निसंक ह्वै क्यों नहिं अंक लगावती'—पर बिगड़ेंगे भी और दूसरी ओर आधुनिक हिन्दी-कविता को रूखा बतावेंगे और कहेंगे, 'साहब, आजकल की कविता में भाव तो ऊँचे होते हैं, पर पुराने कवियों का-सा रस नहीं मिलता।' नायिकाओं के वर्णन पढ़ने से उनकी दृष्टि मलिन, उर विकृत भी होगा और जो नीरस वाला को छोड़ प्रकृति को पकड़ेंगे उनसे एक दिन में रस भी निचुड़वायेंगे। पर निराला जी की 'जुही की कली' चतुराई से भरी है। उन्होंने चाँदनी से धुली हुई वासन्ती निशा में स्नेह-स्वप्न-मग्न, सुहागभरी, अमल-कोमल-तनु-तरुणी जुही की कली को विजन-वन-वल्लरी पर सुला दिया। कुंज-लता-पुंजों को पारकर नायक पवन खिंच आया और अपना आगमन जताने के लिए उस कली के कपोल चूम लिये। जगाने का कितना कोमल, कितना मधुर ढंग है! पर नायिका निद्रालस-वंकिम-विशाल नेत्र मूँदे रही; विहारी की 'मैं मिस ह्वै सोयौ समुझि मुहुँ चूम्यौ ढिग जाइ, हँस्यौ, खिसानी, गल गह्यौ, रही गरें लपटाइ' तक बात नहीं पहुँची; अतः उस निर्दय नायक ने निपट निठुराई की, झोंके-झड़ियों से सुन्दर सुकुमार देह सारी झकझोर डाली और गोरे गोल कपोल मसल दिये। कली हँस पड़ी, खिल पड़ी। निर्जन प्रदेश में जुही की कली के साथ पवन की इस मधुर गुस्ताखी पर कौन सन्त अपने नेत्र बन्द कर सकता है? कवि ने सोमरस का नाम लेकर मदिरा पिला दी। शब्दों की तूलिका से जीते-जागते चित्र अंकित कर दिये और वर्णन में गति भरकर एक नाटकीय प्रभाव उत्पन्न कर दिया, रस दे दिया।

चित्र उपस्थित करने में पन्त जी भी सिद्धहस्त हैं। पर्वत, फूल और सरोवर तो सभी देखते हैं, पर फूलों की आँखों से तालाब के दर्पण में अपने गर्वीले शरीर को निहारता हुआ पर्वत कितना महान् प्रतीत हो सकता है—अपने में पूर्ण इस दृश्य तक कम लोगों की दृष्टि जाती है—

पावस-ऋतु थी, पर्वत-प्रदेश,
पल पल परिवर्तित प्रकृति वेश।
मेखलाकार पर्वत अपार
अपने सहस्र दृग-सुमन फाड़।
अवलोक रहा है बार बार
नीचे जल में निज महाकार।
जिसके चरणों में पला ताल
दर्पण-सा फैला है विशाल!!

आधुनिक हिन्दी-कविता में प्रकृति को लेकर बहुत ही सुन्दर अलंकार-विधान हो रहा है।

'प्रसाद' जी का यह रूपक भी जिसकी चर्चा प्रायः होती रहती है, कितना स्पष्ट और पूरा उतरा है—

बीती विभावरी जाग री।
अंबर-पनघट में डुबो रही तारा-घट ऊषा नागरी।

श्रीमती महादेवी वर्मा ने प्रकृति का वर्णन बहुत कुछ भावों की लपेट में किया है। वे अनिल के आगमन पर विभावरी को मोतियों के सुमन-कोष निछावर करने का आदेश इसलिए करती हैं कि वह देश देश घूमकर प्रिय का सन्देश लाया है। महादेवी एक अदृश्य छलिया की उपासिका हैं। उनका उपास्य मन्दिर की मूर्तियों में नहीं बँध गया, ब्रह्माण्ड में व्याप्त है, यद्यपि वह हृदय में बाँधा जा सकता है। उनके प्रियतम की स्थिति 'जिगर' मुरादाबादी की प्रेम की व्याख्या की भाँति है—सिमटे तो दिले आशक़ फैले तो ज़माना है। प्रकृति उसका ही रूप है। इधर-उधर बिखरे हुए प्रकृति के अनेक रूपों को किसी एक शक्ति के अंग-प्रत्यंग समझना मस्तिष्क की उच्च स्थिति की बात है। रवि बाबू ने 'बलाका' पुस्तक की 'चंचला' कविता में यह कल्पना की है कि एक महाशक्ति उद्दाम वेग से निरन्तर बढ़ती चली जा रही है, जिससे जग-जीवन का विकास होता है। इस कल्पना से नक्षत्रों को, अन्धकार को, हरीतिमा को, विद्युत् को, पुष्पों को दूसरा ही रूप मिला है। वह शक्ति उन्मत्त भाव से अभिसार कर रही है, अतः वक्षहार तीव्र वेग से हिल रहा है, इसी से नक्षत्रों की मणियाँ हार से अलग होकर बिखर गई हैं, अन्धकार उसी के खुले बाल हैं, बिजली उसी के कुंडल हैं, कम्पित तृण नहीं हैं—उसी का आकुल अञ्चल खिसक पड़ा है; उसी की ऋतुओं की थाली से जुही, चम्पा, बकुल, पारुल के पुष्प पथ में गिर पड़े हैं। उर्दूवाले भी कभी कभी यद्यपि उनकी दृष्टि लौकिक रहती है, अभ्र में और बिजलियों की लहर में किसी को बाल बिखराते हुए और अँगड़ाइयाँ लेकर उठते हुए देखते हैं।* इसी प्रकार ये आलोक-तिमिर, यह सागर-गर्जन, यह झंझा, ये मेघ, ये रवि-शशि, ये तारक, यह चपला, यह इन्द्र-धनुष, ये हिम-कण, क्या किसी एक शरीर पर नहीं सजे हुए हैं? प्रकृति में महादेवी विराट्-स्वरूप का आभास पाकर चकित-थकित हो जाती हैं। उन्हें प्रतीत होता है मानो कोई शक्ति अप्सरा-सी नृत्य-निरत है—

[श्रीयुत सूर्यकान्त त्रिपाठी, निराला]

अप्सरि तेरा नर्तन सुन्दर!
आलोक-तिमिर सित असित चीर,
सागर-गर्जन रुनझुन मँजीर;
उड़ता झञ्झा में अलक-जाल;
मेघों में मुखरित किंकिण-स्वर!
रवि शशि तेरे अवतंस लोल;
सीमन्त-जटित तारक अमोल;
चपला विभ्रम, स्मिति इन्द्रधनुष,
हिमकण बन झरते स्वेद निकर!

इस विराट् रूप पर महादेवी चकित ही नहीं, मोहित भी हैं, और जब वे प्रकृति को उस परमपुरुष के स्वागत के लिए सजी हुई देखती हैं तब वे अपनी सुप्त आत्मा को जगाती हैं और अभिसार के लिए तत्पर करती हैं—

शृंगार कर ले री सजनि!
नव क्षीरनिधि की उर्मियों से रजत-झीने मेघ सित;
मृदु फेनमय मुक्तावली से तैरते तारक अमित;
सखि सिहर उठती रश्मियों का
पहिन अवगुंठन अवनि!

इसी प्रकार वे अपने प्राण के दीपक को निरन्तर जलते रहने के लिए दृढ़ करती हैं और उसकी दृष्टि को प्रकृति के उन अनेक क्षेत्रों में घुमाती हैं जहाँ जलना ही जलना है। "नभ में असंख्य दीप नित्य जलते हैं, सागर का उर जलता है, बादल अपने हृदय में विद्युत् की ज्वाला लिये फिरते हैं, द्रुम के कोमलतम हरित

*अभ्र में और बिजलियों की लहर में उठा कोई,
बाल बिखराता हुआ, अँगड़ाइयाँ लेता हुआ।
(अजीज़ लखनवी)

अंग अग्नि को हृदयङ्गम करते हैं, यहाँ तक कि वसुधा के जड़ अन्तर में भी तापों की हलचल बन्द है।

बहुत पुराने समय से अलंकारों की योजना-द्वारा कवि लोग नायक-नायिकाओं के शरीर को प्रकृति के रम्य उपादानों से विभूषित करते रहे हैं। यह ढंग कभी भी पुराना न होगा। अब भी निराला जी की शूर्पणखा के फूल-दल-तुल्य कपोल, बिजली-सी हँसी, कपोत-सा कंठ, वल्ली-सी बाहु, सरोज से कर दिखाई देते हैं; अब भी मैथिलीशरण जी की उर्मिला के घनपटल-से केश, विद्युत्-से वदन की झाँकी मिल सकती है; अब भी 'बच्चन' जी ने जिसके चरणों की पग-ध्वनि पहचानने का दावा किया है उसके तलुए नन्दनवन की मेहँदी से लाल, उन पर उषा की किरणों को महावर, नक्षत्र-से उन चरणों के नख हैं। उपाध्याय जी की राधा का मुख राकेन्दु-सा, दृग मृग-दृग-से हैं। अब भी 'पन्त' जिस पर मुग्ध हैं उसकी उषा-सी सुन्दर छवि, नववसन्त-सा उसका शृंगार, तारों का हार, सूर्य-शशि का किरीट, मेघों-से केश, मलयानिल जैसी मुखवास है। 'प्रसाद' जी भी इसी प्रकार कहीं देव-कामिनी के नयनों से नील नलिनों की सृष्टि कराते, कभी बालों से घिरे मुख में पश्चिम गगन में श्याम घन को भेदते हुए अरुण-रवि-मंडल की कल्पना करते हैं, पर प्रसाद जी की बुद्धि प्रकृति के क्षेत्र में कभी विचित्र रंग तैयार करती, कभी विचित्र वन में विचित्र फूल खिलाती है—

(१) चंचला स्नान कर आवे चन्द्रिका पर्व में जैसी
उस पावन तन की शोभा आलोक मधुर थी ऐसी।
(आँसू)

(२) नील परिधान बीच सुकुमार
खुल रहा मृदुल अधखिला अंग,
खिला हो ज्यों बिजली का फूल
मेघ-वन बीच गुलाबी रंग। (कामायनी)

पर प्रकृति को लेकर 'प्रसाद' जी की अपनी एक विशेषता और है, जिससे वे अन्य आधुनिक हिन्दी-कवियों से थोड़ा अलग खड़े होते हैं। उन्होंने एक अभाव की पूर्ति की है। अन्य कवियों ने प्रकृति का कमनीय स्वरूप देखा है, प्रसाद जी ने भीषण भी। रम्य रूप जितना मनोमुग्धकारी है, प्रकृति का विनाशकारी स्वरूप उतना ही महत्त्वशाली है। कामायनी के प्रारम्भ में 'प्रसाद' जी ने जो प्रलय का चित्र अंकित किया है वह एक स्मरणीय अध्याय है। प्रकृति का वह दुर्दमनीय अजेय स्वरूप देखने ही योग्य है—

उधर गरजतीं सिंधु लहरियाँ कुटिल काल के जालों-सी,
चली आ रहीं फेन उगलती फन फैलाय व्यालों-सी।

प्रकृति के प्रेमियों में गुरुभक्तसिंह जी को भूलना उनके साथ अन्याय करना है। उनका नूरजहाँ-काव्य प्रकृति का क्रीड़-सदन है। नूरजहाँ का कवि वह प्राणी है जो प्रकृति की प्रत्येक झलक पर मुग्ध है और वृक्ष, शाखा, लता, पुष्प, पक्षी, झरना, सरिता, पर्वत, आकाश जिसे भी देखता है, उसी से खिंच जाता है। नूरजहाँ की कथा ही फ़ारस के वसन्तोत्सव से प्रारम्भ होती है और उसका अन्त काश्मीर के रम्य शालामार उद्यान के बीच होता है जहाँ प्रकृति की सहायता से सलीम नूरजहाँ के हृदय पर विजय प्राप्त करता है।

गुरुभक्तसिंह जी के प्रकृति-वर्णन की एक विशेषता यह है कि उन्होंने प्रकृति के चिरकाल से उपेक्षित भूले अंगों का अंकन किया है। प्रारम्भ में ही काफ़िले के वर्णन में जहाँ कवि ने पर्वतों और नखलिस्तान का वर्णन किया है, वहाँ वह कँटीले झाड़, बालू के संसार, जलती आग, विकट वीरान, मटीले मैदान और वन-बिलाव को भी नहीं भूला है। उसकी दृष्टि भेद-भाव नहीं जानती। सके अतिरिक्त गुरुभक्तसिंह जी ने 'काण्डर' के पीत पुष्पों को देखा है, नदी-किनारे पर झाऊ देखी है, उन्होंने गन्ने के रस की गन्ध से मलयानिल को मत्त किया है, रसाल-मंजरियों के मटर-कुसुम से आँखें लड़ाई हैं। उनकी दृष्टि मैदानों में बिछी हुई 'कौडिल्ला' घास पर, बनगोभी से पीले टीलों पर गई है; उनकी तितली 'मेथी' में विचरती है, 'सोये' में सोती है। वे कपास और अरहर को भी नहीं भूले हैं।

इस प्रकार इस काल के हिन्दी-काव्यों ने जो प्रकृति से अपना अनेक प्रकार का सम्बन्ध स्थापित किया है वह उनकी व्यापक दृष्टि एवं गम्भीर अनुभूति का परिचायक है। और इससे हमारी भाषा समृद्धिशालिनी हुई है।

[श्रीयुत मल्लादि अवधानि तेलगू के प्रसिद्ध लेखक हैं। यह नाटिका उन्हीं की एक सुन्दर रचना का अनुवाद है।]

सुल्ताना रज़िया

लेखक, श्रीयुत वेंकटेश्वरराव

पहला दृश्य

समय—रात का समय। चाँदनी छिटकी है।

स्थान—दिल्ली में शाही अस्तबल के समीप एक कुटिया। कुटिया के चारों ओर नीम आदि के पेड़। सामने मैदान।

लैला कुटिया से बाहर निकलकर पथरीली ज़मीन पर टहलती हुई किसी की राह देख रही है। उसकी उम्र २४ से कुछ ऊपर है। सुन्दर तो नहीं है; हाँ, असुन्दर ज़रूर है। सन्नाटा है।

...लौटकर एक चट्टान पर बैठ जाती है और अपने अंचल से दो झूमक निकालकर, हथेली में रख उनकी तरफ़ देखने लगती है। उसका चेहरा फीका है, किसी आशंका को प्रकट करता है।

जमालुद्दीन याकूब धीरे से आकर लैला के पीछे खड़ा हो जाता है। वह हब्शी है। दरबार का ग़ुलाम, अस्तबल का मुलाज़िम और शरीर से हट्टा-कट्टा। उसका क़द ऊँचा। उम्र ३० तक। काली-काली उसकी दाढ़ी चेहरे को गंभीर बना रही है।

जमाल—(धीरे से) लैला!

लैला—(आश्चर्य और सन्देह के साथ चौंककर उठ खड़ी होती है और जमाल के गले में हाथ डालकर) ओह! आये लौटकर!...उम्मीद तो न थी!

जमाल—खुदा की मेहरबानी है, लौट आया।

लैला—(उसके चेहरे पर हाथ फेरकर) यह! यह क्या? सारा चेहरा लहू-लुहान...कई घाव हैं...यह शेर की करतूत है?

जमाल—हाँ, उसने कंधों पर भी चोट की है।

लैला—बातें पीछे होंगी, पहले खा लो कुछ! बड़े सवेरे मुँह में डाले थे चार कौर, न जाने कितनी भूख लगी होगी! (जल्दी-जल्दी भीतर जाकर अँधेरे में दिया जलाती है।)

जमाल—लैला, इतनी रात गये तक तुमने दिया नहीं जलाया?

लैला—भीतर गई ही नहीं जमाल। सोचती हुई बैठ गई, याद ही न रही।

जमाल—सोच क्या रही थी?

लैला—और क्या? यही कि तुम लौटकर आओगे कि या तुम्हें वह शेर.....

जमाल—(हँसकर) हुश! मुझे वह शेर!

लैला—(भोजन की तश्तरी और पानी का बर्तन लेकर आती है) देखो, तुम्हारे वास्ते कितना बढ़िया पुलाव बना रक्खा है!

जमाल—अगर मैं लौटकर न आता, इन चीज़ों का क्या करती?

लैला—(हाथ से उसका मुँह बंदकर) ऐसी बात न कहो।

जमाल—(चट्टान पर बैठा हुआ। भोजन की तश्तरी सामने रखकर, लैला का हाथ खींचकर) आओ! बैठो, तुम भी कुछ खा लो।

लैला—पहले तुम खा लो, पीछे.....

जमाल—पीछे-बीछे नहीं, मेरी बात मानो। (ज़बर्दस्ती उसको पास बिठाकर मुँह में पुलाव डालता है।)

लैला—(हँसती और खाती हुई) अब बताओ। शाम को तुम गये तब क्या हुआ?

जमाल—मैं और दो दूसरे ग़ुलाम तीनों मिलकर वहाँ पहुँचे। इसके पहले ही कहा था न कि सरकार का हुक्म हुआ है।

लैला—ठीक! तुमने कहा था, सुल्ताना साहबा कुछ ग़ुलामों को शेर के साथ लड़ानेवाली हैं।

जमाल—मैदान में उमरा आदि जमा हो गये। तख़्त पर सुल्ताना बैठी थीं। तब कुछ नौकर अखाड़े में एक पिंजड़ा लाये।

लैला—उसी में शेर होगा!

जमाल—बातों में पड़कर तुम खाना भूल रही हो।

लैला—नहीं, बाद...

जमाल—पिंजड़े का दरवाजा खुला, एक गुलाम भीतर ढकेल दिया गया। शेर ने एक ही छलांग में उसे चीर डाला।

लैला—(आँखें बंदकर) उफ़!

जमाल—सभी अफ़सर तालियाँ पीट-पीटकर खुश हो रहे थे। सुल्ताना साहबा की खुशी का ठिकाना न रहा। फिर दूसरा गुलाम भी भीतर ढकेला गया।

लैला—मेरे सामने ही, मालूम होता है, वह सब हूबहू हो रहा है।

जमाल—उसका भी वही हाल हुआ। आखिर मैं पिंजड़े में घुस पड़ा। बाहर से सभी तालियाँ पीटने लगे कि अब ज़रूर ही शेर मुझे खा जायगा।

लैला—अब बंद करो जमाल। मेरा कलेजा धड़क रहा है।

जमाल—औरत हो न! इतने से ही डर गई? मुझे देखते ही शेर झपटा और मेरे कंधे पर एक पंजा मारा। मैंने उसका मुँह......

लैला—(खुशी और जोश में) क्या! क्या!!

जमाल—मैंने उसका मुँह मरोड़ दिया और उसकी कोख में एक ऐसा घूँसा जमाया कि कराहता हुआ छटपटाकर मर गया।

लैला—(उसकी छाती फूल उठी और माथे पर पसीना निकल आया) शाबाश! कैसा अच्छा काम किया!

जमाल—देखो, कैसी प्यारी चाँदनी है, पेड़ के पत्तों पर कैसी चमक रही है! (पानी पीता है)

लैला—तब क्या हुआ, बताया नहीं।

जमाल—सुल्ताना साहबा ने मुझे पास बुलवाकर, मेरी ओर देख मुसकाती हुई "तुम तो बहादुर हो" कहकर अपने हाथ का सोने का कड़ा निकालकर मुझे दिया। (जेब से कड़ा निकालकर दिखाता है)।

लैला—(आश्चय के साथ) वाह! कैसा आबदार है! कैसा चमक रहा है!

जमाल—(लैला के हाथ में पहनाकर) कहूँ, अब तुम कैसी लगती हो?

लैला—(हँसती हुई) हाँ, कहो तो...

जमाल—ठीक सुल्ताना साहबा की तरह...

लैला—(उठकर अपने हाथ की तरफ़ निहारती हुई) मैं सुल्ताना साहबा की तरह लगती हूँ न, इसलिए उसी तरह चलूँगी। (दूर दूर पर क़दम रखती हुई चलती है)

जमाल—(ज़ोर से हँसता हुआ) ओहोहो! सुल्ताना साहबा! बहुत अच्छा चल रही हैं!

(लैला के चलते समय उसके आँचल से चाँदी के दो झूमक गिर पड़ते हैं। लैला की उमंग ठंडी पड़ जाती है। वह झूमक उठाकर छिपा लेना चाहती है।)

जमाल—यह क्या है?

लैला—वही झूमक।

जमाल—हाँ, भूल गया....लैला! अगर शेर के पंजे से न बचता तो तुम क्या करना चाहती थी?

लैला—तुमने शाम को क्या कहा था?

जमाल—यह मेरी इच्छा थी कि इन दोनों को अबीसीनिया ले जाकर मेरी माँ जी को दे देती। बेचारी मेरी माँ! उसने दो बरस लगातार उन पहाड़ी मैदानों में काम करके जो कुछ बचा पाया था उससे ये झूमक बनवाकर मेरे कानों में पहना दिये थे।

लैला—मैंने पक्का इरादा कर लिया था कि आज ही रात को अबीसीनिया के लिए कूच कर दूँगी।

जमाल—फिर?

लैला—ये झूमक तुम्हारी माँ के यहाँ पहुँचाने का इरादा था। मेरा ख़याल था, इससे तुम्हारी ख्वाहिश पूरी हो जायगी।

जमाल—तब शायद लौटकर फिर हिन्दुस्तान चली आती, क्यों?

लैला—नहीं।

जमाल—(जँभाई लेकर) और क्या करती?

लैला—(गंभीर होकर) तुम्हारी ख्वाहिश पूरी करने के बाद, जो करना था....तुम जानते ही हो!

जमाल—चाहे जो हो, अब उसकी जरूरत नहीं! मेरी मौत नहीं हुई, मैं लौट आया। (जँभाई लेता है)

लैला—शायद नींद आ रही है, चलो, सो जाओ!

जमाल—तुम्हें?

लैला—मुझे अभी नहीं आ रही ह।

(दोनों कुटिया में चले जाते हैं। थोड़ी देर सन्नाटा छा जाता है। चाँदनी छिटक पड़ती है। लैला कुटिया से निकल कर बाहर चट्टान पर बैठ जाती है और झूमक हाथ में लेकर उनकी तरफ़ एक टक देखती है। पीछे की तरफ़ देखती है। कोई एक औरत बदन ढाँके पीछे खड़ी है।)

लैला—(उठ खड़ी हो जाती है) आप कौन हैं?

औरत—तुम्हारा ही नाम लैला है?

लैला—जी हाँ, आपकी तारीफ़?

औरत—मैं..मैं..मैं..मुझे सुल्ताना ने भेजा है।

लैला—सुल्ताना साहबा ने?

औरत—हाँ।

लैला—(अचंभे में पड़कर) किस लिए?

औरत—मालूम नहीं क्यों। मगर उन्होंने हुक्म दिया है कि तुम और जमालुद्दीन याकूब दोनों कल शाम को उनके जनानखाने में आवें।

(लैला सोचती है।)

औरत—(अपने हाथ की अँगूठी निकालकर लैला के हाथ में रखती हुई) इस अँगूठी को पहरेदारों को दिखा देना। वे तुम दोनों को भीतर जाने से नहीं रोकेंगे।

(जमाल कुटिया से बाहर आता है।)

औरत—अब मैं जाऊँगी। (जाने लगती है)

जमाल—लैला! किससे बातें कर रही थी?

लैला—मालूम नहीं, कौन हैं।

(जमाल आगे बढ़ उस औरत का चेहरा देखकर अदब के साथ ज़मीन पर घुटने टेकता है।)

(औरत बिना उसकी तरफ़ देखे चल देती है।)

जमाल—लैला! लैला!

लैला—क्या?

जमाल—जानती हो, वे कौन हैं।

लैला—नहीं।

जमाल—वही सुल्ताना साहबा हैं।

लैला—ऐसी बा....!

जमाल—हाँ, यही सुल्ताना रज़िया हैं।

दूसरा दृश्य

समय—सन्ध्याकाल।

स्थान—शाहीमहल का अन्तःपुर। ज़मीन पर रेशमी क़ालीन बिछा है। दीवारों पर आइने टँगे हैं। जँगले के किवाड़ खुले हैं, जिनसे नीला आसमान और अभी के उगे तारे दीखते हैं। दूर पर किसी पेड़ की टहनी पर एक बुलबुल विषाद के सुर में गा रही है।

फ़िरोज़ा बाँदी सोने की दीवटों में दिये जला रही है। रज़िया मसनद पर बैठी क़ुरान शरीफ़ पढ़ रही है। उम्र २४ की। फूल-सा मुलायम शरीर; आँखें बड़ी-बड़ी। वह रूपसी है। आज उसने अपना ख़ूब साज-श्रृंगार किया है। नगीनों से जड़े कंकण और अरब से आई हुई रेशमी पोशाक पहने है। पैरों में चमकनेवाले जूते हैं। बालों के दो नाग लटक रहे हैं।

रज़िया—(धीमे स्वर से) फ़िरोज़ा!

फ़िरोज़ा—(दिये जलाती हुई) हाँ जनाब!

रज़िया—जासूस और क्या कह रहे थे?

फ़िरोज़ा—यही कि तोपखानों में, फूल के बग़ीचों में, रास्तों पर, गलियों में हर कहीं इसी की बाबत कानाफूसी चल रही है।

रज़िया—क्या तुम भी यक़ीन करती हो?

फ़िरोज़ा—नहीं जनाब!

रज़िया—(मुस्कुराकर) ठीक तो! कल रात को मैं उस गुलाम की कुटी में गई थी।....क्यों, इतना ताज्जुब क्यों कर रही हो?

फ़िरोज़ा—नहीं, कुछ नहीं जनाब!

रज़िया—ठीक है फ़िरोज़ा! सुल्ताना साहबा खुद अपने एक घुड़सवार के दरवाज़े पर चली जावें, यह क्यों न ताज्जुब की बात हो!

फ़िरोज़ा—कल आपने उस गुलाम को अपना कंगन दिया था।

रज़िया—हाँ, उसने कैसी बहादुरी दिखाई थी? शेर से लड़कर उसे मार आया।

फ़िरोज़ा—जनाब.....

रज़िया—क्यों, आगा-पीछा क्यों कर रही हो?

फ़िरोज़ा—आपका वह इनाम देना, सुनती हूँ, उमरा को पसंद न आया। एक गुलाम को सुल्ताना का अपने हाथ का कंगन निकाल कर देना और...

रज़िया—और क्या? कहो...

फ़िरोज़ा—माफ़ कीजिए, जनाव !

रज़िया—कोई डर नहीं, वाद...?

फ़िरोज़ा—और उस हब्शी की तरफ़ मुड़कर, मुस्कुराकर यह कहना—"तुम वहादुर हो" और कल ही रात को आपका जमाल की कुटी पर पहुँचना, यह सब उमरा के मन में सन्देह पैदा करता है ।

रज़िया—(चट से उठकर) सन्देह ? कैसा सन्देह ?

फ़िरोज़ा—माफ़ कीजिए, जनाव !

रज़िया—मेरे ही ऊपर यह सन्देह है क्या फ़िरोज़ा ?

फ़िरोज़ा—जनाव !

रज़िया—उस सन्देह की भी काफ़ी वजह है, फ़िरोज़ा !

(फ़िरोज़ा चकित हो जाती है)

रज़िया—(वेढव हँसी हँसकर) वटुंडा का शासक अल्तूनिया आकर मेरी एक मुस्कान के वास्ते पैरों पर गिरने को तैयार था । मगर उसे अपमानित कर हटा दिया । मगर फ़िरोज़ा ! आज अपने सारे दिल को हँसी का फौव्वारा वनाकर एक गुलाम के पैरों पर वहाने जा रही हूँ । मैं देखूँगी, यह रिआया और उमरा मेरा क्या करते हैं ।

फ़िरोज़ा—सुल्ताना !

रज़िया—मैं सुल्ताना जरूर हूँ, मगर कुछ और भी । मालूम नहीं, यह बात रिआया क्यों भूलती है । मैं समझ नहीं पाती हूँ कि ये लोग मुझसे सिर्फ़ आदर्श ही आदर्श क्यों चाहते हैं ।......(इधर-उधर टहलती हुई) कई बंधनों में जकड़ी हुई मेरे दिल की चिड़िया आज सभी बंधनों से रिहा होकर आसमान में उड़ना चाहती है । उसे बाँध रखना उमरा और रिआया से नहीं हो सकता । (आकर मसनद पर बैठ जाती है) सुनो, उधर सीढ़ियों पर कुछ आहट........

फ़िरोज़ा—जी हाँ, जनाव !

रज़िया—वे लोग आये होंगे ।

फ़िरोज़ा—कौन ?

रज़िया—जमालुद्दीन याकूब और उसकी औरत लैला ।

फ़िरोज़ा—(अचंभे में) जमालुद्दीन !

रज़िया—हाँ, वही गुलाम ।

फ़िरोज़ा—जनाव !

रज़िया—पहले लैला को यहाँ ले आओ । जमाल से कहो, वह वहीं सीढ़ियों पर खड़ा रहे ।

फ़िरोज़ा—(सिर झुकाकर आजिज़ी के साथ) जनाब ! (चली जाती है) (रज़िया क़ुरान खोलकर दो सतरें पढ़ती है कि फ़िरोज़ा लैला को साथ लेकर आती है । लैला रज़िया को देख, आश्चर्यचकित हो खड़ी हो जाती है) ।

रज़िया—लैला !

लैला—(घुटने टेककर) सुल्ताना साहवा !

रज़िया—उस क़ालीन पर बैठ जाओ ।

लैला—जनाव ! (बैठ जाती है)

रज़िया—तुम किस मुल्क से यहाँ आई थी ?

लैला—अबीसीनिया से, जनाव ।

रज़िया—जमालुद्दीन याकूब से तुम्हारा परिचय वहीं का था ?

लैला—नहीं जनाव, हम दोनों दो जगह के रहनेवाले हैं । हम सब ग़ुलाम बनाकर लाये गये । वह अस्तवल में और मैं गोठ में काम करती थी । हम दोनों की पहली मुलाक़ात हुई थी जमुना के किनारे ।

रज़िया—अपने वतन को लौट जाने की इच्छा है ?

लैला—है तो जनाब ! जब मैं और जमाल चाँदनी रात में चट्टान पर बैठते हैं तब सामने नीले पहाड़ नज़र आते हैं । तुरंत अबीसीनिया याद आता है । जनाव ! वे पहाड़...वे कंदरायें...कितना प्यारा वह मुल्क, जनाव ! अपने वतन का नाम सुनते ही जमाल की आँखें भर आती हैं । कहता है कि अगर हाकिम रज़ामंद हों तो हम दोनों वहीं चले चलें और वहीं रहें ।

रज़िया—फ़िरोज़ा !

फ़िरोज़ा—जनाव !

रज़िया—हाथी-दाँत की वह पेटी इधर ला ।

फ़िरोज़ा—जनाव ! (जाती ह)

(रज़िया खामोश रहती है)

(फ़िरोज़ा पेटी लाकर रज़िया के हाथ में रख देती है)

रज़िया—(खोलकर) लैला ! देखो, इसमें क्या है ?

लैला—मोतियों के हार...

रज़िया—और ?

लैला—जवाहरात...मुहरें...

रज़िया—(पेटी बंदकर) इस पेटी को तुम ले लो ।

लैला—(आश्चर्य और घबराहट से) मैं !

रज़िया—हाँ तुम !

लैला—क्यों जनाव ?

रज़िया—इसको लेकर अपने वतन चली जाओ और चैन से रहो ।

लैला—(खुशी के साथ पेटी लेकर) आप बड़ी मेहरवान हैं सुल्ताना !

रज़िया—वतन कब जाओगी ?

लैला—आज ही रात को जनाव ! इस बात को सुनकर जमाल को कितनी खुशी होगी !

रज़िया—(उठकर थोड़ी देर खामोश रहकर) सफ़र तो तुम्हें अकेले करना पड़ेगा ।

लैला—(घबराकर) और जमाल !

रज़िया—जमाल यहीं रहेगा ।

लैला—(आश्चर्य से) नहीं जनाव ! (पेटी को रज़िया के पैरों पर रखकर) मैं अबीसीनिया नहीं जाऊँगी, सुल्ताना !

रज़िया—(हाकिमाना ढंग से) लैला !

लैला—जनाव !

रज़िया—चाहे तुम भले ही वतन न जाओ, लेकिन जमाल तुम्हारे साथ नहीं जायगा ।

लैला—क्यों ? बिना क़सूर के क़ैदखाने में रक्खेंगी ?

रज़िया—(हँसकर) नहीं लैला ! क़ैदखाने में नहीं रक्खूँगी । मेरे साथ आराम से इस महल में रहेगा ।

(लैला निश्चेष्ट हो जाती है)

रज़िया—तुम उसे कभी नहीं देखने पाओगी ।

लैला—जो हुक्म सुल्ताना ! उसको क़ैदखाने में नहीं रखिएगा ? शेर के पिंजड़े में नहीं ढकेलिएगा ?

रज़िया—(हँसकर) ऐसा कुछ न होगा । वह बड़े आराम से रहेगा ।

लैला—(जैसे सोते में बोल रही हो) सुना, कल आप उसकी तरफ़ मुड़कर मुस्कुराई थीं, वही मुस्कुराहट उसके दिल में बैठ गई है । यह बात मैं पहचान गई, जनाव !...सुल्ताना साहवा !...मैं एक भिखमंगिन हूँ.....मेरे पास एक ही रत्न है... उसे आपके पैरों पर धर रही हूँ ।

रज़िया—(धीरे से) लैला, तुम गोया बुखार में बोल रही हो ।

लैला—(आह भरकर) जनाव, मैं आपसे वादा करती हूँ कि कभी जमाल को देखने की भी कोशिश न करूँगी ।

रज़िया—लैला ! बिना देखे, अकेले तुमसे रहा जायगा ?

लैला—पहले मैं अपनी कुटी में अकेली ही रहती थी, जनाव !

रज़िया—इस पेटी को ले जाओ, लैला !

लैला—नहीं जनाव ! आप बड़ी मेहरबान हैं । (रज़िया के पैरों की धूल माथे में लगाकर) विदा दीजिए सुल्ताना ! (जाती है)

रज़िया—मैं कैसी खुदग़र्ज़ हूँ, फ़िरोज़ा ! (मसनद पर बैठकर क़ुरान के पन्ने उलटती हुई) यह मुझे माफ़ करेगा ? फ़िरोज़ा ! सीढ़ियों पर बेचारा जमाल अभी तक खड़ा ही होगा ! उसे ले आओ ।

फ़िरोज़ा—जनाव ! (जाती है)

तीसरा दृश्य

समय—आधी रात ।

स्थान—अन्तःपुर में रज़िया का शयनागार । चारों ओर रेशमी पर्दे पड़े हैं, हवा में हिल रहे हैं । बीच में दो बढ़िया पलंग हैं । जमीन पर रेशमी क़ालीन बिछा है । उसी पर मसनद लगी हुई है । कुछ दूर पर एक काँच के गोल बर्तन में दिया जल रहा है, जो तीन तरफ़ जलता हुआ नीली रोशनी कर रहा है । मसनद पर बैठी रज़िया सारंगी बजा रही है । जमाल मसनद पर बैठा अधखुली आँखों से संगीत सुन रहा है ।

रज़िया—(सारंगी को रखकर) जमाल !

जमाल—सुल्ताना !

रज़िया—मैंने तो कहा था कि इस तरह मत कहो ।

जमाल—जी हाँ, भूल हुई, माफ़ कीजिए ।

रज़िया—(मुस्कुराकर) रज़िया नाम क्या अच्छा नहीं लगता ?

जमाल—बहुत अच्छा नाम है।

रज़िया—लेकिन एक दफ़ा भी उस नाम से मुझे क्यों नहीं पुकारते ?

जमाल—मैं ग़ुलाम हूँ, जनाब ! आप...

रज़िया—रज़िया तो ग़ुलाम नहीं है !

जमाल—आप कैसी बातें कर रही हैं, सुल्ताना ?

रज़िया—जब तक रज़िया सुल्ताना ह तब तक जमाल भी सुल्तान है। क्यों ?

(जमाल हँसता है)

रज़िया—हँसते क्यों हो ?

जमाल—मैं जब अपने को देखता हूँ, शर्म लगने लगती है। मुझे इतनी इज्ज़त....मेरे ऊपर आपका इतना रहम....एक सपना जान पड़ता है। गंदी गलियों में चक्कर लगानेवाले कुत्ते को झाड़-पोछ कर अपनी गोद में बिठाते देख क्या लोग हँसी नहीं करेंगे ? दरअसल उस कुत्ते को ही बहुत शर्म लगेगी।

रज़िया—अब और ज़्यादा मैं नहीं सुन सकूँगी।

जमाल—सुल्ताना ! काश, मैं स देश में न आता।

रज़िया—क्यों ?

जमाल—मैं पुच्छल तारा हूँ। मैं जब पैदा हुआ, मेरे बाप का इंतक़ाल हुआ। दो भाई और एक बहन भी मर गये। मेरी माँ सारी मिलकियत खो जाने के बाद ग़ुलाम बन गई।

रज़िया—पुराना क़िस्सा क्यों उठाते हो ?

जमाल—(उसी जोश में) लैला ने मुझे प्यार किया। उसकी ज़िंदगी बरबाद हो गई। आख़िर आपने मेरा आदर किया, जिसका नतीजा यह हुआ कि सारी रिआया, उमरा, यहाँ तक कि आपके भाई बैराम भी अल्तूनिया से मिल गये हैं और आपके ख़िलाफ़ साजिश कर रहे हैं।

रज़िया—जमाल ! जमाल ! तुम्हें क्या यहाँ आराम नहीं है ? हमेशा फ़िक्रमंद ही रहते हो ? इसलिए यह मायूसी है कि लैला तुमसे अलग कर दी गई ? बोलो जमाल !...फिर लैला को यहाँ बुला लूँ ! तुम्हारी उदासी मुझसे देखी न जायगी।

जमाल—वह नहीं सुल्ताना ! छिन छिन मेरी बेकली बढ़ रही है। यह सोचकर कि मेरी वजह से आपको तकलीफ़ उठानी पड़ेगी।

रज़िया—यह पागलपन छोड़ो। (हँसकर) इधर आओ !

(जमाल कठपुतली की नाईं जाकर रज़िया के नज़दीक बैठ जाता है। इतने में दोनों हाथों से रेशमी पर्दे को हटाकर तेज़ी से फ़िरोज़ा अंदर प्रवेश करती है और रज़िया के सामने घुटने टेकती है।)

फ़िरोज़ा—जनाब !...जनाब !

रज़िया—(अचानक उठकर, थोड़े-से ग़ुस्से से) यही तुम्हारे आने का मौक़ा है, फ़िरोज़ा !

फ़िरोज़ा—(बातों पर बिना कान दिये) जनाब ! आते हैं...आते...

रज़िया—कौन ?...इतनी हैरानी किसलिए ?

फ़िरोज़ा—बैराम...अल्तूनिया...उमरा सभी !

रज़िया—(चौंककर) आँ ?

फ़िरोज़ा—फ़ौज के साथ आ रहे हैं। जो भी ख़िलाफ़ बोलता है उसको मार डालते हैं। अब यहाँ पहुँचना चाहते हैं।

जमाल—फ़िरोज़ा ! (एकाएक उठ खड़े होकर) तलवार ! ढाल ! जल्दी ला !

(फ़िरोज़ा जल्दी चली जाती है)

(रज़िया अचेत-सी खड़ी रह जाती है)

जमाल—सुल्ताना !

रज़िया—(मानो नींद से अभी जगी हो)...अचानक जनानख़ाने पर छापा...

(फ़िरोज़ा ढाल और तलवार लाकर जमाल के हाथ में देती है)

जमाल—(ढाल एक हाथ में तलवार दूसरे हाथ में लेकर) सुल्ताना, जा रहा हूँ।

रज़िया—जमाल ! जमाल ! लड़ाई के वास्ते ?

जमाल—पहले लड़ाई में, बाद कह नहीं सकता, कहाँ जाऊँगा। लेकिन अपनी माँ को, अबीसीनिया को, लैला को...या आपको...सुल्ताना आपको फिर नहीं देख सकूँगा।

रज़िया—जमाल ! शेर के पिंजड़े से तुमने अपनी जान

तो बचा ली, किन्तु रज़िया के हाथ से नहीं बचा सके...(गला भर आता है)

जमाल—मैं...मैं तो गन्दी गली का कुत्ता ही ठहरा ! आप, सुल्ताना ! फ़रिश्ता हैं...मैं अपना कलेजा चीरकर अपने ख़ून से आपके पैर धो दूँ तो भी आपका एहसान अदा नहीं कर सकता। अब विदा (चार क़दम आगे चलकर) रज़िया !

(रज़िया नज़दीक आ जाती है)

जमाल—(धीमी आवाज़ में) रज़िया ! (रज़िया का हाथ अपने हाथ में लेकर बाद सिर पर हाथ फेरकर) रज़िया ! (उधर घूमकर फ़िरोज़ा को देख हिच-किचाहट के साथ) विदा ! विदा ! (ढाल पर तलवार ज़ोर से खनकाकर एक छलांग में बाहर चला जाता है)

रज़िया—(पुतली की तरह खड़ी होकर, थोड़ी देर बाद) चला गया ? जमाल चला गया ?

फ़िरोज़ा—हाँ, जनाब !

रज़िया—तुमको देखकर पीछे हट गया। आख़िरी मर्तबा एक बार...

(फ़िरोज़ा सिर झुका लेती है)

रज़िया—मुझे तीन बार 'रज़िया—रज़िया' कहकर पुकारा तो !

फ़िरोज़ा—जनाब !

(बाहर हो-हल्ला)

फ़िरोज़ा—बाहर कैसा शोरग़ुल...जनाब ! जनाब ! वे आ रहे हैं।

रज़िया—नहीं, नहीं आयगा, जमाल फिर...नहीं आयगा !

फ़िरोज़ा—दुश्मन...बाहर...लो वह आवाज़...

(कोलाहल और तलवारों की झनकार धीरे धीरे नज़दीक आती है)

रज़िया—मुझमें जितना ज़नानापन छिपा हुआ था, आज बाहर उमड़ा पड़ता है। जमाल.....मेरा जमाल फिर नहीं आयगा। (मसनद पर गिर पड़ती है और फूट फूटकर रोती है)

चौथा दृश्य

समय—रात।

स्थान—क़ैदख़ाना। एक ही किवाड़ खुला है। बाहर घना अंधकार। गर्जन-तर्जन के साथ बारिश। बीच बीच में बौछार भीतर आ जाती है। ज़ोरदार हवा। अंदर एक छोटा सा दिया टिमटिमा रहा है। सामने रज़िया खड़ी है। उसके बाल बिखर कर कंधों पर पड़ रहे हैं। फटी पोशाक। आँखें किसी सोच में अधखुली हैं।

दरवाज़ा खुलता है। भीतर लैला कपड़े से ढँकी हुई तश्तरी लेकर आती है।

लैला—(धीरे से घुटने टेककर) जहाँपनाह !

रज़िया—(चौंककर) कौन है ? इस भिखमंगिन, इस ग़रीबिन, इस क़ैदी को कौन बुला रहा है ?

लैला—जनाब !

रज़िया—(हँसकर) जहाँपनाह ? जनाब ?....कह-कर मुझी को पुकार रही हो ?

लैला—आपको ही सुल्ताना !

रज़िया—आज मैं अकेली हूँ। न कोई मेरा अपना है, न कोई मददगार। सिर छिपाने को भी जगह नहीं। उम्मीद नहीं, हौसला नहीं। इस भिखमंगिन को सुल्ताना कहकर दिल्लगी उड़ाने की ख़्वाहिश तुम्हें क्यों कर पैदा हुई ?

लैला—दिल्लगी नहीं जनाब ! आप हमेशा मेरे दिल में वही 'सुल्ताना' हैं।

रज़िया—तुम पागल तो नहीं हो गई हो ?

लैला—क्यों जनाब ?

रज़िया—वर्ना इस मौक़े पर तकलीफ़ उठाकर कौन रज़िया को देखने आयगा ? आयगा भी तो कौन इस तरह बोलेगा ?

लैला—जनाब ! जनाब ! (आँसू पोछती है)

रज़िया—तुम कौन हो, जो मुझे देखकर हमदर्दी से आँखें भिगोती हो ?

लैला—मुझे नहीं पहचानतीं ?

रज़िया—रज़िया आज किसी को नहीं पहचानती। वह एक दिन में जवान हुई और उसी दिन बूढ़ी भी। एक ही रात में बुढ़ापे ने उस पर धावा बोल दिया। उसका दिल पत्थर हो गया। निगाह मंद पड़ गई। आज तो वह ख़ुद अपने को नहीं पहचानती।

लैला—मैं हूँ लैला !

रज़िया—(चकित होकर) तुम लैला ?

लैला—जी हाँ।

रज़िया—जमाल की बीबी ?

लैला—हाँ।

रज़िया—लैला ! लैला ! क्या तुम्हें जान का ख़ौफ़ नहीं ? फ़िर इस शैतान के पास क्यों आई ? एक दिन इस शैतान ने तुम्हारा एक मात्र ख़ज़ाना लूट नहीं लिया ? शायद भूल गई। इस बेदिल, इस डाइन ने तुम्हारा कैसा मटियामेट कर दिया ? तुमको याद नहीं ? तुम बड़ी भोली हो। जाओ, यहाँ से जल्दी जाओ !

लैला—जनाव ! आपको ऐसा नहीं कहना चाहिए। उस दिन अपनी इच्छा से ही मैंने अपना ख़ज़ाना आपको भेंट किया था।

रज़िया—सच ?

लैला—सच। आप जहाँपनाह सुल्ताना हैं और मैं एक ग़ुलाम। मेरा जो कुछ था वही जमाल था। आपको ख़ुश करने के वास्ते मैंने उसे आप पर न्योछावर कर दिया था।

रज़िया—मगर तुम ?

लैला—यह सच है, मुझे उस वक़्त सदमा पहुँचा... लेकिन जनाव ! वचपन से मैं तकलीफ़ों की आदी हो गई हूँ।

रज़िया—ऐसा नहीं हो सकता। सिर्फ़ मेरे ही आराम के लिए तुमने दुख झेला।...हाथ में यह तश्तरी काहे की ? वह क़ैदी का इनाम तो नहीं है !

लैला—जहाँपनाह ! जहाँपनाह ! (उसकी छाती धड़कने लगती है) आपके भाई बैराम और अल्तूनिया कितने बेरहम हैं ? उन दोनों ने कल शाम को (भर्राई आवाज़ में) जमाल को...

रज़िया—(अपनी छाती पर हाथ रखकर टहलती हुई) सुना है, सवेरे पहरेदार भी कह रहा था।

लैला—उन लोगों ने मुझे बुलवाया......बुलवाकर यह कठोर काम करने का हुक्म दिया। वे जानते थे कि म जमाल की बीबी हूँ। जनाब ! (तश्तरी पर से कपड़ा हटाकर)......यह......यह......जमाल का कलेजा !......जमाल का कलेजा, जहाँपनाह ! (उसके हाथ में कलेजा रखती है)

रज़िया—(थोड़ी देर आँखें मींचकर, कलेजा हाथ में लेकर) जमाल......कलेजा......लैला !

लैला—जहाँपनाह !

रज़िया—इसी रात......कहीं से.....कुछ ज़हर का इंतज़ाम कर सकती हो ?

लैला—शायद आपको इसकी ज़रूरत पड़ेगी, यह सोचकर साथ ही ले आई। यह लीजिए। (ज़हरीली जड़ी-बूटी उसके हाथ में देती है)

रज़िया—इसके लिए तुम्हें बहुत तकलीफ़ उठानी पड़ी होगी ?

लैला—आज दिन भर इसके लिए घूमती रही। आख़िर एक बूढ़ी के ज़रिये यह मिली।

रज़िया—जड़ी-बूटी (ग़ौर से देखकर) लैला ! अपने दुश्मन पर इतनी मेहरबानी क्यों ? जिस दिन शेर को जमाल ने मारा था उस रात को मैं तुम्हारी कुटी पर गई थी। पेड़ की आड़ में खड़ी रही। तुम दोनों का कैसा सुंदर था जीवन, कितना मुहब्बत से भरा ! कितनी ख़ुशी थी ! मैं डाइन हूँ। मैं तुम दोनों के बीच में घुसकर जमाल को खा गई, लैला !

लैला—जहाँपनाह !

रज़िया—अगर मैं जमाल को न खा गई होती तो तुम दोनों अबीसीनिया के किसी पहाड़ या कन्दरे में बड़े आराम व मुहब्बत से रहते होते।

लैला—जनाव ! आप उन बातों को न छेड़िए। यह ज्वालामुखी (अपने कलेजे को दिखाकर) जो बहुत दिनों के बाद फूटनेवाला है, अभी फूट पड़ेगा।

रज़िया—(जड़ी-बूटी को देखकर) तुम कैसी हमदर्द हो !

लैला—सुनती हूँ, कल सवेरे आपको भी........।

रज़िया—(अजब ढंग से हँसती हुई) कल सवेरे ?

लैला—जी हाँ, अब मैं जाऊँगी !

रज़िया—कहाँ ?

लैला—अबीसीनिया !

रज़िया—अपने वतन जाओगी ?

लैला—जी हाँ।

रज़िया—इसी रात को ?

लैला—जी हाँ।

रज़िया—इसी तूफ़ान में ?

(लैला अपने अंचल से चाँदी के दो झूमक निकालती है)

रज़िया—चाँदी के झूमक !...इनको मैंने कहीं देखा था...ठीक याद नहीं आता।

लैला—ये जमाल के कानों के झूमक हैं। उसकी माँ ने दो बरस तकलीफ़ उठाकर ये दो झूमक बनवाकर जमाल के कानों में पहना दिये थे। जिस दिन जमाल शेर से लड़ने जा रहा था उस वक़्त उसने मुझसे कहा था कि मैं अगर मर जाऊँ तो ये दो झूमक अबीसीनिया ले जाकर पहाड़ों में रहनेवाली मेरी माँ को सौंप देना। इसलिए सुल्ताना—

रज़िया—(सब कुछ सुनकर) सुल्ताना मैं नहीं। धन-दौलत और हुकूमत सुल्ताना बनने के निशान नहीं। मैं आज समझ गई कि हक़ीक़त में सुल्ताना कौन है। (लैला के पैरों की धूल माथे पर लगाकर) विदा, सुल्ताना !

लैला—(सकपकाकर) विदा जनाव !

(चली जाती है)

जीवन

लेखक, पंडित उदयशंकर भट्ट

यह कैसा क्या मैंने पाया ?
क्या जाने किस अनजाने में
यह कटु-कटुतर, यह मृदु-मृदुतर
सरि लहरों-सा चंचल, सुखकर
यह ओस-कणों-सा जब तब ढल
स्मृतियों की ग्रन्थि बाँध अंचल
मैं निज को बहलाने आया, क्या कैसा मैंने यह पाया ?

क्यों अनचाहा इसमें मिलता ?
औ' चाहा मिलता नहीं ख़ूब !
मैं इसी दशा से ऊब-ऊब
आशा-सी निज आँखें पसार
कुछ ढूँढ़ रहा हूँ बार-बार !
कुछ जाना कुछ न जान पाया यह कैसा क्या मैंने पाया ?

रजनी में सरिता-सा अपार
मैं देख पा रहा एक छोर
आगे की कोई नहीं कोर
क्या जानूँ केवल वर्तमान
दिन-सा उज्ज्वल, निशि-सा अजान
मेरी सीमा-सा बन आया ! क्या कैसा यह मैंने पाया ?

मूल्याधिकार और अत्यधिक युद्ध-लाभ

लेखक, श्रीयुत अमरनारायण अग्रवाल, एम० ए०

[आज-कल हमारे देश में माल की क़ीमत बहुत बढ़ रही हैं। सरकार ने हस्तक्षेप करके इस प्रयत्न के रोकने की चेष्टा की है। इस लेख में इसी विषय पर प्रकाश डाला गया है।]

द्ध के समय अत्यधिक लाभ उठानेवालों की समस्या सरकार के सामने उपस्थित होती है, जिसको हल करने के लिए उसे मूल्य-निर्धारण की नीति हाथ में लेनी पड़ती है। जैसा कि सब जानते हैं, लाभ किसी वस्तु के विक्रय-मूल्य से उसके उत्पादन-मूल्य को घटा देने से मिलता है। पूँजीवादी आर्थिक प्रणाली में लाभ का खास स्थान है; क्योंकि यह व्यक्तिगत जोखिम झेलनेवाले का पुरस्कार है। यदि यह पुरस्कार प्राप्य नहीं है तो कोई जोखिम ही क्यों उठायेगा? इस कारण लाभ का होना आवश्यक हो जाता है।

इस प्रकार साधारण लाभ तो आवश्यक है, पर असाधारण और अत्यधिक लाभ जो उपभोक्ताओं का गला काटकर वसूल किया जाता है, न तो ज़रूरी ही है और न क्षम्य ही। इस प्रकार के लाभ को अँगरेज़ी-भाषा में 'प्राफ़ीटियरिंग' कहते हैं। हिन्दी में इस प्रकार का कोई अधिकारी शब्द नहीं है, पर हम इसे 'अत्यधिक या अन्यायपूर्ण लाभ' कह सकते हैं। इसका अर्थ होता है अन्यायपूर्ण तरीक़ों से बहुत ज्यादा फ़ायदा उठाना। 'प्राफ़ीटियरिंग' शब्द महायुद्ध के समय गढ़ा गया था जब तत्कालीन माँग और पूर्ति की दशाओं में निर्धारित उचित लाभ से अधिक फ़ायदा उठाना खूब चालू हो गया था। अत्यधिक लाभ लेनेवाला व्यापारी समाज में सर्वदा निन्दनीय होता है।

आर्थिक नियमों के अनुसार लम्बे समय में किसी वस्तु का बाज़ार-मूल्य उसके उत्पादन-व्यय के बराबर होता है। क्योंकि यदि बाज़ार-मूल्य उत्पादन-मूल्य से अधिक है तो लाभ में वृद्धि होगी, पुराने उत्पादक अधिक तादाद में माल पैदा करना आरम्भ कर देंगे और नये उत्पादक उस क्षेत्र की ओर आकर्षित होंगे। तब माल की पूर्ति बढ़ जायगी परिणामस्वरूप बाज़ार-मूल्य गिरेगा और वह उत्पादन-मूल्य के समान हो जायगा। अब तनिक समस्या के दूसरे पहलू पर विचार कीजिए। मान लीजिए कि बाज़ार-मूल्य उत्पादन-मूल्य से कम है तो इसका फल क्या होगा। उत्पादकों को हानि होगी, कुछ उत्पादक दूसरे पेशे ग्रहण कर लेंगे, शेष कम तादाद में माल पैदा करेंगे। पूर्ति में इस प्रकार कमी हो जायगी और वस्तु के मूल्य में वृद्धि होगी और शीघ्र ही बाज़ार-मूल्य उत्पादन-मूल्य के बराबर हो जायगा। इस प्रकार लम्बे समय में बाज़ार-मूल्य उत्पादन-मूल्य के बराबर ही रहता है।

अल्पकाल में ये दोनों मूल्य समान नहीं रहते। बाज़ार-मूल्य कभी तो उत्पादन-व्यय से अधिक होता है और कभी कम। यदि बहुत-से मनुष्य एक खास वस्तु को खरीदना आरम्भ कर दें तो उसका मूल्य बढ़ जायगा। इसके विपरीत यदि उनकी माँग शिथिल हो जाय तो मूल्य घट जायगा। पर साधारण या सामान्य अवस्था और काल में यह अन्तर साधारण होता है। फलस्वरूप उत्पादकों को हानि या लाभ जो कुछ भी होता है वह अत्यधिक नहीं होता, वास्तव में हम लोग मूल्य (बाज़ार-मूल्य) और व्यय (उत्पादन-व्यय—उत्पादन-मूल्य) की लगभग समानता के इतने आदी हो गये हैं कि ज्यों ही व्यापारी साधारण माँग और पूर्ति की दशा का लाभ उठाकर मूल्य को व्यय से बहुत ऊँचा कर देते हैं, त्यों ही हम शिकायत करने लगते हैं।

अब हम उन दशाओं या अवस्थाओं पर प्रकाश डालेंगे जिनमें व्यापारी व्यय से मूल्य को बहुत ऊँचा कर देते हैं। ऐसी अवस्थाओं में सरकार को मूल्य-निर्धारण की नीति का प्रयोग करना पड़ता है, जिससे अत्यधिक लाभ का उदय न हो।

बहुधा ऐसी दशा प्रकट हो जाती है जब माल बेचनेवाले माल की बनावटी कमी का विज्ञापन करते हैं और माल की क़ीमत बढ़ाकर उपभोक्ताओं का शोषण करते हैं। माल की बनावटी कमी या तो माल का स्टाक न

निकालने से उत्पन्न की जा सकती है और या ग़लत अफ़वाहें उड़ाने से। यदि व्यापारी अपने उद्देश्य में सफल हो गये तो इन्हें बहुत लाभ होता है। युद्ध के छिड़ने के समय से हमारे देश के अधिकांश में ऐसा ही हुआ है। ये कार्य सामाजिक दृष्टि से दोषपूर्ण हैं और सचमुच सज़ा देने योग्य हैं।

कभी कभी व्यापारी लोग अपनी पारस्परिक स्पर्धा भुलाकर संगठित रूप से माल की क़ीमत बढ़ा देते हैं और मनमाना लाभ उठाते हैं। यह संगठन या तो 'ट्रस्ट' बन जाने पर अर्थात् स्पर्धा करनेवाले फ़र्मों के एक फ़र्म में घुलमिल जाने पर होता है और या युद्ध के समय में जब सब व्यापारी यह समझने लगते हैं कि फ़ायदा उठाने का यह स्वर्ण अवसर है। ऐसे संगठन के समय आराम या भोगविलास की वस्तुओं का मूल्य आवश्यकता (या माँग-पूर्ति-निर्धारण बिन्दु) से अधिक नहीं बढ़ाया जाता; क्योंकि इन वस्तुओं की माँग में लोच बहुत होती है। इसलिए जितना प्रतिशत मूल्य बढ़ाया जायगा, उससे अधिक प्रतिशत माँग में कमी होगी। यह बात आवश्यकताओं की वस्तुओं पर लागू नहीं। गेहूँ, बाजरा, नमक, सस्ता कपड़ा आदि वस्तुएँ ज़रूर ही खरीदी जायँगी—बिना इनके जीवन ही असम्भव है—चाहे इनका मूल्य कितना ही क्यों न बढ़ जाय। इसलिए व्यापारी लोग माँग में अधिक कमी का डर ताक़ में रखकर (क्योंकि ऐसा हो ही नहीं सकता) इन चीज़ों की मनमानी क़ीमत बढ़ा सकते हैं और बढ़ाते हैं। अभाग्यवश इससे ग़रीबों को बहुत कष्ट होता है; इन चीज़ों के मूल्य में वृद्धि होना तो ज़िन्दगी पर टैक्स लगाने के बराबर है। इसलिए यह प्रवृत्ति निन्दनीय है।

व्यापारियों की उपभोक्ताओं का शोषण करने की शक्ति उस हालत में और भी बढ़ जाती है जब खरीददारों की आमदनी में वृद्धि होती है, क्योंकि ऐसे समय में वे ज़्यादा क़ीमत देकर माल खरीद सकते हैं। युद्ध के समय में बहुत-से मनुष्यों की आमदनी बढ़ जाती है, जिसके फलस्वरूप व्यापारी लोग भी मूल्य बढ़ाकर उनका शोषण करना आरम्भ कर देते हैं।

अब तक हमने इस विषय के सिद्धान्त की विवेचना की है। अब हम अपने देश की वर्तमान मूल्य-समस्या पर संक्षेप में विचार करेंगे। ज्योंही युद्ध छिड़ा, त्योंही देश के व्यापारियों ने बनावटी कमी का ढोंग रचकर आवश्यकताओं की वस्तुओं की क़ीमत आसमान पर चढ़ाकर और आदमियों की आमदनी में काल्पनिक वृद्धि का लाभ उठाकर उपभोक्ताओं का शोषण करना आरम्भ कर दिया। पर प्रान्तीय सरकारों ने भारतीय-रक्षा-नियमों के ८१वें नियम को कड़े रूप से शीघ्र ही लागू कर दिया। इसके अनुसार बहुत-सी वस्तुओं के मूल्य सरकार-द्वारा निर्धारित किये जा रहे हैं। यह निर्धारण पहले तो मामूली-सा ही था, पर आज-कल यह बहुत कड़ाई के साथ किया जा रहा है। इस सामयिक हस्तक्षेप ने इस रोग को क़ाबू के बाहर होने के पूर्व ही दबा दिया है और हमारे निर्धन देशवासियों को इससे बहुत संतोष मिला है।

व्यापारियों ने इस प्रकार के सरकारी हस्तक्षेप के विरुद्ध कुछ दलीलें पेश की हैं, जिन पर विचार करना आवश्यक है। वे पूछते हैं कि जब हम नुक़सान उठाते हैं तब तो सरकार कभी हमारी सहायता नहीं करती; फिर जब हमें लाभ उठाने का मौक़ा हाथ लगा है तब वह क्यों हस्तक्षेप करती है। इस दलील का पहला भाग जिस पर दूसरा भाग निर्भर है, मिथ्या है। सरकार संरक्षण, चलन पर अधिकार आदि रीतियों-द्वारा व्यापार की रक्षा करने का प्रयत्न करती है, इसके अतिरिक्त सरकार को उपभोक्ताओं का भी भला सोचना है। केवल उत्पादकों का ही नहीं। दूसरी दलील माल बेचनेवाले यह देते हैं कि साधारण लाभ का कोई माप हो ही नहीं सकता, फिर यह कैसे कहा जा सकता है कि अमुक बिन्दु से असाधारण या अत्यधिक लाभ होना आरम्भ होता है। यह कथन सत्य तो अवश्य है, पर यहाँ यह समझ लेना भी ज़रूरी है कि इन मामलों में निगाह मापात्मक नहीं, बल्कि गुणात्मक होनी चाहिए। हमें केवल यह देखना है कि लाभ का उदय कैसे होता है। यह जानने के पश्चात् यदि आवश्यक हो तो हम एकदम ठीक नहीं तो जितना ठीक हो सके उतना ठीक अन्दाज़ लगाकर उचित कार्य कर सकते हैं।

चार कवितायें

(१)

सखि, जागो अब हुआ सवेरा !
विहगों का कलरव सुन पड़ता
प्राणों में नव-जीवन भरता
लाल रंग से चित्र बनाता
प्राची में वह प्रात-चितेरा !

वन-उपवन में कलियाँ हँस कर
कहती हैं प्राणों में मधु भर
निखिल विश्व अलि, सुन्दर सुखमय
बरस रहा है प्रेम घनेरा !

कैसी बातें करतीं भोली
यह केवल दो दिन की होली
मधु से रीता होगा जब उर
दीखेगा तब जगत अँधेरा !

क्या होगा मधु मधु कहने से
मिथ्या भ्रम में नित रहने से
अरुणोदय में हँस उठ तू भी
बीती रजनी हुआ सवेरा !

(२)

गाती हूँ मैं नैन बरसते,
बहुत दूर पर उसको देखा
थी उज्ज्वल प्रकाश की रेखा
कब होगा ज्योतिर्मय उर अलि,
मेरे व्याकुल प्राण तरसते !
गाती हूँ मैं नैन बरसते !

विविध रंग से चित्र बनाती
अति तन्मय हो, रोती, गाती
रही सदा करुणा की प्यासी
किन्तु सभी जन मुझ पर हँसते !
गाती हूँ मैं नैन बरसते !

शासन किया सदा निज मन पर
व्रत पूजा की है जीवन भर
अब यह संध्या की बेला भी
बीतेगी क्या सहते-सहते ?
गाती हूँ मैं नैन बरसते !

—तारा पांडे

(१)

उठ सखि ! उठ जग को अपना ले !
दुनिया की हलचल में खो जा,
जग तेरा तू जग की हो जा,
इससे तुझको व्यथा मिली है पर तू इसको गले लगा ले।

आज न तेरे लिए कहीं गति !
लेकिन कर न स्वप्न की यों इति,
उठ सखि ! सूखी ही क्यारी में जीवन के आधार उगा ले।

अरी ! भूल जा वह बीता कल,
वर्तमान के पार निकल चल,
राग और अनुरागों से आशा का जादू-भवन सजा ले।

(२)

कैसी तेज धूप हो आई !
सुखद सुबह का अन्त हुआ जब,
दोपहरी का उदय हुआ तब,
किसी एक की अवनति में सखि ! किसी एक की विजय समाई।

कितनी बाधाओं से लड़कर,
दुख से भिड़कर, आगे बढ़कर,
आज चमक उठने की नभ में इसने मधुमय घड़ियाँ पाई।

तू क्यों रो दिन खोती अपने ?
चल सखि ! मधुर सजा कुछ सपने,
नये दिवस के लिए देख यह नई उमंगें हैं कुछ लाई।

—रूपकुमारी वाजपेयी, बी० ए०

संयुक्त-प्रान्त में साक्षरता

लेखक, श्रीयुत परशुराम श्यामपुरी

(१)

नवाब सिराजुद्दौला के अनेक गुणों में से—जैसा कि अँगरेज इतिहास-लेखकों का मत है—एक गुण यह भी था कि वह यह नहीं जानता था कि उसके महल के बाहर क्या है। अपने राज्य का ही एक नगर होने पर भी कलकत्ता का उसने नाम भर सुना था, उसे देखा नहीं था। यह उन दिनों की बात है जब ब्रिटिश सत्ता कम्पनी के रूप में बंगाल में अपने पैर जमा चुकी थी और धीरे-धीरे वहाँ की घरेलू राजनीति में भी दखल देने लगी थी। अँगरेज़ों के ज्ञान की मात्रा निस्सन्देह उन दिनों बहुत अधिक रही होगी, क्योंकि वे सात समुद्र पार करके इस देश में पहुँचे थे। इस घटना के एक शताब्दी से कुछ अधिक बाद जब एक दयालु गवर्नर-जनरल महोदय ने भारतीयों की मूढ़ता पर तरस खाकर डाक के मुहकमे की व्यवस्था की और उनके लिए एक पैसे व आध आने के टिकट चालू कर दिये तब युक्त-प्रान्त के एक देहाती जमींदार के यहाँ कलकत्ते से एक चिट्ठी आई। उस गाँव से आठ कोस की दूरी पर एक नया डाकखाना खोला गया था और उसी का पोस्टमैन अपने थैले में वह चिट्ठी रखकर लाया था। डाकिये के चारों ओर गाँववालों का घेरा लग गया और सब कौतूहल व आश्चर्यभरी दृष्टि से उस अज्ञातपूर्व वस्तु 'चिट्ठी' की ओर देखने लगे। जमींदार साहब के महत्त्व में इस चिट्ठी की घटना से बहुत वृद्धि होगई और घर के दास-दासियों से लगाकर प्रजा के किसानों तक में यह चर्चा बड़े आश्चर्य के साथ फैल गई कि जमींदार साहब सचमुच बड़े आदमी हैं ! उनके पास तो कलकत्ते से "चिट्ठी" आई है।

कौतूहल की मात्रा कुछ घटने पर 'चिट्ठी' पढ़ने की कोशिश की गई। स्वयं बड़े सरकार ने अपने हाथों से लिफ़ाफ़ा खोला, उसमें से तहाये हुए काग़ज़ को निकालकर सीधा किया और उसे सिर से पैर तक एक बार देखा। फिर उसे अपने कारिन्दा के हाथ में दे दिया। कारिन्दा ने पटवारी को बुलाकर पत्र
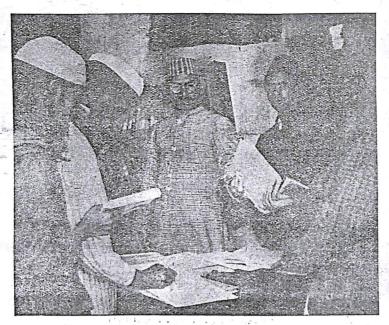
[एक ग्राम-पुस्तकालय का भीतरी दृश्य]

दिखाया, फिर पंडित जी बुलाये गये, पर कोई उस पत्र का रहस्य न खोल सका ! पत्र 'ओनामासीधं' वाली 'कैथी' में लिखा था; कारिन्दा व पटवारी 'पारसी' जानते थे; और पंडित जी थे 'मुखाग्र' के पंडित ! इन मौलवियों और पंडितों को छोड़कर साधारण लोगों के लिए यह बात सचमुच उन दिनों जादूगरी ही समझी जाती होगी कि कोई एक हज़ार कोस से काग़ज़ पर कुछ काले-काले निशान करके भेज दे और दूसरा उस काग़ज़ को देखकर उसके मन की बात जान ले ।

(२)

इस घटना को भी अब एक शताब्दी होने आई है। ब्रिटिश सरकार भारत में लगभग १५० वर्ष से एकच्छत्र राज्य कर रही है और प्रजा की शिक्षा व भलाई के लिए, उसकी क्रमिक बौद्धिक व सांस्कृतिक उन्नति के लिए शक्ति भर प्रयत्न करती आ रही है। हज़ार दो हज़ार नहीं, कई लाख रुपये प्रतिवर्ष 'शिक्षा' पर ही व्यय कर रही है। फलस्वरूप किसी गाँव में 'चिट्ठी' का आना अब उतने आश्चर्य की बात नहीं समझी जाती है। हाँ, वहाँ 'अख़बार' का आना अलबत्ता वैसा ही 'अद्भुत' बना हुआ है। और जो अख़बार पढ़ता है—ऐसा सौभाग्यशाली दो-चार गाँवों में एक-आध ही होता है—वह 'बहुत विद्वान्' समझा जाता है। वस्तुस्थिति यह है कि अब हमारे देश में साक्षरों की संख्या सब मिलाकर ६.१ प्रतिशत तक पहुँच गई है ! और यह है लगभग १५० वर्षों के अनवरत परिश्रम का महाफल ! रूस और फ़िनलैंड का संघर्ष आरम्भ हो जाने से फिनलैंड की ओर भी हमारा ध्यान जाने लगा है। हम पढ़ते हैं कि फ़िनलैंड में—जो बीस वर्ष पहले रूस का ग़ुलाम था—आजकल एक भी निरक्षर नहीं है और सी लिए उस ३५-३६ लाख आबादीवाले देश में ६५३ अख़बार अच्छी तरह चल रहे हैं। अपने २० साल के स्वातंत्र्य काल में ही उस
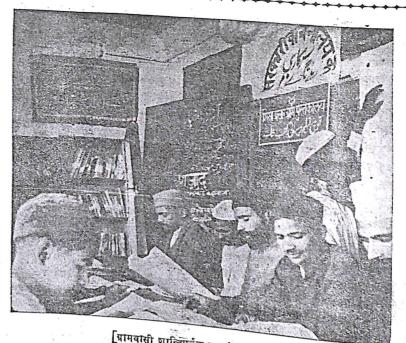
[ग्रामवासी शान्तिपूर्वक पुस्तकें पढ़ रहे हैं।]

देश का सामयिकता से इतना मेल कर लेना सचमुच हमारी दृष्टि से आश्चर्य की बात हो सकती है, क्योंकि हमारी समझ से तो १५० वर्ष के घोर प्रयत्न से भी ६.१ प्रतिशत से अधिक जनता साक्षर नहीं बनाई जा सकती।

शिक्षा-यन्त्र हमारे यहाँ कुछ ऐसे ढंग से चलता रहा है कि 'साक्षरता' का अधिक प्रचार नहीं हो पाया। हम देखते हैं कि सन् १९३५-३६ तक कुल खर्च का १३.२३ प्रतिशत शिक्षा पर व्यय होता था, और जब कि पुलिस पर १५.८ प्रतिशत व्यय होता था। इस कुल १३.२३ प्रतिशत में से हमारे सूबे में १२ प्रतिशत तो विश्वविद्यालयों पर व्यय हो जाता है और २५ प्रतिशत प्रारम्भिक शिक्षा पर व्यय होता है। चाहिए तो यह था कि साक्षरता-प्रचार के लिए प्रारम्भिक शिक्षा पर अधिक व्यय किया जाता और उच्च शिक्षा पर कम, क्योंकि ग़रीब जनता तो प्रारम्भिक शिक्षा ही पा सकती है। इसी लिए स्काटलैंड जैसे देशों में विश्वविद्यालयों पर केवल ६ प्रतिशत व्यय होता है और प्रारम्भिक शिक्षा पर ६८ प्रतिशत।

सरकार की परिस्थिति इस सम्बन्ध में स्पष्ट ही है। सन् १८१४ की ३ जून को पहले-पहल १ लाख रुपया सरकार ने भारत की जनता को शिक्षित करने के लिए स्वीकृत किया था। अब १९४० तक तो यह रक़म २६ करोड़ तक हो गई है। फिर भी यदि जनता साक्षर न हो तो इसमें सरकार का क्या दोष ! बात यह है कि यहाँ की आबादी भी तो ज़रूरत से कहीं ज़्यादा है। सरकार ने तो अपनी शक्ति भर किया, फिर भी वर्ष में वह प्रतिव्यक्ति १) व्यय कर सकी है तो क्या किया जाय ? हाँ देशी नेता अवश्य इसके लिए कुछ आन्दोलन करते रहे हैं।

(३)

परन्तु इधर जब से कांग्रेसी सरकारों के हाथ में कतिपय सूबों के प्रबन्ध का भार आया, स दिशा

में खासी चहल-पहल हो गई है। युक्तप्रान्तीय सरकार ने तो इस ओर जितनी तत्परता दिखलाई है वह प्रशंसनीय है। गत वर्ष १५ जनवरी को प्रान्त के कोने कोने में साक्षरता-दिवस बड़े समारोह से मनाया गया था। जनता व अफ़सरों ने समान-मनोयोग से उसमें भाग लिया था। १ साल के बाद गत ४ फ़रवरी को फिर साक्षरता-दिवस इस प्रान्त में मनाया गया और इसी समय सालभर के काम की एक रिपोर्ट भी प्रकाशित की गई है। इस रिपोर्ट से ज्ञात होता है कि यदि इस काम में ऐसी ही तत्परता दिखलाई जाती रही तो सचमुच जैसी कि कांग्रेसी सरकारों की स्कीम थी, ५ वर्ष में ही सूबे में फ़िनलैंड जैसी साक्षरता का अवश्य ही प्रसार हो जायगा।

वास्तव में युक्तप्रान्त की कांग्रेसी सरकार ने इस योजना को बड़े सुसंगठित रूप से चलाया है। सुविधा के लिए यह दो प्रकारों में बाँट दी गई है। एक तो निरक्षरों को साक्षर करने का प्रयत्न और दूसरा उनकी साक्षरता को बनाये रखने का प्रयत्न।

साक्षर बनाने के लिए प्रान्त भर में ९६० पाठशालायें खोली गई हैं। इनमें एक एक मास्टर है, जिसके जिम्मे पड़ोस के ८–१० ग्रामों को साक्षर बना देना है। इनके सिवा ९१५ स्कूलों को भी प्रौढ़ शिक्षा के लिए विशेष सहायता दी गई है। कारखानों, बैंकों, डिस्ट्रिक्ट और म्यूनिस्पल बोर्डों से भी अनुरोध किया गया कि वे अपने अपने नौकरों को साक्षर बनाने का उद्योग करें। इण्टरमीजियट, मिडिल और हाई स्कूलों से—जिनकी संख्या ११९७ है, इस योजना के अनुसार एक एक गाँव लेकर शिक्षाक्षेत्र तैयार करने का अनुरोध किया गया और ४३७ स्कूलों ने इसमें काम भी किया है।

प्रान्त के विद्यार्थियों ने भी इस योजना में बड़ी उत्सुकता से भाग लिया है और उनके प्रयत्न से १,५३,२५१ व्यक्तियों को हस्ताक्षर करना आगया है।

'बोनस' पद्धति द्वारा भी इस योजना में बड़ी सहायता मिली है। एक निरक्षर को साक्षर बनानेवाले को १) दिया गया है। इस व्यवस्था से कुछ व्यक्ति साक्षर बनाये जा सके हैं।

जनवरी ३९ से लेकर दिसम्बर ३९ तक साक्षरता-योजना के प्रथम वर्ष में २,७९,६०४ व्यक्तियों ने साक्षरता के प्रमाण-पत्र प्राप्त किये। इसी प्रकार ग़ैर सरकारी तौर पर शिक्षा प्राप्त करनेवालों की संख्या कई हज़ार हो गई है। उपर्युक्त आँकड़ों को देखकर यह विश्वास के साथ कहा जा सकता है कि साक्षरता-आन्दोलन को पहले वर्ष में आशातीत सफलता प्राप्त हुई है।

शिक्षा में लोगों की रुचि बनाये रखने तथा प्राप्त शिक्षा से फ़ायदा उठाने के लिए ७९० ग्राम-पुस्तकालयों और ३,६०० ग्राम-वाचनालयों का भी उद्घाटन प्रान्त भर में धूमधाम से किया गया है। वाचनालयों और पुस्तकालयों ने भी साक्षरता के प्रसार में एक नई जान डाल दी। गाँवों में बड़ी दिलचस्पी के साथ ये पुस्तकालय और वाचनालय अपनाये गये हैं।

प्रत्येक ग्राम-पुस्तकालय में ३०० पुस्तकें रक्खी गईं, जिनमें धार्मिक पुस्तकों से लेकर हिन्दी-उर्दू के उपन्यास, कहानी-संग्रह और इतिहास तथा राजनीति-संबन्धी पुस्तकें भी शामिल हैं। ये ग्राम-पुस्तकालय पढ़ने-लिखने की सुविधाओं में आधुनिक पुस्तकालयों के समान ही अपने में पूर्ण हैं। इन पुस्तकालयों के अधीन पाँच से लेकर आठ मील तक के घेरे के ग्रामों में उप-पुस्तकालय खोले गये हैं, जिन्हें प्रतिमास अपने केन्द्र के ग्राम-पुस्तकालय से २० से लेकर ३० तक नई पुस्तकें प्रतिमास दी गई हैं। केन्द्रीय पुस्तकालयों के अध्यक्ष इन सब किताबों का हिसाब-किताब रखते हैं। इन उप-पुस्तकालयों-द्वारा गाँवों के लोगों को बिना किसी चन्दे के या दाम जमा कराये पुस्तकें पढ़ने को दी गई हैं; और तारीफ़ यह कि इन पुस्तकालयों की एक भी किताब पढ़नेवालों ने नहीं नष्ट की। केवल ५० पुस्तकें इस वर्ष गुम हुई थीं, जिनके दाम पढ़नेवालों ने पुस्तकालयों में जमा कर दिये हैं। इस प्रकार सारे प्रान्त में कुल मिलाकर गत वर्ष १,५८,७२१ पुस्तकें हिन्दी-उर्दू की तथा ५१,०१५ दूसरी पुस्तकें शिक्षा-प्रसार-विभाग की ओर से प्रदान की गई हैं। इन ग्राम-पुस्तकालयों-द्वारा जनवरी ३९ से दिसम्बर ३९ तक पाठकों में वितरित की जानेवाली पुस्तकों की संख्या १२,२०,१३१ रही।

इसी प्रकार ३,६०० ग्राम-वाचनालयों का प्रबन्ध भी गत वर्ष चलता रहा। प्रत्येक ग्राम-वाचनालय में हिन्दी-उर्दू के दो साप्ताहिक पत्र और हिन्दी-उर्दू का एक-एक मासिक पत्र दिया गया। आवश्यकता देखकर कतिपय

[गाँव के लोग वाचनालय में समाचार-पत्र सुन रहे हैं।]

वाचनालयों में अधिक पत्रों का भी प्रबन्ध किया गया। जिन स्थानों में शिक्षित स्त्रियाँ थीं वहाँ के वाचनालयों में विशेषरूप से स्त्रियोपयोगी पत्र-पत्रिकाओं का प्रबन्ध किया गया। प्रतिसप्ताह भेजे जानेवाले पत्रों की संख्या का क्रम इन वाचनालयों में ७,२०० रहा है तथा ४,१५० मासिक पत्र भी प्रतिमास भेजे जाते रहे हैं। ग्राम-वाचनालयों में सन् १९३९ में उपस्थिति-संख्या ३९,३४,२१७, रही है। ग्राम-वाचनालयों के अध्यक्षों को अशिक्षित ग्रामवासियों को समाचार-पत्र पढ़कर सुनाने का काम भी सौंपा गया। इसके लिए एक निश्चित समय पर वाचनालय में अपढ़ ग्रामवासी समाचार-पत्र सुनने के लिए आ जाते थे और वाचनालय के अध्यक्ष उन्हें नियमानुसार समाचार पढ़कर सुनाने का कार्य सम्पादन करते रहे। इस कार्य के लिए सरकार की ओर से उन्हें प्रतिमास एक रुपया पुरस्कार दिया गया। गत वर्ष आधे करोड़ से ऊपर अपढ़ ग्रामवासियों को समाचार पढ़कर सुनाये गये।

सरकारी पुस्तकालयों के अतिरिक्त ग़ैर-सरकारी ग्राम-पुस्तकालयों और वाचनालयों को शिक्षा-प्रसार-विभाग की ओर से ३० रुपये से लेकर ९२ रुपये तक की सालाना सहायता दी गई।

इस प्रकार साक्षरता-आन्दोलन का प्रथम वर्ष सफलतापूर्वक समाप्त हुआ जिसने लाखों अपढ़ ग्रामवासियों को अशिक्षा के अन्धकार से निकालकर शिक्षा की नई ज्योति प्रदान की है। इस साल फिर साक्षरता-दिवस के साथ आन्दोलन का दूसरा वर्ष स्त्रियों में साक्षरता-प्रसार के साथ प्रारम्भ हुआ। कांग्रेस-सरकार-द्वारा प्रारम्भ किया गया यह महा प्रयास, आशा है, तब तक लगातार जारी रहेगा, जब तक प्रान्त से निरक्षरता का सर्वथा विनाश न हो जायगा।

१९३९ का क़ानून क़ब्ज़ा आराज़ी और ज़मींदार

लेखक, रायबहादुर पंडित राजनारायण मिश्र

[किसानों के नये क़ानून का परिचय गत अंक में छपा है। ज़मींदार लोग उस क़ानून को किस दृष्टि से देखते हैं, इसका दिग्दर्शन इस लेख में कराया गया है। आशा है, पाठकों को ऐसे लेखों से इस क़ानून का अधिकाधिक परिचय होगा। हम आगे के अंकों में इस महत्त्वपूर्ण क़ानून पर और भी अधिक प्रकाश डालने का प्रयत्न करेंगे।]

प्रान्तीय असेम्बली के आख़िरी चुनाव के समय कांग्रेस ने काश्तकारों को यह वचन देकर वोट लिया था कि उसके प्रतिनिधि बेदख़ली बन्द करवा देंगे और लगान अगर बिलकुल बन्द न किया जा सकेगा तो कम अवश्य कर दिया जायगा। काश्तकारों ने इन वचनों की पूर्ति की आशा में कांग्रेस को वोट दिया। जब कांग्रेस ने गवर्नमेंट चलाना स्वीकार किया तब थोड़े ही दिनों के बाद एक कमिटी मुक़र्रर की गई और उसको हिदायत दी गई कि आगरे के क़ानून क़ब्ज़ा आराज़ी १९२६ व अवध के क़ानून लगान १८८६ (तरमीम किया हुआ) की जाँच करे और ऐसा विधान पेश करे जिसमें काश्तकारों का हित हो। इस कमिटी की रिपोर्ट पर गवर्नमेंट के निर्णय के अनुसार एक अफ़सर मुक़र्रर किया गया, जिसने एक बिल (क़ानून का मसविदा) तैयार किया और वह २०-३-३८ को असेम्बली में पेश हुआ और बहुत-से परिवर्तनों के बाद क़ानून बनानेवाली दोनों सभाओं से पास होकर उसने ६-१२-३९ को गवर्नर की स्वीकृति प्राप्त की।

इस क़ानून के सम्बन्ध में कांग्रेसी लोगों का कहना है कि यह पहला ही ऐसा क़ानून है जो काश्तकारों के हित के लिए बनाया गया है। उसके विरुद्ध ज़मींदारों का ख़याल है कि इस क़ानून से उनकी मिलकियत पर आघात पहुँचाया गया है, और उसमें बहुत-सी ऐसी बातें हैं जिनसे काश्तकारों का विशेष फ़ायदा न होगा बल्कि काश्तकार और ज़मींदार के बीच वैमनस्य पैदा हो जायगा।

इसमें कोई सन्देह नहीं कि जिस बात में काश्तकार का फ़ायदा समझा गया है उसका विधान इस क़ानून में कर दिया गया है, लेकिन यह कहना कि इसके पहले कोई क़ानून रिआया के हित का नहीं बना, बिलकुल ग़लत है। सन् १७८८ में जब इस सूबे का कुछ हिस्सा कम्पनी के हाथ में था, डंकन साहब ने एक हुक्मनामा २५ जनवरी सन् १७८८ को निकाला था, जिसके अनुसार इस्तमरारी बन्दोबस्त सन् १७९५ में किया गया। उसमें काश्तकारों के हित के लिए इस क़ानून से कहीं ज़्यादा विधान किया गया था। यह दुःख की बात है कि इस्तमरारी बन्दोबस्त केवल बनारस की कमिश्नरी के ज़िलों में और आज़मगढ़-ज़िले के कुछ हिस्से में ही हो सका। सूबे के बाक़ी भाग में बोर्ड आफ़ रेवेन्यू के विरोध की वजह से वह बन्दोबस्त न हो सका। फिर भी सन् १८८४ व १९०१ और १९२६ के जो क़ानून जारी हुए उनमें एक के बाद दूसरे में काश्तकारों के हक़ बराबर बढ़ाये गये और अब जो क़ानून होता उसमें मौरूसी हक़ सब काश्तकारों को ज़रूर दिया जाता और उसका कोई ज़मींदार विरोध भी न करता। हाँ, कांग्रेसी लोगों का कथन अवध के काश्तकारों के बारे में ज़रूर बहुत कुछ सही है और दोनों सूबों के बारे में एक ही क़ानून कर देने में कांग्रेस गवर्नमेंट ने अवध के काश्तकारों का उपकार किया है। आगरा के सूबे के काश्तकारों में जिन काश्तकारों को अपनी जोत के बेचने का अधिकार इस्तमरारी बन्दोबस्त में दिया गया था वह सुरक्षित रक्खा गया है और अवध के जिन काश्तकारों को किसी अदालती डिगरी से या सन् १८५६ ई० के ३० वर्ष पहले से लगातार जोते रहने की वजह से जो विशेष अधिकार मिल गये हैं वे सुरक्षित रक्खे गये हैं। दोनों सूबों के बाक़ी काश्तकारों को जीवनपर्यन्त ही क़ब्ज़ा रखने का जो अधिकार था वह अधिकार अब मौरूसी कर दिया गया। वारिसों की श्रेणी में अवध में तो निज के क़ानून के रूप से ज़मीन जिसको पहुँचती थी

उसको मिलती थी। परन्तु आगरे में भाई आदि के लड़के को या लड़की के लड़के को उसी दशा में ज़मीन मिलती थी जब कि वह आख़िरी पुरुष काश्तकार के साथ शामिल जोत रहा हो। इस नये विधान से सौतेली माँ या आख़िरी पुरुष काश्तकार के ख़ानदान की और कोई विधवा या बिना ब्याही लड़की को एवं भाई के लड़के और चाचा के लड़कों को ज़मीन मिल जाया करेगी। इस क़ानून में एक ऐसी बात है जिसको कांग्रेस गवर्नमेंट समझती है कि अच्छा किया, परन्तु ज़मींदारों का ख़याल है कि इससे झगड़े बहुत पैदा होंगे। वह बात यह है काश्तकारों को अपने खेत में बिना किसी की इजाज़त के पेड़ लगाने के अधिकार की। जो लोग देहात की स्थिति को जानते हैं उनको पूरा विश्वास है कि बहुत-से काश्तकार पेड़ अपने फ़ायदे के लिए तो लगायेंगे नहीं, हाँ, पड़ोसी के खेत में मार पैदा कर देने के लिए शरारत ज़रूर करेंगे। ज़मींदारों के कहने सुनने से क़ानून में यह विधान कर दिया गया है कि अगर पेड़ों के लगाने से किसी का नुक़सान होता हो तो उसकी रज़ामन्दी ले लेनी चाहिए। लेकिन देहात में कौन रज़ामन्दी लेता है? वहाँ तो जिसकी लाठी उसकी भैंस का मामला रहता है। अभी तक जो लगान अदालत मुक़र्रर करती थी उसका हिसाब केवल इस बुनियाद पर लगाया जाता था कि उसी क़िस्म की ज़मीन के लिए और काश्तकार कितना लगान देते हैं, किन्तु नये विधान के हिसाब से अब यह देखा जायगा कि काश्तकार लोग उसी क़िस्म की ज़मीन के लिए १३०९ फ़० और १३१३ फ़० के बीच में क्या देते थे, उसी के साथ साथ पैदावार की क़ीमत जो उस समय थी और जो अब है उसका भी ध्यान रक्खा जायगा। इन सब बातों पर ध्यान रखते हुए यह विधान किया गया है कि किसी खेत का लगान उसकी पैदावार से १/५ से ज़्यादा न होगा। ज़मींदारों को पिछली शर्त पर बहुत एतराज़ था। उनका यह ख़याल है कि किसी खेत की मामूली पैदावार जानना कठिन ही नहीं, बल्कि असम्भव है। हर एक खेत की पैदावार किसान की मेहनत व अच्छे बीज व समय पर पानी देने पर निर्भर है। अच्छे किसान के हाथ में जाने से उसी खेत में दस मन फ़ी बीघा पैदा हो सकता है और सुस्त काश्तकार के हाथ में दो मन भी नहीं पैदा हो सकता।

सैकड़ों वर्ष से इस देश का यह नियम रहा है कि लगान नियत करने के समय काश्तकार की जाति का ध्यान रक्खा जाता था। ऊँची जाति के जो काश्तकार अपने हाथ से हल नहीं जोतते हैं उनके लगान की शरह उन काश्तकारों की शरह से कम होनी चाहिए जो अपने हाथ से हल जोतते हों। नये क़ानून में इस बात का ध्यान रखने का कोई नियम नहीं है। इसका फल यह होगा कि ऊँची जाति के काश्तकार खेती करना छोड़ देंगे या अपने हाथ से हल जोतेंगे। बेदख़ली के बारे में अभी तक यह नियम था कि अगर काश्तकार किसी क़िस्त या साल का लगान न दे या कोई काम ऐसा करे जो उसके पट्टे की शर्त के शान के ख़िलाफ़ हो तो वह बेदख़ल किया जाय।

बेदख़ली से किसान बहुत डरते हैं। और बेदख़ली के बन्द हो जाने की आशा से ही किसानों ने इतनी तादाद में कांग्रेसवालों को वोट दिया था। परन्तु बेदख़ली बन्द कैसे हो? अगर बेदख़ली का डर जाता रहे तो लगान ही वसूल न हो, इसलिए कांग्रेस-गवर्नमेंट को बेदख़ली का नियम रखना ही पड़ा। हाँ, किसानों के हक़ में सिर्फ़ इतना अवश्य कर दिया गया है कि बक़ाया लगान की डिग्री होते ही अगर रुपया न अदा हुआ तो भी बेदख़ली न होगी बल्कि किसान को लगान अदा करने को एक साल का समय मिलेगा। वह दूसरे साल १५ मई तक अगर दोनों साल का लगान व बेदख़ली का ख़र्च दे देगा तो वह अपने खेतों से बेदख़ल न होगा।

अभी तक गवर्नमेंट का यह ख़याल रहता था कि ज़मींदारों को लगान वसूल करने में हर तरह की सुविधा दी जाय, परन्तु इस नये क़ानून ने न केवल वह सुविधा ही दूर कर दी है, बल्कि कहीं कहीं रुकावट भी पैदा कर दी है। कच्ची कुर्की तो बन्द ही कर दी गई है। यह सच है कि कच्ची कुर्की से काश्तकार का बड़ा नुक़सान होता था, परन्तु उसका भय उसको लगान देने पर बाध्य करता था। बाज़ बाज़ सरकश काश्तकार तो कच्ची या पक्की कुर्की तक को नहीं मानते हैं, और कुर्क हुआ माल ज़बर्दस्ती काट लेते हैं। बाद को ज़मींदार बरसों लड़ा करता है और सैकड़ों रुपया ख़र्च करने पर किसान को कभी कभी कुछ सज़ा दिला पाता है। ऐसे काश्तकारों से गिरफ़्तार

कराकर ही लगान वसूल होता था । अब इस क़ानून से वह भी बन्द हो गया है। अब लगान का रुपया तुरन्त वसूल करने का यह तरीक़ा रह गया है कि किसानों की गाय-भैंस या फ़सल कुर्क कराई जाय । गाय-भैंस तो बहुत कम काश्तकारों के पास रहती है। रही फ़सल सो वह भी एक चौतिहाई से अधिक कुर्क नहीं होगी और कुर्की का खर्च ५) या ६) पड़ेगा ही। कभी कभी तो ऐसा होगा कि कुर्क किये हुए माल से ख़र्च भी नहीं पूरा होगा, बल्कि घाटा ही होगा । ऐसी सूरत में ज़मींदार फ़सल को क्यों कुर्क कराने लगा ? इस ऐक्ट में कोई कोई बात ऐसी भी पाई जाती है जिससे कांग्रेस की नीति का पता ही नहीं चलता है ! एक तरफ़ तो काश्तकार को अपने खेत में पेड़ लगाने का अधिकार दिया जाता है, दूसरी तरफ़ बाग़ की आराज़ी ख़ाली होने पर उस जगह के लिए उसको मौरूसी काश्तकार का हक़ दिया जाता है। अभी तो बेदखली के डर से बाग़ नहीं कटते थे। अब धड़ाधड़ बाग़ कटेंगे।

इस ऐक्ट में इस बात की कोशिश ज़रूर की गई है कि ज़मींदार ज़मीन का मालिक न माना जाय, और हर तरह से उसके स्वत्व का अपहरण किया गया है। उसको ५० एकड़ से ज़्यादा सीर रखने का अधिकार नहीं है और किसी अन्य ज़मीन पर उसको सीर के अधिकार नहीं प्राप्त होंगे । यह सीर का अधिकार ज़मींदार के लिए बहुमूल्य था । सीर की ज़मीन पर उसको मालगुज़ारी कम से कम =) फ़ी रुपया कम देनी होती थी । जिस समय वह चाहता, कुछ ज़मीन अपनी जोत में ला सकता था। उन ज़मींदारों को जिनके पास ५० एकड़ से कम सीर है, अब यह अधिकार नहीं रहा कि शिकमी काश्तकार को फ़ौरन बेदख़ल करा लेवें । उनको कम से कम ५ वर्ष तो इन्तज़ार करना ही पड़ेगा ।

इस नियम से और ऐसी दूसरी बातों से कि अगर ज़मींदार अपनी ज़मींदारी के किसी खेत में कुछ तरक़्क़ी करना चाहे तो उसको काश्तकार से लिखी मंज़ूरी लेनी चाहिए या अगर किसी काश्तकार की जोत से कोई खेत ज़मींदार ज़बर्दस्ती निकाल ले तो उस पर फ़ौजदारी का मुक़दमा चलना चाहिए, ज़मींदारों को यह सच्चा ख़याल पैदा हो गया है कि उनकी मिलकियत पर धक्का पहुँचाया जा रहा है । सबसे ज़्यादा ख़राब बात इस क़ानून में यह है कि तहसीलदारों को बहुत ज़्यादा अधिकार दे दिये गये हैं । इससे काश्तकार और ज़मींदार दोनों को नुक़सान ही पहुँचेगा और अगर ज़मींदारों ने ज़मीन को नीलाम कराना शुरू किया तो धीरे धीरे ज़मीनें काश्तकारों से निकलकर महाजनों के हाथ में चली जायँगी ।

कवि की अन्तर्वेदना

लेखक, श्रीयुत मित्तल

आज हृदय में क्रन्दन भर लाया हूँ
आज खोल मानस को पछताया हूँ
मैं पीड़ित मधु, प्यार कहाँ से लाऊँ ?
मैं आहत, मधु-गान कहाँ से पाऊँ ?
मेरे पास नहीं है मादक हाला !
और ढालनेवाली सुन्दर बाला !
मैं तो सीधा सादा देहाती हूँ
मेरे स्वर में दुख-दर्दों की ज्वाला;
मैं अनन्त के गीत नहीं गाता हूँ
दूर क्षितिज के पार नहीं जाता हूँ;

मेरी छोटी दुनिया कंगालों की
उनके उर की पीर बहा लाता हूँ;
'रुन-झुन' में विश्वास नहीं करता हूँ
मधुर-मिलन की आश नहीं करता हूँ
मैं दुखियों का एक चिरन्तन गायक,
छन्दों में बस कसक, आह भरता हूँ।
सुख की दुनिया दुख में क्या पायेगी ?
मेरी पीड़ा उसे न बहलायेगी।
चाहे हँस दे सुनकर सुख की दुनिया
मेरी कविता दुखियों को भायेगी।

हमारा प्रधान उपनिवेश
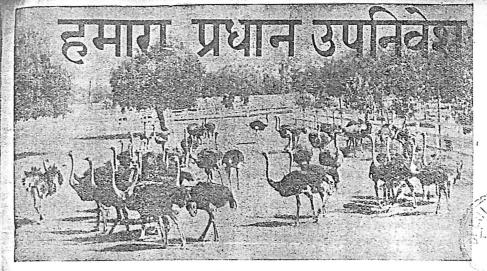
लेखक, श्रीयुत सेठ गोविन्ददास एम० एल० ए०

(८)

पोर्चुगीज़ पूर्वीय अफ़्रीका के दो प्रधान बन्दरगाह

दक्षिण-अफ़्रीका में प्रवेश करने के पहले पूर्वीय अफ़्रीका में हमें पोर्चुगाल-द्वारा शासित तीन बन्दरगाहों के दर्शन हुए—मौज़ंबिक, बैरा और लुरेंको मार्क्विस । लुरेंको मार्क्विस में ही जहाज़ से उतरकर हम लोग दक्षिण-अफ़्रीका की राजधानी जोहान्सबर्ग के लिए रेल से रवाना होनेवाले थे ।

जंज़ीबार से चलकर चार दिनों के बाद करंजा मौज़म्बिक पहुँचा। मौज़म्बिक के लोगों को मालूम हो गया कि मैं करंजा से दक्षिण-अफ़्रीका जा रहा हूँ । वहाँ के कई प्रतिष्ठित सज्जन मुझसे मिलने के लिए जहाज़ पर पहुँचे और मौज़म्बिक में उतरने के लिए आग्रह करने लगे। चूँकि जहाज़ वहाँ बहुत कम ठहरता था, इसलिए मैंने उन्हें लौटते हुए मौज़म्बिक उतरने का आश्वासन दिया ।

मौज़म्बिक से चलकर दो दिनों में हम बैरा पहुँचे। बैरा के अनेक प्रतिष्ठित सज्जन मेरे स्वागत के लिए जहाज़ पर आ गये और हम लोगों ने जहाज़ से उतरकर पोर्चुगीज़-राज्य की सीमा में पैर रक्खा । हमारे ठहरने की व्यवस्था श्री पुहूमल ब्रदर्स के मैनेजर श्री दयाराम के यहाँ की गई थी । ठहरने के स्थान पर जाने के बाद हम लोग बैरा देखने के लिए मोटरों पर निकले । बैरा छोटा-सा होने पर भी कितना सुन्दर बन्दरगाह था ! पोर्चुगाल की एक कम्पनी का इस बन्दरगाह पर राज्य था । इस कम्पनी का मिलान भारतवर्ष की सन् १८५७ के पहले की ईस्ट इण्डिया कम्पनी से किया जा सकता है । ४८ वर्ष पूर्व इस कम्पनी को पोर्चुगीज़ सरकार से ५० वर्ष के लिए चार्टर मिला था । दो वर्ष के पश्चात् यहाँ का शासन पोर्चुगीज़ सरकार के हाथ में चला जानेवाला है। इन ४८ वर्षों के भीतर इस नगर का निर्माण हुआ है। सुन्दर मकान, सड़कें, बाज़ार, होटल, क्लब, पुस्तकालय, स्कूल, अस्पताल सभी कुछ थे । यद्यपि इस कम्पनी का ठेका दो साल के बाद समाप्त हो जायगा, तो भी उसे यहाँ की प्रजा के आराम की ओर काफ़ी ध्यान है। सड़कें सुन्दर हैं और साफ़ रक्खी जा रही हैं। यहाँ की संस्थाओं को हर तरह की मदद की जा रही है। इस कम्पनी ने ईस्ट इण्डिया कम्पनी के सदृश उस देश का व्यापार नष्ट नहीं किया है । आज भी वहाँ गोरों, गेहुँओं और कालों में कोई भेद-भाव नहीं है । हिन्दुस्तानी पोर्चुगीज़ प्रजा न होते हुए भी पोर्चुगीज़ राज्य में ब्रिटिश साम्राज्य

की अपेक्षा कहीं अधिक सुख और सम्मान के साथ रहते हैं। वे हरएक क्लब के मेम्बर हो सकते हैं, हर एक होटल में रह सकते हैं, हर एक सिनेमा में जा सकते हैं। यहाँ के यदि किसी भी क़ानून से हिन्दुस्तानियों को असन्तोष है तो वह एमीग्रेशन का क़ानून है। यहाँ कोई हिन्दुस्तानी बिना ४५० पौंड जमा किये नहीं आ सकता है। इतना ही नहीं, जमा करने की यह रक़म जमा करने पर भी पोर्चुगीज़ गवर्नर जनरल को आने के लिए दरख़्वास्त देनी पड़ती है और इस दरख़्वास्त को बिना किसी कारण के भी नामंजूर कर देना गवर्नर जनरल के हाथ में है। सुना गया है कि केवल नये आनेवालों की ही ये दरख़्वास्तें नामंजूर होती हैं। पर ऐसा ही नहीं है। जो वर्षों पोर्चुगीज़ पूर्वी अफ़्रीका में रह चुके हैं वे यदि भारत जाते हैं और लौटकर आना चाहते हैं तो उनके भी रास्ते में सैकड़ों रोड़े अटकाये जाते हैं। कई कई दरख़्वास्त देनेवालों को तो महीनों और वर्षों कोई उत्तर ही नहीं मिलता। पोर्चुगीज़ सरकार के अच्छे नाम पर इमीग्रेशन की यह सख़्ती कलंक लगाती है और इस पर उसे विचार करना चाहिए। यहाँ तो भारतीयों की संख्या क़रीब ५–६ हज़ार ही है, पर भारत में तो पोर्चुगीज़ प्रजा लाखों की तादाद में रहती है। पोर्चुगीज़ सरकार के इस प्रकार के व्यवहार के कारण यदि भारतीय सरकार भी पोर्चुगीज़ प्रजा से इसी प्रकार का व्यवहार आरम्भ कर दे तो इसमें पोर्चुगीज़ को अधिक हानि उठाने की सम्भावना है।

घूमते घूमते हम लोग एक जंगली स्थान पर पहुँचे। जब मैंने पूछा कि यह जंगल किस चीज़ का है तब मालूम हुआ कि यह काजू का जंगल है। काजू के वृक्ष लीची के वृक्षों के सदृश होते हैं। उनमें आम के सदृश बड़े बड़े फल लगे थे, जिनके मुख पर ३–३, ४–४ काजू फले हुए थे।

बैरा की सैर करने के बाद हम लोग श्री दयाराम के निवासस्थान को लौटे। जहाज़ शाम को बैरा से रवाना होने को था, पर कोई सार्वजनिक कार्यकर्ता बिना भाषण देने की रस्म को अदा किये भला कैसे जा सकता था। श्री दयाराम को इन्फ़्लुएंज़ा था। उन्हें उसी दिन इन्जक्शन दिया गया था, पर स सबकी कोई परवा न कर उन्होंने चार बजे अपने बँगले पर ही टी-पार्टी और सभा का प्रबन्ध कर डाला। बैरा के सभी हिन्दुस्तानी इकट्ठे हो गये और मैंने भाषण देने की रस्म को पूरा किया। भाषण में मैंने पोर्चुगाल की सरकार और इस कम्पनी को उनके सम-व्यवहार के लिए धन्यवाद दिया और कहा कि यदि इस मामले में किसी को लज्जा से अपना मस्तक झुकाना चाहिए तो ब्रिटिश गवर्नमेंट को, जिसके साम्राज्य में हम उस साम्राज्य की प्रजा होते हुए भी उस सुख और सम्मान से नहीं रह सकते जिस सुख और सम्मान से उस साम्राज्य के बाहर रह सकते हैं।

संध्या को हम फिर करन्जा पर पहुँच गये और सूर्यास्त होते होते करन्जा ने बैरा छोड़ दिया।

१३ दिसम्बर के प्रातःकाल हम लुरेंको मार्क्विस पहुँचे। वार्फ़ पर मेरे स्वागत के लिए एक भारी भीड़ इकट्ठी थी। दक्षिण-अफ़्रीका की इण्डियन कांग्रेस ने अपनी ओर से दक्षिण-अफ़्रीका के प्रसिद्ध कार्यकर्ता स्वामी भवानीदयाल जी संन्यासी को मेरे स्वागत के लिए भेजा था। दक्षिण-अफ़्रीका की यूनियन गवर्नमेंट के प्रतिनिधि मेरे स्वागत को आये थे। टायरिया में हम लोगों से जिनकी मित्रता हो गई थी, लुरेंको मार्क्विस के वे व्यापारी श्री नटवरलाल जी भी मौजूद थे। इनके सिवा वहाँ के मर्चेंट-चेम्बर के सभापति, मन्त्री तथा अनेक व्यापारी भी आये हुए थे। करन्जा से विदा माँगकर हम लोग लुरेंको मार्क्विस में उतर पड़े। हम लोग उसी दिन जोहान्सबर्ग के लिए रवाना होना चाहते थे, पर यह लुरेंको मार्क्विस के लोगों को कब स्वीकृत हो सकता था। हमारी एक न चली और तीन दिन हमें लुरेंको मार्क्विस में ठहरने का निश्चय करना पड़ा।

लुरेंको मार्क्विस में हमारे ठहरने की व्यवस्था सेठ व्रजदास के यहाँ की गई थी। ठहरने के स्थान पर होकर मैं दक्षिण-आफ़्रिकन यूनियन कौंसलेट और ब्रिटिश कौंसलेट से मिला। यूनियन कौंसलेट ने मुझे यूनियन गवर्नमेंट के वे सब हुक्मनामे बताये जिनके द्वारा हिन्दुस्तानियों पर के सभी क़ानूनों से मैं तथा लक्ष्मीचन्द बरी कर दिये गये थे। कौंसलेट ने कहा कि आपके लिए न तो किसी परमिट की ज़रूरत है और न किसी ज़मानत की। आपके अँगूठे के निशान भी न लिये जायँगे और आप दोनों योरपियन सैलून से जोहान्सबर्ग की यात्रा कर सकते हैं। उन्होंने मुझे रेलवे तथा इमीग्रेशन आदि के अफ़सरों के नाम एक पत्र दिया, जिसमें कहा गया था कि मुझ पर वे सब क़ानून जो अन्य हिन्दुस्तानियों पर लागू होते हैं, लागू न होंगे। ब्रिटिश कौंसलेट से मेरी पोर्चुगीज़ अफ़्रीका में रहनेवाले हिन्दुस्तानियों के सम्बन्ध में बातें होती रहीं।

जब मैं ठहरने के स्थान पर लौटा तब मेरे सामने यह प्रश्न था कि अन्य हिन्दुस्तानियों पर सारे प्रतिबन्धों के रहते हुए मुझे जो सुविधायें दी जा रही हैं उनका उपयोग करना उचित है या नहीं। मेरी प्रबल इच्छा हुई कि मैं यूनियन गवर्नमेंट और सर रज़ाअली को धन्यवाद देकर इन सुविधाओं से लाभ उठाना अस्वीकृत कर दूँ और एक साधारण भारतीय के सदृश यात्रा करूँ, पर स्वामी भवानीदयाल जी तथा वहाँ के अन्य सार्वजनिक कार्यकर्ताओं ने मेरा यह मत स्वीकृत न किया। उन्होंने कहा कि मैं पहला ग़ैर-सरकारी यात्री हूँ, जिसके लिए ये सारे प्रतिबन्ध हटाये गये हैं। मुझे कम से कम जोहान्सबर्ग पहुँचने तक इन सुविधाओं का उपयोग कर इस बात को रिकार्ड पर ले आना चाहिए कि हिन्दुस्तानियों के लिए भी ये प्रतिबन्ध हटाये जा सकते हैं। जोहान्सबर्ग से डरबन जाते हुए मैं चाहूँ तो साधारण भारतीय के समान यात्रा कर सकता हूँ। स्वामी जी तथा अन्य सज्जनों के इस कथन में मुझे भी तथ्य मालूम हुआ और जोहान्सबर्ग तक मैंने इन सुविधाओं के उपयोग करने का निश्चय कर लिया।

अब हम लोग लुरेंको मार्क्विस देखने के लिए चले। लुरेंको मार्क्विस पर किसी कम्पनी का राज्य न होकर पोर्चुगीज़ सरकार का राज्य है। कितना सुन्दर और साफ़-सुथरा शहर था। मकान और सड़कें तो अफ़्रीका के अन्य नगरों के समान ही थीं, पर यहाँ का समुद्र का किनारा बहुत ही रमणीय था। समुद्र के किनारे की सड़कें क़रीब १३ मील लम्बी चली गई हैं। सड़क के एक ओर समुद्र था और दूसरी ओर हरी हरी पहाड़ियाँ। समुद्र में नहाने का बहुत सुन्दर प्रबन्ध था। यह स्नानागार काफ़ी लम्बा-चौड़ा था। स्नानागार के सामने सड़क पर एक सुन्दर होटल था। स्नान करनेवालों में गोरे, हिन्दुस्तानी और सभी वर्णों के लोग बिना किसी भेदभाव के एक साथ स्नान और जल-क्रीड़ा कर रहे थे। पुरुष, स्त्रियाँ, बच्चे सभी साथ साथ नहाते और किनारे पर लौट रेत में विश्राम करते थे। होटल में भी बिना किसी भेदभाव के सभी खाते-पीते थे।

नगर, समुद्र-किनारा और स्नानागार को देखकर हम वहाँ का प्रधान होटल पुलाना-होटल देखने गये। होटल बड़ा और सर्वथा आधुनिक ढंग से बना हुआ है। बम्बई का ताजमहल चाहे इससे बड़ा हो, पर सफ़ाई में तो वह इसके नज़दीक भी नहीं पहुँचता। लुरेंको मार्क्विस के इन सब स्थानों को हमें जिन्होंने बड़े चाव और उत्साह से दिखाया वे थे लुरेंको मार्क्विस के प्रधान हिन्दू-व्यापारी मैसर्स अमरसी गोकलदास के पार्टनर श्री भगवान जी काकूभाई। श्री भगवानजी के सदृश भले आदमी मुझे बहुत कम मिले हैं। उनका सौजन्य इस सारी यात्रा के संस्मरणों में एक ख़ास स्थान रक्खेगा।

आज ही संध्या को वहाँ के प्रसिद्ध सिनेमा-हाउस में सार्वजनिक सभा थी। सिनेमा-हाउस में एक हज़ार आदमी आसानी से बैठ सकते थे। सभा के सभापति थे श्री नटवरलाल। श्री नटवरलाल ने पुर्तगीज़ पूर्वी अफ़्रीका के भारतीयों तथा स्वामी भवानीदयाल जी ने दक्षिण-अफ़्रीका की भारतीय कांग्रेस की तरफ़ से मेरा बड़ा लम्बा-चौड़ा स्वागत किया। मैंने यहाँ के भाषण में भी प्रायः वही बातें कहीं जो बैरा में कही थीं। और कुछ कहने को तो यहाँ था भी नहीं।

दूसरे दिन हम लोगों ने वहाँ की कई बड़ी बड़ी इमारतों को देखा। स्टेशन और स्टेशन के सामने ही पोर्चुगीज़ देवी की एक अत्यन्त विशाल मूर्ति देखी जो मुझे बहुत समय तक याद रहेगी। इतनी विशाल प्रतिमा इसके पहले मैंने कभी नहीं देखी थी। आज मर्चेन्ट-चेम्बर के हाल में व्यापारियों ने मुझे बुलाया था। वहाँ पोर्चुगीज़ अफ़्रीका के हिन्दुस्तानी व्यापारियों की कुछ असुविधाओं की चर्चा होती रही। मर्चेन्ट-चेम्बर के मंत्री श्री आई० ई० पटेल बड़े सच्चे और अपने कार्य में बड़े निपुण व्यक्ति जान पड़े।

(क्रमशः)

रिक्ता

अनुवादक, पण्डित ठाकुरदत्त मिश्र

रूप-गुण से सम्पन्न होकर भी सविता निर्धन परिवार की कन्या होने के कारण पति के हृदय पर अधिकार करने में समर्थ न हो सकी। इधर वधू के प्रति पुत्र की इस प्रकार की उदासीनता देखकर सास मेनका ने भी उसके प्रति निष्ठुरतापूर्ण व्यवहार करना आरम्भ कर दिया। सविता के नाना स्वयं निर्धन होने के कारण इस समृद्धिशाली परिवार से यह अनुरोध करने का साहस कर नहीं सके कि सविता को कुछ दिनों के लिए अपने यहाँ ले जायँ। काशी-यात्रा के समय उसकी माता स्वयं आकर उससे मिलना चाहती थी किन्तु सविता को आशङ्का थी कि यहाँ आने पर कहीं मेरी वास्तविक अवस्था से परिचित होकर वे दुःखी न हों इसलिए उसने उन्हें आने से रोक दिया। इससे वे स्टेशन पर ही रुकी रहीं, सविता के नाना आकर उसे देख गये। सविता भी सारा दुःख-क्लेश शान्तिपूर्वक सहन करती हुई जीवन व्यतीत करती रही। अन्त में माता की बीमारी का समाचार पाकर मेनका को कटक जाना पड़ा, गृहस्थी का सारा भार आया सविता के ऊपर—।

(१२)

कोई कोई ऐसे भी आदमी होते हैं जो ईश्वर के श्रेष्ठ दान को भी प्रकट करने में लज्जा का अनुभव करते हैं, और इस भय से करते हैं कि बाद को कहीं दुर्बलता न प्रकट हो जाय। मेनका भी इसी श्रेणी की थीं। यदि कभी उनकी अनुपात्र की करुणा किसी साँस से प्रकट हो उठती तो वे तुरन्त ही और भी कठोर हो उठतीं, सोचतीं कि कहीं कोई मुझे दुर्बल न समझ बैठे!

मेनका के इस प्रकार के स्वभाव के ही कारण उनका घर-गृहस्थी का कार्य भी उत्तमता-पूर्वक नहीं सचालित हो पाता था। उनके हृदय में उदारता थी नहीं, यही कारण था कि अपनी बुद्धि की प्रेरणा से वे किसी दूसरे के भी हृदय का हाल नहीं जान पाती थीं। उनके इस प्रकार के बुद्धि-दोष का फल हुआ कि अपने मातृस्नेह की अपरिमित बाढ़ में भी अपनी सन्तानों की समस्त व्यथा, समस्त दुःख क्लेश धोकर वे बहा नहीं पाती थीं।

जगत बाबू की तबीअत अब ठीक हो गई थी, किन्तु मेनका की माता अभी तक नहीं अच्छी हो पाईं। इससे अभी तक वे लौटीं नहीं। घर गृहस्थी का सारा भार सविता पर था। बातचीत करते करते अब श्वशुर के प्रति उसका सङ्कोच का भाव बहुत कुछ दूर हो गया था। परन्तु अरुण के प्रति उसका जो भाव था उसमें अवश्य किसी प्रकार का परिवर्तन नहीं हुआ। जहाँ तक सम्भव होता वह उसकी दृष्टि तक बचाकर चला करती थी। इन दिनों अरुण कभी सविता की छाया तक नहीं देख पाता था। देखने की उसे इच्छा भी नहीं हुआ करती थी।

जिस प्रकार अपने बन्धन का उपकरण देखकर कोई मनुष्य प्रसन्न नहीं हो पाता, उसी प्रकार अरुण ने सविता को जब से देखा है तब से कभी वह प्रसन्न नहीं हो सका। पहले वह सोचा करता था कि मैंने माता-पिता की इच्छा पूर्ण कर दी है, इतने से ही मेरे कर्तव्य की इतिश्री हो गई है। किन्तु फिर भी सविता के प्रति उसके हृदय में जो विरक्ति का भाव था वह किसी प्रकार भी दूर न हो पाता। उसके हृदय पर फूल का वह जो घाव लगा था, अभी तक सूख नहीं पाया था। यौवन के [illegible] में यह जो फेनिल उच्छ्वास आया था उसमें भाव आये बिना कदाचित् उसमें न्यूनता का आना सम्भव नहीं था। कोई और प्रकार की तरङ्ग आकर उस उच्छ्वास को यदि दाब देती तो चाहे भले ही वह शान्त हो जाता।

जगत बाबू अपना नियमित काम काज करते जा रहे थे। उनका यह सदा का स्वभाव था कि वे किसी ओर विशेष ध्यान नहीं देते थे, किसी से अधिक बोलते भी नहीं थे। आज भी वे प्रायः उसी ढंग से रहा करते थे। यह अवश्य था कि आजकल भोजन के समय वे दो एक बातें सविता से कर लिया करते थे। वे बातें चाहे अनावश्यक ही होतीं, उनका किसी प्रकार का प्रसङ्ग भी न होता, किन्तु उनसे यह अवश्य प्रकट होता कि श्वशुर के हृदय में सविता के प्रति कितना स्नेह छिपा हुआ है।

उस दिन दोपहर के समय भोजन आदि से निवृत्त होकर जगत बाबू विश्राम कर रहे थे। उनके पास ही पुलक लेटा हुआ सो रहा था। उन्होंने सविता को बुलवा भेजा था। सविता ने आकर कहा—क्या पुलक को उठा ले जाऊँ?

जगत बाबू ने कहा—नहीं, उसे सोने दो। उठाने की आवश्यकता नहीं है। .... अच्छी बात है। ओ रे! अरुण को तो ज़रा बुलाना!

सविता मस्तक झुकाये लौटी जा रही थी। उसकी ओर दृष्टि जाते ही जगत बाबू ने कहा—बहू, तुम ज़रा बैठो। कुछ काम है।

सविता एक कुर्सी के सहारे खड़ी हो गई। उसे यह आशङ्का हुई कि शायद कोई अप्रिय प्रसङ्ग उठनेवाला है। इससे भय के कारण उसका हृदय ज़ोर ज़ोर से धड़कने लगा। चिन्तितभाव से वह प्रतीक्षा करने लगी, देखें, कौन-सी बात सामने आती है।

अरुण उस समय बाहर के कमरे में बैठा था। दो दिन पहले कनक की एक चिट्ठी आई थी, उसी का वह जवाब लिख रहा था। मेनका से सारी बातें सुनकर कनक ने अरुण को बहुत-सी कड़ी कड़ी बातें लिखी थीं। परन्तु अरुण पर उन बातों का कोई प्रभाव नहीं पड़ा। उसने फिर वही वेदना से भरी हुई अवहेलना की हँसी हँसी थी। अब जब वह चिट्ठी का जवाब लिखने बैठा तब यही सोच रहा था कि कौन-सी ऐसी बात लिखी जाय जिससे असल बात जो है वह तो उड़ जाय, साथ ही कनक यह भी समझ ले कि मैं काठ की कठपुतली नहीं हूँ। मेरी इच्छा के ऊपर, रुचि के ऊपर, किसी का ज़ोर नहीं चलता, यह बात मैं भली भाँति प्रमाणित कर देना चाहता हूँ। जिस समय मुँह से कहकर सीधे-सीधे में अपने मन की बात समझाने का प्रयत्न कर रहा था, उस समय तो इन लोगों ने मेरी बात पर ध्यान दिया नहीं, मेरे लिए शृंखला तैयार करने में ही व्यस्त थे, ठीक वैसे ही ये लोग अब समझ लें कि जो शृंखला इन लोगों ने बनाई है उसमें ये मुझे बाँध नहीं सके। मैं एक स्वाधीन मनुष्य हूँ, मेरी स्वतंत्र इच्छा में भी कुछ बल है।

अरुण यही सब बातें सजीव भाषा में कनक को लिखने जा रहा था। इतने में पिता का बुलावा आने के कारण उसने क़लम रख दी। एक तो उस समय उसका हृदय यों ही बहुत क्षुब्ध हो उठा था, दूसरे पिता के पास पहुँचने पर जब उसने सविता को देखा तब उसके हृदय का क्षोभ और भी बढ़ गया। दृष्टि फेरकर उसने कहा—मुझे बुलाया है बाबू जी?

पिता ने तीक्ष्ण दृष्टि से उसकी ओर देखकर कहा—हाँ! उस कारखाने से कोई जवाब आया तुम्हारे पास?

अरुण ने उन दिनों जमशेदपुर के कारख़ाने में नौकरी के लिए एक प्रार्थना-पत्र भेजा था। जगत बाबू ने उससे कहा था कि तुम ज़मींदारी का काम-काज देखना आरम्भ कर दो। इस पर उसने कहा था कि पहले मैं कुछ समय तक नौकरी कर लूँ, बाद को यह सब काम देखूँगा। किन्तु अभी तक उसके प्रार्थना-पत्र का कोई उत्तर नहीं आया था, इससे वह बहुत व्यग्रभाव से प्रतीक्षा कर रहा था। पिता की बात के उत्तर में उसने कहा—अभी तक तो कोई जवाब आया नहीं!

"तो क्या तुम दो-चार दिन के लिए काशी हो आओगे?"

"काशी?"

"हाँ, काशी। बहू के नाना जी की तबीअत ख़राब है। इससे उन्होंने तुम्हें और बहू को देखने की इच्छा प्रकट की है। इस समय तुम लोगों का जाना बहुत आवश्यक है।"

अरुण मस्तक झुकाये हुए चुपचाप बैठा रहा। पिता ने कहा—शुभेन्दु को लिख दो कि वह उन्हें लेकर जल्दी ही चला आवे, वहाँ वह विलम्ब न करे।

सविता के वक्षस्थल में जो रक्त प्रवाहित हो रहा था उसमें तूफ़ान आ गया। उस रक्त के प्रबल उच्छ्वास के कारण उसका मुख लाल हो उठा। नाना जी का शरीर ख़राब है, वृद्ध आदमी हैं, सम्भव है कि अवस्था अधिक शोचनीय हो गई हो। यहाँ की वास्तविक स्थिति का ज्ञान तो उन्हें है नहीं, इसी लिए उन्होंने ऐसा लिखा

है। कैसे अपात्र से उन्होंने कृपा की भिक्षा माँगी है।

कुछ क्षण तक चुप रहने के बाद अरुण ने कहा—कटक से लौट आने पर शुभेन्दु भी तो काशी जा सकता है।

"जा क्यों नहीं सकता। वह जा सकता है। किन्तु तेरे जाने में क्या असुविधा है? तुझे ही देखने की इच्छा जो उन्होंने प्रकट की है!"

यह बात अरुण को अधिक प्र तिकर नहीं मालूम पड़ी। परन्तु पिता से निरर्थक वाद-विवाद न करके वह वहाँ से हट गया। जाते समय उसके मुख-मण्डल पर जो गम्भीर उग्रता का भाव था उसे देखकर सविता के भी सजल नेत्र सूख कर आग हो उठे।

ज़रा देर सोच-विचार करने के बाद जगत बाबू ने कहा—तुम भी जाओ बहू। कटक के लिए एक चिट्ठी लिख दो, जिससे चिट्ठी पाते ही वे लोग चले आवें। इधर अरुण को जब तक अवकाश है तब तक वह तुम्हें काशी से घुमा ले आसकेगा।

सविता मुँह फेरे हुए चुपचाप बैठी थी, इस कारण जगत बाबू ने यह अनुभव किया कि नाना की बीमारी का हाल पाकर यह भीतर ही भीतर बहुत चंचल हो उठी है। यही कारण था कि उन्होंने उसे सान्त्वना देते हुए बहुत ही स्नेहमय स्वर में कहा—तुम्हें कोई चिन्ता नहीं है बहू! मैं तुम्हें अवश्य भेजूंगा, उसकी कोई भी आपत्ति सुनने के लिए मैं तैयार नहीं हूँ।

सविता ने बहुत ही शान्तभाव से कहा—नहीं बाबू जी, इस समय मेरे जाने से काम न चलेगा। अभी रहने दीजिए। यदि हो सकेगा तो बाद को चली जाऊँगी।

जगत बाबू बड़े ही आश्चर्य में पड़ गये। वे समझ न सके कि सविता की इस बात का अर्थ क्या है। परन्तु फिर भी उन्होंने कहा—नहीं, नहीं, तुम्हें जाना ही होगा। वे कटक से जैसे ही आवें, वैसे ही तुम चली जाओ। तुम्हारे नाना जी की तबीअत खराब है। उन्हें देखने के लिए जाना बहुत ही आवश्यक है।

मलिन मुख पर भी हँसी का भाव लाकर सविता ने कहा—तबीअत अच्छी होने पर वे स्वयं आकर मुझे ले जायँगे। इस समय जाने पर पुलक को कष्ट होगा।

"नहीं, कष्ट क्यों होगा?" यह बात शिथिल कण्ठ से निकाल चुकने के बाद ही वे कुछ सोचने-से लगे। उनके प्रशान्त ललाट पर जो टेढ़ी-टेढ़ी रेखायें पड़ी थीं उनमें कालिमा आ गई।

श्वशुर के कमरे से निकलकर अपने कमरे में आने पर सविता ने उनके हृदय की वेदना का भली भाँति अनुभव किया। उसके विक्षुब्ध हृदय में बारबार जाग्रत होने लगी नाना जी की बात। सम्भव है कि वे चले जायँ और जीवन में फिर उनसे मुलाक़ात न हो, तो भी मैं जा न सकूँगी। इस प्रकार जाना मेरी शक्ति से परे है।

कुछ क्षण तक सोच विचार करने के बाद सविता के हृदय में एक बार यह बात आई कि कटक से लौट आने पर शुभेन्दु यदि मुझे लेकर जाय तो मैं अवश्य जा सकती हूँ। अन्यथा नाना जी का अन्तिम आशीर्वाद प्राप्त करना मेरे भाग्य में नहीं बदा है। किसी की इच्छा के विरुद्ध कार्य्य करने के लिए उसे बाध्य करके अपनी तृप्ति का साधन करना मैं नहीं चाहती।

अपने मन को समझाने के लिए सविता जितना ही प्रयत्न करती, उतना ही उसके नेत्रों को डुबाती हुई आँसुओं की बाढ़ आ ही जाती। एकान्त में बैठकर चुपचाप रो लेने में जो सुख मिलता है उसी का वह उपभोग करने लगी। ज़रा देर के बाद शान्तभाव से आँखें पोंछकर उसने मुँह उठाया तब देखा चौखट के पास अरुण खड़ा है। उसके पैरों में बर्मा की जो चट्टी थी उसकी आहट सविता को नहीं मिल सकी।

झट से रक्त का एक उफान मुख पर आया और सविता के कुम्हलाये हुए मुख पर मानो दीपक जला दिया। मस्तक पर की साड़ी ज़रा सा खींच कर वह उठ कर खड़ी हो गई। वह समझ न सकी कि मेरे कमरे में आने की स्वामी को कौन-सी आवश्यकता आ पड़ी, यहाँ वे क्यों आये हैं?

कमरे में प्रवेश करते ही दरवाज़े के बिलकुल समीप एक सोफ़ा मिलता था। अरुण जाकर उसी पर बैठ गया और उसने सारे कमरे में दृष्टि दौड़ाई। सविता मुँह नीचा किये खड़ी थी। उसकी ओर ताकते हुए अरुण ने कहा—तुमसे मैं कुछ कहना चाहता हूँ।

सविता का मुँह लाल हो गया। वह मस्तक झुकाये हुए खड़ी ही रही। हवा लगने पर कमल के फूल के समान उसके हृदयरूपी कमल के समस्त दल थरथर काँप रहे थे। स्पन्दित हृदय से स्वामी की बातें सुनने के लिए वह उत्सुक हो उठी थी।

अरुण ने ज़रा सा इधर-उधर करके कहा—हम लोगों की जीवन यात्रा और सब लोगों की तरह नहीं चल रही है, अर्थात् मैं साधारण व्यक्तियों की श्रेणी से ज़रा कुछ भिन्न हूँ, शायद तुम्हें यह समझने को अब बाक़ी न होगा। ठीक है न? इतना ही कहकर अरुण ने एक बार सविता के मुँह की ओर ताका। परन्तु उसके भावों में किसी प्रकार का परिवर्तन नहीं दिखाई पड़ा। पहले के ही समान निश्चल-निस्तब्ध हुई वह खड़ी रही। अरुण ने फिर कहना आरम्भ किया—देखो, मैं तुम्हारे किसी कार्य्य में किसी प्रकार का हस्तक्षेप नहीं करना चाहता हूँ, कभी करता भी नहीं हूँ। अपने हर एक कार्य्य के लिए तुम स्वाधीन हो। उसी प्रकार मुझे स्वाधीनता होनी चाहिए। मेरे साथ काशी जाने की जो तुम्हारी कामना है उसका तुम परित्याग कर दो।... यह मेरे लिए उचित न होगा। पिता जी से यह आग्रह तुम मत करो।

सविता ने गर्व के साथ मस्तक उठाकर देखा। उसने कहा—अच्छी बात है, ऐसा ही होगा।

अरुण सोफ़ा से उठकर खड़ा हो गया। ज़रा सी हँसी का-सा भाव दिखलाते हुए उसने कहा—ऐसा ही यदि पहले हो गया होता तो मुझे कहने के लिए आने की कोई आवश्यकता ही न पड़ती।

अब सविता का मुँह खुला। स्वामी के साथ उसकी पहले-पहल की बातचीत थी। किन्तु इस बातचीत में प्रणयभीता नववधू का सङ्कोच नहीं था। उसने कहा—यही बात बाबू जी से कह देने पर भी तो काम चल सकता था।

"वहाँ कहने से काम नहीं चला न! पिता जी मेरी अपेक्षा तुम्हारी ही बात अधिक सुनते हैं।"

अरुण चला गया। सविता इतनी देर तक मानो किसी चीज़ के नीचे दबी-सी थी। अब मुक्त होते ही बड़ी देर तक की रुकी हुई साँस को छोड़कर वह बैठ गई।

स्वामी के मुँह पर वह यह न कह सकी कि वे जो कुछ कहने आये थे वह बिलकुल निरर्थक था। कोई आवश्यकता नहीं थी उन्हें इसके लिए आने की। इसके सिवा वे जो साधारण नहीं हैं, असाधारण हैं, यह क्या मुझे मालूम नहीं है। उनसे तो मैं कुछ प्राप्त कर नहीं सकती हूँ। किसी दिन आशा भी मैंने उनसे कुछ प्राप्त करने की नहीं की। किन्तु इस परिवार में आत्मत्याग करके ही मैं सार्थक होऊँगी। तब भला उस आत्मत्याग में किसी प्रकार का व्याघात क्यों आने पावे? .... कुछ प्राप्त किये बिना भी तो दिया जा सकता है। फूल सुगन्धि देता है, दीपक प्रकाश देता है, न दे सकने पर ही वह निरर्थक हो जाता है!

बड़ी देर तक बैठी हुई सविता कितनी ही बातों पर विचार करती रही। किन्तु उसके हृदय में जितने प्रकार की भी चिन्तायें उदित हो रही थीं उन सबसे अधिक क्लेशकर थी नाना की बीमारी की बात। रह रहकर उसके हृदय में यह बात काँटे की तरह चुभ रही थी कि शायद अब नाना जी से मुलाक़ात न हो सकेगी, यदि वे इस बार आरोग्य न हो सके।

(१३)

मेनका ने लिखा था कि मैं दो ही एक दिन में लौट रही हूँ। वह उनके लौटकर घर आने का दिन था। इसी लिए सविता बहुत ही व्यस्तभाव से घर के चारों ओर का प्रबन्ध देख रही थी। कहाँ कौन-सी चीज़ किस तरह रक्खी हुई है, इस बात की वह बड़ी सावधानी के साथ घूम घूम कर जाँचकर रही थी। वह चाहती थी कि चीज़ें गड़बड़ न रहें, जिससे गृहस्वामिनी के लौटकर आने पर उसे डाँटने का बहाना मिल सके। जगत बाबू भी उस समय घर में नहीं थे। ज़मींदारी के काम से वे कहीं गये थे। बाहर के कमरे में बैठा बैठा अरुण ग्रामोफोन की सहायता से पुलक की हँसी का फ़ौवारा खोले हुए था। गाने-बजाने का स्वयं उसे भी अच्छा अभ्यास था। वह अपने सधे हुए गले से बसन्ती राग अलाप रहा था।

मेनका के आकर घर पहुँचने में अभी विलम्ब था। किसी कार्य्यवश सविता पासवाले कमरे में आई और गीत सुनते ही ठमककर खड़ी हो गई। उस समय

भी उसके कई कार्य्य अधूरे पड़े थे, किन्तु उस समय का गीत इतना मनोमुग्धकारी था कि कुछ क्षण तक खड़ी होकर उसे सुनने का लोभ वह न संवरण कर सकी।

सचमुच उस समय वसन्त का नया नया उदय हुआ था। फाल्गुन में खिलनेवाले पुष्पों के पराग उसे मादकतामय बना रहे थे। अपनी चित्र-विचित्र की शोभा के कारण वह एक असीम तितली के समान श्यामल प्रकृति के वक्ष पर अपने दोनों रंगीन पंखों को फैलाये हुए बैठा था। पतझड़ का पलाश वृक्ष नीचे से ऊपर तक फूलों के कारण लाल लाल हो उठा था। लाल लाल फूलों की आड़ में छिपकर कोकिल वसन्त का स्तवगान कर रहे थे। घर के भीतर रसोई-घर के सामने ही सहजन का एक पेड़ था। वह खूब फूला हुआ था। उसे घेरे हुए भौंरे अविराम गति से गुनगुना रहे थे। फाल्गुन के अग्निस्फुलिंग मनुष्य के मन-रूपी राज्य में भी फैले बिना नहीं रहते। यदि ऐसा न होता तो तरुण वसन्त का विजय-मुकुट उठाकर उसके मस्तक पर रखनेवाला कौन था।

एक नौकरानी ने आकर कहा—बहू जी, माली बगीचे से तोड़कर थोड़ी-सी मटर की फलियाँ दे गया है। उन्हें कहाँ रख दूँ?

नौकरानी की यह बात सुनते ही सविता भयभीत होकर वहाँ से हट आई। भयभीत इसलिए हुई कि वह छिपकर गीत सुन रही थी।

उस कमरे से हट आने पर सविता ने फिर घर के काम-काज में मन लगाया। उसके ज़रा ही देर बाद अरुण भी कमरे से निकल पड़ा और मुँह गम्भीर किये हुए बड़ी ख़ामोशी के साथ वह अपने तिमंज़िले के कमरे की ओर चला। उसे असमय में सोने के कमरे में जाते देखकर सविता बड़े आश्चर्य में पड़ गई। बात यह थी कि दिन में अरुण उस कमरे में प्रायः नहीं जाया करता था। इससे इस घटना के कारण घर की नौकरानियों को भी कम आश्चर्य नहीं हुआ। इतनी ही देर में अरुण के मुख पर इस प्रकार की गम्भीरता का भाव क्यों आ गया, यह जानने के लिए भी सब लोग उत्सुक हो उठे। परन्तु घर में कोई भी ऐसा आदमी तो था नहीं जो यह पूछने का साहस करता कि उसे क्या हो गया है।

ज़रा ही देर के बाद मेनका के पहुँचने की बात थी। परन्तु अभी ही शुभेन्दु ने तार से यह सूचना भेजी थी कि हैज़े की दो ही घंटे की बीमारी के बाद माता जी उस देश को चली गईं, जहाँ से मनुष्य फिर लौट कर नहीं आता।

हृदय में अपार व्यथा लिये हुए अरुण सोच रहा था कि पिता जी का दुर्बल हृदययन्त्र क्या यह शोक का आघात सहन कर सकेगा।

एक मोटी-सी तकिया में मुँह छिपाये हुए वह माता के लिए रो रहा था। कितने दिन कितनी छोटी-मोटी बातों के लिए उसने माता का चित्त दुःखी किया था। वे ही छोटी छोटी बातें आज उसके सामने विशाल रूप धारण करके उदित हो रही थीं। मन में यह बात आने लगी, मैं इतना हतभाग्य हूँ कि माता के अन्त-समय में उनके पास रहकर जीवन के छोटे-बड़े समस्त अपराधों के लिए उनसे क्षमा तक न माँग सका। आस-पास के कुछ आत्मीय व्यक्ति यह समाचार पाकर उसे सान्त्वना देने के लिए उसी तिमंज़िले के कमरे में चले गये।

पाँच आदमियों के मुँह मुँह से यह समाचार सविता के भी कानों तक पहुँच गया। पहले तो यह समाचार पाते ही वह चौंक उठी थी, उसे एकाएक बिजली का तार छू जाने का आघात-सा लग गया था। उसने सोचा कि यह समाचार निराधार है। परन्तु अविश्वास ही वह कितने आदमियों का करती? सभी के मुँह में तो यह एक ही बात थी!

सविता को स्मरण आगया यात्राकाल का वही अत्यन्त अकस्मात् उत्पन्न हुआ स्नेह का उच्छ्वास। वे बातें अन्तिम बातें होने के ही कारण क्या उस समय उनके कण्ठ में करुणा की इस प्रकार की धारा प्रवाहित हो उठी थी? अकेली एक कोने में घुटनों के बीच में मुँह छिपाकर वह बैठ गई। सन्ध्या के मलिन अञ्चल ने जिस समय गोधूलि के धूसर प्रकाश को भी आच्छादित कर दिया, उस समय जगत बाबू के मोटर ने लाकर उन्हें घर में पहुँचाया।

सारे घर में शोक की छाया देखकर जगत बाबू आश्चर्य में आ गये। उन्होंने कहा—आज घर में इस तरह का सन्नाटा क्यों है रे? पुलक कहाँ है? बहू कहाँ हैं?

श्वशुर का कण्ठस्वर सुनते ही वह उनके सामने उपस्थित हुई। दिन भर के वे थके-थकाये थे। इससे सविता इस बात का प्रयत्न करने लगी कि जब तक यह दुःसंवाद उनके कानों तक न पहुँच पावे तभी तक जहाँ तक सम्भव हो, उनको आराम पहुँचाया जाय।

हाथ-पैर धोकर जलपान करने के बाद वे विश्राम कर रहे थे। सविता तब तक उनके पास ही पास रही। जब कभी वह किसी नौकर को मुँह सुखाये हुए आते जाते देखती तब वह हट जाती। जगत बाबू ने कहा—क्यों बहू, आज तो उनके आने की बात थी, किन्तु आईं नहीं। क्या पटला ने कोई सूचना नहीं दी?

मुँह नीचा करके सविता ने मृदु कण्ठ से कहा—यह तो मैं बतला नहीं सकती।

जगत बाबू ने अरुण को बुलवाया। लगातार इतनी देर तक आँसू बहते रहने के कारण अरुण की आँखें लाल लाल हो उठी थीं। उनमें उमड़े हुए आँसुओं के आवेग को किसी प्रकार रोकते हुए आकर वह खड़ा हो गया। साँझ हो चुकी थी, इससे उसका मुँह दिखाई नहीं पड़ा। पिता ने पूछा—क्या कटक का कोई समाचार मिला है? पटला ने क्या किसी प्रकार की सूचना नहीं दी कि वे लोग क्यों नहीं आये?

अरुण ने अत्यन्त ही भग्न और हीन कण्ठ से कहा—

दिया है।

पुत्र का क्षीण और आँसुओं से रुँधा हुआ कण्ठ-स्वर सुनकर पिता चौंक उठे। वे सीधे होकर बैठ गये और बोले—क्या समाचार है? लाओ, देखें तो वह चिट्ठी।

"चिट्ठी नहीं, तार आया है। समाचार अच्छा नहीं है बाबू जी, आप—"

अरुण का कण्ठ-स्वर फिर नहीं खुल सका। पिता ने कहा—लाओ, देखें—ओह! नहीं, नहीं, तुम्हीं पढ़कर सुनाओ, मैं तो चश्मा ले नहीं आया।

अरुण ने उस काग़ज़ को पाकेट से निकालकर हाथ में ले लिया। उस समय कमरे में अँधेरा काफ़ी हो चुका था। अक्षर दिखाई नहीं पड़ रहे थे। परन्तु उस काग़ज़ को अरुण इतने बार पढ़ चुका था कि उसमें लिखी हुई शब्दावली उसे कण्ठस्थ हो गई थी। इससे वह पढ़कर सुना गया।

जगत बाबू बैठे थे। वे एक लम्बी साँस लेकर लेट गये। आज से बत्तीस वर्ष पहले मेनका के साथ उनका विवाह हुआ था। उस समय वे एक दस वर्ष की बालिका थीं। उस समय उनका जो यह अकाट्य सम्बन्ध हुआ था तब से लेकर आज तक यह लम्बा समय वे मुहूर्त्त भर में ही आँखें मूँदे मूँदे मानो स्वप्न के समान देख गये। जीवन-यात्रा के पथ पर जिसने इतनी दूर तक साथ दिया वह साथी बीच में ही छोड़कर ऐसे असमय में कहाँ चला गया! अब भी तो उस मार्ग का प्रायः एक तृतीयांश चलने को पड़ा ही है।

जगत बाबू के किसी भी व्यवहार से किसी प्रकार की व्याकुलतामय अधीरता का कोई लक्षण नहीं दिखाई पड़ा। प्रत्युत धैर्य्य और गम्भीरता और भी बढ़ गई।

वह रात सविता ने स्वामी और श्वशुर के प्रति बहुत ही सावधान होकर व्यतीत की। अपनी स्थिर बुद्धि के कारण वह यह नहीं भूल सकी कि श्वशुर बाहर से चाहे कितने ही शान्त क्यों न हों, किन्तु उनका हृदय विकल अवश्य है और इस प्रकार की विकलता के कारण यदि कोई सांघातिक घटना हो जाय तो इसमें कोई आश्चर्य की बात नहीं है। अरुण ने भी वह रात पिता के चरणों के समीप पड़कर रोते ही रोते काट दी।

दूसरे दिन नितान्त ही दरिद्र के रूप में नंगे पैर आकर शुभेन्दु खड़ा हुआ। नियमित समय पर श्राद्ध हो गया।

श्राद्ध के अवसर पर पुलक के पिता प्रभात आये थे। वे श्राद्ध के दूसरे ही दिन पुलक को ले जाने का भी विचार कर रहे थे। इस घर में यदि पुलक के अतिरिक्त और भी कोई बालक होता तो शायद वे यह पहचान ही न पाते कि दोनों में से कौन सा मेरा पुत्र है। पुलक भी इस नये आदमी को मामा लोगों के साथ साथ आठों पहर लगा रहते देखकर उनके समीप तक नहीं जा पाता था। पिता पुत्र में इस तरह का परिचय था।

प्रभात ने अरुण से कहा—मेरी मा कह रही थीं कि अब आप लोगों को बच्चे के कारण बड़ी परेशानी

होगी । इससे वे चाहती हैं कि अब वह उन्हीं के पास रहे ।

अरुण ने कहा—तो ले क्यों नहीं जाते ? तुम्हारा लड़का है ....।

प्रभात बीच में ही बोल उठे—नहीं, नहीं, मेरा यह मतलब नहीं है । वह क्या आप लोगों का कोई है ही नहीं ?

बात क्रमशः जगत बाबू के कानों तक पहुँची । उन्होंने कहा—इसमें मुझे कुछ नहीं कहना है । परन्तु वह रात दिन उसी के पीछे लगी रहती है, उसी ने उसे इतना बड़ा किया है । इससे उसे समझा-बुझाकर ले जाओ ।

अरुण यह भार छुड़ने जा रहा था शुभेन्दु के ऊपर । शुभेन्दु को जुकाम हो गया था । इससे उसे खाँसी आ रही थी, साथ ही कुछ ज्वर भी आगया था । इससे उसकी तबीअत खराब थी । अरुण की बात के उत्तर में उसने कहा—उनके पास से पुलक को उठा ले आना ! यह काम ठीक तुम्हारे ही उपयुक्त है भैया ! वह कार्य्य मा भी नहीं कर सकीं और मुझसे भी नहीं होने का । उनके पास तुम्हीं जाओ, तुम अवश्य ले आ सकोगे ।

अरुण इसके उत्तर में कोई बहुत कड़ी बात कहने जा रहा था । परन्तु दाँतों से होंठ दबाकर वह रह गया ।

* * *

उस दिन सविता को कई दिनों के बाद अवकाश मिला था । वह बैठी हुई पुलक के लिए हल्की सी एक बनियाइन बुन रही थी । पास ही बैठा हुआ पुलक अंट-संट बक रहा था । अधिकतर बातें वह नानी के ही सम्बन्ध की कर रहा था । नानी कहाँ गई, वे क्यों न आवेंगी आदि बातों का उत्तर सविता को खोजने पर भी नहीं मिलता था ।

एकाएक अरुण को देखकर सविता ने बनियाइन बुनना बन्द कर दिया और वह उठकर खड़ी हो गई । अरुण ने कहा—प्रभात पुलक को ले जाना चाहता है ।

यह बात सुनते ही पुलक चिल्ला उठा । रोते रोते उसने कहा—मैं न जाऊँगा । कभी न जाऊँगा ।

अरुण ने फिर कहा—तुम्हें यदि कोई आपत्ति न हो तो उसे कह दूँ, ले जाय ।

सविता के मुँह का स्वाभाविक रंग बिलकुल पीलेपन में परिवर्तित हो गया । उसने पुलक को गोद में उठा लिया और बोली—क्या और कुछ दिन नहीं रहने देंगे ?

"निरर्थक ममता बढ़ाने से क्या लाभ ? प्रभात लेने आया है तो उसे दे दिया जाय, बस मामला ख़तम । उसका लड़का रखकर हम लोग क्या करेंगे ?"

"तो मा के जीवनकाल में वे क्यों नहीं ले गये ?"

अरुण कुछ झुँझला उठा । उसने कहा—तुम्हारे इस क्यों का उत्तर देना आवश्यक नहीं है । यह तो उसकी इच्छा की बात है । इस समय उससे क्या कहा जाय ?

"मैं तो इसे छोड़ न सकूँगी ।"

"अच्छी बात है, तुम्हारी जो इच्छा हो ।"

अरुण कमरे से निकल गया । उसकी आकृति से यह नहीं ज्ञात हुआ कि यह अधिक क्रुद्ध हुआ है ।

सविता ने शान्ति की साँस ली । उसने पुलक का मुँह चूम लिया । बाद को वह सोचने लगी—बात न मान कर मैंने कोई अपराध तो नहीं किया । ज़रा ही देर के बाद सविता के मन में आया —इस मातृहीन शिशु की कल्याण-कामना से अपराध करना भी उतना अनुचित नहीं है । मैं किसी प्रकार स्नेह का बन्धन शिथिल भी कर देती, यदि मैं यह विश्वास कर पाती कि वहाँ जाने पर पुलक अच्छी अवस्था में रह सकेगा । किन्तु वहाँ जाने पर उसकी विमाता क्या उसे यहाँ का-सा आराम दे सकेगी ? कदाचित् आज से ही इस ज़रा से बालक के भाग्य में भी अशान्ति भोग करना बदा हो । इसके लिए स्वामी यदि रुष्ट ही हों तो यह उसके भाग्य दोष के अतिरिक्त और क्या हो सकता है ?

सविता के इस प्रकार के आग्रह के कारण अरुण रुष्ट नहीं हुआ । वह ज़रा-सा चकित भर हुआ है सविता को अपनी बात पर इस प्रकार दृढ़ रहती देखकर । हम लोगों के मत के विरुद्ध भी वह अपने मत पर दृढ़तापूर्वक स्थिर रह सकती है, यह बात अरुण के दिमाग़ में नहीं आ सकी थी ।

विवश होकर प्रभात पुलक को लिये बिना ही लौट गया । जाते समय वह कह गया कि अच्छी बात है, कुछ दिन तक और रहने दीजिए ।

* * *

कुछ दिन और बीत गये । देखने में सचमुच जगत बाबू के मनोभावों में पत्नी-वियोग के कारण किसी प्रकार का परिवर्तन नहीं मालूम पड़ा । परन्तु फिर भी स्वास्थ्य उनका खराब ही होता गया । रोज़ नई नई शिकायतें पैदा होकर उन्हें दुर्बल करने लगीं । डाक्टरों ने व्यवस्था दी कि इनके लिए स्थान-परिवर्तन की आवश्यकता है ।

जगत बाबू यह सुनकर हँसे । वे कहने लगे कि स्थान परिवर्तन के ही लिए तो तैयारी हो रही है । अभी यही स्थान क्या बुरा है ? देखें, भाग्य कहाँ ले जाता है ।

डाक्टर भी परिपक्व अवस्था के थे । जगत बाबू से उनकी बहुत दिनों की मित्रता थी । ज़ोर देकर हर तरह की बात उनसे कहने का उन्हें अधिकार था । इससे उन्होंने कहा—कम से कम थोड़े दिनों तक आप दार्जिलिंग तो अवश्य ही हो आइए ।

"दार्जिलिंग ! तो क्या हृदय के रोग के लिए दार्जिलिंग अच्छा पड़ेगा ?"

"आपको हृदय के रोग के कारण उतना क्लेश नहीं है जितना कि मन्दाग्नि के कारण है । और मन्दाग्नि के रोगी के लिए आजकल की ऋतु में दार्जिलिंग बहुत अच्छी जगह है ।"

"क्यों ? बनारस जाने में क्या हानि है ? वहाँ यदि मृत्यु हो गई तो काशीलाभ होगा । लड़के भी रहेंगे, बहू भी रहेगी । मेरे विचार से तो वहाँ जाना अधिक अच्छा है ।"

डाक्टर ने काशी जाने की स्वीकृति नहीं दी । वे कहने लगे—नहीं, नहीं, काशी न जाइए । आजकल वहाँ बड़े ज़ोर का हैज़ा है । उससे कहीं अच्छा होगा कि आप सीधे इसी पहाड़ पर चले जाइए । आपके शरीर के लिए यह बहुत ही लाभप्रद होगा ।

निराशा भाव से जगत बाबू चुप रह गये । जाने के सम्बन्ध में उन्होंने हाँ या नहीं कुछ भी नहीं कहा । परन्तु अरुण इस बात से बहुत उत्साहित हो उठा ।

दार्जिलिंग जाने के सम्बन्ध में अरुण बराबर ज़ोर देने लगा । वह पिता से कहा करता कि वहाँ मेरे बहुत से परिचित और मित्र हैं । इससे वहाँ जाने पर किसी प्रकार का कष्ट न होगा । बात यह है कि साथ में जानेवाला भी अरुण अकेला ही था । शुभेन्दु की मेडिकल कालेज की परीक्षा समीप थी । इससे अरुण सोचता था कि अभी वह कुछ दिनों तक कालेज में रह कर अपना कोर्स तैयार करने में ही दत्तचित रहेगा, इससे मुझे छोड़ कर साथ में और जायगा ही कौन ?

जाग्रत नारियाँ

अखिल भारतीय महिला-सम्मेलन का प्रयाग-अधिवेशन

[भारतीय महिला-सम्मेलन की स्वागताध्यक्ष श्रीमती विजयलक्ष्मी पंडित]

हमारे देश की महिलायें किस तेज़ी के साथ उन्नति की ओर अग्रसर हो रही हैं, इसका एक सजीव परिचय अखिल भारतीय महिला-सम्मेलन ने अपने गत प्रयाग-वाले अधिवेशन में दिया है। स बार देश के कोने कोने से आई हुई महिला प्रतिनिधियों के रंग-ढंगों, वक्तृताओं और प्रस्तावों से ज्ञात होता है कि शताब्दियों से रूढ़ियों की चहारदीवारी में क़ैद रहनेवाली भारतीय महिलाओं ने अब उस जीर्ण बन्धन को तोड़ डाला हैं और वे आज़ादी के वातावरण में साँस लेने का उपक्रम कर रही हैं। साथ ही यह भी कि वे अपना कार्यक्षेत्र अब चक्की-चूल्हे और बच्चों के लालन-पालन में ही परिमित नहीं मानतीं। वे अपने को सारे संसार के साथ मिलाकर देखना और संसार की समस्त गति-वि[धि]यों पर अपने दृष्टिकोण से विचार करना चाहती हैं। इस सम्मेलन के स्वागताध्यक्ष श्रीमती विजयलक्ष्मी पंडित ने अपने भाषण में कहा है कि 'हमारा सम्मेलन अपने अस्तित्व को संसार के सामने तभी प्रमाणित कर सकेगा जब वह यह दिखा दे कि भारतीय स्त्रियाँ अब गृहस्थी की कठपुतलियाँ-मात्र नहीं रह गई हैं, प्रत्युत वे सुयोग्य और सक्षम हैं और भारतीय राष्ट्र की रक्षा के लिए प्रयत्नशील हैं। सम्मेलन के प्रस्तावों को देखकर हमें प्रसन्नता हुई है कि भारतीय स्त्रियाँ सचमुच अब इस योग्य हो रही हैं कि वे बड़ी से बड़ी सामाजिक या राजनैतिक ज़िम्मेदारी को अपने ऊपर लेकर उसका सुन्दरता के साथ निर्वाह करना चाहती हैं। सम्मेलन में विविध समस्याओं पर [illegible]

जहाज पर लदने वाला माल

[ग्वालियर की प्रसिद्ध महिलानेत्री श्रीमती रानी लक्ष्मीबाई राजवाड़े]
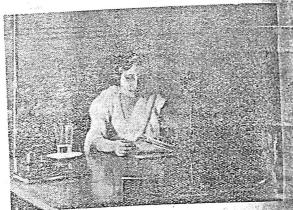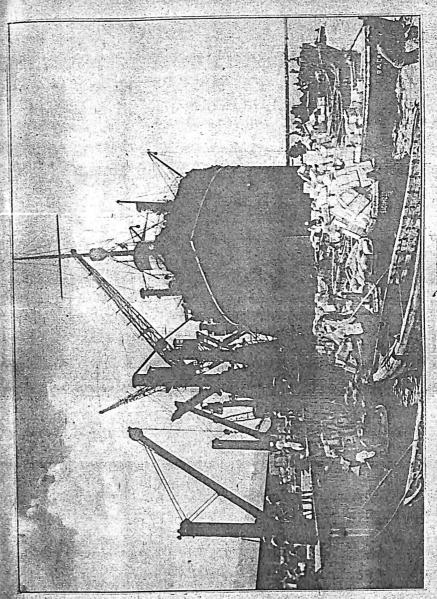
[भारतीय स्त्रियों में अग्रगण्य और प्रमुख नेत्री श्रीमती रामेश्वरी नेहरू]

[प्रयाग में होनेवाले महिला-सम्मेलन की सभानेत्री बेगम हामिदअली]

महत्त्वपूर्ण प्रस्ताव इस बार आये हैं जो भारतीय महिलाओं की सर्वतोमुखी जागृति के परिचायक हैं। 'युद्ध का प्रस्ताव' नमें सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण है। युद्ध-पीड़ित देशों की जनता के प्रति सहानुभूति प्रदर्शित करते हुए स प्रस्ताव में कहा गया है कि जब तक कोई भी देश गुलाम रहेगा तब तक संसार में शान्ति की स्थापना हो सकनी असम्भव है। ग्रेट ब्रिटेन को यह स्पष्ट कर देना चाहिए कि वह किस सिद्धान्त पर शान्ति स्थापित करना चाहता है। क्या उसमें राष्ट्र-समता और वैयक्तिक तथा राष्ट्रीय स्वतंत्रता तथा अधिकार भी सम्मिलित होंगे? भारतीय स्त्रियाँ केवल अपने देश की आज़ादी के लिए ही उत्सुक नहीं हैं, बल्कि उन सभी देशों के लिए भी हैं जिन पर जुल्म हो रहा है। इस प्रस्ताव की प्रस्ताविका डाक्टर कुमारी नटराजन ने ब्रिटेन के युद्ध-सम्बन्धी दृष्टिकोण को स्पष्ट करते हुए उसे भारतीय संस्कृति के प्रतिकूल बतलाया है। इस प्रस्ताव के समर्थन में कुमारी ज़ुल्फ़िक़ार अली खाँ, बेगम शाहनवाज़ और रानी राजवाड़े के भी बड़े विद्वत्तापूर्ण भाषण हुए। सबमें युद्ध के प्रति घृणा और त्रस्त राष्ट्रों के प्रति सहानुभूति के भाव प्रकट किये गये। इन सब बातों से अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति में महिलाओं की बढ़ती हुई दिलचस्पी का परिचय मिलता है, जो वास्तव में एक महत्त्व की बात है।

इस युद्ध-सम्बन्धी प्रस्ताव से ही सम्बन्ध रखता हुआ एक और प्रस्ताव भी पास हुआ है, जिसमें चीन के प्रति सहानुभूति प्रकट करने के लिए एक महिला डेपूटेशन भेजने की बात कही गई है। भारतीय महिलाओं को अन्तर्राष्ट्रीय ख्याति दिलाने तथा भारत और चीन के सम्बन्धों को दृढ़तर तथा आत्मीय बनाने में इस प्रस्तावित डेपूटेशन से बड़ी सहायता मिलेगी। इन दोनों प्रस्तावों से स्पष्ट हो जाता है कि युद्ध के प्रति भारतीय महिलाओं के हृदयों में क्या विचार हैं।

देशी राजनीति के सम्बन्ध में पास हुए प्रस्तावों से भी महिलाओं की समझदारी का अच्छा परिचय मिलता है। एक प्रस्ताव में कांग्रेस की अहिंसा-नीति का समर्थन किया गया है, दूसरे में मज़दूरों को उचित मज़दूरी देने की सिफ़ारिश की गई है।

राष्ट्रभाषा के सम्बन्ध में बोलते हुए बेगम हामिदअली ने जो इस अधिवेशन की सभानेत्री थीं, कहा कि 'हिन्दुस्तानी' ही एकमात्र भाषा है जिसे राष्ट्रभाषा का पद प्राप्त हो सकता है। हमें हिन्दुस्तानी से विरोध नहीं है, परन्तु बेगम साहबा ने हिन्दुस्तानी की जो परिभाषा की है उसके विरुद्ध पिछले दिनों बहुत कुछ कहा गया है, अतएव उसके विषय में यहाँ कुछ कहने की ज़रूरत नहीं है। इस दिशा में महिला-सम्मेलन की ओर से भी कोई खास दिलचस्पी नहीं दिखलाई गई है। सम्मेलन में जितने भाषण हुए वे सब अँगरेज़ी में ही हुए। हम मानते हैं कि विभिन्न प्रान्तों से आई हुई सदस्यायें सब हिन्दुस्तानी नहीं समझ सकती थीं और इसी लिए अँगरेज़ी में भाषण

[भारतीय महिला-सम्मेलन की मंत्री श्रीमती एस० एन० राय।]
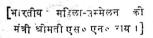
[सम्मेलन में प्रमुख भाग लेनेवाली राजकुमारी अमृतकौर और श्रीमती एस० एन० राय]

[श्रीमती पूर्णिमा बैनर्जी, प्रयाग में होनेवाले सम्मेलन की मंत्री]

करना अनिवार्य-सा था, फिर भी महिला-सम्मेलन को इस समस्या का हल उसी प्रकार कर लेना होगा जिस प्रकार हमारी राष्ट्रीय महासभा ने कर लिया है। जो सदस्यायें हिन्दुस्तानी नहीं जानतीं उन्हें प्रयत्न करके उसे सीखना चाहिए। माननीय पुरुषोत्तमदास टंडन जी ने भी महिला-सम्मेलन में भाषण करते हुए यही उपदेश किया। हिन्दी-भाषा अब तक महिलाओं की कृपा से ही हमारे देश में पनपती रही है, यद्यपि पुरुषवर्ग सदैव राजभाषा के मोह में बहता हुआ उसके प्रति अपनी घृणा व उपेक्षा के भाव प्रकट करता रहा है।

साम्प्रदायिकता के विषय में महिलाओं का स्पष्ट दृष्टिकोण भी अभिनन्दनीय है। बेगम साहबा ने अपने भाषण में कांग्रेसी मंत्रि-मंडलों की बड़ी तारीफ़ की। इससे दो बातें स्पष्ट हो जाती हैं। एक तो यह कि पुरुषों की अपेक्षा स्त्रियों में सत्य व न्याय की मात्रा अधिक है, दूसरी यह कि मिस्टर जिन्ना की बात का उनके घर में ही कितना मूल्य है।

"अँगरेज़ सवेरे के जलपान के पहले एक प्याला चाय पीना पसन्द करता है और वह अकसर इसी से जलपान का भी काम लेता है। शाम के चार बजे लन्दन के आफ़िसों के कर्मचारी चाय की दूकानों पर टूट से पड़ते हैं। और जब मौसम अच्छा रहता है तो हाउस आफ़ कामन्स के मेम्बर चाय पीने के लिये निकल पड़ते हैं।"

नई पुस्तकें

१—शकुन्तला—लेखक, श्रीयुत दुर्गादत्त त्रिपाठी, प्रकाशक, गोविन्दआश्रम, चन्दौसी हैं। छपाई-सफ़ाई अच्छी, पृष्ठ-संख्या २० और मूल्य ।) है।

अभिज्ञान शाकुन्तल के कथानक पर हिन्दी में भी दो-एक स्वतंत्र काव्य और भी निकल चुके हैं। कविवर मैथिलीशरण गुप्त जी की 'शकुन्तला' भी इन्हीं में से एक है। प्रस्तुत पुस्तक भी ऐसी ही है। इसे लेखक ने सात छोटे छोटे सर्गों में खण्ड काव्य के रूप में लिखा है और इसमें उसे काफ़ी सफलता मिली है। कथानक में थोड़ा-बहुत उलट-फेर किया गया है, पर वह सुन्दर लगता है। छन्द व भाषा मजी हुई और वर्णन सजीव हैं। एक नमूना देखिए—

सहसा चटकी एक कली
आशाओं ने आँखें खोलीं
टोली मधुपों की मचली।
सरल-सरस, मृदुता-मधुमयता—
सरलों को कुछ लगी भली—
एक अबोध कली चुनने को
बढ़ा रहा था भुजा बली
तभी किसी के आने की ध्वनि
सुरभित कुंजों से निकली
और एक गम्भीर कण्ठ ने
दोनों की मुद्रा बदली,
"दया दया इस कुसुम कली पर
खिल जाने दे निठुर अली!
उचित नहीं यह 'उतावली।"

इस भर्त्सनामय निषेध में कालिदास के—"न खलु न खलु बाणः सन्निपात्योऽयमस्मिन्" के टक्कर का कथा-वस्तु-संकेत विद्यमान है। पुस्तक पठनीय है।

२—डाक्टर महेशचरणसिंह, एम० एस-सी०, मोहम्मदअली कटरा, हाता रतनलाल लखनऊ, द्वारा लिखित व प्रकाशित दो पुस्तकें—

(१) फूकी जावा—पृष्ठ-संख्या १८६ और मूल्य २) है। छपाई व कागज़ साधारण है।

जापान को रूढ़ियों और अन्ध-विश्वासों के गढ़े से निकालकर नये प्रकाश में लाकर खड़ाकर देने का श्रेय जिन महापुरुषों को प्राप्त है उनमें 'फूकीजावा' का नाम प्रथम आता है। इनके विचारपूर्ण परिश्रम व अध्यवसाय से जापानी-लोग जो अमेरिकनों के काले जहाज़ अपने बन्दरगाह में आये हुए देखकर घरों में घुस गये थे और उनसे बचने के लिए मिट्टी के क़िले बनाने की सोचने लगे थे अल्प-काल में ही इतने उन्नत हो गये कि उनकी गणना संसार के महान् शक्ति-सम्पन्न राष्ट्रों में होने लगी। इन्हीं महापुरुष की जीवनी व कार्य-प्रणाली का उल्लेख इस पुस्तक में हुआ है। इसके पढ़ने से ज्ञात होता है कि रूढ़ियों का गुलाम और पिछड़ा हुआ कोई देश किन उपायों से सबल और स्वावलम्बी बनाया जा सकता है। हिन्दी में फूकीजावा की जीवनी सम्भवतः अब तक एक भी नहीं लिखी गई थी। इस दृष्टि से भी यह पुस्तक उपादेय व आवश्यक है। शैली भी रोचक है।

(२) वनस्पतिशास्त्र—पृष्ठ-संख्या २५५ और मूल्य ३॥) है।

हिन्दी में वैज्ञानिक साहित्य की अभी तक बहुत कमी है, क्योंकि इसके पढ़नेवाले, प्रकाशक व लेखक सभी कम हैं। जब से इण्टरमीडिएट तक के पाठ्यक्रम में हिन्दी मान ली गई है तब से वैज्ञानिक विषयों की कुछ पाठ्य-पुस्तकें अवश्य हिन्दी-अक्षरों में छप गई हैं, जो आरम्भिक विषयों से सम्बन्ध रखती हैं और स्कूली विद्यार्थियों के काम की हैं। इस दशा में 'बाटनी' पर भी हिन्दी-भाषा में एक ऐसी पुस्तक रचकर डाक्टर साहब ने सचमुच उपकार का काम किया है। इसमें वनस्पति-परिचय से आरम्भ करके फलों की रचना तक—आरम्भिक वनस्पति-शास्त्र के ढँग से ही वनस्पतियों के समस्त क्रिया-कलापों का सचित्र विवेचन किया गया है। परिभाषाओं के चयन

व निर्माण में भी बुद्धिमत्ता का यथेष्ट परिचय मिलता है, यद्यपि इसके लिए संस्कृत-शब्द-शास्त्र के नियमों की कम परवा की गई है। इस विषय के पाठकों व छात्रों के लिए पुस्तक बड़े काम की है। मूल्य कुछ अधिक जान पड़ता है।

३—राका—लेखक, श्रीयुत मनबोधनलाल श्रीवास्तव एम० ए०, प्रकाशक, सरस्वती-प्रकाशन-मन्दिर, इलाहाबाद हैं। मूल्य १) है।

"माँ, क्यों डाक्टर को बुलाती हो। मुझे क्या होगया है। मैं तो सच कहती हूँ.............. जब मेरा विवाह हुआ था..... मैं ससुराल जा रही थी तो तुमने कहा था—"बेटी रोज़ रात को सोने से पहले अपने स्वामी के चरण धो कर पी लिया करना। वही तुम्हारे लिए ईश्वर हैं, भगवान् हैं, सब कुछ हैं" "यह उन्हीं का चरणामृत था.......... अभाग से यह बोतल आज गिर कर टूट गई है।" सुशीला के हृदय में हमें प्राचीन आदर्शों की पुनीत भावनायें किस प्रचुर रूप से मिलती हैं, इसका अनुभव पाठक ही कर सकते हैं। समाज की दशा कितनी अधिक अँगरेज़ियत से प्रभावित है कि शम्भू ने हँसते हुए कहा—"तुम बड़ी पगली है....... इसी मूर्खता के लिए बी० ए० पास किया था"। समाज की प्रगति कितनी शीघ्रता से भारतीयता से भाग रही है, इस विषय पर लेखक ने गम्भीर विचार किया है। कहानी के अन्तर्गत आधुनिक समय के मनोविज्ञान का पूर्ण समावेश करना आवश्यक और अनिवार्य हो गया है। लेखक ने इस दृष्टिकोण को अपने सामने रक्खा है। "मैं नहीं मानता डाक्टर दूबे बड़ा चालाक आदमी है" के द्वारा लेखक ने वयोवृद्धों का साधारण चित्र रक्खा है। लेखक ने चरित्र-चित्रण करते समय अपने पात्रों को सदैव सतर्क रक्खा है। वे एक निश्चित दृष्टिकोण को रक्खे हुए हमें एक संदेश देते रहते हैं।

"पिता जी! तुम यहाँ.... किस लिए आये हो। धर्म को तिलांजलि देकर.... साध्वी पत्नी क त्याग करके अपनी पुत्री, मान-मर्यादा को मिट्टी में मिलाकर.. नूरुल्लाह बोला.... बुराई की जड़ तू है.. जिद्द कर मुसलमान हो जा" वासनाग्रस्त व्यक्ति अपने धन, धर्म आदर्श को किस प्रकार लात मारकर अधःपति हो जाता है और अपने को भी भ्रष्ट करने की इच्छा रखता है, इसका यह एक उदाहरण है। लेखक के अन्तर्गत मानव कमज़ोरियों को व्यक्त करने की कला है। मानव का अधःपतन, मानव की चंचलता, जीवन की सार्थकता, भारतीय सभ्यता के सुन्दर चित्र हमें अधःपतन, अन्तर्दीप्ति, चरणामृत, विश्वास-घात आदि नामक कहानियों में एक मार्मिक रूप से हमारे समक्ष आता है। इस संग्रह से हमें यह ज्ञात होता है कि लेखक के हृदय में हमें ऐसी पुस्तक देने की इच्छा थी जो बालक, वृद्ध, स्त्री, पुरुष सबके मनोविनोद की सामग्री हो और प्रकाशक ने मुख-पृष्ठ पर पुस्तक के नाम को चरितार्थ करने के हेतु एक सुन्दर राका का चित्र उतनी ही तनमयता से बनवाया है जितनी सतर्कता से छपाई की है।

—श्री दिनेशनारायण उपाध्याय 'साहित्यरत्न'

४—कोलतार—लेखक, मिर्ज़ा अज़ीमबेग चग़ताई, रूपान्तरकार, डाक्टर वृजविहारीलाल बी० एस सी०, एम० बी०, बी० एस०, प्रकाशक, छात्रहितकारी-पुस्तकमाला, दारागंज, प्रयाग है। मूल्य २) है।

मानव जीवन में हास्य का एक विशेष स्थान है। कभी कभी हम दूसरों के जीवन की और अपने भी जीवन की साधारण भूलों को यादकर हँस पड़ते हैं। यही हमारे आनन्द की अभिव्यक्ति है। इस आनन्द की सृष्टि करना ही हास्यपूर्ण साहित्य का उद्देश्य है। 'कोलतार' एक हास्य पूर्ण उपन्यास है, जिसमें भिन्न भिन्न अनेक कथानक एक घटना सूत्र से सम्बद्ध किये गये हैं। सम्पूर्ण पुस्तक में एक ही पात्र के चरित्र-चित्रण की प्रधानता नहीं है। कथानक का आविर्भाव एक सुसभ्य समाज से हुआ है, अतएव हमें इसमें पश्चिमी सभ्यता के रंग में रँगे हुए नये भारतीय संस्करण की छेड़छाड़ और उछल कूदपूर्ण प्रेम लीला मिलती है। परन्तु कहीं कहीं यह उछल कूद और शोखियाँ इतनी अधिक दूर तक पहुँच जाती हैं कि अस्वाभाविकता की एक स्पष्ट छाप घटनाक्रम पर पड़ जाती है। हास्य-साहित्य का उद्देश्य पाठक को खिल-खिलाकर हँसाना नहीं, बल्कि उसके हृदय में चुटकियों द्वारा एक आनन्द की अनुभूति उत्पन्न करना है। लेखक चित्रांकण में अधिक सफल हुआ है, संवादों में कटाक्ष-व्यंग्य और चुटकियों के कारण मनोरंजकता आ गई है। उर्दू-साहित्य

में श्रीयुत चग़ताई की भाषा सजीव तथा पुर-असर है। रूपान्तर में भी भाषा की उस सजीवता की रक्षा की गई है। हिन्दी साहित्य में इस प्रकार के हास्य-साहित्य का अभाव है, जिसकी पूर्ति में 'कोलतार' का काफ़ी हाथ होगा।

—अनन्तप्रसाद विद्यार्थी

५—स्तुति-कुसुमाञ्जलि—यह संस्कृत की एक प्राचीन प्रसिद्ध रचना है। यह अभी तक अप्राप्य भी थी। प्रसन्नता की बात है कि यह अब छप गई है और सो भी सान्वय और हिन्दी-अनुवाद-सहित। इसका प्रकाशन काशी के पण्डित प्रेमवल्लभ त्रिपाठी शास्त्री ने किया है। अनुवाद भी त्रिपाठी जी ने ही किया है। पुस्तक इंडियन प्रेस में छपी है और सजिल्द है। इसका आकार मँझोला, पृष्ठ-संख्या ८०३ और मू य केवल ४) है। प्रारम्भ के प्राक्कथन आदि के १४-१५ पृष्ठों में इस ग्रन्थ का तथा इसके प्रणेता आदि का भी परिचय दिया गया है। आचार्य महावीर-प्रसाद द्विवेदी इस ग्रन्थ के बड़े प्रशंसक थे। उन्हें जब इस पुस्तक की कापी मिली तब लेखक को एक पत्र लिखा था। वह पत्र भी इसमें छाप दिया गया है। वस्तुतः इस ग्रन्थ का परिचय हिन्दीवालों को सबसे पहले द्विवेदी जी ने ही दिया था। कदाचित् उन्होंने 'स्तुति कुसुमांजलि' के सम्बन्ध में 'सरस्वती' में दो लेख लिखे थे जो उस समय बहुत पढ़े गये थे। उन्हीं लेखों से प्रेरणा पाकर इस ग्रन्थ के प्रकाशक त्रिपाठी जी ने इसका अ ययन ही नहीं किया, किन्तु इसका हिन्दी में अनुवाद करके खुद ही इसे छपवा भी डाला। इतने बड़े ग्रन्थ के छपवाने के लिए शास्त्रियों के पास पैसा कहाँ हो सकता था। तथापि उन्होंने हिम्मत नहीं छोड़ी, और छपवा कर ही रहे। इस महत्कार्य को इस रूप में सम्पन्न करने के लिए त्रिपाठी जी की जितनी भी प्रशंसा की जाय, थोड़ी होगी। स्तुति-कुसुमाञ्जलि को इस रूप में प्रस्तुत करके उन्होंने वास्तव में एक पुनीत कार्य किया है। उनके हिन्दी अनुवा से इस ग्रन्थ की स्तुतियों का अर्थ तो अवगत ही होता है, साथ ही उनके कवित्व की खूबियों का भी बोध होता है। शिव भक्तों को तो इस ग्रन्थ का संग्रह करना ही चाहिए, उन्हें भी इसका संग्रह करना चाहिए जो कवित्व के प्रेमी हैं। मिलने का पता—पण्डित केशवदत्त त्रिपाठी, शिवभक्ति-ग्रन्थमाला, नं० २४।५८ रामघाट, बनारस।

६—हमारे नये सहयोगी

(१) कमला—(मासिक) सम्पादक, श्री बाबूराव विष्णु पराड़कर और श्री शान्तिप्रिय द्विवेदी हैं। प्रकाशक, भार्गव भूषण प्रेस, गायघाट बनारस है। आकार-प्रकार सरस्वती का, वार्षिक मूल्य ५) है।

यह पत्रिका गत वर्ष से निकलने लगी है। इसमें स्त्रियोपयोगी उच्चकोटि के लेखों के अतिरिक्त साहित्यिक व अन्य सामाजिक समस्याओं पर भी विचारपूर्ण लेख व कवितायें रहती हैं। पत्रिका उन्नतिशील और सुसम्पादित है तथा उच्चशिक्षित महिलाओं के लिए आवश्यक एक हिन्दी-पत्रिका के अभाव की अच्छी पूर्ति करती है।

(२) प्रीतिलड़ी—(मासिक) यह पत्रिका जुलाई १९३९ से श्री गुरुबख्शसिंह बी० एस-सी० के सम्पादकत्व में प्रीतिनगर, अमृतसर से निकल रही है। वार्षिक मूल्य ४॥) है।

इसमें साहित्यिक, सामाजिक व राजनैतिक लेख रहते हैं। चुनाव व सम्पादन सुन्दर है। हमें विश्वास है कि यह पत्रिका पंजाबियों में हिन्दी-साहित्य का अनुराग उत्पन्न करने में शीघ्र ही अच्छी सफलता प्राप्त करेगी।

(३) तरुण (मासिक)—यह मासिक पत्र श्री कृष्णनन्दनप्रसाद के सम्पादकत्व में तरुण कार्यालय, ९४, दिलकुशा, नया कटरा, इलाहाबाद से गत जनवरी से निकलने लगा है। वार्षिक मूल्य ३) है।

समालोच्य अंक इसका प्रथम अंक है। इसकी सभी सामग्री नवयुवकों व नवयुवतियों के लिए उपयोगी व पठनीय है। कुमार, प त व निराला जी की १-१ कविता भी है। ठाकुर श्रीनाथसिंह जी की एक सुन्दर कहानी है। अन्तर्राष्ट्रीय महायुद्ध व ललित कलाओं पर भी सुन्दर सुन्दर लेख हैं। हम सहयोगी की उन्नति चाहते हैं।

(४) वीर बाला (त्रय मासिक)—वार्षिक मूल्य १॥), सम्पादक, प्रोफ़ेसर प्रेमनारायण माथुर और प्रकाशक, श्री राजस्थान बालिका विद्यालय, बनस्थली, निवाई, जयपुर हैं।

यह पत्रिका बनस्थली के बालिका-विद्यालय की मुख पत्रिका है और उसी संस्था से सम्बन्धित लेख प्रायः इसमें रहते हैं। सम्पादन सुन्दर है।

(५ चाँद (मासिक)—वार्षिक मूल्य ६॥) और प्रकाशक, चाँद-कार्यालय, पोस्ट बैग नं० ३, इलाहाबाद है।

'चाँद' का प्रकाशन इधर कुछ समय से बन्द था। अब श्री सत्यभक्त के सम्पादन और श्री नन्दगोपालसिंह के प्रबन्ध में फिर प्रकाशित होने लगा है। कहने की आवश्यकता नहीं कि महिलोपयोगी पत्रिकाओं में चाँद पहले जैसी प्रतिष्ठा प्राप्त कर लेगा।

(६) नई कहानियाँ—यह पत्रिका भी 'चाँद प्रेस' प्रयाग से गत जनवरी से निकलने लगी है। इसके सम्पादक हैं श्रीयुत नरसिंहराम शुक्ल और वार्षिक मूल्य ४॥) है। पत्रिका का गेट-अप, विषय-चुनाव व सम्पादन चित्ताकर्षक है। आशा है, यह यथेष्ट उन्नति करेगी।

(७ जीवन-सखा—प्रयाग में डाक्टर बालेश्वर-प्रसादसिंह का एक 'नेचरक्योर होम' है। इसमें समस्त रोगों की चिकित्सा प्राकृतिक ढंग और उपादानों से की जाती है। यह पत्र उक्त संस्था का मुख पत्र है। सम्पादक उक्त डाक्टर साहब हैं। इसमें सब लेख स्वास्थ्य और उसे देनेवाले प्राकृतिक साधनों पर रहते हैं। वार्षिक मूल्य ३) है। 'प्राकृतिक स्वास्थ्यगृह ८७ हिम्मतगंज, इलाहाबाद' के पते से मिलता है।

(८) मराल—सम्पादक श्रीयुत किशोरीदास वाजपेयी शास्त्री. वार्षिक मूल्य २) है। पता—'मराल' नमकमंडी, आगरा।

इसका प्रधान विषय है हिन्दी भाषा और साहित्य की विवेचना। अलंकार, रस और व्याकरण सम्बन्धी लेख इसमें प्रधानतः रहते हैं। पत्र उन्नतिशील है।

७—राजपूताने का इतिहास—लेखक, श्रीयुत जगदीशसिंह गहलौत और प्रकाशक, हिन्दीसाहित्य-मन्दिर जोधपुर हैं। पृष्ठ-संख्या ७११, छपाई अच्छी, काग़ज़ चिकना और सजिल्द पुस्तक का मूल्य ५) है।

राजपूताने के छोटे-बड़े कई इतिहास हिन्दी में निकल चुके हैं, फिर भी प्रस्तुत इतिहास में कुछ अपनी निजी विशेषतायें हैं। इसमें लेखक ने राजपूताने के सभी छोटे-बड़े राज्यों के सचित्र ऐतिहासिक व भौगोलिक वृत्त सरल और स्पष्ट भाषा में समझाकर लिख दिये हैं। यही नहीं, सभी राजघरानों के वंश-वृक्षों, रीति-रवाजों व परंपरागत प्रथाओं का भी उल्लेख पृथक्-पृथक् किया है। राजस्थानियों की सामाजिक, आर्थिक, शिक्षासंबंधी व राजनैतिक अवस्थाओं का वर्णन भी सुविस्तृत कर दिया है। भारत-सरकार व राजघरानों के बीच समय समय पर होनेवाले सन्धिपत्रों व अहदनामों का उल्लेख भी पाठक इस ग्रन्थ में पायेंगे। आवश्यक स्थानों व पुरुषों के चित्र भी काफ़ी दिये गये हैं। इस प्रकार राजपूताने के इतिहास से सम्बन्ध रखनेवाली समस्त उपलब्ध सामग्री का लेखक महोदय ने इस पुस्तक के लिखने में भले प्रकार उपयोग किया है, जिसमें उनके अध्ययन व मननशीलता का अच्छा परिचय मिलता है। सब मिलाकर पुस्तक इतिहास-प्रेमियों और विशेषतया राजपूताने के इतिहास में दिलचस्पी रखनेवाले छात्रों के लिए उपयोगी है।

८—जन्म-पत्री—लेखक, श्रीयुत केशवानन्द शर्मा 'जदली' हैं। प्रकाशक, सरूपस प्रेस, मेमियो बर्मा है। पृष्ठ-संख्या १०८ और मूल्य १॥) है। 'जन्मपत्री' हिन्दुओं के लिए नई वस्तु नहीं है; हाँ, इस पुस्तक के संकलन में अवश्य कुछ नवीनता और विशेषता है और वह यह है कि हमारे यहाँ की पहली जन्म-पत्रियाँ रंग-बिरंगी और लम्बी बनती थीं। जो जितनी ही अधिक दक्षिणा दे सकता था, उसके पुत्र की जन्म-पत्री उतनी ही अधिक लम्बी और रंगवाली बनती थी। पर यह जन्मपत्री पुस्तकाकार और एक रंग में सजाई गई है। शेष बातें—अनेक चक्र, कोष्ठक, ग्रहों व उपग्रहों, राशियों आदि के फल—वे ही हैं जो पुरानी जन्म-पत्रियों में हुआ करती थीं। किसी की जन्मपत्री बनाने के लिए इस पुस्तक के खाली स्थानों की पूर्ति भर कर देनी होगी और एक सुन्दर बहुमूल्य व सर्वांगपूर्ण जन्मपत्री सजिल्द पोथी के रूप में बन जायगी। इस अविश्वासपूर्ण युग में भी जिन पंडितों की आजीविका धनी-मानी लोगों की 'भार्या पुत्ररत्नमजीजनत्' पर चल रही हो, उनके लिए यह पुस्तक उपादेय है। साधारण शीघ्रबोधिये भी इसके सहारे रुपये-धेलीवाली पत्रिकायें आसानी से बनाकर दे सकेंगे, क्योंकि इस पुस्तक का दाम एक जन्म पत्री भर के लिए उपयुक्त ही है। जो अपनी पूर्ण व सटीक जन्म पत्रियाँ रखना चाहें ऐसे गृहस्थों के लिए पंडित जी का यह श्रम बड़े काम का है।

हिन्दू-संघ और मुस्लिम-संघ*

लेखक, पंडित वेंकटेश नारायण तिवारी

'सरस्वती' के पाठकों ने, मुझे विश्वास है, पाकिस्तान का नाम अवश्य सुना होगा। पाकिस्तान का अर्थ है पवित्र स्थान। लेकिन इस समय इसका प्रयोग एक विशेष अर्थ में होता है। भारतीय राजनीति में इसका अर्थ है भारत का वह खण्ड जिस पर मुसलमानों का, बहुसंख्यक होने के कारण, राज्य हो। इसी को वे पाकिस्तान कहते हैं। हिन्दुस्तान के कुछ मुसलमानों ने पाकिस्तान की आवाज़ को कई बरसों से उठा रक्खा है। कहते हैं कि पंजाब के प्रसिद्ध कवि, दार्शनिक और राजनीतिक नेता सर मुहम्मद इक़बाल ने इस योजना को जन्म दिया था। पर मुस्लिम लीग ने जब से ज़ोर पकड़ा तब से पाकिस्तान की चर्चा ने भी ज़ोर पकड़ा है। लीगी दोस्तों का कहना है कि इस देश के मुसलमानों की अल्प-संख्यकों में गणना न होनी चाहिए। वे तो हिन्दुस्तान में पृथक् और स्वतंत्र 'नेशन' हैं, उसी तरह जिस तरह जर्मनी में जर्मन नेशन है और इँगलिस्तान में इँगलिश नेशन है। हिन्दुस्तान में, उनका मत है, दो नेशनें हैं—एक हिन्दू और दूसरी मुस्लिम। ऐसी दशा में, उनका कहना है, मुस्लिम नेशन किसी ऐसे राष्ट्र का अंग नहीं बनेगी जिसमें उसको अल्प-संख्यक होने के कारण बहु-संख्यकों का गुलाम बनना पड़े। हिन्दुस्तान अगर एक नेशन मान लिया गया तो उसमें संख्या की दृष्टि से मुसलमानों को तो एक अल्प-संख्यक समुदाय ही का पद ग्रहण करना और बहु-संख्यक हिन्दुओं की अधीनता में जनम काटना पड़ेगा। हिन्द के मुसलमानों को इसी कल्पित ख़तरे से बचाने की गरज से एक स्वतंत्र मुस्लिम नेशन की गढ़न की गई है। इसी लिए इस कथित मुसलमान नेशन की रक्षा के लिए यह ज़रूरी है कि हिन्दुस्तान दो भागों में विभक्त किया जाय। एक भाग में हिन्दुओं का राज्य होगा और दूसरे में हिन्दुस्तानी मुसलमानों का एक अलग संघ बनेगा। यदि सम्भव हो तो उसमें एशिया, योरप और अफ़रीका के मित्र मुसलमान राष्ट्र भी सम्मिलित कर लिये जायँगे। इस लेख में हिन्दुस्तान के इस साम्प्रदायिक बँटवारे के एकाध पहलू पर हम विचार करेंगे। आइए देखें, यदि मुसलमानों की यह माँग मंजूर कर ली जाय और हिन्दुस्तान में हिन्दुस्तानी संघ के स्थान में हिन्दू और मुस्लिम संघों के क्रम से दो स्वतंत्र संघों की स्थापना की जाय तो इन दो संघों में क्रमशः देश के दो प्रमुख सम्प्रदायवालों का किस तरह बँटवारा होगा और भारतवर्ष के नक़्शे का उस समय क्या रूप हो जायगा।

यहाँ पर प्रश्न उठेगा और उसका उठना स्वाभाविक है कि किस सिद्धान्त के आधार पर इस तरह के दो साम्प्रदायिक संघों में देश का बँटवारा किया जा सकता है। मेरी राय में एक ही सिद्धान्त मान्य हो सकता है, अर्थात जिन-जिन भाग-विशेषों में मुस्लिम बहुमत हो उन-उन प्रदेशों को मुस्लिम-संघ में शामिल करना चाहिए, और जिन-जिन प्रदेशों में हिन्दुओं की या हिन्दुओं और सिक्खों की बहुसंख्या निकले उन्हें हिन्दू-संघ का अंग मानना पड़ेगा। दो संघों की योजना इसी बुनियादी उसूल पर खड़ी की गई है कि जहाँ पर हिन्दू बहुसंख्यक हैं वहाँ पर मुस्लिम अल्पसंख्यकों के हितों और स्वत्वों की रक्षा सम्भव नहीं है। जो यह कहते हैं उन्हें यह भी स्वीकार करना पड़ेगा कि संघ के रूप में जो संरक्षण वे अपने लिए चाहते हैं उन्हीं के से संरक्षण मुस्लिम-प्रधान प्रान्तों और रियासतों में बसे हुए हिन्दुओं को भी मिलने चाहिए। साथ ही, बँटवारे में इस बात का भी ध्यान रखना उचित है कि विभाजन इस तरह से हो कि जहाँ तक सम्भव हो सके वहाँ तक दोनों ही संघों की सीमायें अखंडित रहें। छोटे-छोटे अनेक टुकड़ों में देश नहीं बँट सकता। संघों के

---

*इस लेख के लिखे जाने के कई दिन बाद मैंने जनवरी १९४० की 'सरस्वती' में इसी विषय पर एक लेख देखा। लेकिन मैंने अपने लेख में परिवर्तन करना उचित नहीं समझा, क्योंकि यह दूसरे ही पहलू से लिखा गया है।

—लेखक

स्थापन और संरक्षण तथा उनकी प्रगति के लिए समान भागों का होना आवश्यक है। अगर ऐसा न होगा तो भारतवर्ष एक साथ अंड-वंड टके हुए हरे-पीले टुकड़ों की एक वदनुमाँ रज़ाई वन जायगा।

वहुमत की कसौटी क्या होगी? मैंने इस लेख में जिस कसौटी को लेकर मुस्लिम और हिन्दू संघों में भारत के बँटवारे की कल्पना की है वह यह कि जहाँ की आवादी में मुसलमानों की संख्या ५० प्रतिशत से अधिक है उसे मैंने मुस्लिम संघ का अंग मान लिया है और जहाँ की आवादी में इनकी संख्या ५० से कम है उसे मैंने हिन्दू संघ में शरीक कर दिया है। तुलना के लिए मैंने पंजाव को छोड़कर दूसरे प्रान्तों में सिर्फ़ हिन्दुओं और मुस्लिम आवादियों ही को लिया है। पंजाव में हिन्दू और सिक्खों को मिलाकर रक्खा है जैसा पाठक आगे देखेंगे, मुस्लिम संघ के पश्चिमी और पूर्वी भागों में सम्मिलित होनेवाले टुकड़ों के वीच में सिर्फ़ एक को छोड़ कर कोई हिन्दू-प्रधान प्रदेश नहीं पड़ता। इसी तरह कोई मुस्लिम-प्रधान प्रदेश, एक को छोड़ कर, हिन्दू-संघ के क्षेत्रफल में नहीं आता। अपवाद हैं पंजाव की कपूरथला और पूर्वी वंगाल त्रिपुरा रियासतें। कपूरथला में मुस्लिम बहुमत है, लेकिन चारों ओर से वह अमुस्लिम क्षेत्र से घिरा हुआ है। इसी तरह पूर्वी वंगाल में त्रिपुरा हिन्दू-प्रधान होते हुए भी मुस्लिम क्षेत्र के मध्य में स्थित है। इन दो प्रदेशों को छोड़ कर, मुस्लिम-प्रधान और हिन्दू-प्रधान संघों में उसी सम्प्रदाय के लोगों की सर्वत्र प्रधानता है जिस सम्प्रदायवालों का वह संघ है। पूर्व में मुस्लिम बंगाल और सिलहट मिल कर एक समूचा खंड होगा, जहाँ मुसलमानों की प्रधानता है। पश्चिम में सिंध, सीमा-प्रान्त, वलोचिस्तान और (जम्मू को छोड़ कर) काश्मीर मिलकर एक समूचा खंड वनाते हैं, जहाँ पर मुस्लिमों की आवादी बहुसंख्यक है। जम्मू, पूर्वीय पंजाव, पश्चिमी बंगाल, दारजिलिङ्ग और जलपाईगुड़ी आसानी से काश्मीर, पंजाव और वंङ्गाल से अलग किये जा सकते हैं। ऐसा करने में न तो भौगोलिक, न साम्पत्तिक और न शासन-सम्बन्धी कोई अड़चन पड़ सकती है।

मेरी स्थिति साफ़ है। मैं साम्प्रदायिक दृष्टि से भारत के भाग्य के निबटारे की कल्पना भी करना राष्ट्रीयता के प्रति जघन्य पाप समझता हूँ। मेरे लिए भारत अखण्ड है, अखंड रहेगा। लेकिन जो लोग फ़िरक़ेवाराना चश्मे लगा कर भारतीय समस्याओं का अध्ययन करते हैं उन्हें उसके प्रतिफलों को समझाने की गरज़ से मैंने यह लेख लिखा है। उन्हीं की दलीलों को सही मानकर मैंने दोनों संघों के चित्रों का अंकन करना उचित समझा। इससे यह न समझना चाहिए कि मैं उनके कथनों या तर्कों या परिश्रमों से प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से सहमत हूँ या उनके साथ मुझे किसी भी तरह की सहानुभूति है।

(२)

इसके पहले कि इस विषय का विवेचन मैं करूँ, पाठकों की सुविधा के लिए यह आवश्यक मालूम होता है कि भारतवर्ष के भौगोलिक चित्र के विषय में एक-दो आवश्यक वातों का ज़िक्र कर दिया जाय। भारतवर्ष की वाहरी सीमा पर ध्यान दीजिए। उसके उत्तर-पश्चिम में अफ़ग़ानिस्तान और ईरान हैं; उत्तर में चीनी तुर्किस्तान तिब्बत, नैपाल, भूटान और चीन हैं; पूर्व में वर्मा और श्याम हैं। दक्षिण में लंका का द्वीप है, जो भौगोलिक दृष्टि से भारतवर्ष ही का एक अंग है, लेकिन इस समय वह भारत से जुदा इँगलैंड का एक उपनिवेश माना जाता है। अफ़ग़ानिस्तान और हिन्दुस्तान के वीच में क़वीलों का प्रदेश है जो स्वतंत्र है, लेकिन जिसके साथ भारतीय सरकार का सम्बन्ध है। कवीलों के निवासी मुसलमान हैं और सभ्यता या संस्कृति की दृष्टि से इनकी वहुत पिछड़ी हुई दशा समझी जाती है। लूट-मार करना इनका पेशा है। भारतवर्ष और वर्मा का कुल क्षेत्रफल १८ लाख वर्ग मील है और १९३१ की मनुष्य-गणना के अनुसार आवादी ३५ करोड़ २८ लाख थी। वह १८८१ में २५ करोड़ ३९ लाख; १८९१ में २८ करोड़ ७३ लाख, १९०१ में २९ करोड़ ४४ लाख, १९११ में ३१ करोड़ ५२ लाख और १९२१ में ३१ करोड़ ८९ लाख थी। १८८१ से १९३१ तक की ५० वर्ष की अवधि में भारतवर्ष की आवादी में लगभग १० करोड़ की वढ़ती हुई। १९३७ में वर्मा हिन्दुस्तान से अलग कर दिया गया। इँगलैंड से अब उसका सीधा सम्बन्ध है। इसलिए वर्मा को छोड़कर भारत के क्षेत्रफल को १८ लाख के बजाय १५ लाख ७६

हज़ार वर्गमील और उसकी जनसंख्या को ३५ करोड़ के स्थान पर ३३ करोड़ ८२ लाख मानना चाहिए। इसी स्थान पर भारत की सीमा पर स्थित तीन देशों के रक़वों और आवादियों का भी उल्लेख कर देना अनुचित न होगा। अफ़ग़ानिस्तान का रक़वा २५,००० वर्गमील है, जिसमें ७० लाख स्त्री-पुरुष १९३१ में वसते थे। नैपाल के राज्य का विस्तार ५४ हज़ार वर्गमील है और आवादी ५६ लाख है। भूटान के राज्य का क्षेत्रफल २० हज़ार वर्गमील और जनसंख्या ढाई लाख है। भारत के क्षेत्रफलों और आवादियों के साथ कुछ विदेशों के रक़वों और आवादियों की तुलना कर लीजिए। अमेरिका के संयुक्त-राज्य का रक़वा ३१ लाख वर्गमील से अधिक है, लेकिन उसकी कुल आवादी १४ करोड़ से कुछ कम है। फ़्रांस का रक़वा २ लाख १३ हज़ार वर्गमील है, लेकिन उसकी आवादी चार करोड़ से कुछ ही ऊपर है। ँगलैंड और वेल्स का रक़वा ९८ हज़ार वर्गमील है और आवादी चार करोड़ है। चीन का विस्तार लगभग ४३ लाख वर्गमील है और उसकी जनसंख्या ४५ करोड़ है। विस्तार की दृष्टि से संसार के देशों में भारतवर्ष का तीसरा नम्बर है और आवादी के लिहाज़ से उसका द्वितीय पद है। कुछ का कहना है कि जन-संख्या में भारत संसार में के सब देशों का अगुआ है।

(३)

इन प्रारम्भिक शब्दों के वाद, आइए, अब हिन्दुस्तान के वर्तमान राजनीतिक विभाजनों पर भी एक नज़र डाल लें। जिस प्रदेश को हम भारतव कहते हैं वह राजनीतिक दृष्टि से तीन खण्डों में विभक्त है। एक तो वह खण्ड है जिसे ब्रिटिश इन्डिया कहते हैं, अर्थात् जिस पर ब्रिटेन की खुल्लम-खुल्ला अमलदारी है। इस भाग में १३ प्रान्त हैं। इन प्रान्तों के नाम हैं—(१) आसाम, (२) वंगाल, (३) बिहार, (४) वम्वई, (५) मदरास, (६) मध्यप्रान्त और वरार, (७) सीमाप्रान्त, (८) उड़ीसा, (९) पंजाब, (१०) सिन्ध और (११) संयुक्तप्रान्त। नके अतिरिक्त अजमेर-देहली और वलोचिस्तान नामक दो और छोटे से प्रान्त हैं, जहाँ का शासनाधिकार, गवर्नरों के वजाय, चीफ़ कमिश्नर नामक प्रधान पदाधिकारियों के हाथ में है। दूसरे खण्ड में देशी रियासतें शामिल हैं। नकी संख्या ५०० और ६०० के वीच में है। इन देशी रियासतों का ब्रिटेन के सिंहासन के साथ सी । सम्बन्ध है और घरेलू शासन में इनको नाममात्र की स्वतंत्रता से लेकर प्रायः पूर्ण आज़ादी तक प्राप्त है, परन्तु वदेशिक युद्ध-सम्बन्धी मामलों में ये ब्रिटेन के पूर्णतः अधीन हैं। तीसरे खण्ड में उन प्रदेशों की गणना है, जिनमें स्वतंत्र क़वीले रहते हैं। तीनों खण्डों के विस्तार और उनकी जन-संख्याओं पर एक नज़र डालिए। ब्रिटिश इन्डिया का विस्तार ८ लाख १८ हज़ार वर्गमील और इसकी जनसंख्या २५ करोड़ ३५ लाख है। देशी रजवाड़ों का क्षेत्रफल लगभग सात लाख वर्गमील है, लेकिन उनके निवासियों की संख्या केवल ७ करोड़ ९१ लाख है। कवीलों का प्रदेश भारत के तीनों खंडों में सबसे छोटा है। वहाँ ६८ हज़ार वर्गमील में लगभग २६ लाख प्राणी वसते हैं। प्रत्येक खंड के आँकड़ों पर यदि पाठक ग़ौर करेंगे तो उनको मालूम होगा कि सारे भारत के प्रत्येक ५० व्यक्तियों में से ४० व्यक्ति चार प्रान्तों में और १० व्यक्ति देशी रियासतों में आवाद हैं। विस्तार में यदि रियासतें ब्रिटिश भारत से कुछ ही कम हैं तो आवादी में दूसरा पहले से तिगुना बड़ा है।

अब हिन्दू और मुस्लिम संघों में भारत के बँटवारे की समस्या की ओर मुड़ आइए। पहले प्रान्तों को लीजिए। उन्हें दो श्रेणियों में आसानी से हम विभक्त कर सकते हैं। पहली श्रेणी में उन प्रान्तों की गणना होगी जिनमें हिन्दुओं की अपेक्षा मुसलमानों की संख्या अधिक है और दूसरी श्रेणी में वे प्रान्त शामिल होंगे जिनमें मुसलमानों की तुलना में हिन्दुओं की संख्या अधिक है। १३ में से ५ प्रान्त अर्थात्—(१) वंगाल, (२) पंजाव, (३) सीमाप्रान्त, (४) सिन्ध और (५) बिलोचिस्तान ऐसे हैं, जहाँ मुसलमानों की बहुत अधिक आवादी है। बाक़ी आठ प्रान्तों में मुसलमान अल्पसंख्यक हैं। पहले पाँच प्रान्तों में कितने हिन्दू और कितने मुसलमान हैं, सका ब्योरा आगे के कोष्ठक से पाठकों को ज्ञात हो जायगा—

संख्यायें लाख में

(१)

प्रान्त का नाम	हिन्दू	मुसलमान
बंगाल	२ करोड़ १६ लाख	२ करोड़ ७५ लाख
पंजाब	६३ लाख	१ करोड़ ३३ लाख
सीमाप्रान्त	१ लाख ४३ हज़ार	२२ लाख
सिन्ध	१० लाख ७७ हज़ार	२८ लाख ३१ ह०
बिलोचिस्तान	९ हज़ार	३ लाख २५ ह०

ऊपर के आँकड़े पूर्णांकों में हैं। बंगाल में हिन्दू ४३०, सिन्ध में २६०, पंजाब में हिन्दू, सिक्ख ४००, सीमाप्रान्त में हिन्दू और सिक्ख मिलाकर ९० प्रति हज़ार हैं। बिलोचिस्तान में प्रायः उनकी संख्या नगण्य है।

इन पाँच प्रान्तों को छोड़कर शेष प्रान्तों की हिन्दुओं और मुसलमानों की आवादियाँ निम्नलिखित हैं—

(२)

प्रान्त	हिन्दू	मुसलमान
आसाम	४९ लाख	साढ़े २७ लाख
बिहार	२ करोड़ ५९ लाख	४१ लाख
बम्बई	१ करोड़ ५६ लाख	१६ लाख
मध्य-प्रान्त	१ करोड़ ३२ लाख	७ लाख
मदरास	४ करोड़	३३ लाख
उड़ीसा	६५ लाख	१ लाख २९ हज़ार
युक्त-प्रान्त	४ करोड़ १० लाख	७२ लाख
अजमेर देहली-प्रांत	१० लाख	सवा ३ लाख

ऊपर के कोष्ठक में जो संख्यायें दी गई हैं उन्हें प्रतिशत के रूप में हम दोहरा देना चाहते हैं। आवादी के प्रति हज़ार में मुसलमान आसाम में ३३०, बिहार में १२०, बम्बई में ९०, मध्य-प्रान्त में ४५, मदरास में ७०, उड़ीसा में १९, युक्त-प्रान्त में १५ और अजमेर-देहली में २३ हैं। उड़ीसा में मुसलमान प्रायः उसी तरह नगण्य हैं जिस तरह हिन्दू बिलोचिस्तान में हैं। मदरास में उनकी स्थिति सीमा-प्रान्त के हिन्दुओं और सिक्खों की है। मध्य-प्रान्त में उनकी संख्या उतनी भी नहीं जितनी सीमा-प्रान्त में हिन्दू-सिक्खों की तादाद है। बिहार और युक्तप्रांत में वे क्रमशः १२८ और १५९ हैं। इससे यह बात स्पष्ट है कि आवादी के लिहाज से, न तो बिहार और न युक्त-प्रांत में और न अन्य छः प्रान्तों में मुसलमानों की वह स्थिति है, जो बंगाल, पंजाब और सिन्ध में हिन्दुओं और सिक्खों की है, जहाँ वे क्रमशः ४०, ३३ और २६ प्रतिशत हैं।

(४)

ब्रिटिश प्रान्तों को छोड़कर देशी रियासतों की ओर आइए। हिन्दुस्तान की सब रियासतों में सिर्फ़ ६ ऐसी रियासतें हैं, जहाँ की आवादी में मुसलमानों की संख्या ५१ या उससे अधिक प्रतिशत होगी, बाक़ी सब रियासतों में हिन्दुओं का प्रवल बहुमत है। पूर्व-कथित मुस्लिम रियासतों के नाम हैं—(१) काश्मीर और जम्मू (२) कपूरथला, (३) बहावलपुर, (४) खैरपुर, (५) लासवेला और (६) केलात। पहली दो रियासतें, केलात और लासवेला बिलोचिस्तान में हैं। खैरपुर सिन्ध में स्थित है। काश्मीर और जम्मू की रियासतें पंजाब के उत्तर में हैं। कपूरथला पंजाब की एक रियासत है। बहावलपुर पंजाब के दक्षिण में है। काश्मीर और कपूरथला के शासक क्रमशः हिन्दू और सिक्ख हैं। बाक़ी चार रियासतों के शासक मुसलमान हैं।

इन ६ रियासतों को छोड़कर हिन्दुस्तान में बाक़ी जितनी रियासतें हैं उनके शासक चाहे हिन्दू हों या मुसलमान, उनमें से प्रत्येक में मुसलमान अत्यल्प संख्यक हैं। ऐसी रियासतों में हैदराबाद, ट्रावनकोर, बड़ौदा, ग्वालियर, पटियाला, बीकानेर, मैसूर, इन्दौर, भूपाल, रामपुर और टोंक आदि सब रियासतें शामिल हैं। पहले मुस्लिम-प्रधान रियासतों को ले लीजिए। इन रियासतों के क्षेत्रफल और जन-संख्यायें निम्न-लिखित हैं, जो कोष्ठक नंबर ३ और ४ में क्रमशः दी जाती हैं।

मुस्लिम-प्रधान रियासतें

क्षेत्रफल और कुल आबादी

(३)

नाम	वर्गमील	आवादी
कपूरथला	५९८	३,१७,०००
लासवेला	७,०००	६३,०००
कलात	७३,०००	३,४२,०००
बहावलपुर	१५,०००	९,८५,०००
खैरपुर	६,०००	२,२७,०००
काश्मीर	८५,०००	३६,४६,०००
कुलजोड़	१,८९,०००	५५,८०,०००

मुस्लिम-प्रधान रियासतें

आवादी

(४)

नाम रियासत		हिन्दू	मुसलमान
कपूरथला	...	५४,०००	१,३९,०००
लासवेला	...	७,०००	६२,०००
कलात	...	११,०००	३,३१,०००
बहावलपुर	...	१,४५,०००	८,००,०००
खैरपुर	...	४०,०००	१,८७,०००
काश्मीर	...	७,३७,०००	२८,१७,०००
कुल जोड़	...	९,८८,०००	४३,३५,०००

ऊपर की ६ रियासतों में काश्मीर के साथ हमने जम्मू का हिन्दू-प्रधान भाग भी शामिल कर लिया है। इसे यहाँ शामिल करना ठीक है या नहीं, इस प्रश्न पर हम आगे चलकर विचार करेंगे। यहाँ उसे भी मुस्लिम प्रधान रियासतों ही का अंग मानकर हम नक़्शे की रूप-रेखा का वर्णन करना उचित समझते हैं। हाँ, तो कुल देशी रियासतों का रक़वा ७ लाख है। उसके क्षेत्रफल से यदि हम ६ मुस्लिम-प्रधान रियासतों के रक़वे को घटा दें तो शेष हिन्दू-प्रधान रियासतों का रक़वा लगभग ५ लाख वर्गमील निकलेगा, अर्थात् मुस्लिम संघ में देशी रियासतों का लगभग एक-चौथाई हिस्सा आ जायगा। कुल रजवाड़ों की आवादी, जैसा हम ऊपर कह चुके हैं, ७ करोड़ ९१ लाख है, जिसमें ६ करोड़ १५ लाख हिन्दू और १ करोड़ ६ लाख मुसलमान हैं। यदि रजवाड़ों का मुसलमान-प्रधान और हिन्दू-प्रधान रियासतों में विभाजन हुआ तो पहली श्रेणी की रियासतों में ३ लाख २१ हज़ार हिन्दू और ३० लाख ३६ हज़ार मुसलमान प्रजा होगी। अर्थात् भारत के कुल रियासती हिन्दुओं में से ५ सैकड़ा हिन्दू और कुल रियासती मुस्लिम के ३० सैकड़ा मुसलमान मुस्लिम संघ में जायँगे। इसके विपरीत भारतवर्ष की रियासतों के ९५ फ़ी सदी हिन्दू और ७० फ़ी सदी मुसलमान हिन्दू-संघ में रह जायँगे। यह बात विचारणीय है कि मुस्लिम संघ की योजना से रियासतों में रहनेवाले ७० फ़ी सदी मुसलमानों को तो कोई लाभ नहीं पहुँच सकता, क्योंकि वे उस समय भी हिन्दू-संघ के अन्तर्गत होने के कारण अन्य मतावलम्बियों के शासन के नीचे जीवन-निर्वाह के लिए वाध्य होंगे। आर्थिक, सामाजिक या सांस्कृतिक दृष्टि से तो इन ७० फ़ी सदी मुसलमानों की वैसी ही हालत तव बनी रहेगी जैसी वह आज है। हाँ, यह होगा कि हैदराबाद, भूपाल और रामपुर आदि मुस्लिम-शासित किन्तु हिन्दू-प्रधान रियासतों में हिन्दू जनता को उस समय अधिक से अधिक स्वतंत्रता मिल जाय और उनकी मुसलमान रियाया को जो इस समय विशेषाधिकार प्राप्त हैं उनका अन्त हो जायगा। कहा जाता है कि मुस्लिम संघ का ध्येय है हिन्दुस्तान के मुसलमानों के हितों की रक्षा करना और एक ऐसे संघ-राष्ट्र का निर्माण करना जिसके द्वारा हिन्दुस्तान की अधिकांश मुसलमान जनता सुख से अपना जीवन-निर्वाह कर सके, और कर सके आज़ादी के साथ विविध दिशाओं में अपनी उन्नति का प्रयत्न। लेकिन ऊपर के आँकड़ों से तो यह बात साफ़ ज़ाहिर है कि देशी रियासतों के ७० फ़ी सदी मुसलमानों की दशा जैसी अब है वैसी ही तब भी बनी रहेगी जब मुस्लिम संघ की स्थापना भी हो जायगी। कपूरथला और काश्मीर की रियासतें अवश्यमेव मुस्लिम संघ में आ जायँगी। लेकिन हैदराबाद, भूपाल और रामपुर आदि अनेक मुसलमानी रियासतों का क्या हाल होगा? वे तो मुस्लिम संघ में किसी तरह से नहीं शामिल हो सकतीं, क्योंकि वहाँ पर हिन्दुओं का बहुमत है। यदि बहुमत के आधार पर हिन्दुस्तान के दो टुकड़े करना है तो फिर रियासतों की ७० प्रतिशत मुसलमान प्रजा को या तो मजबूरन हिन्दू-संघ के शासन में रहना होगा या मुस्लिम-संघ में बसने की ग़रज़ से हिन्दू-प्रधान रियासतों से हिजरत करनी पड़ेगी। मुस्लिम संघ की योजना बनानेवालों को चाहिए कि वे पहले हैदराबाद के निज़ाम या भूपाल और रामपुर के नवाबों से जाकर पूछें कि क्या वे हिन्दुस्तान के साम्प्रदायिक बँटवारे का समर्थन करने के लिए तैयार हैं। क्या वे और उनकी बिरादरी के दूसरे शासक कभी यह स्वीकार करेंगे कि पाकिस्तानी पतंग को उड़ानेवाले दोस्तों को महज़ खुश करने के लिए वे हिन्दू-संघ के अधीन हो जायँ? जहाँ तक देशी रियासतों का सम्बन्ध है, वहाँ तक यह स्पष्ट है कि मुस्लिम संघ की योजना के द्वारा मुसलमानों के विशेषाधिकारों को कहीं अधिक धक्का पहुँचने की सम्भावना

है और सम्भावना है इसकी भी कि हिन्दुओं को क्षति पहुँचने के बजाय आज से भी अधिक शक्ति उन्हें मिल जाय और शासन में भी उन्हें वे अधिकार प्राप्त हो जायँ जिनसे वे सदियों से वंचित हैं।

(५)

काश्मीर को मुस्लिम-प्रधान रियासत मानकर हमने ऊपर विचार किया है। लेकिन जम्मू भी काश्मीर का एक अंग है। इसमें हिन्दुओं का बहुमत है। यह प्रान्त भी साम्प्रदायिक दृष्टि से दो भागों में स्वतः विभक्त है। पश्चिमी भाग में, जिसमें पूंच, रियासी और मीरपुर के इलाक़े हैं, मुस्लिम-प्रधान हैं; लेकिन पूर्वी भाग में हिन्दुओं का बहुमत स्पष्ट है। इसमें जम्मू खास, ऊधमपुर, भद्रवार, कैथुआ और चैननी के इलाक़े हैं। काश्मीर की रियासत के ये दो भाग एक-दूसरे से बहुत विभिन्न हैं। काश्मीर-जम्मू का सम्मिलित क्षेत्रफल ८५,००० वर्गमील से कुछ अधिक है। और पूर्वी जम्मू का विस्तार-क्षेत्र है ७ हज़ार वर्गमील के ऊपर। काश्मीर और जम्मू की सम्मिलित रियासतों में हिन्दुओं की आबादी ७ लाख ३६ हज़ार और मुसलमानों की संख्या २८ लाख १७ हज़ार है। काश्मीर प्रान्त में ९५ फ़ी सदी मुसलमान हैं, लेकिन पूर्वी जम्मू में प्रत्येक ७० मुसलमान पीछे १०० हिन्दू हैं। ऐसी दशा में इस प्रश्न का उठना स्वाभाविक है कि क्या पूर्वी जम्मू काश्मीर की रियासत के साथ साथ मुस्लिम संघ में शामिल किया जाय या न शामिल किया जाय; और यदि न किया जाय तो क्यों; और यदि किया जाय तो क्यों? मुस्लिम संघ की योजना के आधार-स्तम्भों ही का यह सिद्धान्त है कि जिस प्रान्त में मुसलमानों का माताधिक्य हो उसे मुस्लिम संघ में मिला देना चाहिए, क्योंकि बहु-संख्यकों के ऊपर अल्प-संख्यकों का शासन करना बहु-संख्यकों के साथ अन्याय करना है। ऐसी दशा में पूर्वी जम्मू के हिन्दू यह कह सकते हैं कि वे मुस्लिम संघ में जाना पसन्द नहीं करते। जो एतराज़ काश्मीर के मुसलमानों को हिन्दू शासन के ख़िलाफ़ हो सकता है, तो यह मानना पड़ेगा कि वही एतराज़ पूर्वी जम्मू के बहुसंख्यक हिन्दुओं को मुसलमानी शासन के प्रतिकूल होगा। यदि न हो तो अचरज की बात होगी। पूर्वी जम्मू के रहनेवालों को आत्म-निर्णय का उसी तरह अधिकार मिलना चाहिए, जिस तरह काश्मीर के मुसलमानों को आत्म-निर्णय का अधिकार मुस्लिम संघ में सम्मिलित होने से प्राप्त हो जायगा। क्या पाकिस्तानवालों ने पूर्वी जम्मू की समस्या पर विचार किया है? अगर किया है तो उन्हें चाहिए कि वे अपने निर्णय को दलीलों के साथ प्रकाशित करने का अनुग्रह करें। उन्हें चैकोस्लोवाकिया के सुडेटैनलैंड की चेतावनी को न भूलना चाहिए। पूर्वी जम्मू कोई क़स्बा नहीं, कोई छोटा या बड़ा शहर नहीं। वह तो विस्तार में कपूरथला से ११ गुना बड़ा है और आबादी में कपूरथला, लासबेला, केलात और खैरपुर मिलकर भी उसका मुक़ाबिला नहीं कर सकते। यदि कपूरथला मुस्लिम संघ के शासन में शरीक किया जाता है क्योंकि वहाँ मुसलमानों की आबादी बहुसंख्यक है तो कोई वजह नज़र नहीं आती कि पूर्वी जम्मू के साथ भी वैसा ही बर्ताव क्यों न किया जाय। मुस्लिम-संघ के समर्थन में सांस्कृतिक और धार्मिक संरक्षण की दोहाई दी जाती है। इसी उसूल पर जम्मू को पृथक् करने का भी समर्थन किया जा सकता है।

(६)

६ रियासतों और उनके साथ पूर्वी जम्मू के मसलों को तो यहीं पर छोड़कर अब आइए प्रान्तों की ओर बढ़ चलें।

ऊपर हम बता चुके हैं कि अजमेर-देहली और बिलोचिस्तान की चीफ़ कमिश्नरियों को लेकर भारत में कुल १३ प्रान्त ऐसे हैं जो ब्रिटिश अमलदारी के अंग कहे जाते हैं। इनमें से ११ प्रान्तों का शासन सन् १९३५ के गवर्नमेंट आफ़ इण्डिया एक्ट में निर्धारित विधान के अनुसार है। बिलोचिस्तान और अजमेर-देहली में अभी तक शासन के सब अधिकार और कुल उत्तरदायित्व वहाँ के चीफ़ कमिश्नरों के हाथों में केन्द्रित हैं। इन १३ प्रान्तों में से, हम बता चुके हैं कि सिर्फ़ पाँच प्रान्तों में मुसलमानों का बहुमत है। इन पाँच में से तीन प्रान्तों—सिन्ध, सीमाप्रान्त और बलोचिस्तान में मुसलमानों का न केवल मताधिक्य है किन्तु वहाँ पर आबादी का वितरण भी इस तरह से है कि कहीं पर अल्पसंख्यकों का बहुमत न मिलेगा। लेकिन पाँच मुस्लिम-प्रधान प्रान्तों में दो प्रान्तों—

पंजाब और बंगाल की दशा इस मामले में सिन्ध, सीमाप्रान्त और बिलोचिस्तान से भिन्न है। इन दो प्रान्तों में दोनों सम्प्रदायों का वितरण इस ढंग से हुआ है कि प्रान्त के भिन्न भिन्न भागों में भिन्न भिन्न सम्प्रदायों का बहुमत हमें मिलता है। उदाहरण के लिए, यदि पंजाब के पश्चिमी हिस्से में मुसलमानों का बहुमत है तो उसके पूर्वी भाग में हिन्दू और सिक्खों का बहुमत है। इसी तरह पूर्वी बंगाल में यदि मुसलमानों का बहुमत है तो पश्चिमी बंगाल में हिन्दुओं का बहुमत है और वहाँ मुसलमान अल्पसंख्यक हैं।

पहले पंजाब को लीजिए। पंजाब में कुल मिलाकर २३ ज़िले हैं, जिनमें १२ ज़िले ऐसे हैं जिनमें मुसलमानों की संख्या ५१ प्रतिशत से कम है। नीचे के कोष्ठक में हम उन ज़िलों की नामावली और प्रत्येक में प्रत्येक १ हज़ार पीछे मुसलमानों की संख्या दे रहे हैं:—

आबादी में प्रतिहज़ार पीछे

(५)

ज़िले	मुसलमान
हिसार	२८२
रोहतक	१७१
गुरगाँव	३२७
कर्नाल	३०५
अम्बाला	३११
शिमला	१५८
काँगड़ा	५०
होशियारपुर	३१८
जालन्धर	४४५
लुधियाना	३५०
फ़िरोज़पुर	४४६
अमृतसर	४७०

इन बारह ज़िलों के अतिरिक्त एक और ज़िला है गुरदासपुर का, जिसमें मुसलमानों की संख्या कुल आबादी के ५० सैकड़ा से कुछ ही ऊपर बैठती है। लेकिन चूँकि इस ज़िले में मुसलमानों का बहुमत है—वह कितना ही स्वल्प क्यों न हो—हम उसे अलग छोड़ते हैं। देशी रियासतों को छोड़कर पंजाब प्रान्त के समस्त भू-भाग का रक़बा ९९ हज़ार वर्गमील और आबादी २ करोड़ ३६ लाख है, जिसमें से ६३ लाख हिन्दू, एक करोड़ ३३ लाख मुसलमान और ३१ लाख सिक्ख हैं। यानी कुल आबादी में हिन्दू २७ सैकड़ा, सिक्ख १३ सैकड़ा और मुसलमान ५७ सैकड़ा हैं। ऊपर के १२ ज़िलों के आँकड़ों को देखिए। अमृतसर लाहौर कमिश्नरी में है, बाक़ी ११ ज़िलों में से पहले ६ अम्बाला कमिश्नरी में और पिछले पाँच ज़िले जालन्धर कमिश्नरी में शामिल हैं। इन १२ ज़िलों की कुल आबादी ९८ लाख है, जिसमें २९ लाख मुसलमान, १८ लाख सिक्ख और ४४ लाख हिन्दू हैं। इन बारह ज़िलों में हिन्दुओं के अतिरिक्त सिक्खों की भी काफ़ी आबादी है। ९८ लाख में से २९ लाख मुसलमानों को निकाल दें तो हिन्दू और सिक्ख मिलाकर इन ज़िलों में ६२ लाख हैं। अतएव इन बारह ज़िलों को आप किसी तरह से मुस्लिम संघ में शामिल नहीं कर सकते। अतएव पंजाब के २३ ज़िलों में से १२ ज़िले हिन्दू संघ में निकल जायेंगे और केवल ११ ज़िले मुस्लिम संघ में जायँगे। पंजाब दो टुकड़ों, मुस्लिम पंजाब और हिन्दू पंजाब, में बँट जायगा। पाकिस्तान के हिमायतियों के हाथ पूरा पंजाब भी न आयेगा। उन्हें तो २३ ज़िलों में से सिर्फ़ ११ ही ज़िलों से अपनी साम्प्रदायिक भूख बुझाने की चेष्टा करनी पड़ेगी। मुझे मालूम है कि पाकिस्तान के नक़्शे में समूचा पंजाब शामिल कर लिया गया है। (नक़्शे में पूरा पंजाब शामिल करने से तो काम न चलेगा। बँटवारा तो किसी उसूल ही पर होगा। वह उसूल साम्प्रदायिक बहुमत ही का उसूल हो सकता है।) पंजाब के ये १२ ज़िले आसानी से उस प्रान्त से जुदा किये जा सकते हैं।

अब बंगाल को लीजिए। बंगाल में बर्दवान और प्रेज़ीडेन्सी कमिश्नरियों में हिन्दुओं का बहुमत है। इन दोनों कमिश्नरियों में से प्रत्येक कमिश्नरी में ६-६ ज़िले हैं। इनके अलावा जलपाइगुड़ी, दार्जिलिंग और चटगाँव हिल्स में भी हिन्दुओं का मताधिक्य है। पाठकों की सुविधा के लिए हम बंगाल के उपर्युक्त दोनों कमिश्नरियों के ज़िलों के नाम नीचे दे रहे हैं—

(अ) बर्दवान कमिश्नरी में—

(१) बर्दवान, (२) बीरभूमि, (३) बाँकुड़ा, (४) मिदनापुर, (५) हुगली और (६) हावड़ा शामिल हैं।

(व) प्रेज़ीडेन्सी कमिश्नरी के अन्तर्गत—

(१) २४ परगना, (२) कलकत्ता, (३) नदिया, (४) मुर्शिदावाद, (५) जैसोर और (६) खुलना के ज़िले हैं।

इन वारह ज़िलों में कुल मिलाकर १ करोड़ २३ लाख हिन्दू और ६० लाख मुसल्मान हैं। यद्यपि कुल बंगाल की आवादी में हिन्दू केवल ४३ और मुसलमान ५५ फ़ी सदी हैं। लेकिन उपर्युक्त पश्चिमी बंगाल के वारह ज़िलों में हिन्दुओं की संख्या मुसलमानों के मुक़ाबिले में दुगनी है। जैसा हम पहले कह चुके हैं, बंगाल की जन-संख्या ५ करोड़ है और उसका रक़वा ८३ हज़ार वर्गमील है। इन वारह ज़िलों का सम्मिलित रक़वा ३२ हज़ार वर्गमील से अधिक है, और आवादी एक करोड़ २७ लाख है। इस आवादी और रक़बे को यदि हम समूचे बंगाल की आवादी और क्षेत्रफल से निकाल लें तो मुस्लिम बंगाल में सिर्फ़ १६ ज़िले रह जायँगे, जिनका रक़वा ५१ हज़ार वर्गमील और आवादी ३ करोड़ १४ लाख होगी। चटगाँव हिल्स को मुस्लिम बंगाल से अलग करना मुश्किल होगा, लेकिन जलपाईगुड़ी और दार्जिलिंग आसानी से अलग हो सकते हैं। इस तरह वर्तमान बंगाल के २८ ज़िलों में से कुल १४ ज़िले मुस्लिम बंगाल को मिलेंगे। पंजाब ही की तरह बंगाल को भी दो हिस्सों में—हिन्दू बंगाल और मुस्लिम बंगाल में—बाँटना होगा। पूर्वी बंगाल मुस्लिम बंगाल और पाश्चमी बंगाल हिन्दू बंगाल हो जायगा। जहाँ इस समय मिस्टर फ़ज़लुल हक़ बंगाल के २८ ज़िलों पर शासन कर रहे हैं, वहाँ मुस्लिम संघ की स्थापना होने पर उनके राज्य का विस्तार सिकुड़कर आधा रह जायगा। इस समय ज़हाँ वे ८३ हज़ार वर्गमील पर शासन कर रहे हैं, वहाँ उनके मुस्लिम बंगाल का विस्तार सिर्फ़ ४७ हज़ार वर्गमील रह जायगा। पाँच करोड़ पर उनका शासन फिर नहीं चलेगा; उनके मुस्लिम बंगाल में केवल तीन करोड़ जनता रह जायगी, जिसमें दो करोड़ १३ लाख तो मुसलमान होंगे और ८४ लाख हिन्दू। उनके हाथ से बंगाल के दो करोड़ जनता को छुटकारा मिल जायगा, जिसमें १ करोड़ ३२ लाख हिन्दू और ६२ लाख मुसलमान सम्मिलित हैं। इसलिए यह कोई अचरज की बात नहीं है अगर सर सिकन्दर हयात ख़ाँ और मियाँ फ़ज़्लुल हक़ साहब पाकिस्तान की योजना के विषय में कुछ अधिक उत्साहित नहीं दिखाई देते। वे जानते हैं कि इस योजना से हिन्दुओं को नहीं, किन्तु मुसलमानों ही को अधिक से अधिक नुक़सान पहुँचेगा।

(७)

ऊपर जितना हम कह चुके हैं, आइए, अब उस सबको भारतीय पैमाने पर रखकर हम मुस्लिम और हिन्दू संघों के नक़शों को खींचें। पश्चिम में ब्लोचिस्तान, सिन्ध, सीमाप्रान्त और पंजाब के बारह पश्चिमी ज़िले मुस्लिम संघ में शामिल होंगे। ६ देशी रियासतें भी इस मुस्लिम संघ के अन्तर्गत होंगी। वे देशी रियासतें हैं पूर्वी जम्मू को छोड़कर काश्मीर, कपूरथला, बहावलपुर, रासबेला, क़िलात और खैरपुर। पूर्व में बंगाल के १४ ज़िले मुस्लिम संघ में चले जायेंगे। हाँ, आसाम का एक ज़िला सिल्हट भी मुस्लिम संघ का हिस्सा होगा, क्योंकि वहाँ मुसलमानों की आवादी, हिन्दुओं की आवादी की तुलना में, कहीं अधिक है। (इसमें ११ लाख हिन्दुओं के मुक़ाबिले में १६ लाख मुसलमान हैं।) इतना ही विस्तार मुस्लिम संघ का हिन्दुस्तान की वर्तमान सीमाओं के अन्दर सम्भव है। इससे अधिक विस्तार उसका होना सम्भव नहीं। मुस्लिम संघ में ब्रिटिश इंडिया का १ लाख ८५ हज़ार वर्गमील रक़बा और कुल आवादी ५ करोड़ ४१ लाख होगी, जिसमें १ करोड़ २६ लाख हिन्दू और १४ लाख सिक्ख और ३ करोड़ ५३ लाख मुसलमान होंगे। यदि ऊपर के आँकड़ों में उन ६ देशी रियासतों के भी आँकड़े जोड़ लिये जायँ जिनमें मुस्लिम बहुमत है तो कुल मिला कर मुस्लिम संघ का रक़बा ३ लाख ६७ हज़ार वर्गमील और आवादी ५ करोड़ ८६ लाख होगी। इस जनसंख्या में एक करोड़ ३० लाख हिन्दू, १४ लाख सिक्ख और ३ करोड़ ९४ लाख मुसलमान होंगे। इसके विपरीत, हिन्दू-संघ के ११ लाख ५१ हज़ार व मील के रक़बे में २८ करोड़ की आवादी होगी। इन २८ करोड़ में २२ करोड़ ६३ लाख हिन्दू, ३ करोड़ ७४ लाख मुसलमान और १८ लाख सिक्ख होंगे।

यदि पाकिस्तानवालों की राय के मुताबिक़ हिन्दुस्तान हिन्दू-मुस्लिम संघों में विभाजित कर दिया जाय तो ३ करोड़ ७४ लाख मुसलमान तो हिन्दू-संघ में आ जायँगे और ३ करोड़ ९४ लाख मुस्लिम संघ में चले जायँगे। देशी रियासतों में रहनेवालों १.०६ लाख मुसलमानों में से ४१ लाख मुसलमान तो मुस्लिम संघ के शासनाधिकार में हो जायँगे और ६५ लाख मुसलमानों को हिन्दू-संघ की हुकूमत के अन्दर आना पड़ेगा। हिन्दुस्तान के प्रत्येक ७७ मुसलमानों में से ३९ मुसलमान मुस्लिम संघ की छत्रच्छाया में चैन की बंशी बजायँगे, लेकिन उन्हीं के ३८ भाइयों को हिन्दू संघ के विजातीय (!) शासन का लोहा झेलना पड़ेगा! इतना ही नहीं, किन्तु हैदराबाद, रामपुर, भूपाल, जावरा, आदि मुस्लिम रियासतों को भी हिन्दू संघ की पराधीनता स्वीकार करनी पड़ेगी। देशी रियासतों के प्रत्येक १०६ मुसलमानों में से सिर्फ़ ४१ को यह परम सौभाग्य प्राप्त होगा कि वे मूस्लिम संघ की सुखद छाया में शान्ति-पूर्वक विश्राम कर सकें; बाक़ी ६५ मुसलमानों को तो हिन्दू-संघ का हुक्म बजाना पड़ेगा। हिन्दू संघ एक ठोस राष्ट्र होगा। अमृतसर से लेकर पूर्वी बंगाल तक और उत्तरी हिमालय से लेकर कन्याकुमारी तक उसका अबाध्य, अनवरुद्ध और अखण्डित विस्तार होगा। इसके विपरीत, मुस्लिम संघ दो टुकड़ों में विभक्त हो जायगा। पूर्वी बंगाल के मुसलमानों को पश्चिमी पंजाब के मुसलमानों के साथ सहमंत्रणा और सहयोग के लिए हिन्दू-संघ के चार प्रान्तों को पार करना पड़ेगा। सैकड़ों मील की दूरी और करोड़ों आदमियों की घनी आबादी पश्चिमी जाब को पूर्वी बंगाल से जुदा करेगी। मुस्लिम संघ के इन दो आकाश-पाताली अंगों में कैसे सहमंत्रणा सम्भव होगी, इस गुत्थी को शायद पाकिस्तान के उत्साहित समर्थकों ने सुलझाने की चेष्टा नहीं की। इसी लिए तो मैं कहता हूँ कि मुस्लिम संघ की योजना अव्यावहारिक, राजनीतिक दृष्टि से सर्वथा असम्भव और नैतिक दृष्टि से हेय है। मुसल्मानों का इससे हित सम्भव नहीं, देश का इससे कल्याण नहीं, लेकिन लोगों को अपनी-अपनी सम्मति प्रकट करने का इस समय अधिकार है, देश को अंग-भंग करने के प्रस्ताव को पेश करने की उन्हें आज़ादी है। किन्तु जो लोग इस तरह की योजना तैयार करते हैं उनको चाहिए कि वे अपने सामने कम से कम हिन्दुस्तान के नक़्शे और इण्डियन इयरबुक को कभी कभी देख लेने का कष्ट बर्दाश्त किया करें। यदि वे ऐसा करेंगे तो मैं उन्हें विश्वास दिलाता हूँ कि उनकी योजना न तो इतनी अंड-बंड होगी और न उनके प्रस्ताव इतने उपहास-जनक होंगे, जितनी अंड-बंड पाकिस्तान की योजना है और जितने निःसार इस समय के उनके प्रस्ताव हैं।

मैंने ज़ान-बूझकर यहाँ पर उन प्रस्तावों की ओर संकेत नहीं किया जिनकी तरफ़ कभी कभी दबी ज़बान से हमारे मुस्लिम दोस्त इशारा किया करते हैं। इस बात के जवाब में कि मुस्लिम संघ की स्थापना के बाद भी ३ करोड़ ७४ लाख मुसलमान, यानी हिन्दुस्तान के मुसलमानों का ४४ प्रतिशत हिस्सा हिन्दू-संघ की हुकूमत में रहेगा, वे यह कहा करते हैं कि कोई मुज़ायक़ा नहीं, हम इन तीन करोड़ ७४ लाख मुसलमानों को मुस्लिम संघ में ले आयँगे और मुस्लिम संघ में जो हिन्दू होंगे उन्हें हिन्दू-संघ में भेज देंगे। वे यह भूल जाते हैं कि मुस्लिम संघ में सिर्फ़ एक करोड़ ४२ लाख हिन्दू रहेंगे और हिन्दू संघ में मुसलमान होंगे ३ करोड़ ७४ लाख। जिन ३ करोड़ ७४ लाख को हिन्दुस्तान के विभिन्न प्रान्तों से उखाड़कर मुस्लिम शासित प्रान्तों में ले जाने का ख्वाब हमारे लीगी भाई देख रहे हैं उनसे पूछ देखिए कि क्या वे हिजरत करने के लिए किसी शर्त पर तैयार हैं। जिस जगह को १८ हिन्दू खाली करेंगे, उसी जगह में ३७ मुसलमानों को बसाना साम्पत्तिक दृष्टि से असम्भव है, लेकिन स्थान विशेषों के साथ हमारे जो सांस्कृतिक सम्बन्ध होते हैं उनकी अवहेलना करना पल्ले दर्जे का पागलपन होगा। सदियों से या युगों से जो लोग जिस स्थान में रहते चले आये हैं उन जगहों को छोड़ने के लिए कोई भी आसानी से तैयार न होगा। जो लोग मुसलमानों की हिजरत का स्वप्न देख रहे हैं वे यह भूल जाते हैं कि बिहिश्त भी जाने के लिए इस दुनिया का छोड़ना आम आदमियों के लिए परम दुखदायी होता है। फिर यह समझना कि परिचित स्थान को छोड़कर अपरिचित स्थान में बसने के लिए हिन्दुस्तान के ३ करोड़ ७४ लाख मुसलमान तैयार हो जायँगे जो स्वभाव से पुरातनपुजारी हैं, महज़ खयाली पोलाव है। हाँ, खिलाफ़त के ज़माने की हिजरत की कहानी को भी इस अवसर पर हमें न भूलना चाहिए। लेकिन जो घाव अब पुर चुके ह उनको फ़िर से खरोचना उचित न होगा।

एक सच्ची कहानी

डच जहाज़ का भगोड़ा

लेखक, श्रीयुत भारतीय, एम० ए०

सन् १९१४ की बात है।

× × ×

लड़ाई छिड़ गई—जर्मनी और अस्ट्रिया हंगरी ने फ़्रांस और रूस पर धावा कर दिया!

× × ×

कनाडा के पत्रों में जैसे यह समाचार छपा लोग भयभीत होकर अपने अपने देश लौटने के लिए आतुर हो उठे। बन्दरगाह पर विदेशियों की भीड़ योरप लौटने के लिए जहाज़ों के टिकट लेने के लिए धक्कमधक्का करने लगी। इसमें अधिक संख्या जर्मन लोगों की थी, क्योंकि उन्हें निश्चय था कि अब इँगलैंड को लड़ाई के मैदान में आने में देर नहीं। ऐसी दशा में उनका कनाडा की भूमि में रहना ख़तरे से ख़ाली नहीं।

बन्दरगाह पर जहाज़ों की कमी थी। केवल एक डच व्यापारी जहाज़ शीघ्र लंगर उठाने की तैयारी में था। उसका कप्तान उतनी जल्दी में न था, क्योंकि उसे निश्चय था कि उसकी सरकार अपनी तटस्थता न छोड़ेगी, चाहे संसार भर के राष्ट्र लड़ते रहें, उसके जहाज़ को कोई नहीं रोक सकता। जर्मनी पहुँचने के लिए आतुर मुसाफ़िर जब उससे जल्दी चलने को कहते तब कप्तान रुखाई से उत्तर देता "नहीं, बाबा मुझे माफ़ करो। जर्मन भगोड़ों के लिए मैं अपने जहाज़ को ख़तरे में नहीं डाल सकता!" कप्तान ने रास्ते में जंगी जहाज़ों-द्वारा पकड़े जाने के डर से अपने जहाज़ पर एक भी जर्मन यात्री को न लिया। कितने ही लोग गिड़गिड़ाते ही रह गये।

केवल तीन घंटे की समुद्र-यात्रा के पश्चात् कप्तान ने अपने जहाज़ के मल्लाहों को क़वायद के लिए डेक पर बुलाया। घंटी बजी। क़वायद की तैयारी होने लगी। इसी बीच लोगों ने देखा कि एक किनारे कन्वेस के पर्दों के बीच एक नवयुवक छिपा बैठा है।

मल्लाहों ने पकड़ कर उसे कप्तान के सामने पेश किया। निडर, निर्ग्लानि, उस नवयुवक ने कप्तान की गालियाँ चुपचाप सह लीं। अन्त में क्रुद्ध कप्तान ने गरज कर कहा—"तुम्हारे जैसों का केवल एक ही इलाज है—मैं तुम्हें उठाकर समुद्र में फेंक दूंगा। तुम समझते हो, मैं तुम्हें मुफ़्त में योरप पहुँचा दूँगा। तुम कौन हो? आख़िर तुम जहाज़ पर पहुँचे कैसे?"

उस नवयुवक ने कोई उत्तर न दिया। अन्त में कप्तान को पिघलता हुआ न देखकर उस बीस बरस के युवक ने कहा—"कप्तान साहब, मैं आपसे एकान्त में कुछ कहना चाहता हूँ। क्या आप मुझे अपने केबिन में मिलने का मौक़ा दे सकेंगे?"

गरजते और क्रोध से उबलते हुए कप्तान ने अन्त में कहा—"चल मेरे कमरे में। सुनें भी, तुझे क्या कहना है।"

कमरे में पहुँचते ही कप्तान ने झिड़क कर पूछा—"बोलो न, क्या कहना है। आख़िर तुम मेरे जहाज़ पर कैसे पहुँचे?"

युवक कहने लगा—"मेरे पिता जर्मनी में कर्नल के पद पर हैं। मेरे बाबा सिपाही थे। मेरे चाचा जनरल हैं। मेरे पर बाबा ब्लूचर के साथ लड़े थे, जिन्होंने नैपोलियन को हराया था। मेरे लकड़बाबा..."

"मैं यह सब पँवारा सुनकर क्या करूँगा!" कप्तान ने झल्ला कर पूछा—"मेरी बला से तुम्हारा ख़ानदान भर फ़ौजी रहा हो। यह तो कहो, तुम मेरे जहाज़ पर छिप क्या कर रहे थे।"

"कृपा कर सुनें कप्तान महोदय! जर्मनी ने फ़्रांस और रूस से लड़ाई छेड़ दी है। गत अर्द्ध शताब्दी से जर्मनी ने शायद ही किसी युद्ध में भाग लिया हो, जिसमें रिबेन्ट्राप वंशवालों ने भाग न लिया हो। मैं इसी हेतु अपने देश पहुँचना चाहता हूँ। कृपा कर मुझे वहाँ पहुँचा दें।"

कप्तान चिन्ता में पड़ गया। नवयुवक की हिम्मत

और देशभक्ति ने उसे प्रभावित कर दिया था। इस उम्र में यह उत्साह! कप्तान ने उस युवक को उसके देश तक पहुँचा देने का संकल्प कर लिया। और इधर अँगरेज़ों ने भी जर्मनी से युद्ध छेड़ दिया।

मार्ग में अँगरेज़ी जंगी जहाज़ों ने उसके जहाज़ की तलाशी ली। अच्छी तरह पूछ-ताँछ की, पर उस डच जहाज़ पर कोई भी जर्मन न पाकर वे लोग चुपचाप चले गये। आख़िर रिबेन्ट्राप कहाँ छिप गया? कप्तान चिन्तित हो उठा। बहुत तलाश करने पर कोयले की कोठरी से एक धीमी आवाज़ आई, जैसे कोई बोझ से दबा कराह रहा हो। मल्लाहों ने कोयले के ढेर से खोद कर युवक रिबेन्ट्राप को मूर्छित पर जीवित दशा में बाहर निकाला। पकड़े जाने के भय से तलाशी के समय रिबेन्ट्राप कोयले के ढेर में सुरंग बना कर जा छिपा था। उसकी आयु शेष थी। वह बच गया। उसे भविष्य में जर्मनी का वैदेशिक मंत्री होना था।

१४, अगस्त १९१४ के प्रातःकाल के समय जहाज़ कुशल-पूर्वक हालैंड के बन्दरगाह में जा पहुँचा। जोकिम-वॉन-रिबेन्ट्राप आख़िर अपने देश के निकट पहुँच गया। अब उसके मार्ग में कोई रुकावट नहीं थी।

हालैंड की सीमा पार कर ट्रेन जैसे ही जर्मन-सीमा में घुसी, पुलिस के सिपाहियों ने उसे घेर लिया। मुसाफ़िरों की तलाशी हो रही थी। रिबेन्ट्राप के लिए यह असह्य हो उठा।

"आख़िर यह सब क्यों?" उसने बिगड़ कर पूछा—"मैं तो कनाडा से भागा हुआ अपने देश की सहायता करने आ रहा हूँ और यहाँ मुझ पर संदेह करके मेरा स्वागत हो रहा है, मानों मैं शत्रु हूँ—भगोड़ा हूँ!"

तलाशी के चार्ज में जो अफ़सर था उसने समझाया—"भाई, यह युद्ध का समय है। कितने ही जासूस भी तो इसी प्रकार घुस आते हैं।"

रिबेन्ट्राप से प्रमाण माँगा गया। उसने हालैंड में रहने-वाले जर्मन कौंसिल का सार्टिफ़िकेट दिखा दिया।

उससे प्रश्न किया गया—"कितनी भाषायें जानते हो?" उसने उत्तर दिया—"अँगरेज़ी, फ़्रांसीसी, स्पेनिश, रूसी....."

"और कहाँ-कहाँ घूम चुके हो?"

[वान रिबेन्ट्राप, जर्मनी के वैदेशिक मंत्री]

"फ़्रांस, इँगलैंड और विशेषकर कनाडा।"

अफ़सर उसे एकान्त में ले गया। उसने कहा—"देश को तुम्हारे जैसे युवकों की ज़रूरत है, जो कई भाषायें जानते हों, और जिन्हें अन्य देशों का अनुभव हो। क्या तुम सिपाही होना चाहते हो?"

"हाँ, इच्छा तो यही है।"

"अच्छी बात है। पर तुम्हें देश के बाहर लड़ना होगा।"

"यह कैसी बात? हमारे देशवासी तो खाइयों में लड़ रहे हैं और मैं विदेश में क्या करूँगा?"

अफ़सर ने समझाया—"ख़ैर, यह आगे देखा जायगा। पर मेरी राय में तुम देश के बाहर अच्छी सेवा कर सकते हो।"

"नहीं! नहीं!" रिबेन्ट्राप ने उत्तर दिया—"मैं सेना में भर्ती होने के लिए आया हूँ। मैं अपने वंश की परम्परा के विरुद्ध कार्य नहीं करूँगा। मैं जासूस नहीं बनूँगा!"

अफ़सर ने मुस्कराकर समझाया—"देशसेवा के कई तरीक़े हैं, और युद्ध के समय केवल देश का ध्यान रखना उचित है—जिस प्रकार भी उसे लाभ पहुँचे।"

घंटे भर के बाद रिबेन्ट्राप बर्लिन पहुँचा। नगर युद्ध

की तैयारी में दिखाई पड़ता था। साधारण वस्त्रों में नवयुवक तमाशे की चीज़ समझे जाते थे—केवल युद्ध की पोशाक में युवकों का सम्मान होता था। केवल २४ घंटे के बाद रिवेन्ट्राप सेना में भर्ती हो गया। उसे जर्मनी की प्रसिद्ध सेना–'डेथस हेड हुस्सास्स' में स्थान मिला था।

× × ×

सन् १९१५ के दिसम्बर की घटना है। बाईस वर्ष का एक नवयुवक जर्मन वाशिंगटन नगर के जर्मन-राजदूत से मिलने के लिए आया है। उसका शरीर कृश और रंग सफ़ेद है। उसकी आँखों के चारों तरफ़ झाँई पड़ी है। देखने में वह कुछ थका-सा लगता है। वह एक पखवारे में जर्मन-पनडुब्बी नाव में यात्रा करके अमरीका पहुँचा है। आख़िर ऐसी लम्बी और गुप्त यात्रा करके आने का प्रयोजन क्या है? योरपीय महायुद्ध का यह द्वितीय वर्ष है। जर्मनी के माल और जहाज़ों की रोक अँगरेज़ों ने लगा रखी है। ऐसी दशा में केवल ग़ोताख़ोर सबमेरीन द्वारा ही और वह भी जोखिम उठा कर जर्मनी से अमरीका पहुँचना हो सकता है।

जर्मन-राजदूत के अर्दली ने सूचना दी, "सरकार, लेफ़्टिनेन्ट वान रिवेन्ट्राप आपसे मिलने की आज्ञा चाहते हैं।" राजदूत के साथ जर्मन जंगी सहकारी वान पेपन भी बैठे हुए थे।

उस युवक का स्वागत करते हुए वान पेपन ने कहा—"प्रियवर, तुम्हें देखकर बड़ी प्रसन्नता हुई। इस समय यहाँ ऐसे ही नवयुवकों की ज़रूरत है, जो मातृभूमि के लिए कुछ भी न उठा रखने के लिए तत्पर रहें।"

वान पेपन उस समय अमरीका में एक आवश्यक जंगी काम के लिए जर्मन-सरकार-द्वारा भेजे गये थे और वह आवश्यक कार्य महाभयानक कार्य था। बात यह थी कि जर्मन-सरकार ने यह भाँप लिया था कि कभी-न-कभी स युद्ध में अमरीका को आना ही पड़ेगा और उसी आशंका में सरकार ने वान पेपन के साथ रिवेन्ट्राप को वहाँ काम करने के लिए नियुक्त किया था। इसका काम क्या था?

वान पेपन ने अपने कमरे में ले जाकर रिवेन्ट्राप से कहना आरम्भ किया—"व्यर्थ समय गँवाने का अवसर नहीं है। बात यह है कि हम लोगों को यहाँ जो करना है वह....."

रिवेन्ट्राप घबराकर कहने लगा—"उफ़! परन्तु यह बड़ा भयानक काम है। मैं सब कुछ करने को तैयार हूँ, परन्तु जासूसी का काम मैं नहीं कर सकता।"

वान पेपन ने समझाया—देश के लिए सब क्षम्य है। मैं ख़ुद यह सब अभी तक यहाँ कर रहा था। अब मेरा यहाँ रहना असम्भव है। अमरीका की सरकार को हम लोगों पर सन्देह हो गया है। उसने हमारे राजदूत से हमें (पेपन और कप्तान बाय-एड) को यहाँ से रवाना कर देने की सलाह दी है। सम्भव है, मैं कल ही यहाँ से रवाना कर दिया जाऊँ। ऐसी दशा में यदि तुम इस कार्य को सँभालते नहीं तो देश के हित....."

वान रिवेन्ट्राप ने गंभीर होकर कहा—"यदि इसका तनिक भी भान मुझे यहाँ आने से पहले होता तो मैं कभी यहाँ आना स्वीकार न करता।"

परन्तु अन्त में वान रिवेन्ट्राप ने संयुक्त-राष्ट्र में रहकर देश-सेवा का भार अपने ऊपर लिया। २१ दिसम्बर, १९१५ को वान पेपन को विवश होकर संयुक्त-राष्ट्र छोड़ना पड़ा। यात्रा में उनका एक बाक्स लापता हो गया, और उस बाक्स में बहुत-से रहस्य-भरे काग़ज़ थे। उस बाक्स को उड़ानेवाले थे अमरीका के जासूसी विभाग के अफ़सर।

इस प्रकार प्राप्त किये गय पत्रों से सारे रहस्य का पता चल गया और अमरीका में काम करनेवाले समस्त जर्मन गुप्तचरों की पकड़-धकड़ आरम्भ हो गई। संयुक्त-राष्ट्र ने जर्मनी के विरुद्ध युद्ध की घोषणा कर दी। जर्मन-राजदूत वापस बुला लिया गया। षड्यंत्रकारियों के प्रधान कार्यकर्ताओं में रिंटलिन जेल भेज दिया गया। ट्रिविच लिकन की भी वही गति हुई। परन्तु रिवेन्ट्राप का पता लोगों को नहीं लगा। वह कहाँ गया?

रिवेन्ट्राप न जाने कैसे जर्मनी पहुँच गया। वहाँ पहुँचते ही उसे तुर्की से कमाण्डर वॉन पेपन का आदेश मिला कि कुस्तुन्तुनिया पहुँचो। रिवेन्ट्राप आश्चर्य में पड़ गया कि वॉन पेपन तुर्की कैसे पहुँचे!

अमेरिका से लौटने पर वॉन पेपन फ़्रांस की सरहद पर युद्ध में भेज दिया गया। वहाँ खाइयों में बैठे बैठे उसने एक बड़े षड्यन्त्र की स्कीम तैयार करके अधिकारियों के पास भेजी। उसे पढ़ कर वे प्रभावित हो गये और उन्होंने वॉन पेपन को चतुर्थ तुर्की-सेना का सहकारी बना कर

कुस्तुन्तुनियाँ भेज दिया। उस अवसर पर स्वयं क़ैसर ने उसे 'रेड इगल' की उपाधि प्रदान की।

वॉन पेपन ने सोचा था कि समस्त मुस्लिम राष्ट्रों को संगठित करके मित्रराष्ट्रों के विरुद्ध उभाड़ा जाय और स्वेज़ नहर का मार्ग कंटकमय कर दिया जाय। उसकी इच्छा थी कि स्वेज़-नहर एकदम बारूद से उड़ा दी जाय और अँगरेज़ों के उपनिवेशों में विद्रोह करा दिया जाय। इन भीषण आयोजनों का भार वॉन पेपन ने अपने ऊपर लिया था और इस कार्य में अपने सहयोगियों को नियुक्त करने की उसे पूरी स्वाधीनता सरकार ने दे रक्खी थी। यही कारण था कि उसने अपने विश्वासपात्र सहयोगी रिवेन्ट्राप को बुला भेजा था।

रिवेन्ट्राप आज्ञा पाते ही तुरन्त तुर्की के लिए रवाना हो गया। कुस्तुन्तुनियाँ में होटेल पेरा में उसने वॉन पेपन से भेंट की। दोनों ने फिर वहीं रहकर सारे षड्यन्त्र का संचालन आरम्भ किया। परन्तु अँगरेज़ों ने बड़ी कुशलता से उनके सब रहस्यों का पता लगा लिया और उनकी सेना जेरुसलम में घेर कर वॉन पेपन के लिए जाल डाला। यदि क्षण भर का भी विलम्ब हो जाता तो वॉन पेपन क़ैदी हो गया होता! परन्तु वह बाल बाल बच गया।

तीन बजे रात्रि को एक नवयुवक बिना रोक-टोक उसके शयनागार में जा घुसा। उसने उतावली से सोते हुए वॉन पेपन को झकझोर कर जगाया—

"ईश्वर के लिए भागो!"

नींद में माता वॉन पेपन कुछ समझ न सका। उसके सामने स्वयं रिवेन्ट्राप खड़ा उसे भागने के लिए आग्रह कर रहा था। उसने पूछा—"आख़िर बात क्या है?"

"कुछ नहीं अँगरेज़ों की सेना नगर में आ पहुँची है। वह तुम्हारे पीछे है। क्षण भर विलम्ब करोगे तो बन्दी होना पड़ेगा। उठो!"

"कपड़े तो ले लूँ—कम से कम अपने गुप्त पत्र आदि तो जला दूँ।"

"नहीं! नहीं! अब समय नहीं है। चूके तो सर्वनाश हो जायगा।" रिवेन्ट्राप ने अनुरोध किया।

"कम से कम कपड़े तो पहन लूँ।" वॉन पेपन ने कहा।

"नहीं, बिलकुल नहीं। बस मेरे साथ चले चलो। समय नहीं है।"

लाचार वॉन पेपन रिवेन्ट्राप के साथ शयनागार के वस्त्र पहने चल पड़ा। उनके प्रस्थान के कुछ ही देर बाद अँगरेज़ी सेना वहाँ आ पहुँची और हाथ मल कर रह गई।

दो दिन पश्चात् दोनों मित्र आराम से मेल में बैठे हुए बर्लिन की यात्रा कर रहे थे। वान पेपन ने कृतज्ञता-भरे शब्दों में कहा,—

"रिवेन्ट्राप, तुमने मुझे बचा लिया। नहीं तो निश्चय मैं आज अँगरेज़ों का बन्दी होता।" कुछ देर चुप रह कर उसने फिर कहा—"परन्तु स्मरण रक्खो, वान पेपन तुम्हारे स ऋण को बहुत शीघ्र अदा कर देगा। ऋणी रहने की उसकी आदत नहीं।"

सके पश्चात् जर्मनी की दशा बिगड़ती गई। क़ैसर की नीति के विरुद्ध लोगों के भाव उभड़ने लगे। युद्ध की कठिनाइयों और मित्रराष्ट्रों-द्वारा मालबन्दी के कारण वहाँ के लोग बहुत कष्ट पाने लगे। परिणाम यह हुआ कि अब खुल्लमखुल्ला लोग युद्ध का विरोध करने लगे। अन्त में युद्ध का अन्त करना पड़ा और क़ैसर को भाग कर हालैंड में शरण लेनी पड़ी। मित्र-राष्ट्रों से सुलह करने के लिए रिवेन्ट्राप की नियुक्ति हुई। सुलह हो गई। वारसाइल के संधि-पत्र पर हस्ताक्षर हो गये। जर्मनी जर्जरित, दलित और अपंग हो गया।

× × ×

युद्ध के बाद जर्मनी की बुरी दशा हो रही थी। सारा व्यापार नष्ट भ्रष्ट हो गया था। चार वर्ष के युद्ध से ऊबे हुए जर्मन लोग सुख से खाने-पीने और मौज उड़ाने के लिए तरस रहे थे। पुरानी सरकार की खिल्ली उड़ाई जा रही थी। उस युग के बड़े लोगों का काम केवल पार्टियों में शरीक होना, उद्यान-यात्राओं का आयोजन करना और रात भर नाच रंग में समय बिताना रह गया था। रिवेन्ट्राप इस फ़न में भी उस्ताद था। कुलीन और प्राचीन घराने का वह था ही। वह युवा था, सुन्दर था, ललित व्यवहार में में कुशल भी वह था। अतः उसे ऐसे समारोहों में न पार्ट करते विलम्ब न लगा। देखते-देखते वह सबका प्रिय-पात्र बन गया। इसी काल में उसने एक बड़े अमीर पिता

की पुत्री का पाणिग्रहण किया। इस सफलता की भी एक मनोरंजक कहानी है।

एक दिन की बात है। किसी जलसे में जर्मनी के सबसे बड़े शम्पेन मदिरा के कारखाने के मालिक ओटो हेंकिल की एकमात्र पुत्री ने एक सुन्दर, सुपरिधान वेष्ठित नवयुवक को देखा। वह उसकी अदा पर मोहित हो गई। उसने मित्रों से उस नवयुवक का परिचय पूछा। ज्ञात हुआ कि इस उच्च घराने के युवक का नाम जोकिम वान रिवेन्ट्राप है और उन लोगों ने उसकी सैनिक सेवाओं का परिचय दिया। परन्तु साथ ही साथ लोगों ने यह भी बतलाया कि देश के अन्य नवयुवकों की तरह वह भी इस समय बेकार है।

इसके कुछ ही समय पश्चात् एक नौकर रिवेन्ट्राप के पास एक कार्ड लेकर पहुँचा। उसमें केवल एक शब्द लिखा था—'हाउसर'। रिवेन्ट्राप तुरन्त उससे मिलने पहुँचा। उसने कहा—"मुझे दुःख है मित्र, इस समय मैं कुछ नहीं कर सकता। इस जलसे के लिए शम्पेन का आर्डर दूसरे को दिया जा चुका है।"

"परन्तु इसके लिए मैं इस समय तुम्हारे पास नहीं आया हूँ कप्तान!"

"फिर?"

क्या एक सहस्र डालर मासिक कमाना पसन्द न करेंगे? एक बहुत आसान काम है, जो आप अच्छी तरह कर सकते हैं।" हाउसर ने समझाया—"बात यह है, मैं अब शम्पेन की एजेन्सी से दूर होना चाहता हूँ। परन्तु कोई ऐसा आदमी नहीं मिल रहा है जिसके सुपुर्द यह काम निश्चिन्तता-पूर्वक कर सकूँ। इसलिए तुम्हारे पास आया हूँ।"

"परन्तु मैं तो केवल शम्पेन पीना जानता हूँ, बेचना नहीं।" रिवेन्ट्राप ने उत्तर दिया।

"तभी तो यह काम तुम्हीं कर सकते हो।"

"परन्तु किसने तुम्हें यह सुझाया कि तुम मेरे पास जाओ।" रिवेन्ट्राप ने पूछा।

"जिसने सुझाया है, मैं उसका नाम इस समय नहीं बतला सकता। परन्तु मैं जानता हूँ कि तुमसे अच्छा यह काम और कोई दूसरा नहीं कर सकता।" हाउसर ने आग्रह किया।

अन्त में रिवेन्ट्राप ने शम्पेन बेचने का भार अपने ऊपर ले लिया। दूसरे दिन वह हाउसर के साथ जर्मन-शम्पेन के मालिक करोड़पति हेंकिल से मिलने के लिए रवाना हुआ। इसके पश्चात् रिवेन्ट्राप शम्पेन की तारीफ़ करता फिरता। उसने इसकी बिक्री बढ़ाने के लिए फ़्रांस की यात्रा की। यह उसी का काम था कि जहाँ फ़्रांस की शम्पेन जर्मनी में आती थी, वहाँ उलटे फ़्रांस से जर्मन-शम्पेन की माँग आने लगी। कप्तान रिवेन्ट्राप अपना राजनैतिक जीवन छोड़ कर शराब का एजेन्ट बन गया। अब वह केवल अपने व्यापार में मग्न रहने लगा। उसने एक दिन स्वयं प्रकट किया—"मेरा यह तीसरा जीवन है। पहले मैं मारा मारा फिरा। दूसरे में सैनिक था। यह मेरा तीसरा जीवन है। बैंक में दिन पर दिन अपनी बढ़ती हुई पूँजी को देखकर मुझे अब जो प्रसन्नता होती है वह सुख मुझे पहले कल्पनातीत था!"

जिस समय कप्तान रिवेन्ट्राप अपने व्यवसाय में तल्लीन था उस समय उसके देश की बुरी दशा हो रही थी। महायुद्ध के समाप्त हुए केवल १८ मास हुए थे। देश नेता-रहित भटका फिरता था। नित्य झगड़े फ़साद हो रहे थे। दलबन्दियाँ हो रही थीं। आपस में द्वेष-विद्रोह, लड़ाई, मार-काट यही देखने में आ रहा था। ऐसे समय में रिवेन्ट्राप के कई साथियों ने उसे अपने दल में घसीटना चाहा, पर वह दूर ही रहा। इसी बीच उसने एक बार हिटलर और अपने पुराने साथी ज़िकन की भागने में सहायता की, जिस पर प्रसन्न होकर हिटलर ने कहा था—"आपका यह ऋण मैं कभी न भूलूँगा। किसी समय मैं धन्यवाद के अतिरिक्त किसी अन्य प्रकार से इसे चुकाऊँगा।"

जुलाई १९२० में रिवेन्ट्राप का विवाह हेंकिल की एक मात्र उत्तराधिकारिणी पुत्री से होना निश्चित हुआ। विवाह की घोषणा का छपा देखकर लोग दंग रह गये। इस करोड़पति की पुत्री के पाणिग्रहण के लिए सैकड़ों अमीर घराने के लड़के लालायित थे।

विवाह बड़ी धूमधाम से हुआ। बड़ी-बड़ी दावतें हुईं। इसी अवसर पर हाउसर ने रिवेन्ट्राप को एकान्त में ले जाकर कहा—"क्या तुम जानना चाहते हो, किसने मुझे शम्पेन की बिक्री का भार देने की राय दी थी?"

"सुनें भी तो।" उत्सुक रिवेन्ट्राप ने कहा।

"ज़रा अपनी नव-वधू को आने दो।" हाउसर यह कह ही रहा था कि वह आ पहुँची। उसने स्वयं स्वीकार किया—"सच बात तो यह है जोकिम, मैंने ही उन्हें तुम्हारे पास भेजा था। और इसी लिए कि तुम मुझे मिल सको।" मारे खुशी के उसकी आँखों में यह कहते हुए आँसू झलक उठे थे।

रिवेन्ट्राप अब सुखी था—अमीर था। उसे देश के टंटों-बखेड़ों में पड़ने से क्या सरोकार? परन्तु नियति को कौन जान सकता है।

रिवेन्ट्राप आराम से अपने सुसज्जित कमरे में बैठा था। इसी बीच उसके अर्दली ने सूचना दी कि कोई आया है और उसके सामने उसने चाँदी की तश्तरी पर एक कार्ड पेश किया। उस पर लिखा था—रुडाल्फ़ हेस। क्षण भर के लिए रिवेन्ट्राप को सोचना पड़ा। तुरन्त स्मृति जाग्रत हुई और वह भुजायें फैलाकर अपने प्रिय मित्र का स्वागत करने के लिए बाहर निकल आया। दोनों गले मिले—"रुडो! प्रिय मित्र! मुद्दतों बाद तुम्हारे दर्शन हुए।"

रुडाल्फ़ हेस रिवेन्ट्राप का युद्ध-काल का साथी था। दोनों साथ साथ खन्दकों में लड़े थे। दोनों में अभिन्न मैत्री हो गई थी। आज दस वर्ष के बाद दोनों मिले थे। इस बीच रिवेन्ट्राप लक्ष्मी का प्रिय-पात्र हो गया था। और रुडाल्फ़? वह युद्ध के बाद मारा मारा फिरा। अन्त में उसे हिटलर का साथ मिल गया। और अब वह हिटलर का शरीररक्षक था, उसका प्रियपात्र था।

रुडाल्फ़ हेस अपने पुराने साथी रिवेन्ट्राप से मिलने पहुँचा था। दोनों पुरानी बातों का स्मरण कर स्मृति ताज़ी कर रहे थे। एकाएक हेस ने अपनी घड़ी देखी और उठ खड़ा हुआ—"अरे राम! फुहरर मेरे लिए प्रतीक्षा करते होंगे। अब समय नहीं है। परन्तु रिवेन्ट्राप! मैं मतलब की बात कहता हूँ।"

उसने संक्षेप में समझाया कि फुहरर—अर्थात् हिटलर को धन की आवश्यकता है। हमारे दल के हाथ इस समय बहुत तंग हैं। यह नहीं कि हमारे सहायक नहीं हैं। ईश्वर की दया से बहुत से विदेशीय धनी व्यक्ति हमारी सहायता कर रहे हैं, पर उनके ही सहारे हमें रहना उचित नहीं।"

रिवेन्ट्राप ने रोक कर कहा—"अगर इतना ही है तो मैं तैयार हूँ। लिख लो। एक हजार मार्क तक—"

"सुनो भी। मैं यह नहीं चाहता। बात यह है कि फुहरर चाहते हैं कि तुम हमारे दल के अर्थ-मन्त्री का पद ग्रहण करो।"

"मैं?" आश्चर्य से चकित रिवेन्ट्राप ने कहा—"मैं शराब की बिक्री करनेवाला। मुझे अर्थ-संचालन से सरोकार? तुम भूल करते हो।"

"नहीं जी, यह बात नहीं है। सच तो यह है कि तुम्हारी सहायता से हमें अपने देश के नी लोगों की सहानुभूति प्राप्त हो सकती है। उदाहरण के लिए तुम्हारे श्वशुर ही हैं। उसी तरह..."

क्षण भर के लिए रिवेन्ट्राप विचारों में पड़ गया। फिर उसने उत्तर दिया—"अच्छी बात है। जाकर हिटलर से कह देना। उनकी सेवा के लिए मैं तैयार हूँ।"

हेस प्रसन्नता से उछल पड़ा। उसने कहा—"फुहरर इस समय बर्लिन में ही हैं। और मैं कल संध्या को उन्हें तुम्हारे यहाँ ले आऊँगा।"

दूसरे दिन रुडाल्फ़ हिटलर के साथ रिवेन्ट्राप के घर पहुँचा। घंटों बातें हुईं। और अन्त में रिवेन्ट्राप हिटलर का सहकारी बन गया।

जोकिम वान रिवेन्ट्राप नेशनल सोशलिस्ट दल का राजदूत बना दिया गया। दल के कोष में धन की सरिता आ मिली। सन् १९३० में हिटलर के हाथों में राज्य-शासन आने के तीन व पहले रिवेन्ट्राप ने योरप के प्रधान नगरों की यात्रा की। बहाना यह था कि वह अपने व्यवसाय के लिए गया है, पर इसी बहाने वह टोह ले रहा था कि हिटलर के विषय में लोगों की क्या भावनायें हैं। जब वह लौट कर हिटलर से मिला और उसने सारी बातें उसे बतला तब फुहरर ने उसकी पीठ ठोंकते हुए कहा—"शाबाश! प्रिय मित्र! मैं आशा करता हूँ कि बहुत शीघ्र ही हम लोगों को अपने आसपास के देशों से सम्बन्ध दृढ़ करना होगा।"

इसके पश्चात् जर्मन देश का भाग्यविधान होने लगा। ३१ जुलाई, १९३० को नया चुनाव हुआ। हिटलर के पक्ष की भारी जीत हुई। परन्तु हिन्डनबर्ग हिटलर को चांसलर नहीं बनाना चाहता था और हिटलर इससे नीचे का कोई पद ग्रहण करना नहीं चाहता था। रस्साकशी आरम्भ हुई। हिटलर के दल पर विपत्तियाँ आ पड़ीं। पैसों की कमी हो रही थी। हिन्डेनबर्ग की मदद स्वयं

वॉन `पन कर रहा था। वही हिटलर का विरोध कर रहा था। उसने हिटलर के दल के एक प्रधान कार्यकर्त्ता—ग्रिगर स्ट्रेसर—को फोड़ लिया। उसने उसे चांसलर के पद के लिए खड़ा करना चाहा। हिटलर की पार्टी में फूट के चिन्ह दिखाई दिये। हिटलर इसके लिए तैयार न था। उसने स्ट्रेसर के पास आदमी भेजा कि उससे बातें करके मामला तय किया जाय। पर उसका पता ही न था!

ग्रिगर स्ट्रेसर के लापता होने पर हिटलर बड़े संकट में पड़ गया कि अब क्या हो। वह चिन्तासागर में डूब उतरा रहा था कि इसी बीच रिवेन्ट्राप उसके कमरे में दाखिल हुआ। उसने हँसते हुए कहा—"आखिर यह सब परेशानी ही क्यों? यह तो अच्छा ही हुआ। अब तो फुहरर तुम्हारे चांसलर होने में अड़चन नहीं रही।" हिटलर की समझ में कोई बात न आई। उसने पूछा—"यह सब कैसे हुआ?"

रिवेन्ट्राप ने सारी कथा कह सुनाई। जैसे ही उसे पता चला कि वॉन पेपन ही हिन्डन्बर्ग को उभाड़ रहा है वह तुरन्त उसके पास पहुँचा। इसके पहले कि वह वॉन पेपन से बातचीत करे उसने स्ट्रेसर से मिलना आवश्यक समझा। घंटे भर की बात-चीत में उसने उस पर न जाने क्या जादू कर दिया। स्ट्रेसर घबरा कर तुरन्त बर्लिन छोड़कर भाग खड़ा हुआ। भगोड़े की तरह उसने भागकर टली के एक दूरस्थ गाँव में शरण ली। स्ट्रेसर को बर्लिन से भगाकर रिवेन्ट्राप वान पेपन के पास पहुँचा। उससे उसने बड़े शान्तभाव से कहा—"तुम्हारी बाज़ी तो खाली जायगी। पहले तो स्ट्रेसर जैसे निकम्मे आदमी को तुमने हिटलर के विरुद्ध खड़ा करना चाहा जिसका पता ही नहीं। दूसरे..."

रिवन्ट्राप ने वान `पन को समझा बुझा दिया। इसके २४ घंटे पश्चात् हर हिटलर जर्मनी का चांसलर नियुक्त हो गया। हिटलर ने इस सहायता का बदला तुरन्त दिया। उसने अधिकार हाथ में आते ही शम्पेन के सारे कर उठा दिये।

इसके आगे रिवेन्ट्राप का अभ्युदय नाज़ी शक्ति का अभ्युत्थान है। दिनों दिन नाज़ीदल की शक्ति बढ़ती गई। थोड़े ही दिनों में रिवेन्ट्राप जर्मन राजदूत बनकर लंडन पहुँचा। इसके पश्चात् जर्मनी जापान और इटली में संधि हुई। फिर रोम बर्लिन धुरी की नींव पड़ी। फ़रवरी १९३८ में रिवेन्ट्राप वैदेशिक मन्त्री नियुक्त हुआ। दूसरे ही दिन वह वान पेपन और फुहरर से मिला। आस्ट्रिया को हड़पने की तैयारी हो रही थी। इधर आस्ट्रिया का चांसलर डाक्टर शुशनिग हिटलर से मिलने पहुँचा, उधर रिवेन्ट्राप लार्ड हैलिफ़ेक्स से पत्र व्यवहार कर रहा था। दो ही दिन के पश्चात् आस्ट्रिया पर जर्मनी का अधिकार हो गया। जिस समय योरप में युद्ध के बादल घुमड़ रहे थे। युद्ध का आतङ्क सबके ऊपर छा रहा था, जिस समय म्यूनिच में चार शक्तियों की बातचीत के लिए मिस्टर चेम्बरलेन दौड़े हुए पहुँचे थे, वहाँ भी रिवेन्ट्राप ही मुस्कराते हुए उनका स्वागत करने के लिए उपस्थित थे।

जोकिम वान रिवेन्ट्राप इस समय जर्मन शासन-विभाग का प्रधान अंग है। हिटलर का वह दाहना हाथ है। उनकी सारी सफलता का रहस्य उसके मनोमोहक व्यक्तित्व और व्यवहारकुशलता में है। इस समय वह उसी महल में रहता है—उसी मेज पर काम करता है—जिसमें किसी समय बिस्मार्क रहते और काम करते थे। कौन जानता था कि डच जहाज़ पर छिपकर भागनेवाला नवयुवक आज वर्तमान इतिहास का प्रधान व्यक्ति होगा। आगे क्या होगा। ईश्वर ही जाने।
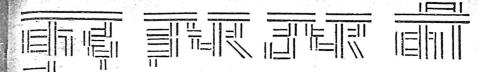
मनोरञ्जन का नया ढंग

हिन्दू देवताओं के चित्रों से विज्ञापनबाज़ी में ही अभी तक काम लिया जाता रहा है, परन्तु अब जान पड़ता है कि वे मनोरञ्जन की बात में भी प्रयुक्त किये जायँगे। अभी अभी पिलानी में शिव जी की ऐसी एक विशाल मूर्ति स्थापित की गई है जो फ़ौवारे का भी काम देगी। स्थापक महोदय भारी शिव-भक्त निकले। वे जब चाहेंगे उस प्रतिमा की आराधना करके अपना परलोक बनाने का उपक्रम करेंगे और जब चाहेंगे, फ़ौवारे की टोंटी खोलकर वहाँ बैठकर इस लोक का भी सुख लूटेंगे। यह अच्छी रही! सूझ इसी को कहते हैं!

७५० लेखकों के लिए

हमें अपने एक सहयोगी मासिक पत्र में यह पढ़कर प्रसन्नता हुई कि लेखकों की असुविधाओं और आर्थिक चिन्ता को दूर करने के लिए एक 'स्कीम' फिर बनाई जा रही है। कई बार पहले भी ऐसे प्रयत्न किये जा चुके हैं। फिर भी इस नये प्रयत्न में कुछ ऐसी विशेषतायें हैं और हो सकती हैं जो दूसरे प्रयत्नों में न थीं। इस स्कीम के अनुसार हिन्दी के वर्तमान लेखकों की संख्या ७५० है। ऐसे ही इसमें काम करनेवालों में से दो एक राजाओं-महाराजाओं की सहायता की पूरी आशा रख सकते हैं। सर तेज ने जितनी आशा 'सरकार बहादुर' से अपने बेकार शिक्षितों और विशेषतः उच्च शिक्षितों के लिए सहायता पाने की की थी उससे कहीं अधिक आशा 'राजा बहादुर' से इन्हें हो सकती है। महामना मालवीय जी की हिन्दू-यूनिवर्सिटी की स्थापना में राज्यों की सहायता का जैसा हाथ रहा है उससे उनसे ऐसा भरोसा रखने का क्या इन्हें अधिकार नहीं है? हम इसकी हार्दिक सफलता चाहते हैं। हमारी प्रार्थना इतनी ही है कि इसमें हिन्दी के साधारण लेखकों को नगण्य न समझा जाय बल्कि उनकी विशेष 'ट्रेनिंग' को भी आवश्यक समझा जाय, नहीं तो यह स्कीम एक विचित्र रूप धारण करके रह जायगी। सभी विषयों के लेखकों की सूची देखी जाय तो हिन्दी के 'उच्च' लेखकों की संख्या भी इससे कहीं अधिक है, इसलिए इस ७५० का रहस्य साधारण नहीं मालूम होता!

साहित्य में अमर

एक अन्य सहयोगी में एक ऐसे 'सज्जन' का वृत्तान्त प्रकाशित हुआ है जो 'साहित्य में अमर' हो गये हैं। उनके ये गुण बतलाये गये हैं—'उसने युद्ध में भाग लिया, 'असंख्य' रमणियों से प्रेम-लीलायें कीं, संसार में सबसे अधिक पैसेवाले पत्रकार के रूप में काम किया और वैभव एकत्र करने तथा उसे बेलौसी के साथ लुटा देने में उसके जोड़ का और कोई भी न रहा।.... तर्क करना उसने सीखा ही न था!'

ऐसा तर्कहीन अति विलासी पुरुष किन असाधारण परिस्थितियों या विचित्र कारणों से 'साहित्य में अमर' होने के योग्य हो गया, यह यदि आठ-दस पंक्तियों में भी बतला दिया जाता तो पाठकों को कुछ संतोष हो जाता! पर उसकी 'कमज़ोरी' और रमणियों के प्रति 'भीषण' आकर्षण का वर्णन ही इस लेख में है, जिससे वे लोग जो महात्मा या कलाकार भी बनने के लिए पहले वासना के पीछे 'दीवाना' होना ज़रूरी समझने लगे हैं, अपने मत की विशेष पुष्टि कर सकते हैं! 'अमर साहित्यकारों' के ऐसे अपूर्ण एवं सर्वथा एकांगी चित्रों का क्या ऐसा फल अनिवार्य नहीं है? वैसे ही हमारे अधिकांश कविगण शेली और कीट का गुणगान पढ़-पढ़कर और 'विद्वानों' से उनकी, कला की प्रचुर प्रशंसा सुन सुनकर 'असंख्य' नहीं तो दो-चार के प्रति प्रेम प्रदर्शित करना जीवन और कला के विकास एवं सच्ची 'अनुभूति' की प्राप्ति के लिए आवश्यक समझने लगे हैं! अब उनकी और भी बन आवेगी।

हिन्दी के आचार्य

हिन्दी में एक समय 'सम्राटों' की अच्छी धूम थी। परन्तु 'उपन्यास-सम्राट्' शब्द की भद उड़ते ही उसकी हवा शीघ्र ही बन्द हो गई और अब कोई भी 'सम्राट्'-पदवी का प्रयोग करते नहीं दिखाई देता। परन्तु हिन्दीवाले

ठहरे 'पदवी' के भूखे । उनके सौभाग्य से उन्हें एक दूसरी पदवी मिल ही तो गई ।

पिछले दिनों हिन्दी के लेखक पण्डित महावीरप्रसाद द्विवेदी के नाम के साथ 'आचार्य' लिखने लगे थे। अब हम देखते हैं कि उस पदवी से हिन्दी के कई नामवरों की मर्यादा-वृद्धि हो रही है। अभी तक श्री चतुरसेन शास्त्री, श्रीनरेन्द्रदेव, श्री युगुलकिशोर, पण्डित रामचन्द्र शुक्ल, श्री काका कालेलकर आदि महानुभावों के नामों के आगे ही 'आचार्य' की पदवी लगी हुई पढ़ने को मिलती थी। अब हम देखते हैं कि लाला गुलाबराय भी आचार्य हो गये हैं और पण्डित भगीरथप्रसाद दीक्षित भी आचार्य हो गये हैं। हिन्द में इतने आचार्यों के हो जाने पर भी यदि कोई हिन्दी को पिछड़ी हुई भाषा कहने का दुःसाहस करेगा तो सचमुच अपने आप ही उपहासास्पद हो जायगा।

'आचार्य' आदि की पाण्डित्य सूचक पदवियाँ, हम जहाँ तक समझते हैं, संस्था विशेष द्वारा ही मिला करती हैं। हिन्दी के लेखकों की भी अपनी एक विशेष संस्था है ही। तब यदि हिन्दीवाले किसी को 'सम्राट्' या 'आचार्य' बना देते हैं तो इसमें तो किसी को कुछ भी उज्र न होना चाहिए।

लार्ड जेटलैण्ड और भारत की स्वतंत्रता।

अब क्या हो ?

वायसराय महोदय से भेंट कर चुकने के बाद वर्धा जाते हुए मार्ग में महात्मा गांधी ने अपने वार्तालाप के सम्बन्ध में ६ फ़रवरी को 'अब क्या हो ?'-शीर्षक जो महत्त्वपूर्ण लेख लिखा है उसे हम 'हरिजन-सेवक' से यहाँ उद्धृत करते हैं--

वायसराय और मेरे बीच समझौते की बातचीत असफल होने के कारण कांग्रेस-जनों में कोई निराशा नहीं फैलनी चाहिए। हमारी मुलाक़ात समझौते की संभावनायें निकालने के लिए हुई थी। मैंने देखा था कि वायसराय के बम्बई से दिये गये भाषण में समझौते के बीज हैं। लेकिन मैंने पाया कि वह मेरी भूल थी। वायसराय के हाथ तो बँधे थे। देश के सामने गवर्नमेंट की जो मौजूदा तजवीज़ इस समय है, उससे आगे जाने का उन्हें अधिकार प्राप्त नहीं था। शायद उसमें उनकी अपनी भी सम्मति थी।

लेकिन हमारी मुलाक़ात से कुछ बिगड़ा नहीं है। असफलता के बावजूद भी हम एक-दूसरे के और निकट आगये हैं। स्थिति इससे साफ़ हो गई है। अहिंसा में बड़े धीरज की ज़रूरत होती है। असफलता तो यह केवल ऊपर से दिखती है। असफलता तो हो ही नहीं सकती, क्योंकि हमारा पक्ष और उनके साधन दोनों ही उचित हैं। इस मुलाक़ात से हम अपने मक़सद के और नज़दीक आ गये हैं। वायसराय ने ब्रिटिश सरकार की नीति को स्पष्टता के साथ ज़ाहिर किया तो मैंने भी कुछ कम स्पष्टता से कांग्रेस की नीति को पेश नहीं किया। जहाँ तक मैं जानता हूँ, समझौते की बातचीत अभी बन्द नहीं हुई है। इस बीच हमें दुनिया को यह बताना है कि हमारा ध्येय क्या है। भारत बहुत-से उपनिवेशों की तरह एक उपनिवेश नहीं हो सकता, याने संसार की ग़ैर-योरपियन जातियों के शोषण में साझीदार वह नहीं हो सकता। उसकी लड़ाई अगर अहिंसात्मक है तो उसे अपने हाथों को साफ़ रखना होगा। भारत को अगर अफ़्रीकनों के शोषण में साझीदार नहीं होना है और उपनिवेशों में जो हमारे देशवासियों को अपमानित किया जाता है उसमें हाथ नहीं बँटाना है, तो उसका स्वतन्त्र दर्जा होना ही चाहिए। उस स्वतन्त्र दर्जे में क्या क्या होगा, उसका रूप क्या होगा, यह सब ब्रिटेन-द्वारा बताया या निश्चित नहीं किया जाना चाहिए। इसको तो हमीं, याने राष्ट्र के निर्वाचित प्रतिनिधि, नाम उस पंचायत को चाहे जो दिया जाये, निश्चित करें। जब तक ब्रिटिश राजनेता इस मुद्दे को निश्चितरूप से स्वीकार नहीं करते, तब तक अपनी सत्ता को छोड़ने की नीयत उनकी नहीं है। भारत के स्वतन्त्र दर्जे की घोषणा के मार्ग में राष्ट्र-रक्षा या अल्पसंख्यकों अथवा देशी नरेशों या योरपियन हितों का प्रश्न नहीं आना चाहिए। यह नहीं कि ऊपर कहीं महत्त्वपूर्ण समस्याओं पर गम्भीर विचार और तसफ़िये की ज़रूरत ही नहीं है, बल्कि वांछित घोषणा होने और उस पर जहाँ तक सम्भव हो, अमल किये जाने के बाद, ये समस्यायें उचित रूप से सुलझाई जाने पर सुलझ जायेंगी। जब तक ब्रिटेन ऐसा नहीं करता, तब तक वह यह दावा नहीं कर सकता कि जर्मनी के साथ उसका युद्ध न्यायपूर्ण है—निश्चय ही उसके स्वार्थरहित होने का दावा भी वह नहीं कर सकता।

तब ऐसी दशा में होना क्या चाहिए ? सविनय प्रतिरोध ? वह अभी नहीं। जब मैं लार्ड लिनलिथगो की सचाई म विश्वास करता हूँ तो जो कुछ मैं कहता हूँ मेरा अभिप्राय भी वैसा ही होता है। वह हमें, तथा अपने कर्त्तव्य और अपने ऊपर के अधिकारियों और अपन राष्ट्र को समझने की पूरी कोशिश कर रहे हैं। उनके सामने उनकी परम्परायें हैं। उन सब परम्पराओं के होते हुए वह कूदकर हमारी स्थिति पर नहीं आ सकते। उन्हें उस पर ढकेला भी नहीं जा सकता है। न हमें अपने विपक्षी से घृणा करनी चाहिए, न उसकी शक्ति को कम आँकना चाहिए। विपक्षी में कमज़ोरी

मान लेना और फिर उससे लाभ उठाने की कोशिश करना तो ग़लत होगा। उसकी कमज़ोरी हमें शक्तिमान् या उपयुक्त नहीं बनायेगी। और यदि हम सबल हैं तो उसकी मज़बूती से हमें परेशान नहीं होना चाहिए। इसलिए हमारा धर्म तो यह है कि हम उसे अपनी शक्ति का अनुभव करायें। ऐसा हम सविनय प्रतिरोध से नहीं कर सकते; बल्कि अपने बीच सुव्यवस्था रखकर ही ऐसा कर सकते हैं। जब कि हम ब्रिटिश सरकार-द्वारा अल्पसंख्यकों की या वैसी ही दूसरी समस्याओं को उचित कार्य में बाधक नहीं बनने देते, तो हमें इस सचाई से आँख बन्द नहीं कर लेनी चाहिए कि ये समस्यायें भी हैं और ये हमारे हाथों ही सुलझानी चाहिए। क़ायदे-आज़म जिन्ना ने जो असंभव और एकदम राष्ट्र-विरोधी आधार ग्रहण किया है, उसे हम अपने दिमाग़ से निकाल दें। अपने ध्यान से हम मुसलमानों को परे नहीं हटा सकते। दूसरी समस्याओं के बारे में भी यही कहा जा सकता है। इन समस्याओं पर हम जनता को शिक्षित करें, अपने विचार स्पष्ट करें और समझें कि उनके सम्बन्ध में हमारी स्थिति क्या है।

कृषकों की अवनति का कारण ?

कानपुर के 'साप्ताहिक प्रताप' में ठाकुर प्रतापसिंह ने जो उपर्युक्त शीर्षक का लेख लिखा है उसका अधिकांश इस प्रकार है--

कृषकों की आय के सम्बन्ध का हिसाब लगाने पर विदित हुआ है कि प्रतिकृषक की मासिक आय लगभग २) है। इसमें से उसे वर्ष में २) भूमिकर एवं ।।) सिंचाई देना पड़ता है। इसके अतिरिक्त प्रतिवर्ष ऋण का सूद भी देना पड़ता है। सेंट्रल बैंकिंग जाँच-समिति की रिपोर्ट के अनुसार विदित हुआ है कि भारतवर्ष के कृषकों का ऋण नौ सौ करोड़ रुपया है। जाँच के बाद अत्यधिक समय व्यतीत हो गया। किन्तु अनुमानतः उक्त ऋण में वृद्धि के स्थान पर कमी नहीं हुई। यदि कृषकों की संख्या भारतवर्ष में २५ करोड़ ही समझी जाय तो प्रत्येक कृषक को औसतन ५) प्रतिवर्ष सूद देना पड़ता है। इस प्रकार कृषकों की जो २४) वार्षिक आय है उसमें से २) भूमिकर एवं जलकर के तथा ५) सूद के निकाल देने पर केवल १७) वार्षिक आय रह जाती है। इस प्रकार प्रत्येक कृषक की आय प्रतिदिन ३ पैसे से अधिक नहीं पड़ती। इस आय के द्वारा उन्हें अपना तथा अपने बाल-बच्चों का भरण-पोषण करना, विवाह-शादी आदि की समस्याओं को किसी न किसी प्रकार सुलझाना पड़ता है।

अब प्रश्न यह होता है कि कृषकों की इस दुर्दशा का कारण क्या है ?

कृषकों की अवनति का प्रथम कारण कृषिजात वस्तुओं के मूल्य में ह्रास है। सन् १९२८ और १९३४ के मध्य में कृषि-जात पदार्थों का मूल्य बहुत ज़्यादा कम हो गया है। इसके विषय में पूर्ण जानकारी सन् १९३४-३५ की ट्रेड-रिव्यू में प्रकाशित रिपोर्ट से भली भाँति प्राप्त की जा सकती है। इससे ज्ञात होता है कि भारतवर्ष में कृषि-पदार्थों के मूल्य में ५३.७ प्रतिशत कमी हो गई है। गत महायुद्ध के समय के मूल्य से तुलना करने पर ज्ञात होता है कि पदार्थों के मूल्य में और भी कमी हो गई है। इसके अतिरिक्त फ़सल के समय में कृषि-जात पदार्थों का मूल्य गत वर्ष की अपेक्षा कम ही हो जाता है। विशेषज्ञों ने जाँचकर इस बात का पता लगाया है और वे इस निष्कर्ष पर पहुँचे हैं कि प्रतिफ़सल में कृषि-जात पदार्थों के मूल्य में १५ प्रतिशत कमी हो जाती है।

सके अलावा हमारे देश में कृषि-जात पदार्थों के बाज़ारों में मूल्य-नियन्त्रण की कोई व्यवस्था नहीं है। पृथ्वी के अन्यान्य देशों की सरकारों ने बाज़ारों के नियन्त्रण के लिए विभिन्न प्रकार की प्रणालियों का अवलम्बन किया है। इस सम्बन्ध में उन्होंने वस्तुओं का अल्पतम मूल्य निश्चित कर दिया है। इँगलैंड में सन् १९३१ में 'एबनोरमल इम्पोर्टेशन ऐक्ट' पास किया गया है। इस ऐक्ट के अनुसार विदेशी वस्तुओं से होनेवाली आय पर ५० प्रतिशत कर लगा दिया गया है। किन्तु हमारे देश में ऐसी कोई व्यवस्था नहीं की गई है। वस्तुओं का अल्पतम मूल्य निर्धारण करना तो दूर रहा, विदेशों से आनेवाले पदार्थों के टैक्सों में भी कमी कर दी गई है। विदेशी गेहूँ पर पहले २।।) प्रतिहंड्रेडवेट कर था, किन्तु अब वह सन् १९३६ में घटाकर १) कर दिया गया है। इसके परिणाम-स्वरूप भारतवर्ष में आस्ट्रेलियन गेहूँ अत्यधिक मात्रा में आने लगा है। सरकार ने ऐसा करते समय भारतीय कृषकों की दरिद्रता की ओर तनिक भी ध्यान नहीं दिया।

दूसरा कारण यह है कि बाज़ार में वस्तुओं का जो वास्तविक मूल्य रहता है उसे भी कृषक पूरा नहीं पाते। कृषकों की दरिद्रता से एक दूसरा दल लाभ उठाता है। यह दल कुछ फ़सलों को तैयार होने के पहले ही कृषकों से ख़रीद लेता है। फ़सल तैयार होने पर वह माल अपने गोदाम में भर लेता है। परिणाम-स्वरूप उक्त दल कृषकों से जिस दाम में कृषि-जात पदार्थों को ख़रीदता है उससे दूने दाम पर उन्हें बेच देता है। गेहूँ-बाज़ार की जाँच करने के लिए जो समिति नियुक्त की गई थी उसकी रिपोर्ट से विदित हुआ है कि प्रतिरुपये गेहूँ की बिक्री में ।।--)। कृषक को और अवशिष्ट ।=)।।। व्यापारियों को मिलते हैं। जब तक कृषक स्वयं अपने हाथों से (जिस प्रकार व्यापारी बेचते हैं) अपनी उत्पन्न की हुई वस्तुओं को नहीं बेचें तब तक वे अपनी वास्तविक दशा में सुधार नहीं कर सकते।

हड़तालों से हानि

योरपीय युद्ध के कारण कतिपय देशों का व्यापार बढ़ गया है, परन्तु दुःख की बात है कि हमारे देश में इस अवसर से लाभ नहीं उठाया गया, उलटा हड़तालें कर कर हानि उठाई गई है। इन हड़तालों का ब्योरा ग्वालियर के 'जयाजी प्रताप' में इस प्रकार दिया गया है—

जैसा कि हम इन पृष्ठों में समय समय पर कह चुके हैं; यह समय ऐसा है जब कि भारतीय उद्योग-धन्धों को युद्ध-सम्बन्धी रुकावटों तथा क़ीमतें चढ़ने के कारण एक प्रकार का संरक्षण मिल गया है तथा अवसर का लाभ उठाकार कारखानेदारों को न केवल अपने क़दम जमा लेने चाहिए वरन् उद्योग-धन्धों का संगठन ऐसा कर लेना चाहिए कि फिर पाँव न उखड़ सकें। यह सब तभी हो सकता है जब कि कारखाने-दारों व मज़दूरों में सहयोग से काम हो तथा संघर्ष के मौक़े कम आवें। परन्तु यदि इसी समय या तो पूंजीपतियों-द्वारा समय को न समझ सकने के कारण या मज़दूरों की हठ तथा आग लगाकर तमाशा देखने व तापनेवाले नेताओं की बदौलत यह बहुमूल्य पर संकटपूर्ण अवसर लड़ाई-झगड़ों, हुज्जतों या हड़तालों में निकल गया तो सिवाय आर्थिक हानि उठाकर पछताने के और कुछ हाथ न लगेगा। इस प्रकार के बखेड़ों के कारण ब्रिटिश भारतवर्ष में कितना नुक़सान होता है इसका अन्दाज़ उन आँकड़ों से लगेगा जो भारत-सरकार की ओर से ही प्रकाशित हुए हैं।

केवल तीन महीने में अर्थात् जुलाई १९३९ से सितम्बर १९३९ तक ११२ औद्योगिक झगड़े हुए, जिनमें ९८,००० मज़दूर मुब्तिला थे। इन झगड़ों के कारण १७,८५,००० दिनों का नुक़सान हुआ। इसका हिसाब यह है कि यदि १ मज़दूर १ दिन काम नहीं करता तो यह माना गया कि एक दिन ख़राब हुआ। सन् १९३८ के इसी अर्से में १५,८०,००० दिनों का नुक़सान हुआ था तथा १,३४,००० मज़दूर बेकाम थे। इन हड़तालों में से ४३.७ फ़ी सदी रुई या सन के कारखानों में हुईं और कुल हड़तालियों में ५३.८ फ़ी सदी मज़दूर इस धन्धे में के थे। इन झगड़ों में ५२ शिकायतें वेतन के बारे में थीं, व्यक्तिगत कारणों से २६ हड़तालें हुईं। नतीजा यह रहा कि कुल ११२ हड़तालों में से १७ सफल रहीं, ४३ किसी हद तक सफल रहीं, ४४ असफल रहीं तथा ८ रिपोर्ट लिखने के समय चल रही थीं।

जिस अर्से की यह रिपोर्ट है उस दौरान में बड़ी बड़ी हड़तालों में आसाम आॅइल कम्पनी (१०,००० मज़दूर ५,६६,४०० दिन), मोहिनी मिल कुष्टिया (२,८०० मज़दूर, १,४०,००० दिन), न्यू विक्टोरिया मिल, कानपुर (३,२४७ मज़दूर, १,८५,०७९ दिन), फ़ीरोज़ाबाद, काँच के कारख़ाने (८,००० मज़दूर, २,६४,००० दिन), का नाम गिनाया जा सकता है।

इस विवरण का अध्ययन करने से पता चलता है कि इन बखेड़ों के कारण व्यावसायिक दृष्टि से भारतवर्ष में ज़बरदस्त नुक़सान हो जाता है, जिसे रोकना मालिकों तथा मज़दूरों दोनों के हक़ में अच्छा ही होगा। कितनी हड़तालें सफल रहीं, कितनी असफल यह अंक बताते हैं। बहुत दफ़ा तो कारीगर भड़काये जाने पर हड़ताल कर बैठते हैं, पर परिस्थितियाँ उन्हें विवश कर देती हैं कि समझौता मान लें। इनमें से बहुत-से झगड़े तो ऐसे होते हैं जो बातचीत द्वारा तय हो सकते हैं और ब्रिटिश भारत में इस काम

के लिए एक क़ानून ट्रेड डिसप्यूट ऐक्ट है तथा कोर्ट ऑफ़ इन्क्वायरी या समझौता बोर्ड बनाने का तरीक़ा भी है। अनुभव से यही सिद्ध होता है कि यदि सद्भावना से काम लिया जाय तो काफ़ी मुआमलों में बिना झगड़े-टण्टे या कटुता के काम निकल सकता है।

राष्ट्रपति रूज़वेल्ट और बेकारी का प्रश्न

अमरीका के संयुक्त-राज्य संसार के प्रथम श्रेणी के सम्पन्न देशों में हैं। परन्तु वहाँ भी बेकारों की समस्या है। वहाँ के प्रेसीडेंट रूज़वेल्ट ने बेकारों को सहारा देने के लिए धनवानों पर कर लगाया है। ऐसा उन्होंने क्यों किया है, इसका उल्लेख उन्होंने अपने एक लेख में किया है, जिसे 'नवयुग' ने 'रूज़वेल्ट का इक़बाल' शीर्षक में छापा है। इसके प्रारम्भ का अंश हम यहाँ देते हैं—

हमारी (अमरीका की) जन-संख्या का कम से कम एक तिहाई भाग ऐसा है, जिसके पास न तो पहिनने को अच्छे कपड़े हैं, न रहने को अच्छा मकान और न खाने को उपयुक्त भोजन। जनता का यह एक तिहाई भाग—४ करोड़ नर-नारी—दुकानों से क्या बड़ी ख़रीदारी कर सकता है? फलतः उसके पास-पड़ोस की दूकानें कल-कारख़ानों में बननेवाले सामान को लेने का कितना बड़ा आर्डर दे सकती हैं?

मेरे कुछ मित्र मेरी ये बातें सुनकर हँसा करते हैं। मैं मज़दूरों का न्यूनतम वेतन निश्चित कर देना चाहता हूँ, तो वे मेरी कोशिशों को मज़ाक की बात समझा करते हैं। लेकिन दुकानदार छोटा हो या बड़ा, अच्छी तरह जानता है कि उसका सामान ज़्यादा तभी बिकेगा, जब खपत करनेवालों की जेब में पैसा होगा। मैं खपत करनेवालों की क्रय-शक्ति बढ़ाना चाहता हूँ।

अधिक पैसा हो तो ग्राहकों की संख्या कैसे बढ़ जायगी?

कुछ लोग हैं—इन लोगों को मैं जुआरियों का गुट्ट कहा करता हूँ—जो आपको सब जगह मिल सकते हैं। इन जुआरियों के राजनैतिक प्रतिनिधि आपको अमरीका की धारा-सभाओं में भी मिल जायँगे।

ये लोग अपने व्यक्तिगत स्वार्थ के लिए राष्ट्र के जीवन की बाज़ी लगाने में भी नहीं हिचकिचाते; ये लोग हमारी आर्थिक व्यवस्था के टुकड़े टुकड़े करने से भी नहीं डरते—बस इनका अपना व्यक्तिगत स्वार्थ किसी तरह सिद्ध हो जाय। इनकी राय है कि सरकार व्यापार और उद्योग के मामले में हस्तक्षेप क्यों करे? अगर वह हस्तक्षेप करेगी तो ग्राहक तो फिर भी मिलते ही रहेंगे। मैंने इन लोगों को जान-बूझकर जुआरी कहा है, क्योंकि जो कुछ ये कहते हैं, उसका समर्थन आधुनिक अनुभव से नहीं होता।

दूसरे विचार के लोग मेरी तरह के हैं, और इनको आप चाहें तो दकियानूसी कह सकते हैं। हम दकियानूसी हैं, क्योंकि राष्ट्र के जीवन और सम्पत्ति को फूंक कर स्वार्थ की होली मनाना नहीं चाहते।

मैं मानता हूँ कि ऐसे व्यक्ति को जिसका अपना प्राइवेट कारोबार है, अधिकार है कि वह चाहे तो अपने कारोबार को तक़दीर के भरोसे पर रह कर बना ले या बिगाड़ ले। क्योंकि अगर उसका दिवाला भी निकल जाता है, तो भी राष्ट्रीय आर्थिक व्यवस्था को हानि नहीं होती। लेकिन जिन लोगों के कन्धों पर १२ करोड़ अमरीकावासियों के कल्याण की ज़िम्मेदारी है, वे तो भाग्य के भरोसे बैठे रह कर राष्ट्र के जीवन से जुआ नहीं खेल सकते। अगर लाखों आदमी भूखों मरते हों, तो उनसे यह कहना कि सब्र रखो, तुम्हारी भी भगवान् सुध लेंगे, हमें शोभा नहीं देता। उनको काम चाहिए, रोटी चाहिए; और काम और रोटी उन्हें देनी होगी।

हमारे मत के विरोधी देश में घूमते फिरते हैं, खाते-पीते माता-पिताओं से कहते हैं, "देखो सरकार के सिर भारी क़र्ज़ हो गया है, तुम्हारे पुत्रों को उसे उतारना होगा।" यह बात इतनी बुरी नहीं है कि भूखों मरनेवाले माता-पिताओं से कहें, "देखिए साहब, सरकार व्यापार और उद्योग में किसी प्रकार का हस्तक्षेप करे तो सन् १९८९ ई० तक आपको और आपके बच्चों को खाना मिल जायगा।" लेकिन ये जुआरी यह बात नहीं कहते, जब कि उनकी हस्तक्षेप के विरुद्ध दी जानेवाली दलीलों का इसके सिवाय दूसरा कोई अर्थ नहीं होता।

वर्ग नं० ४३ का नतीजा

प्रथम पुरस्कार २००) (एक अशुद्धि पर)

यह पुरस्कार निम्नलिखित ५ व्यक्तियों को दिया गया। प्रत्येक को ४०) मिले।

(१) सीतानाथ गौएल, भवानीपुर, कलकत्ता। (२) ज्योतिलाल अग्रवाल, चौक, पटना। (३) रामकिशोर पाठक, सदर बाज़ार, कराची। (४) राजेश्वरीदेवी, देहलीगेट, अलीगढ़। (५) पं० सूरजनाथ दीक्षित, नयागंज, कानपुर।

द्वितीय पुरस्कार ५४) (दो अशुद्धि पर)

यह पुरस्कार निम्नलिखित ९ व्यक्तियों में बाँटा गया। प्रत्येक को ६) मिले।

(१) गौरीकान्त जौहरी, आगरा। (२) सुखलाल माथुर, मोतिहारी। (३) संतलाल राठौर, जयपुर। (४) गयाप्रसादसिंह, फ़तेगढ़। (५) रामप्रताप द्विवेदी, भरतपुर। (६) सोहनलाल कौशिक, जबलपुर। (७) बैजनाथ गुप्ता, महोबा। (८) डा० अशरफ़ीलाल, फ़र्रुख़ाबाद। (९) कैलाश पाण्डेय, मैनपुरी।

तृतीय पुरस्कार ४५) (तीन अशुद्धि पर)

यह पुरस्कार निम्नलिखित ३० व्यक्तियों को दिया गया। प्रत्येक को १।) मिले।

(१) डी० एल० जगाती, अल्मोड़ा। (२) सीताराम हेडमास्टर, उदयपुर। (३) हरिराम शर्मा, अकालगढ़। (४) विद्यावती देवी, लखनऊ। (५) संतराम, इलाहाबाद। (६) कनौजीलाल शुक्ल, नयाकटरा, इलाहाबाद। (७) चन्द्रदेवी गुप्ता, अलीगढ़। (८) देवकीनन्दन त्रिपाठी, इलाहाबाद। (९) राधाकिशन गुलाबचन्द, अग्रवाल, औरङ्गाबाद (१०) यशोदादेवी पाठक, लखनऊ। (११) माधवप्रसाद शुक्ल, उन्नाव। (१२) केदारनाथ भारसनी. अलीगढ़। (१३) शिवलखनसिंह बलिया। (१४) हरकिशनलाल अग्रवाल, पचमढ़ी। (१५) मिश्रीलाल फ़र्रुख़ाबाद। (१६) शंकरलाल शर्मा शास्त्री, सहारनपुर। (१७) रणवीरसिंह, रायबरेली। (१८) राजकुमार मीतल, बुलन्दशहर। (१९) त्रिभुवननारायणसिंह, फ़ैज़ाबाद। (२०) पुष्पादेवी सिंहल, मारवाड़। (२१) लखपतराय श्रीवास्तव, इटावा। (२२) गोपाललाल वर्मा, पो० गोंडा (२३) राजाराम व्यास, नेमाड़। (२४) चिरंजीलाल, देहली। (२५) हाकिमसिंह, जयपुर। (२६) रामरतनलाल, निमाड़। (२७) बालकिशन शर्मा, मथुरा। (२८) बी० पी० शर्मा, मालवा। (२९) सुशीलादेवी, पौड़ी, गढ़वाल। (३०) निरंजन जोशी, जयपुर।

उपर्युक्त सब पुरस्कार ३१ मार्च तक भेज दिये जायँगे।

नोट—जाँच का फ़ार्म १६ मार्च तक आने से यदि किसी को और भी पुरस्कार पाने का अधिकार सिद्ध हुआ तो उपर्युक्त पुरस्कारों में से जो उसकी पूर्ति के अनुसार होगा वह फिर से बाँटा जायगा। केवल वे ही लोग जाँच का फ़ार्म भेजें जिनका नाम यहाँ नहीं छपा है, पर जिनको यह सन्देह हो कि वे पुरस्कार पाने के अधिकारी हैं।

वर्ग नं० ४३ की शुद्ध पूर्ति

वर्ग नम्बर ४३ की शुद्ध पूर्ति जो बन्द लिफ़ाफ़े में मुहर लगाकर रख दी गई थी, यहाँ दी जाती है ।

म	हा	वी	र		प	र	ब	त	
हा	ल		स	मि	ति		ट		ब
भा	त		द		त		न	श्त	र
र		स			पा	प			ही
त	वा	ज़ा		चं	व	न्नी		ग	
	प		द	म	न		स	ज	ग
	सी	था	प	न		प	त		ह
सु		वां	ट		ज	टा	यु		ना
हा			ना				ग		
र	जा	ई		सु	ज	न		से	ना

नोट—सरस्वती वर्ग नं० ४२ की दुबारा जाँच के लिए आए हुए प्रार्थनापत्रों के अनुसार जाँच करने पर ज्ञात हुआ कि द्वितीय पुरस्कार के अधिकारी एक महाशय रामप्रताप पाँडे, सब पोस्ट-मास्टर कैनिंग रोड पोस्ट आफ़िस, इलाहाबाद और हैं। अतः यह पुरस्कार प्रत्येक व्यक्ति को २।=) के बजाय २।-) दिया जायगा। —वर्ग मैनेजर

वर्ग नं० ४३ (जाँच का फ़ार्म)

मैंने सरस्वती में छपे वर्ग नं० ४३ के आपके उत्तर से अपना उत्तर मिलाया। मेरी पूर्ति

नं०...में } कोई अशुद्धि नहीं है।
१,२,३ अशुद्धियाँ हैं।

मेरी पूर्ति पर जो पारितोषिक मिला हो उसे तुरन्त भेजिए। मैं १) जाँच की फ़ीस भेज रहा हूँ।

हस्ताक्षर ____________________

पता ____________________

____

बिन्दीदार लाइन पर काटिए

नोट

जो पुरस्कार आपकी पूर्ति के अनुसार होगा वह फिर से बँटेगा और फ़ीस लौटा दी जायगी। पर यदि पूर्ति ठीक न निकली तो फ़ीस नहीं लौटाई जायगी। जो समझें कि उनका नाम ठीक जगह पर छपा है उन्हें इस फ़ार्म के भेजने की ज़रूरत नहीं। यह फ़ार्म १६ मार्च के बाद नहीं लिया जायगा।
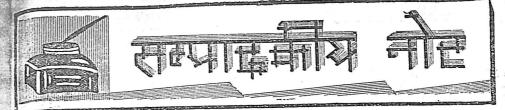
समालोचना की नई कसौटी

साहित्य में समालोचना का महत्त्वपूर्ण स्थान है। प्रसन्नता की बात है, पिछले दस वर्षों में इस दिशा में भी हिन्दी के कुछ लेखकों ने उसका उपयुक्त आदर्श उपस्थित किया है, जिसके फल स्वरूप उद्देश-विशेष से आलोचना करनेवाले हतप्रभ हो गये हैं। अच्छा होता कि उनका उन्मूलन ही हो जाता। परन्तु दुर्भाग्य से हिन्दी अभी उस पाये पर नहीं पहुँची है और ये पिछली श्रेणी के हमारे आलोचक अपनी उछल-कूद मचाये ही रहते हैं। इन्होंने अपना एक दल-सा बना लिया है और अपने दल के लोगों को आगे रखने के लिए हिन्दी के सुलेखकों की आलोचना के नाम पर आये दिन दुर्गति करते ही रहते हैं। इस दल में कुछ पुस्तक-विक्रेता भी शामिल हैं, क्योंकि उनका ऐसे सहयोग से लाभ होता है। हिन्दी के लेखक इन आलोचकों से पीड़ित ही थे कि हाल में एक नये आलोचक ने अपना अभिनव रूप प्रकट किया है।

ये महोदय यह कहते हुए मैदान में आये हैं कि हिन्दी में समालोचक का पूर्ण अभाव रहा है और हिन्दी में पहले समालोचक हमीं हुए हैं, जो हिन्दी के वर्तमान कवियों का यथार्थ वर्गीकरण दावे के साथ कर सकते हैं। हम भी इन महानुभाव के दावे से सहमत हो सकते थे, यदि हमें कुछ अपना अनुभव न होता। हमने अपने जीवन में देखा है कि स्वर्गीय शंकर जी, हरिऔध जी, मैथिलीशरण जी, स्वर्गीय रामचरित जी, सनेही जी को उनकी रचनाओं के कारण हिन्दी-प्रेमियों ने अपना हृदय-हार बनाया है और कालान्तर में जब प्रसाद, पन्त, निराला, महादेवी का प्रादुर्भाव हुआ तब उन्हें भी उनके बराबर ले जाकर बिठा दिया। पन्त और महादेवी तो स समय हिन्दी के शृंगार हो रहे हैं। ऐसी दशा में यदि कोई यह कहता है कि पन्त और महादेवी का अन्यों की अपेक्षा निम्न स्थान है या मैथिलीशरण केवल तुक्कड़ हैं और ऐसा कथन करना ही यदि शौर्य का चिह्न है तो ऐसे शौर्य का हम बारम्बार नमस्कार करेंगे! नायिका-भेद और अलंकार की भावनाओं से विमुख होकर हिन्दी के कवियों ने साहित्य-क्षेत्र में जिन नई भावनाओं का संचार किया है वे लोकप्रिय हुई हैं और उन्हीं के आधार पर हिन्दी का नया काव्य परिपुष्ट हो रहा है। यही नहीं, सके हमारे वर्तमान कवियों का मान भी बढ़ा है। ऐसी दशा में यदि आज कोई यह दावे के साथ कहने को आग्रसर होता है कि उपर्युक्त कवि अमुक-अमुक श्रेणी के ही हैं, मान्य सलिए भी नहीं होगा, क्योंकि उन महानुभाव से भी बढ़े-चढ़े दूसरे समालोचकों ने उन कवियों को उसी रूप में ग्रहण किया है जिस रूप में वे हिन्दी-प्रेमियों में पहले से गृहीत किये गये हैं, अर्थात् वे महाकवि हैं और उन्होंने अपनी रचनाओं से हिन्दी-कविता में सुरुचि और सदाचार का निखरा हुआ रूप दिखलाया है। और यह एक ऐसी बात है जिससे हिन्दी का अन्य प्रान्तीय भाषाओं के बीच मस्तक ऊँचा हुआ है। परन्तु उक्त समालोचकप्रवर का कहना है कि सच्चा समालोचक वही है जो इन मान्य महाकवियों की कृतियों की दुर्गति करने का साहस कर सकता है। समालोचना की अब साहित्य में, जान पड़ता है, यही कसौटी होगी। यह भी सही। हिन्दी को आगे बढ़ाने के लिए सभी तरह के दौरे करने पड़ेंगे। अतएव ऐसे धाकड़ समालोचक का भी स्वागत है!

समझौते का रंग-ढंग

महात्मा गांधी ७ फ़रवरी को दिल्ली जाकर वाइसराय लार्ड लिनलिथगो से भेंट कर आये, और ऐसा प्रतीत होता है कि इस बार भी कोई समझौता नहीं हो सका। वाइसराय महोदय से महात्मा गांधी की यह पाँचवीं भेंट थी और इस बार इस बात की बहुत

कुछ आशा थी कि इस भेंट से कम से कम समझौते का मार्ग तो ज़रूर ही स्पष्ट हो जायगा। परन्तु वह सब कुछ नहीं हुआ। इस सम्बन्ध में जो सरकारी विज्ञप्ति प्रकाशित हुई है उसका आवश्यक अंश इस प्रकार है—

सबसे पहले वाइसराय ने इस बात पर ज़ोर दिया कि भारत को यथासम्भव शीघ्र औपनिवेशिक स्वराज्य देने की हमारी हार्दिक इच्छा है और उसके लिए हम अपनी शक्ति भर प्रयत्न करने को प्रस्तुत हैं। उस सम्बन्ध में बड़े लाट ने कई अड़चनों की ओर गान्धी जी का ध्यान दिलाया। औपनिवेशिक स्थिति में देश की रक्षा का क्या प्रश्न होगा इसकी ओर उन्होंने महात्मा जी का ध्यान विशेषरूप से दिलाया। उन्होंने यह बात भी स्पष्ट कर दी कि समय आने पर सरकार सारी बातों पर देश के विभिन्न दलों और वर्गों के प्रतिनिधियों के साथ परामर्श करने के लिए भी प्रस्तुत है। सरकार इस बात के लिए भी उत्सुक है कि सन्धि-काल यथासम्भव थोड़ा रहे और सुधार में पूरा सामंजस्य रहे।

औपनिवेशिक स्वराज्य को शीघ्र लाने के लिए सरकार संघ-शासन-योजना को पुनः कार्यान्वित करने को प्रस्तुत है बशर्ते कि उससे सम्बन्धित दल इसके लिए अपनी सम्मति प्रकट करें। इससे जो बातें उत्पन्न हों उनका युद्ध के उपरान्त फ़ैसला करने के लिए भी सरकार प्रस्तुत है।

गांधी जी ने उस भावना की प्रशंसा की जिससे प्रेरित होकर उनके सम्मुख ये प्रस्ताव उपस्थित किये गये परन्तु उन्होंने स्पष्ट कर दिया कि मेरे विचार से इनसे कांग्रेसदल की सारी माँगें पूरी नहीं होतीं। गांधी जी ने प्रस्ताव किया और वाइसराय ने भी इस पर अपनी सम्मति प्रकट की कि वर्तमान परिस्थिति में जो समस्यायें उठ खड़ी हुई हैं उन्हें सुलझाने के उद्देश से और बातचीत करना स्थगित रखना अच्छा होगा।

उपर्युक्त उद्धरण से प्रकट होता है कि महात्मा जी ने सरकारी प्रस्तावों को अपर्याप्त पाया। साथ ही उन्होंने यह भी कहा कि वर्तमान परिस्थिति में जो समस्यायें उठ खड़ी हुई हैं उनको सुलझाने के लिए अभी यह बातचीत स्थगित रखनी चाहिए। फलतः फिर समझौते की बातचीत नहीं हुई। इस सम्बन्ध में महात्मा जी ने भी अपना वक्तव्य दिया है। वे कहते हैं—

मैं स्वयं तुच्छ और नगण्य व्यक्ति हूँ। यह समझा जाता है कि इन लाखों दबे हुए मूक प्राणियों पर मेरा कुछ प्रभाव है। मैं जानता हूँ कि जीवन के प्रत्येक अंग में मैं उन्हीं में से एक हूँ। मैं उनके सिवा कुछ भी नहीं हूँ। उनके बिना मैं जीना भी नहीं चाहता। उनकी ओर से मैं ब्रिटेन के साथ सम्मान-संगत समझौता चाहता हूँ और चाहता हूँ कि यह समझौता अहिंसात्मक संघर्ष के बिना ही हो जाय।

मेरे शब्दकोष में हिंसात्मक युद्ध ये शब्द ही नहीं। कल मैंने वाइसराय के सामने अपना मत विनम्र और मित्रतापूर्ण भाव में व्यक्त किया। हमने एक दूसरे की निश्छलता पर विश्वास करते हुए मित्रों की भाँति बातचीत की। हमने एक दूसरे की बातें समझीं और दोनों ने यह अनुभव किया कि कांग्रेस के दृष्टिकोण और ब्रिटिश सरकार के दृष्टिकोण में अब भी बड़ा भारी अन्तर है।

हम दोनों मित्र की ही तरह एक-दूसरे से अलग हुए। मुझे निराशा हुई कि यह बातचीत भी असफल रही। इस असफलता का उपयोग मैं करूँगा और उसे सफलता की पहली सीढ़ी बनाऊँगा। मैं समझता हूँ कि वाइसराय भी इसकी चेष्टा करेंगे। पर यदि निकट भविष्य में हमें सफलता न मिली तो मैं केवल इतना ही कह सकता हूँ कि भारत, ब्रिटेन और संसार का कल्याण भगवान् ही करें।

वर्तमान समय की जिन नई समस्याओं के उठ खड़ी होने का संकेत ऊपर के उद्धरणों में किया गया है वे वास्तव में हैं देशी राजाओं का दृष्टिकोण तथा सम्प्रदायवादियों का दुराग्रह। सम्प्रदायवादियों में मुस्लिम लीग की माँग है कि भारत का बँटवारा कर दिया जाय। हरिजनों के एक नेता श्री एम० सी० राजा वायसराय महोदय को इस मर्म का तार देते हैं कि उनके दलितवर्ग की चोटी दया करके कांग्रेस के हाथ में न दे देना। इसी प्रकार हिन्दू-महासभावाले भी अपनी अलग माँग रख रहे हैं। राजाओं की क्या माँग है, सो तो हम नहीं कह सकते, पर हैदराबाद-राज्य के प्रधान मंत्री सर अकबर हैदरी ने घोषित किया है कि ब्रिटिश सरकार भारत के सम्बन्ध में जो भी निश्चय करे उस सम्बन्ध में उसे पहले हैदराबाद से सलाह लेनी चाहिए। इससे जान पड़ता है कि देशी नरेश भीतर ही भीतर अपना अड़ंगा लगाये जा रहे हैं। परन्तु महात्मा जी ने इन समस्याओं के सुलझाने की बात ही नहीं की, किन्तु वे उसके लिए व्यग्र और उत्सुक भी हैं। परन्तु क्या ये इस तरह सुलझाई जा सकेंगी? लन्दन के 'टाइम्स' ने तो स्पष्ट कह दिया है कि ब्रिटेन कांग्रेस की माँग को कभी स्वीकार नहीं कर सकता। परन्तु महात्मा गांधी निराशावादी नहीं हैं। उन्हें आशा है कि बिना लड़ाई लड़े ही वे इस बार भारत के लिए स्वराज्य प्राप्त करेंगे।

कदाचित् इसी से सूरत में उस दिन सरदार पटेल ने जो भाषण किया है उसमें उन्होंने यहाँ तक कहा है कि यदि कांग्रेस की बालिग़मताधिकार के आधार पर बनी विधान बनानेवाली परिषद् की माँग इस समय न पूरी की जा सकती हो तो वर्तमान प्रान्तीय मताधिकार के आधार पर ही उस परिषद् का निर्माण किया जाय और वह परिषद् बिना बाहरी हस्तक्षेप के भारत के लिए जो विधान बनावे उसे सरकार मंजूर कर ले। यदि उसके विधान बनाते समय कोई साम्प्रदायिक प्रश्न उठ खड़ा हो तो वह प्रश्न पंचायत-द्वारा तय किया जाय और उसका निर्णय मान्य हो। सरदार पटेल के इस सुझाव अर्थात् झुकाव का हिज़ हाइनेस आग़ा ख़ाँ ने भी समर्थन किया है। अब देखना है कि ब्रिटिश सरकार इस पर क्या करती है। अच्छा होता कि सरकार सरदार पटेल के इस प्रस्ताव को उदारतापूर्वक ग्रहण करके कांग्रेस के साथ शीघ्र समझौता कर लेती।

जापान की प्रबलता

इस समय संसार की महाशक्तियों में जापान का नम्बर बढ़ा-चढ़ा है। एशिया का यही एक देश ऐसा निकला जिसने समय को देखकर उन्नति की ओर क़दम ही नहीं उठाया, किन्तु संसार में अपने को प्रथम श्रेणी के राष्ट्रों में गिना लिया। तो भी प्रभुता ग्रेट ब्रिटेन की ही बनी रही है और उसके डर से या लिहाज़ से जापान अपनी शक्ति का प्रदर्शन करने की हिम्मत नहीं कर सका। परन्तु महायुद्ध ने भण्डाफोड़ कर दिया और यह दुनिया पर प्रकट हो गया कि स्वयं योरप के ही कुछ देश ग्रेट ब्रिटेन के प्रभुत्व को मानने से इनकार करते हैं। इस परिस्थिति को समझकर और यह देखकर कि यदि अपना मतलब गाँठा जाय तो ग्रेट ब्रिटेन या और ही कोई उसके मार्ग का कण्टक नहीं बनेगा, जापान ने चीन पर चढ़ाई कर दी और उसके मंचूरिया प्रान्त को अपने अधिकार में कर लिया। चीन जापान से लड़ नहीं सकता था और न उसकी मदद को ही कोई तैयार हुआ। ग्रेट ब्रिटेन तथा संयुक्त राज्य—यही दो राज्य बोल सकते थे, पर वे भी केवल मौखिक विरोध प्रदर्शन करके रह गये। अधिक से अधिक यह किया कि जापान को राष्ट्र-संघ से निकाल दिया। जापान पहले से ही जानता था कि ब्रिटेन जर्मनी के डर के मारे चीन के मामले में हाथ नहीं डालेगा और यदि ब्रिटेन नहीं बोलेगा तो फिर और कोई नहीं बोलेगा। उसका अनुमान ठीक निकला। और जब उसने देख लिया कि मंचूरिया में उसकी चाल चल गई है तब उसने अपना दूसरा क़दम उठाया और बलपूर्वक सारे उत्तरी चीन पर अधिकार कर लिया। इस बार चीन की राष्ट्रीय सरकार को लड़ना पड़ा और तब से वह जापान से बराबर भिड़ी हुई है, परन्तु बारबार उसी की हार हुई है और अब तो उसे भाग कर देश के भीतरी भाग में जाकर आश्रय लेना पड़ा है। इधर समुद्र-तटवर्ती सारे प्रान्त अर्थात् मध्य-चीन तथा दक्षिण-चीन के सभी प्रान्त जापान के अधिकार में हो गये हैं। यदि इस संघर्ष-काल में चीन को रूस, ब्रिटेन, संयुक्त-राज्य आदि से शस्त्रास्त्र आदि की सहायता न मिली होती तो सारे चीन पर जापान का तभी अधिकार हो गया होता। यह चीन का दुर्भाग्य है कि किसी ने उसके पक्ष में जापान के विरुद्ध अस्त्र नहीं ग्रहण किया। कोई करता कैसे? योरप में जो गोलमाल होनेवाला था और जो अन्त में होकर ही रहा। योरप के इस युद्ध से जापान के लिए मार्ग और साफ़ हो गया है और अब वह पूर्णरूप से चीन को अपने अधिकार में करने की अपनी नीति को कार्य का रूप दे रहा है। चीन के प्रश्न को लेकर उसका ब्रिटेन, संयुक्त-राज्य और रूस से मनोमालिन्य हो गया है। रूस से तो उसके कभी कभी दो दो हाथ भी हो जाते थे। परन्तु अब वह भी

ठंडा पड़ गया है और उन दोनों में आपस में समझौता हो रहा है। सखालियन द्वीपों के समुद्र में मछली मारने का उसका अधिकार रूस ने स्वीकार कर लिया है और अब मंगोलिया और मंचूरिया की सीमा के निर्धारण की बातचीत भी शीघ्र ही तय हो जायगी। हाँ, संयुक्त-राज्य ने इधर बेशक कड़ा रुख लिया है। जापान से उसकी जो व्यापारिक सन्धि थी उसकी मियाद इसी साल खतम हुई है, अतएव उसने प्रतिवाद-स्वरूप उस सन्धि को नये सिरे से फिर करने से इनकार कर दिया है। परन्तु जापान निराश नहीं हुआ है और वह ब्रिटेन तथा संयुक्त-राज्य से भी मेल-जोल ही बनाये रखना चाहता है, क्योंकि इसी में वह अपना लाभ देखता है। जापान ने अपने साम्राज्य के विस्तार के लिए जो योजना बनाई थी वह धीरे-धीरे कार्य में परिणत हो रही है और उसे अपने प्रयत्न में पूर्ण सफलता मिल रही है। यों से कहना पड़ता है कि जापान जहाँ पशु-बल में वहाँ कूटनीति में भी संसार के किसी भी देश से पीछे नहीं है, और उसने संसार की वर्तमान दुरवस्था से लाभ उठाकर अपनी क्षमता और शक्ति का पूरा परिचय दिया है।

जापान में जो नया मंत्रि-मंडल हाल में बना है उसके प्रधान मंत्री ने अपनी सरकार की नीति को स्पष्ट करते हुए कहा है कि जापान अपने को योरप के झगड़े से दूर रक्खेगा और वह अपनी सारी शक्ति चीन में नई व्यवस्था की स्थापना में ही लगायेगा। और उसकी नई व्यवस्था यह है कि चीन के जो समुद्र-तटवर्ती प्रान्त उसके हाथ में आ गये हैं उनमें चीनियों की कठपुतली सरकारें क़ायम करके उनकी आड़ में स्वयं शासन करना। मंचूरिया में जो नीति उसने बरती है वही अब वह यहाँ भी बरतना चाहता है। उत्तरी प्रान्तों के लिए पेकिंग में एक चीनी सरकार क़ायम ही है। अब उसी तरह की एक चीनी सरकार दक्षिणी प्रान्तों के लिए शंघाई में स्थापित करने का प्रयत्न किया जा रहा है। अपने पशुबल के द्वारा जापान ने महाराष्ट्र चीन की जो दुर्दशा की है तथा उसको भिन्न भिन्न खण्डों में विभाजित करके जो दुर्दशा अब करना चाहता है वह सब भविष्य के इतिहासकार उसके महापापों में गिनेंगे। परन्तु बल-प्रमत्त राष्ट्रों के घर में नीति-अनीति का कब विचार रहा है? और आज जब सारे भूमण्डल में पशुबल का नग्न-नृत्य हो रहा है तब पशुबल-बली जापान ही कैसे चुप बैठे रह सकता था? आज चीन का सुन्दर और धन-धान्यपूर्ण महादेश निर्बल होने के कारण उसके पैरों के नीचे लोट रहा है!

कांग्रेस और बंगाल

बंगाल की प्रान्तीय कांग्रेस-कमिटी बोसबन्धुओं के पक्ष में है। जब से सुभाष बाबू के साथ कांग्रेस की कार्य-समिति ने अनुशासन की कार्यवाही की है और उन्हें तीन वर्ष के लिए अपदस्थ कर दिया है तब से बंगाल के अधिकांश कांग्रेसी कार्य-समिति के विरुद्ध हो गये हैं। कार्य-समिति ने बंगाल की कांग्रेस-कमिटी को अपने अंकुश में रखने के लिए एक विशेष निर्वाचन-कमिटी क़ायम की है कि वह बंगाल की प्रान्तीय कांग्रेस-कमिटी का नया चुनाव करे। कार्य-समिति के इस कार्य का बंगाल के कांग्रेसियों ने विरोध किया और अब जब कार्य-समिति अपने निश्चय पर अड़ गई है तब प्रान्तीय कांग्रेस-कमिटी की कार्यकारिणी ने विद्रोह का झंडा खड़ा करके यह घोषणा की है कि प्रान्तीय कांग्रेस-कमिटी का नया चुनाव नहीं होगा, साथ ही उसने प्रान्त भर की ज़िला-कमिटियों को आदेश दिया है कि वे ११ फ़रवरी को सारे प्रान्त भर म बंगाल-कांग्रेस-दिवस मनायें और उसमें लोगों को बतायें कि कार्य-समिति बंगाल-प्रान्त के साथ कैसा व्यवहार कर रही है। निस्सन्देह यह देश के लिए दुर्भाग्य की बात है कि बंगाल कांग्रेस के विरुद्ध उठ खड़ा हो—वही बंगाल जिसने अपने महान् त्याग से कांग्रेस को महत्त्वप्रदान किया हो। परन्तु दुःख की बात है कि व्यक्तिगत कारणों से एक लम्बे समय से या यह कहें कि जब से देशबन्धुदास दिवंगत हुए हैं, बंगाल आपसी कलह का शिकार रहा है। इधर सुभाष बाबू के प्रमुखता प्राप्त कर जाने पर आशा हुई थी कि अब बंगाल फिर पहले की तरह अपनी पूर्ण शक्ति से कांग्रेस को गौरवान्वित करेगा, परन्तु कुछ ही दिनों के बाद स्वयं सुभाष बाबू का ही कार्य-समिति के सदस्यों से मतभेद हो गया। यह उसी मतभेद का फल है कि आज बंगाल को कांग्रेस के विरुद्ध विद्रोह का झंडा उठाना पड़ा है। आश्चर्य तो यह है कि यह सब उस समय हो रहा है जब देश में कांग्रेस के भीतर सबसे

अधिक एकता की जरूरत है। हम नहीं समझते कि अनुशासन के नाम पर कांग्रेस के कर्णधार देश के खरे-खरे देशभक्तों को लाञ्छित और पददलित करके क्या लाभ उठावेंगे। जिन कुछ चुने हुए लोगों के हाथ में इस समय कांग्रेस की बागडोर है वे वर्षों से उसके सर्वेसर्वा बने हुए हैं। उन्हें तो देश का बहुत गहरा अनुभव होना चाहिए। परन्तु हम देख रहे हैं कि उन्हीं के कार्यकाल में सभी प्रान्तों के कितने ही देशभक्त या तो उनसे कुण्ठित होकर स्वयं कांग्रेस से अलग हो गये हैं या उन्हीं की आज्ञा से कांग्रेस से निकाल बाहर किये गये हैं। और कहा जाता है कि यह सब प्रजातंत्र की व्यवस्था के अनुसार ही किया जा रहा है। चाहे जो हो, परन्तु यह अवस्था देश की वर्तमान परिस्थिति को देखते हुए वाञ्छनीय नहीं है। क्योंकि कांग्रेस के ये सरदार अपनी कठोर मनोवृत्ति के द्वारा निस्स्वार्थ लोक-सेवकों को उखाड़-पछाड़कर अधिक समय तक लोकप्रिय नहीं बने रह सकते। यही नहीं, उनके ऐसे कार्यों से कांग्रेस की महत्ता को ठेस लग रही है। अतएव उन्हें अनुशासन-सम्बन्धी अपना सत्याग्रह या दुराग्रह छोड़कर आत्म-परीक्षा करनी चाहिए, क्योंकि कहीं वे ही भूल न कर रहे हों।

फ़िनलैंड और रूस

फ़िनलैंड और रूस की लड़ाई के जो समाचार पत्रों म छपते हैं उनसे जान पड़ता है कि रूस की हार पर हार हो रही है, तो भी वह आक्रमण पर आक्रमण करता ही जा रहा है। रूसी भालू कहे जाते हैं। फ़िनलैंड की इस लड़ाई में वे अपने भालूपन का पूरा पूरा परिचय दे रहे हैं। चाहे जो हो, रूस के संख्याबल के आगे फ़िनलैंड युद्धभूमि में अधिक समय तक नहीं ठहर सकेगा। रूस की सेनायें फ़िनलैंड में घुस गई हैं और वहाँ वे विध्वंसकार्य में संलग्न हैं। यह सच है कि फ़िनलैंडवाले उनका दृढ़ता से सामना कर रहे हैं। इसके लिए उनको बाहर से लड़ाई का सामान ही पर्याप्त रूप से नहीं पहुँचाया जा रहा है, किन्तु स्वीडन के तथा दूसरे देशों के भी लोग स्वयंसेवक के रूप में उनका यथासम्भव लड़ाई में साथ भी दे रहे हैं। परन्तु उन सबका यह अवरोध रूस की विशाल शक्ति के आगे अधिक समय तक टिकता हुआ नहीं दिखाई दे रहा है। यदि ऐसा न होता तो वहाँ के प्रधान मंत्री बाहरी ठोस सहायता के लिए बार बार माँग न करते रहते। इस समय जरूरत थी कि राष्ट्रसंघ के शक्तिशाली सदस्य उसकी प्रकट रूप से सैन्यबल से पूरी सहायता करते। परन्तु ऐसी सहायता उसे निकटभविष्य में मिल ही जायगी, इसकी सम्भावना नहीं दिखाई देती। ऐसी दशा में यह स्पष्ट ही है कि फ़िनलैंड के भी अब गिनती के ही दिन हैं। तथापि यह तो कहना ही होगा कि फ़िनलैंड ने अपने पुरुषार्थ का ख़ासा परिचय दिया है।

रेल के तीसरे दर्जे के यात्री

बहुत दिन हुए रेल के तीसरे दर्जे के यात्रियों के कष्टों को दूर करने के सम्बन्ध में महात्मा गांधी ने आन्दोलन शुरू किया था, यहाँ तक उन्होंने उन यात्रियों के प्रति अपनी सहानुभूति प्रकट की थी कि ख़ुद तीसरे दर्जे में ही रेल-यात्रा करने लगे थे। परन्तु शीघ्र ही उनके अधिक महत्त्व के कार्यों में लग जाने से वह आन्दोलन जहाँ का तहाँ ही रह गया। तब से आज तक और किसी लोकनेता ने उस ओर ध्यान ही नहीं दिया है, यद्यपि तीसरे दर्जे के रेल-यात्री पूर्ववत् तरह तरह के कष्टों के शिकार बराबर होते रहते हैं। और उनके वे कष्ट मेला आदि के अवसरों पर तो और भी बढ़ जाते हैं। इस सम्बन्ध में पण्डित जवाहरलाल नेहरू ने उस दिन लखनऊ में प्रयाग के माघ-मेला के यात्रियों की दुर्दशा को देखकर जो बात कही है वह हमारे उपर्युक्त आरोप का ताज़ा प्रमाण है। नेहरू जी का उक्त कथन 'आज' म इस प्रकार छपा है—

तीसरे दर्जे के यात्रियों के साथ दुर्व्यवहार करने के लिए तो भारत के रेलवे-अधिकारी बहुत दिनों से बदनाम हैं ही, पर रात को ट्रेन को ठसाठस भरा देखकर तो वास्तव में दिल दहल उठता है। इतनी बुरी तरह से लोग डिब्बों के भीतर ठुँसे रहते हैं कि इधर-उधर हिलना-डुलना और सांस तक लेना कठिन हो जाता है। २० आदमियों के सटकर बैठने के लिए जो स्थान रहता है उसमें ४० या उससे भी अधिक यात्री भरे रहते हैं।

बहुत कम कपड़े ओढ़े और पहने हुए हज़ारों आदमी इस शीत-ऋतु की रात्रि में प्लेटफ़ार्म पर गाड़ी की प्रतीक्षा में खड़े हैं तो भी रेलवे-अधिकारी यह कहकर चुपचाप टल जाते हैं कि हो सका तो रात में स्पेशल ट्रेन का

प्रवन्ध किया जायगा । हम जानते हैं कि प्रयाग में बड़ा भारी मेला है और बड़ी भीड़ वहाँ जाया करती है । रेलवे-कर्मचारी भी इस बात को जानते हैं । फिर वे यथासमय इसका प्रवन्ध क्यों नहीं करते ? यह हद दर्जे की खराव बात है कि मनुष्यों के साथ पशुओं से भी गया बीता व्यवहार किया जाय और ये ही हैं वे लोग जिनसे रेलों को इतनी आय होती है । ऊँचे दर्जे के यात्रियों से उन्हें कोई लाभ नहीं होता ।

वास्तव में तीसरे दर्जे के यात्रियों के कष्ट तभी दूर होंगे जब कोई एक नेता इसी प्रश्न के हल करने में अपना सारा समय लगावेगा । परन्तु इस समय दुःख है, इस कार्य के लिए कोई नेता उपलब्ध ही नहीं है, और न उसके भविष्य में ही उपलब्ध होने की आशा है । ऐसी दशा में इन अभागे यात्रियों को अभी अनिश्चित काल तक अपनी असमर्थता का परिणाम भोगना ही पड़ेगा । तथापि यह कम सन्तोष की बात नहीं है कि हमारे कुछ नेताओं के ध्यान में वे लोग हैं और जब उन्हें अधिक महत्त्व के कामों से अवकाश मिलेगा तब वे उनकी दशा को सुधारने के लिए अपना समय दे सकेंगे । तब तक उन्हें धैर्य धारण करना चाहिए, क्योंकि वे अकर्मण्य और कायर हैं ।

बालकन के राज्यों में एकता

बालकन-प्रायद्वीप के चार राज्यों ने—यूगोस्लेविया, रूमानिया, तुर्की और ग्रीस ने अपना एक गुट बना लिया है। यों तो इस गुट का अस्तित्व बहुत पहले से है, परन्तु इधर इटली की प्रेरणा से इस गुट म नई जान आ गई है । इसी फ़रवरी में उपर्युक्त राज्यों के प्रमुख व्यक्तियों की बैठक बेलग्रेड में हुई थी, जिसमें वर्तमान योरपीय युद्ध से उत्पन्न हुई परिस्थिति पर पूर्ण रूप से विचार हुआ। यह नहीं कहा जा सकता कि उस बैठक में किन किन बातों पर विचार हुआ, पर बैठक के बाद जो विज्ञप्ति प्रकाशित हुई है उससे उक्त गुट्ट के उद्देश्यों पर अच्छा प्रकाश पड़ता है । उक्त विज्ञप्ति इस प्रकार हैं—

संघ के चार सदस्य सहयोग के विचार से अग्रलिखित बातों पर सहमत हैं।

१—सदस्य राष्ट्रों के सार्वजनिक हित की दृष्टि से शान्ति क़ायम रखना ।

२—अपने भाग से योरप के युद्ध को दूर रखना ।

३—संघ के सदस्य राष्ट्रों में गहन सहयोग रखना।

४—पड़ोसियों से मित्रता रखना।

५—सदस्य राष्ट्रों में व्यापारिक और यातायातिक सम्वन्ध बढ़ाना ।

६—बालकन-सन्धि को ७ साल के लिए बढ़ा देना, और ७ फ़रवरी १९४१ में एथेन्स में होनेवाले अगले सम्मेलन तक सदस्य राष्ट्रों के वैदेशिक मंत्रियों में निकट सम्बन्ध रखना।

इस विज्ञप्ति के प्रकाशित होने के बाद तुर्की की प्रेरणा से बलगेरिया ने भी निरपेक्ष रहने की घोषणा की है । यह सब ठीक है, परन्तु लोगों को आशंका है कि बालकन के ये राज्य अधिक दिनों तक निरपेक्ष नहीं रह सकेंगे । यदि योरपीय युद्ध जल्दी ही बन्द नहीं हुआ तो वह दिन दूर नहीं जब योरप के इस भूखण्ड में भी युद्ध की आग भभकती हुई दिखाई देगी ।

लाहौर का श्री विश्वेश्वरानन्द वैदिक अनुसन्धानालय का महत्कार्य

यह कहने की आवश्यकता नहीं है कि वैदिक साहित्य के अनुसन्धान और उसके अनुशीलन की हमारे देश के लिए कितनी अधिक आवश्यकता है। प्रसन्नता की बात है कि लाहौर के श्री विश्वबन्धु शास्त्री के निरीक्षण में यह शुभ कार्य प्रारम्भ हो गया है। लाहौर का 'विश्वेश्वरानन्द वैदिक अनुसन्धानालय' सन् १९२४ से इस कार्य को कर रहा है। इस संस्था की रजिस्टरी भी हो गई है। इसका ध्येय अनुसन्धान-द्वारा प्राचीन भारती का संरक्षण तथा संजीवन है ।

इस संस्था में वेदादि शास्त्रों के ३० योग्य विशेषज्ञ विद्वान् श्री विश्वबन्धु शास्त्री, एम० ए०, एम० ओ० एल० के निरीक्षण तथा अनुशासन में सुव्यवस्थित प्रकार से वैदिक साहित्य के अनुसन्धान का कार्य करते हैं। इसके सिवा भारत के तथा बाहर के विद्वानों की एक परामर्श-समिति भी संगठित की गई है।

पिछले १६ वर्षों में यह संस्था 'वैदिक पदानुक्रमकोष'
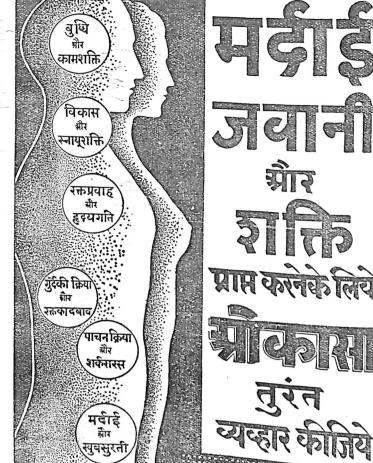
को तैयार करने में संलग्न है। इसमें संहिताओं, ब्राह्मणों, उपनिषदों तथा सूत्रों के लगभग ३५० ग्रन्थों के एक एक पद का व्याकरण की रीति से विश्लेषण तथा व्युत्पादन करते हुए जहाँ जहाँ और जिस जिस रूप में वह प्रयुक्त हुआ है उसका पूरा पूरा स्थल-संकेत किया गया है। हज़ारों स्थलों पर जहाँ मुद्रित ग्रन्थों में पाठ-सम्वन्धी गड़वड़ था वह भी ठीक किया गया है। इस ग्रन्थ से वैदिक साहित्य का अनुशीलन करनेवालों का अत्यन्त उपकार होगा।

हर्ष की वात है कि उपर्युक्त अद्भुत ग्रन्थ के लिए ३० लाख शास्त्रीय संकेतों के रूप में पूर्ण सामग्री संगृहीत की जा चुकी है। इस वृहत् कार्य पर अव तक ढाई लाख रुपया ख़र्च हो चुका है। अव यह आवश्यकता है कि उपर्युक्त संगृहीत सामग्री का अन्तिम सम्पादन किया जाय तथा संस्था के निश्चयानुसार वह १० भागों में प्रकाशित की जाय। इसके लिए संस्था को कम से कम एक लाख रुपया और चाहिए। अतएव प्राचीन भारतीय तथा संस्कृति के प्रत्येक सच्चे अनुरागी को इस संस्था की पूरी सहायता करनी चाहिए ताकि वह इस कार्य को अति शीघ्र पूर्ण कर सके।

इस वारे में पत्र-व्यवहार तथा दान आनरेरी डाइरेक्टर वि० वै० अनुसन्धानालय, नाभा हौस, लाहौर के पते पर करना चाहिए।

करसियांग का पुस्तकालय

दार्जिलिंग-ज़िले में करसियाँग नाम की एक जगह है। व्यापार के सिलसिले में वहाँ कुछ मारवाड़ी जा बसे हैं। प्रसन्नता की वात है कि वहाँ के मारवाड़ियों को हिन्दी से विशेष अनुराग है। इसका प्रत्यक्ष प्रमाण वहाँ का 'मारवाड़ी सार्वजनिक पुस्तकालय' है जिसकी स्थापना सन् १९३१ में कुल १७) की पूँजी से हुई थी और जिसके स्थायी कोष में अव १,०५७।।।)।। जमा है और जिसका वार्षिक व्यय छः-सात सौ रुपये होता है। परन्तु इसकी मुख्य विशेषता यह है कि यह पुस्तकालय अहिन्दी-भाषियों को हिन्दी पढ़ने के लिए प्रोत्साहन देता है, ह उन्हें पढ़ने को पाठ्य पुस्तकें देता है तथा उनकी परीक्षा की भी व्यवस्था करता है। इसमें संदेह नहीं, पुस्तकालय का सञ्चालन उत्साह के साथ होता है और इसके सञ्चालक इसके लिए धन्यवाद के पात्र हैं। क्या ही अच्छा हो यदि अहिन्दी प्रान्तों में वसे हुए हिन्दी-भाषी करसियाँग के आदर्श का अनुकरण कर हिन्दी-प्रचार के कार्य में हाथ वँटावें।

'मीरावाई'-नाम

उपर्युक्त शीर्षकवाला मेरा एक लेख 'सरस्वती' के भाग ४० की संख्या ३ में छपा था। उसमे 'कवीर-ग्रन्थावली' की तीन साखियों में आये हुए 'मीराँ' शब्द के प्रयोग से मैं इस परिणाम पर पहुँचा था कि यह शब्द मूल रूप में विदेशी है और उसके माने प्रभु या ईश्वर है। कवीर से पीछे के सन्त दादू की वानी में भी मुझे तीन स्थलों पर यह प्रयोग मिला है, जो इस वात को असंदिग्ध रूप से पुष्ट करता है, जैसा नीचे के पद्यों में आये हुए 'मीराँ' शब्द के प्रयोग से स्पष्ट है—

१—साच सपीड़ा मन करै, सतगुरु सवद सुणाइ।
मीराँ मेरा मिहर करि अंतर विरह उपाय॥ दादूवानी
भाग १ पृ० १६०।२९

२—अर्श ऊपर आय वैठा, दोस्त दाना यारवे।
खोजकर दिल कवज कर ले, दूर नै दीदारवे।
हुशियार हाजिर चुस्त करदम मीराँ मिहरवान वे
दाखिले दरहाल दादू, आप हैं दीवान वे। वही भाग
२ पृ० ४२, ९५

३— एकै असनाव मेरे तूँ ही हम जानां।
जान व अजीज मेरे खूव खजाना॥
नेक नजर मिहर मीराँ वंदा मैं तेरा।
दादू दरवार तेरे खूव साहिव मेरा॥ वही भाग २,
पृ० १२३, २९०

इस वात को ध्यान में रखना चाहिए कि मीरावाई राजस्थानी थीं और दादू भी राजस्थानी थे। यह भी ध्यान देने की वात है कि अव तक मिले प्रयोगों में 'मीराँ' शब्द के साथ किसी न किसी अरवी, फ़ारसी शब्द का संसर्ग देखा जाता है। ऊपर के अन्तिम दो पद्य तो अरवी-फ़ारसी से विलकुल लदे हैं।

—पीताम्बरदत्त बड़थ्वाल

पीर पगारों की उदाराशयता

सिन्ध में जहाँ सक्खर का सा भयानक काण्ड करनेवाले मुसलमान रहते हैं, वहीं पीर पगारों जैसे उच्चमना पीर भी हैं। कहा जाता है कि उक्त भयानक दंगे के अवसर पर उन्होंने बहुत-से हिन्दू-परिवारों को बचाया था। कदाचित् सक्खर के भयानक काण्ड से क्षुब्ध होकर ही उन्होंने अपने शिष्य-मंडल को जो संख्या में दस लाख के लगभग हैं आदेश किया है कि वे निरामिष बनें और गोवध न करें। यही नहीं, उन्होंने यह भी कहा है कि उनका जो शिष्य उनकी आज्ञा का पालन नहीं करेगा उस पर ५१।) का दण्ड लगाया जायगा। उनका कहना है कि उनके आदेश के अनुसार कार्य करने से देश में साम्प्रदायिक झगड़े की जड़ ही कट जायगी। क्या ही अच्छा हो यदि मुसलमानों के बीच ऐसे पीरों का बाहुल्य हो जाय।

देहाती पुस्तकालय

संयुक्त-प्रान्तीय सरकार ने अपने यहाँ देहातों में पुस्तकालयों और वाचनालयों की जो नई योजना कार्य में परिणत की है उसमें उसे बड़ी सफलता मिली है। योजना के अनुसार गत वर्ष ७६८ पुस्तकालय तथा ३,६०० वाचनालय देहातों में खोले गये हैं। इन पुस्तकालयों में १,५८,७२१ हिन्दी की और ५१, ०१५ उर्दू की पुस्तकें रक्खी गई हैं। अर्थात् प्रत्येक पुस्तकालय के लिए १९० हिन्दी की और ६६ उर्दू की पुस्तकों का औसत रक्खा गया है। इनकी पहले वर्ष की जो रिपोर्ट निकली है उससे प्रकट होता है कि इन पुस्तकालयों से लोग १२,२०,१२१ पुस्तकें पढ़ने को ले गये। धार्मिक पुस्तकों, उपन्यासों, कहानी की पुस्तकों, कविता, इतिहास, राजनीति और कृषि-सम्बन्धी पुस्तकों की ज़्यादा माँग रही। पुस्तक ले जाने के लिए यद्यपि किसी तरह की फ़ीस जमा करने का नियम नहीं रक्खा गया है, तो भी केवल ५० ही पुस्तकें सारे प्रान्त में गुम हुई हैं। पुस्तकालयों की सफलता को देखकर सरकार इस वर्ष २३२ और नये पुस्तकालय खोलेगी, साथ ही १० फ़ी सदी पुस्तकों में भी वृद्धि करेगी।

वाचनालयों में दो साप्ताहिक और दो मासिक पत्र, जिनमें एक उर्दू का रहता है, आते हैं। इनके सिवा इनमें पंचाङ्ग, जंत्रियाँ, कलेंडर और रेलवे टाइम टेबुल जैसी नित्य की उपयोगी सामग्री भी रक्खी जाती है। वाचनालय के लाइब्रेरियन को इस बात के लिए भत्ता भी दिया जाता है कि वह हफ़्ते में एक बार अपढ़ों को अखबार पढ़कर सुनाया करे। वाचनालयों में पिछले साल ३९,३४,२१[illegible] आदमी आये।

प्रवासी भारतीय

उपनिवेशों में जो प्रवासी भारतीय निवास कर रहे हैं उनके संकटों का कब अन्त होगा, यह कहना कठिन है। दूर के उपनिवेशों की बात जाने दीजिए, पड़ोस के ब्रह्मदेश तथा लंका के भारतीयों पर जो बीत रही है उससे उनका उद्धार करने को हम अपने को असमर्थ पा रहे हैं। लंका में तो भारतीयों को वहाँ से निकाल बाहर करने की योजना ज़ोरों पर चलाई जा रही है। सिंहालियों की भारतीय-विरोधी भावना के कारण वहाँ के भारतीय मज़दूर ही नहीं, शिक्षित नौकरी पेशावाले भी अपने दिन गिन रहे हैं। इधर कलकत्ते के बन्दरगाह से १९३२ में एक भी मज़दूर विदेशों को नहीं गया। हाँ, उस बन्दरगाह से स्वदेश को १,०८३ प्रवासी भारतीय लौटे अवश्य हैं, जिनका ब्योरा इस प्रकार है—१९६ फ़ीजी से, ८३५ ब्रिटिश गायना से, १[illegible] सुरीनाम से और २६ दक्षिणी अफ़्रीका से।

जो भारतीय दक्षिण-अफ़्रीका से आये हैं उनमें प्रौढ़ों को २०-२० पौंड और बच्चों को दस-दस पौंड दिये गये हैं, साथ ही वे अपने घरों तक दक्षिण-अफ़्रीका की सरकार के खर्च से पहुँचा भी दिये गये हैं।

जो गायना और फ़ीजी से आये हैं उनमें से ग़रीबों को वहाँ की सरकारों ने अपने खर्च से उनके घरों तक पहुँचा दिया है, साथ ही कुछ दिनों तक गुज़र-बसर करने के लिए प्रत्येक को कुछ रुपया भी दिया है। ऐसा ही व्यवहार सुरीनाम की सरकार ने भी किया है।

प्रवासी भारतीयों की ज़माने से ऐसी ही दयनीय दशा है।

भारतेन्दुकाल के कुछ निजी पत्र

लेखक, श्रीयुत दिनेशनारायण उपाध्याय, साहित्यरत्न

भारतेन्दुकाल वर्तमान हिन्दी के अभ्युदय-काल का प्रारम्भ-काल है। तत्कालीन लेखकों के निजी पत्र उस काल की साहित्यिक प्रगति पर अच्छा प्रकाश डाल सकते हैं। इसी विचार से हमने इस लेख में कुछ पत्रों को उद्धृत करके उस सम्बन्ध की चर्चा की है।

पहले हम भारतेन्दु जी के पत्रों का उल्लेख करेंगे। उनके पत्रों की भाषा सरल तथा बोलचाल की है। वे राजा कृष्णदेवशरणसिंह की तरह आधे पत्र में संस्कृत और फ़ारसी और अन्त में हिन्दी नहीं लिखते थे। उनकी रसिकता उनके शब्द-चयनों से प्रमाणित होती है। बहुत-से लोग अपने पत्रों में तरह तरह की सूक्तियाँ उद्धृत करते हैं। भारतेन्दु बाबू भी इस पद्धति के कुछ पक्षपाती थे। जीवन के अन्तिम दिनों में उनकी आर्थिक दशा शोचनीय हो गई थी, तो भी वे यही कहते थे कि "गर मर्द है तू कुछ भी, कौड़ी न रख क़फ़न को।" इस समय के उनके पत्रों में उनके साहस का, साथ ही विनम्रता का अच्छा परिचय मिलता है। ८ अप्रैल, १८७८ ईसवी के एक पत्र में वे पंडित बदरीनारायण चौधरी को लिखते हैं—

प्रियवरेषु—

आपका छपा-पत्र आया। यह संसार दुःख का सागर है और अपनी अपनी विपत्ति में सब फँसे हैं, पर मैं सोचता हूँ कि जितना मैं चारों तरफ़ से दुख में जकड़ा हूँ, इतना और कोई कम जकड़ा होगा पर क्या करूँ खैर चला ही जाता है। बाबू जी* का यह तुक बहुत ही ठीक है—"है संसार का यह मज़ा, घन सरिस दुख तड़ित सम सुख मोह छाजन छजा।" इन्हीं झंझटों से आज-कल पत्र नहीं लिखा। क्षमा कीजिएगा। चित्त वैसा ही है। इसमें सन्देह न कीजिएगा। "सौ युग पानी में रहै मिटै न चकमक आग" और सब कुशल है—आपका भी पचड़े में फँसना सुनकर बड़ा दुःख होता है। ठीक है—खैर न वह रही न यह रहेगी।

भवदीय

हरिश्चन्द्र

भारतेन्दु के इस पत्र में उनकी मस्ती और धैर्य का पूरा परिचय मिलता है। उन्हीं की तरह एक दूसरे महानुभाव भरतपुर के निर्वासित नरेश राजा कृष्णदेवशरणसिंह थे। आपको भी साहित्य से उतना ही अनुराग था, जितना भारतेन्दु जी आदि को था। पर सब था 'स्वान्तःसुखाय' ही। आपके टक्कर का क्लिष्ट गद्य का लेखक भारतेन्दु-काल में दूसरा नहीं था। हिन्दी, संस्कृत, फ़ारसी, अँगरेज़ी के आप विद्वान् थे। आपके पत्रों से तथा 'आनन्दकादम्बिनी' में प्रकाशित 'स्वप्न' आदि लेखों से आपकी महत्ता लक्षित होती है। उदाहरणार्थ आपका एक पत्र यहाँ उद्धृत है—

"सुहृद्वरेषु,

समय क्या है घोड़दौड़ी घोड़ा है, इंजन है, हवा है, खयाल है, कि पलों के हेर-फेर में वह देर हो जाती है कि जिस काम को अभी करना चाहते हैं होते होते मुद्दतें गुज़र जाती हैं, कल परसौं की बात है कि आपकी ओर का एक परचा घसीट पहुँचा मुझसे बेकार फ़ालतू आदमी के लिए सुबू से सुबू तलक और शाम से शाम तलक सिवा फ़ुरसत के कोई काम नहीं अगर जी पर रखता, आपकी घसीट के दो टप्पे जवाब की तो क्या असल हैं हिकायत, शिकायत और मज़मून दास्तानों का इतना ढेर लगा देता कि रेल की मालगाड़ियों में भी शायद ही गुँजाइश होती मगर अब लिखता हूँ। इसी टाल-मटाल में आखिरकार ख़याल जो पड़ा तो देखता हूँ कि हफ़्ते से भी ज़्यादा अरसा गुज़रता है मगर हनोज़ जवाब की नौबत न पहुँची—बेसाख्ता चौंक कर मुस्तअदी को राह देता हूँ और आपके खते मुबारक का जवाब जिसे मैं घसीट के नाम से मशहूर करता हूँ, पैदा करने की कोशिश में मसरूफ़ हूँ अगर कुल फ़िक्रें रास्त आयीं और जुवाब बन पड़ा तो यक़ीन है कि खत के डाकखाने तक पहुँचने तक नौबत पहुँचे

---

*बाबू जी—भारतेन्दु जी ने अपने पिता बाबू गिरधरदास जी के लिए यहाँ पर संकेत किया है।

लाहौल बलाक़ूवत क्या छींकते शुरुआत की थी कि इसी क़दर लिखने की नौबत पहुँची थी कि बी फ़ुरसत ने रुखसत ली और एक ऐसे झमेले में पड़ गया कि अपना क़ौल पूरा न कर सका, पस आपके घसीट के जवाब को किसी दूसरे मौक़े पर मौक़ूफ़ करके इस वक़्त इसी क़दर लिखकर फ़राग़ पाता हूँ कि मैं इस दुनियाँ के अपरा (Opera) में अपने लाइफ़ (Life) के सीज़न Season तक एक महाघोर दारुण परिणामशून्य करुण प्रहसन के लिए इङ्गेज (Engage) हो चुका हूँ, कि मुझको क्षण-मात्र भी अवकाश नहीं कि आपके कलम की कारीगरी तथा अमुक पत्रिका की रचना को दत्तचित्त होकर देखूँ भी, नाटक और नाटककार से बहुत बीच है। किमपि रसावलम्बी नाटक है। आप लोगों को उससे उतने ही काल-पर्यन्त सम्बन्ध है जब तक लेखनी और मसि से संयोग है। और मैं जो खेलता हूँ तो उस तन्मयता को प्राप्त होता हूँ कि जिससे अब यह याद नहीं है कि आपको क्या लिख रहा हूँ—अतएव क्षमा

राही

श्रीकृष्णदेवशरणसिंह

यह पत्र किस तिथि का है, यह निश्चित रूप से ज्ञात नहीं है। पर नाटक के विषय में होने से ज्ञात होता है कि यह प्रेमघन जी के 'भारत-सौभाग्य' के लिखने के समय आया होगा। और 'भारत-सौभाग्य' सन् १८८९ ईसवी, २५ दिसम्बर को समाप्त हुआ था। अतएव राजा साहब का पत्र १८८९ ईसवी की जनवरी या फ़रवरी में लिखा गया होगा।

पंडित प्रतापनारायण मिश्र भारतेन्दु-युग के प्रमुख स्तम्भों में थे। वे बैसवाड़े के निवासी थे। उन्होंने
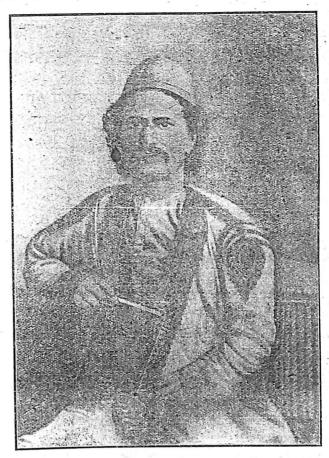
भारतेन्दु बाबू हरिश्चन्द्र

'भारत-सौभाग्य-नाटक' के सम्बन्ध में प्रेमघन जी को अपनी बैसवाड़े की बोली में एक पत्र लिखा था। इस पत्र में भी तिथि नहीं लिखी गई है। अतएव यह पत्र भी सम्भवतः सन् १८८९ ईसवी का ही होगा। मिश्र जी का उक्त पत्र इस प्रकार है—

प्रियवरेषु,

चिठी पाय कै करेजु जुड़ाय गवा, काकरतेन हम जाना भूलिगयो तेहेंते माँगै का ध्वरा, पोथ्यू दीखि बड़ी नीकि

पंडित प्रतापनारायण मिश्र

है, समालोचना तौ करवै करब औ नीकि ही करब काहेते कि अपनि आय, पै याक बात है कि तुम पँच जानि परत है कवौ नाटक वाटक माँ रह्यौ नाहीं—तेहितें वहि की करमट माँ कतौं २ भूलि जात हौ। हमरी मुच्छै कैयो दाँय घोटी गई हैं औ हम मेहरिया मंसवा दूनौ कै नकल करैं जानित है तेहिते ऐसी पोथिन माँ हमहूँ ते पूछि लीन करौ तौ क्रीटिक हुन का ब्वालै का बीचु न रहै—अबै उइ कैयो दाँय दोखु लगाय सकत हैं। हमरे कम्पू की बोली माँ तुम भूलि गयो है। अचरिज होत है। भला कहूँ विश्वामित्र बावा के वंश माँ कोहूकां घोंघा होत सुना हऊ कि पूछतहे हो ? हम वैसवारे माँ रहित है। दुसरेन का चराय आइत है, भला हमका कोहू का रंग का लागी। आप की चरणों की दया से आनन्द है अपना मंगल समाचार लिखिएगा—क्यों साहब श्री हरिश्चन्द्र कला की फ़िक्र न कीजिएगा—और कुछ आज्ञा।

तोमारदाश

प्रेमदास (प्रतापनारायण मिश्र)

मिश्र जी के इस पत्र में तो उनके सहज हास्य का पूरा चित्र आया है। तत्कालीन साहित्यिकों पर उनकी कितनी श्रद्धा थी, इसका भी इससे पता चलता है। मिश्र जी के एक दूसरे पत्र की कुछ पंक्तियाँ इस प्रकार हैं—

"खेद है श्री हरिश्चन्द्र कला बन्द होने को है हमने दस-ग्यारह ग्राहक तो बढ़ाये हैं कुछ अपनी अल्प पूँजी का भाग भी निछावर करने का प्रण है पर यतः आप भी उसी पवित्र परिकर के एक उच्च श्रेणी के पुरुष हैं अतः निवेदन है कि इसके ग्राहक बढ़ाने तथा श्री वावू रामदीनसिंह को उत्साहित रखने को कटिवद्ध हूजिए नहीं तो बड़ी हानि होगी—उत्तर शीघ्रमेवदातव्यं

भवदीय

प्रतापनारायण मिश्र, कालाकांकर

Village सिरायू

१८ जनवरी

मिश्र जी के बाद पंडित बदरीनारायण चौधरी 'प्रेमघन' के पत्रों का हम यहाँ उल्लेख करेंगे। प्रेमघन जी के पत्रों का भी साहित्य में एक विशेष स्थान है। उदाहरणार्थ उनका एक पत्र हम यहाँ उद्धृत करते हैं। यह पत्र प्रेमघन जी ने अपने परम मित्र तथा बालसखा स्वर्गीय अयोध्या-नरेश श्री प्रतापनारायणसिंह जी को लिखा था। उक्त पत्र इस प्रकार है—

नागरी नीरद कार्य्यालय

ताः १३ अप्रेल—गुरु मिर्जापुर

(संवत् का अभी ठीक पता नहीं मिला है)

महाराज !

आपकी सब गालियाँ शिरोधार्य हैं! परन्तु वेअदबी मुआफ़—निश्चय "हिंसक ही का नाम शूर है।" जिनको

दया से कार्य नहीं है। और जो दूसरों का दुख नहीं देख सकते वे शूर भी हो नहीं सकते क्योंकि उनके कार्य का परिणाम दूसरों को दुख देना है।

जो आप लिखते हैं कि "शूर अस्त्र न मार हीं" इस उदार नीति ने पृथ्वीराज को शहाबुद्दीन के हाथों हलाल कराया, रामायण और महाभारत आदिक सद्ग्रन्थों में अनेक प्रमाण भरे पड़े हैं और इसी लिए विशुद्ध वीरों के लिए उदार नीति के स्थान पर कूटनीति और दया-धर्म के स्थान पर क्रूर-धर्म श्रेयस्कर है जैसा की वालि, भीष्म, द्रोण के वध की कथा वतलाती है। इसी लिए दया का विशेष संचार वीर के लिए वर्जित है। महाराज रामचन्द्र आदिक का निरपराध मृगा और शूकरों का मारना प्रमाण है।

अश्वमेधादि यज्ञ और रंगभूमि में रुण्ड मुण्ड नर्तन आदिक जिन्हें कष्टकर होंगे उनसे फिर वह धर्म्म कैसे साधित होगा, मुसलमान क्रिस्टान और हिन्दुओं की खूँखार और लीचड़ दशा इसका प्रत्यक्ष प्रमाण है। वे कुर्व्वानी करते और मांस के टुकड़े काटते और वीर के साहस का पालन करते और तनिक उत्तेजना को पाकर भी मरने से नहीं डरते और हमारे क्षत्री इसी दया धर्म के प्रभाव से फूक फूक कर क़दम धरते और दिन भर माला हिलाते और चौका लगा डाला और अब दासवृत्ति भोग कर रहे हैं। क्या यह दीन दशा किसी स्वदेशाभिमानी से सह्य हो सकती है और अब आप न्यायपूर्वक इसको विचार करेंगे तो इसे सत्य समझेंगे। मैं न मांस खाता हूँ और न इसको उचित समझता हूँ। वरंच उस हृदय को देख जो दया का उद्रेक चित्त में हुआ था, इन्हीं विचारों ने उसे दूर किया और इसी लिए वह लेखनी से भी उबल पड़ा, जिस पर आपको इतना रुष्ट होना कदापि

पंडित बदरीनारायण चौधरी 'प्रेमघन'

उचित नहीं है; क्योंकि अपनी दीन दशा देख हाय हाय करना ही पड़ता है। वरंच यहाँ तक चित्त में अमर्ष का उद्गार होकर उचित बोध होता है कि यदि भारतीय पुरुष अन्य पुरुषों ही को खाने लगते तो भी कदाचित् इसका उपकार होता, किन्तु शोक से कहना पड़ता है कि दया-धर्म से कदाचित् इसका उद्धार होना नहीं सम्भव है। इसके अतिरिक्त यदि पूर्ण विचार से देखा जाय तो दया

धर्म का निर्वाह इस संसार में परम असम्भव है। गर्मी की लू में कुली से कमरे के बाहर से पंखा हिलवाने में आपकी दया कहाँ रहती है।"

स्थानाभाव के कारण उपर्युक्त पत्र सबका सब नहीं दिया गया है। उसका यह आवश्यक अंश भर यहाँ दिया गया है। इस पत्र से प्रेमघन जी के भावप्रकाशन की शक्ति तथा उनकी भाषा की प्रौढ़ता का परिचय मिलता है। यद्यपि उनके वाक्य बहुत लम्बे हैं, तथापि वाक्यों में तथा उप-वाक्यों में इतना अच्छा मेल रहता है कि लेखक की रचना-प्रौढ़ता प्रत्यक्ष रूप से दिखाई देती है।

भारतेन्दु-काल में लोग पद्य में भी पत्र लिखा करते थे। भारतेन्दु-काल के अन्तिम चरण में श्रीधर पाठक का नाम अधिक प्रसिद्ध हुआ। पाठक जी ने प्रेमघन जी को अपनी पुस्तकें भेजी थीं। उसी के धन्यवादार्थ प्रेमघन जी ने पाठक जी को पद्य में पत्र लिखा था। उसका उत्तर पाठक जी ने भी पद्य में ही दिया। वे दोनों पत्र इस प्रकार हैं—

(१)

प्रेमघन जी का पत्र

परम प्रिय पाठक! तुनहिं प्रनाम।
प्राचीनन मँह बचे एकही अहौ मीत अभिराम॥
श्रीधर-कृपा पाय चिर दिन सौं करहु देश-हित काम।
ऐसैं ही निज भाषा जननी सेवहु चरन मुदाम॥
पठई पाँच पुस्तकनि जिन इन मोहिं अमोल इनाम।
तिन कहँ लै लखि लह्यो हर्ष अति अवलोकत गुनग्राम॥
करहु उछाहित देस-निवासिन निज बच आठौ याम॥
उन्नत भारत करैं "प्रेमघन" सह बनाय सुख-धाम॥

बदरीनारायण चौधरी प्रेमघन

(२)

पाठक जी का उत्तर

'प्रेमघन' कविवर परम सुजान।
पत्री मिली कृपा सों पूरित कोमल-कला-निधान॥
भारतेन्दु मीतन मँह तुमसम या छिन कोउ न आन।
पुराचीन रतनन विच राजत कोहेनूर-प्रमान॥
जद्यपि वृद्ध तदपि तुम्हरे हिय जागति जोति जवान।
पूरन रसिक सुहृद, सहृदयवर, जानत जिनहिं जहान॥
अभिनन्दन मम करिय ग्रहन प्रिय अहौ अमित गुनखान।
द्विजवर श्रीवदरीनारायन मिरजा-नगर प्रधान
प्रेमघन कविवर परम सुजान

श्रीपद्मकोट १५-९/२३ ११-१७ श्रीधर पाठक

भिन्न भिन्न समय के ऐसे पत्रों से हम तत्कालीन साहित्य में प्रचलित वाद-विवाद, भाषा के रूप, आलोचना की गति तथा आपस के सम्बन्धों का पूर्ण ज्ञान प्राप्त कर सकते हैं। इस दृष्टि से साहित्य में निजी पत्रों का अपना एक विशेष स्थान है। आशा है, हिन्दी के प्रेमी इस ओर भी ध्यान देने की कृपा करेंगे, जिससे प्रमुख साहित्यिकों के निजी पत्र संग्रह किये जा सकें।

दो चित्र

लेखक, श्रीयुत विनय कुमार

(१)

जैसे सुना कि तुम आते हो,
मैं हो उठा प्रसन्न !
किन्तु दूसरे ही क्षण जी में,
सोच रह गया सन्न !!
इस सीमित गृह में असीम का,
कैसे होगा वास ?
प्राण ! हृदय ने कहा कि—
जैसे पुतली में आकाश !!

(२)

जैसे सुना कि तुम आते हो,
मैं हो गया उदास !
स्वागत कैसे आज करूँगा,
यहाँ न जब कुछ पास !!
किन्तु हृदय ललकार उठा,
करते हो क्या नादानी !
अरे, नहीं है क्या धोने को—
चरण दृगों में पानी ?

आत्मघात

लेखक, श्रीयुत गंगानाथ

प्रिय बन्धु क्लेमिन,

मैं अब न-स्क नामक पड़ाव पर हूँ। ग्लिवो को गाड़ी की खोज में गये हुए लगभग चार घंटे हो चुके हैं। यह स्थान बहुत छोटा है और मैं इस समय बिलकुल अकेला हूँ। किसी प्रकार समय व्यतीत करना ही है। अतः अभी थोड़ी देर पहले तक मैंने दीवारों पर लगे हुए, क्रान्ति से पूर्व के, महायुद्ध से भी पहले के विज्ञापनों तथा घोषणा-पत्रों को पढ़कर अपना मनोरंजन किया है। आधुनिक जीवन के ये नितान्त अनुरूप हैं। मैंने एक अत्यन्त चित्ताकर्षक यात्रा-सम्बन्धी पोस्टर भी देखा। तदनन्तर मैं घूमता हुआ स्थानीय 'शेका-विभाग' में जा पहुँचा। वहाँ क़लम-दावात देखकर मेरे हृदय में सहसा यह प्रबल इच्छा उत्पन्न हुई कि मैं उन भावों को जिन्होंने कुछ काल से मेरे अन्तस्तल में भीषण उथल-पुथल मचा रक्खी है, निष्कपट रूप से पत्र-द्वारा आप पर प्रकट कर दूँ। मैं अपने हृदय के गूढ़तम भाव आप ही को क्यों बताना चाहता हूँ, मुझे पूर्ण विश्वास है कि आप इस बात को पूरी तरह समझ जायँगे।

आपको स्मरण होगा कि कुछ काल पहले जब मैं किसी भी दल में सम्मिलित न हुआ था, आप न—स्की-डिवीज़न के राजनैतिक विभाग में, नवीन दल के अत्यन्त अनुभवी सदस्य तथा डिवीज़नल कमाण्डर होते हुए भी मुझसे घंटों बातचीत किया करते थे। मैं उस समय एक स्वमताभिमानी तथा धूर्त नवयुवक था, जिसके मस्तिष्क में शिक्षित-वर्ग के सभी मिथ्या विचार कूट कूटकर भरे हुए थे। परन्तु आप मेरी ऊल-जलूल दलीलों को कितने धैर्य्य तथा सहनशीलता के साथ सुना करते थे। अतः एक दिन आश्चर्यजनक चतुरता के साथ आपने मेरे निरर्थक सिद्धान्तों की पोल मुझ पर खोल दी और मार्क्स के सिद्धान्तों की ओर मुझे आकृष्ट किया। फिर धैर्य्य-पूर्वक साम्यवाद तथा वर्गद्वेष के मूल-सिद्धान्त मुझे हृदयङ्गम कराये। कदाचित् आप नहीं जानते कि इस सबके लिए मैं आपका कितना आभारी हूँ। यद्यपि मैं कुछ समय पश्चात्—सेना में प्रविष्ट होने के उपरान्त—आपके 'दल' में सम्मिलित हुआ, तथापि वास्तव में आपने ही मुझे साम्यवादी बनाया था।

जब सेना का अग्रभाग भंग कर दिया गया तब आपका तबादला शेका-विभाग में हुआ और मैं आपके पास काम करने लगा। आपके ही नेतृत्व में मैं एक उत्कट क्रान्तिकारी और कम्यूनिस्ट बना। इसी कारण मैं अपनी माता या किसी मित्र को (जो मुझसे प्रेम करते हैं) यह पत्र नहीं लिख रहा हूँ। चूँकि आप मेरे गुरु और नेता हैं और बिना आज्ञा के काम के घंटों में मैं आपके पढ़ने के कमरे में प्रवेश नहीं कर सकता, अतः मैं इस पत्र-द्वारा अपना हृदय आपके सामने खोलकर रख देने का कठिन प्रयास करता हूँ।

मेरी मृत्यु हो जाने के बाद ही यह पत्र आपको मिलेगा। मुझे इस भावी घटना की अनिवार्यता में कोई सन्देह नहीं प्रतीत होता। और यह मेरे लिए अच्छा ही है, क्योंकि मुझे अपना जीवन निस्सार मालूम होता है—क्योंकि मैं अब मनुष्य नहीं हूँ—केवल एक निरर्थक मांस-पिंड मात्र हूँ। मेरी आत्मा नितान्त शून्य हो गई है। अब मेरी यही हार्दिक इच्छा है कि मेरी मृत्यु से साम्यवाद को कुछ लाभ हो।

गत वर्ष, चारों ओर अनेक षड्यंत्रों का भेद खुलने के अनन्तर, एक दिन हम पाँच अफ़सरों को गोली मारने के लिए जंगल की ओर चले। जाड़ों की रात थी। बर्फ़ पड़ रही थी। चन्द्रमा मण्डलावेष्ठित था, जिससे उसकी सुन्दरता में चार चाँद लग गये थे। विमल ज्योत्स्ना में राजमार्ग के परिष्कृत पृष्ठ पर हमारी लारी दनदनाती हुई चली जा रही थी। लिज़ेविन हमारे साथ था। वह गोली मारने का दृश्य पहली बार देखने जा रहा था। अतः वह हृदय को वश में रखने के लिए अस्वाभाविक प्रसन्नता का ढोंग रच रहा था। वह बड़ी सजीवता

के साथ पहले आपसे और फिर मुझसे गपशप लड़ाता रहा। आपने उसके प्रश्नों के निश्चयात्मक एवं व्यावहारिक ढंग से उत्तर दिये, किन्तु आपके स्वर से इस बात का सूक्ष्म आभास मिलता था, मानो आप कह रहे हों—'लड़के' बनो मत। मैं भली भाँति जानता हूँ कि तुम्हारे होश-हवास ठीक नहीं हैं। मैं उसके प्रश्नों के उत्तर में केवल 'हाँ' 'न' करता रहा। बातचीत करने की मेरी इच्छा ही नहीं थी। दिन भर काम करने के बाद मैं बहुत थका हुआ था। मैं उस मनोहर नीली तुषारमयी रजनी की शान्ति में सानन्द विश्राम कर रहा था। हाँ, यदा-कदा मैं पीछे मुड़कर लारी के अन्तर्भाग में बैठे हुए अपराधियों की ओर दृष्टिपात कर लेता था। उन नवयुवकों की व्यथित मुद्रा देखकर मेरी आँखों के सामने भावी घटना का चित्र आ जाता था। तथापि इस प्रकार के दृश्य देखने का मेरा यह प्रथम अवसर नहीं था।

कुछ समय के पश्चात् हम एक वन में पहुँचे। उसके मध्य में एक प्राचीन कैथोलिक मठ के खँडहर थे। चारों ओर असंख्य हिमसिक्त तरुपंक्तियाँ थीं। रात्रि में यह ऐंद्रजालिक दृश्य एक अनन्त दुःस्वप्न-सा प्रतीत होता था। ऐसा जान पड़ता था, मानो यमदूत पैशाचिक नृत्य कर रहे हों। कहीं कहीं वृक्षश्रेणियों के मध्य में रिक्त स्थान भी थे, जहाँ से मनोहर नीलवर्ण वनवीथियाँ दृष्टिगोचर होती थीं।

हम एक पगडंडी से होकर एक गुल्म में पहुँचे। यहाँ एक पुरानी, त्यक्त, पत्थर की खान थी। यह रिक्त पाषाण-आकर हिमबद्ध होते हुए भी एक काफ़ी गहरा अन्धकूप था।

चारों ओर निस्तब्धता छाई हुई थी।

अपराधी भी शान्तिपूर्वक मृत्यु की प्रतीक्षा कर रहे थे।

मैंने एक तटस्थ निरपेक्ष मनुष्य की भाँति उनके अन्तिम भावों पर कुछ ध्यान नहीं दिया। जिस दिन मैंने 'शेका' में पदार्पण किया था, उसी दिन से मैंने ऐसे दृश्यों को अनिवार्य-सा स्वीकार कर लिया था। मैं यह पहले से ही जानता था कि मेरे जीवन में ऐसे अवसाद-पूर्ण अवसर अवश्य आयँगे जब कि हम लोगों को अनाथ शस्त्रहीन लोगों को अपनी गोलियों का शिकार बनाना पड़ेगा। परन्तु मैं अभी तक यही समझ रहा था कि गोलियों की एक घनी बाढ़ छूटेगी और सारा झंझट समाप्त कर देगी। निकटवर्ती भूर्जवृक्षों से हिमकण धूलिसम उड़ेगा और पाँच निर्जीव मानवशरीर उस अन्धकारमय गर्त में विलुप्त हो जायँगे। तत्पश्चात् हम लोग कालरात्रि का भीषण मूक गान सुनते हुए घर लौट आयँगे।

परन्तु जैसा मैं सोच रहा था, वैसा हुआ नहीं।

"कपड़े उतारो, नागरिको।" धीमे स्वर में आपने कहा।

अपराधियों ने आश्चर्य से एक-दूसरे की ओर दृष्टि डाली।

उनमें से एक ने अपनी समूर की खाल की जाकट उतार डाली। दूसरों ने भी उसका अनुकरण किया।

"यह नहीं, सब कपड़े उतारने होंगे।" आपने कहा—"बिलकुल नग्न दशा में तुम्हें गोली मारी जायगी।" मानो हमारी जानकारी के लिए आपने दृढ़ता एवं स्पष्टता-पूर्वक कहा।

हमारे सभी साथी विकट मौन धारण किये हुए खड़े थे, मानो वे आपके आदेश को भले प्रकार समझते और उससे सहमत थे, और नग्न मनुष्यों को उस भीषण शिशिर की दारुण रात में व्यग्रता के साथ गोली से उड़ा देने को उतावले हो रहे थे। चारों ओर सन्नाटा छाया हुआ था—केवल हमारी लारी के इंजन का मन्द स्वर दूर से सुनाई पड़ रहा था।

अपराधियों ने इस आज्ञा का निषेध करना आरम्भ कर दिया। क्या आपको इसका स्मरण है? एक ने कहा था कि मरण-यंत्रणा को कम से कम कर देना चाहिए; दूसरे ने कहा था कि यह एक उपहास है। उनमें से एक वृद्ध स्कूलमास्टर था। वह यह आज्ञा सुनकर सहसा शिशुसम क्रन्दन करके कहने लगा—"नग्न करना बुरा है। मुझे जूड़ी आती है!" उसका क़द लम्बा था, उसकी दाढ़ी सफ़ेद थी। उसके कन्धे ढलवाँ थे। मैं जानता था कि वह एक गुप्तचर है, अपने शिष्यों के भेद खोलकर उसने उन्हें दंडित कराया था और साम्राज्य की इस सेवा के पुरस्कार-स्वरूप उसको सम्मानपत्र तथा पदक मिले थे। मैं यह भी जानता था कि वह हमारा जानी दुश्मन है। फिर भी उसके रोने पर मेरा शरीर कम्पित

हो उठा, मानो मुझे ही नग्न होना हो। तत्पश्चात् लेज़विन ने अवरुद्ध स्वर में आपसे कहा—"बन्धुवर क्लेमिन, आपको ऐसा करना उचित नहीं है। आपको उनका उपहास करना शोभा नहीं देता। आखिर आप क्यों ...?" उसका स्वर अश्रुपूर्ण था।

हमारे एक साथी ने क्रुद्ध होकर उसको गालियाँ भी दीं।

"कपड़े इस प्रकार नष्ट नहीं होने दिये जायँगे।" आपने कहा—"वे प्रजातंत्र के काम आयँगे। एक ही क्षण पश्चात् इन लोगों को उनकी आवश्यकता न रह जायगी।" आपने लेज़विन से अत्यन्त मन्द स्वर में कहा—"आज्ञा-उल्लंघन को प्रोत्साहन न दो। जाओ, लारी पर जाकर हमारी प्रतीक्षा करो।"

अब अपराधी समझ गये कि कपड़े उतारने ही होंगे। उन्होंने ठिठुरे हुए वृक्षों के ठूँठों पर बैठकर जूते, बिरजिसें आदि सभी कपड़े उतार डाले। भूर्जवृक्षों की हरित पारदर्शी छाया में उनके शरीर पांडु-हरित-से दिखाई दे रहे थे, मानो वे किसी मनोहर झील के विमल जल में झलक रहे हों। चाँदनी में अन्य लोगों के शरीर नील-श्वेत वर्ण के प्रतीत होते थे।.. ओह! यह कैसा घोर अचिन्त्य, विकराल, मूक दृश्य था! कैसा भयानक अप्रतिम दुःस्वप्न! मानवात्मा को भस्मीभूत कर देनेवाला नारकीय दृश्य!

ग्रीष्म-ऋतु में कितनी ही बार मैंने इस स्थान को देखा था। देवदारु के उस पुराने और फटे हुए वृक्ष को मैं पहले से ही जानता था। उसकी डाली डाली से परिचित था। उसकी जड़ पर जो कुल्हाड़ी के गहरे आघात थे, मैं उनको भी खूब पहचानता था।

बात यह थी कि मुझे उस वृद्ध से कुछ प्रेम-सा हो गया था। परन्तु उस रात को न-जाने क्यों वह मुझे एक अपरिचित तथा वैरी-सा प्रतीत हो रहा था। इस अपरिचितता एवं द्वेष के साथ मेरे मन में माता-सम्बन्धी एक दुःस्वप्न सम्बद्ध है। वह भयावह क्षण जब कि स्वप्न-जगत् में मैं माता के साथ खड़ा था और घोर विपत्ति में मेरे हाथ फैला-फैलाकर सहायता माँगने पर भी मेरी निर्मम माता शान्त तथा तटस्थ भाव से मेरी दुर्दशा देखती रही.... तुषार-वृष्टि के मध्य इन अपराधियों के कपड़े उतारने ने मेरी आँखों के सामने गर्मी के दिनों में झील में स्नान करने का चित्र ला उपस्थित किया। यह एक विषम संसर्ग था और मैं समझता हूँ कि मेरे विच[illegible] भ्रान्त थे। अतः यह अच्छा ही हुआ कि गोलियों की [illegible] बाढ़ ने मेरी कल्पनाओं का सदैव के लिए अन्त [illegible] दिया।

क्या आपको स्मरण है कि मैं इस हत्याकाण्ड से [illegible] कैसा था? क्या आपको याद है, मैं कैसे अदम्य उत्सा[illegible] के साथ शेका का कार्य करने को लालायित रहा करता [illegible] और उस पर मुझको कितना गर्व था? अनुसन्धान रजिस्टर में कारावास-सम्बन्धी फ़ार्मों पर मैं कैसे प्रस[illegible] चित्त से हस्ताक्षर कर देता था और मृत्युदण्ड के वारण[illegible] को कैसा बेधड़क होकर सम्पादित किया करता था! [illegible] क्यों? इसी लिए कि मेरा यह पूर्ण विश्वास था औ[illegible] अब भी है कि रुधिर की नदियाँ प्रवाहित किये बिना उ[illegible] विषम स्थिति का अन्त न हो सकेगा जिसमें आज सम[illegible] संसार जकड़ा हुआ है। इसी लिए कि मुझे जनता [illegible] दुर्दशा पर दया आती थी, मैं उसकी पीड़ा से पीड़ित था[illegible] किन्तु मैं यह भी जानता था कि क्रान्ति के शत्रुओं [illegible] विनाश ही साम्यवाद के मार्ग को अकंटकाकीर्ण क[illegible] सकेगा। यही मेरी बाह्य निष्ठुरता का वास्तवि[illegible] कारण था। और मेरा पूर्ण विश्वास है कि प्रत्येक साम्य[illegible] वादी पर यह सत्य लागू होता है।

मुझे आशा है कि शीघ्र ही वह समय आयेगा जब यह महान् मानवीय समवेदना संसार के प्राणियों को सुखी[illegible] तथा उनके समस्त जीवन को आलोकित करेगी। उस[illegible] समय मनुष्य एक-दूसरे की पीड़ा से वस्तुतः पीड़ित होंगे[illegible] एक दिन ऐसा होगा अवश्य। परन्तु इस समय तो उस महान् उद्देश्य की पूर्ति के लिए ही दया को द्वेष का [illegible] धारण करना होगा। और उस रात्रि के वध तक मैं ऐसा करने में समर्थ भी रहा।

परन्तु उस दिन उन लोगों का रुधिर मानो मेरे हृदय में आकर भर गया। मैं उनको किसी भी प्रकार विस्मृत नहीं कर सकता—चाँदनी में उनके कपड़े उतारने को, उनकी कपकपी, उनके नग्न शरीरों को, गोलियों की आवाज़ और उनकी कराह को—वह दृश्य मैं कदापि भूल नहीं सकता!... पत्थर की खान को प्रतिध्वनित करनेवाला वह उनका आर्त्तनाद! चाहे आप उसको

कायरता ही क्यों न समझें, किन्तु आप यह समझ लीजिए कि उनके कपड़े उतारते समय मैं यही अनुभव कर रहा था कि मैं स्वयं कपड़े उतार रहा हूँ, मेरे ही शरीर पर पाला पड़ रहा है, मेरे ही स्नायु तथा हड्डियों को गोलियाँ छेद रही हैं—और वह भीषण हृदय-विदारक चीत्कार मेरी ही आहत अन्तरात्मा से निकल रहा है!

तदनन्तर मृत्यु-दण्ड-आज्ञा-पत्र पर हस्ताक्षर करने में मैं इतना कुशल नहीं रहा। मेरी दृष्टि अपराधियों की आँखों, उनके हाथों और मुख की झुर्रियों पर घूमा करती थी। मेरे सम्मुख मेरे शत्रु खड़े होते थे, किन्तु यह सोचे बिना मैं न रह सकता था—"क्या मेरा ही हाथ इनका प्राणान्त करेगा?"

अब मेरी घृणा का अन्त हो गया है। फिर भी मैं चेका को छोड़ नहीं सकता, क्योंकि मैं समझता हूँ कि चेकिस्ट का कार्य वास्तव में क्रान्तिपूर्ण तथा आधुनिक काल में अपरिहार्य है।

अतः मेरा मर जाना ही उत्तम है, और जब मैं अन्तिम शान्ति से पूर्व मृत्यु-यंत्रणा में छटपटाऊँगा तब मैं यही समझूँगा कि मैं उन अगणित प्राणियों का स्मरण कर रहा हूँ जिनका यंत्रणा देकर वध मैंने स्वयं किया है।

कदाचित् यह केवल क्षणिक दुःख ही हो! सम्भव है कि जो कार्य मेरे सामने है उसमें लग जाने पर मैं पुनः कठोर, दृढ़ एवं बलवान् हो जाऊँ। इसी बात पर मेरा जीवन-मरण निर्भर होगा।

साम्यवादी के लिए प्रत्येक दिवस एक जटिल समस्या, एक घोर परीक्षा है। हम सभी में अभी तक प्राचीनता की ओर एक प्रबल झुकाव विद्यमान है। हम नवयुवक साम्यवादियों का तो कहना ही क्या, कुछ इने-गिने व्यक्तियों को छोड़कर इस मार्ग पर अविचल रहना अनुभवी सदस्यों के लिए भी यदि असम्भव नहीं तो अत्यन्त दुःसाध्य अवश्य है। हममें से अधिकतर को प्राचीन प्रवृत्तियाँ कभी न कभी द्रवीभूत कर ही लेती हैं, जिसके परिणाम-स्वरूप हमारी आँखें और कान बहक जाते हैं और हमारे मस्तिष्क स्तम्भित हो जाते हैं। अतः हर एक साम्यवादी को फूँक-फूँक कर क़दम रखना होगा, जिसमें वह सत्पथ से विचलित न हो जाय अथवा भ्रष्ट होकर विपरीत आचरण न करने लग जाय। मैं टालस्टाय के अश्रुमुखी मनस्वी वर्ग में सम्मिलित होना नहीं चाहता। ... अतः मैं तीव्र शारीरिक तथा मानसिक यातना, सम्भवतः घोरतम मृत्यु-यंत्रणा के द्वारा अपनी परीक्षा करूँगा। ऐसा करने से या तो मेरा पुनरुत्थान होगा और मैं पुनः शक्तिशाली हो जाऊँगा अथवा ...

कदाचित् दुर्बलता के कारण मैं रणक्षेत्र से चिर-विश्राम ग्रहण कर लूँ। फिर भी मैं यह जानता हूँ कि आप, दल के मूलाधार एवं प्राण, अपने पर ध्रुवसम अविचल रूप से खड़े हैं और यह कि संघर्ष बराबर चला जा रहा है। अन्त में साम्यवाद की विजय अवश्य होगी और उसका प्रचार सारे संसार में होगा।

आप दीर्घजीवी हों और कार्य कुशलता-पूर्वक करते रहें।

शुभ कामनाओं के साथ,
आपका
एस० मुरीको

(एक रूसी कहानी का भावानुवाद)

भारत में दूध तथा घी की सहकारी समितियाँ

लेखक, श्रीयुत शंकरसहाय सक्सेना, एम० ए०, बी० काम०

रतवर्ष में दूध और घी का खाद्य-पदार्थ की दृष्टि से कितना महत्त्व है, यह किसी से छिपा नहीं है। अधिकांश भारतवासी मांस तथा अंडा नहीं खाते और जो खाते भी हैं उन्हें यथेष्ट मांस और अंडे खाने को नहीं मिलते। अतएव भारतवासियों के स्वास्थ्य के लिए दूध नितान्त आवश्यक खाद्य पदार्थ है। यही कारण है कि हिन्दू गाय के प्रति इतनी अधिक भक्ति प्रदर्शित करते हैं। किन्तु भारतवर्ष में आज शुद्ध घी और शुद्ध दूध मिलना लगभग असम्भव हो गया है। एक बात ध्यान में रखने की है। जहाँ दूध में शरीर और मस्तिष्क को पुष्ट करने के अद्भुत गुण मौजूद हैं, वहाँ अशुद्ध दूध और मिलावटी घी में मनुष्य के जीवन के क्षीण करने के भयंकर दुर्गुण भी विद्यमान हैं। भारतवर्ष में जो आज क्षय-रोग तथा अन्य भयंकर रोगों का भीषण प्रकोप है उसका एक मुख्य कारण मिलावटी घी और अशुद्ध दूध भी है। संसार के अन्य देशों में दूध और मक्खन कितना उत्तम और शुद्ध मिलता है, इसकी हम भारतवासी जो गन्दे दूध के पीने और मिलावटी घी के खाने के अभ्यस्त हैं, कल्पना भी नहीं कर सकते। डेनमार्क, स्वीडन, फ़िनलैंड, हालैंड, आयरलैंड, स्विटज़रलैंड, कनाडा, आस्ट्रेलिया तथा न्यूज़ीलैंड में जो दूध और मक्खन का धंधा अत्यधिक उन्नत दशा में है उसका बहुत कुछ श्रेय वहाँ की डेयरी-सहकारी समितियों को है। डेयरी-सहकारी-समितियों के प्रयत्न का ही यह फल है कि इन देशों में आवश्यकता से अधिक दूध और मक्खन उत्पन्न होता है और इन देशों का मक्खन अन्य देशों के बाज़ारों में अच्छे दामों पर बिकता है। डेनमार्क का तो यह मुख्य धंधा ही है।

किन्तु भारतवर्ष जहाँ के भोजन में दूध और घी अत्यन्त आवश्यक खाद्य पदार्थ हैं, वहाँ अभी तक इस धंधे की उचित व्यवस्था करने की ओर किसी ने भी ध्यान नहीं दिया। पशुओं की गणना के अनुसार भारतवर्ष में संसार के प्रत्येक देश से अधिक दूध देनेवाले पशु हैं। डाक्टर एन० सी० राइट ने पशु तथा दूध के धंधे की उन्नति के सम्बन्ध में जो रिपोर्ट तैयार की थी उसमें उन्होंने हिसाब लगाया था कि भारतवर्ष में वर्ष भर में ८० करोड़ मन दूध उत्पन्न होता है, जिसका मूल्य लगभग ३०० करोड़ रुपया होता है। संसार में केवल संयुक्त-राज्य (अमरीका) ही ऐसा देश है जहाँ भारतवर्ष से अधिक दूध उत्पन्न होता है। डेनमार्क में जो संसार में अपने मक्खन के लिए विख्यात है, भारतवर्ष का एक चौथाई दूध उत्पन्न होता है। परन्तु इससे यह समझ लेना भूल होगी कि भारतवर्ष में दूध की बहुतायत है। भारतवर्ष में प्रतिमनुष्य प्रतिदिन दूध की उत्पत्ति ३½ छटाँक के लगभग होती है जब कि डेनमार्क में १४८ पौंड, और न्यूज़ीलैंड में २४४ पौंड प्रतिमनुष्य प्रतिदिन दूध उत्पन्न होता है। ऊपर दिये हुए आँकड़ों से यह स्पष्ट हो जाता है कि भारतवर्ष में प्रतिमनुष्य दूध की उत्पत्ति का औसत बहुत ही कम है।

यह तो पहले ही कहा जा चुका है कि भारतवर्ष में प्रतिवर्ष दूध की उत्पत्ति लगभग ८० करोड़ मन है, परन्तु इससे यह अनुमान लगा लेना कि यह ८० करोड़ मन दूध भारतवासियों को पीने को मिल जाता है, भूल होगी। इसी ८० करोड़ मन दूध में घी तैयार होता है, खोया, रबड़ी, दही तथा अन्य पदार्थ बनते हैं। शेष पीने के काम में आता है। मोटे हिसाब से भारतवर्ष में प्रतिवर्ष २ करोड़ ३० लाख मन घी उत्पन्न होता है, और २ करोड़ ३० लाख मन घी उत्पन्न करने के लिए लगभग ४० करोड़ मन दूध की आवश्यकता होगी। खोया, रबड़ी और दही बनाने में कितना दूध खर्च हो जाता है, इसके प्रामाणिक आँकड़े हमारे पास नहीं हैं, किन्तु अनुमान से १५ करोड़ मन दूध इन पदार्थों के बनाने में जरूर लगता होगा। अतएव भारतवासियों को पीने के लिए वर्ष में केवल २५ करोड़ मन दूध शेष रहता है। अर्थात् प्रतिदिन प्रतिमनुष्य एक छटाँक दूध का औसत आता है। वास्तव में यदि देखा जाय तो मिलिटरी छावनियों तथा शहरों में ही दूध पीने के काम में आता है। गाँवों में दूध पिया नहीं जाता। निर्धन किसान दूध, घी या खोया

पर्वतपुर सहयोग-समिति के मवेशियों का दूध दुहने के बाद तौला जा रहा है

बेंच कर अपना निर्वाह करता है। उसको तथा उसके बच्चों को तो दूध देखने को भी नहीं मिलता। हाँ, छाँछ वह अवश्य अपने खाने के काम में लाता है।

भारतवर्ष में दूध तथा घी के धंधे की उन्नति करने के लिए निम्नलिखित समस्याओं को हल करना होगा—

(१) दूध देनेवाले पशु अर्थात् गाय और भैंस की नस्ल का सुधार करना होगा, जिससे गायों और भैंसों से अधिक दूध उत्पन्न किया जा सके।

(२) दूध तथा घी उत्पन्न करनेवालों (अर्थात् किसानों) को दूध तथा घी के व्यापारियों की आर्थिक दासता से बचाना होगा। इस समय इस धंधे की दशा अत्यन्त शोचनीय है। दूध तथा घी के व्यापारी किसानों को भैंस अथवा गाय लेने के लिए कुछ क़र्ज़ दे देते हैं और उसके फल-स्वरूप मनमाने दामों पर उनका दूध और घी लेते हैं। इस क़र्ज़ पर ब्याज नहीं लिया जाता। यदि किसान इनके क़र्ज़दार न भी हों तो भी उन्हें बहुत सस्ते दामों पर अपना दूध या घी इन व्यापारियों के हाथ बेंचना पड़ता है।

(३) दूध तथा घी में मिलावट को रोकना होगा। अशुद्ध दूध तथा मिलावटी घी ने शुद्ध दूध तथा शुद्ध घी के बाज़ार को चौपट कर दिया है।

जब तक ऊपर लिखी हुई समस्यायें हल नहीं होतीं तब तक इस धंधे की दशा सुधर नहीं सकती। हमारे देश में किसानों के लिए यह धंधा बहुत महत्त्वपूर्ण है। यह उनका मुख्य सहायक धंधा है। इससे वे खेती से होनेवाली आमदनी की कमी को पूरा करते हैं। अतएव इस धंधे की ओर हमारी दृष्टि बहुत पहले ही जानी चाहिए थी। खेद की बात है कि हमारे देश में इस धंधे को सहकारी समितियों के द्वारा संगठित करके उन्नत करने का प्रयत्न नहीं किया गया।

डेनमार्क, न्यूज़ीलैंड, आयरलैंड तथा अन्य देशों में भी एक समय उपर्युक्त समस्यायें उपस्थित थीं, परन्तु सहकारी-डेयरी-समितियों की स्थापना से वे समस्यायें सफलतापूर्वक हल कर ली गईं और आज वहाँ दूध और मक्खन का धंधा बहुत उन्नत अवस्था में है। कुछ वर्षों से भारत के कुछ प्रान्तों में सहकारिता-विभाग का ध्यान इस धंधे की ओर गया है और थोड़े से दूध-सहकारी-यूनियन स्थापित भी हुए हैं। इसके अतिरिक्त संयुक्त-प्रान्त में घी-सहकारी-समितियों की स्थापना की गई है। अभी वह इस दिशा में प्रारम्भिक प्रयोग हैं, फिर भी इनका महत्त्व कम नहीं है।

भारतवर्ष की प्रमुख दूध-सहकारी समितियाँ

भारतवर्ष में कलकत्ता-सहकारी दूध-समिति सबसे बड़ी और महत्त्वपूर्ण दूध-सहकारी समिति है। कलकत्ता जैसे विशाल नगर में प्रतिवर्ष लगभग १३ लाख मन दूध की खपत होती है। कलकत्ता के समीपवर्ती गाँवों से ही यह दूध आता है। पेशेवर घोसी जिनका मुख्य धंधा गाँववालों से दूध लेकर शहर में बेचना है, कलकत्ता-निवासियों को दूध देते हैं। किन्तु दूध पीनेवाले तथा दूध उत्पन्न करनेवाले किसानों दोनों के लिए ही ये एक अभिशाप के समान हैं। दूध उत्पन्न करनेवाले किसान तो इन घोसियों के आर्थिक दास होते हैं। साथ ही ये लोग

जिस गन्दे ढंग से दूध को कलकत्ता ले जाकर बेचते हैं तथा उसमें जो मिलावट करते हैं उसके कारण दूध अत्यन्त दूषित और रोग-कीटाणु-युक्त हो जाता है। प्रातःकाल कलकत्ते के समीपवर्ती स्टेशनों पर देखिए। ये घोसी पीतल के बड़े बड़े कलसों में वह दूषित दूध लिये हुए ट्रेन की प्रतीक्षा में खड़े दिखाई देंगे।

आज से लगभग २० वर्ष हुए, बंगाल के तत्कालीन रजिस्ट्रार श्री जे० टी० डोनोवन और राय बहादुर जे० एम० मित्र ने कलकत्ता के समीपवर्ती गाँवों का सहकारी समितियों का संगठन करने के उद्देश्य से भ्रमण किया था, किन्तु उन्हें कुछ भी सफलता न मिली। अपने उस दौरे में वे एक दिन एक ऐसे गाँव में पहुँचे जहाँ के किसानों ने अपने घोसी का इसलिए बहिष्कार कर दिया था कि वह गाँववालों के बहुत प्रार्थना करने पर भी उनके भोज में सम्मिलित नहीं हुआ था। गाँव के किसानों ने घोसी का बहिष्कार तो कर दिया था, किन्तु दूध की निकासी का उन्हें कोई भी उपाय नहीं सूझ रहा था। श्री डोनोवन महोदय ने इस अनुकूल अवसर को हाथ से जाने देना उचित नहीं समझा और शीघ्र ही वहाँ एक दूध-सहकारी समिति की स्थापना कर दी। क्रमशः समीपवर्ती अन्य गाँववालों ने जब देखा कि समिति की स्थापना से दाम अच्छे मिलते हैं तब सहकारिता-विभाग ने उन गाँवों में भी सहकारी-दूध समितियाँ स्थापित कर दीं। अभी तक इन समितियों का दूध कलकत्ते में फुटकर बिकवाया जाता था, किन्तु अधिक समितियाँ स्थापित हो जाने पर कलकत्ते में एक दूध-सहकारी समिति-यूनियन की स्थापना की गई, जो गाँवों की दूध-समितियों के दूध की बिक्री का प्रबन्ध करती है तथा अपने से सम्बन्धित दूध-समितियों की देखभाल करती है। आज इस यूनियन से १२३ ग्राम-समितियाँ सम्बन्धित हैं, जिनके लगभग ८,००० सदस्य हैं। इस समय यह यूनियन प्रतिवर्ष लगभग ४०,००० मन दूध कलकत्ता नगर में बेचता है। प्रतिदिन के दूध का औसत लगभग १०३ मन है। यूनियन प्रत्येक गाँव में अपना एक कर्मचारी रखता है, जिसकी देख-रेख में दूध दुहा जाता है। समीपवर्ती कई गाँवों में एक दूध-डिपो है, जहाँ यूनियन का डिपो-मैनेजर रहता है। वह दूध की परीक्षा
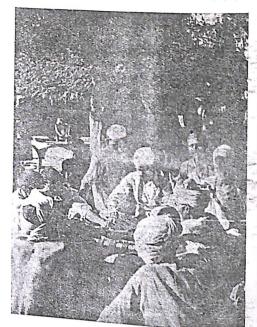
मेम्बरों को दूध का मूल्य दिया जा रहा है

करता है। फिर वह उस दूध को भाफ के द्वारा शुद्ध किये हुए बर्तनों में कलकत्ता भेज देता है। कलकत्ता में यूनियन की डेयरी है, जहाँ दूध की फिर जाँच होती है। यूनियन का निज का Pastervrising Plant (दूध गरम करने का प्लांट) है, जिसमें दूध आध घंटे तक (१४६° फ़ा०) गरमी में रक्खा जाता है और फिर शीघ्र ही ४०° फ़ा० की गरमी तक ठंडा करके बोतलों में भर दिया जाता है। इस प्रकार गरम किये हुए दूध में रोग-कीटाणु नहीं रहते, साथ ही दूध में पाये जानेवाले पदार्थ बिलकुल नष्ट भी नहीं होते।

उक्त दूध-सहकारी यूनियन सम्बन्धित समितियों के सदस्यों को पशु ख़रीदने के लिए ऋण भी देता है। वह पशुओं को उन्नति करने के लिए अच्छे नस्ल के साँड़ मोल लेकर गाँवों में रखता है। प्रान्तीय सरकार ने एक पशु चिकित्सक यूनियन को दे रक्खा है। यह पशु-विशेषज्ञ किसानों के पशुओं की देखभाल करता है। पशुओं को किस प्रकार पालना चाहिए, उन्हें रोगों से
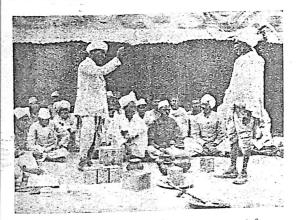
घी-सोसायटी की पंचायत मेम्बरों से घी इकट्ठा कर रही है

किस प्रकार बचाना चाहिए और उनका दूध किस प्रकार बढ़ाना चाहिए, इत्यादि आवश्यक बातों का वह समितियों के सदस्यों में प्रचार करता है तथा समितियों के सदस्यों के पशुओं का निरीक्षण करता रहता है। यूनियन ने पशुओं के लिए शुद्ध जल की व्यवस्था करने के उद्देश्य से उन गाँवों में कुएँ खुदवाये हैं जहाँ जल का अभाव था।

इस प्रकार सहकारी समितियों का संगठन करने का यह फल हुआ है कि दूध लेनेवालों तथा दूध उत्पन्न करनेवालों दोनों को लाभ हुआ है। जब दूध-सहकारी यूनियन की स्थापना हुई थी उस समय कलकत्ते में १३ रुपया मन दूध बिकता था। यूनियन की स्थापना से दूध का भाव १० रुपया मन हो गया है। यही नहीं कि यूनियन ने दूध के मूल्य को घटाया है, वरन यूनियन शुद्ध तथा उत्तम दूध भी देता है। इसके अतिरिक्त दूध उत्पन्न करनेवाले किसानों को अपने दूध का पहले से अधिक मूल्य मिलता है। घोसी को क्षेत्र से हटा देने से दूध लेनेवालों और दूध उत्पन्न करनेवालों दोनों का लाभ हुआ है।

यूनियन अपनी दूध की गाड़ियों के द्वारा दूध बेचता है। व्यक्तिगत खरीदारों के अतिरिक्त यूनियन सरकारी अस्पतालों तथा कारपोरेशन के शिशु-गृहों को दूध देता है। यह ध्यान में रखने की बात है कि अभी तक यूनियन कलकत्ता शहर की केवल ३ प्रतिशत माँग को ही पूरा कर पाया है, अतएव उसे भविष्य में अपने कारबार को बढ़ाने का अपरिमित क्षेत्र है। किन्तु जब तक कारपोरेशन पानी मिले हुए घोसियों के दूध की बिक्री को कड़ाई के साथ नहीं रोकता तब तक यूनियन के लिए कलकत्ता नगर की सारी माँग को पूरा कर सकना कठिन है।

मदरास-सहकारी-दूध यूनियन

मदरास-सहकारी-दूध यूनियन से २० दूध-सहकारी समितियाँ सम्बन्धित हैं, जो मदरास के उत्तर के समीपवर्ती गाँवों में स्थापित की गई हैं। यूनियन प्रतिदिन मदरास शहर में अपने ३७ दूध-भांडारों से लगभग १०० मन दूध बेचता है। इन भांडारों के अतिरिक्त यूनियन अपने नौकरों के द्वारा घरों पर भी अपने ग्राहकों को दूध देता है। प्रातःकाल गाँवों से यूनियन की मोटरलारियाँ समितियों का दूध लेकर आती हैं। प्रत्येक गाँव में एक प्रबन्धक अपने सामने सदस्यों के पशुओं को दुहवाता है। दूध दुह चुकने के उपरान्त उसे तुरन्त ही भाफ से साफ़ किये हुए बर्तनों में रखकर मुहर लगा दी जाती है और मोटरलारी के द्वारा मदरास भेज दिया जाता है। मदरास में यूनियन के दूध गरम करने के प्लांट में वह दूध शुद्ध किया जाता है और बोतलों में बन्द करके बिकने के लिए भेजा जाता है।

मदरास-दूध-सहकारी यूनियन यद्यपि अपने दूध को शहर के घोसियों की अपेक्षा सस्ता तो नहीं बेंच सका है, तो भी वह उनकी तुलना में बहुत अच्छा और शुद्ध दूध देता है। हाँ, किसानों को अब जो दूध का दाम मिलता है वह उससे कहीं अधिक है जो दूधवाले उन्हें देते थे। यूनियन को अपने कारबार के बढ़ाने के लिए अपरिमित क्षेत्र है, क्योंकि अभी तो वह शहर की ५ प्रतिशत माँग को ही पूरा कर पाता है।

नागपुर की तलिन खरी-सहकारी डेयरी-समिति

यह समिति कलकत्ता और मदरास की भाँति गाँव की दूध-समितियों का यूनियन नहीं है, वरन एक बड़ी दूध-समिति है। इस समिति के सदस्यों के पास लगभग ७५० पशु हैं और समिति लगभग २५ मन दूध प्रतिदिन नागपुर में बेचती है। समिति ने सरकार से चरागाह

भूमि का पट्टा ले लिया है, जिसमें पशु चरते हैं। वे पशु सरकारी कर्मचारियों की देख-रेख में दुहे जाते हैं। समिति मुहर लगे हुए बर्तनों में दूध ग्राहकों के घरों पर पहुँचाती है।

लखनऊ-दूध-सहकारी यूनियन

लखनऊ के समीपवर्ती गाँवों में कुछ वर्ष हुए सहकारिताविभाग ने दूध सहकारी समितियाँ स्थापित की थीं। लखनऊ से १५ मील दूर बख्शी का तालाब नामक ग्राम के आस-पास के गाँवों में २२ दूध-समितियाँ हैं, जिनका दूध यूनियन लखनऊ नगर में बेचता है। क्रमशः अधिकाधिक समितियाँ स्थापित की जा रही हैं। इस समय यूनियन लगभग ३० मन दूध प्रतिदिन बेचता है। यूनियन के पास अपनी लारी है, जो गाँवों से दूध लाती है। यूनियन ने अपने सदस्यों के लिए हिसार की गायें खरीदी हैं। इस सहकारी-यूनियन के संगठन से गाँववालों को बहुत लाभ हुआ है।

इन चार प्रमुख दूध सहकारी संगठनों के अतिरिक्त प्रत्येक प्रान्त में कुछ न कुछ दूध-सहकारी-समितियाँ स्थापित हो चुकी हैं। बंगाल में कलकत्ता के अतिरिक्त ढाका, दार्जिलिंग, चटगाँव और नौगाँव की, मदरास में कोयम्बटूर की तथा बम्बई की सात दूध-सहकारी समितियाँ उल्लेखनीय हैं। परन्तु ऊपर वर्णित चार प्रमुख दूध-सहकारी-संगठनों के अतिरिक्त शेष या तो सफल नहीं हुई अथवा वे प्रारम्भिक अवस्था में ही हैं।

संयुक्तप्रान्त की घी-सहकारी समितियाँ

यह तो पहले ही कहा जा चुका है कि भारतवर्ष में लगभग २ करोड़ ३० लाख मन घी प्रतिवर्ष उत्पन्न होता है। मोटे हिसाब से प्रतिवर्ष भारतवर्ष का किसान घी बेचकर एक अरब रुपया कमाता है। मिस्टर राइट ने अपनी रिपोर्ट में लिखा है कि बाज़ार में शुद्ध घी मिलना कठिन हो गया है। भारत-सरकार के स्वास्थ्य-विभाग के कमिश्नर ने लिखा है कि भारतवर्ष में दूध और घी सर्वत्र मिलावट का मिलता है। सरकारी कर्मचारियों के द्वारा घी और दूध की जाँच की गई है और उसमें ७३ प्रतिशत घी में और ५० प्रतिशत दूध में मिलावट
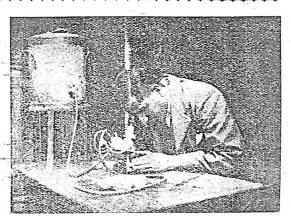
रिफ्रेक्टो द्वारा घी की शुद्धता की जाँच

पाई गई है। इस पर भी किसानों को घी का उचित मूल्य नहीं मिलता है। अनुसंधान से ज्ञात हुआ है कि घी के व्यापारी किसान को बाज़ार-भाव से ३० से २५ प्रतिशत मूल्य कम देते हैं।

संयुक्त प्रांत के पश्चिमी ज़िलों (इटावा, एटा, मैनपुरी, आगरा, अलीगढ़, मेरठ और बुलन्दशहर) में घी बहुत उत्पन्न होता है। यहाँ से घी कानपुर, कलकत्ता तथा रंगून इत्यादि बड़े बड़े व्यापारिक केन्द्रों को भेजा जाता है। कुछ वर्ष हुए संयुक्त-प्रांत के सहकारिता-विभाग ने घी-सहकारी समितियों की स्थापना करना आरम्भ किया। इस समय प्रान्त के उपर्युक्त ज़िलों में लगभग ४०० घी-सहकारी समितियाँ स्थापित की जा चुकी हैं। इन समितियों ने पिछले वर्ष ५,५०० मन घी बेचा।

घी-समितियों का संगठन इस प्रकार है—प्रत्येक गाँव में एक घी-समिति स्थापित की जाती है। जिस किसान के पास गाय अथवा भैंस हो वह उसका सदस्य बन सकता है। समिति के सदस्य अपने में से एक पंचायत का चुनाव करते हैं, जो सहकारिता-विभाग के प्रबन्धक की सहायता से कार्य-संचालन करती है। जैसे ही समिति के किसी सदस्य की भैंस ब्याई, समिति उससे सौदा कर लेती है कि वह १ या २ मन घी (जैसी भी भैंस हो) समिति को प्रति भैंस देगा। समिति सदस्य को सारे घी का रुपया पेशगी दे देती है और घी का मूल्य बाज़ार-

घी के यूनियन में शुद्ध घी का मोल लेनेवालों की भीड़
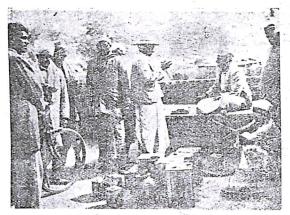
भाव से ८ से १२ रुपया मन कम निश्चित किया जाता है जब कि घी के व्यापारी उन्हें १५ से २५ रुपया प्रतिमन कम देते हैं। किन्तु वास्तव में किसान को बाज़ार-भाव से केवल ५ से ७ रुपया मन कम मूल्य मिलता है, क्योंकि वर्ष के अन्त में प्रत्येक किसान को ४ या ५ रुपया प्रतिमन बोनस दिया जाता है। बाज़ार-भाव से किसान को जितनी क़ीमत कम मिलती है उसमें पेशगी दिये हुए रुपये पर सूद, समिति का खर्च इत्यादि शामिल रहता है। घी-समिति ज़िला-सहकारी बैंक से ऋण लेती है।

प्रत्येक क्षेत्र की ग्राम-समितियों का घी-यूनियन बनाया गया है। निश्चित दिनों पर यूनियन का घी ले जानेवाला कर्मचारी आता है और प्रत्येक सदस्य सरपंच के सामने अपना घी तोलता है। जो घी खराब समझा जाता है वह नहीं लिया जाता। यूनियन घी को गरम तथा साफ़ करके पीपों में भरकर अपनी मुहर लगा देता है। इसके उपरान्त घी मंडियों में आढ़तियों की दूकानों पर बिकने के लिए भेज दिया जाता है। यदि देखा जाय तो यह व्यवस्था दोषपूर्ण है। होना यह चाहिए कि घी आढ़तियों को भी न देकर शहरों में घी-भांडार खोलकर उनके द्वारा जनता के हाथ सीधा बेचा जाय।

ऊपर के विवरण से पाठक यह न समझ लें कि दूध तथा घी की सहकारी समितियों का संगठन बहुत सरल है और उनके सामने कोई कठिनाइयाँ नहीं आती हैं। सफल सहकारी संगठनों के जो भी उदाहरण दिये गये हैं उनके पीछे बहुत-से असफल प्रयत्नों का इतिहास छिपा हुआ है। और एक दृष्टि में ये समितियाँ भी व्यापारिक दृष्टि से पूर्ण सफल नहीं कही जा सकतीं। इन समितियों को सफल बनाने के लिए तथा उनकी देखभाल करने के लिए जो प्रबन्धक नियुक्त हैं उनका वेतन प्रान्तीय सरकार देती है, साथ ही अन्य कार्यों के लिए भी सरकार सहायता देती है। दूध तथा घी की समितियों की प्रारम्भिक अवस्था में इतना प्रोत्साहन तथा सहायता आवश्यक है, इसको कोई अस्वीकार नहीं कर सकता।

किन्तु डेनमार्क, न्यूज़ीलैंड तथा आयर्लैंड की भाँति यह आन्दोलन भारतवर्ष में तभी सफल हो सकता है जब मिलावट की समस्या किसी तरह हल की जाय। यदि हम चाहते हैं कि किसान को अपने दूध और घी का उचित मूल्य मिले और जनता को शुद्ध दूध और

सोसाइटी का घी बैलगाड़ियों में यूनियन को लाया जा रहा है

घी खाने को मिले तो मिलावट की समस्या को हल करना ही होगा। सहकारी दूध और घी की समितियाँ उन व्यापारियों की प्रतियोगिता में किस प्रकार सफल हो सकेंगी जो भैंस के दूध में पानी मिलाकर तथा घी में अन्य पदार्थ मिलाकर सस्ते दामों पर बाज़ार में बेचते हैं। आज यह बात किसी से छिपी नहीं है और सरकारी विशेषज्ञ भी इस बात को स्वीकार करते हैं कि बाज़ार में बिना मिलावट का दूध और घी मिलना अन्यन्त कठिन है। साथ ही विशेषज्ञों का यह भी कहना है कि मिलावट का दूध और घी क्षय-रोग का मुख्य कारण हैं। फिर यह समझ में नहीं आता कि अभी तक प्रान्तीय सरकारों तथा म्यूनिसिपेल्टियों ने कड़ाई के साथ इसको रोकने का प्रयत्न क्यों नहीं किया। यदि किसी भी प्रान्त को लें तो ज्ञात होगा कि मिलावट करने के अपराध में इने-गिने व्यापारियों का ही वर्ष भर में चालान होता है और वे भी थोड़े से रुपये जुर्माने के रूप में देकर छूट जाते हैं। आवश्यकता इस बात की है कि मिलावट के रोकने के लिए प्रत्येक प्रान्त में कठोर क़ानून बनाये जायँ और वे कठोरतापूर्वक लागू भी किये जायँ।

मक्खन

भारतवर्ष में मक्खन की माँग बहुत कम है। अधिकांश जनता घी का ही उपयोग करती है। किन्तु योरपीय ढंग से रहनेवाले भारतीय उसका उपयोग करते हैं। क्रमशः मक्खन की माँग भारतवर्ष में बढ़ रही है। यद्यपि मक्खन बनाने का धंधा शहरों में थोड़ा-बहुत दिखाई पड़ता है, तथापि अभी तक उसका सहकारिता के आधार पर कहीं भी संगठन नहीं किया गया है। बात यह है कि मक्खन के धंधे के लिए भारतवर्ष में अनुकूल परिस्थिति नहीं है। एक तो भैंस के दूध से बहुत अच्छा मक्खन तैयार नहीं होता। दूसरे देश में जब तक 'शीत भांडार-रीति' की व्यवस्था नहीं होती तब तक यहाँ की अधिक गर्मी के कारण मक्खन तैयार करने में कठिनाई होगी। तीसरी मुख्य कठिनाई मक्खन निकले हुए दूध की है। यदि देश में मक्खन बनाने का धंधा व्यापक रूप से फैले तो इस दूध का क्या उपयोग हो? डेनमार्क तथा अन्य देशों में जहाँ मक्खन का धंधा उन्नत दशा में है, वहाँ साथ साथ सूअर पालने का धंधा भी चलता है। मक्खन निकला हुआ दूध सूअरों को मोटा करने के काम में आता है। भारतवर्ष में धार्मिक कारणों से सूअर पालने का धंधा प्रचलित नहीं है। अतएव मक्खन निकले हुए दूध की खपत कैसे होगी? ऐसी दशा में मक्खन का धंधा यहाँ महत्त्वपूर्ण स्थान प्राप्त कर सकेगा, इसमें सन्देह है।

परिचय

लेखक, श्रीयुत मित्तल

दिल ने दिल, पहिचान लिया है।

सुख आता है, बह जाता है,
दुख में दिल ही ढह जाता है;
सच्चा गायक दूर जगत से—
सूने में गाने गाता है।
दिल से निकला गान किसी ने, अनजाने ही जान लिया है।
दिल ने, दिल पहिचान लिया है।

पक्षी जिसके पंख कटे हों,
एक चाहता सूनी डाली;
जहाँ बना हो नीड़ और—
खाने को फल हों, हो हरियाली
आहत को वह वृक्ष मिला है, सुख से रहना ठान लिया है।
दिल ने, दिल पहिचान लिया है।

मैं परदेसी, राह विकट है,
बहुत दूर—मेरी मंज़िल है;
मुझे बढ़ाये चलना भाई—
साहस पास, बड़ा-सा दिल है
एक भरोसा है तुम पर ही, दिल में अपना मान लिया है।
दिल ने, दिल पहिचान लिया है।

हिन्दी के दैनिक पत्र घटिया क्यों हैं ?

लेखक, श्रीयुत आत्मस्वरूप शर्मा
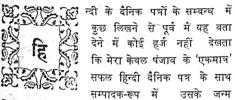
हिन्दी के दैनिक पत्रों के सम्बन्ध में कुछ लिखने से पूर्व मैं यह बता देने में कोई हर्ज नहीं देखता कि मेरा केवल पंजाब के 'एकमात्र' सफल हिन्दी दैनिक पत्र के साथ सम्पादक-रूप में उसके जन्म दिन से ही सम्बन्ध चला नहीं आ रहा है, बल्कि मैंने अपने सम्पादकीय जीवन के आठ-दस वर्ष पंजाब के कई चोटी के उर्दू-दैनिक समाचार-पत्रों के साथ सम्बन्धित रहकर भी व्यतीत किये हैं। लाहौर में उर्दू के जो हिन्दू-पत्र मुख्य माने गये हैं और जिनके मालिक आज स्वर्ण में लोटते हैं उनके साथ एक या दूसरे समय में काम करने का मुझे सौभाग्य प्राप्त हुआ है। इसलिए मैं तुलनात्मक अध्ययन के आधार पर हिन्दी के दैनिक पत्रों से सम्बन्धित कितने ही विषयों और समस्याओं पर अपने मत के अनुसार प्रामाणिक रूप में कुछ कह सकने की अवस्था में हूँ—ऐसा मैं समझता हूँ; यद्यपि मैं जानता हूँ कि मेरे ऐसे दावे पर कुछ लोगों को ग़लतफ़हमी भी हो सकती है।

ख़ैर, मेरा अध्ययन यह बताता है कि हिन्दी के दैनिक पत्रों का भविष्य बहुत उज्ज्वल नहीं और मेरे ऐसा समझने के जो प्रधान कारण हैं उन्हें मैं नीचे देता हूँ।

व्यापारिक आधार

हिन्दी के दैनिक पत्र प्रायः व्यापारिक आधार पर नहीं चलाये गये हैं, बल्कि इनके द्वारा हिन्दी का प्रचार ही मुख्य उद्देश्य रहा है। इस भावना ने हिन्दी-पत्रों को उन्नत होने तथा लाभ का साधन बनने नहीं दिया। हिन्दी-पत्र-सञ्चालकों के भीतर इस प्रकार घटियापन का विचार धीरे-धीरे खूब उन्नत हुआ है और वे स्वावलम्बी नहीं होने पाये। मेरा सङ्केत किसी पत्र-विशेष की ओर नहीं, पर मैं इतना जानता हूँ कि सारे देश में एक-दो को छोड़कर हिन्दी के सब दैनिक समाचार-पत्र अपने स्वामियों अथवा हिन्दी-प्रेमी-समाज पर भार-रूप हैं और इसी लिए गत चौथाई शताब्दी में हिन्दी-पत्रों के आदर और मान में कोई विशेष वृद्धि नहीं हुई। खैरात अथवा दान पर जीवित रहनेवाले पत्र लोक-दृष्टि में मान नहीं प्राप्त कर सकते और मैं तो यहाँ तक समझता हूँ कि किसी व्यक्ति को भी हमेशा घाटे पर जानेवाले किसी पत्र का आर्थिक बोझ लगातार सहन न करना चाहिए। ऐसा करना मेरी दृष्टि में उतना ही अपराध है जितना कि भीख माँग कर अख़बार चलाना। जो समाचार-पत्र एक निश्चित काल तक चलते रहने के बाद यह अनुभव करते हैं कि वे अपना मार्ग-व्यय अदा नहीं कर सकते उनके लिए आप-से-आप अपना अस्तित्व लपेट लेना ही भला है। ऐसे पत्रों को जीवित रहने का कोई अधिकार नहीं और उन्हें जीता रहने के लिए व्यर्थ की ज़िद भी न करनी चाहिए। यदि हिन्दी-समाचार-पत्रों में यह दृढ़ विचार पैदा हो जाय कि हम जियेंगे तो अपने पैरों पर खड़े होकर नहीं तो जीवित नहीं रहेंगे, तो इससे केवल वही पत्र जीते रहकर अपना और हिन्दी-भाषा का मुख उज्ज्वल रक्खेंगे जो अपने भीतर शान से ज़िन्दा रहने की ताक़त रखते हैं। पंजाब के उर्दू के दैनिक पत्र इस समय देशी भाषाओं के समाचार पत्रों में कम-से-कम पंजाब में काफ़ी नाम, प्रभाव और कोष रखते हैं। उनके फलने-फूलने और उन्नति करने का मुख्य कारण यही है कि उनके मालिकों ने उन्हें अपनी आजीविका का एकमात्र साधन बनाया है और व्यापारिक उद्देश्य से वे अपने पत्रों को बढ़ाकर कहीं का कहीं ले गये हैं। यदि हिन्दी के हमारे सहयोगी बुरा न मानें तो मैं कहूँगा कि आज हिन्दी-समाचार-पत्र समाचार-पत्रों के समाज में एक अछूत का दर्जा रखते हैं और यह इसी कारण कि उनकी आर्थिक दशा हीन है। मुझसे पूछा जाय तो मैं कहूँगा कि देश में हिन्दी के दैनिक पत्र केवल उतने ही रहने चाहिए जो अपने पैरों पर खड़े हो सकते हों और जिनके विषय में यह प्रमाण मिल चुका हो कि जनता उनके अस्तित्व की आवश्यकता स्वीकार करती है।

दूसरों को खींचना

हिन्दी के दैनिक पत्रों का स्टैण्डर्ड लोक-दृष्टि में ऊँचा नहीं किया गया और न अँगरेज़ी-भाषा के पत्र पढ़ने-

वालों की रुचि को देशी भाषा के समाचार-पत्र पढ़ने की ओर मोड़ा गया है। इतने वर्षों के अनन्तर भी हिन्दी के दैनिक पत्र यह नहीं कह सकते कि उन्होंने अँगरेज़ी पत्रों के पाठकों की भारी संख्या में से किसी अंश को अपनी ओर खींचा है। मैं ऐसा कहते हुए केवल हिन्दी के दैनिक पत्रों का ही ज़िक्र करता हूँ—मासिक और थोड़े से इने-गिने साप्ताहिक पत्रों का नहीं। हिन्दी के दैनिक पत्रों के सम्बन्ध में आज भी यही समझा जाता है कि इन्हें पढ़नेवालों में मुख्यतः स्त्रियाँ, बच्चे, केवल हिन्दी जाननेवाले दूकानदार और दरिद्र श्रेणी के वे लोग हैं जो अन्य भाषाओं के पत्र या तो पढ़ नहीं सकते या उनके पास इतने पैसे नहीं कि वे महँगे अख़बार ख़रीद सकें। हिन्दी के दैनिक पत्रों के सम्बन्ध में ऐसे ख़याल के फैलने तथा इस ख़याल के एक हद तक ठीक होने ने भी हिन्दी के दैनिक पत्रों के बारे में लोकमत को बहतर होने नहीं दिया। यह एक खुली सचाई है कि हिन्दी के दैनिक अपने भीतर ऐसी सामग्री नहीं रखते जिससे अँगरेज़ी-भाषा जाननेवालों की तृप्ति हो सकती हो। हिन्दी-भाषा के वर्तमान दैनिक अँगरेज़ी दैनिकों की बहुत भद्दी नक़ल हैं। सारे हिन्दुस्तान में गिनती के दो-एक पत्र ही ऐसे हैं जो ख़बरों की कुल सर्विसों अर्थात् रूटर, एसोशिएटेड प्रेस और यूनाइटेड प्रेस के तार लेते हैं। हिन्दी-पत्रों की आर्थिक स्थिति ही ऐसी है कि वे इतनी विशाल न्यूज़ सर्विस नहीं ले सकते और फिर उनके यहाँ स्थान का भी अभाव है कि वे इस सारी सर्विस को लेकर उसका पर्याप्त उपयोग कर सकें। जब हम झोंपड़ों में रहते हैं तब हमें ऊँचे-भवनों के स्वप्न देखने का कोई अधिकार नहीं। मुझे यह लज्जा की बात प्रतीत होती है कि हिन्दी-क्षेत्र में एक भी ऐसा दैनिक नहीं जिसे सच्चे अर्थों में 'अप-टु-डेट' पत्र कह सकें। हिन्दी-पत्रों के मुक़ाबिले में उर्दू के दैनिक पत्रों ने विशेषकर उर्दू-पत्रों के प्रधान केन्द्र लाहौर में चमत्कारपूर्ण तरक़्क़ी की है। लाहौर में एक भी उर्दू का दैनिक पत्र नहीं है जो रूटर, एसोशिएटेड प्रेस और यूनाइटेड प्रेस के तार न लेता हो। केवल इतना ही नहीं, ये पत्र सैकड़ों रुपये मासिक अपने संवाददाताओं पर ख़र्च कर रहे हैं। उर्दू के दैनिक पत्रों के उन्नति करने का काल हिन्दी के दैनिक पत्रों की अपेक्षा लम्बा नहीं। मेरे देखने की बात है कि बीस वर्ष पूर्व उर्दू-पत्रों की न केवल पृष्ठ-संख्या कम थी, बल्कि वे सीधे तार भी नहीं लेते थे। एकाएक एक-दो पत्रों ने साहस किया तब युग-परिवर्तन हो गया। पंजाब में समाचारपत्रों के क्षेत्र में क्रान्ति पैदा करनेवाला पहला उर्दू का दैनिक पत्र स्वर्गीय लाला लाजपतराय का 'वन्दे मातरम्' था। उस पत्र ने जन्म लेते ही फ़ुल न्यूज़-सर्विस ली, बड़े बड़े वेतनों पर कर्मचारी रक्खे और पृष्ठ-संख्या दूसरे अख़बारों से अधिक कर दी। काल के थपेड़ों से वह पत्र आप तो मर गया, और लोग आज तक कहते हैं कि वह पत्र अपनी फ़िज़ूल-ख़र्चियों के कारण आत्म-हत्या कर गया, पर उसने पंजाब में उर्दू-पत्र-कला के स्टैण्डर्ड एकदम को इतना ऊँचा कर दिया कि आज उर्दू-पत्रों को उसका ऋणी और आभारी होना चाहिए। स्वर्गीय लाला जी के पत्र से पूर्व पत्रकारों के वेतन यही ५०-६० रुपये मासिक होते थे। इसी पत्र ने वेतनों को सैकड़ा से ऊपर किया। हिन्दी के दैनिक पत्र जब तक दरिद्र रहेंगे और उन्हें दरिद्रता से हृदयगत घृणा नहीं होगी तब तक उनकी दशा उन्नत नहीं हो सकती। हिन्दी-पत्रों का आदर्श है—"जैसे-तैसे निर्वाह करना"—शान से जीना और सुख से निर्वाह करना नहीं। हिन्दी दैनिक पत्रों के आदर्श और ध्येय में जब तक मानसिक परिवर्तन नहीं आता और इसके साथ ही उनके क़दम उच्च आदर्श की ओर तेज़ी से नहीं बढ़ते तब तक उनकी हालत के सुधरने की आशा दूर प्रतीत होती है। सन्ताननिग्रह के नियम की तरह हमें संख्या के पीछे न जाकर केवल उन पत्रों को ही जीवित रखना चाहिए जो जीवित रहने के अधिकारी हैं—जो 'अप-टु-डेट' रहने की तौफ़ीक़ रखते हों और जिनमें दूसरी भाषाओं के पत्रों के मुक़ाबिले पर छाती तानकर खड़े होने का भीतरी बल हो।

कम क़ीमत

वर्तमान अवस्था में हिन्दी के दैनिक पत्रों की क़ीमत बहुत कम है, मानो आध आना इनकी क़ीमत पेटेंट हो चुकी है। मेरे विचार में हिन्दी के दैनिक पत्रों को 'आध आना' के चक्कर से शीघ्र निकालना चाहिए। पर यह कार्य एक-दो पत्रों के करने का नहीं, बल्कि सबके संयुक्त होकर करने का है। भारत भर के हिन्दी के दैनिक पत्रों को 'एका' कर अपनी क़ीमत एक आना कर लेनी चाहिए जैसा

कि अँगरेज़ी तथा उर्दू के दैनिकों ने कर रक्खी है। पर इस मूल्य-वृद्धि को अपने नफ़े का साधन न बनाकर यह अतिरिक्त आध आना पाठकों के ही लाभार्थ खर्च होना चाहिए। हिन्दी के दैनिक पत्रों की पृष्ठ-संख्या बढ़नी चाहिए, उनका आकार बँगला के दैनिक पत्रों जितना हो जाना चाहिए और फिर पूरी खबरों के साथ अन्य सामग्री में हिन्दी के पाठकों को उतना ही मिलना चाहिए जितना कुछ कि अँगरेज़ी के पाठकों को मिल रहा है। हमें हिन्दी के पाठकों की रुचि को उन्नत करना तथा उन्हें कितनी ऐसी बातों का चस्का डालना चाहिए जिनसे वे अब तक बिलकुल अनभिज्ञ तथा वंचित हैं। हमने इतने वर्षों में हिन्दी-पत्रों के पाठकों को प्रायः वहीं अटका रक्खा है जहाँ वे कभी थे। समाचार-पत्र की लाइन में पाठकों की आवश्यकताओं को बढ़ाना तथा उनमें नई नई बातों के लिए शौक़ पैदा करना पत्रों का ही काम है—जो अन्य भाषाओं के पत्र तो कर रहे हैं, पर हिन्दीवाले इस पहलू में एकदम उदासीन हैं। हमने हिन्दी के पाठकों को अपनी दरिद्रता और कई पहलुओं में असमर्थता से 'कुएँ का मेढक' बनने के लिए विवश किया है। यह कोरा अन्याय और अपने दोष के लिए दूसरे को दण्ड देने के तुल्य है।

'न्यूज़' और 'व्यूज़'

हिन्दी के दैनिक पत्रों में न्यूज़ (खबरों) की अपेक्षा 'व्यूज़' अर्थात् विचारों को अधिक महत्त्व दिया जाता है। मेरे खयाल में दैनिक पत्रों को शुद्ध रूप से 'न्यूज़-पेपर' ही रहना चाहिए और यत्न होना चाहिए कि हमारे पत्रों में भी अन्तिम क्षण तक की खबरें उसी प्रकार प्रकाशित हों जिस प्रकार कि अन्य भाषाओं के पत्रों में होती हैं। अब पत्र-पाठकों के विचारों का अधिक नेतृत्व करने की आवश्यकता नहीं। पाठकों का अभ्यास इस युग में, राजनैतिक आन्दोलनों के कारण, काफ़ी उन्नत हो चुका है। वे किसी विषय पर अपने विचार बना सकें, इसके लिए उन्हें दो-दो और तीन-तीन कालम के लम्बे अग्र-लेख पढ़ने की आवश्यकता नहीं। किसी पत्र का किसी विशेष विषय पर क्या मत है, यह तो बहुधा किसी खबर पर दिये हुए शीर्षकों से ही मालूम हो जाता है। मुझे तो कई बार ऐसा प्रतीत हुआ है कि हम अपने सम्पादकीय विचारों से पाठकों की साधारण बुद्धि का निरादर करते हैं। ऐसा करने का हमें कोई अधिकार नहीं। कुछ बारीक़ विचार से मैंने यह भी देखा है कि सम्पादक कई हालतों में पाठकों के लिए नहीं बल्कि अपने मन की शान्ति के लिए विचार प्रकट करते हैं। 'सम्पादकीय विचार' सम्पादक की अपनी प्रतिदिन की दिमाग़ी कसरत है। सम्पादक के मस्तिष्क में जो कुछ भर जाता है उसे पाठकों के सामने उगलने के लिए वह बेचैन रहता है और उसे तब तक शान्ति नहीं प्राप्त होती जब तक वह उसे उगल नहीं लेता। अग्र-लेख लिखने की एक शैली-सी चल पड़ी है, पर इतनी बात विशेष रूप से नोट करने लायक़ है कि जहाँ एंग्लो-इंडियन तथा विलायती समाचार-पत्रों का रुख अग्र-लेखों की लम्बाई को छोटा करने की ओर है, वहाँ भारतीय पत्र आज भी पाठकों पर बराबर लम्बे अग्र-लेख ठूँसने का दुःसाहस करते दिखाई देते हैं। सम्पादक को यदि अपने विचार प्रकट करने के लिए अवसर न मिले तो वह पागल हो जाय! फिर, क्या यह सत्य नहीं कि कभी कभी ठिकाने का विषय न मिलने पर भी अपनी इच्छा के विरुद्ध सम्पादकीय स्तम्भों के लिए कुछ न कुछ लिखना पड़ता है—चाहे हम अपने लेख में कोई मौलिकता और नवीनता पैदा कर सकते हों या न कर सकते हों। जब तक हिन्दी-समाचार-पत्रों में स्थान थोड़ा है, बल्कि स्थान होने पर भी, संक्षेप से सम्पादकीय विचार लिखने का दस्तूर जारी होना चाहिए। हमें याद रखना चाहिए कि कुछ सर्वमान्य तथा विशेष व्यक्तियों को छोड़कर दुनिया किसी के विचार जानने के लिए लालायित तथा व्याकुल नहीं—विशेषतः जब कि पाठक किसी अखबार के सम्बन्ध में पहले ही से जानते हैं कि वह किसी दल-विशेष से सम्बन्धित होने के कारण किस प्रकार के विचार प्रकट करेगा। प्रत्येक पत्र के अपने विशेष, निश्चित तथा श्रेणीगत विचार हैं। मोटा क़ायदा तो यह मालूम होता है कि अखबार साधारणतः बहुमत के साथ चलते हैं। और यह बात सब जानते हैं। इसलिए पाठक सम्पादकीय विचारों से यदि कोई आनन्द उठाते भी हैं तो केवल पढ़नेमात्र का। यह सन्देह की बात है कि पाठकों की एक बड़ी संख्या सम्पादकीय विचार पढ़ती है और फिर इससे भी अधिक सन्देह की बात यह है कि

पाठकों की कोई गिनती योग्य संख्या इन विचारों से वास्तविक लाभ उठाती है। सम्पादकीय विचार पढ़ना क्षणिक आनन्द से अधिक कुछ नहीं। इसलिए मेरे कथन का सारांश यह है कि हिन्दी-दैनिक पत्रों को 'व्यूज़-पेपर' से अधिक 'न्यूज़-पेपर' बनने का यत्न करना चाहिए। हमें कोई नैतिक अधिकार नहीं कि हम अपने विचार प्रकट करने के लिए पाठकों के क़ीमती स्थान पर प्रतिदिन छापा मारकर उनके साथ अन्याय किया करें।

बाज़ार में साख

कितने ही हिन्दी-समाचार पत्रों की कई एक प्रत्यक्ष कारणों से बाज़ार में कोई साख नहीं। इसने उन्हें बहुत हद तक बदनाम कर लोक-दृष्टि में गिरा रक्खा है। बाज़ार में बिलों का समय पर अदा न होना, नौकरों को कई कई मास वेतन न मिलना और कार्यालय में टुटपुँजिया सामान रखकर दुनिया के सामने अपने दिवालियापन का प्रदर्शन करना भी हिन्दी के दैनिक पत्रों को बहुत घटिया बना रहा है। पत्र-मालिकों को याद रखना चाहिए कि इस ज़माने में बाहर की टीम-टाम का भी किसी पत्र पर गहरा प्रभाव पड़ता है। हिन्दी के दैनिक पत्रों के दफ़्तर प्रायः टूटी-फूटी इमारतों में नज़र आते हैं, जिनमें सामान भी वैसा ही धरा रहता है। फिर थोड़ा थोड़ा वेतन पानेवाले मरियल तथा अप्रसन्न सम्पादकों को ऐसे स्थानों में बैठा देखकर बहुत ही बुरा प्रभाव पड़ता है। हम बड़ी बड़ी विदेशी फ़र्मों को विज्ञापन भेजने के लिए लिखते समय चिट्ठियों में अपनी पोज़ीशन के बारे में कई प्रकार की डींगें हाँकते हैं। यदि कोई मनचली फ़र्म अपने किसी प्रतिनिधि को इन पत्रों के कार्यालयों में आमने-सामने बातचीत के लिए भेज दे तो हमारा उनके सामने क्या रूप बनेगा? मेरा यह दृढ़ मत है कि हिन्दी के दैनिक पत्रों को यदि और किसी खयाल से नहीं तो तिजारती दृष्टि से अपने कार्यालयों तथा उनमें काम करनेवालों को अच्छी अथवा कम-से-कम देखने योग्य अवस्था में रखना चाहिए। हिन्दी-पत्रों के सम्पादकीय विभाग के कर्मचारियों के वेतनों का स्टैण्डर्ड बहुत घटिया है। यह कम-से-कम इतना ऊँचा होना चाहिए कि कर्मचारी अपने सामाजिक दर्जा को माध्यम हद तक रखकर जनता पर अपनी रहन-सहन से अच्छा प्रभाव डाल सकें। इस बात का भी किसी अखबार की स्थिति पर गहरा प्रभाव पड़ता है कि उसके कर्मचारी क्या पाते हैं। मैंने देखा है कि देशी भाषाओं के समाचार-पत्रों में काम करनेवाले कई सज्जन जब किसी अँगरेज़ी-पत्र में काम करने लगे तब उनका कलेवर ही बदल गया और वे देखते-ही-देखते जहाँ खुशहाल हो गये वहाँ समाज में उनका आदर और सत्कार भी बढ़ गया। कर्मचारियों का आदर और मान बढ़ने से अखबारों को प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष दोनों ही प्रकार से लाभ होता है। क्या हम अपने प्रतिदिन के व्यवहार में नहीं देखते कि एक अँगरेज़ी अखबार का चुस्त और चालाक प्रतिनिधि किसी बड़े अधिकारी अथवा व्यक्ति के पास आज़ादी से पहुँच जाता है? उतनी आज़ादी से हमारे किसी हिन्दी-पत्र का ढीला-ढाला प्रतिनिधि नहीं पहुँच सकता। जिन लोगों को पेट भर खाने को ही नहीं मिलता और जो हमेशा क़र्ज़ तले दबे रहते हैं वे भला समाज में अपनी पोज़ीशन क्या रख सकते हैं? हमारे यहाँ प्रधान सम्पादकों को कई हालतों में अँगरेज़ी अखबारों के प्रूफ़-रीडरों जितना भी वेतन नहीं मिलता। ऐसी खेदजनक दशा में हम यह आशा कैसे रख सकते हैं कि हिन्दी-पत्रों का मान बढ़ेगा और हम कभी अँगरेज़ी-पत्रों की बराबरी करने के योग्य हो सकेंगे। इसी के साथ हम यह आशा भी नहीं कर सकते कि हमारे पत्रों की बाज़ार में साख बढ़ सकेगी।

पत्रों की भाषा

हिन्दी के दैनिक पत्रों की भाषा भी परिवर्तन चाहती है। मैं जानता हूँ कि कितने ही लोग हिन्दी-पत्रों को इस कारण पढ़ना पसन्द नहीं करते कि उनकी भाषा या तो क्लिष्ट होती है या उनमें खबरों का अनुवाद इतना भद्दा होता है कि पढ़नेवाले के पल्ले कुछ नहीं पड़ता। हिन्दी के दैनिकों को बोल-चाल की साधारण भाषा का प्रयोग करना चाहिए और अनुवाद की अवस्था में इस बात का विशेष यत्न होना चाहिए कि बनावटी तथा उलझा हुआ उल्था न देकर पाठकों को स्वाभाविक तथा सुलझी हुई भाषा दी जाय। हिन्दी-पत्रों में खबरें पढ़ते समय पाठकों पर साधारणतः यह असर नहीं पड़ना चाहिए कि वे अँगरेज़ी से खींची गई कोई चीज़ पढ़ रहे

हैं। हमारे दैनिकों की भाषा सुगम, सरल तथा यथा-सम्भव स्वाभाविक होनी चाहिए।

एक उपाय

मोटे तौर पर यह है मेरा अध्ययन उन कारणों के विषय में जो हिन्दी के दैनिक पत्रों का भविष्य उज्ज्वल होने नहीं दे रहे हैं और जिन्होंने उन्हें घटिया बना रक्खा है। अब मैं बहुत संक्षेप में यह बताना चाहता हूँ कि वर्तमान दुर्दशा में उनकी हालत किस प्रकार बेहतर बनाई जा सकती है। प्रश्न के इस पहलू पर सोचने में मैंने काफ़ी समय व्यतीत किया है और बहुत विचार के बाद मैं अब तक एक ही उपाय सोच सका हूँ। मेरी तजवीज़ है कि एक केन्द्रीय संस्था के अधीन बड़े विशाल पैमाने पर प्रत्येक प्रान्त में एक एक अप-टु-डेट हिन्दी-दैनिक पत्र जारी किया जाय। इस केन्द्रीय संस्था का प्रबन्ध बहुत ईमानदार तथा सच्चे हिन्दी-हितैषियों के हाथों में दिया जाय, जो कम से कम खर्च कर अधिक से अधिक उपयोगिता की अवस्था पैदा कर सकें। प्रत्येक प्रान्त में जारी होनेवाला हिन्दी का यह दैनिक पत्र इतना मजबूत और साधन-सम्पन्न हो कि वैयक्तिक मिलकियत में चल रहे अन्य डाँवाँडोल पत्र या तो समझौते से मुख्य पत्र में विलीन हो जायँ या उनकी मौत हो जाय। इस प्रकार हिन्दी के दैनिक पत्रों की दुनिया में एक नवीन युग का प्रारम्भ हो और मैदान आदर्शहीन तथा दुर्बल अख़बारों से एकदम साफ़ हो जाय। इस अत्यावश्यक तथा वाञ्छनीय सफ़ाई के बाद हिन्दी-प्रेमियों के संयुक्त उद्योग से जो नई सृष्टि होगी वह दीर्घ आयु प्राप्त करने के योग्य होगी और इस दृष्टि के साथ दूसरों के सामने अपने आपको घटिया समझकर हम किसी प्रकार लज्जा का भी अनुभव न करेंगे।

मैंने विचारों की कल्पना से यह केवल एक ढाँचा ही पेश किया है। अधिक विचार से हमारे सामने कितने ही नये पथ और मार्ग खुल सकेंगे।

अज्ञात

लेखिका, श्रीमती सुमित्रा कुमारी सिनहा

ले किसकी सुधि की साँसें जी फिर से उठी समीरण?
फिर कलियों में मुस्काईं यह किसकी पलकें उन्मन?

यह भ्रमर-भीर मँडराई किसकी अलकावलियाँ बन?
वल्लरियों की बाँहों में यह किसका फूलों-सा तन?

किंशुक के वन में मचला किसका सोने का यौवन?
किसके पद की लाली ले हँस पड़ा गुलाबों का मन।

नीले कमलों की आँखों में किसके मन का बन्धन?
अग-जग ज्योतिर्मय करने आये किसके दर्शन-क्षण?

किस स्वर का भार लिये फिर कूकी रसाल पर कोयल?
फूटा मंजरियों में फिर किन रोमों का मधु-परिमल?

यह किसकी मिलन-घड़ी की फिर गूँज उठी शहनाई?
किन चिन्हों पर लुटने को तृण तृण हरियाली छाई?

पा परस-पवन के झोंके उन्माद-हिंडोले डोले!
सोये सपनों की किरणों के तार तार फिर बोले?

फिर किसका दीप सजाकर शशि राह दिखाने आया?
तृष्णा को कौन पिपासा ने जी भर फिर नहलाया!

एकांकी नाटक

माता

लेखक, श्रीयुत प्रेमनारायण टण्डन

न——दुर्ग से एक मील की दूरी पर एक छोटा-सा मकान। पगडंडी उसी के पास से होकर जाती है।

समय——छठी शताब्दी का अन्त। हूणों के आक्रमण हो चुके हैं। विजयी हूण विद्रोहियों के नेताओं की हत्या करने में पाशविक क्रूरता दिखा रहे हैं।

मकान में——बाहर का कमरा बन्द है। उसी में सरला बेचैनी से घूम रही है। कभी वह दरवाज़े की दरार से बाहर की ओर देखती है, कभी एक तख़्त पर उदास बैठी हुई स्त्री की ओर देखती है।

मकान का कमरा घरवालों की दरिद्रता का परिचय देता है। सजाने का सामान तो दूर, बैठने के तख़्त पर भी बिछाने को कुछ नहीं है। सड़क की तरफ़ इसमें एक दरवाज़ा और दो खिड़कियाँ हैं। बाईं तरफ़ एक छोटी-सी खिड़की और सामने एक दरवाज़ा घर में जाने के लिए है।

सरला युवती है, बड़ी सुन्दर, पर दरिद्रता की सताई हुई। बड़ी बेचैनी से वह बाईं दीवार की खिड़की से बाहर की ओर छिपकर सतर्कता से देखती और फिर टहलने लगती है।]

सरला——कैसी भयंकर रात है बाहर!

स्त्री——क्या अब भी पानी पड़ रहा है?

सरला——हाँ, बड़े जोर से। और अन्धकार तो इतना घना है कि आगे कुछ दिखाई ही नहीं देता।

स्त्री——(ठंडी साँस लेकर) यह तो अच्छा है अपने लिए।

[सरला फिर अनमनी होकर इधर-उधर टहलती है। अन्त में, व्याकुल होकर रुक जाती है और स्त्री की ओर देखने लगती है।]

सरला——(शीघ्रता से) क्या मैं बत्ती जलाकर खिड़की में रख दूँ?

स्त्री——अभी से क्यों? अभी तो कोई खटका हुआ नहीं मालूम पड़ता। (कुछ उत्सुकता और आवेश में आकर) क्या कोई सङ्केत तुझे मिला है?

सरला——(निषेध-सूचक सिर हिलाती हुई) नहीं, परन्तु खिड़की का प्रकाश उन्हें बतला देगा कि यहाँ सब ठीक है।

स्त्री——(कुछ सोचती हुई) नहीं, नहीं। प्रकाश हमें उसी समय करना चाहिए जब संकेत मिल जाय; पहले नहीं।

सरला——परन्तु ऐसी भयंकर रात में जब मूसलधार पानी पड़ रहा हो, घंटों कोई संकेत किया करे, तो क्या सुनाई भी देगा?

स्त्री——(बड़े स्नेह से सरला की ओर देखती हुई) नहीं बेटी। इतनी उतावली मत बन। हमें वही करना है जो वह कह गया है। अँगीठी में कुछ कोयला डाल दे और यहाँ मेरे पास आकर बैठ।

सरला——(अधिक व्यग्र होकर) नहीं, मैं नहीं बैठूँगी। (आवेश में) मेरे अन्दर जैसे कोई मुझे जता रहा है कि आज, आज रात को हम पर जैसे वज्र गिरेगा। आह! यह सनसन बहती हुई हवा, जान पड़ता है, घर के चारों ओर सिसकियाँ लेती फिर रही है। मुझे लग रहा है जैसे कोई निरीह प्राणी मेरे द्वार पर आया हो और मैं उसे शरण में लेने से इनकार कर रही हूँ।

स्त्री——(स्नेह से झिड़कती हुई) यह क्या बक रही है? जो मैं कहती हूँ वह कर। पहले आग में कोयला डाल दे थोड़ा-सा।

सरला——(अँगीठी की ओर बढ़ती हुई) जब से मैं... (कुछ सुनकर) यह क्या हुआ?

(दोनों साँस रोककर क्षण भर सुनती हैं और एक-दूसरे की ओर देखती हैं।)

स्त्री——कुछ नहीं; हवा थी। (धीरे से) जो बाहर हैं उनके लिए कितनी दुःखद होगी यह रात!

(सरला चुपचाप अँगीठी में कोयला डालती है, कोई उत्तर नहीं देती।)

स्त्री——(कुछ याद करके) क्या तूने दिन में इधर से आदमियों को जाते देखा था आज?

सरला—सवेरे तो कुछ लोग इधर से गये थे, पर नौ बजे के बाद फिर कोई नहीं गया। हाँ, चार बजे एक घुड़सवार इधर से घोड़ा दौड़ाता हुआ गया था।

स्त्री—और कोई नहीं?

सरला—(सिर हिलाकर 'नहीं' का संकेत करती हुई) नहीं, भयानक श्मशान-सा सुनसान इधर रहा है। (उत्सुकता से स्त्री की ओर देखती हुई) क्या तुम समझती हो, वे आयेंगे अवश्य?

स्त्री—यह मैं कैसे कह सकती हूँ? मैं तो केवल इतना ही जानती हूँ कि पाँच दिन हुए, जब वह यहाँ भोजन करने और उन लोगों को जो बाहर छिपे हुए हैं, लेने के लिए आया था। तब से पाँच दिन और पाँच रातें बीत गईं, मुझे कोई पता नहीं मिला। केवल अनुमान से कहा जा सकता है कि आज रात को वह अवश्य आने का प्रयत्न करेगा। परन्तु आज दिन भर इधर से किसी का न आना...समझ नहीं पड़ता... कुछ तो पता लगना चाहिए था।

(सहसा एक आवाज़ होती है। दोनों कान लगाकर सुनने लगती हैं।)

स्त्री—(बड़ी प्रसन्नता से) बेटी, शीघ्र ही प्रकाश का प्रबन्ध करो।

सरला—(शंका करती हुई) परन्तु यह शब्द तो घर के पीछे की तरफ़ हुआ है। इधर से तो....

स्त्री—(उसे रोककर) जो मैं कहती हूँ सो कर। सम्भव है, दूसरी ओर शत्रुओं का भय हो।

(बत्ती जलाकर खिड़की पर रख दी जाती है। सरला शीघ्रता से दरवाज़े के पास जाकर खड़ी हो जाती है और उसे खोलने लगती है।)

स्त्री—(दरवाज़ा खोलने से रोककर) अभी नहीं, अभी नहीं। क्या इस बत्ती को बिजली की तरह चमकती हुई छोड़कर तू दरवाज़ा खोल देना चाहती है, जिससे एक मील पर खड़ा हुआ मनुष्य भी हमें देख ले। कौन जानता है, शत्रु घात में लगे हों? बत्ती बुझा दे पहले और आग भी ढँक दे।

[सरला शीघ्रता से बत्ती बुझाती है, आग ढँकती है। कमरे में अंधकार-सा हो जाता है। तब सरला धीरे से दरवाज़ा खोलती है। एक युवक अन्दर आता है। दरवाज़ा फिर बन्द कर दिया जाता है। सरला युवक से सटकर खड़ी हो जाती है।]

सरला—सतीश! मेरे प्यारे तुम भीगे हुए हो? सर्दी खा रहे हो?

सतीश—पुल पर पहरा था; नदी तैर कर आया हूँ।

[स्त्री ने इतने समय में बत्ती जला दी और आग भी खोल दी।]

स्त्री—पुल! पहरा क्या?

सतीश—हाँ, ज़बरदस्त पहरा। और....

स्त्री—तब तुम्हारे साथी कहाँ छिपे हैं?

सतीश—वे सब पहाड़ी के उस पार बाईं ओर के जंगल...

स्त्री—(जैसे चेतकर सरला की ओर इशारा करके उसकी बात काटती हुई) हाँ, तो.....

सतीश—(उसकी शंका समझकर) माँ! तुम...

स्त्री—[फिर बात काटकर] हाँ, बेटी सरला, भोजन इसके और इसके साथियों के लिए शीघ्र ले आ।

[सरला आँगनवाले दरवाज़े से होकर भीतर चली जाती है।]

सतीश—माता जी! मुझे तो तुम्हारी बातों पर आश्चर्य होता है! तुम सरला पर विश्वास नहीं करतीं! हमारी बातें वह कभी किसी से नहीं कह सकती, नहीं कह सकती।

स्त्री—अभी वह लड़की है, उसके धैर्य की अभी परीक्षा नहीं हुई है। कौन जाने, उससे क्या पूछ लिया जाय?

सतीश—परन्तु डरने की तो कोई बात नहीं थी, क्योंकि मैं तुम्हें बता रहा था कि मैंने अपने साथियों को कहाँ छोड़ा है। वे कहाँ मिलेंगे, यह थोड़े ही बताता!

स्त्री—वे कहाँ हैं और तुझे कहाँ मिलेंगे?

[सतीश धीरे धीरे समझा देता है। स्त्री कुछ निश्चिन्त हो जाती है]

स्त्री—ये बातें सरला को बताने की नहीं हैं। उसे न बताना।

[सतीश आग के पास बैठकर तापने लगता है। उसकी मा भी उसी के पास बैठ जाती है।]

सतीश—(एक साँस लेकर) ऐसी भयानक रात में यदि तापने के लिए आग हो और शान्तिपूर्वक रहने के लिए एक मकान तो कितना सुख मिले!

स्त्री—क्या तू रात भर रुक नहीं सकता?

सतीश—(फिर साँस लेकर) सवेरा होने से पहले ही मैं यहाँ से मीलों दूर पहुँच जाऊँगा?

[सरला आती है]

सरला—इतनी दूर तुम आये और (आश्चर्य से) किसी ने देखा नहीं?

सतीश—कौन कह सकता है किसी ने देखा या नहीं; चारों तरफ़ तो शत्रु फैले हुए हैं।

[सरला तख़्त पर भोजन सजाती है। बड़े प्रेम से वह सतीश की ओर देखती है और माता की आँख बचाकर सतीश उसकी ओर। बूढ़ी मा जैसे किसी चिन्ता में है। सहसा ज़ोर से कोई दरवाज़ा पीटता है और कहता है—खोलो, खोलो]

माता—(चौंककर) बेटा! उस कोने में घास पड़ी है। छिप जा उसी के नीचे। जल्दी से मेरे बेटे!

(खटखटाना बढ़ जाता है। कोई ज़ोर से कहता है—खोलो। फ़ौरन सतीश की माता उसकी सब चीज़ों को छिपा देती है। सतीश छिप जाता है। माता दरवाज़े के पास जाती है।)

माता—(ज़ोर से) कौन है? क्या चाहते हो?

आवाज़—दरवाज़ा खोलो।

[माता दरवाज़ा खोलती है। तीन-चार सशस्त्र व्यक्ति घुस आते हैं। सबसे आगे विद्रोही सेनापति है।]

एक व्यक्ति—(चारों ओर देखकर) अरे, चिड़िया उड़ गई!

दूसरा—(उपेक्षा की हँसी हँसता हुआ) नहीं भाई! (भोजन की ओर इशारा करके) जान पड़ता है, हम लोगों ने उनके भोजन में बाधा डाली है। यहीं कहीं होंगे महाशय! ढूँढ़ लो जल्दी से।

माता—(दृढ़ स्वर में) इस मकान में मैं ही अकेली रहती हूँ और मैं ही भोजन करने जा रही थी। आप चाहते क्या हैं?

[सेनापति केवल "हूँ" कर देता है। सिपाही इसी समय सरला को पकड़ लाते हैं। उसके हाथ में भोजन का पात्र है।]

माता—देख लीजिए। यह मेरे भाई की लड़की है और मेरे लिए भोजन ला रही थी।

सेनापति—(उपेक्षा से गर्दन हिलाता हुआ) मैं सब देख रहा हूँ।

[सिपाही खोजकर सतीश को पकड़ लाते हैं।]

सेनापति—(स्त्री से) कहिए श्रीमती जी! यह शायद आपकी बहन का लड़का है! (ज़ोर से) याद रक्खो, मैंने कच्ची गोलियाँ नहीं खेली हैं और किसी को छोड़ना तो मैं जानता ही नहीं हूँ। और यदि यह मेरे प्रश्नों का ठीक ठीक उत्तर नहीं देगा तो अवश्य मैं इसे फाँसी पर चढ़वा दूंगा।

[सतीश ज़मीन पर बैठाया जाता है। दो सिपाही उसके पास खड़े होते हैं। एक सिपाही दरवाज़े पर पहरा देता है। विद्रोही सेनापति तख़्त पर बैठ जाता है। तख़्त के एक कोने पर उसका कर्मचारी बैठता है।]

सरदार—मुझे पता लगा है कि मेरे विरोधी जहाँ छिपे हैं उस स्थान का पता तुम्हें है। ठीक है न?

[सतीश कोई उत्तर नहीं देता।]

सरदार—देखो, तुम भी कान खोलकर सुन लो और इस घरवाले भी कान खोलकर सुनें कि यदि तुम मेरे प्रश्नों का समुचित उत्तर दे दोगे तो तुम्हें किसी तरह का कष्ट नहीं दिया जायगा।

[सतीश कोई उत्तर नहीं देता]

सरदार—(धीरे से) देखो, सतीश, हमारा काम कर देने से तुम्हारा बड़ा लाभ होगा। सोने-चाँदी से तुम लाद दिये जाओगे, ऊँचा पद भी मिलेगा।

[सतीश फिर चुप रहता है।]

सरदार—(आवेश में ज़ोर से) काट लो इस गधे की जीभ।

सतीश—(शान्त स्वर में) मैं इस सम्बन्ध में कुछ नहीं कह सकता।

सरदार—(शान्त होकर) देखो, दुनिया में इस तरह की नादानी से काम नहीं चलता। केवल इतना बता देने से ही तुम मुक्त कर दिये जाओगे।

(सतीश चुप रहता है।)

सरदार—सतीश! तुम्हें मुझसे डर तो नहीं लग रहा है, जो इस तरह चुप हो?

सतीश—(घृणा से थूककर) डर!

सरदार—(क्रुद्ध होकर) नीच, तेरी यह मजाल!! ले

जाओ इसे बाहर। दूसरी तरह इससे पेश आना होगा।

[सतीश को सिपाही बाहर ले जाते हैं]

सरदार—मैंने दुनिया देखी है। जीवन का अनुभव भी मुझे अधिक है। परन्तु ऐसा मूर्ख युवक मैंने कभी नहीं देखा। यह तो सरासर मूर्खता है। (सिपाहियों से) लाओ उस बुढ़िया को।

[सतीश की माता सतीश की जगह पर बैठा ली जाती है।]

सरदार—देखिए श्रीमती जी, यदि आप अपने पुत्र का कल्याण चाहती हैं तो मेरी बातों का उत्तर ठीक-ठीक दें। आप मेरा विश्वास रक्खें। आपके पुत्र का जीवन मेरे हाथ में है। मेरा विश्वास रक्खें। प्रश्नों का उत्तर मिल जाने पर मैं आपके पुत्र को छोड़ दूँगा। मेरा विश्वास रक्खें।

माता—मैं किसी का विश्वास नहीं करती।

सरदार—परन्तु मेरा विश्वास तो करना ही होगा। (धीरे से) अपने पुत्र के प्राण बचाने के लिए तुम मेरे प्रश्नों का उत्तर दे दो।

[माता चुप रहती है। सरदार आश्चर्य से उसकी ओर देखता है। फिर घृणा से पुत्र की ओर इशारा करके माता को इस तरह देखता है जैसे उसे धिक्कार रहा हो। अन्त में कुछ सोचता हुआ क्रोध में कहता है।]

सरदार—शायद तुझे यह मालूम हो गया होगा कि तेरी यह मक्कारी पुत्र के लिए कितनी हानिकर होगी। (अपने कर्मचारी से) देखते हो, कैसी मा है यह जो अपने बच्चे के प्राणों की परवा नहीं करती! (हँसता है) कैसी मूर्ख है! जिसको दूध पिलाकर पाला है उसी के प्राण हर रही है!! पागल!!!

[सरदार हँसता है। एक बार अपने कर्मचारी की ओर देखकर सतीश की माता की ओर देखता है, जैसे अपने शब्दों का प्रभाव जमाना चाहता है।]

सरदार—(कोमल स्वर में) याद हैं तुझे वे दिन जब सतीश बच्चा था और अँधेरे से डरकर तेरी ओर हाथ फैलाकर भागता था और तू उसे अपनी छाती में छिपा लेती थी। आज इसी रात को उसके सामने भयंकर अंधकारपूर्ण मार्ग है, परन्तु तुझे उसकी चिन्ता नहीं?

[वह फिर चुप होकर सतीश की माता की ओर देखता है।]

सरदार—(अपने कर्मचारी से) जानते हो जब सतीश गोद का बच्चा था तब इसने उसे सर्दी-गर्मी से बचाने के लिए कितने प्रयत्न किये थे? जब वह पैरों चलने लगा था तब यह कितने यत्न से उसे रखती थी? परन्तु आज यदि यह अपने उसी इकलौते बच्चे को इस प्रकार मृत्यु के मुंह में छोड़े दे रही है तब इसने बचपन में उसकी रक्षा ही क्यों की थी? आज इसे अपने एकमात्र पुत्र की, अपने जीवनाधार पुत्र सतीश की कोई चिन्ता नहीं! उसे स्वयं ही धधकती हुई आग में झोंक रही है!!

सतीश की माता—आह! मेरा बच्चा!! मेरा बच्चा!! मेरे बच्चे ने तुम्हारा क्या बिगाड़ा है?

[सरदार अपने कर्मचारी की ओर देखता है।]

कर्मचारी—उसने हमारे शत्रुओं की सहायता की है और हमारी आज्ञा का उल्लंघन किया है।

सरदार—यही नहीं, सबसे बड़ा उसका अपराध यह है कि वह अपना भला-बुरा भी नहीं देखता। (अपने कर्मचारी) आइए अब.....(सरदार उठने लगता है, और बाहर की ओर इशारा करता है।)

माता—मेरे पुत्र को तुम उँगली से भी नहीं छू सकते, उसको नहीं मार सकते।

कर्मचारी—और जब वह स्वयं ही मरना चाहता हो तो?

माता—(उत्तेजित होकर) देखो, मेरे बच्चे को मत छूना। यदि उसका बाल भी बाँका हुआ तो याद रखना मेरी आह शाप बनकर तुझे भस्म कर देगी। मेरे पुत्र को छूते ही ईश्वर तुझे पुत्र-रहित कर देगा। अभागे! नीच!! याद रख कोई तेरे भी ऊपर है हत्यारे!

सरदार—चुप। (सिपाहियों से) ले जाओ इसे यहाँ से बाहर।

[सिपाही सतीश की माता को ले जाते हैं। कमरे में अब सरदार और उसका कर्मचारी रह जाता है। सरला एक कोने में खड़ी है।]

सरदार—तुम जाओ! सतीश को तलवार के घाट उतार दो।

कर्मचारी—(काँपकर) मैं? नहीं, क्षमा करें।

सरदार—मैं आज्ञा देता हूँ—जाओ, और उसे मार दो।

कर्मचारी—आह! सुना था आपने उसकी माता का शाप! उसकी आह शाप बनकर भस्म कर देगी! देखा था आपने उसका भयंकर रूप?

सरदार—(जैसे भयानक स्वप्न देखकर काँप उठा हो) हाँ, मनुष्य किसी सशस्त्र व्यक्ति का सामना कर सकता है, पर भयानक स्वप्न नहीं देख सकता। ऐसी ही भयानक थी उसकी मूर्ति। पर जाओ। शीघ्र अपना काम करो।

[कर्मचारी धीरे-धीरे जाता है। सरदार कुछ सोचने लगता है।]

सरला—(जैसे सोते से जागकर) हाय! हाय! क्या मार ही डालोगे उसे?

सरदार—(चौंककर) क्या हुआ?

सरला—क्या मार ही डालोगे उसे?

सरदार—(गम्भीर होकर) अभी, देखो खिड़की से दिखाई देगा तुम्हें वह। अभी मरेगा नीच।

सरला—(जल्दी से) मैं तुम्हें बता दूँगी।

सरदार—(आश्चर्य से, अचकचाकर) क्या?

सरला—जो तुम जानना चाहते हो, मैं तुम्हें सब बता दूँगी।

सरदार—मैं तो यह चाहता ही हूँ। बताओ, बताओ जल्दी।

सरला—पहले प्रतिज्ञा करो कि उसे तुम मारोगे नहीं।

सरदार—मैं प्रतिज्ञा करता हूँ; क़सम खाता हूँ।

सरला—तुम उसे मुझे सौंप दोगे?

सरदार—हाँ, तुम्हें सौंप दूँगा।

सरला—सुनो।

[सरदार पास जाता है। सरला को जितना मालूम था वह बता देती है।]

सरला—अब तो उसे छोड़ दोगे?

सरदार—(उसकी बात पर ध्यान न देकर) बड़ा काम किया इसने। जाते कहाँ हैं अब नीच।

सरला—अब तो उसे छोड़ दोगे तुम?

[सरदार कोई उत्तर नहीं देता और चुपचाप मकान के बाहर चला जाता है। "खट" की ज़ोर से आवाज़ होती है। फिर शान्ति हो जाती है। सरला व्याकुल होकर खिड़की से झाँकती है और चीख पड़ती है। इसी समय सतीश की मा कमरे में आती है। सरला दौड़कर उसके गले से लिपट जाती है।]

माता—सुना, बेटी! तेरा सतीश....

[सरला रोने लगती है। सतीश की माता उसको छाती से चिपटा लेती है। अभी आँखों में भी आँसू आ जाते हैं।]

माता—रो ले बेटी मेरी! सतीश तेरा चला गया। परन्तु मैं अपनी आँख में आँसू की एक बूँद नहीं आने दूँगी। कल तक मैं एक साधारण युवक की माता थी, परन्तु इस समय मैं एक ऐसे शहीद की माता हूँ जिसकी गिनती संसार के महान् पुरुषों में होगी। सारे विश्व में लोग उसकी कीर्ति का गान गाते फिरेंगे। मातायें अपने पुत्रों के सामने उसका आदर्श रक्खेंगी। अमर कहानियों की तरह उसका नाम अमर होगा। (कुछ गम्भीर होकर) महापुरुष जन्म लेते हैं, अपने गौरव का उन्हें ध्यान रहता है, गौरव की तरह वे जीते हैं; मृत्यु उनके भी साथ रहती है। मेरा सतीश तो अभी बालक ही था। उसके सामने सारा संसार खुला था, जीने के लिए सैकड़ों वर्ष थे। हत्यारे कहते थे—एक बार बोल दे; संसार का वैभव तुझे मिल जायगा। परन्तु उसने सब ठुकरा दिया। ऐसा था वह! उन नरक के कीड़ों को धमकियाँ अब भी गूँज रही हैं। सरला, बेटी, संसार में मृत्यु से बढ़कर भी कुछ है। बच्चे ही मृत्यु पर आँसू बहाते हैं।

[सरला वैसे ही रोती रहती है। सतीश की माता उसके सिर पर हाथ फेरती है।]

माता—बेटी, चल, उसे अन्दर ले आवें। बाहर छोड़ना ठीक नहीं।

(पर्दा गिरता है।)

नोट—श्री जे० ए० फ़र्गुसन के एक एकांकी नाटक के आधार पर। भारतीय समाज के अनुकूल बनाने के लिए कथानक और पात्रों के नामों में परिवर्तन किया गया है।

डाक्टर जायसवाल का काव्य

लेखक, पंडित मोहनलाल महतो

स्वर्गीय डाक्टर काशीप्रसाद जायसवाल साहब ने एक काव्य भी लिखा था, जो आज में आपके सम्मुख उपस्थित कर रहा हूँ। आप संस्कृत-छन्दों को पसन्द करते थे और आज-कल हमारे कविवरों की टोली जिन अनाम-अरूप छन्दों को काम में लाती है उनकी भरपेट निन्दा करते थे। आपके काव्य का कथानक यों है—एक दिन 'जनता'-सम्पादक श्री रामवृक्ष बेनीपुरी, बिहार के कविश्रेष्ठ श्रीदिनकर, विख्यात पंडित बाबा राहुल जी, स्वयं जायसवाल साहब और इस नोट का लेखक, यह दल परमात्मा के निकट उनसे हुज्जत करने गया। हम लोगों ने देखा कि परमात्मा लम्बी दाढ़ी रखाये, ललाट पर चन्दन खौरे, मिर्ज़ाई और पैन्ट पहने शान से डटे हैं और अम्बरी तम्बाकू पी रहे हैं। उनके सामने पतले धागों में बँधे हिटलर, मुसोलिनी, स्टालिन, महात्मा जी आदि खिलौने की तरह लटक रहे हैं। उनके अतिरिक्त संसार के सभी विख्यात पुरुष भी लटक रहे हैं— धागों में बँधे। जब जी चाहता है, एकाध महापुरुष को तोड़-मरोड़ कर परमात्मा बड़े आराम से पान की तरह अपने विशाल मुंह में रख लेते हैं और आँखें बन्द करके चबाने लगते हैं।

हमारा दल यह तमाशा कुछ समय तक देखता रहा। अन्त में दलपति के रूप में जायसवाल साहब ने अपनी बहस आरम्भ की जो कविताबद्ध रूप में नीचे दी जाती है—

॥ अथ अगिनगिर की बेढब लिख्यते ॥

दोहा

नर नारायण बीच भई एक दिन बतकही।
खरी ऊँच त्यों नीच कड़ी-बड़ी बातें कहीं।

॥ परमात्मा उवाच ॥

नर, मैंने क्या क्या किया आँख खोल तू देख।
रचना विश्व विचित्र की और तुम्हारा भेख ॥

॥ जायसवाल उवाच ॥

आप बड़े, या नर बड़ा, पापों में अति पाप।
"एक एव निष्पाप हूँ", जी, अपने मुख आप ॥

* * *

गुनाह तेरा प्रभु, जो बता, कहूँ
हटे अँधेरा भव-ताप भी मिटे
पड़े सुखों की सब नींद सो रहे
तभी चलाया निज चक्र शूर हो।

* * *

प्रहार "क्वेटा" पर जो किया, अरे,
जवाब देते तुम से बने, कहो?
वकील गांधी तब ठाकुरादि जो
खड़े सफाई हित रो पड़े सभी ॥

* * *

हुआ अदा तू उस लोन से नहीं
जिसे खिलाया नित हिन्द ने तुझे।
भगा फिरा तू निज धर्मवाक्य से
अवाक्य सारी यह कर्मभू हुई ॥

* * *

असह्य तेरा मुख देखना हरे,
स्वकर्म काला वह और भी हुआ।
पड़े रहे क्षीर-समुद्र में सदा
निकम्म से काम यहाँ कहाँ चले ॥

* * *

सँभाल लेंगे नर, लोक आप ही
न पाप भागी नर, आप हैं यथा।

* * *

किया महापातक आपने प्रभो,
दिया मुझे जन्म स्वजन्म-भूमि में।
जहाँ हमारी न स्वतन्त्रता रही
न तथ्य या पंथ बता सका खुले ॥

* * *

न ब्रह्म ही प्राप्ति रहा रहीम ही
न भूमि भिक्षाटन योग्य ही रही।
विडम्बना "वोट" अछूत-भूत भी
जहाँ भरी वेद विदा हुए वहाँ

* * *

धरा तुम्हारी प्रभु, पींजरा बनी
गृहस्थ चारा हित रो जहाँ रहा।
पुकार "अम्बेदकरी" जहाँ पड़ी
वहाँ कहे क्या यह "अग्नि भक्षरी" ॥

हमारी ओर से जब अग्निगिर नामधारी जायसवाल जी ने परमात्मा को यह खरीखोटी सुनाई तब बेचारे बहुत ही व्यग्र हुए और उसका वर्णन आगे की पंक्तियों में पढ़िए—

निरी करारी यह बात बाण सी
लगी उन्हें साँस भरी तथा कहा:—
"अखेल खेला खल को क्षमा करो
हरो मनुष्यो मम तापना हरो।"

* * *

॥ भगवान् कथित तथ्य गीता लिख्यते ॥

* * *

न साथ देना उनका कभी नरो,
पड़े भरोसे मम आश जो रहे।
लड़ूँ बड़ा नैनिप और ही सदा
कदापि भूले न कदर्य साथ दूँ ॥

* * *

जरा हमारा इतिहास देख लो
भगे जभी क्रिश्चय "सैन्ट-सोफिया"।
किया विजेता महमूद तुर्क को
हलाल निःशंक किये वहाँ कई ॥

* * *

सहस्र नारी नर पुत्र, पुत्रिका
छिपे पड़े देवल जान सुस्थ थे।
दिया न मैंने शरणागतत्व भी
दिया किया साथ समर्थ का सदा ॥

* * *

दिया न साँगा नृप संग सीकरी
लड़ा किया बाबर-तोप आड़ में।
पुकार शूली पर की सुनी नहीं
न ईसु आँसू तक पोंछने उठा ॥

* * *

लड़ें, करें जो निज कर्म साधना,
वही करें, में कुछ भी करूँ नहीं।
तटस्थ, निष्कर्म टिका रहूँ सदा
सुनो यही प्रांजल तथ्य गीतिका ॥

तथ्य गीता सुन लेने के बाद—

* * *

माया मिटी, नयन ओट हटी, प्रभू की
वाणी रहस्य गहरी सुन तथ्य गीता

स्वर्गीय डाक्टर काशी प्रसाद जायसवाल

सोरठा—

नर नारायण नीत रोष-ताप-सरबर सुफल।
जाय भारती-भीत कभी न हो वाणी विफल ॥

* * *

बिना एक शब्द इधर-उधर किये स्वर्गीय जायसवाल जी का यह काव्य मैंने प्रकाशित करा दिया है। वे छन्द लिख लिख कर मेरे पास भेजते जाते थे और मैं उन्हें जमा करता जाता था। संशोधन का भार मुझपर था, पर जब अचानक जायसवाल जी बीमार पड़कर जीवन्मुक्त हो गये तब मैंने अपनी क़लम के स्पर्श से इस छोटे से काव्य को अछूता रक्खा। संशोधन कर देने से इसकी वह खूबी अब जाती रहेगी जो है। एक महान् पुरातत्त्ववेत्ता और पंडित के विचारों का जैसा उज्ज्वल प्रदर्शन ऊपरवाले छन्दों में हुआ है उसकी रक्षा करते हुए मैंने काट-कूट करना उचित नहीं समझा। जायसवाल जी की और भी कवितायें मेरे पास हैं, जिन्हें मैं 'सरस्वती' के इन्हीं कालमों में प्रकाशित कराने का प्रयत्न करूँगा।

(केवल "सरस्वती" के लिए—लेखक)

खुली हवा में

लेखक, श्रीयुत नरेन्द्र

(१)

खुली हवा है, खिली धूप है,
दुनिया कितनी सुन्दर, रानी!
आओ सारस की जोड़ी से
निकल चलें हम दोनों प्राणी!

उड़े चलें खेतों के ऊपर,
नीचे कोमल नरम खूंद है,
जहाँ शरद के मुक्त-हास मिस
हँसी ओस की बूंद बूंद है!

उड़ें और आगे, देखो वह—
कब से हमको पास बुलाते,
अलग-अलग, फिर एक साथ सब
वन के तरु सी शीश हिलाते!

फैली थीं मैली धोती-सी
वन में जो बरसाती नदियाँ,
लगतीं अब मरकत-महलों के
बीच छिकीं चाँदी की गलियाँ!

ज्यों उन्मुक्त हृदय स्वागत में,
लेटे कहीं शान्त निर्मल सर!
मुग्धा के निर्दोष दृगों-से
अपलक बाट देखते दिन भर!

नगर-ग्राम, जल जंगल के भी
आगे दृष्टि जहाँ तक जाती,
देखोगी वह ठाँव जहाँ पर
सृष्टि गर्व से शीश उठाती!

सटे खड़े दिग नीले नभ के
इन्द्रनील घन के घर पर्वत,
हों हाथों में चन्द्रहार ज्यों
रजत स्फार से निर्झर निःसृत!

चलो, उड़ चलें दूर देश हम,
बन-पर्वत करते अगवानी!
खुली हवा है, खिली धूप है
दुनिया कितनी सुन्दर रानी!

(२)

कर अस्ताचल पार, दीखता
निद्रित नग्न प्रशान्त हिम-शिखर,
रवि-शशि शोभित मुकुट बाँधतीं
दिवा-निशा नित नई ज्योति भर!

विजयहार बनकर स्वर्गंगा
लिपटी उससे ललक पुलककर,
उसके आगे दृष्टि न जाती।
नावों ओर अगम नीलाम्बर!

गंगा के सँग लौट पड़ेंगे
तुरत चाँदनी-भरी रात में
पूनों साथ चलेगी भरकर
मोती चाँदी की परात में!

शरत्-पूर्णिमा में देखोगी
भरता और भरे में ईश्वर!—
निमिष निमिष सुन्दरतर होगी
निशि सब सुन्दरता समेट कर!

'टूट पड़ें हम भी' पूछेंगे
बड़ी बड़ी बूंदों से तारे,
चाँद उतर आयेगा भूपर
देखोगी तुम नदी किनारे!

चल देंगे फिर नई शक्ति भर
बहला मन गंगा के तट पर,
चन्द्रहास की नाव बहा कर
वारि-वीचियों की तलवट पर!

फैला अनायास पंखों को
धीरे धीरे चढ़ अम्बर पर,
बढ़ धीरे धीरे गृह-पथ पर
रात रहे आजायेंगे घर!

आज धूप-सी खिली चाँदनी
दुनिया कितनी सुन्दर, रानी!
निकल चलें हम खुली हवा में
दिवा-निशा से दोनों प्राणी!

विश्वास का खेल

लेखक, श्रीयुत पृथ्वीनाथ शर्मा, एम० ए०

एक दिन सहसा उसकी दूकान पर एक लारी आकर खड़ी हुई। लारी के दूकान पर ठहरते ही वह एक दूध सी सफ़ेद पतलून और ट्विल की कमीज़ पहने बाहर निकल आया। सदा बिखरे रहनेवाले उसके बाल आज अच्छी तरह कटे-छँटे और कंघी किये हुए थे। उसके चेहरे पर प्रसन्नता के साथ साथ कुछ उत्तेजना भी खेल रही थी। उसके आदेशानुसार मज़दूरों ने किताबें उठा उठाकर लारी में रखनी आरम्भ कर दीं। बाज़ार-वालों के आश्चर्य का ठिकाना न रहा।

"अरे! यह क्या हो रहा है?" दूकानदारों ने उत्सुकता से प्रश्न किया।

"इन्हें भिन्न भिन्न पुस्तकालयों में भेज रहा हूँ।"

"पुस्तकालयों में? क्या दूकान छोड़ रहे हो?"

"हाँ।" उसने जवाब दिया और उनसे मुंह मोड़कर मज़दूरों को आज्ञा देने लगा।

उसे दूकान आरम्भ किये अभी कठिनता से आठ-दस वर्ष ही हुए थे, तो भी उसकी दूकान ख़ूब चल निकली थी। उसे काफ़ी आय थी। यह सब कुछ होते हुए भी वह उसे आज बन्द कर रहा था।

"आप ऐसा कर क्यों रहे हैं?" उनमें से एक-दो ने फिर प्रश्न किया।

पहले तो वह थोड़ा खीझ उठा, फिर ज़रा मुस्कराकर उसने अपने चमकते हुए बड़े बड़े नेत्रों से प्रश्नकर्ताओं का आधे क्षण तक निरीक्षण किया और ज़रा तेज़ी से कहने लगा—"इसलिए कि मेरी अन्तरात्मा की यही आज्ञा है। परन्तु आप लोग यह सब क्यों पूछ रहे हैं? क्या मुझे कभी आपने किसी के मामले में दख़ल देते देखा है?"

बात बिलकुल ठीक थी। उसने सचमुच वहाँ अपना एक अलग संसार बना रक्खा था। वह सदा पुस्तकों और अपने भावों में ही उलझा रहता था।

यह मीठी झिड़की देकर वह खुलकर मुस्कराया। उसके प्रश्नकर्ता लज्जित और निरुत्तर-से हो गये, लेकिन उनमें से एक ज़रा साहस करके कहने लगा।

"परन्तु—"

"परन्तु-वन्तु कुछ नहीं।" वह शान्त पर दृढ़ स्वर में बोला। फिर उनसे मुंह मोड़कर पास पड़ी हुई कुर्सी पर बैठ गया।

मैं भी कुछ देर से खड़ा यह सब कुछ देख रहा था। लोगों के इधर-उधर होते ही मैं आगे बढ़ा। मैं उसका बहुत पुराना ग्राहक था।

"आइए पंडित जी।" उसने प्रेम से मेरा स्वागत करते हुए कहा—"देखा तमाशा आपने।"

"हाँ।" मैंने जवाब दिया—"यह उनकी अनधिकार चेष्टा है।"

"आप तो सब कुछ जानते हैं।" वह कहने लगा—"कोई इनसे पूछे कि किसी के मदान्ध यौवन की एक कहानी को सुनकर ये लोग क्या लेंगे?"

उसके ठीक सामने मेज़ पर एक पुराना-सा चित्र पड़ा था, जिसमें एक चाँद-सी सुन्दर स्त्री के हाथ में एक ज्योति-शिखा थी और उस शिखा के चारों ओर शलभ मँडरा रहे थे। उसके नेत्र एकाएक चित्र पर जा अटके। शायद वह चित्र भी उस कहानी का स्मृति-चिह्न हो। उस चित्र की ज्योति-शिखा ने भी शायद कभी उसके हृदय में प्रज्वलित ज्वाला से स्नेह का नाता जोड़ा हो, उसे सहानुभूति प्रदान की हो। वह कई क्षणों तक एक-टक चित्र की ओर देखता रहा। फिर सहसा उधर से मुंह हटाकर वह गम्भीर और निश्चयात्मक स्वर में बोला—"न! मैं उन्हें कभी नहीं बताऊँगा।"

"क्या मैं बता सकता हूँ?"

"आप!" उसने मेरी ओर ग़ौर से देखा और मुस्करा कर बोला—"आप लाख रोकने पर भी रुकने के नहीं। मैं तुम लेखकों को ख़ूब समझता हूँ। इसलिए केवल एक निवेदन है कि आप अपनी कहानी में मेरा नाम न दें।"

"वहुत अच्छा--" मैंने प्रसन्नता से कहा।

(२)

इस कहानी में मैं उसको रूपकिशोर कहूँगा। यह उन दिनों की बात है जब रूपकिशोर के स्वप्न सुनहरे होते थे और उमङ्गें रंगीन। वादलों में अप्सरायें नृत्य करती थीं और पवन में खेलती थी एक अनूठी मादकता। अर्थात् उसने यौवन के झिलमिलाते संसार में अभी ही प्रवेश किया था।

उन दिनों वह कालेज के तीसरे साल में था, लेकिन कालेज की पढ़ाई से पूर्णतया विमुख। सारा दिन किसी बाग़ के एकान्त कोने में लेटकर कविता पढ़ता और स्वप्न सृष्टियाँ रचता रहता था। एक वृद्धी दादी के सिवा घर में और कोई न था जो उसे डाँटता-डपटता। मरते समय उसके पिता उसके लिए दो मकान छोड़ गये थे। उनकी आय से उसका गुज़र मज़े में चल रहा था। इस कारण कमाने की चिन्ता से भी मुक्त था। इसलिए उसका यह कार्यक्रम निर्विघ्न चलता जा रहा था।

उस दिन सवेरे घूमता हुआ वह नदी के उस पार पहुँच गया। वहाँ एक छोटी-सी वाटिका थी, जिसमें विविध भाँति के फूल खिले हुए थे। उनसे और उन पर के चमकते हुए ओस-कणों से अठखेलियाँ करते एक अद्भुत महक से ओत-प्रोत पवन के झोंके राह चलनेवालों से छेड़छाड़ कर रहे थे। रूप को उन झोंकों ने पूर्णतया बाँध लिया। उसके पग अनायास उस वाटिका की ओर बढ़ते हुए उसे अन्दर ले पहुँचे। छोटी-छोटी लाल-पीली इधर-उधर फुदकती हुई चिड़ियों के तीखे पर मीठे स्वर के सिवा वहाँ पूर्ण शान्ति थी। इधर-उधर लता-कुंजों में अधछिपी दो-चार बेंचें पड़ीं थीं। उन्हीं में से एक पर वह बैठ गया। कुछ क्षण तो वह पुष्पों पर थिरकती हुई सूर्य की सुनहरी किरणों के खेल देखता और कल्पना के रंगीन तारों से अपने भविष्य के स्वप्नों को उधेड़ता-बुनता रहा, फिर उसे हलकी हलकी झपकी आने लगी और अर्द्ध-सुषुप्ति की अवस्था में उसकी आँखें मुँद गईं। उसे इस तरह बैठे कुछ ही देर हुई थी कि वाटिका में बिखरे पड़े सूखे पत्तों में खड़खड़ाहट हुई और किसी की पग ध्वनि से उसने हड़बड़ाकर अपनी आँखें खोल दीं। सामने एक सोलह वर्षीय लड़की खड़ी उसकी ओर देखकर मुस्करा रही थी। वह एक अंगूरी साड़ी पहने थी। रंग चमेली सा गोरा और ओस-सा निर्मल, आँखें कुछ भूरी कुछ नीली और सागर-सी गहरी थीं। काली अलकें इधर-उधर बिखर रही थीं और दाँतों में थी बिजली की चमक। रूपकिशोर अवाक् रह गया। वह बेंच से उठकर खड़ा हो गया—"देवी, तुम कौन हो? क्या अभी आकाश से उतर रही हो?" उसके मुँह से अनायास निकल गया।

"आकाश और पाताल का झगड़ा तो पीछे देखा जायगा।" लड़की ज़रा तीव्र स्वर में बोली—"पहले आप यह बतायें कि इस वाटिका में आप किसकी आज्ञा से आये हैं।"

"आज्ञा से?"

"हाँ।"

"तो क्या फुलवारियों में जाने के लिए भी आज्ञा की आवश्यकता होती है?" रूप अब तक बिलकुल सँभल चुका था। वह ज़रा मुस्कराकर बोला—"पर यदि ऐसा है तो मैं लौटा जाता हूँ।"

यह कहकर वह चल पड़ा। लेकिन अभी कठिनता से दो ही गज़ बढ़ा होगा कि मधुर संगीत-सी ध्वनि उसके कान में पड़ी—"अरे! आप तो सचमुच भाग चले। सुनिए तो।"

"कहिए?" वह जहाँ का तहाँ घूमकर खड़ा हो गया।

"यह तो बताये जायँ कि आप कौन हैं।"

"मैं!" उसने लड़की के पतले-लम्बे शरीर को सिर से पाँव तक देखा, उसके ओठों पर शरारत से भरी एक मुस्कान खेल उठी—"मैं राह भूला एक पथिक हूँ।" यह कह कर वह द्रुतगति से उस फुलवारी से बाहर हो गया। लड़की चकित-सी उसकी ओर देखती ही रह गई।

वह थोड़ी ही देर में सड़क पर जा पहुँचा और घर की राह ली। चल तो वह दिया, पर उसे ऐसा प्रतीत हो रहा था, जैसे उसके हृदय को कोई चिनगारी छू गई हो। उसके पग बहुत ढीले उठ रहे थे। यहाँ तक कि नदी के पुल पर पहुँचकर उसके पाँवों ने आगे बढ़ने से इनकार कर दिया। वह वहीं खड़ा हो गया और नदी के उमड़ते हुए वेग और उठती हुई तरंगों की ओर देखने लगा।

न मालूम वह कितनी देर वहाँ खड़ा रहा। जब उसने फिर घर का रास्ता पकड़ा तब सूर्य की किरणें सीधा उसके सिर पर आक्रमण कर रही थीं।

(३)

दोपहरी के ढलते तक उस चिनगारी ने उसके हृदय में एक अग्नि-शिखा प्रज्वलित कर दी। बेचैनी के डग भरता हुआ वह घर के अपने कमरे में इधर से उधर घूमने लगा। परन्तु शान्ति कहाँ? इसी उधेड़-बुन में लगभग शाम हो गई। वह फिर घर से बाहर निकल पड़ा। पग सुबह के रौंदे हुए पथ पर चल पड़े।

जिस समय वह उस वाटिका के बाहर तक जा पहुँचा होगा, सूर्य अपनी अन्तिम किरणें समेट चुका था।

"रुक क्यों गये?" चमेली की चार-पाँच कलियाँ इकट्ठी तोड़कर अपनी फूलों से भरी झोली में डालते हुए वही लड़की ज़रा हँस कर बोली—"आप अभी तक पथ के लिए ही भटक रहे हैं क्या?"

"पथ के लिए तो नहीं, पर अब कुछ और ढूँढ़ता हुआ इधर आ निकला हूँ।" वाटिका में घुसते हुए उसने ज़रा गम्भीर स्वर में जवाब दिया।

लड़की खिलखिलाकर हँस पड़ी—"मृग कस्तूरी के लिए तो नहीं भटक रहा है?"

'कस्तूरी के लिए तो नहीं, पर किसी मृगनयनी ने उसे पागल अवश्य बना दिया है,' यह उत्तर उसकी जिह्वा पर आकर लौट गया, बाहर आने का साहस न पकड़ सका, इसलिए उसने प्रत्युत्तर में थोड़ा मुस्करा भर दिया, और वहाँ पड़ी हुई एक बेंच पर जाकर बैठ गया।

"ख़ूब वाटिका है आपकी।" कुछ ही देर के अनन्तर वह बोला—"पुष्पों, लता-कुंजों और वृक्षों का इतना अद्भुत सम्मिश्रण मैंने और कहीं नहीं देखा। वाटिका क्या है, कला की अद्वितीय चीज़ है।"

"क्यों न हो? इसका सृजन भी तो एक कलाकार की देख-रेख में हुआ था।" लड़की कहने लगी—"वाटिका के एक एक पौधे को उनकी कलामय कोमल उँगलियों की याद अभी तक न भूली होगी। इनके कानों में उनकी स्नेहमयी मधुरवाणी अभी तक गूँज रही होगी।" यह कहकर वह थोड़ी देर के लिए रुक गई, फिर एक दीर्घ निःश्वास छोड़कर बोली—"परन्तु हम सबको छोड़कर वे एक दिन चल ही तो दीं।"

"वे देवी कौन थीं?"

"मेरी माता!" लड़की का गला भर आया। पर वह शीघ्र ही सँभल गई और ज़रा मुस्कराकर कहती चली गई—"जाते समय यह वाटिका वे मुझे सौंप गईं थीं, इसलिए आज-कल मैं ही इसकी देख-भाल करती हूँ।"

वाटिका के एक कोने में लताओं में उलझा हुआ पत्थर का एक छोटा-सा बहुत ही सुन्दर मकान था। उसकी ओर संकेत करके रूपकिशोर ने प्रश्न किया—"आप वहाँ रहती हैं क्या?"

"हाँ।"

"पिता के साथ?"

"नहीं। वे तो माता से भी कुछ पहले स्वर्ग सिधार गये थे। मैं अपने चाचा और चाची के साथ रहती हूँ। सहजू चाचा भी प्रायः इधर ही रहते हैं।"

"सहजू चाचा कौन?"

"वे मेरे चाचा के मित्र हैं।" लड़की ने जवाब दिया।

इतने में किसी ने ज़ोर से पुकारा—"मेनका, किधर है तू?"

"अब आप जायें।" लड़की ज़रा उत्तेजित स्वर में बोली—"मेरी चाची मुझे बुला रही हैं।"

वह उतावली से उठा। एक बार फिर जी भरकर लड़की की ओर देखा और उड़ता हुआ वाटिका से बाहर हो गया।

कुछ ही दूरी पर रावी नदी चाँद और कहीं कहीं से फूटते हुए तारों की किरणों से अठखेलियाँ करती हुई बहती चली जा रही थी। उसी के किनारे वह रेत पर जाकर बैठ गया। नदी के उस पार मल्लाहों की झोंपड़ियों का क्षीण प्रकाश कहीं कहीं पानी में झिलमिला रहा था। सैर के लिए आये हुए लोगों की दो-चार नावें तीव्रता से लौट रही थीं। वह कुछ क्षणों तक उनकी ओर देखता रहा, फिर उठकर ज़रा बेचैनी से उस बालू पर टहलने लगा।

मेनका! स्वर्गीय अप्सरा! इतना रूप, इतना यौवन! उसके हृदय की धड़क उत्तरोत्तर बढ़ रही थी। उसने अपने आप पर प्रभुत्व पाने का बहुत प्रयत्न किया, पर व्यर्थ। इतना परास्त तो आज तक वह कभी नहीं

हुआ था। वह बहुत देर ऐसे ही टहलता रहा। फिर थककर बैठ गया और अपने भविष्य का काल्पनिक चित्र बनाने लगा।

वह बहुत देर तक वहाँ चुपचाप बैठा रहा। मल्लाहों की झोपड़ियाँ अन्धकार में विलीन हो गईं। आकाश में तारों ने पूर्ण आधिपत्य जमा लिया। चारों ओर सन्नाटा छा गया।

सहसा एक रेलगाड़ी गड़गड़ शब्द करती हुई नदी के पुल को पार कर गई। यह बारह बजेवाली गाड़ी तो नहीं है? वह चौंक पड़ा! चाँद और तारों की क्षीण ज्योति में कलाई पर बँधी हुई घड़ी की ओर देखा। हाँ, बारह बज चुके थे।

वह तेज़ी से घर की ओर चल पड़ा।

इसके अनन्तर तो प्रायः वह रोज़ ही उस वाटिका की सैर करने लगा। कुछ ही दिनों के पश्चात् उसे पता लग गया कि दोनों के हृदयों में एक ही अग्नि प्रज्वलित है।

(४)

"न, मुझसे यह काम न हो सकेगा।" मेनका ने भर्राई हुई आवाज़ में कहा। उसके नेत्र लाल हो रहे थे, आँसू बह रहे थे।

"क्यों?" मेनका की क्रुद्ध चाची ने कड़ककर पूछा। उसके डरावने नेत्र मेनका के चेहरे पर गड़ गये।

मेनका ने कुछ जवाब न दिया। वह कुछ दूर बैठे हुए अपने चाचा और सहजू की ओर दीनता से देखने लगी। परन्तु उन पर कुछ भी असर न हुआ। उसके चाचा ने एक जँभाई ली और मेनका की ओर से दृष्टि हटाकर वह अपनी पत्नी की ओर देखने लगा। सहजू अपनी बड़ी बड़ी अधपकी मूँछों को खुजला रहा था। वह अपने इसी महत्त्वपूर्ण काम में लगा रहा।

"बोलती क्यों नहीं?" हथौड़े की चोट के-से स्वर में चाची चिल्लाई।

"इसलिए....।" मेनका ने आरम्भ किया, पर रुक गई। लेकिन आधे क्षण के अनन्तर ही अपना सारा साहस बटोरकर एक साँस में कह गई—"इसलिए कि मैं उससे प्रेम करती हूँ। धोखा न दे सकूँगी।"

"प्रेम!" उसकी चाची पागलों की तरह खिलखिला कर हँस पड़ी और व्यंग्य से बुझे हुए स्वर में बोली—"प्रेम कोई चीज़ नहीं। निरा ढकोसला है। यौवन की हँडिया का उबाल है। दो-चार वर्ष के अनन्तर जब शरीर शिथिल हो जायगा, प्रेम ढूँढ़े न मिलेगा। यह कहानी किसी और को सुनाना।"

मेनका चुप रही। इस निराले तर्क के सम्मुख वह कह ही क्या सकती थी? उसे चुप देखकर चाची फिर बोलने ही जा रही थी कि उसके पति ने संकेत से उसे रोक दिया। ज़रा आगे बढ़कर मेनका की पीठ पर प्रेम से एक-दो बार अपना टेढ़ा-मेढ़ा हाथ फेरा। फिर काले बिन्दुओं से भरे हुए टूटे-फूटे दाँत प्रदर्शित करता हुआ मुस्कराया और धीमे स्वर में बोला—"बेटी, इसमें धोखे की कोई बात नहीं। रुपया तो मुझे क़र्ज़ लेना है और मैं ही अदा करूँगा। उसे तो केवल मेरी ज़मानत देनी है। यदि कोई और ज़मानत देनेवाला मिल जाता तो मैं तुझे और उसे बिलकुल तकलीफ़ न देता। तुम्हारे ज़रा सा कहने पर हमारे सब कष्ट दूर हो सकते हैं। क्या तुम हमें उबार न लोगी बेटी!"

"और यदि आज तुम्हारा प्रयत्न विफल हो गया," सहजू सहसा चैतन्य होकर बीच में ही बोल उठा—"तो कल इस वाटिका से भी हाथ धो बैठोगी।"

"वाटिका से?" उसके चाचा और चाची ने चकित होकर एक साथ ही सहजू की ओर देखा। लेकिन उसने एक इशारे से ही दोनों को चेता दिया कि वह स्फूर्ति के पवन के झोंकों से प्रेरित कल्पना की उड़ान भर रहा है। वे दोनों पलक मारते ही सँभल गये। मेनका को भ्रम का आभास तक न हुआ।

"वाटिका?" मेनका ने आश्चर्य से पूछा।

"हाँ वाटिका!" वह बहुत ही मृदुल स्वर में कहता चला गया—"तुम्हें सुनकर आश्चर्य होगा कि यह तुम्हारे पिता के समय से गिरवी है। तुम्हें क्या बताऊँ, तुम्हारे चाचा किन यत्नों और प्रार्थनाओं के द्वारा और कितनी अनुनय-विनय करके महाजन को टालते चले आ रहे हैं।"

"किन्तु—"

सहजू ने मुस्करा कर फिर मेनका को वहीं रोक दिया—"यही पूछना चाहती हो न कि तुम्हें इस बात का क्यों पता न लगा। मैंने इन्हें कई बार कहा भी कि मेनका अब सयानी है, इसे सब कुछ बता दो, परन्तु तुम्हारी चाची

ने साफ़ इनकार कर दिया, बोलीं कि सब कष्ट वे स्वयं सह लेंगे, पर अपनी फूलों से भी कोमल बिटिया का नन्हा-सा हृदय कभी न दुखायेंगे।" यह कहकर वह चुप हो गया।

उसके चाचा और चाची में इतनी महत्ता है, यह ऊँचाई है, यह जानकर मेनका का हृदय प्रफुल्लित और द्रवित हो उठा! उफ़! वह उनके साथ कितना अन्याय करती चली आ रही है। वह प्रभावित स्वर में बोली—"मैं स्थिति से बिलकुल अनभिज्ञ थी, इसलिए ज़िद कर रही थी।"

उसके नेत्रों में स्नेह का जल छलक रहा था। वह पूर्णतया जीती जा चुकी थी।

"भला तुम्हीं बताओ," अपनी विजय को निश्चित करने के लिए सहजू ने अन्तिम वार किया—"आज इतना झगड़ा करने पर भी तुमने इस विषय का क्या एक भी शब्द इनके मुख से सुना?"

"झगड़ा करना मेरी भूल थी।" मेनका ने पश्चात्ताप-भरे स्वर में स्वीकार किया। फिर अपनी चाची की ओर जिसने अब तक पता नहीं कहाँ से लाकर अपने नेत्रों में जल का एक स्रोत इकट्ठा कर लिया था, देखकर बोली—"मैं क्षमा चाहती हूँ।"

चाची ने आगे बढ़कर उसे छाती से चिपटा लिया—"मेरी रानी बेटी! जाओ रूप बहुत देर से तुम्हारी प्रतीक्षा में बैठा होगा।"

वह चुपके से उठकर मकान से बाहर हो गई। उसके चाचा ने आगे बढ़कर विजयोन्मत्त सहजू की पीठ ठोंकी।

"यह चतुरता कहाँ से सीखी है तुमने?" बुढ़िया ने प्रशंसात्मक स्वर में कहा। फिर उठकर द्वार की ओट से वाटिका की ओर देखने लगी।

(५)

रूप को मनाने में मेनका को कुछ भी चेष्टा न करनी पड़ी। वह तो जैसे पहले से ही माना हुआ बैठा था। उन रसभरे ओठों से आज्ञा पाकर तो वह अपना जीवन तक अर्पण कर सकता था। यहाँ तो केवल दस-बारह हज़ार रुपये के दो मकानों के ही खोने का डर था। उस स्वर्गीय प्रेम के जादू में उलझे हुए मन के प्रति उन मकानों का मूल्य ही क्या था?

इससे अगले दिन ही काग़ज़ रजिस्ट्री हो गया। शहर के प्रसिद्ध महाजन शामू शाह ने रूपकिशोर की ज़मानत मिलने पर बिना किसी हिचकिचाहट के लाला दामोदरदास—मेनका के चाचा—को बीस हज़ार रुपया क़र्ज़ दे दिया। और फिर वह हुआ जो रूप ने भूल कर भी न सोचा था। एक मास के अनन्तर एक दिन जब वह वहाँ पहुँचा तब वाटिका के चारों ओर लोहे का जँगला लग रहा था। एक अजनबी कान में एक टूटी-फूटी पेंसिल लगाये और हाथ में एक पुरानी-सी पाकेट-बुक लिये मज़दूरों की देख-रेख कर रहा था। उसका एक एक हावभाव प्रदर्शित कर रहा था कि वह किसी साहूकार का मुंशी है। रूप उसी के पास पहुँचा।

"लाला दामोदरदास को यह क्या सूझी है?" वह मुंशी की ओर देख कर बोला।

"यह नये मालिक की आज्ञा से हो रहा है।" मुंशी ने बेपरवाही से जवाब दिया।

"नये मालिक? और दामोदरदास कहाँ गये?"

"इसे बेच गये हैं। उन्हें इसे बेचे हुए आज दो सप्ताह होने को आये हैं।"

"दो सप्ताह?" रूप ने आश्चर्य से कहा—"अरे परसों तो वे यहीं थे।"

"हाँ, हमने कल ही क़ब्ज़ा लिया है।"

"क्या आप जानते हैं, वे कहाँ गये हैं।" रूपकिशोर ने फिर प्रश्न किया।

"नहीं।"

"ज़रा अपने मालिक से तो पूछिएगा। शायद वे जानते हों।"

"वे भी नहीं जानते।" मुंशी ने बात ख़त्म करने के ढंग से जवाब दिया।

रूप वहाँ से लौट पड़ा। वाटिका के अड़ोस-पड़ोस में इधर-उधर पूछ-ताछ की, पर व्यर्थ। कोई भी कुछ नहीं जानता था। वह कई दिनों तक खोज करता रहा, पर कुछ पता न चला। ऐसा प्रतीत होता था, जैसे वे सबके सब अदृश्य पवन में विलीन हो गये हों। आखिर थककर उसने खोज बन्द कर दी, और कुछ दिन घर में बैठकर ही आहें भरने का निश्चय कर लिया। परन्तु इसका भी उसे अधिक दिन तक अवकाश न मिला।

अभी एक मास ही और गुज़रा था कि उसे अदालत से सम्मन आ पहुँचा। महाजन ने अपने रुपये का दावा कर दिया था। दामोदरदास का कहीं पता न था और चूँकि क़ानून की दृष्टि में ज़मानत देनेवाले का उत्तरदायित्व क़र्ज़ लेनेवाले के बराबर ही होता है, कुछ ही दिनों के अनन्तर रूपकिशोर के विरुद्ध सूद और अदालत का ख़र्च मिलाकर कोई तेईस हज़ार की डिक्री हो गई। डिक्री होते ही महाजन ने रूपकिशोर के दोनों मकान नीलाम करवा दिये, जिनका मूल्य लगभग तेरह हज़ार उतरा। बाक़ी रुपये के लिए महाजन ने उसे जेल की धमकी दी। बहुत ही अनुनय-विनय करके इस प्रतिज्ञा पर कि वह ज्यों-ज्यों कमाता जायगा, ऋण उतारता चला जायगा, रूपकिशोर ने महाजन से पिंड छुड़ाया और एक छोटी-सी किताबों की दूकान खोल कर बैठ गया।

(६)

लगभग दस वर्ष बीत गये, परन्तु मेनका तथा उसके घरवालों का कुछ पता न चला और न रूपकिशोर को अपनी हृदय की देवी मेनका की याद ही भूली। उसे यह पूर्ण विश्वास था कि उन लोगों के ग़ायब होने में मन्द-भाग्य के सिवा किसी का भी दोष नहीं। कभी कभी उसके मन में सन्देह के बीज का आरोपण अवश्य हो जाता, परन्तु उसके अंकुरित होने से पहले ही वह उसको मसल डाला करता था।

क्या मालूम वे सब कहाँ कहाँ मारे मारे फिर रहे हैं? विधि के विधान ने उन बेचारों को कैसी बुरी तरह ग्रसा है। प्रायः प्रतिदिन ऐसे ऐसे विचारों से उसका कोमल हृदय उन सबके प्रति सहानुभूति से लबालब भर उठता था। पिछले दस वर्षों से लगातार उनका लादा हुआ ऋण का बोझा उतारते हुए भी उनके प्रति उसके मन में कठोर भावना न प्रवेश पा सकी। ऋण को तो वह अपना सौभाग्य समझता था, क्योंकि इससे उसकी आदर्शवादिता को एक अलौकिक सन्तोष मिलता था। क्या वह अपनी प्रेमिका के लिए त्याग नहीं कर रहा था? उसका वश चलता तो वह आज भी ऋण के अतिरिक्त अपनी मेनका के चरणों में सोने-चाँदी के टुकड़ों का ढेर लगा देता। उसकी मेनका! उसके लिए अब भी वह क्या नहीं कर सकता था। आज भी उसका हृदय मेनका के लिए उसी तरह तड़प रहा था। इसलिए वह अब भी प्रायः उस वाटिका के निकट जिसके साथ उसकी प्रियतमा की मधुर स्मृतियाँ बँधी थीं, जा बैठा करता था।

जिस स्थल से यह कहानी आरम्भ होती है उससे एक दिन पहले की बात है। दो-चार दिन से सख़्त गर्मी पड़ रही थी। उस दिन शाम के समय आकाश में बादल घिर आये और ठंडी हवा बहने लगी। कुछ देर तो रूपकिशोर उन उलझते-उड़ते हुए मेघों को देखता रहा। फिर एकाएक उठकर नदी की ओर चल दिया और कुछ ही देर में बड़े पुल से नदी पार करके वह अपनी चिर-परिचित वाटिका के निकट जा पहुँचा।

कुछ देर खड़ा वह नये खिले हुए और मुर्झाये हुए फूलों को, लोहे के जँगले से उलझी और कहीं कहीं से लू-द्वारा झुलसी हुई लताओं को तथा इधर-उधर वृक्षों पर फुदकते हुए पक्षियों को देखता रहा। फिर उसने नदी की ओर मुँह किया। उससे कुछ ही दूरी पर खजूर के वृक्षों का एक झुण्ड था। उनके मध्य में फटे-पुराने कपड़े पहने एक मनुष्य खड़ा था। उसकी अधपकी दाढ़ी काफ़ी बढ़ी हुई थी। चेहरे पर मलिनता थी। रूप को उसकी सूरत ज़रा परिचित-सी जान पड़ी। उत्सुकता से वह उसकी ओर बढ़ने लगा।

"चले आओ रूपकिशोर।" उस मनुष्य ने मुस्करा-कर उसका स्वागत किया।

"सहजू चाचा तुम!" रूपकिशोर आश्चर्य से बोला—"तुम कहाँ से आ निकले?"

"मैं आज सुबह की गाड़ी से उतरा हूँ। कहीं ठिकाना न था, इसलिए पग इधर ही खींच लाये। तब से यहीं बैठा हूँ।"

"पर तुम इतने दिन रहे कहाँ?"

"बम्बई।"

"क्या मेनका और वे सब लोग भी तुम्हारे साथ थे?" उसने धड़कते हुए दिल से पूछा।

"हाँ।"

"क्या अब भी वहीं हैं?" उसका गला भर आया।

"हाँ।"

"कैसी अवस्था में हैं?"

"जैसी में यहाँ थे। रहने को मकान है, नौकर हैं, खेल हैं, तमाशे हैं।"

"खूब।" रूपकिशोर ने सन्तोष की एक साँस ली और सहानुभूति से ओत-प्रोत स्वर में बोला—"लेकिन आरम्भ में तो बेचारों को बहुत कष्ट झेलना पड़ा होगा। यदि ऋण से इतना दब न जाते तो उन्हें यों मारे मारे तो न फिरना पड़ता।"

"कष्ट! ऋण!" सहजू व्यंग्य से बुझे हुए स्वर में कहने लगा—"होश में तो हो? कैसा ऋण? ऋण की बातें तुम जानो और शामू शाह जाने। अरे पगले! उन्होंने कोई ऋण नहीं लिया था। तुम्हारे जैसे भोले-भाले असामी को शामू शाह के पंजे में फँसाने का दाम छः-सात हज़ार उन्हें अवश्य मिला था।"

रूप अवाक् रह गया। इतनी बेईमानी! इतना धोखा! उसके विश्वास के साथ यह खेल खेला जायगा, उसने स्वप्न में भी न सोचा था। उसका एक एक रोम उन सबके प्रति ग्लानि से तड़प उठा। क्या इस सब कुछ के लिए वह अभी तक कोल्हू के बैल की भाँति पिसता रहा, वह पहाड़-सा ऋण उतारता रहा? क्या इस आदर्श के लिए वह इतना बड़ा त्याग कर रहा था? उसका आदर्श बालू के कणों से भी सूक्ष्म होकर छिन्न-भिन्न हो गया। खेद से भरे हुए स्वर में बोला—"खूब उल्लू बनाया उन्होंने मुझको।"

यह अवस्था देखकर सहजू उसके निकट सरक गया और उसकी पीठ पर हाथ फेरता हुआ बोला—"भैया, इसमें खेद करने की कोई बात नहीं। अनजाने पथ पर चलने में चतुर से चतुर भी ठगे जाते हैं। परन्तु मेरी ओर तो देखो! उन्हीं के खेल का बेजोड़ खिलाड़ी हूँ, फिर भी पग पग पर उनसे परास्त हो चुका हूँ। चला था उनकी थैली में हाथ डालने और लौटा हूँ अपना सर्वस्व समर्पण करके।"

यह कहकर वह थोड़ा रुका। रूप ने कुछ जवाब न दिया। सिर नीचा किये बैठा था, वैसे ही बैठा रहा।

"और यदि वह लड़की" सहजू फिर कहने लगा—"छिपाकर मुझे कुछ रुपये न दे देती तो शायद मैं आज बम्बई में भीख माँगता होता।"

रूप का सिर तेज़ी से ऊपर को उठा—"लड़की कौन मेनका?"

"हाँ।"

"क्या वह उनके षड्यन्त्रों में शामिल नहीं?" उसने ज़रा उत्सुकता से पूछा।

"बिलकुल नहीं।"

"सहजू चाचा!" रूप आधे क्षण के लिए रुका। परन्तु फिर उसने साहस करके धड़कते दिल से पूछ ही तो लिया—"क्या मेनका को कभी मेरी याद भी आई?"

"भैया, क्षमा करना! अपने झगड़े में मैं तुम्हारी बात बिलकुल भूल रहा था।" सहजू अपराधियों के-से स्वर में बोला—"मेनका को तो तुम्हारी याद एक क्षण के लिए भी नहीं भूली। वह तो अभी तक तुम्हारे वियोग में आँसू बहा रही है।"

"सच कहते हो?" रूप का चेहरा आनन्द से खिल उठा। हृदय और भी ज़ोर से धड़कने लगा।

"बिलकुल सच। उसके चाची-चाचा ने तुम्हारे विरुद्ध कई कल्पित कथायें गढ़कर उसे सुनाईं, परन्तु तुम्हारे प्रति उसके भावों के दुर्ग में ज़रा-सा छिद्र भी करने में सफल नहीं हो सके। दामोदरदास और उसकी पत्नी के द्वारा प्रेरित अनेक नवयुवक अपना रूप, यौवन और सर्वस्व उसके चरणों में अर्पित करने के लिए आगे बढ़े, परन्तु उसने सबको ठुकरा दिया। अपने हृदय को तुम्हारे लिए सँभाले अभी तक बैठी है।"

सहजू का एक एक शब्द रूप को अमृत से ओत-प्रोत प्रतीत हो रहा था, उसे एक अनूठे मद से उन्मत्त कर रहा था। उसकी मेनका अभी तक उसकी है, यह जानकर वह आनन्दातिरेक से बच्चों की तरह उछल पड़ा और आग्रह करके सहजू से बोला—"चाचा, मुझे वहाँ ले चलो। जल्दी ले चलो। क्या चल सकोगे?"

"क्यों नहीं?"

"कब?"

"जब तुम चाहो!"

"तो कल ही चलो।" रूपकिशोर व्यग्रता से बोला—"अपनी दूकान का सामान मैं कल तक इधर-उधर कर दूँगा, क्योंकि लाहौर तो लौटकर मैं आऊँगा नहीं।"

"बहुत अच्छा।"

इससे अगले दिन ही सहजू को साथ लेकर रूप अपनी वियोगिनी मेनका से मिलने के लिए चल दिया।

परियों के देश में

लेखक,
श्रीयुत भक्त मोहन

लेखक

किलमर्ग की पहाड़ी पर हमारी पार्टी स्केटिंग कर रही है (Photo by B M.)

केसर, कामिनी और शिकारों का काश्मीर आज तक न जाने कितने परदेशियों को आनन्द-विभोर कर चुका है। न जाने कितना इसपर लिखा गया होगा फिर भी यह ब्रह्मा की अख्यात सृष्टि ही बना हुआ है। जो यहाँ एक बार हो आता है वह सहस्रमुख होकर इसकी स्तुति करके भी सन्तुष्ट नहीं होता। कोई इसे 'ज़मीन का फ़िरदौस' कहता है तो कोई 'यहि अमरन कौ ओक यहीं कहुँ बसत पुरन्दर' कहकर इसे इन्द्रपुरी बतलाता है। सारे संसार के मनचले खिंच-खिंच कर हज़ारों की संख्या में प्रतिवर्ष यहाँ आया करते हैं। मैं भी इस बार उन्हीं हज़ारों में से एक था। गत अप्रैल और मई के महीने मैंने इसी स्वर्ग में व्यतीत किये थे। उनकी स्मृति जीवन भर को मेरे हृदय-पटल पर अंकित हो गई है।

सबसे पहले मैं जाकर श्रीनगर में ठहरा; समुद्रतल से ७००० फ़ुट ऊँचे मनोरम जलवायु-वाले इस स्थान ने जो चारों ओर से हिमावृत चोटियोंवाली पर्वत-श्रेणी से आवेष्ठित है, मेरे हृदय के परीलोक की कल्पना को साकार रूप दे दिया। झेलम नदी इस नगर के बीच से निकल गई है, जिसके किनारे पर चनार के घने वृक्ष पंक्तिबद्ध खड़े हैं। यहाँ हवाखोरी के लिए लोग जाया करते हैं। यह भाग नगर की सुन्दरता में चार चाँद जोड़ देता है। झेलम के दोनों तटों को मिलाने के लिए सात पुल बने हुए हैं। इन पुलों पर बाज़ार बने हुए हैं। नदी के किनारे पर छोटी-छोटी सुसज्जित नौकायें खड़ी रहती हैं, जिन पर मखमली कामदार उछलनेवाली गद्दियाँ लगी रहती हैं। 'डल' नाम की प्रसिद्ध झील इसी शहर की शोभा बढ़ाती है। इसके स्वच्छ जल में तैरते हुए कमल नेत्रों को अपार आनन्द देते हैं। डोंगियों पर
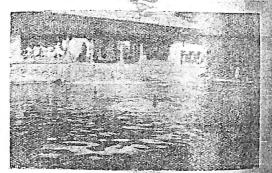
शालीमार बाग़ का प्रवेशद्वार (Photo by B. Mohan)

बैठकर इस झील में सूर्यास्त का दृश्य देखने योग्य होता है।

जम्मू होकर काश्मीर जाने में बीच में 'वेरीनाग' नामक एक प्रसिद्ध बाग़ मिलता है। इस बाग़ में विविध-प्रकार के गुलाबों की अनोखी छटा है। जब आकाश पर बादल छाये हों तब इस बाग़ में खड़े होकर आप इसका दृश्य देखिए। पर्वतों पर उगे हुए पाइन के वृक्ष और आकाश के मेघ आपको एक ही लगेंगे। यहाँ हमने झेलम का थोड़ा सा जल पीने के लिए हाथ बढ़ाया तब ज्ञात हुआ कि वह बर्फ़ से भी ज़्यादा ठंडा है।

श्रीनगर से १०-१२ मील की दूरी पर कई सुन्दर- सुन्दर बाग़ हैं। निशात बाग़, शाही चश्मा, शालीमार बाग़ अपने लोकोत्कर्ष के लिए मुग़ल-काल से प्रख्यात हैं। रविवार की छुट्टियों में इसकी मुलायम मख़मली घास पर छुट्टी का उपभोग करनेवाले सैलानियों का जमाव देखने योग्य होता है।

शालीमार बाग़ के पास ही एक सुन्दर झरना भी दिखाई देता है, जिसके किनारे पर पाइन के सुन्दर वृक्ष खड़े हुए हैं। झरने के दोनों किनारों पर फूलों की क्यारियाँ भी बनाई गई हैं। यहीं हरवान है, जो श्रीनगर का वाटरवर्क्स कहा जाता है। यहाँ एक बड़ा जल-संग्रहालय है। इसी स्थान पर पाँच फूल बाग़ भी हैं।

निशात बाग़ और चश्माशाही बाग़ लगभग एक से ही हैं। निशात बाग़ में फलों के वृक्ष हैं। यहाँ भी लोग हवा सेवन करने के लिए आते हैं, पर यहाँ की ज़मीन गीली रहती है, अतः लोग यहाँ अधिक देर नहीं ठहरते।

श्रीनगर और गुलमर्ग में २७ मील का अन्तर है। यह अन्तर पैदल चलकर भी तय किया जाता है और टट्टुओं पर भी। साधारणतया लोग टट्टुओं पर ही चला करते हैं। गुलमर्ग का जलवायु श्रीनगर की अपेक्षा अधिक ठंडा
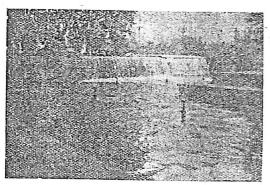
शालीमार बाग़ और उसके झरनों का एक दृश्य (Photo by B. M.)
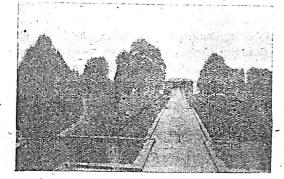
निशात बाग़ का एक दृश्य (Photo by B. M.)
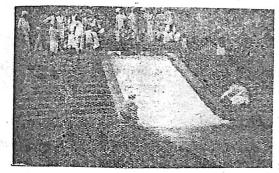
निशात बाग़ का दूसरा दृश्य। इसके झरनों का दृश्य बड़ा मनोहर है (Photo by B. M.)

शही चश्मा का एक दृश्य (Photo by B- M.)

है। यह स्थान पहाड़ियों से घिरा हुआ है। इन पहाड़ियों का दृश्य बड़ा ही सुन्दर है, विशेषतः जब इन पर बर्फ़ रहती है तब इनकी शोभा दर्शनीय हो जाती है। गुलमर्ग से ३½ मील के अन्तर पर एक स्थान खिलमर्ग है। यह बहुत ठंडा है। इसकी सड़क भी बड़ी भयानक है। बारिश के समय इस पर बड़ी बिछलन हो जाती है और कभी-कभी टट्टू बड़ी ऊँचाई से फिसल पड़ा करते हैं।

जब हम लोग यहाँ पहले पहुँचे तब सब स्थान हिमाच्छादित थे। कहीं कहीं पर, जहाँ बर्फ़ नहीं थी, चरवाहे अपनी भेड़ों को लिए हुए घूम रहे थे। यहाँ हमने स्केटिंग के लिए स्लेज मोल लिये। मुझे बर्फ़ पर चलना और स्केटिंग करना बहुत रुचिकर है। यद्यपि स्केटिंग करते हुए स्लेज पर क़ाबू रखना बड़ा कठिन होता है, पर इसमें आनन्द सचमुच अनोखा आता है।

पहलगाँव काश्मीर में सबसे अधिक स्वास्थ्यप्रद स्थान है। इसका चित्रोपम सौन्दर्य देखते ही बनता है। यह श्रीनगर से ५० मील दूर है। जो लोग बाहर से स्वास्थ्य सुधारने के लिए काश्मीर आते हैं वे अपनी छुट्टियों का अधिकांश यहीं व्यतीत करते हैं।

अमरनाथ जी की गुफा पहलगाँव से २५ मील की दूरी पर है। इस गुफा का मार्ग गर्मियों में बड़ा संकटापन्न है, विशेषतः उस समय पर जब कि बर्फ़ जमी हो। यहाँ पहुँचने में पूरे ४ दिन लग जाते हैं। यह १६,००० फ़ुट की उँचाई पर है। सड़कें भी खराब हैं। कहीं पर तो ऐसी दशा है कि घोड़े पर चढ़कर जाने का साहस ही नहीं होता। जब हम बर्फ़ीली चट्टानों पर चलते थे और वे हिलती थीं तब ऐसा लगता था कि शायद अब हम लौट कर घर न पहुँचेंगे।

हम लोग काश्मीर से लौट आये और उसे एक साल होने भी आया पर मस्तिष्क अभी तक वैसा ही ताज़ा है और काश्मीर की छटा नेत्रों में वैसी ही घूम रही है, मानो उससे हमारा जन्म-जन्मान्तर का अटूट संपर्क रहा हो। काश्मीर ऐसा ही मनोहर और आकर्षक है।
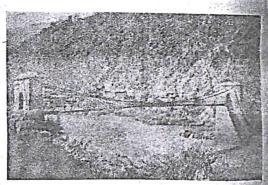
झूला-पुल के दो स्तम्भ (Photo by B. M.)

'परियों के देश में' (काश्मीर)—सम्बन्धी कुछ चि[त्र]

इन पृष्ठों में तथा 'परियों के देश में' दिए हुए चित्र श्री भक्तमोहन ने गत वर्ष अपने केमरे से स्वयं लिये थे।—सम्पादक

शाही चश्मे का प्रवेशद्वार (Photo by B. M.)
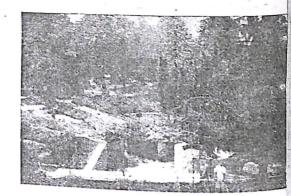
हारवन का जल-संग्रहालय (Photo by B. M.)

खिलनमर्ग की घनी झाड़ियाँ (Photo by B. M.)

श्रीनगर के जल-कल का एक दृश्य (Photo by B. M.)

खिलनमर्ग के रीगल होटल में हमारी पार्टी डिनर खा रही है

टेनमर्ग के बस-स्टेशन का एक दृश्य
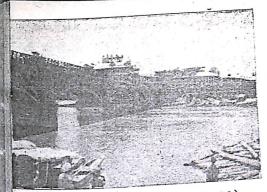
श्रीनगर का 'अमीर कादल' पुल (Photo by B. M.)
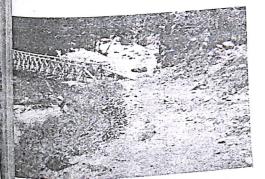
फ़िरोज़पुर नाला—एक भयंकर किन्तु सुरम्य स्थली (Photo by B. M.)
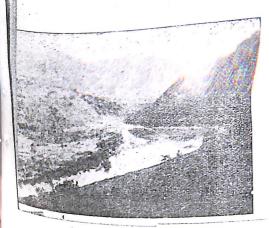
'बड़े बोल्डर' का पुल के ऊपर से लाया गया चित्र (Photo by B. M.)
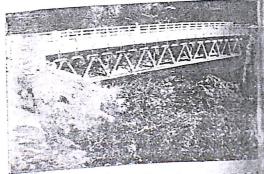
श्रीनगर के मार्ग में मिलनेवाला एक पुल (Photo by B. M.)

क्या सभी मुस्लिम पत्र मुस्लिम लीग के साथ हैं ?

लेखक, श्रीयुत प्रोफ़ेसर धर्मदेव शास्त्री

हमारे देश की स्थिति आज बड़ी दयनीय-सी हो गई है। ऐसा लगता है कि हिन्दू-मुस्लिम-समस्या हमारी उन्नति के मार्ग में पहाड़ बनकर आ खड़ी हुई है। वस्तुतः हिन्दू-मुस्लिम-समस्या आज इसलिए अपने पूरे बल से आई है क्योंकि अब उसका अन्त आगया है। वस्तुतः देश इतना आगे बढ़ गया है कि अब उसके हित की दृष्टि से प्रगति-विरोधी हितों के सर्वनाश का दिन समीप आ गया है। इसलिए हमारा तो दृढ़ विश्वास है कि कुछ समय तक भूल जाना चाहिए कि हिन्दू-मुस्लिम-समस्या भी कोई चीज़ है, क्योंकि इस समस्या को सदा सबसे आगे लाना और इस प्रकार अपना काम करना ही साम्प्रदायिक मनोवृत्ति की रीढ़ है।

जनता गतानुगतिक होती है। जैसा उससे बार बार कहा जाता है, वैसा ही वह मानने लगती है। आज ऐसा ही एक प्रभाव हम पर यह भी पड़ा हुआ है कि मुस्लिम लीग ही मुसलमानों की प्रतिनिधि संस्था है। कांग्रेसी नेता और गवर्नमेंट दोनों पर यह प्रभाव है कि मुस्लिम लीग का मुसलमानों पर अक्षुण्ण प्रभाव है। आजकल 'प्रेस' का बहुत महत्त्व है। गवर्नमेंट आफ़ इंडिया पर जिस प्रकार पंजाब का मुसलमान छाया हुआ है, इसी प्रकार पंजाब का मुस्लिम प्रेस हिन्दुस्तान पर हावी हो गया है। यह समझा जाता है कि पंजाब के मुसलमान ही मुसलमानों के वास्तविक नेता हैं। और तो और, पंजाब के साम्प्रदायिक मुसलमानों का रोब कांग्रेस पर भी कम नहीं है।

साम्प्रदायिक मुसलमानों के प्रोपेगण्डा का यह प्रभाव हुआ है कि गवर्नमेंट और कांग्रेस दोनों मानने लगे हैं कि मुसलमान मुस्लिम लीग के साथ हैं। गवर्नमेंट के तो मानने का सवाल ही नहीं उठता, क्योंकि उसी की वरद छाया में यह संस्था पली है। आश्चर्य तो यह है कि कांग्रेस भी ऐसा ही मानने लगी है। इसका एक परिणाम यह हुआ है कि साम्प्रदायिक मुसलमानों का दिमाग़ आसमान पर चढ़ गया है। इसका दूसरा परिणाम यह हुआ है कि राष्ट्रीय मुस्लिम प्रेस अपने को अनाथ की हालत में अनुभव करता है।

हिन्दुस्तान में ऐसे मुस्लिम समाचार-पत्र हैं जो जोखिम मोल लेकर मुस्लिम लीग का विरोध कर रहे हैं। कलकत्ता के एक प्रसिद्ध उर्दू मुस्लिम पत्र 'हिन्द' के निम्न अवतरण को पढ़िए—

"तो क्या हम ग़रीब मुसलमान इसलिए पैदा हुए हैं कि वे मगज़ (निर्बुद्धि) 'सरो' और फूलों की सेज पर सोनेवाले नवाबों की वज़ारत (मन्त्रिपद) के लिए मुसीबत झेलें। अगर कोई हम ग़रीबों के वजूद (सत्ता) का यह मक़सद (उद्देश्य) समझता है तो वह ग़लती पर है—मुहलिक (नितान्त) ग़लती पर। हम मुस्लिम लीग के खिलाफ़ बग़ावत करेंगे और मुस्लिम लीग के मज़हब से भी। सिर्फ़ मिस्टर जिन्ना मुस्लिम लीग के डिक्टेटर होते तो मुस्लिम लीग ऐसी भयानक ग़लतियाँ न करती। लेकिन वह "सर सिकन्दर" हैं और इनके साथी जिन्होंने मुस्लिम लीग को इस शर्मनाक पोज़ीशन में डाल दिया है। सर सिकन्दर के सामने सिर्फ़ एक ही ख़याल है—"हिन्दुस्तान की दायमी (स्थिर) गुलामी।"

'हिन्द' अपने एक दूसरे लेख में तुर्की के पुनर्निर्माता कमाल अतातुर्क के प्रति श्रद्धाञ्जलि समर्पित करता हुआ उनका मुक़ाबिला मुस्लिम लीग के लीडरों से करते हुए लिखता है—

"कमाल की मौत पर सबसे ज़्यादा आँसू उन लोगों ने बहाये जो कमाल के हर अमल के मुख़ालिफ़ हैं। ये मुस्लिम लीगिये थे। हालाँकि मुस्लिम लीग जो कुछ चाहती है, कमाल उसका दुश्मन था और कमाल ने जो कारहाये-नुमायाँ (शानदार काम) दिखाये, मुस्लिम लीग उनकी

दुश्मन है। कमाल अपने वतन की आज़ादी चाहता था, मुस्लिम लीग न हिन्दुस्तान को अपना वतन समझती है, न हिन्दुस्तान के लिए आज़ादी चाहती है। कमाल जम्हूरियत (प्रजातन्त्र) का आशिक़ (प्रेमी) था। मुस्लिम लीग जम्हूरियत को सबसे बड़ा कुफ़्र जता रही है। कमाल पाशा लातैनी लिखाई का हामी था, मगर मुस्लिम लीग फ़रसूदा उर्दू लिखाई की हामी है। कमाल औरतों की आज़ादी का क़ायल था, मगर मुस्लिम लीग औरतों को घरों में क़ैद रखने की क़ायल है। कमाल मर्दे मजाहिर (धर्मयुद्ध करनेवाला) था, मगर मुस्लिम लीग अमल सिर्फ़ बसोरना रोना, कोसने देना गालियाँ देना है। कमाल अजनबी इक़्तदार का दुश्मन था मगर मुस्लिम लीग ने तो अपनी ज़िन्दगी ही अजनबी इक़्तदार से वाबस्ता कर रक्खी है। खुदारा कोई बताये कि कमाल और मुस्लिम लीग में कहीं से भी कोई रिश्ता मौजूद है। कमाल के नाम के साथ जिनाह और सिकन्दर का नाम ले लें तो मेरे खयाल में इतना बड़ा गुनाह होगा कि ताज्जुब नहीं कि आसमान फट पड़े।"

'हिन्द' ने जिस प्रकार मुस्लिम लीग को स्पष्ट शब्दों में डाँटा है, कोई राष्ट्रीय पत्र इससे अधिक क्या लिख सकता है? इतने पर भी यदि यह समझा जाये कि सभी मुस्लिम पत्र मुस्लिम लीग के साथ हैं तो यह कितनी बड़ी ग़लती है। और भी सुनिए इसी 'हिन्द' ने अन्यत्र एक अंक में 'अगर हिन्दोस्तान हमारा वतन नहीं है तो?' शीर्षक से एक अग्रलेख लिखा है, जिसका निम्न अंश विशेष रूप से ध्यान देने योग्य है—

"मुस्लिम लीग की ज़हीनियत यह है कि वह हिन्दोस्तान को सिरे से मुसलमानों का वतन नहीं समझती। मुस्लिम लीग के फ़िलासफ़र फ़र्माते रहे हैं कि मुसलमान का सिरे से कोई वतन ही नहीं, क्योंकि सारी दुनियाँ इसका वतन है। अगर "मुस्लिम हैं हम वतन है सारा जहाँ हमारा", यह नारा सही है तो मुसलमानों के लिए हिन्दोस्तान और इँग्लिस्तान बराबर हैं। लेकिन क्या मुसलमान इँग्लिस्तान में भी वही हक़ तलब कर सकते हैं जिनका मुतालबा वे हिन्दोस्तान में कर रहे हैं? नहीं। हालाँकि इँग्लिस्तान भी बक़ौल आपके आपका वतन है, हिन्दोस्तान आपका वतन नहीं है। फिर आप किस मुँह से इस मुल्क में अपने किसी हक़ का दावा करते हैं? मुस्लिम लीग हक़ूक़ का दावा तो करती है, मगर इस ऐलान के साथ कि 'मुसलमानों का वतन हिन्दोस्तान नहीं है।' इस ऐलान के साथ मुसलमानों का हिन्दोस्तान में कोई हक़ भी बाक़ी नहीं रहता।"

इधर मिस्टर जिन्ना ने यह स्पष्ट कर दिया है कि हिन्दुस्तान एक राष्ट्र नहीं है, वह तो कई राष्ट्रों का समूह है। इस प्रकार उनकी दृष्टि में हिन्दुस्तान मुसलमानों का वतन नहीं। 'हिन्द' ने इसी का कैसा युक्तियुक्त उत्तर दिया है? इतने पर भी जो लोग यह समझते हैं कि मिस्टर जिन्ना की हर भली-बुरी बात का सभी मुस्लिम पत्र समर्थन करते हैं—उनके लिए यदि यह कहा जाय कि 'पश्यन्नपि न पश्यति' देखते हुए भी नहीं देखते, तो यह अनुचित नहीं होगा। कलकत्ते के एक प्रतिष्ठित मुस्लिम पत्र की मुस्लिम लीग के सम्बन्ध में क्या सम्मति है, यह 'हिन्द' के उपरि उद्धृत अंशों से भली भाँति विदित हो सकता है। अब ज़रा मिस्टर जिन्ना के निवासस्थान बम्बई के एक प्रतिष्ठित मुस्लिम पत्र का भी मुलाहिज़ा कीजिए—

बम्बई के 'हलाल' के सम्पादकीय में मिस्टरअली बहादुर ख़ाँ लिखते हैं—"मुख़्तलिफ़ असेम्बलियों में जंग व आज़ादी के रेज़ुलेशन पर जो तरमीमें मुस्लिम लीग की तरफ़ से पेश की गईं, इसमें जम्हूरियत को बाशिन्दगाने हिन्द की फ़ितरत (स्वभाव) और मिज़ाज के यकसर मनाफ़ी (विरोधी) क़रार दे दिया गया था। मगर इस तरमीम में सिर्फ़ कांग्रेसी जम्हूरियत पर ही एतराज़ होता तो और बात थी, लेकिन यह तो सिरे से जम्हूरियत को ही हिन्दोस्तान की आबहवा के नामुवाफ़िक़ क़रार दे दिया गया है। कांग्रेस ने जो मुतालबा पेश किया है इसमें बर्तानिया से तक़ाज़ा किया गया है कि वह हिन्दोस्तान की आज़ादी का इस शर्त के साथ ऐलान कर दे कि जो दस्तूर हिन्दोस्तानी बनायेंगे अगर उसे नुमायाँ अक़्लियतों की ताईद हासिल हो तो बर्तानिया उसे मंज़ूर कर लेगा। अगर मिस्टर जिन्ना और उनकी मुस्लिम लीग—हिन्दोस्तान की आज़ादी की राह में संगेगराँह नहीं बनना चाहते तो इस आम मुतालबे में कांग्रेस का साथ दें। ऐसे खुले-साफ़ और सादा मुतालबा में बर्तानिया के मुक़ाबिला में कांग्रेस का साथ न देना वतन के साथ खुली ग़द्दारी है।"

बम्बई के ही एक दूसरे मुस्लिम पत्र 'इन्क़लाब' के निम्न शब्दों पर ध्यान दीजिए—

"हमें उम्मीद है कि मिस्टर जिन्ना अब इन्तक़ाम (ईर्ष्या) और ग़ुस्सा को दिल से निकाल कर कांग्रेस की 'नाइन्साफ़ियों' पर रवायती ग़म व ग़ुस्सा का इज़हार नहीं करेंगे बल्कि यह समझते हुए कि 'सदियों की बरबादियों नाकामियों और महरूमियों के बाद हिन्दुस्तान की बदबख़्ती को दूर करने का वक़्त आ गया है। और कि इसका वाहिद रास्ता हिन्दू-मुस्लिम-एतक़ाद (विश्वास) है, अपनी ज़िम्मेवारी को महसूस करें।"

ऊपर हमने तीन माने हुए मुस्लिम पत्रों के कुछ अंश उद्धृत किये हैं जिनसे मालूम हो सकता है कि मुस्लिम पत्र मिस्टर जिन्ना और लीग के कितने विरोधी हैं, इसलिए यह समझना कि सारे मुस्लिम पत्र लीग और जिन्ना के साथ हैं, सरासर ग़लत है।

यह ठीक है कि हिन्दू-मुस्लिम एकता के बिना देश स्वतन्त्र नहीं हो सकता, परन्तु एकता के नाम पर उन्हीं साम्प्रदायिक विद्वेष फैलानेवाले व्यक्तियों को महत्त्व देना जिनके कारण यह समस्या सुलझ नहीं रही है, समस्या को उलझाये रखना है।

यदि कांग्रेस जैसी कि अब उसकी स्थिति और नीति है मिस्टर जिन्ना को भूल जाय और वह अपना ऐसा भाव कुछ दिनों तक बनाये रहे तो मुस्लिम जनता में अन्दर ही अन्दर जो विद्रोहाग्नि सुलग रही है वह एकदम प्रकट हो जायगी। मिस्टर जिन्ना की ख्याति और प्रतिष्ठा के कारण स्वयं कांग्रेस के ही नेता बन रहे हैं।

हम तो सम्प्रदायवाद के तथा साम्प्रदायिक संस्थाओं और उनके नेताओं सबके समानरूप से विरोधी हैं, और इनकी उपेक्षा करने के पक्ष में हैं। साम्प्रदायिकता बुरी है, परन्तु साम्प्रदायिकता से डरना भी अच्छा नहीं है।

प्रश्न

लेखिका, श्रीमती सत्यवती शर्मा

क्यों बादल जल बरसाते हैं?

जब सीपी का उर सूना हो,
अवनी का हो संतप्त हृदय।
चातक के स्वर में क्रन्दन हो,
लतिका में कुम्हलाते किसलय।
तब इनके दृग भर आते हैं।
क्यों बादल जल बरसाते हैं?

जब लहरों में कलगान न हो,
सरिता का मिटता हो यौवन।
जब नर्तन को तरसें मयूर,
खग कूजन बिन नीरव कानन।
तब उमड़-घुमड़ घन आते हैं।
क्यों बादल जल बरसाते हैं?

जब जीवन में अवसाद भरे,
सपनों में भी पाऊँ रोदन।
जब श्वासों से ज्वाला निकले,
हो प्राणों में भय की सिहरन।
वे ही आँसू बन आते हैं।
क्यों बादल जल बरसाते हैं?

मेरी तो पागल करुणा भी,
अज्ञात दिशा में लीन हुई।
उर मरुथल से भी सूखा है,
जीवन-सरिता गति हीन हुई।
अब क्यों अस्तित्व मिटाते हैं।
क्यों बादल जल बरसाते हैं?

सीटों पर बैठे ही थे कि ट्रेन जोहान्सवर्ग स्टेशन पर पहुँच गई।

जोहान्सवर्ग-स्टेशन पर बड़ी धूम-धाम थी। ट्रान्सवाल की इन्डियन कांग्रेस ने मेरे स्वागत का बड़ा भारी आयोजन किया था। स्टेशन पर भारतीयों का एक बहुत बड़ा समुदाय पुष्पहारों और गुलदस्तों के साथ मेरे स्वागत के लिए उपस्थित था। गवर्नमेंट आफ़ इन्डिया की ओर से सर रज़ाअली के अँगरेज़ सेक्रेटरी मिस्टर रिडली, आई० सी० एस०, भी मुझको लेने के लिए स्टेशन पर आये थे। स्टेशन पर उतरते ही ट्रान्सवाल-इन्डियन-कांग्रेस के मंत्री श्री नाना ने उपस्थित सज्जनों का परिचय दिया।

स्टेशन से हम लोग डाक्टर दादू के मकान पर लाये गये, जहाँ हमारे ठहरने की व्यवस्था की गई थी। ठहरने का इन्तज़ाम पहले तो जोहान्सवर्ग के सबसे बड़े योरपीय होटल 'कार्लटन' में किया गया था, जहाँ हिन्दुस्तानी नहीं ठहर सकते थे, पर चूँकि मैंने होटल में ठहरने से इनकार कर दिया था इसलिए डाक्टर दादू के यहाँ प्रबन्ध किया गया था। डाक्टर दादू मुसलमान थे। वे ट्रान्सवाल के सोशलिस्ट नेता थे और अविवाहित थे। डाक्टर दादू के यहाँ पहुँचते ही कुछ ही घंटों में हमारा उनका ऐसा सम्बन्ध हो गया मानो हम एक-दूसरे को वर्षों से जानते हों। डाक्टर दादू का घर हमें अपना ही घर सा जान पड़ा।

डाक्टर दादू के यहाँ ब्रेकफ़ास्ट कर हम लोग निश्चिन्त हुए ही थे कि जोहान्सवर्ग के मुख्य अँगरेज़ी दैनिक पत्र 'स्टार,' 'डेलीमेल' और 'सन्डेस्टेंडर्ड' के प्रतिनिधि आ पहुँचे। उनके पास कैमरे भी थे। मेरा इन्टरव्यू लिया, तस्वीरें भी उतारीं। इन्टरव्यू में जब मुझसे पूछा गया कि इन्डियन नेशनल कांग्रेस का ध्येय क्या है तब मैंने साफ़साफ़ कह दिया कि पूर्ण स्वतंत्रता और ब्रिटिश साम्राज्य से सम्बन्ध-विच्छेद। पत्रों में मेरा इन्टरव्यू जैसा का तैसा छप गया और ब्रिटिश साम्राज्य से सम्बन्ध विच्छेद की बात पर तो वहाँ बड़ी हलचल मची।

पत्र-प्रतिनिधियों से मिलने के बाद हम लोग 'सैंधेम होटल' में सर रज़ाअली से मिलने गये। कौंसिल आफ़ स्टेट के मेरे इन पुराने मित्र ने मेरा बड़े उत्साह और सम्मान के साथ स्वागत किया और अपनी नई हिन्दू पत्नी लेडी अली से मिलाया। इसके बाद तो जब तक मैं जोहान्सवर्ग में रहा तब तक सर रज़ाअली प्रायः मेरे साथ ही रहे। मेरे सम्मान में जितने लंच, जितनी पार्टियाँ, जितने डिनर दिये गये सभी में सर रज़ाअली मौजूद थे और सभी में उन्होंने मेरी प्रशंसा में कुछ न कुछ अवश्य कहा। इन सारे भाषणों में सर रज़ा ने राजनैतिक चर्चा भी की। उत्तर में जब जब मैं बोला, मेरे प्रति सद्व्यवहार के लिए मैंने उन्हें धन्यवाद दिया और उनके राजनैतिक मतों का तीव्र विरोध किया। सर रज़ाअली के और मेरे इस पारस्पिरिक प्रेम और विरोध का यह विचित्र सम्मिलन था। जोहान्सवर्ग के सारे पत्र उस सप्ताह इन समाचारों से भरे रहे।

जोहान्सिवर्ग में पहले दिन का लंच था श्री वी० के० पटेल के यहाँ और डिनर था महात्मा गांधी के प्रसिद्ध जर्मन यहूदी शिष्य मिस्टर कैलन बैक के यहाँ। मिस्टर कैलन बैक के डिनर को तो मैं कभी न भूलूँगा। कितने सुन्दर स्थान पर मिस्टर कैलन बैक का बँगला है। एक ऊँचा टीला है, जिसके दोनों ओर आधा आधा जोहान्सवर्ग बसा हुआ है। इसी टीले पर उनका यह सुन्दर बँगला है। उनका धंधा इमारतों का निर्माण है। इसी लिए वह बँगला शिल्पकला का एक उत्तम नमूना है। सादगी में सौन्दर्य का कितना अच्छा सम्मिलन यहाँ दिखाई दिया। बँगले पर से बिजली की अगणित बत्तियों से आलोकित जोहान्सवर्ग का कितना सुन्दर दृश्य दिखाई देता था। उनका बँगला महात्मा गांधी की मूर्तियों और चित्रों से भरा हुआ है। उनका सारा जीवन भी महात्मा गांधी के विचारों से निमग्न रहा है। इन धनवान् जर्मन यहूदी के जीवन में भी भारत की उस महान् आत्मा ने कैसा परिवर्तन कर दिया है। उन्होंने मांसाहार छोड़ दिया है और विपुल संपत्ति रहते हुए भी उनका रहन-सहन अत्यन्त सादा है। दक्षिण-अफ़्रीका के सत्याग्रह-संग्राम में वे भी जेल-यात्रा कर चुके हैं। अस्तु।

हम लोग मिस्टर कैलन बैक के यहाँ श्री प्रागजी देसाई के साथ गये थे। देसाई जी दक्षिण-अफ़्रीका के उन इने-गिने कार्यकर्त्ताओं में से हैं जिन्होंने अपना सब कुछ देश-सेवा पर बलिदान कर दिया है। वे महात्मा गांधी के अफ़्रीका-निवास के समय से देश-सेवा में तत्पर रहे हैं

और महात्मा गांधी के दक्षिण-अफ़्रीका-सत्याग्रह-आन्दोलन में ७ बार जेल-यात्रा कर चुके हैं। भारत के सत्याग्रह-आन्दोलन में भी दो बार जेल हो आये हैं। वे ट्रान्सवाल इंडियन कांग्रेस के मन्त्री और महात्मा गांधी के पत्र इंडियन ओपीनियन के संपादक भी रह चुके हैं। आज से देसाई जी का हमारा जो साथ हुआ वह फिर बम्बई पहुँचकर ही छूटा, क्योंकि वे हरिपुरा-कांग्रेस में सम्मिलित होने के लिए भारत आ रहे थे। देसाई जी ने मिस्टर कैलन बैक से हम लोगों का परिचय कराया। इसके बाद मिस्टर कैलन बैक ने अपनी माता, भानजी और भानजी की पुत्री से हम लोगों को मिलाया। ये जर्मन महिलायें भी मिस्टर कैलन बैक के सदृश ही अपना जीवन व्यतीत करती हैं। इनसे मिलने के बाद मैं मिला महात्मा गांधी के तीसरे पुत्र श्री रामदास गांधी से, जो स्वास्थ्य-सुधार के लिए दक्षिण-अफ़्रीका आये हुए थे और मिस्टर कैलन बैक के यहाँ ही रहते थे। रामदास जी से मैं इससे पहले कभी न मिला था। मिलते ही उनके लिए मेरे हृदय में अत्यधिक स्नेह की उत्पत्ति हो गई और यही बात उनके हृदय में मेरे लिए हुई। फिर तो डरबन से २ जनवरी को रवाना होने तक रामदास जी का और मेरा साथ एक दिन के लिए भी न छूटा और इस स्नेह में नित्यप्रति वृद्धि ही होती गई। जब २ जनवरी को हम लोग एक दूसरे से विदा हुए तब कितना दुःख हुआ मुझे और कितना उन्हें, इसके उल्लेख की यहाँ ज़रूरत नहीं है।

मिस्टर कैलन बैक के डिनर से मिस्टर कैलन बैक, उनकी भानजी की पुत्री और रामदास जी के साथ हम लोग सीधे पाटीदार-हाल को चले, जहाँ मेरे स्वागत के लिए आज ही सार्वजनिक सभा थी। हाल में तिल रखने को भी जगह शेष न थी। बहुत बड़ा जनसमुदाय हाल के बाहर खड़ा था और सुना गया कि स्थानाभाव के कारण बहुत लोग लौट भी गये। जोहान्सवर्ग के सभी वर्गों के प्रतिष्ठित व्यक्ति सभा में उपस्थित थे। सर रज़ा और लेडी अली भी सभा में पहुँच चुके थे। सुना गया कि श्रीमती सरोजिनी नायडू के आगमन के बाद जोहान्सवर्ग में इतनी बड़ी सार्वजनिक सभा कभी नहीं हुई थी। सभा के सभापति थे ट्रान्सवाल-इंडियन कांग्रेस के स्थानापन्न प्रेसीडेंट मिस्टर डब्ल्यू अर्नेस्ट। पहले जोहान्सवर्ग की अनेक संस्थाओं की ओर से मुझे पुष्पहार पहनाये गये। फिर मेरे स्वागत में सर रज़ाअली, मिस्टर कैलन बैक, श्री रामदास जी गांधी, श्री प्रागजीभाई देसाई, श्री सुलेमान नाना, डाक्टर यूसुफ़ मुहम्मद दादू, रेवरेन्ड सिगामनी आदि अनेक सज्जनों के भाषण हुए। मेरी इतनी स्तुति की गई कि प्रसन्न होकर 'वरं ब्रूहि' कहना तो दूर रहा, लज्जा से उलटा मैं दब गया। सर रज़ाअली ने दक्षिण-अफ़्रीका में मेरा स्वागत भारतीय सरकार की ओर से किया। उन्होंने अपने भाषण में जो कुछ कहा उसमें मेरी प्रशंसा के अतिरिक्त निम्नलिखित बात सार्वजनिक दृष्टि से महत्त्व की थी। उन्होंने कहा—

"सन् १९१२ में मिस्टर गोपालकृष्ण गोखले के बाद सेठ गोविन्ददास पहले आदमी हैं जो सेंट्रल लेजिस्लेचर के मेम्बर होते हुए ग़ैर-सरकारी हैसियत से इस देश में हिन्दुस्तानियों की हालत की जाँच करने आये हैं। अनेक भारतीय भारतवर्ष से यहाँ और यहाँ से भारतवर्ष सरकारी डेलीगेशन्स में आये और गये हैं। उनका भी महत्त्व है, परन्तु ग़ैर-सरकारी व्यक्तियों के आने-जाने का महत्त्व उनसे कहीं अधिक है। इस देश में भारतीयों के ख़िलाफ़ जो क़ानून हैं वे किसी से छिपे नहीं हैं। इन क़ानूनों का रद्द होना बहुत दूर तक एक समाज से दूसरे समाज के अधिकाधिक सम्बन्ध पर निर्भर है और इस प्रकार के आवागमन से इस सम्बन्ध की बहुत कुछ वृद्धि हो सकती है।"

मैंने आज अपना भाषण हिन्दुस्तानी और अँगरेज़ी दोनों ही भाषाओं में करने का निश्चय कर लिया था, क्योंकि एक तो सभा में कुछ योरपीय तथा तामिल भाषाभाषी सज्जन थे, जो हिन्दुस्तानी नहीं समझते थे, दूसरे कई मुसलमान तथा गुजराती भाषाभाषी सज्जन थे जो अँगरेज़ी अच्छी तरह नहीं समझते थे। मेरा भाषण क़रीब डेढ़ घंटे चला। मैंने अपने भाषण में महात्मा गांधी के सन् १९०६ से आरम्भ किये गये ट्रांसवाल के सत्याग्रह-आन्दोलन के कारण हिन्दुस्तान में दक्षिण-अफ़्रीका के लिए जो एक प्रकार की पूज्य भावना है उसका वर्णन कर यहाँ के भारतीयों के विरुद्ध क़ानूनों के कारण इस देश के प्रति जो घृणा है उसका उल्लेख किया। मैंने यहाँ के योरपीयों को बताया कि इस प्रकार के विचित्र

क़ानूनों से यदि भारतीयों को चोट पहुँचती है तो संसार के सभ्य समाज में यहाँ रहनेवाली योरपीय जाति की भी कम बुराई नहीं है। फिर मैंने यह भी कहा कि किसी भी देश में किसी भी जाति के विरुद्ध इस प्रकार के क़ानून सदा क़ायम नहीं रक्खे जा सकते और भारत स्वतन्त्र होने के बाद देख लेगा कि ये क़ानून किस तरह क़ानून की किताब पर क़ायम रह सकते हैं। इसके बाद मैंने विस्तार-पूर्वक भारतीय स्वतन्त्रता के संग्राम का वर्णन कर यह सिद्ध करने का प्रयत्न किया कि वह समय बहुत दूर नहीं है जब भारत पूर्ण रूप से स्वतन्त्र हो जायगा। डेढ़ घंटे के लम्बे समय तक भी श्रोताओं ने मेरे भाषण को बड़े ध्यान से सुना।

रेवरेंड सिगामनी मेरे स्वागत में भाषण करते हुए यह कह गये थे कि भारत उसी प्रकार स्वतन्त्र होना चाहता है जिस प्रकार जापान या इटली है, अतः मेरे भाषण के समाप्त होते ही सर रज़ाअली ने मुझसे खड़े होकर पूछा—

"क्या इंडियन नेशनल कांग्रेस का ध्येय भारत को जापान और इटली के सदृश बनाना है?"

मैंने उत्तर दिया—

"हर्गिज़ नहीं। यद्यपि कांग्रेस भारत को पूर्ण रूप से स्वतन्त्र बनाना चाहती है, पर आततायी नहीं। कांग्रेस की नीति तो सदा आततायियों के विरुद्ध रही है। इटली और अबीसीनिया के युद्ध के समय कांग्रेस की सहानुभूति अबीसीनिया के साथ थी। आज जापान और चीन की लड़ाई में कांग्रेस की सहानुभूति चीन के साथ है और पैलेस्टाइन में उसकी सहानुभूति है अरबों के संग। कांग्रेस का ध्येय साम्राज्यवाद का विरोध करना रहा है, आज भी है और भविष्य में भी रहेगा।"

—(क्रमशः)

शोषिता

लेखक, श्रीयुत 'अंचल'

दिल में किसका दीप जलाये मौन खड़ी है यह पनघट पर ?

(१)

साँझ हुई पथ देख रही है किसका भरे दृगों की गगरी,
कहीं पेट की आग बुझाने गये पिया तज इसकी नगरी !
बीते कितने वर्ष इसे यों पथ पर अपनी रैन बिछाते
और खुली आँखों में इसकी अब तो कोई स्वप्न न आते।
इसकी भी आई थी आमों सी बौराती प्रखर जवानी
किन्तु गई चुपचाप ज़मींदारों के भय की छोड़ कहानी ;
उन ज़ुल्मों की याद न पूछो जल उठता प्रतिरोस सिहरकर
दिल में किसका दीप जलाये मौन खड़ी है यह पनघट पर ?

(२)

अपमानों औ' अरमानों की है यह भय से पूर्ण निराशा
खड़ी जोहती बाट उसी की अब न जिसे पाने की आशा
काली गँदली क्षीण नदी-सी बहती जीवन के मरघट में
सूख झुलसती जो पट पर प्रज्ज्वलित चिता की लपट लपट में
किन्तु न केवल आँच विरह की, कैसे भरे पेट हत्यारा
बीच डगर पर छोड़ गया जब जीवन का सर्वस्व सहारा ?
सड़ी हुई छत दिन भर रोती बरस जाय यदि मेघ घड़ी भर
दिल में किसका दीप जलाये मौन खड़ी है यह पनपघट पर

(३)

और कई बच्चों की माँ आ रही उधर से अन्न बटोरे
आँचल में कुछ लिये चबाती कुछ, बिखरे धोती के डोरे
नहीं देखती पेड़ तले यह खड़ी मानवी सी कृश जर्जर
देती बाँध फटे दामन में थोड़े से दाने अकुलाकर
किन्तु खड़ी रहती वह जड़ पत्थर निज निर्मोही की प्यासी
घर के बिकते तो बीतेंगी पेड़ तले फिर रातें त्रासी।
दबे कण्ठ से रोती पछुआ बीती रजनी अभी प्रहर भर;
दिल में किसका दीप जलाये मौन खड़ी है यह पनघट पर ?

फल-संरक्षण

लेखक, श्रीयुत कुँवर वीरेन्द्रनारायण सिंह, बी० एस-सी०

'फल-संरक्षण-कला' के आविष्कार का श्रेय पाश्चात्य वैज्ञानिक निकोलस एपर्ट साहब को दिया जाता है, जिन्होंने सन् १७५० के लगभग यह प्रकाशित किया था कि 'फल एवं शाकों को नष्ट होने का मूल कारण वायु में पाये जानेवाले कीटाणु हैं और यदि वे वायु के सम्पर्क से वंचित कर दिये जायँ तो फल आदि बहुत काल तक सुरक्षित रक्खे जा सकते हैं।' निसन्देह 'फल-संरक्षण' के क्षेत्र में यह विचार एक नूतन प्रकाश था। किन्तु यदि कहा जाय कि अठारहवीं सदी से पूर्व यह कला अज्ञात थी तो हम भारतीयों के साथ अन्याय होगा। कारण कि उस समय से बहुत पूर्व हमारे देश में फलों को विभिन्न रूपों में सुरक्षित रखने की विधि भली भाँति प्रचलित थी। हाँ, आधुनिक वैज्ञानिक प्रयोग का उन दिनों प्रचार न था यह यथार्थ है। ताज़े फल दो-चार दिन के पश्चात् नष्ट हो जाते हैं, उनमें से दुर्गन्ध निकलने लगती है और वे खाने के काम के नहीं रह जाते, अतएव उनको अधिक काल तक सेवन करने के योग्य बनाये रखने के लिए 'फल-संरक्षण-कला' अस्तित्व में लाई गई।

सुरक्षित करने की विधियाँ

'फल-संरक्षण' की विभिन्न विधियाँ काम में लाई जाती हैं। सुरक्षित करने की विधियों को हम दो बड़े भागों में विभाजित कर सकते हैं। पहली विधि के द्वारा फल एक सप्ताह से लेकर ८-१० सप्ताह तक सुरक्षित रक्खे जा सकते हैं एवं दूसरी के द्वारा फल दो-तीन वर्ष या अधिक समय तक सुरक्षित रक्खे जा सकते हैं।

छाँटकर—फलों को सुरक्षित रखने की सबसे सरल विधि उनको छाँटकर रखना है। फल पूर्णरूप से पकने के पहले ही तोड़ लिये जाते हैं। कठोर एवं कोमल फलों को अलग करके उन फलों पर जिन पर कीटाणुओं का प्रभाव हो चुका होता है, अलग कर दिये जाते हैं। प्रत्येक दूसरे दिन इस प्रकार फलों को छाँटकर रखने से वे महीनों तक सुरक्षित रक्खे जा सकते हैं। हमारे देश में फल-विक्रेता अधिकतर इसी विधि को काम में लाते हैं।

ठंड में रखकर—फलों एवं शाक... रखने से वे अधिक समय तक सुरक्षित रक्खे जा सकते ... तापक्रम शून्य ० अथवा उससे भी कम होना चाहिए। इस तापक्रम पर फलों को नष्ट करनेवाले कीटाणु निश्चेष्ट हो जाते हैं। इस कार्य के लिए 'रेफ़्रीजेरेटर' नामक यंत्र बनाये गये हैं, जिनमें वातावरण का तापक्रम शून्य से भी कम होता है। इन यंत्रों में फलों को रख देने से वे सड़ने से बचे रहते हैं। पाश्चात्य देशों में इस यंत्र का अधिक प्रचार है। वहाँ इस प्रकार के ठंडे गोदाम बने होते हैं जिनमें फल, तरकारियाँ एवं अन्य भोज्य पदार्थ कई सप्ताह तक सुरक्षित रह सकते हैं। रेलगाड़ियों एवं जहाज़ों में भी ऐसे डिब्बे अथवा कमरे बने रहते हैं जिससे एक जगह से दूसरी जगह आने-जाने में फलों के नष्ट होने की सम्भावना जाती रहती है।

गैस-द्वारा—फलों को कारबोनिक एसिड गैस में रखकर भी सुरक्षित रक्खा जा सकता है। पूर्ण रूप से बढ़ जाने के पहले ही फल तोड़कर कृमि-रहित पतले काग़ज़ में लपेटकर आलमारियों में रख दिये जाते हैं एवं उस कमरे में उक्त गैस भर दी जाती है। बात यह है कि फल ज्यों ज्यों परिपक्व होते हैं, उनमें से कारबोनिक एसिड गैस निकलती है, अतः उसी के वातावरण में रखकर फलों को शीघ्र परिपक्व होने से वंचित कर देते हैं। कच्चे फलों में खटास की मात्रा एवं उनके कठोर होने के कारण उन पर कीटाणुओं का शीघ्र प्रभाव नहीं होता, अतः उक्त वायुमण्डल में रखने से फलों के नष्ट होने की आशंका नहीं रहती। कभी कभी उक्त वातावरण में रखने के अतिरिक्त उस कमरे का तापक्रम भी शून्य पर कर दिया जाता है। इन दोनों विधियों के सम्मिश्रण से फल कई मास तक सुरक्षित रक्खे जा सकते हैं। फलों का रस एवं सोडावाटर का मीठा जल भी इसी गैस-द्वारा सुरक्षित रक्खे जाते हैं।

गरम करके—समूचा फल, उसका गूदा अथवा उसका रस यदि १७० डिग्री (फ़०) पर प्रायः बीस मिनट तक गरम किया जाय तो इस तापक्रम पर अधिकांश कीटाणु मर जाते हैं और कुछ निश्चेष्ट हो जाते हैं। इस कारण

यह शीघ्र खराब नहीं हो पाता और कुछ सप्ताह तक उसे सुरक्षित रखने के लिए यह विधि काम में लाई जाती है। कोमल फलों को इससे कम तापक्रम पर गरम करके भी सुरक्षित रक्खा जा सकता है। गरम करने के पश्चात् यह आवश्यक है कि वह ऐसे वर्तनों में रख दिया जाय जिससे वायु का संपर्क न हो अन्यथा वायु के कीटाणु उसको पुनः शीघ्र नष्ट कर देंगे। इस तापक्रम पर गरम करने की विधि को 'पैसचुराइज़ेशन' कहते हैं।

रासायनिक पदार्थों के द्वारा—इनके उपयोग से कीटाणु नष्ट अथवा निश्चेष्ट कर दिये जाते हैं. किन्तु इनका व्यवहार करने में सावधानी रखनी चाहिए। अधिक मात्रा में उयोग करने से फल या फलों की वस्तुएँ अपचन-शील एवं विषैली हो जाती हैं, क्योंकि अधिकतर ये पदार्थ मन्द-विष होते हैं।

फलों को अधिक काल तक सुरक्षित रखने के लिए उन रासायनिक पदार्थों का व्यवहार किया जाता है जिनकी अधिक मात्रा स्वास्थ्य के लिए हानिकारक नहीं है। उनमें चीनी, नमक, मसाले, नींबू का सत, सिरका आदि मुख्य हैं। और अधिकतर जो सुरक्षित फल बाज़ार में आते हैं वे इनमें से किसी दो-एक के प्रयोग से सुरक्षित रखकर। जैम, जेली, मुरब्बे, शर्बत आदि में अधिक मात्रा में व्यवहार होने के अतिरिक्त चीनी फलों की डिब्बा-बन्दी एवं बोतल-बन्दी का प्रधान साधन है. जो 'फल-संरक्षण' का मुख्य विषय है।

जैम फल के गूदे से, जेली फल के रस से एवं मारमलेड फलों के रस में नींबू या सन्तरे आदि के महीन कतरे हुए छिलके डाल कर तैयार किये जाते हैं। ये सब चीनी के साथ इस हद तक पकाये जाते हैं कि ठंडे होने पर ये जम जायँ। इनके तैयार होने का तापक्रम २१८-२२१ डिग्री है। अधिकाश फलों में 'पेक्टिन' होती है, जिसमें फलों की वस्तुओं को ठंडा होने पर जमा देने की शक्ति होती है। चीनी की मात्रा फलों की तौल एवं उनके खट्टेपन पर निर्भर होती है। शर्बत फलों के रस और चीनी को उबाल कर प्रायः २१७ डिग्री तापक्रम पर तैयार किया जाता है। मुरब्बे—समूचे या फलों के टुकड़ों को चीनी के गाढ़े शर्बत में पकाकर तैयार किया जाता है। यदि फल कठोर हों तो उनमें छोटे-छोटे छिद्र कर लिये जाते हैं, जिससे चाशनी फलों के भीतर बिंध जाय। कैंडी—फलों के टुकड़ों को चीनी के गाढ़े शीरे में पकाकर सुखा लिया जाता ह। सूखने पर फलों के टुकड़ों पर चीनी के दाने पड़ जाते हैं और वे अर्धपारदर्शक हो जाते हैं।

विभिन्न फलों को उन सब रूपों में सुरक्षित रखने का प्रधान अभिप्राय उनमें ६५ प्रतिशत या इससे अधिक मात्रा में चीनी का कर देना है। जैसा कि कहा जा चुका है, इस मात्रा में चीनी के रहने से फलों के नष्ट करनेवाले कीटाणुओं का प्रभाव नहीं होता, किन्तु उन सब वस्तुओं में फलों के वास्तविक स्वाद का अधिकांश चीनी की अधिकता के कारण लुप्त हो जाता है। इस कारण डिब्बों एवं बोतलों में बन्द करके फलों के रखने की प्रणाली का चलन हुआ है। इस प्रकार से सुरक्षित फलों में उनके ताज़े स्वाद में तनिक भी अन्तर नहीं आता। 'फल-संरक्षण-कला' को आधुनिक विज्ञान से यही सहायता मिली है कि एक ताज़े फल के और दो वर्ष से एक डिब्बे में बन्द फल के स्वाद में तनिक भी भेद न होगा।

बड़े बड़े डिब्बाबन्दी के कार्यालयों में (कैनिंग फ़ैक्टरी) फल में चीनी की जितनी मात्रा होती है उतने ही प्रतिशत के जल में चीनी का घोल तैयार किया जाता है। फिर फल के टुकड़ों को कृमि-रहित टीन के डिब्बों में रखकर, उसमें उक्त चीनी का घोल भर कर ढक्कन बन्द कर दिया जाता है। तत्पश्चात् एक छोटे छिद्र के द्वारा डिब्बे के भीतर की समस्त वायु निकाल कर पूर्णरूप से वह बन्द कर दिया जाता है। इस प्रकार वायु के सम्पर्क से बचा कर फल सुरक्षित रक्खे जाते हैं और फल की मिठास के बराबर चीनी के घोल में रहने के कारण उनके स्वाद में भी तनिक अन्तर नहीं आता। बोतलबन्दी का भी यही तत्त्व है। इस कार्य के लिए एक विशेष प्रकार की बोतल काम में लाई जाती है, जिसमें चूड़ीदार ढक्कन के साथ रबड़ का एक छल्ला लगा होता है, जो कसने पर बोतल के सिर पर अच्छी तरह चिपक जाता है, जिससे उसमें रक्खे हुए फल बाहरी वायु के सम्पर्क से अलग हो जाते हैं। और वे फिर पूर्णरूप से सुरक्षित रहते हैं।

शाक-भाजियों की डिब्बाबन्दी करने के लिए अधिकतर नमक का घोल तैयार किया जाता है। इसके अतिरिक्त नमक फलों को चटनी, अचार आदि के रूप में सुरक्षित रखने के काम में आता है। सिरका, मसाले, तेल आदि भी इसी काम में आते हैं, जिनका हमारे घरों में अधिकतर व्यवहार होता है। ये सभी वस्तुएँ कीटाणु नाशक होती हैं एवं स्वास्थ्य के लिए उतनी हानिकारक भी नहीं हैं।

फलों के रस को सड़ाकर सिरके के रूप में भी सुरक्षित रखते हैं। किन्तु इस विधि-द्वारा फल का स्वाद सर्वथा भिन्न हो जाता है। और यथार्थ तो यह है कि फलों के कार्यालयों में फलों के बेकार टुकड़े, छिलके आदि जो फेंक दिये जाते हैं उनको एक पचनशील भोज्य-पदार्थ में परिणित कर देने का यह एक अच्छा साधन है। उन सभों को एकत्र कर, उबालकर उनका रस निचोड़ लिया जाता है फिर उनको लकड़ी के बड़े बड़े पीपों में भर देते हैं। तत्पश्चात् उनमें 'ईस्ट' डाल देते हैं, जिससे कुछ दिनों के बाद समस्त रस मदिरा में परिणित हो जाता है। उसको छानने के पश्चात् उसमें थोड़ा-सा तेज़ सिरका डाल दिया जाता है, जिससे वह मदिरा सिरके में परिणित हो जाती है। तैयार होने पर सिरके को १७० डिग्री तापक्रम पर गरम करते हैं, जिससे उसके कीटाणु नष्ट हो जाते हैं।

फल एवं तरकारियों को सुरक्षित रखने का अन्तिम उपाय उनको सुखाकर रखने की विधि है। यों तो हमारे देश में फलों के सुखाने की विधि बहुत प्रचलित है और आम, अंगूर, खजूर, गोभी, साग आदि फल और तरकारियाँ विभिन्न रूपों में सुखाकर दूसरे ऋतु में सेवन करने के लिए रक्खे जाते हैं और उनका थोड़ा-बहुत व्यापार भी होता है, किन्तु उनमें कई बातों की न्यूनता होती है, जैसे सूखने पर काले पड़ जाना, सिकुड़न आ जाना, स्वाद बदल जाना और फिर शीघ्र ही नष्ट हो जाना आदि हैं। किन्तु यदि सुखाने के पहले फलों एवं शाक-भाजियों को उबलते हुए जल में तीन-चार मिनट डालकर फिर ठंडे पानी में डाल दें, तत्पश्चात् उनको गंधक का धुवाँ दिखलाकर सुखाया जाय तो उक्त बातें अधिक अंशों में दूर हो जाती हैं। विदेशों में फलों को सुखाने के लिए 'डीहाईड्रेटर' नामक यंत्र काम में लाये जाते हैं, जिससे फल शीघ्र ही सूखने के अतिरिक्त धूप में सुखाने की अनेक असुविधायें दूर हो जाती हैं।

आज हमारा देश 'फल-संरक्षण' के इन सभी आधुनिक विधियों से प्रायः वंचित है। केवल इने-गिने दो-चार छोटे छोटे कार्यालय हैं, जो अधिकतर चटनी, अचार और थोड़े-बहुत फलादि सुखाते हैं, जो कुछ अंशों में विदेश भी भेजे जाते हैं जैसा कि निम्न आँकड़ों से विदित है—

सन्		चटनी, अचार आदि रुपये
१९३१-३२	..	.. ७,७९,०[illegible]५
१९३२-३३	..	.. ८,६८,९५२
१९३३-३४	..	. ८,२३,०४०
औसत प्रतिवर्ष	..	.. ८,२४,०२६

परन्तु विदेशों से भारत में आनेवाले ताज़े एवं सुरक्षित फलों का मूल्य इसका सात गुना अधिक है, जो इस प्रकार प्रतिवर्ष औसत में आते हैं—

	रुपये
सुरक्षित फलों का मूल्य	.. २४,२२,२६०
ताज़े फलों का मूल्य	.. ३०,८६,५८९
औसत प्रतिवर्ष	.. ५५,०८,८४९

इतने पर भी भारतीय सुरक्षित फलों की विदेशों में अधिक माँग है, किन्तु हमारा देश उसको पूरा करने में असमर्थ है। कारण यह है कि हमारे पास उनको सुरक्षित करने के लिए कोई विशेष साधन नहीं है, अतः फल-संरक्षण की विभिन्न विधियों को भारत में बड़े परिमाण में करने की अत्यन्त आवश्यकता है।

रिक्ता

अनुवादक, पण्डित ठाकुरदत्त मिश्र

वह बड़े ही धैर्य और तत्परता के साथ घर के सारे काम-काज चलाती रही। किन्तु एकाएक काशी से एक पत्र आया कि सविता के नाना जी की तबीअत खराब है और सम्भव है कि वे जीवित न रहें, इससे वे सविता तथा अरुण को एक बार देखना चाहते हैं। इससे जगत बाबू ने अरुण, को सविता को लेकर काशी जाने का आदेश किया। किन्तु अरुण को इस आदेश के पालन करने में आपत्ति थी। इधर सविता भी यह नहीं चाहती थी कि अनिच्छा होने पर भी वह उसके साथ जाने के लिए बाध्य किया जाय। इससे उसने श्वशुर से कह दिया कि आपकी तबीअत खराब है इसलिए मैं अभी नहीं जाना चाहती। परन्तु जगत बाबू सविता के नाना की इस इच्छा को अपूर्ण नहीं रहने देना चाहते थे, और वे उसे भेजने की ही चिन्ता में थे। इतने में एकाएक कटक में अरुण की माता का देहान्त हो गया, इससे इस ओर ध्यान देने का किसी को अवसर ही नहीं रह गया। श्राद्ध आदि से निवृत्त होने के बाद नियमित रूप से परिवार का काम काज चलने लगा। परन्तु जगत बाबू का स्वास्थ्य उत्तरोत्तर खराब होता जा रहा था। इससे स्वास्थ्य सुधारने के लिए उन्होंने दार्जिलिङ्ग जाने का निश्चय किया।

(१८)

बहुत दिनों से मायके की कोई भी चिट्ठी-पत्री न पा सकने के कारण सविता मन ही मन बहुत उद्विग्न हो उठी थी। उसके नाना की बीमारी की चिट्ठी जब आई थी तब से फिर और कोई भी समाचार नहीं आया। वे अच्छे हुए या नहीं, एक कार्ड के द्वारा इस बात की भी सूचना देकर मामा ने उसे निश्चिन्त नहीं किया। इस कारण मन ही मन वह मा से बहुत चिढ़ रही थी।

नाना का जो पत्र आया था उसके द्वारा उन्होंने उसे देखने की इच्छा प्रकट की थी। केवल उसी को देखने की नहीं, उनकी इच्छा तो और भी आगे बढ़ गई थी। उसके बाद यहाँ यह दुर्घटना हो गई।

इस परिवार के सभी लोग शोक से व्याकुल हो उठे। इससे अपने सम्बन्ध की बातों पर विचार करने का अधिक अवसर सविता को नहीं मिलता था। घर में जितने आदमी थे उन सभी के शोक की कालिमा तो उसने अपने ही अञ्चल से पोंछी थी। किसकी मानसिक अवस्था ऐसी रह गई थी जिससे वह अपने नाना का हाल लेने के सम्बन्ध में कुछ कह सकती?

सविता एक तो यों ही चिन्तित थी, तिस पर उसने उस दिन डाक्टर साहब से यह सुन लिया कि काशी में बड़े ज़ोर का प्लेग है। तिल को ताड़ बनाकर वह अपनी चिन्ता का जाल बुनती ही गई। कदाचित् वे कोई भी न जीवित हों—कुल दो ही तो आदमी थे!

सविता का हृदय ज़ोर ज़ोर से धड़कने लगा। हाय रे! उससे दो बातें करनेवाला भी कोई नहीं रहा, जिससे दो-चार बातें करके वह अपने हृदय का भार हलका कर लेती। यह भी उसके भाग्य का ही दोष है! यदि ऐसा न होता तो श्वशुर काशी जाने को कह ही रहे थे।

दोपहर का समय था। उस समय सविता को काफ़ी देर तक के लिए अवकाश था, इससे वह अपने कमरे में बैठी हुई यही सब बातें सोच रही थी। शायद उसने इस चिन्ता को स्वेच्छा से अपने हृदय में स्थान नहीं दिया। किसी ओर से कोई साँस पाकर ही यह चिन्ता आ पहुँची और सविता को धर दबाया।

एक दूसरे कमरे में आशा पुलक को लिये हुए खेला रही थी। मचल मचलकर और रो रोकर पुलक उसे

परेशान कर रहा था। पुलक की आया तारा ने उससे कहा—आप भला क्या ऐसे उपद्रवी लड़के को सँभाल सकेंगी! उसे बड़ी मामी जी के पास छोड़ आइए, भाभी। बस, वह अपने आप ठीक हो जायगा।

आशा इस घर में अभी नई नई आई थी। उसने डरते डरते कहा—परन्तु जीजी तो भीतर चली गई हैं। वहाँ मैं कैसे जाऊँ?

"ओह! मा, जाओगी कैसे भाई!" यह कहकर आशा हँस पड़ी।

आशा ने सङ्कोच के साथ कहा—वहाँ जेठ जी के सामने न पड़ जाऊँ कहीं?

"हाय! राम, वे क्या किसी काल में भी उस कमरे में पैर रखते हैं? वे तो उनका नाम सुनकर जल जाते हैं। यह बात शायद आपने छोटे बाबू से नहीं सुनी है।"

आशा अवाक् होकर सुनती रही, वह कुछ बोली नहीं। उसके लिए यह बात कितनी भयंकर थी! वह सोचने लगी कि रात-दिन जिसके हास्यमय मुख के मधुर प्रकाश से सारा घर देदीप्यमान रहता है, यह प्रकाश क्या उनके आनन्द की दीप्ति नहीं है, हृदय का धुआँ है?

आशा मन ही मन काँप उठी।

आया को भी आगे कहने को प्रोत्साहन मिल गया।

वह बराबर कहती ही गई—सब जानते हैं। छोटे भैया भी सब जानते हैं। उनसे पूछिएगा तो वे सब बतला देंगे। हमारी मालकिन थीं। वे भी इन्हें नहीं चाहती थीं। ये जब आई थीं तभी से उनका मिज़ाज बहुत टेढ़ा हो उठा था।

आशा ने ज़रा सा इधर-उधर करके कहा—क्यों, कौन सी ऐसी बात है? क्या ये आदमी ठीक नहीं हैं?

"पता नहीं। और यह सब मैं जानने ही कैसे लगी भाभी? लेकिन बड़े आदमी का ख़याल ही तो है।"

"जाने दो इन बातों को आया। ये सब बातें सुनने में मुझे अच्छी नहीं लगतीं।" यह कहकर आशा ने पुलक को गोद में ले लिया और वह जाकर सविता के पास खड़ी हो गई। सविता ने आँखें पोंछकर मुँह फेर लिया। फिर हँसती हुई वह बोली—कहो आशा, क्या तबीअत ऊब रही है?

लज्जिता आशा ने मुँह लाल करके कहा—नहीं भाई, मेरी तबीअत नहीं ऊब रही है।

"तो क्या नींद आ रही है? आओ, तुम्हें सुला दूँ।"

पुलक ने चिल्लाकर कहा—मुझे बड़े ज़ोर की नींद आ रही है बहू!

सविता हँस पड़ी। उसने कहा—तुम्हें नींद आ रही है? और तो इस समय तुम कभी नहीं सोते। क्या आशा की ईर्ष्या के मारे तुम्हें नींद आने लगी?

"नहीं बहू, मुझे सचमुच नींद आ रही है। लेटते ही सो जाऊँगा। क्या लेट जाऊँ?"

सविता ने बिस्तरे पर पुलक को लिटा दिया। उसने कहा—तो अब राजा बेटा होकर सो जाओ।

आशा ने कहा—दीदी, तारा कह रही थी कि हम लोगों को शायद दार्जिलिंग जाना होगा। क्या यह सच है?

सविता ने कहा—सुनती तो मैं भी हूँ। सच है या झूठ, यह ठीक ठीक बतला नहीं सकती। अभी तक इस सम्बन्ध में मैंने बाबू जी से कुछ पूछा नहीं।

ज़रा देर तक चुप रहने के बाद आशा ने पूछा—यदि जाना ही हुआ तो क्या हम लोग भी जायँगी?

"यदि ले जायँगे तो जा सकती हैं। क्यों? क्या बात है?"

"यदि ले जाते तो अच्छा ही था दीदी! मैंने कभी पहाड़ नहीं देखा। एक बार देख लेती। तुम ज़रा-सा जेठ जी—"

आशा रुक गई। जेठ के सम्बन्ध की जो अप्रिय बातें वह तारा से सुन आई थी उनके कारण सविता से और कुछ कहने को उसका मुँह नहीं खुलना चाहता था। अन्यथा वह कहती कि सविता दार्जिलिंग जाने के सम्बन्ध की बातें अरुण से ही क्यों नहीं पूछ लेती।

आशा की इस अधूरी बात के ही कारण सविता का मुँह लाल हो उठा था, तो भी उसने हँसते हुए कहा—अच्छा तो मैं अभी बाबू जी से कहूँगी कि तुम जाना चाहती हो। यह सुनते ही वे तैयार हो जायँगे।

आशा ने व्यस्त भाव से कहा—नहीं, नहीं दीदी, उनसे कहने का कुछ काम नहीं है। एक तो यों ही शरीर

अच्छा न होने के कारण उनकी तवीअत ठिकाने से नहीं रहती,तिस पर हम भी उनके सामने एक झंझट खड़ा करें! सम्भव है, इससे वे अप्रसन्न हों।

"नहीं, वे अप्रसन्न न होंगे।" यह कहकर सविता कमरे की फ़र्श पर विछो हुई चटाई पर लेट गई। वह लेटी थी यह भाव प्रदर्शित करते हुए मानो उसे आलस्य आ रहा है। उसका क्लान्त और मुर्झाया हुआ मुख और भी आभाहीन मालूम पड़ रहा था। रुलाई की जिस राशि को वह इतनी देर तक हँसी के नीचे दवाये हुए थी वह अव आँधी की तरह हा हा करके उठ रही थी। वह अव मानो दवी रहना नहीं चाहती थी।

दिन प्रायः व्यतीत हो चला। सविता ने एक लम्वी साँस ली। इस साँस के साथ ही साथ उसने अपनी सारी शिथिलता, सारी व्यग्रता दूर कर दी। मन की जो न्यायोचित माँग है, उसके साथ कर्त्तव्य को यदि तोला जाय तो मनुष्य की मनुष्यता को तिलाञ्जलि दे देनी पड़ती है।

इस समय भी श्वशुर की औषधि आदि को सजाकर सविता उनके कमरे में ले गई।

कमरे भर में ज़मीदारी के काग़ज़ पत्र फैले हुए थे। पिता का शरीर अच्छा न होने के कारण उनके आदेश के अनुसार अरुण ही सव लिख-पढ़ रहा था। वीच वीच में उन्हें देख देखकर वे सुधारते जाते थे। ये काग़ज़ विशेष रूप से आवश्यक थे, और उन्हें ठीक किये विना जगत वावू कहीं जा नहीं सकते थे, इसी लिए उन्हें ठीक कर देने की इतनी उतावली थी।

अरुण पीले रंग की लम्वी लम्वी वहियों को देखकर एकदम घवरा उठता था। परन्तु उस समय उन्हें लिये हुए किसी प्रकार कार्य को समाप्त करने का प्रयत्न कर रहा था। एक तो पिता का आग्रह था, दूसरे दार्जिलिंग जाने का उसे वड़ा आग्रह था, इसलिए भी वह उस काम को हाथ में ले सका था। परन्तु उतावली के कारण वह प्रायः कार्य्य में त्रुटि कर रहा था, इसके जगत वावू रुष्ट हो रहे थे।

सविता ने मस्तक झुकाये हुए कमरे में प्रवेश किया। कार्य्य के समय मिथ्या संकोच करने का उसका स्वभाव नहीं था। इस प्रकार का संकोच जगत वावू को पसन्द भी नहीं था। हाथ में वे जो काग़ज़ लिये हुए थे उन्हें उन्होंने रख दिया और वोले—शायद दवा ले आई हो। आओ, ले आओ।

आयुर्वेदिक औषधि खरल की पिसी हुई थी। उसे खाकर उन्होंने कहा—वहू, ज़रा देर के वाद एक वार फिर आना तो। तुमसे कुछ काम है।

उस समय पता नहीं, अरुण के दिमाग़ में कौन सी ऐसी वात आई कि उसने मुँह उठाया और सविता की ओर देखा। सविता ने एकाएक लज्जित होकर और भी मस्तक नीचा कर लिया। अरुण भी तुरन्त ही दूसरे काग़ज़ पर झुक पड़ा।

कुछ देर के वाद श्वशुर की आज्ञा के अनुसार सविता फिर उसी कमरे की ओर जा रही थी। उस समय भी कमरे में अरुण की आहट पाकर वह उसके भीतर नहीं गई। वह दालान में खड़ी रही। उसने सोचा कि इनकी वातें समाप्त हो जायँ तो मैं जाऊँ।

लम्वे दालान के वीच में ही फूल के तीन पेड़ थे। साँझ प्रायः हो चली थी। उन पेड़ों पर अगणित फूल खिलकर तीव्र सुगन्ध से सारे घर को मादकतामय वना रहे थे। एक नौकर लालटेन जलाये हुए गृहस्वामी के कमरे में रखने जा रहा था। उसे देखकर सविता हटकर रेलिंग के पास जाकर खड़ी हो गई। आध घंटा वीत गया, फिर भी अरुण पिता के कमरे में वैठा वातें करता ही रहा।

उधर पुलक आशा को परेशान कर रहा था। सविता भीतर गई और उसे ले आई। श्वशुर के कमरे की ओर जाती जाती वह वोली—देखना, उस कमरे में जाकर दुष्टता के कारण शोर मत मचाना।

पुलक ने कहा—क्यों? नाना जी की तवीअत खराव है इसलिए?

"हाँ, दुष्टता करोगे तो वे अप्रसन्न होंगे, तुम्हें डाँटेंगे।"

"दुत! नाना जी अच्छे हैं। नाना जी डाँटते नहीं। वड़े मामा जी अच्छे नहीं हैं, वे डाँटते हैं।"

"इस विषय में शायद किसी को कोई सन्देह ही नहीं है। है न?"

पीछे अरुण की वात सुनकर सविता ज़रा सा रुक कर खड़ी हो गई। अरुण ने हँसते हँसते कहा—क्यों? रे पुलक! क्या कह रहे थे तुम लोग! शायद मेरी निन्दा कर रहे थे?

सविता के मुख पर प्रसन्नता की एक रेखा उदित हो आई। किन्तु वह कुछ वोली नहीं, वग़ल से होकर निकल जाना चाहती थी। अरुण ने उससे कहा—जाओ, तुम्हें वावू जी वुला रहे हैं।

"जाती हूँ।" यह कहकर सविता श्वशुर के कमरे की ओर चली। पुलक ने मचलकर उसे पकड़ लिया। वह कहने लगा—यह फूल मुझे तोड़ दो वहू!

"फूल तोड़ने से खराव हो जाता है। तू क्या करेगा फूल तोड़कर?"

"नहीं, खराव नहीं होता। वड़े मामा जी भी तो तोड़ रहे हैं। मैं भी लूँगा।"

सविता ने देखा, सीढ़ी के ऊपर खड़े खड़े अरुण फूल की एक डाली खींच रहा है और मुस्कराता हुआ कह रहा है—वाह! कैसी वढ़िया खुशबू आ रही है।

"तो जाओ, तुम फूल ले आओ।" यह कह कर सविता ने पुलक को छोड़ दिया और वह श्वशुर के कमरे में चली गई। उस समय वे मसनद के सहारे वैठे हुए दार्जिलिंग से आई हुई चिट्ठी-पत्री उलट रहे थे। सविता को देखते ही उन्होंने कहा—देखो वहू, दार्जिलिंग जाने का ही निश्चय हुआ है। अव यह वताओ कि वहाँ जाना किसे किसे होगा।

सविता चुप रही। एकाएक वह कोई उत्तर न दे सकी। श्वशुर ने फिर कहा—तुम तो चलोगी ही। क्या छोटी वहू भी चलेगी?

सविता ने कहा—आशा की तो वहाँ जाने की वड़ी इच्छा है। वह कहती है कि मैंने कभी पहाड़ नहीं देखा है।

"तो ठीक है। अव केवल पटला के चलने के सम्वन्ध में ही सोच-विचार करना है। उसकी परीक्षा समीप आ गई है।"

सविता का चित्त उस दिन प्रसन्न नहीं था। उसके मन पर न जाने कैसा भार-सा मालूम पड़ रहा था। इससे वह साहस करके मुँह से कोई वैसी वात नहीं निकाल रही थी। कुछ क्षण तक सोच-विचार करने के वाद श्वशुर ने फिर कहा—तो अव यात्रा का दिन स्थिर कर लिया जाय।

सविता ने मृदु कण्ठ से कहा—कव तक चलने में सुविधा होगी?

"कव चलना चाहिए? यह मास तो व्यतीत ही हो चला। शायद आज २३वीं है।"

"हाँ।"

"तो वैशाख की दूसरी-तीसरी तक यात्रा कर दी जाय। अच्छा, मैं उन लोगों से भी एक वार पूछ लूँ।"

श्वशुर से और दो-एक वातें करने के वाद सविता कमरे से निकल आई। उसने देखा, उस समय भी अरुण एक एक फूल तोड़ तोड़कर पुलक को भुलाये हुए है।

लौंग के समान छोटा छोटा एक एक फूल पाकर वालक प्रसन्न न होकर क्रोध के मारे कूदने लगता था। उसे इस प्रकार क्रुद्ध होते देखकर अरुण और भी चिढ़ा चिढ़ाकर हँस रहा था।

एक निमेष भर उन दोनों की ओर देखकर सविता दूसरे कमरे में चली गई।

विचार विमर्श

स्तुति-कुसुमाञ्जलि का परिचय

लेखक, श्रीयुत साहित्याचार्य पंडित केशवमणि शर्मा दाधिमथ

'स्तुति कुसुमांजलि' संस्कृत का एक प्राचीन काव्य है। इसमें कविवर जगद्धर भट्ट की रची हुई शिव-स्तुतियाँ हैं। इन स्तुतियों में काव्य का भी चमत्कार पर्याप्त मात्रा में विद्यमान है। अभी तक यह पुस्तक अप्रकाशित थी। पिछले दिनों पण्डित केशवदत्त त्रिपाठी ने इसका प्रकाशन किया है। 'शिवभक्ति-ग्रन्थमाला २४।५८ रामघाट बनारस' से यह मिल सकती है।

प्रस्तुत लेख में लेखक महोदय ने इसी पुस्तक के काव्य-कौशल का दिग्दर्शन-मात्र कराया है।

सृष्टि के आरम्भ से ही देखा जाता है कि प्रायः प्रत्येक प्राणी के जीवन में एक रागात्मिका प्रवृत्ति भी होती है। अन्य मनुष्यों पर सरस भाषा में उसके अभिव्यक्त करने का साधन साहित्य ही है। वह सभी भाषाओं में उपलब्ध है। भारत के आदर्श महात्मा और विद्वान् महाकवि भर्तृहरि ने बड़ी सरस भाषा में कहा है—"जो मनुष्य साहित्य और सङ्गीत को नहीं जानता, वह पशु है। पशु ही नहीं, निरा पशु है।"

साहित्य की अनूठी उक्तियाँ यदि सङ्गीत का पुट देकर सुनाई जायँ तो श्रोता का चित्त बरबस बेक़ाबू हो जाता है। वह एक अद्भुत सुख के सागर में डूबने-उतराने लगता है। किसी रसिक ने कहा है—

"उद्भट श्लोक-सङ्गीत-बाललीला प्रकाशनैः।
मनो न भिद्यते यस्य स योगी ह्यथवा पशुः॥

इसी लिए सभी भाषाओं में विशेषकर संस्कृत-भारती में पद्य-साहित्य की बहुलता है। सुतराम् दोनों का योग सोने में सुगन्ध के समान है। परन्तु कवि और गायक सभी नहीं होते। वे तो विरले ही भाग्यवान् होते हैं।

कवि और उसका कर्म देश के लिए सदा नवीन-जीवन देता रहता है। कवि पाञ्चभौतिककाय से जगत् में न रहकर भी यशःकाय से सबका मङ्गल-विधान करता रहता है। वैदिक आचार्यों का तो सिद्धान्त है कि ईश्वर ही संसार को सन्मार्ग दिखाने के लिए कवि के रूप में अवतीर्ण होता है। वैदिक साहित्य में 'क्रान्तदर्शी' का नाम कवि है। सबसे ऊँची बात देखना और जानना ही साधारणतया क्रान्तदर्शीपद का अर्थ होता है।

कुशल कवि लौकिक सामग्रियों को ही दिखाकर कुछ ऐसी रचना कर देता है जिससे सहृदय-वर्ग संसार को सर्वथा भूलकर एक अलौकिक तत्त्व का समास्वादन करता है। यही रस है। इस प्रकार की रचनाओं को ही काव्य कहते हैं।

काव्य से धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष तक में प्रीति या तत्प्राप्ति आदि बतलाई गई है। इसमें मोक्ष तक पहुँचाना भाव-काव्य का ही काम अधिक संगत जँचता है। लोक में ऐसे काव्य और उनके कवि अमर हो गये हैं।

'स्तुति-कुसुमाञ्जलि' के रचयिता कविवर जगद्धर भट्ट ऐसे ही महापुरुषों या महाकवियों में हो गये हैं। संसार के कवि प्रायः रसिकों को ढूँढ़ा करते हैं और विधि से प्रार्थना किया करते हैं कि वह उन्हें अरसिकों से बचाये।

कवि जगद्धर भट्ट को ऐसी प्रार्थना करने का अवसर ही नहीं आया। उन्होंने पहले ही बुद्धिपूर्वक ऐसे श्रोता या आश्रयदाता को चुना है जिससे समस्त रसों और भावों की उत्पत्ति होती है अथवा जो स्वयं रस-स्वरूप—आनन्दस्वरूप है। कवियों की कवितायें प्रायः यश, अर्थ, यद्वा

व्यवहार-वेदन आदि के निमित्त हुआ करती हैं। पर आपकी कविता का उद्देश्य इनमें से एक भी नहीं है। वाग्देवताऽवतार आचार्य 'मम्मट' के शब्दों में आपका काव्योद्देश्य 'शिवेतरक्षति' है। शिव से—सुख से, इतर की—दुःख की क्षति—नाश हो जाने पर शिव अपने आप मिल जाता है अथवा शिव के मिल जाने पर दुःख का अपने आप नाश हो जाता है। अतएव बुद्धिमान् कवि ने अपनी कविता का विषय शिव को ही चुना है। आपने सोचा होगा यदि किसी अन्य देव को चुनता हूँ तो वह एकदेशी होगा किन्तु शिव-तत्त्व सर्वदेशी है। वह ब्रह्मादि देव और रावणादि दानवों का समान पूज्य है। अतएव महादेव है, ईश्वर है। दूसरे आशुतोष है। तीसरे सृष्टि संहारकर्ता होने के कारण स्वयं अविनाशी है, अजर है, अमर है। इसलिए कवि ने शिव की ही स्तुति की है। साथ ही उस अजर और अमर की स्तुति करके आप भी यशःकाय से अजर और अमर हो गये हैं।

जगद्धर भट्ट का स्थितिकाल सन् १३४० के लगभग माना जाता है। आप काश्मीर के कवि थे। काश्मीर देश कविता, केसर और कामिनी की सुन्दरता के लिए प्रसिद्ध है। पहले काश्मीर भारत की प्रधान शारदा-पीठ था। कोई भी नई रचना जब तक उस पर काश्मीर के कवि और श्री शारदा की दृष्टिमुद्रा नहीं हो जाती थी, भारत के पण्डितमण्डल में आदर न पाती थी। काश्मीर कविता की जन्मभूमि है न कि केवल कविता ही की, अपितु प्रकाण्ड पाण्डित्य की जननी होने का भी उसे गर्व रहा है। वाग्देवतावतार मम्मट और प्रतिभाशाली वैयाकरणों में अग्रपूज्य कैयट जैसे मानव-रत्नों का प्रादुर्भाव वहीं हुआ है। उसी आकर ने कविवर जगद्धर को जन्म दिया है।

काव्य की प्रशंसा में संस्कृत में कुछ सूक्तियाँ प्रचलित हैं। अनुभव करके देखने पर जगद्धर की कृति उन कसौटियों पर सोलह आने खरी उतरती है। अगर आपका मन उनके सुनने के लिए उत्सुक है तो उन्हें सुन भी लीजिए और 'स्तुति-कुसुमाञ्जलि' के एक-एक सूक्ति को उन पर परख लीजिए। पहली सूक्ति है—

"किं कवेस्तस्य काव्येन धानुष्कस्य शरेण वा।
परस्य हृदि संलग्नं न घूर्णयति यच्छिरः॥

अर्थात् कवि की कविता और धन्वी का बाण वही उत्तम गिना जाता है जो भावुक और शत्रु के हृदय में पहुँचते ही उसके शिर को घुमा दे। दोष-रहित, गुण-सहित, अलङ्कारयुक्त, रस-भावादि-सम्पन्न काव्य को सुनकर अलौकिक आनन्द में मग्न—श्रोता का शिर वाहवाही के शब्दों के साथ बिना हिले कभी न रहेगा। यही हाल बाण का भी है। खूब पैना तीर दुश्मन के कलेजे को छेदकर बेहोशी के साथ उसके शिर को घुमा ही देता है। दूसरी सूक्ति भारवि की है—

"अविदितगुणापि सत्कविभणितिः
कर्णेषु वमति मधुधाराम्॥"

कविता का आस्वाद-आनन्द उसके मतलब समझने पर ही आता है। यह बात प्रायः सभी के अनुभवगम्य है। परन्तु महाकवि भारवि, इससे कुछ आगे की बात कहते हैं। सत्कवियों की कृति में यह नियम लागू नहीं। उनकी कृति तो अर्थ आदि के बिना समझे ही केवल सुन लेने भर से अपूर्व आनन्द देती है।

अस्तु, जगद्धर भट्ट ने अपनी पुस्तक का नाम रक्खा है 'स्तुति-कुसुमाञ्जलिः'—स्तुतिरूप कुसुमों की अञ्जलि। कवि ने पुष्पों की अञ्जलि नहीं तैयार की, किन्तु शिव की स्तुति की, प्रशंसा या तारीफ़ की अवबोधिका एक पद्यसंहति तैयार की है। यह कृति मुक्तकबन्ध है।

भगवद्भक्तों का नियम है कि वे जब अपना इष्ट-आराधन करने लगते हैं तब पहले अपने मन को एकाग्र करते हैं; इसके लिए लोगों को बहुत बहुत अनुष्ठान करने पड़ते हैं। परन्तु कवीश्वर जगद्धर भट्ट का निराला ही ढङ्ग है। उन्हें इस बात की कोई परवा नहीं। वे अपनी कृति में उलटी गंगा बहा रहे हैं। आप पुस्तकारम्भ में गणेश, गौरी या गुरु को नमस्कारादि करने के सम्प्रदाय में न पड़कर पहले अपनी काव्य-सरस्वती को भगवान् शङ्कर के मन का निरोध करने में समर्थ सिद्ध कर रहे हैं। आपने स्तुति की प्रस्तावना को लेकर एक पद्य-पञ्चक इसी बात पर रच दिया है कि वह काव्य की समस्त विशेषताओं से सम्पन्न सरस्वती स्वामी के मन को मुग्ध करने में, उनके चित्त में प्रवेश कर जाने के लिए, उनसे अभीष्ट वर प्राप्ति के लिए, समर्थ हो।

आगे महाकवि ने अपने उपास्य स्वरूप की रूपरेखा खींची है। इसमें पाठक यह भी देखते चलें कि उसका उपास्य शिवतत्त्व भङ्ग-भवानी का गोला गटककर, छप्पन करोड़ की चौथाई देनेवाला ही है, अथवा इससे परे का कोई अन्य विलक्षण तत्त्व है। ज़रा ध्यान से सुनिए—

"कीचकादिकहरेष्विवाम्बरं विम्वमम्बरमणेरिवोर्मिषु।
एकमेव चिदचित्स्वनेकधा यच्चकास्ति तदुपास्महे महः॥'

१ स्तो० ८ श्लो० ९ पृष्ठ

आप कहते हैं, जो एक ही परम ज्योति-तत्त्व अनेक तरह से जड़ और चेतन सबमें प्रकाशित हो रहा है, व्यापक है, हम उसकी उपासना करते हैं। प्रकृत सूक्ति में बताया गया है कि जैसे एक ही व्यापक आकाश, अवकाश, एक प्रकार के पोले बाँसों में बैठकर उनकी अनेकता से वंशाकाश, घटाकाश आदि उपाधि से कई तरह का-सा प्रतीत होता है, अथवा एक ही सूर्य जल की लहरों में प्रतिविम्बित होकर जैसे अनेक प्रकार का-सा दीखता है, उसी भाँति जो वह महः-ज्योति, ब्रह्मतत्त्व आकार, प्रकार, रूपादि से रहित है, किन्तु एक विलक्षण अनिर्वचनीय अस्तित्व को अवश्य रखता है, उसका हम ध्यान करते हैं।

इस उक्ति से सिद्ध हो जाता है कि कवि अद्वैत-सिद्धान्त का भक्त रहा है। इसके अतिरिक्त इस कथन से यह संशय भी हो सकता है. कि जब वह एक ही ईश्वर सबमें व्यापक है तब कवि भी उससे अछूता नहीं। फिर क्या ईश्वर ही ईश्वर की उपासना करता है? ऐसी स्थिति में यह विवाद उपस्थित हो जाता है—

"तुम्हीं हो मूरती में भी तुम्हीं फूलों में व्यापक हो!
भला भगवान् पर भगवान् को क्यों कर चढ़ाऊँ मैं॥"

अद्वैत-सिद्धान्त में जीव और ब्रह्म एक ही हैं। इस सिद्धान्त में जीव की सबसे ऊँची उन्नति अभेदाध्यवसान में—जीव-ब्रह्म की एकता के निश्चय में, है। यह निश्चय शत शत वेदान्तशास्त्र श्रवण-मनन निदिध्यासन-जन्य परिपक्व ज्ञान के बिना हो नहीं सकता! वह ज्ञान विधिवत् श्रौतस्मार्त-वेदस्मृति प्रतिपादित कर्म के करने से होता है। इसमें ही उपासना भी आ जाती है।

हमें सूक्ति के 'उपास्महे' पद पर कुछ कहना है जैसा कि विद्वान् व्याख्याकार ने इस पद्य के अर्थ के अतिरिक्त—वक्तव्यांश में वेदान्त की ठोस बात सुझाई है। 'उपास्य' कहने से भेद की प्रतीति होती है। उपासक, उपासना और उपास्य आदि बातें 'उपास्य' में घुसी पड़ी हैं। प्रकृत में, कवि की वेदान्त परिनिष्ठित काव्योक्ति में, वेदान्त मार्गानुसार अभेद किंवा एकत्व-प्रसङ्ग में, एक ही पूर्ण परब्रह्म में वस्तुतः उपास्य और उपासक भाव बन् नहीं सकते। अतः यहाँ 'त्वम्' पदार्थ 'जीव' तथा 'तत्' पदार्थ 'परमेश्वर की एकता'—अभेदज्ञान ही उपासना है। और यही 'महः' आदि अव्यक्त के मे द्योतक पद देकर तथा वंशाकाश और जल-सूर्य-विम्ब आदि उदाहरण देकर कवि ने स्फुट कर दिया है। इसी बात को आगे के श्लोक में भी बताया है—

तर्ककर्कशगिरामगोचरं स्वानुभूति समयैकसाक्षिणम्।
मीलिताखिलविकल्पविप्लवं पारमेश्वरमुपास्महे महः॥

अर्थ सरल है—जो महामहिमाशाली ईश्वर का 'महः' तर्क की कठोर वाणी से नहीं जाना जा सकता, जिसके अस्तित्व में एकमात्र आत्मा का—अपना अनुभव ही साक्षी है—गवाह है और जिसका ज्ञान हो जाने पर 'यह यह है या यह' आदि रूपात्मक समूचे विकल्प-जालों का विप्लव—उपद्रव एकदम नष्ट हो जाता है, अथवा जो—समस्त रूप रसादि की उपाधि से विवर्जित है—विशुद्ध निराकार स्वरूप है, हम उसकी उपासना करते हैं।

यों कई सूक्तियों में महाकवि ने बड़ी ओजःपूर्ण पदावली से चमत्कृत भावों के साथ हम किसकी उपासना करते हैं—बताया है। इसके आगे कवि ने स्तुति के 'विषय' और 'आश्रय' आदि को बड़े सुन्दर विरोधाभासालङ्कारों तथा कई प्रकार की विच्छित्तियों से गहरे विचार के साथ निर्दिष्ट किया है। कवि की इस उपासना के प्रसङ्ग की एक और भी हृदयङ्गम उक्ति हम सहृदय पाठकों के समक्ष रखने के लोभ को नहीं छिपा सकते! श्लोक नहीं, भाव ही सुनाते हैं। संसार में अँधेरे को दूर करनेवाली वस्तु उजाला है। यह तीन ही चीज़ों से हमें मिलता है। उनमें एक अग्नि, दूसरा चन्द्रमा और तीसरा सूर्य है। आश्चर्य है कि हृदय के अन्धकार को दूर करने में ये तीनों ही असमर्थ हैं। परन्तु ऐसे महा महाभाग्यशाली भी संसार में हैं, जिनका वह हृदयान्धकार, कवि के शब्दों में—'भानु', 'तुहिनभानु' और वृहद्भानु' से भी न दूर होकर किसी विलक्षण ही वस्तु से दूर होता है और क्षण मात्र में दूर

होता है। बस, हम उसी सर्वतेजोतिशायी 'महः' की उपासना करते हैं।

इसी प्रसङ्ग में एक जगह कवि ने अपने चित्त को बड़े हृदयगाही शब्दों से भगवान् शिव की ही स्तुति करने का उपदेश दिया है। ज़रा उस पादान्तयमक और सरस भावार्थसम्पन्न सूक्ति को भी पढ़िए—

यं भूपयन्ति कमनीयमहीनभोगाः
स्तुत्वा भवन्ति कृतिनो यमहीनभोगाः।
चित्तोचित तमपहाय महीनभोगाः
कर्त्तुं परत्र धृतसंयम ही न भो गाः॥

१ स्तो० २७ श्लो० २०वाँ पृष्ठ।

कितनी श्रवण-सुखद शब्द योजना है और कैसा अनायास सिद्ध यमक, साथ ही हृदय में एक साथ ही घर कर लेनेवाला मधुर अर्थ और भाव भी। इस जड़ क़लम में वह शक्ति कहाँ जो इस सूक्ति के माधुर्य को सोलहों आने पाठकों के सामने रख सके। फिर भी धृष्टता करके थोड़ा-सा भावार्थ प्रस्तुत कर देते हैं। कवि अपने संयमशील चित्त को समझाता है—हे चित्त! देख, जिस स्वभाव सुन्दर शिव को वासुकि आदि सर्पगण अपने शरीर से विभूषित करके–सजाके अपने जन्म को सफल कर रहे हैं। कृती, कुशल या पुण्यात्मा लोग जिसकी स्तुति करके इस लोक और परलोक के सब सुखों को प्राप्त करते हैं, उस सदाशिव को छोड़कर साधारण पुरुषों की झूठी तारीफ़ों से आकाश और पाताल के कुलावे भिड़ाना क्या ठीक है? अब नमस्कारात्मक द्वितीय स्तोत्र की भी एक बानगी देखिए। अनुभव कीजिए—शब्दालङ्कारगत वृत्यनुप्रास की कैसी छटा है—

"नमः समस्त सङ्कल्प-कल्पना-कल्पशाखिने।
विकासि-कलिकाकान्त-कलापाय स्वयंभुवे॥२॥

कैसे एक के बाद एक नाचते हुए नपे-तुले शब्द हैं—समस्त सङ्कल्प कल्पना कल्पशाखिने, और कितना कोमल है आलाप—विकासि कलिकाकान्त कलापाय, मानो कवि की शब्द भरी सुधा को अनायास ही जीतकर हँस रही है। अर्थ की बात कौन कहे, शब्द-योजना ही सुनकर दिल की कली खिल जाती है। यह समस्त स्तोत्र ऐसे ही नमः और नमस्ते से भरा पड़ा है।

कविवर जगद्धर बड़े मनमौजी मालूम होते हैं। एक बार आपसे किसी ने मुहूर्त्त पूछा। ब्राह्मण तो थे ही—गिनने लगे अश्विनी, भरणी-कृत्तिका। इसी प्रसङ्ग में आपको ख़याल बँध गया—क्यों न एक स्तुति अपने 'सदाशिव' की भी नक्षत्रमाला से कर दें। फिर क्या था। जुड़ने लगे शब्द—

श्रीकण्ठस्य नकृत्तिकार्त्तभरणी मूर्त्तिः सदारोहिणी
ज्येष्ठा भद्रपदा पुनर्वसु-युता चित्रा-विशाखान्विता
दिश्यादक्षतहस्त-मूलघटिताषाढा मघा लङ्कृता
श्रेयो वैश्रवणाश्रिता भगवतो नक्षत्रपालीव वः॥३॥

इन विशेषनाओं से युक्त भगवान् शङ्कर की मूर्त्ति नक्षत्रों की पंक्ति की तरह आपकी रक्षा करे। इसके प्रतिपद का अर्थ आदि पुस्तक में ही देखने का प्रयास उठावें। तृतीय स्तोत्र में तथा अन्यत्र भी (आशीर्वादात्मक) ऐसी अनेक सूक्तियाँ हैं।

अब हम आपको कवि की एक 'विरोधाभास'-योजना का भी नमूना दिखा देना चाहते हैं। कवि नशे में जैसे मस्त है और ऐसे नशे में जो जीवन में जब से आया अन्त तक उतरा ही नहीं। उस नशे की—भक्ति के नशे की उड़ान पर सवार होकर कविवर ने तीनों लोकों के एकमात्र सम्राट् सदाशिव के दरबार में एक नालिश ठोक दी—

त्वां नीतिमान् भजति यः स भवत्यनीति-
र्मुक्तः स यो हि भवता हृदयान्न मुक्तः।
यस्ते रतोऽर्चितये ऽपचितिं स नैति
तत्त्वां श्रितोऽस्मि भवमस्म्यभवो न कस्मात्॥११॥

इसके भावार्थ को भी ज़रा ध्यान से पढ़िए। आप कह रहे हैं—जो नीतिमान् आदमी आपका भजन करता है वह अनीति-नीति से रहित याने बदनीयत हो जाता है और जिसे आप अपने हृदय से नहीं मुक्त करते वह मुक्त हो जाता है तथा जो आपकी पूजा में लगा है वह कभी पूजा को प्राप्त नहीं होता—दुनिया में उसकी इज़्ज़त नहीं होती। यहाँ तक तो हुई औरों की बातें या मिसालें। अब जिस बात पर नालिश हुई है—ख़ास–दरबार में जिस पर दावा किया गया है—वह कहते हैं, तब बताइए मेरे साथ भी यही बर्ताव क्यों नहीं हुआ, मैं भव यानी संसार अथवा उसके कारण का आश्रय लेकर भी अभव-संसार आदि से हीन क्यों नहीं हो रहा? ठीक ही है,

जब आपके यहाँ अन्धेरखाता ही चल रहा है, तब वह पूरा उतरना चाहिए और मेरे साथ भी वही होना चाहिए !

इन उक्तियों में आपाततः—ऊपर से देखने पर विरोध की प्रतीति होती है। जैसे मीठी चीज़ कड़वी नहीं हो सकती, वैसे ही जो 'नीतिमान्' है वह नीतिरहित कैसे हो सकता है? और जो अमुक्त (बद्ध) है वह मुक्त कैसे गिना जा सकता है तथा पूजा करनेवाले की—भक्त की कभी दुर्गति नहीं हो सकती ! इसी आधार पर भव में—संसार में लगा रहनेवाला कभी उससे हीन नहीं हो सकता। परन्तु जब इन शब्दों पर गम्भीर दृष्टिक्षेप होता है तब फिर विरोध नाम लेने को भी नहीं रह जाता। जैसे नीतिमान् उसका नाम है जो करने लायक़ और न करने लायक़ कामों को विचार कर न्याय से करता है। फिर तो ठीक ही है कि वह ऐसा पुरुष 'अनीति' है—ईति से रहित है, अर्थात् उपद्रवों से—मुसीबतों से ख़ाली रहता है। ऐसे ही जिस महान् पुण्यशाली को भगवान् हृदय से नहीं त्यागते वह आत्यन्तिक दुःखों से रहित हो जाता है और जो अपचिति—पूजा, भगवदाराधनादि श्रेष्ठ कार्य करता है उसकी अपचिति—अपचय-दुर्गति कभी नहीं होती—

एक सूक्ति 'दीनाक्रन्दन' स्तोत्र की भी सुन लीजिए—

"कामस्त्वयीव मयि निष्फलता मवाप
क्षिप्तो मयापि विफलो भवतेव कालः।
विध्वस्तधाम मम देव वपुस्तवेव
कष्टं शिवस्त्वमशिवस्तु विविक्ततोऽहम्" ॥११॥

भक्त-कवि की और एक सीनाज़ोरी देखिए ! बराबरी भी करता जा रहा है और दीन भी बनता जा रहा है। कहता है—देवाधिदेव ! आपकी ही तरह काम (मन्मथ और अभिलाषा दोनों का नाम है) मेरे विषय में भी निष्फल ही रहा। चाहे आपने उसे भस्म करके निष्फल बनाया और मैंने अपनी कङ्गाली से। पर जीत दोनों की रही ! और आपने शरणागत की रक्षा के लिए काल (विष) को या यमराज को विफल बना दिया, मैंने भी अपने काल (समय) को खो दिया। मैं दोनों बातों में आपसे रत्तीभर नहीं हटा। तीसरी बात और सुनिए। आप 'विध्वस्तधाम' हैं तो मैं भी विध्वस्तधाम हूँ। भले ही आप अपने शरीर में विधु (चन्द्रमा) के तेज को धारण करके अथवा अपना घरबार कहीं न होने से विध्वस्तधाम हों और मैं भी दुनिया में एक टूटी कुटी के भी न होने के कारण अथवा—तेज से हीन होने के कारण ही सही 'विध्वस्तधाम' हूँ। तभी तो आप भी श्मशानों में—गश्त लगाते फिरते हैं और मैं भी गली गली मारा फिरता हूँ। मैं सब तरह आपके बराबर हूँ। फिर भी आप शिव हैं, सत्य हैं, सुन्दर हैं, और मैं? हाय ! मैं तो दुर्दैववश फूटी तक़दीर से अशिव हूँ, जड़ हूँ, दीन हूँ।

देखा ! कैसी टेढ़ी-मेढ़ी किन्तु सरस बातें बनाकर भक्त कवि, अपने भगवान् को वश में कर रहा है। धन्य हो कविराज ! आपकी काव्य-सरस्वती ने उस स्थाणु में भी अवश्य ही प्रसादात्मक विकार उत्पन्न किया होगा। इस पद्य के अलङ्कार निर्णय को हम पाठकों पर ही छोड़ देते हैं। वे देखें कि इसमें 'जतुकाष्ठ' न्याय से या 'एक वृक्षगत फलद्वय' न्याय से शब्दश्लेष है या अर्थश्लेष ! साथ ही यह भी देखें कि यहाँ शब्दशक्त्युद्भव या अर्थशक्त्युद्भव अलङ्कारध्वनि क्या है। ऐसी समानता बोधक अनेक सूक्तियाँ हैं। समानता ही नहीं, बल्कि—'मैं तुम्हारा हूँ' और 'तुम मेरे हो' ऐसे दृढ़ विश्वासयुक्त आत्मीय सम्बन्ध की भगवान् भूतनाथ के साथ की गई तल्लीनता में भाव की पराकाष्ठा के शिखर पर आरूढ़ कवि ने साक्षात् उस ब्रह्मतत्त्व को 'निष्कृप' और 'निष्ठुर' आदि तक कह दिया है।

कहाँ तक लिखें, कवि की ऐसी मनोहर काव्य-चातुरी और भावपूर्ण सूक्ति से पुस्तक भरी पड़ी है। कवि ने अपने निश्छल 'दीनाक्रन्दन', 'करुणाक्रन्दन' और 'कृपणाक्रन्दन' आदि स्तोत्रों की एक से एक बढ़ रही सूक्तियों को साम्ब-शिव की सेवा में रखकर सहृदय-साहित्य-सेवियों के सामने कविता का आदर्श स्थापित कर दिया है।

हमारी इच्छा और भी कई सरस सूक्तियों पाठकों की सेवा में रखने की थी, पर कहाँ तक रखते ! आख़िर आठ सौ तीन पृष्ठों, उन्तालीस स्तोत्रों और एक हज़ार चार सौ एकतालीस फुटकर सुभाषितों की पुस्तक में से कितना प्रस्तुत करते ! अतः इसे यहीं समाप्त करते हैं।

बिहार में हिन्दी-उर्दू का द्वन्द्व

लेखक, पण्डित वेङ्कटेश नारायण तिवारी

इस लेख के शीर्षक में प्रयुक्त हिन्दी-उर्दू शब्दों की व्याख्या कर देना सुविधाजनक प्रतीत होता है। 'हिन्दी' से संकेत है हिन्दी भाषा और लिपि का; और 'उर्दू' से उर्दू ज़बान और फ़ारसी रस्मेख़त का। जहाँ केवल हिन्दी लिपि की ओर संकेत होगा, वहाँ मैं नागरी-लिपि या नागराक्षर शब्द का प्रयोग करूँगा। जहाँ मुझे सिर्फ़ उर्दू-लिपि कहनी होगी, वहाँ उसे मैं फ़ारसी लिपि लिखूँगा। जिस लिपि में उर्दू लिखी जाती है, उसके कई नाम हैं। कुछ लोग उसे उर्दू-लिपि कहते हैं; कुछ उसे फ़ारसी-लिपि या ख़त के नाम से पुकारते हैं; और उसका तीसरा नाम अरबी ख़त भी है।

हिन्दी-उर्दू के झगड़े के विभिन्न ऐतिहासिक पहलुओं को यदि हम सुलझाना चाहते हैं तो हमें इस द्वन्द्व के इतिहास को बिहार प्रान्त में जाकर अध्ययन करना चाहिए, क्योंकि वहाँ इसकी क्रम-बद्ध गति का निरीक्षण आसानी से हो सकता है। सब क्रमगत तिथियाँ भी मिल जाती हैं। एक और भी कारण है, जिसकी वजह से युक्तप्रांत की तुलना में बिहार को, इस द्वन्द्व के विभिन्न पहलुओं की दृष्टि से, विशेष महत्त्व प्राप्त है। वह यह है कि अँगरेज़ी अमलदारी की बुनियाद बिहार में १७६५ में डाली गई थी। लेकिन युक्तप्रान्त में सन् १८५७ के बाद ही पूर्णरूप से अँगरेज़ी शासन का स्थापन मानना चाहिए। ९० वर्ष के इस अन्तर के कारण हिन्दी-उर्दू के मसले को ठीक ठीक समझने के लिए युक्तप्रान्त से बिहार कहीं अधिक व्यापक रूप में हमारे लिए उपयोगी सिद्ध होगा। इसी लिए, आइए, बिहार चले चलें और वहीं की पवित्र भूमि पर बैठकर हिन्दी-उर्दू की समस्या के विस्तृत इतिहास की मुख्य मुख्य घटनाओं पर निगाह दौड़ायें। यह याद रखने की बात है कि भारतीय इतिहास में बिहार का पद बहुत दिनों से अद्वितीय रहा है।

बिम्बसार, अजातशत्रु, चक्रवर्ती मौर्य्य, गुप्तवंश आदि ने अपने प्रताप और पराक्रम से बिहार-प्रान्त के नाम को सदियों तक भारतवर्ष के कोने-कोने में और, भारत के बाहर अनेक देशों में उजागर कर रक्खा था। वहीं बुद्ध भगवान् ने बुद्धत्व को प्राप्त किया, और जैन-धर्म के प्रवर्तक महावीर का जन्म वहीं हुआ। इन दो पुण्यात्माओं ने राज्यभाषा संस्कृत के स्थान में लोक-भाषा को अपनाया। भारतीय संस्कृति के निर्माण में बिहार ने जो काम किया है, वह जितना विस्तृत है, उतना ही अपने प्रभाव में चिर-स्थायी भी है। लोक-भाषा को राष्ट्रीय जीवन में महत्त्व देने और दिलाने में भी बुद्ध और महावीर के समय से बिहार ही को विशेष रूप से श्रेय प्राप्त है। उन्नीसवीं और बीसवीं शताब्दियों में भी हिन्दी-उर्दू की समस्या का अन्तिम निपटारा इसी बिहार प्रान्त की पवित्र भूमि पर हुआ और होगा। इस दृष्टिकोण से हम अपने पाठकों से यह विनम्र निवेदन करेंगे कि वे हिन्दी-उर्दू के मसले पर विचार करते समय बिहार के महत्त्व की उपेक्षा न करें। युक्तप्रान्त में उतना नहीं जितना बिहार का इस समस्या से सम्बन्ध है। गंगा-यमुना के तट पर नहीं, किन्तु शोण और गंगा के तटों पर हिन्दी-उर्दू की अन्तिम लड़ाई होगी और यदि बिहार में हिन्दी की हार हुई तो निश्चय जानिए कि हम युक्तप्रान्त में भी बाज़ी हार जायँगे। पंजाब और बिहार के दो पाटों के बीच में युक्तप्रान्त चक्की के दो पाटों के बीच चने के समान है। दोनों पाट जब चाहें तब चने को कुचल सकते हैं। इसी तरह पंजाब और बिहार की ठेलम-ठेल को युक्त प्रान्त अधिक समय तक सह न सकेगा वह भी इन दो पड़ोसी प्रान्तों की उर्दू-सेनाओं के पैरों के नीचे रौंद जायगा।

× × ×

पहली तिथि जिसे हमें इस संबंध में याद रखना चाहिए, सन् १७६५ ईसवी है। इसी साल दिल्ली के तख़्त से बंगाल प्रान्त की दीवानी का फ़र्मान अँगरेज़ों को प्राप्त हुआ था। उस समय दिल्ली के सिंहासन पर शाह आलम आसीन थे। दीवानी का फ़र्मान तो अँगरेज़ों को मिला, लेकिन एक शर्त के साथ। शर्त यह थी कि अँगरेज़ राज-काज में फ़ारसी भाषा और फ़ारसी-लिपि का व्यवहार ज्यों का त्यों बनाये रक्खेंगे। इसी लिए ईस्ट इंडिया कम्पनी ने बंगाल-

प्रान्त में फ़ारसी-भाषा और लिपि के पुराने पद को राज-काज में वहाल रक्खा। (यहाँ पर पाठकों की जानकारी के लिए यह कह देना चाहिए कि १७८५ में बंगाल-प्रान्त की दीवानी में आजकल के बंगाल, विहार, उड़ीसा और असम का अधिकांश शामिल थे।) लेकिन अँगरेज़ों ने साथ ही साथ हिन्दी भाषा और लिपि को भी अदालती काम-काज में स्थान दिया ताकि, ईस्ट इंडिया कम्पनी की एक "आईन" के शब्दों में, 'तमामी आदमी' के 'बुझने' के वास्ते सुविधा हो। नीचे के उद्धारणों को कृपा-पूर्वक ध्यान से पढ़ जाइए और उनके उन अंशों को जिन्हें मैंने रेखाङ्कित किया है, सदा अपने सामने रखिए :—

(१) 'अदालत के वकील लोग और आदमी भी हजूरी आईन से वाकिफ हो सकते रहे इस वासते उस आईनों के छापे का कीताव मैं फारसी वो देसी भाखे वो अछर मे उसका तरजमा फिहरीसत के ठेकाने ने जीलद वनदी हो के छोटे वो बड़े के पढ़ने के वासते हरी एक अदालत के कचहरी में मौजूद रहेगा।'—अँगरेज़ी सन् १८०३ साल, १० आईन, ५ दफा।

(२) 'जीस वखत इंगलीसतान वादशाह वो उनके कौसल के साहेव लोग के हजुर मे मोकदीमे का अपील सदर दीवानी अदालत के साहेव लोग मनजुर करही चाहीअे के उस मोकदीमे के वावत के तमामी कएेदाद वो डीकरी ईआ हुकुम मैं गवाही लोग के जवानवनदी वो दस-तावेजान का दो नकल अगर देसी जवान में रहै अँगरेजी जवान मे तरजना कराएे कै तैआर करावही,—अगरेज़ी सन् १८०३ साल, ५ आईन, ३४ दफा।

(३) 'जो सीटामप सभके दावे वो जवाव वगैरह कागज के उपर किया जाऐगा उसके ऊपर नीचे का मजमून फारसी भाखे वो अछर वो हीनदवी जूवान वो नागरी अछर मो खोदा जाऐगा।'—अंगरेज़ी सन् १८०३ साल ४३ आईन १३ दफा ३ तफसील।

(४) 'सुपरिनटनडंट साहव को लाजिम है के सीटामप कीआ हुआ कागज सभ अदालत वगैरह के दफ़्तर के साहेव लोग ईआ जो कोई के तलव करने का अखतीयार रखै उसके पास सरवराह देने के आगे सरकारि खाजाने के ऊपर अँगरेजि जुवान वो हरफ मे टेरेजोरी वो खजाने आमरे का वात फारसी वो वंगला वो हिन्दी भाखे वो अछर मे खोदा जाएगा।'—अंगरेज़ी सन् १८०३ साल, ४३ आईन, १९ दफा।

(५) 'किसी को ईस वात का उजुर नहीं होऐ के उपर के दफेका लीखा हुकुम सभ से वाकीफ नही है हरी ऐक जिले के कलीक्टर साहेव को लाजीम है के इस आइन के पावने पर ऐक ऐक केता इसतहारनामा निचे के मरह से फारसी वो नागरी भाखा वो अछर मे लीखाये कै अपने मोहर वो दसतखत मे अपने जिला के मालीकान जमीन वो ईजारेदार जो हजुर मे मालगूजारी करता उन सभो के कचहरि में वो अमानि महाल के देसि तहसीलदार लोग के कचहरी लटकावही'—अंगरेज़ी सन १८०३ साल, ३१ आईन, २० दफा।

ऊपर के अवतरणों को हमने श्री चन्द्रवली पांडेय-द्वारा लिखित और काशी नागरी प्रचारिणी द्वारा प्रकाशित दो पुस्तकों से लिया है। एक पुस्तक का नाम तो है 'कचहरी की भाषा और लिपि' और दूसरी का नाम है 'विहार में हिन्दुस्तानी।'

ऊपर जो रेखांकित वाक्य हैं उनसे कम से कम दो वातें सिद्ध होती हैं। एक, फ़ारसी-लिपि के साथ-साथ कम्पनी की अदालतों में या दूसरे सार्वजनिक कामों में नागरी-लिपि का रोक-टोक प्रयोग होता था, केवल वेरोक-टोक प्रयोग ही नहीं होता था, वल्कि उसके प्रयोग के लिए कम्पनी की ओर से विशेष रूप से हिदायत भी की जाती थी। दूसरी वात जो सिद्ध होती है, यह है कि 'उर्दू-ए-मुअल्ला' के स्थान में देश की चलती भाषा अर्थात् 'हिन्दी' का विशुद्ध प्रयोग होता था। उसमें फ़ारसी के जो शब्द आपको मिलते हैं उन्हें देखकर पाठकों को भड़क न जाना चाहिए, क्योंकि फ़ारसी उस समय की राज-भाषा थी। कई सौ वरस में हिन्दुस्तान के शाही दरवारों ने उसे हिन्दुस्तान में वही पद दे रक्खा था जो कुछ वर्षों पहले अन्ताराष्ट्रीय जगत् में फ्रेंच भाषा को प्राप्त था। इसलिए यह स्वाभाविक था कि उन अदालतों के अमले जिनमें फ़ारसी का चलन था, यदि फ़ारसी के शब्दों को भी हिन्दी विज्ञप्तियों आदि में प्रयोग करते। फिर हिन्दी-भाषा का हम कोई संकुचित अर्थ नहीं लगाते। उर्दू के विपरीत हिन्दी तो सभी भाषाओं के शब्दों को सदा से अपनाती रही है। उर्दू को तो उसके अहले-ज़वान एक अत्यन्त संकुचित ढाँचे में ढालने को सदा लालायित रहे हैं। यही कारण है कि उर्दू कभी लोक-भाषा न हो सकी। वह तो केवल इम्तियाज़ी लोगों के जत्थे की ज़वान समझी जाने लगी। जव हम हिन्दी-भाषा का नाम लेते हैं, उस समय हम उसके शब्द-भाण्डार में उन शब्दों को भी शामिल कर लेते हैं जो परदेशी हैं। किन्तु उर्दू-वालों ने कभी यह न किया कि वे स्वदेशी हिन्दी और संस्कृत के शब्दों को भी अपनी ज़वान के शब्द मानें। वे तो इसी को सिद्ध करने की उधेड़-वुन में लगे रहे हैं कि उर्दू कुलीन मुसलमानों या तवायफ़ों की ज़वान वनी रहे, जिसे उसे हिन्दू या साधारण मुसलमान वोल भी न सके। परिणाम यह हुआ कि हिन्दी लोक-भाषा के रूप में पैदा हुई और वह राष्ट्र-भाषा हो गई। इसके विरुद्ध, उर्दू देहातों से कोसों दूर भागती रही। वड़े-वड़े शहरों के चन्द मुसलमानों के मज़ाक की वह चीज़ हो गई। आज दिन भी उर्दू और हिन्दी में यही भेद है। उत्तरी भारत का राह-चलता आदमी हिन्दी वोलता है। उर्दू का परमित क्षेत्र सिर्फ़ शहरों और क़स्बों के पढ़े-लिखे मुसलमानों के वैठक-खानों की चहारदीवारियों तक ही सीमित है। ऊपर दिये हुए अवतरण नं० (५) को देखिए। उसमें साफ़ तौर से कहा गया है कि 'नागरी भाखा वो अछर' का प्रयोग होना चाहिए।

* * *

सन् १७८५ ईसवी के वाद, उपर्युक्त अवतरणों से सिद्ध है, विहार में फ़ारसी-भाषा और लिपि के साथ साथ हिन्दी-भाषा और नागरी-लिपि का सरकारी राज-काज में समान रूप से चलन था। यहाँ पर फिर दोहरा देना चाहिए कि उस समय के वंगाल-प्रान्त में आज-कल का विहार भी शामिल था। इस आधुनिक विहार-प्रान्त का जन्म आज से तीन साल पहले हुआ है। अव आइए, ७२ साल की अवधि को लाँघकर, सन् १८३७ ई० में आ जायँ, क्योंकि इस साल का हमारे मसले से घनिष्ठ सम्वन्ध है। इसका विशेष महत्त्व भी है, क्योंकि इसी वर्ष वोर्ड-आफ़ डाइरेक्टर्स ने भारत में गवर्नर-जनरल को यह आदेश दिया कि वंगाल, विहार, उड़ीसा और युक्तप्रान्त में फ़ारसी भाषा और लिपि का प्रयोग वन्द कर दिया जाय, और सरकारी राज-काज देशी भाषा में हो, ताकि जनता सरकारी और अदालती मामलों को आसानी से समझ सके। वोर्ड आफ़ डाइरेक्टर्स की आज्ञा का अनुवाद देना यहाँ पर अनावश्यक है। इसका सार यह था कि फ़ारसी-भाषा सरकारी भाषा के पद से हटा दी गई और उसका स्थान अँगरेज़ी तथा भारतवर्ष की प्रान्तिक भाषाओं को दिया गया। इसी लिए मैंने ऊपर कहा है कि सन् १८३७ ईसवी एक परम महत्त्व-पूर्ण वर्ष है। इसी साल फ़ारसी-भाषा का इस देश से क़ानूनन वहिष्कार हुआ और उसका स्थान मिला प्रान्तिक भाषाओं को——लेकिन महज़ काग़ज़ पर। "प्रभु सोची नहीं होत है, गण सोची वलवान"। गण का यहाँ अर्थ है अमला। सरकारी आज्ञा का पालन सिर्फ़ वंगाल-प्रान्त में हुआ। वहाँ पर वँगला-भाषा और वँगला-अक्षरों को फ़ारसी-भाषा और फ़ारसी-लिपि का स्थान मिल गया। उस समय के वंगाल-प्रान्त के अन्तर्गत विहार और उड़ीसा में फ़ारसी का स्थान विगड़ी हुई फ़ारसी अर्थात् उर्दू को मिल गया और फ़ारसी-लिपि ज्यों की त्यों पूर्ववत् चालू रही। न उड़ीसा से और न युक्तप्रान्त ही से इस समय हमारा यहाँ कोई सम्वन्ध है। इस लेख का सम्वन्ध केवल विहार से है। अतएव, वहीं की वात हम यहाँ कहेंगे। जिस विहार में सन् १८३७ ईसवी के पहले 'नागरी भाखा वो अछर का राज-काज में निर्विघ्न प्रयोग होता था, वहाँ सन् १८३७ के वाद 'नागरी भाखा वो अछर' का वहि-ष्कार कर दिया गया, यद्यपि आज्ञा हुई थी देश निकाले की फ़ारसी-भाषा और लिपि के लिए! अमला ने सरकारी आज्ञा की अवहेलना की और अवहेलना की जान-वूझ कर क्योंकि फ़ारसी-लिपि का उसको अभ्यास था। फिर वह हिन्दी-लिपि को क्यों अपनाने लगा? फ़ारसी-भाषा का भी उसे ज्ञान था, इसलिए उसने नागरी-भाषा के स्थान में हिन्दी के अव्ययों, क्रियापदों और सर्वनामों को छोड़कर वाक़ी सव शब्द फ़ारसी-भाषा से उधार लेकर चालू कर दिये। नतीजा क्या हुआ? इसकी यदि आप खोज करना चाहते हैं तो सन् १९०७ के एक गवाह के नीचे दिये हुए मुचलके की भाषा की तुलना आज-कल की अदालती भाषा के नमूनों से कर ली लीजिए।

(अ) सन् १८०७ ईसवी के आईन ९, दफ़ा १५, तफ़सील ३ में दिये हुए गवाह के मुचलके की अर्ज़ी—

'मैं फलाना रहनेवाला फलानी जगह का हूँ जो फलाना फरयादी रहनेवाला फलानी जगह का फलाने आसामी रहनेवाले फलानी जगह के नाम में नालिश की अरजी गुजरानी और मुझको अपने मोकद्मे का गवाह मोकर्रर किया है इसलिए एकरार करता हूँ वो मोचलका लिख देता हुँ के फलानी तारीख फलाने जिले या शहर के मजिसटरट साहब के हुजूर में हाजिर होकर गवाही दूंगा और जिस सूरत में के हाजिर न हुँ जेतना डाँड मुझपर ठहरे जिसके देने का हुक्म मजिसटरट साहेब की तरफ से हो और जेतना खरच के मेरी गैरहाजिरी से सरकार की तरफ से पाया जावे वह सब अपने जिममे पर लाजिम समझुँ इसलिए यह दसतावेज मुचलके के तौर पर लिख दी के वकत पर काम आवे। लिखा तारीख फलानी सन फलाना मोताबिक फलाने का'।

(ई) आजकल की अदालती भाषा के नमूने:--

(१) नोटिस बनाम नाबालिग मुद्दालेह और वली बनिस्वत दर्ख़ास्त वास्ते बहालावली की वली बगरज़ मोकदमे के।

(२) वही रोज़ वास्ते इन्फ़ेसाल नातिक मुक़दमा हाज़ा के मुऐयन है।

(३) क़ुरक़ी क़बले तजबीज़ साथ हुक्मे तलबी जमानत वास्ते अदाय डिगरी के।

(४) जिनको एंतराज़ बनिस्बत क़िस्म या तायदाद हक़ीयत जो दावी किये हुए मज़कूर मुवाफ़िक़ तफ़सील ज़ैल के हो उसको चाहिए कि बयान तहरीरी अपने उज़ुरों का दे।

(५) आइनदा वास्ते समायत मोक़दमे के मोक़र्रर की गई लेहाजा बज़रिए इसके इश्तेहार दिया जाता है कि शखसे मोतवफ़ा का अगर दूसरा कोई शखस वारिस हो या दूसरा कोई शखस उसके मैतरके का मुसतहक़ हो या अगर कोई शखस साऐल का इसतदोआए पर ऐतराज़ करना चाहता है तो वह तारीख़ मोक़र्रर मज़कूर में ख़ुद या बज़रिए वकलाए के हाज़िर होकर एतराज अपना पेश करे और तारीख मज़कूर पर अपना दस्तावेज़ और गवाहान जो वह अपने एतराज़ की ताईद में पेश करना चाहता हो पेश करने पर आमादे रहे।'

× × ×

ऊपर दिये हुए अवतरण (अ) और (ई) इस बात के प्रमाण हैं कि सन् १८३७ ई० के बाद यद्यपि १०३ साल बीत गये किन्तु फ़ारसी-भाषा का बहिष्कार बिहार की अदालतों से आज तक न हो सका और न प्रान्त की हिन्दी को वह पद ही मिल सका जो उसे सन् १८३७, ईसवी की आज्ञा के अनुसार १०३ वर्ष पहले मिल जाना चाहिए था या जो उसे सन् १८३७ ईसवी के पहले बिहार में प्राप्त था। कवि ने ठीक ही कहा है कि हरि से हरिजन का पद बड़ा है, और यह भी ठीक ही है कि देवी से कहीं बड़ा स्थान है उसके पुजारी का। कहने को तो लोग कहते हैं कि राजा करे सो न्याय। लेकिन हम आप राह चलते यह देखते हैं कि यह बात ग़लत है। राजा के गण अर्थात् उसके मातहत नौकर-चाकर जो चाहते हैं वही होता है। यही बात बिहार में हिन्दी के सम्बन्ध में भी ठीक उतरती है। राजा चिल्लाता ही रहा, पर उस बेचारे की किसने कब सुनी! इसी लिए उर्दू के रूप में फ़ारसी-भाषा और फ़ारसी-लिपि सन् १८३७ के बाद बिहार की राज-भाषा और लिपि बनी रहीं।

* * *

अब तीसरी तिथि को लीजिए। सन् १८३७ ई० के बाद सन् १८७१ ईसवी में आ जाइए। इस साल बंगाल के लेफ़्टिनेन्ट गवर्नर, सर जार्ज कैम्पबेल, ने निम्न घोषणा की--

'फ़ारसी भाषा जो हिन्दुस्तान के पुराने अधिकारियों की भाषा थी, समष्टि रूप से त्याग दी गई है। सरकारी भाषा के पद से (बंगाल के लेफ़्टिनेन्ट गवर्नर के पद पर) हिन्दुस्तान में आने से पूर्व, यह भाषा त्याग दी गई थी ....। मेरी धारणा थी कि यह भाषा बिलकुल निषिद्ध हो चुकी है और हमें ऐसा करने में सफलता प्राप्त हुई है। लेकिन पिछले दिनों जब मुझे बिहार जाने का अवसर मिला तब मुझे यह देखकर ताज्जुब हुआ कि यह दोग़ली (फ़ारसी-मिश्रित उर्दू) भाषा फल-फूल रही है और हमारे क़ानूनों में उसके शब्दों का प्रयोग होता है और मदरसों में भी उसकी शिक्षा का प्रबन्ध है.........। लेकिन बिगड़ी हुई अरबी और बिगड़ी हुई फ़ारसी के मेल से जो भाषा गढ़ी गई है......जिसे उर्दू कहते हैं, कदापि इस योग्य नहीं कि उसकी शिक्षा

सिंहवाहिनी दुर्गा

दी जाय। .....मैंने ऊपर जो कुछ आदेश दिये हैं उनका पालन सरकारी कर्मचारियों पर लागू है, जिसमें वह इतने दफ़्तरों में प्रचलित भाषा के अतिरिक्त दूसरी भाषा का प्रयोग न होने दें।......मुझे आशा है कि हाईकोर्ट भी इस मामले में हमारा हाथ बँटायेगी।"

फिर भी कुछ सुनवाई न हुई। छोटे लाट जितना जी चाहा चिल्लाते रहे लेकिन सरकारी दफ़्तरों के कर्मचारियों ने किया वही जो उनके मन भाया। सन् १८७४ ईसवी और सन् १८७५ ईसवी में ये आज्ञायें दोहराई गईं और आज्ञा दी गई कि सम्मन, सूचनायें, विज्ञप्तियाँ हिन्दी में हों; सरकारी काग़ज़ पत्र हिन्दी में रक्खे जायँ; अर्ज़ीदावे हिन्दी या उर्दू अक्षरों में फ़रियादी की इच्छा के अनुसार लिये जा सकते हैं और हिन्दी लिपि का ज्ञान होना पुलिस के मातहत अफ़सरों के लिए अनिवार्य कर दिया जाय। परन्तु फिर भी कोई सुनवाई न हुई। अतएव, सन् १८८० ईसवी के मध्य में बंगाल के तत्कालीन लेफ़्टिनेंट गवर्नर, सर ऐशले ईडन, ने आज्ञा निकाली कि पटना और भागलपुर की कमिश्नरियों में जनवरी १ सन् १८८१ से सिर्फ़ नागरी अक्षरों ही का प्रयोग होगा और यह भी आज्ञा दी कि किसी और लिपि का प्रयोग अदालतों में न होगा। इस तरह सन् १८८१ ईसवी से उर्दू भाषा और फ़ारसी-लिपि के स्थान में हिन्दी भाषा और कैथी-लिपि को बिहार में स्थान मिल गया।

* * *

अब आइए, सन् १९२९ ईसवी को लें। इस साल बिहार की प्रान्तीय हुकूमत ने एक घोषणा निकाली कि १३ साल के लिए पटना-कमिश्नरी की सिर्फ़ दीवानी कचहरियों में उर्दू लिपि का प्रयोग, परीक्षा के तौर पर, किया जाय। लेकिन इससे उर्दूपरस्त सन्तुष्ट न हुए। वे निरन्तर इस बात की कोशिश करते रहे कि प्रान्त भर की दीवानी और फ़ौजदारी अदालतों में उर्दू-लिपि का प्रचार हो जाय। इसके बाद हुआ क्या? डाक्टर अब्दुल हक़ के अख़बार की ज़बानी पाठकों को इसकी कहानी हम सुना देना चाहते हैं।

हक़ साहब लिखते हैं—

'मई सन् १९३७ ई० में हुकूमत ने इन मुतालबों को किसी कदर तरमीम के साथ मंज़ूर कर लिया और यह क़रार पाया कि अर्ज़ियाँ और बयानात तहरीरी वग़ैरह उर्दू हिन्दी दोनों ख़तों में दाखिल किये जायँ याने यह कि अगर अर्ज़ी उर्दू में है तो उसकी नक़ल हिन्दी में, और अगर हिन्दी में हो तो उसकी नक़ल उर्दू में हो। अल्बत्तः संथाल परगनः और क़िस्मत छोटानागपुर को यह रिआयत हासिल न हुई।

'हामियान हिन्दी की तरफ़ से इसकी बड़ी मुख़ालिफ़त हुई और हुकूमत ने दूसरा एलान शाया किया जिसकी रू से एलान साबिक़ मंसूख़ हो गया और यह हुक्म जारी हुआ कि उर्दू रस्मख़त कुल अदालतों और सरकारी दफ़्तरों में जहाँ जहाँ पहले कभी रायज था, इख़्तयारी रस्मख़त होगा। क़िस्मत छोटानागपुर और संथाल परगनः इस हुक्म से मुस्तसना हैं।

'इसके चन्द रोज़ बाद ही हुकूमत की तरफ़ से एक एलान शाया हुआ कि अगर कोई अर्ज़ी या तहरीर बयान उर्दू में दाख़िल हो तो फ़रीक़ मुख़ालिफ़ के मुतालिबे पर उसे उसकी हिन्दी नक़ल मिलनी चाहिए। इसका मतलब आम तौर पर यह समझा गया कि यह रिआयत सिर्फ़ हिन्दीवालों के लिए है. उर्दूदाँ इससे महरूम रहेंगे। इस ग़लतफ़हमी को रफ़ा करने के लिए १३ जुलाई सन् १९३७ ई० को एक और एलान शाया हुआ, जिसका मंशा यह था कि यह रिआयत सिर्फ़ हिन्दीदाँ फ़रीक़ ही के लिए नहीं, बल्कि इसमें उर्दूदाँ भी शामिल हैं। लेकिन यह मामलः हुकूमत के तय करने का नहीं है। हाईकोर्ट इसका फ़ैसला करेगा, जिसकी तवज्जह इस तरह मुनातिफ़ कराई गई है। (उर्दू, जुलाई सन् १९३७ ई०, पृ० ६५४–५)

जिन पाठकों ने इस लेख को यहाँ तक पढ़ने की कृपा की है उनसे कुछ अधिक कहने की ज़रूरत नहीं दिखाई देती। बिहार में मुसलमानों की जन-संख्या लगभग १२ फ़ीसदी है। वहाँ की अदालती भाषा के रूप में बिगड़ी हुई फ़ारसी का चलन है। फ़ारसी-लिपि के भी प्रचार के लिए ज़मीन-आसमान के कुलावे एक कर दिये गये और अन्त में उनका वैकल्पिक चलन स्वीकृत हो गया। इसी तरह युक्तप्रान्त को लीजिए। यहाँ की मुस्लिम आबादी लगभग १५ फ़ीसदी है। उर्दू का यहाँ सरकारी दफ़्तरों में बोलबाला है। सन् १९०० ईसवी से हिन्दी-लिपि के वैकल्पिक प्रयोग की आज्ञा हो गई है। लेकिन अमलों की कृपा से वह आज्ञा महज़ काग़ज़ी आज्ञा है। बिहार और युक्तप्रान्त से पंजाब की तुलना कीजिए। पंजाब के सब सम्प्रदायों की भाषा पंजाबी है. उर्दू नहीं। सिक्ख और हिन्दू गुरुमुखी और नागरी-लिपिओं को अपनी लिपियाँ मानते हैं लेकिन वहाँ पर केवल उर्दू-भाषा और फ़ारसी-लिपि का सरकारी दफ़्तरों में चलन है। पंजाब में अल्पसंख्यकों की भाषा और लिपि के संरक्षण की किसी को कोई चिन्ता नहीं है। युक्तप्रान्त में बहुसंख्यकों की भाषा और लिपि को सरकारी दफ़्तरों में कोई स्थान नहीं है। बिहार में अल्पसंख्यकों की भाषा समस्त प्रान्त की भाषा मान ली गई और उनकी लिपि को वैकल्पिक अधिकार मिल गया है। इसके बाद 'हिन्दुस्तानी' के नाम से हिन्दी की हत्या का कांड वहाँ रचा गया। उसका ज़िक्र यहाँ पर करना ठीक नहीं है। आज के लिए इतना ही क़िस्सा काफ़ी है।

कथा विसर्जन होत है,
सुनो वीर हनुमान।

जाग्रत नारियाँ

भारतीय स्त्रियाँ किस आदर्श पर चलें ?

लेखिका, श्रीमती कमला श्रीवास्तव

वैसे तो विलायत की स्त्रियों में जागृति उन्नीसवीं शताब्दी के आख़िर में शुरू हो गई थी किन्तु जन-साधारण पर उसका कोई विशेष प्रभाव न पड़ा। राजनैतिक क्षेत्र में तो स्त्रियों का कोई अधिकार नहीं था। यही हालत बीसवीं सदी के प्रारम्भ में भी रही; मगर सन् १९१४ में योरपीय महासमर छिड़ जाने के कारण परिस्थिति बहुत कुछ बदल गई। उस युद्ध में भीषण जन-संहार हुआ, जिसके फलस्वरूप पुरुषों की कमी योरप के क़रीब सभी देशों में भीषण हो गई। सबसे अधिक इसका प्रभाव फ़्रांस पर पड़ा। युद्ध-काल ही में बहुत-से काम, जो उसके पहले केवल पुरुष लोग ही किया करते थे, अब स्त्रियों के सिर आ पड़े। यद्यपि उसके पहले स्त्रियों ने वैसी ज़िम्मेदारी का कार्य कभी नहीं किया था फिर भी जिस मुस्तैदी के साथ उन्होंने अपना कर्त्तव्य पालन किया उसकी सराहना सारे संसार ने की।

युद्ध के समाप्त होने पर स्त्रियों की माँग स्वाधिकारों के लिए प्रबल हो गई और उनकी माँगों की अवहेलना पुरुष लोग अधिक न कर सके। इस तरह से यह कहना पड़ेगा कि नारीसमाज के उत्थान के लिए एक वृहत् योरपीय महायुद्ध की आवश्यकता पड़ी। किन्तु जब उनकी विजय हुई तब पूरी तरह से हुई। शुरू में औरतें केवल वोट देने का अधिकार चाहती थीं मगर जब उन्हें वोट देने का अधिकार प्राप्त हुआ,

आगरा की कुमारी वेदकुमारी अरोड़ा संगीत के भातखंडे विश्वविद्यालय की 'संगीत-विशारद' परीक्षा में द्वितीय उत्तीर्ण हुई हैं।

तब अन्य राजनैतिक और सामाजिक क्षेत्रों में भी उनकी विजय-पताका फहरा उठी। जो कुछ भी रुकावटें उनके मार्ग में थीं, एक एक करके दूर होने लगीं। बहुत-सी नौकरियाँ और पेशे जिनमें, पहले औरतें नहीं सम्मिलित हो सकती थीं, अब उनमें उनके जाने के लिए कोई बाधा न रह गई। उन्हें अधिकार मिल गया

कि वे पुरुषों की बराबरी करती हुई किसी भी क्षेत्र में पुरुषों से होड़ कर सकती थीं। इन अधिकारों को प्राप्त कर स्त्रियाँ चुपचाप नहीं बैठीं। उन्होंने उसका पूरा फ़ायदा उठाया और आज दिन हम लोग देखते हैं कि डाक्टर, वकील, उपदेशक, पुलिस, ख़ज़ांची, टाइपिस्ट, गाइड, सिक्रेटरी, शोफ़र तथा अन्य विभागों में स्त्रियाँ काम कर रही हैं। अभी हाल ही में हंगरी में एक फाँसी देनेवाले की जगह खाली हुई थी। उस जगह को भरने के लिए विज्ञापन निकाला गया था। जो दरख़्वास्तें आई थीं उनमें दो औरतों की भी थीं।

फ़ैज़ाबाद ज़िले की सहकारी कान्फ़्रेन्स के सिलसिले में होनेवाले 'चर्ख़ा-दंगल' का एक दृश्य।

इन सब बातों पर विचार करने से यह कहना पड़ेगा कि स्त्री-समाज ने काफ़ी तेज़ी के साथ आगे की ओर क़दम बढ़ाया है। योरप में औरतों की स्वतन्त्रता देखकर भारत में भी पढ़े-लिखे स्त्री-समाज में काफ़ी चहल-पहल हो उठी है। यहाँ भी औरतें अपने 'हक़ों' की माँग ज़ोरों से पेश कर रही हैं।

आशा भी है कि हिन्दुस्तान, जो आजकल के ज़माने में पश्चिमीय देशों की नक़ल करने में बहुत आगे बढ़ा हुआ है, शीघ्र ही औरतों की बहुत-सी माँगों को पूरा ही करेगा। ऐसा लिखने के यह माने कदापि नहीं हैं कि स्त्रियों की सब माँगें अनुचित हैं। किन्तु यह बताना आवश्यक है कि जब भारतवर्ष की स्त्रियाँ पश्चिमी देशों को दृष्टि में रखते हुए अपनी माँगें पेश करें उस समय उन्हें चाहिए कि पश्चिमीय देशों की औरतों का इस समय पर क्या हाल है इसका भी ध्यान अवश्य रक्खा करें।

विलायत के समाज में हर तरह से पुरुषों के बराबरी का हक़ प्राप्त करके वहाँ की स्त्रियों का क्या हाल हुआ है यह किसी से भी छिपा नहीं है। उन हक़ों के मिलने के पहले स्त्रियों को वोट देने और हर जगह नौकरी करने का अधिकार भले ही न रहा हो मगर घर के अन्दर उनका अधिकार पूर्ण था। वे बराबरी का दावा करते-करते अपना पुराना कर्त्तव्य भी भूल गईं। फल यह हुआ कि वे घर की स्वामिनी न बनी रह सकीं। यानी एक अधिकार प्राप्त किया तो दूसरी तरफ़ हज़ारों वर्ष का प्राप्त किया हुआ अधिकार खो बैठीं।
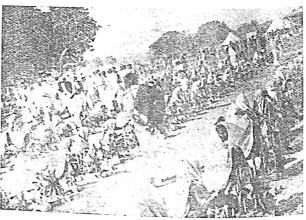
सबसे पहले हमें वहाँ की उन अविवाहिता स्त्रियों के बारे में देखना चाहिए जिन्हें समाज ने दूसरों की नौकरी करने की आज़ादी दे दी है। इसमें शक नहीं है कि स्त्रियों को कहीं भी नौकरी करने में समाज उसे बुरा नहीं समझता मगर समाज अपने को अभी इस योग्य नहीं बना सका है कि जिससे वे बेचारी नौकरी करनेवाली औरतें अपना निजी जीवन सुखपूर्वक व्यतीत कर सकें। औरतों को नौकरी मिलती तो अवश्य है मगर जो काम उन्हें दिया जाता है वह मातहती का होता है। उनको ऐसा काम नहीं सौंपा जाता जिसमें अपनी ज़िम्मेदारी पर वे अपनी योग्यता का पूर्णरूप से परिचय दे सकें। यद्यपि स्त्रियों को वही काम सौंपा जाता है जो कि अन्य किसी पुरुष को, तब भी स्त्रियों को तनख़्वाह पुरुष से कम ही दी जाती है। यह तो अकसर देखा जाता है कि ऊँची शिक्षा प्राप्त की हुई युवतियाँ सैकड़ों की तादाद में काम सीखने के लिए कारख़ानों का चक्कर लगाया करती हैं कि उन्हें किसी तरह थोड़ी ही तनख़्वाह पर काम करने का मौक़ा दिया जाय। इन कारख़ानों के स्वामी तथा संचालकगण प्रायः ऐसे लोग होते हैं जो शिक्षा, दुनियादारी और बुद्धि में उन औरतों में से

कुमारी कमला गुल्टी (बाईं ओर) और कुमारी करुणा स्याल को फ़िरोज़पुर के आर० एस० डी० कालेज की हिन्दीविवादप्रतियोगिता में क्रमशः प्रथम और द्वितीय पुरस्कार मिले हैं।

कितनों ही से गये बीते होते हैं। समाज की इन ज़्यादतियों से स्त्रियों में निराशा का भाव आजाना स्वाभाविक है।

दस साल पहले वहाँ की हर एक युवती की यह इच्छा रहती थी कि वह घर छोड़कर अपने जीविका-निर्वाह के लिए कहीं कोई नौकरी कर ले—चाहे वह होटल की वेटरेस् या टायपिस्ट ही की जगह क्यों न हो; लेकिन आज-कल जीवन में ठोकरें खाने के बाद उनमें से बहुत-सी ऐसी हैं जो सोचती हैं कि इससे तो अच्छा यही था कि वे घर का काम-काज देखतीं और एक सुघड़ गृहिणी की तरह अपने घर की स्वामिनी बनी रह कर अपने पति और बच्चों की देख भाल से अपना जीवन व्यतीत करतीं। जीविका उपार्जन करने के लिए दूसरों की नौकरी करने से घर की मालकिन बनना लाख दर्जे अच्छा था। दफ़्तर की ग़ुलामी से रसोईघर पर हुकूमत करना कहीं अच्छा था। ऐसे विचार केवल ख़याली पुलाव ही नहीं हैं। इधर कुछ दिनों से कारखानों और दफ़्तरों में नौकरी करने के लिए आनेवाली दरख़्वास्तों में स्त्रियों की दरख़्वास्तें बहुत कम दिखाई पड़ने लगी हैं।

मगर घर की ओर फिर से लौटना भी वहाँ की स्त्रियों के लिए एक विकट समस्या हो उठी है। घर अब वे घर ही नहीं रह गये जिन्हें बीसवीं शताब्दी की आधुनिकता की धुन में वे लोग छोड़ कर चली गई थीं।

इस बीस साल के अन्दर उनके घरों के वातावरण में एक प्रकार की क्रान्ति-सी हो चुकी है। उस क्रान्ति के फलस्वरूप मामूली और औसत दर्जे के घरों में गृहिणी का आर्थिक दृष्टि से स्थान एक हिसाब से सर्वथा लोप हो चुका है। पहले तो स्त्रियाँ पुरुष के जीवन का एक अंग समझी जाती थीं। उनका घर में अपना एक विशेष स्थान था जिसका आर्थिक और सामाजिक दृष्टि से एक बड़ा महत्त्व था। लेकिन समय के फेर ने, आधुनिकता ने, बराबर का दर्जा देते देते औरतों को इस जगह पर पहुँचा दिया कि घर में स्त्रियों का दर्जा गृहिणी का न रह कर कुछ और ही हो गया है।

महिला-ट्रेनिङ्ग-कैम्प की स्काउटिंग-शिक्षा-प्राप्त कुछ महिलायें अपनी झोपड़ियों के बाहर खड़ी हैं।

घर चलाना पहले एक तरह का हुनर समझा जाता था। उन्नीसवीं शताब्दी में गृहिणी का क़रीब-क़रीब सारा दिन और उसकी सारी शक्ति, घर के काम-धंधे के संचालन में व्यतीत हो जाती थी। किन्तु उसके विपरीत कुछ तो वैज्ञानिक आविष्कारों ने और कुछ वातावरण के परिवर्तन ने घर का संचालन बिलकुल आसान कर दिया है। अब गृहिणी को न चूल्हा फूँकने की ज़रूरत है और न कमरों को साफ़ करने की। गरमी के लिए गैस-कम्पनी से गैस मिल जाती है, रोशनी का काम बिजली के बटन दबाने से चल जाता है। पानी म्युनिसिपैल्टिी के नल से आता है। अगर वह किसी होटल या 'सर्विस फ़्लैट' में नहीं रहती तो खाना बनाने के बजाय दूसरों के पकाये हुए भोजन टीन के डब्बों में भरे हुए मिल जाते हैं जिन्हें गरम करके या ठंडा ही खाया जा सकता है। अब अधिकांश स्त्रियाँ पहले की तरह अचार-मुरब्बे इत्यादि भी नहीं बना सकतीं। ये सब चीज़ें बाज़ार से बनी-बनाई आसानी से मिल जाती हैं और उन्हीं को घर में प्रयोग किया जाता है। जिन कामों में कुछ ही साल पहले स्त्रियाँ, अपना सारा दिन व्यतीत किया करती थीं, अब एक एक करके उनसे ले लिये गये हैं और अब समाज में उनका स्थान केवल एक दवा के रूप में रह गया है। स्त्रियाँ अपना एक क़दम घर के बाहर निकाल कर दूसरा क़दम बाहर दुनिया में जमा नहीं सकीं। अगर वे थोड़े-समय के लिए कोई नौकरी चाहती हैं तो यह कहकर दुतकारी जाती हैं कि वे उनके योग्य नहीं हैं; अथवा यह कह कर कि उनके पास अपना जीवन सुखपूर्वक निर्वाह करने का सहारा है और इसलिए उन्हें किसी ग़रीब वेतन ही पर निर्भर करनेवाली अबला के मुख से रोटी छीनने का कोई अधिकार नहीं है।
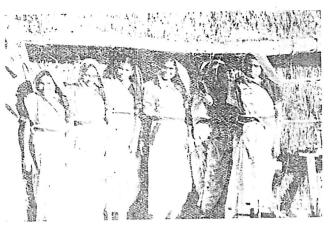
समाज के इस व्यवहार का यह फल हुआ है कि साधारण शहर के आस-पास के रहनेवाली औसत दर्जे की औरतों और लड़कियों को ज़रूरत से ज़्यादा छुट्टी रहती है और उनका फ़ालतू समय व्यर्थ ही नष्ट हुआ करता है। न उन्हें अपनी योग्यताओं का परिचय देने का अवसर मिलता है और न उनके कौशल या कार्य-कुशलता का विकास ही हो पाता है। उन्हें अपने जीवन में अकेलेपन का अनुभव होता है। वे पुराने तरीक़े के जीवन से अलग कर दी जा चुकी हैं मगर उनका समाज के आधुनिक जीवन में कोई स्थान नहीं है। शहर की स्त्रियों में आपस में एक दूसरे से बहुत कम जान-पहचान है। वे अपने पड़ोसियों को नहीं जानतीं और उनके पास इतने साधन नहीं हैं कि शहर में आकर पूरे तरह से शहरी-जीवन ही व्यतीत कर सकें।

इन सब कठिनाइयों को किस तरह दूर किया जाय? एक दूसरे से मिल कर काम करें? ऐसा हो नहीं सकता। स्त्रियाँ मिलकर काम या तो कर ही नहीं सकतीं या ऐसी स्त्रियाँ मिलेंगी नहीं। वे अपनी-अपनी रागिनी भले ही अलापा करें मगर सब मिल कर एक सुन्दर गार्हस्थ्य जीवन व्यतीत करने की कभी न सोचेंगी। विलायत में शहर के समीप रहनेवाली स्त्रियों के बारे में लिखते हुए एक अँगरेज़ी

डाक्टर का कहना है कि वहाँ की रहनेवाली स्त्रियाँ एक प्रकार से अपने जीवनक्रम से हताश-सी हो चुकी हैं। अगर शीघ्र ही उनकी शक्तियों का उचित उपयोग नहीं किया जायगा तो वह शक्ति निश्चय ही किसी एकाग्री रूप में परिणत होकर समाज का अनिष्ट कर सकती है।

जर्मनी में नाज़ियों के प्रभुत्व के पहले वहाँ की स्त्रियों का भी क़रीब वही हाल था, बल्कि यह कहना चाहिए कि उससे भी कहीं आज़ादी थी जितनी की आजकल ग्रेट ब्रिटेन में स्त्रियों को है। नाज़ी क्रान्ति के पहले वहाँ के चुनाव में स्त्रियों ने पुरुषों से कहीं ज़्यादा तादाद में हर हिटलर के लिए वोट दिये थे। और जैसे जैसे हिटलर की शक्ति बढ़ती गई उसे वोट देनेवालों में स्त्रियों की संख्या भी बढ़ती ही गई। यहाँ तक कि सन् १९३३ में नाज़ीपार्टी के लिए एक लिपज़िग शहर में प्रत्येक १०० पुरुष के मुक़ाबिले में ११८ औरतों ने वोट दिये थे। अन्ततः जब हिटलर का एकाधिपत्य हो गया उस समय जर्मनी की स्त्रियाँ उसको देवता-समान समझ कर पूजने लगीं। उसके चारों ओर औरतों की भीड़ लगने लगती। कोई उसका हाथ चूमने के लिए व्याकुल होतीं तो कोई उसका कपड़ा ही पकड़ कर रो उठती। हिटलर को वे अपना उद्धारक समझती थीं।

यह तो पुरानी कहावत है कि बेकारों के दिमाग़ में शैतान रहता है। शायद यह उसी शैतानी का परिणाम था कि औरतों ने हिटलर और नाज़ीपार्टी को अपने वोट दे देकर उसे इस पद तक पहुँचा दिया कि जिसके कारण आज सारा संसार परेशान-सा हो उठा है। यह भी सम्भव है कि अन्य जगहों में हिटलर जैसे लोग अपना प्रभुत्व बेकार स्त्रियों ही की मदद से शायद जमा सकेंगे। यह तो इतिहास बार बार स्मरण दिलाता ही है कि जिन लोगों को अधिक आज़ादी मिली वे निश्चय ही उस आज़ादी का दुरुपयोग करते हैं जो आगे चल कर आज़ादी के नाश का कारण होती है। फिर इस ख़तरे से बचने का उपाय क्या है? यह कहा जाता है कि हिटलर ने तानाशाह बनने के बाद जर्मनी की औरतों को सुखी बनाने का उपाय सोच निकाला। उसने उनको उनके पतियों के पास फिर से भिजवा दिया। उसने उन्हें घर का काम-काज करना, बच्चों की देख-रेख करना तथा अन्य काम जो कि एक गृहिणी को करने चाहिए, करने के लिए बाध्य किया। और यह भी कहा जाता है कि इससे जर्मनी की स्त्रियों का जीवन काफ़ी सुखी और शान्तिमय हो गया।

अगर स्त्रियाँ अपनी स्वतंत्रता का पूरा लाभ उठाना चाहती हैं तो यह अच्छा हो कि वे लोग पिछले २० साल की बरबादी और मुसीबतों को ध्यान में रक्खें। उनको अपने आप वही करना चाहिए जिसे कि जर्मनी में हिटलर ने वहाँ की स्त्रियों के लिए किया। समाज की निगाह में वे बराबरी का हक़ तो अवश्य प्राप्त करें मगर वे अपने दायरे को न भूलें।

सन्तान-उत्पत्ति और उनकी देख-रेख करना ही उनका प्रधान काम है। घर का काम चलाना तथा उसी सम्बन्ध की अन्य बातें ही स्त्रियों के लिए प्रकृति का नियम है। उस नियम को तोड़ना उच्छृंखलता है। अगर वे अपना जीवन प्राकृतिक नियमानुसार व्यतीत करेंगी तो अवश्य ही उनका जीवन शान्त और सुखमय होगा। अपना कर्तव्य पालन करने में एक प्रकार का विशेष स्वर्गीय आनन्द प्राप्त होता है जो प्रकृति के नियम भंग करने से कभी नहीं प्राप्त हो सकता। उस शान्तिमय जीवन का परिणाम यह होगा कि वर्तमान समय में आधुनिकता का राग अलापनेवाली स्त्रियाँ जो अपने जीवन को भार समझ बैठी हैं और जिन्हें जीवन को सुखी बनाने के लिए भाँति-भाँति के आमोद-प्रमोद की आवश्यकता प्रतीत होती है सचमुच सुखी हो जायँगी।

इधर कुछ दिनों से भारतवर्ष में भी आधुनिकता की लहर ज़रा ज़ोरों से बहनी शुरू हो रही है। उस लहर को फैलाने का श्रेय कुछ महानुभावों और देवियों को है। आधुनिकता की लहर फैलानेवालों में अधिकांश का समाज में क्या स्थान है? उनका पारिवारिक जीवन कैसा रहा है? उनका बालकपन और युवावस्था कैसी रही है? इसके बारे में यदि ज़्यादा प्रकाश न डाला जाय तभी अच्छा है।

इसमें सन्देह नहीं कि भारतवर्ष में स्त्रियों के साथ समाज ने बहुत-से मामलों में उचित और न्यायपूर्ण व्यवहार नहीं किया है। मगर इसके यह माने नहीं हैं कि उन बुराइयों को दूर करने के लिए समाज में एक क्रान्ति उत्पन्न कर दी जाय और अपनी सदियों की सभ्यता को

बाढ़पीड़ित स्त्रियों में चरखे का प्रयोग

तहस-नहस कर डाला जाय। हमारा आदर्श भारत की प्राचीन सभ्यता है न कि योरपीय देशों की नक़ल। जैसा कि ऊपर दिखाया जा चुका है योरप में स्त्रियों की दशा दयनीय हो रही है। इस समय युद्ध छिड़ जाने के कारण वहाँ की स्त्रियाँ भले ही कुछ समय के लिए फिर से नौकरियाँ पा जायँ मगर युद्ध के समाप्त हो जाने पर वहाँ की दशा पहले से भी ज़्यादा शोचनीय हो जायगी। यह भी सम्भव है कि अपने पिछले कटु अनुभव के कारण वहाँ का स्त्री-समुदाय इस बार ज़रा फूँक फूँक कर पैर आगे को बढ़ाये। किन्तु प्रश्न है कि इस समय हमारा क्या कर्तव्य है? कर्तव्य तो साफ़ और सीधा है—कुरीतियों को दूर करते हुए सुघर गृहिणी और गृह-स्वामिनी बनना। इसी में भारतीय नारीसमाज का कल्याण है और इसी में देश की भलाई है। हमारा मुल्क अभी आज़ाद नहीं है। इसलिए यह और भी आवश्यक है कि यहाँ की स्त्रियाँ अपने को इस योग्य बनायें कि वे भी राष्ट्र के उत्थान और पुनर्निर्माण में सहायता पहुँचा सकें। इसके लिए यह ज़रूरी नहीं है कि वे घर में कलह उत्पन्न करके ऐसे सभी काम करने को लालायित हो उठें जिन्हें अब तक केवल पुरुष ही किया करते थे। स्त्रियाँ भविष्य में पुरुषसमुदाय के मार्ग में रोड़े अटकानेवाली न होकर उन्हें साहसी, वीर और निर्भीक बनायें। यही हमारी प्राचीन सभ्यता थी; इसी सभ्यता के सहारे आज दिन तक भारतवर्ष अपना सिर संसार में ऊँचा रख सका है और इसी मार्ग पर चल कर भविष्य में भी भारत संसार के अन्य देशों का पथ-प्रदर्शक रहेगा।
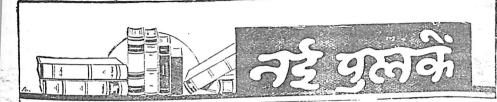
१—भारतीय राजनीति के ८० वर्ष—लेखक, डाक्टर सी० वाई० चिन्तामणि, डी० लिट०, प्रधान सम्पादक 'लीडर', प्रयाग, अनुवादक, श्रीयत केशवदेव शर्मा प्रकाशक, हिन्दुस्तानी एकेडमी, इलाहाबाद हैं। पृष्ठ २२४ और मूल्य १) है।

सन् १९३५ में आन्ध्र-विश्वविद्यालय के निमंत्रण पर सर सी० वाई० चिन्तामणि महोदय ने सन् ५७ के बाद के भारतीय राजनीति पर चार व्याख्यान दिये थे। ये चारों व्याख्यान १९३७ में पुस्तकाकार प्रकाशित हुए। इसी का यह अनुवाद है। अनुवादक महोदय हिन्दी के चिर परिचित लेखक और दैनिक 'भारत' के भूतपूर्व सम्पादक हैं। ग्रन्थकर्त्ता के प्रति उनके हृदय में अगाध श्रद्धा है। मैं शर्मा जी को उनके इस प्रयत्न पर बधाई देता हूँ और इस पुस्तक-द्वारा हिन्दी पाठकों की जो ज्ञान-वृद्धि होगी उसके लिए उनके प्रति अपनी कृतज्ञता भी प्रकाशित करता हूँ।

इस समय हिन्दी में शायद ही कोई दूसरा व्यक्ति ऐसा मिले जो भारतीय राजनीति के विभिन्न पहलुओं का इतना बड़ा जानकार निकले जितने जानकार चिन्तामणि महोदय हैं। उनका अगाध पाण्डित्य, उनकी वाग्विदग्धता, उनकी अपूर्व लगन, उनकी सिद्धान्तनिष्ठा और ध्येय की सिद्धि में निष्काम आत्म-समर्पण की अपूर्व क्षमता—ये उनके ऐसे गुण हैं जिनके लिए भारतवर्ष को अभिमान होना चाहिए। जो राजनैतिक मामले में लेखक महोदय का दृष्टिकोण है, उस दृष्टिकोण से पुस्तक के महत्त्व और उसकी उपयोगिता को स्वीकार करते हुए मुझे परम हर्ष होता है।

प्रथम परिच्छेद में अँगरेज़ों के समय से पहले काल की भारतीय राजनैतिक परिस्थिति का सिंहावलोकन है। दूसरे अध्याय में अँगरेज़ों के प्रथम २० वर्ष का परिणाम और इस युग के प्रमुख राजनैतिक प्रवृत्तियों का विश्लेषण है। तृतीय परिच्छेद में उसके बाद के चालीस वर्ष का इतिहास है। चतुर्थ परिच्छेद में १९१९ से १९२५ तक की चतुर्दशवर्षीय अवधि का विस्तृत वर्णन और एक दृष्टिकोण विशेष का उल्लेख है। पाँचवें परिच्छेद में उपसंहार है।

इस पुस्तक की जितनी प्रशंसा की जाय वह थोड़ी है। मुझे आशा है कि हिन्दी के पाठक अधिक से अधिक संख्या में इस पुस्तक को पढ़कर अवश्य लाभ उठायेंगे।

—वेंकटेशनारायण तिवारी

२—सुधांशु—लेखक, श्रीयुत हरिनारायणसिंह, बी० ए०, और प्रकाशक श्रीयुत मोहनप्यारे, बी० एस-सी०, एल० एल० बी०, बनारस हैं। मूल्य ॥=) है।

प्रस्तुत पुस्तक लेखक के सामाजिक विचारों का प्रवाह है। 'ग्राम-सुधार', 'आशा', 'अशरण शरण', 'विवाह' आदि रचनाओं में लेखक ने अपने सामाजिक मनोभावों को प्रकट करने का सफल प्रयत्न किया है। 'विवाह' के सम्बन्ध में लेखक के विचार मनन करने योग्य हैं। अपने विचारों को कहानी का रूप देकर लेखक ने उन्हें और भी रोचक बना दिया है। 'ग्राम-सुधार' में गाँवों के प्रति सहानुभूति तो उत्पन्न होती ही है, साथ ही हमारे देश के गाँवों की ग़रीबी और बुराइयों का सजीव चित्र हमारे सामने उपस्थित हो जाता है। भाषा सरल, बोलचाल की तथा प्रभावशाली है। रचना साधारण होते हुए भी पढ़ने योग्य है।

—अनन्तप्रसाद विद्यार्थी, बी० ए०

३—संयुक्तप्रान्तीय इण्डियन मेडिसन ऐक्ट १९३९ का सटिप्पणी हिन्दी अनुवाद—अनुवादक, कविराज पंडित दयानिधि शर्मा आयुर्वेदाचार्य हैं। मूल्य ॥) है। मिलने का पता—वैद्यराज पंडित प्रेमनिधि शर्मा आयुर्वेदाचार्य, सुदर्शन-औषधालय, बुलन्दशहर।

यह उक्त ऐक्ट का संक्षिप्त हिन्दी-अनुवाद है। यद्यपि देशी वैद्यों व हकीमों के काम की इसमें बहुत-सी बातें आगई हैं, फिर भी कुछ ऐसी खास बातें रह गई हैं जिनके संबन्ध में जानने की उत्कण्ठा बनी ही रहती है। रजिस्टर्ड देशी चिकित्सकों को क्या अधिकार हैं और वे उनका उपयोग किस अवस्था में कर सकते हैं, इसका उल्लेख इस पुस्तक में साफ़ साफ़ नहीं किया गया है। फिर भी जब तक दूसरा अनुवाद प्राप्त न हो, देशी चिकित्सकों के लिए यह पुस्तक पथप्रदर्शक का काम दे सकती है।

४—माननीया श्रीमती पंडित—लेखक, श्रीयुत दुर्गाप्रसाद रस्तोगी 'आदर्श' और प्रकाशक, रस्तोगी-प्रकाशक-भवन, दारागंज, प्रयाग हैं। मूल्य १॥) है, पृष्ठ-संख्या २५६ है। पुस्तक सजिल्द है।

स्वर्गीय त्यागमूर्ति पंडित मोतीलाल की पुत्री श्रीमती विजयालक्ष्मी पंडित का सार्वजनिक क्षेत्र में महत्त्वपूर्ण स्थान है। उन्हीं का जीवन-चरित लेखक महोदय ने इस पुस्तक में १७ चिट्ठियों के रूप में लिखने का प्रयत्न किया है। पुस्तक पढ़ने पर माननीया जी के जीवन, सार्वजनिक कार्यों, व्याख्यानों तथा लेखों आदि के विषय में ज्ञातव्य बातें प्राप्त होती हैं। सामग्री एकत्र करने में पंडित जवाहरलाल नेहरू जी की 'मेरी कहानी' तथा अन्य पत्र-पत्रिकाओं से सहायता ली गई है। इसके लिखने में क़ैंची से काम लेते हुए भी टिप्पणियाँ कहीं-कहीं पर साधारणतः कुछ अच्छी बन पड़ी हैं।

चिट्ठियाँ पति की ओर से पत्नी को लिखी गई हैं। यदि लेखक महोदय ने इसका उलटा किया होता तो शायद अधिक उपयुक्त होता। ऐसा न होने के कारण कुछ स्थलों पर लेखक का व्यर्थ उत्साह झलकने लगता है। इस उत्साह ने पुस्तक के साधारण गाम्भीर्य में बाधा डाल दी है। पुस्तक के प्रारम्भिक और अन्तिम भाग भी सुरुचिपूर्ण नहीं मालूम पड़ते हैं।

इतना होते हुए भी पुस्तक काफ़ी सुन्दर है। श्रीयुत रस्तोगी जी और श्रीमती रस्तोगी जी के साथ नेहरू-परिवार के कुछ व्यक्तियों के चित्रों से पुस्तक की सुन्दरता में वृद्धि हुई है। अन्त में कुछ पृष्ठ डायरी के रूप में रिक्त भी छोड़ दिये गये हैं।

—यज्ञदत्त शर्मा, बी० ए०

५—अपराधी—लेखक, श्रीयुत नारायणप्रसाद 'बेताब' और प्रकाशक, श्री वेदभानु माटुंगा, ५२०, भानु-भवन बम्बई हैं। पृष्ठ-संख्या ५१ और मूल्य ।) है।

श्री नारायणप्रसाद 'बेताब' की "६ अपराधी" नाम की छोटी-सी पुस्तक देखी। 'बहुविवाह'-दोष पर यथेष्ट प्रकाश डाला गया है और समाज से, रोचक भाषा में, इसे दूर करने की अपील की गई है। वर्तमान भारतीय समाज में स्त्री का दर्जा पुरुष से कम है, यही इस कुप्रथा की जड़ है। इस जड़ को उखाड़ फेंकने में ही कल्याण है।

आशा है, 'बेताब' जी की इस रोचक पुस्तक द्वारा समाज का उपकार होगा।

—बाबूराम सक्सेना

६—सन्तानानिग्रह-विज्ञान—लेखक, डाक्टर रामचन्द्र मिश्र, एम० बी० बी० एस०, प्रकाशक, अरुण-कार्यालय, मुरादाबाद हैं। पृष्ठ-संख्या लगभग १५० और सजिल्द पुस्तक का मूल्य १) है।

हमारे देश की बढ़ती हुई आबादी ने सन्तान-निग्रह के प्रश्न को उचित महत्ता दे दी है। प्रस्तुत पुस्तक भी इसी विषय पर लिखी गई है और इस विषय पर निकली पुस्तकों में सम्भवतः सबसे अच्छी है, क्योंकि इसके लेखक महोदय इस विषय पर लिखने के अधिकारी हैं। इसमें सामाजिक, धार्मिक तथा राजनैतिक दृष्टियों से सन्तान-निग्रह के प्रश्न पर विचार करते हुए उसकी आवश्यकता का प्रतिपादन किया गया है और उसके लिए अब तक जितने विधान प्रचलित हैं उनकी उपयोगिता तथा अनुपयोगिता पर वैज्ञानिक दृष्टिकोण से प्रकाश डाला गया है। अन्त में लेखक का इस विषय में निजी मत क्या है, यह भी साफ़-साफ़ बतला दिया गया है। देशी व विदेशी प्रयोग भी प्रचुर-मात्रा में दिये गये हैं। इस प्रकार यह पुस्तक अपने विषय की सर्वांगपूर्ण हो गई है।

७—जागृति—लेखिका, श्रीमती तोरन देवी 'लली' 'साहित्य-चन्द्रिका', प्रकाशक, श्री रत्नावली पुस्तक-भण्डार, कानपुर हैं। मूल्य नहीं लिखा है।

'जागृति' 'लली' जी की कविताओं का संग्रह है, जिसमें उनकी सभी प्रकार की कविताओं का पाँच ज्योतियों के अन्दर समावेश किया गया है। 'दिव्य ज्योति' में—

पलक उठाते ही जगती में—
तुम्हीं दीखते हो सब ओर,
हे करुणामय ! हे चितचोर !
मैं क्या जानूँ तुम किस ओर ?

और कवयित्री सृष्टि के इस अखिल ब्रह्माण्ड के उस चितचोर को खोजने का प्रयत्न नहीं करती वह तो उसे सृष्टि के कण कण में देखती है। फिर भी विना उस अज्ञात के दर्शन के कवयित्री के हृदय को शान्ति नहीं। उसकी यह अमर 'अभिलाषा' कितने साधकों की अभिलाषा है—

मुझसे मिल जाना इक बार।
कहाँ, कहाँ, मैं ढूंढ़ रही हूँ,
कबसे रही पुकार।

उसकी खोज निरन्तर जारी है, परन्तु उसके सामने 'जीवन-ज्योति' है। और—

जननी फिर आज पुकार उठी,
तू जाग अरी, अब जाग अरी!!
सोने पर भी थी जाग रही,
तू चित्रित लिखित कहानी-सी,
फिर कैसा यह आसव ढाला,
हो रही आज दीवानी-सी।

सचमुच कवयित्री अपनी जन्म-भूमि के प्रेम में दीवानी हो उठी है और तभी तो वह कहती है—

मैं बन्दी कैसे हूँ जननी!
तू परतंत्र कहाँ थी!

'लली' जी के इन राष्ट्रीय गीतों में प्राणों में उत्साह और देश-प्रेम की आग फूंक देने की शक्ति है। 'रत्न-ज्योति' के 'सर्जनि', 'कैसा प्यार तेरा' और 'आज फिर किस हेतु री वह जगा विस्मृत गान' से गीत हमें श्री महादेवी वर्मा के अमर गीतों का स्मरण दिलाते हैं। वे जीवन से थकित और निराश नहीं हैं। उनका हृदय गाता है—

नाविक रहने दे इसी पार!

'लली' जी की सबसे बड़ी सफलता उनकी सरल, परिमार्जित प्रांजल किन्तु स्वाभाविक भाषा है। गत तीस वर्षों के अपने कविता-काल में उन्होंने अपनी एक अलग शैली बना ली है। वे छायावादी कवियों की भाँति अगम्य नहीं हैं। उनकी भावना जनता की भावना है. उनकी कविता सबके हृदय की निधि है। अपने इसी गुण के कारण वे हिन्दी-साहित्य में सदैव सजीव, सदैव नई और सदैव स्फूर्तिदायक बनी रहेंगी। पुस्तक की छपाई-सफ़ाई भी सुन्दर है।

८—**विचित्र त्याग**—लेखक, श्रीयुत यज्ञदत्त शर्मा, प्रकाशक चाँद-कार्यालय, प्रयाग हैं। मूल्य २) है।

चन्द्रभानु ने मुस्कराते हुए कहा—'क्या धन से कभी प्रसन्नता प्राप्त हो सकती है? धन में संसार शान्ति ढूंढ़ता है। कितना बड़ा भ्रम है। दोनों एक-दूसरे के विपरीत भावनायें हैं। देखो न; हमारी झोंपड़ी का द्वार सर्वदा खुला रहता है। हमेशा निमन्त्रण देता रहता है अतिथियों को। इस झोपड़ी का हृदय बिलकुल भी तो संकुचित नहीं। कितनी विस्तीर्णता है इसकी प्रत्येक वस्तु में।' और विश्व बन्धन से मुक्त होकर विचरना ही जीवन का आनन्द है। इसी में जीवन की शान्ति है।'

चन्द्रभानु अपने लगन का पक्का युवक है। धन के प्रलोभन उसे कर्तव्य-पथ से भ्रष्ट नहीं कर सकते। वह आठ रुपये माहवार में सन्तुष्ट है। लेखक ने चन्द्रभानु के त्याग और उत्साह का सजीव चित्रण किया है। सम्पूर्ण उपन्यास ज़मींदारों के अत्याचारों और मज़दूर-आन्दोलन की समस्या पर लिखा गया है। मज़दूर-हड़ताल, उसकी सफलता, मज़दूर आन्दोलन की शक्ति से पूर्ण इस उपन्यास को पढ़कर पाठक के हृदय में एक क्रान्ति की भावना जाग्रत् हो उठती है।

यज्ञदत्त जी अब तक एक कवि के रूप में ही हमारे सामने आये हैं। सम्भवतः उनकी उपन्यास क्षेत्र में यह पहली ही कृति है, फिर भी उन्हें जो सफलता इस रचना में मिली है उसे देखकर हमें उनसे और भी अधिक अच्छी कृतियों की आशा होती है। लेखक का जान पड़ता है ग्रामीण जनता, जमींदारों के अत्याचारों और मज़दूर-आन्दोलन का स्वयं का अनुभव है। पुस्तक की सफलता का यही रहस्य है।

विचित्र त्याग का लेखक कवि है, इसलिए उपन्यास लिखने समय भी स्थल-स्थल पर उसका कवित्व फूट पड़ता है। चरित्र-चित्रण में लेखक को अधिक सफलता मिली है। कानन और चन्द्रभानु का चरित्र जिस सफलता के साथ चित्रित किया गया है उससे लेखक की पैनी मनोवैज्ञानिक दृष्टि का आभास मिलता है।

पुस्तक की भाषा सरल तथा प्रांजल है, परन्तु स्थल-स्थल पर अँगरेज़ी शब्दों की ठूँस जैसे स्ट्राइक, इंटरप्राईज़िंग, नेचर, ट्रेड का सेंटर, पैम्फ़लेट, मिल ओनर्स आदि अनावश्यक

प्रतीत होता है। हम हिन्दी में उन विदेशी शब्दों के प्रयोग के विरोधी नहीं हैं जो आम तौर पर बोले जाते हैं, परन्तु जबर्दस्ती अँगरेज़ी-शब्दों का प्रयोग भाषा को शिथिल बना देता है। फिर भी पुस्तक सुपाठ्य है। छपाई-सफ़ाई भी अच्छी है।

९—**गुलेरी जी की अमर कहानियाँ**—सम्पादक व प्रकाशक, श्री शक्तिधर गुलेरी, ओरियन्टल डिपार्टमेंट, प्रयाग-विश्वविद्यालय हैं। मूल्य ॥) है।

गुलेरी जी की 'उसने कहा था' कहानी हिन्दी-साहित्य की सर्वश्रेष्ठ कहानी समझी जाती है। उनकी अन्य कहानियों का पता नहीं था। प्रस्तुत पुस्तक में दो अन्य कहानियाँ 'सुखमय जीवन' और 'बुद्धू का काँटा' तथा 'उसने कहा था' संगृहीत है। ये तीनों कहानियाँ भिन्न-भिन्न परिस्थितियों के सजीव चित्र उपस्थित करती हैं। 'सुखमय जीवन' का नायक अविवाहित होने पर भी 'सुखमय जीवन' ऐसी पुस्तक केवल अपने विद्याबल पर लिख डालता है। परन्तु जब वह कमला से प्रेम-प्रस्ताव करता हुआ पकड़ा जाता है और वृद्ध बाबू साहब उसकी लानत-मलामत करते हुए कहते हैं—'सुखमय जीवन के कर्त्ता होकर...' तब वह खीझ कर कहता है, क्या सुखमय जीवन के कर्त्ता ने यह क़सम खा ली है कि जन्म भर क्वारा ही रहे। तब कमला के चाचा को पता लगता है कि "पुरुषों की अपेक्षा स्त्रियाँ अधिक पहचान सकती हैं कि कौन अनुभव की बात कह रहा है और कौन गपे हाँक रहा है।"

और 'बुद्धू का काँटा' तो और भी मनोरंजक दृश्य उपस्थित करता है। रघुनाथ ने 'प्रयाग के बोर्डिंग की रोटियों की कृपा से जन्म भर कुएँ से पानी न खींचा था।' सारी डोर कुएँ पर बखेर दी, पर लोटे में फाँसा न लगा सका। पानी भरनेवालियों में टीका-टिप्पणी आरम्भ हुई। एक ने कहा—पटवारी है। पैमाइश की जरीब फैलाता है। दूसरी बोली—न, बाजीगर है, हाथ-पैर बाँधकर पानी में कूद पड़ेगा और सूखा निकल आयेगा।

और फिर——

'कहाँ जाओगे?'

लड़की—(बीच ही में) शिकारपुर, वहाँ ऐसों का गुरुद्वारा है।

सम्पूर्ण कहानी रघुनाथ की अनुभवहीनता पर भगवन्ती की चुटकियों से हँसाती रहती है। परन्तु संयोग कि वही मूर्ख रघुनाथ भगवन्ती का पति हो गया।

'उसने कहा था' के विषय में कुछ लिखना व्यर्थ है।

१०—**आधुनिक स्त्रीधर्म**—लेखक, श्री नरसिंहराम शुक्ल, प्रकाशक चाँद कार्यालय, प्रयाग हैं। मूल्य १।) है।

आजकल की स्त्रियाँ किधर जा रही हैं, उनका धर्म अब इस युग में क्या होना चाहिए इसी विषय को लेकर कुशल लेखक ने यह पुस्तक लिखी है। यह समय युग-परिवर्तन का है जो धर्म शताब्दियों पीछे स्त्रियों के लिए उपयोगी था वही आज भी उपयोगी हो यह कैसे हो सकता है? समय के साथ साथ स्त्रियों के कर्तव्य में भी परिवर्तन होना स्वाभाविक ही है। प्रस्तुत पुस्तक में आधुनिक स्त्री के धर्म का नये दृष्टिकोण से विवेचन किया गया है। नारी का आदर्श, दाम्पत्य जीवन, सार्वजनिक जीवन में स्त्रियाँ आदि महिला-उपयोगी सभी विषय इस छोटी-सी पुस्तक में लेखक ने रोचक ढंग से समझाया है। शैली रोचक तथा चित्ताकर्षक है। भाषा सुगम तथा परिमार्जित है जिससे प्रत्येक स्त्री इसे पढ़कर समझ सकती है। हिन्दी-संसार में ऐसी पुस्तकों का नितान्त अभाव है। एक नहीं, इस विषय की अनेक पुस्तकें नये दृष्टिकोण से लिखी जानी चाहिए। हम इस सुन्दर पुस्तक को प्रत्येक स्त्री के हाथों में देखना चाहते हैं।

११—**मधुवन**—रचयित्री, श्रीमती हीरादेवी चतुर्वेदी, प्रकाशक, साहित्य प्रेस, जबलपुर हैं। मूल्य ॥) है।

मोहन की वंशी से निःसृत, सम्मोहन सा स्वर आली;
राधा को कर आज विमोहित बना गया री, मतवाली।

और कवयित्री मतवाली होकर गा उठी। उसके इन गानों में करुणा है कि एक चंचल एवं जिज्ञासु बालिका की भाँति वे सजीव सृष्टि की संस्थापना करने में मस्त हैं। जहाँ कवयित्री के हृदय में हर्षातिरेक है, उल्लास है, वहाँ उसकी वेदना भी सरल सोते की भाँति बहती है। उसे आश्चर्य होता है कि—

मेरे आँसू की भी सरिता मिटा सकी कब जग की प्यास?
तब क्या सघन घनों के आँसू मिटा सकेंगे इसकी प्यास?

'चललहरों से खेलने की इच्छा करनेवाली' इस दुनिया की 'धूपछाँह' में राष्ट्र की दूती बनकर भी आती

है। परन्तु उसके राष्ट्रगीत में तेज़ी नहीं है। अच्छा होता यदि कवयित्री केवल अपने सुख-सपनों के ही गीत गाती रहती। निराशा का उत्साह और वीरता के साथ सीधा सम्बन्ध नहीं है।

हीरादेवी जी की सबसे बड़ी सफलता उनकी सरल तथा बोधगम्य भाषा है जिसमें वे अपने भावों को व्यक्त करने में सफल हो सकी हैं। 'आज उनसे बात करूँगी न' 'मैंने सुन्दर सपना देखा' 'कोयलिया फिर बोली' आदि गीत अच्छे बन पड़े हैं।

पुस्तक की छपाई सफ़ाई सुन्दर है। पुस्तक कविता-प्रेमियों का कुछ हद तक मनोरंजन कर सकेगी।

१२—घूँघट—लेखक, श्री भगवनस्वरूप जैन "भगवत" हैं। प्रकाशक, श्री भगवतभवन पुस्तकालय, एत्मादपुर आगरा है मूल्य ।) है।

'घूँघट' लेखक का एक सामाजिक हास्यपूर्ण प्रहसन है जिसमें पर्दाप्रथा का औचित्य सिद्ध करने का प्रयत्न किया गया है। भाषा और शैली पुरानी नाटक-कम्पनियों की है। यद्यपि हम लेखक के विचारों से सहमत नहीं हैं परन्तु फिर भी हमें दिलफड़क महोदय के नई सभ्यता के प्रेम को देखकर हँसी आये बिना नहीं रहती। पुस्तक साधारण कोटि की है।

—अनन्तप्रसाद विद्यार्थी, बी० ए०

१३—कायाकल्प—लेखक तथा प्रकाशक, श्री बुद्धदेव विद्यालङ्कार, गुरुदत्तभवन, लाहौर हैं। पृष्ठ संख्या १४२ है। छपाई सफ़ाई अच्छी और मूल्य १।) है।

प्रस्तुत पुस्तक में 'वर्णव्यवस्था'-सम्बन्धी विचार प्रकट किये गये हैं। इसमें प्राचीनों में स्वामी दयानन्द जी और अर्वाचीनों में आचार्य रामदेव जी से लेखक को सहायता मिली है। लेखक ने अपनी जान में प्रमाणित किया है कि मार्क्सवादी समाज व्यवस्था से वर्णव्यवस्था अच्छी है, विषय अवश्य रोचक है, किन्तु मार्क्सवाद के विषय में लेखक का ज्ञान पल्लवग्राही होने के कारण उनकी पुस्तक एक कालेज के विद्यार्थी के निबन्ध से उच्चतर सतह पर न जा सकी। लेखक लिखते हैं "सबको समान लड्डू देना साम्यवाद है, और सबको भूख के अनुसार लड्डू देना वर्णव्यवस्था है।" साम्यवाद के सम्बन्ध में आम ग़लत-फ़हमी है कि सबकी बराबर मज़दूरी साम्यवाद है। सच बात यह है कि न ऐसा साम्यवाद का उद्देश्य है, न रूस में ऐसा है। रूस में १ से १५ का प्रभेद है। हाँ कम्युनिज्म का ध्येय है "सबसे उतना काम लिया जाय जितना वह कर सके, और हरएक को उतना मिहनताना दिया जाय जितने की उसे आवश्यकता है।" वर्णव्यवस्था के सम्बन्ध में उड़ान भरते समय लेखक ने, ज्ञात होता है, वर्णव्यवस्था के वर्तमान चरित्र को सम्पूर्ण रूप से भुला दिया है। लेखक ने यत्र-तत्र बड़ी ग़लतबयानियाँ की हैं; जैसे "ईश्वर भक्तों ने सदा दुःखपीड़ित प्रजा का साथ दिया, अत्याचारियों को सन्मार्ग दिखलाया है।" इतिहास इस बात की गवाही नहीं देता; रूस में धर्म का विरोध क्रान्तिकारियों के कार्यों का एक मुख्य अंग इसलिए हो गया कि वहाँ के पादरी-मण्डल हर प्रकार से ज़ार के समर्थक थे; यहाँ तक कि जासूस का काम करते थे।

लेखक की भाषा शिथिल है; शक्ति-प्रतिमान और जलौघ आदि शब्द इस पुस्तक में अधिकता के साथ हैं। पुस्तक आर्यसमाजी उपदेशकों के ही काम शायद आ सके।

—मन्मथनाथ गुप्त

मौलाना आज़ाद का भाषण

कांग्रेस का ५३वाँ वार्षिक अधिवेशन इस बार बिहार के रामगढ़ नामक स्थान में मार्च के तीसरे सप्ताह में हुआ। इस अधिवेशन के सभापति मौलाना अबुलकलाम आज़ाद बहुमत से मनोनीत हुए थे। सभापति के रूप में उन्होंने अपना जो महत्त्वपूर्ण भाषण किया है उसका एक अंश हम यहाँ उद्धृत करते हैं—

मैं मुसलमान हूँ और गर्व के साथ अनुभव करता हूँ कि मुसलमान हूँ। इस्लाम की तेरह सौ बरस की शानदार रिवायतें मेरी पैत्रिक संपत्ति हैं। मैं तैयार नहीं हूँ कि इसका कोई छोटा से छोटा हिस्सा भी नष्ट होने दूँ। इस्लाम की तालीम, इस्लाम का इतिहास, इस्लाम के इल्म और फ़न और इस्लाम की तहज़ीब मेरी पूँजी है और मेरा फ़र्ज़ है कि उसकी रक्षा करूँ। मुसलमान होने की हैसियत से मैं अपने मज़हबी और कल्चरल दायरे में अपना एक खास अस्तित्व रखता हूँ और मैं बरदाश्त नहीं कर सकता कि इसमें कोई हस्तक्षेप करे। किन्तु इन तमाम भावनाओं के अलावा मेरे अन्दर एक और भावना भी है जिसे मेरी जिन्दगी की 'रिएलिटीज़' यानी हक़ीक़तों ने पैदा किया है। इस्लाम की आत्मा मुझे उससे नहीं रोकती, बल्कि मेरा मार्ग प्रदर्शन करती है। मैं अभिमान के साथ अनुभव करता हूँ कि मैं हिन्दुस्तानी हूँ। मैं हिन्दुस्तान की अविभिन्न संयुक्त राष्ट्रीयता (नाक़ाबिले तक़सीम मुत्तहिदा क़ौमियत) का एक अंश हूँ। मैं इस संयुक्त राष्ट्रीयता का एक ऐसा महत्त्वपूर्ण अंश हूँ, उसका एक ऐसा टुकड़ा हूँ जिसके बिना उसका महत्त्व अधूरा रह जाता है। मैं इसकी बनावट का एक ज़रूरी हिस्सा हूँ। मैं अपने इस दावे से कभी दस्तबरदार नहीं हो सकता।

हिन्दुस्तान के लिए प्रकृति का यह फ़ैसला हो चुका था कि इस सर ज़मीन में मनुष्य की मुख्तलिफ़ नसलों, मुख्तलिफ़ सभ्यताओं और मुख्तलिफ़ धर्मों के क़ाफ़िले का सम्मिलन हो। अभी मानव-इतिहास का प्रभात भी न हुआ था कि इन क़ाफ़िलों का यहाँ आना शुरू हो गया और फिर, एक के बाद एक, सिलसिला जारी रहा। हिन्दुस्तान की विशाल सर ज़मीन सबका स्वागत करती रही और इस उदार भूमि की गोद में सबको जगह मिली। इन्हीं क़ाफ़िलों में एक आखिरी क़ाफ़िला हम मुसलमानों का भी था। यह भी पिछले क़ाफ़िलों के पदचिह्नों पर चलता हुआ यहाँ पहुँचा और हमेशा के लिए बस गया। यह दुनिया की दो अलग अलग क़ौमों और तहज़ीबों की धाराओं का मिलन था। यह गंगा और जमुना की धाराओं की तरह पहले एक दूसरे से अलग अलग बहते रहे, लेकिन फिर प्रकृति के अटल नियम के अनुसार दोनों को एक ही संगम में मिल जाना पड़ा। इन दोनों का मेल इतिहास की एक ज़बरदस्त घटना थी। जिस दिन यह घटना हुई उसी दिन से प्रकृति के छिपे हुए हाथों ने पुराने हिन्दुस्तान की जगह एक नये हिन्दुस्तान के ढालने का काम शुरू कर दिया।

हम अपने साथ अपनी पूँजी लाये थे और यह सर ज़मीन भी अपनी पूँजी से मालामाल थी। हमने अपनी दौलत उसके हवाले कर दी और उसने अपने ख़ज़ानों के दरवाज़े हम पर खोल दिये। हमने उसे इस्लाम की पूँजी की वह सबसे ज्यादा क़ीमती चीज़ दे दी जिसकी उसे उस समय सबसे ज्यादा ज़रूरत थी। हमने उसे जम्हूरियत और इनसानी मसावात यानी जनतंत्र और मानव-एकता का सन्देश पहुँचा दिया।

इतिहास की पूरी ११ सदियाँ इस घटना पर बीत चुकी हैं। अब इस्लाम भी इस सर ज़मीन पर वैसा ही दावा रखता है जैसा दावा हिन्दू-धर्म रखता है। अगर हिन्दू-धर्म कई हज़ार साल से इस सर ज़मीन के बाशिन्दों का धर्म रहा है तो इस्लाम भी एक हज़ार बरस से इसके बाशिन्दों का मज़हब चला आता है। जिस तरह आज एक हिन्दू अभिमान के साथ कह सकता है कि वह हिन्दुस्तानी है और हिन्दू मज़हब का माननेवाला है, ठीक उसी

तरह हम भी अभिमान के साथ कह सकते हैं कि हम हिन्दुस्तानी हैं और इस्लाम-मज़हब के माननेवाले हैं। मैं इस क्षेत्र को इससे भी ज़्यादा बढ़ाऊँगा। मसलन मैं एक हिन्दुस्तानी ईसाई का भी यह अधिकार स्वीकार करता हूँ कि वह आज सर उठाकर कह सकता है कि मैं हिन्दुस्तानी हूँ और हिन्दुस्तान के बाशिन्दों के एक मज़हब यानी ईसाई मज़हब का माननेवाला हूँ।

हमारे ११ सदियों के मिले-जुले इतिहास ने हमारी हिन्दुस्तानी ज़िन्दगी के एक एक कोने को अपने तामीरी सामानों यानी अपनी रचनात्मक सामग्री से भर दिया है। हमारी भाषायें, हमारी शायरी, हमारा साहित्य, हमारा सामाजिक जीवन, हमारी रुचि, हमारे शौक़, हमारा लिबास, हमारे रस्म-रवाज, हमारे दैनिक जीवन की बेशुमार हक़ीक़तें, कोई कोना भी ऐसा नहीं है जिस पर इस संयुक्त जीवन की छाप न लग चुकी हो। हमारी बोलियाँ अलग-अलग थीं मगर हम एक ही ज़बान बोलने लगे। हमारे रस्म-रवाज एक दूसरे से जुदा थे, मगर उन्होंने मिलजुलकर एक नया साँचा पैदा कर लिया। हमारा पुराना लिबास इतिहास के पुराने चित्रों में देखा जा सकता है, मगर अब वह हमारे बदन पर नहीं मिल सकता। यह तमाम मिली-जुली पूँजी हमारी संयुक्त राष्ट्रीयता की एक दौलत है और हम इसे छोड़कर उस ज़माने की तरफ़ लौटना नहीं चाहते जब हमारी यह मिली-जुली ज़िन्दगी शुरू नहीं हुई थी। हममें यदि ऐसे हिन्दू मस्तिष्क मौजूद हैं जो चाहते हैं कि एक हज़ार साल पहले का हिन्दू-जीवन वापस ले आयें तो उन्हें मालूम होना चाहिए कि वे एक स्वप्न देख रहे हैं, जो कभी पूरा होने वाला नहीं है। इसी तरह अगर ऐसे मुसलमान दिमाग़ मौजूद हैं जो चाहते हैं कि अपनी उस बीती हुई तहज़ीब और समाजी ज़िन्दगी को फिर ताज़ा करें जो वह एक हज़ार साल पहले ईरान और मध्यएशिया से लाये थे तो मैं उनसे भी कहूँगा कि इस स्वप्न से वह जितनी जल्दी जाग जायँ बेहतर है, क्योंकि यह एक अप्राकृतिक कल्पना, एक ग़ैर क़ुदरती तख़य्युल है और इस तरह के ख़यालात वास्तविकता की ज़मीन में नहीं उग सकते। मैं उन लोगों में हूँ जिनका विश्वास है कि पुरानी चीज़ों को फिर से ताज़ा करने की, यानी रिवाइवलिज़्म की, ज़रूरत मज़हब के मैदान में है, लेकिन समाजी ज़िन्दगी में रिवाइवलिज़्म का मतलब तरक़्क़ी से इनकार करना है। हमारे इस एक हज़ार साल के मिले-जुले जीवन ने एक संयुक्त राष्ट्रीयता, एक मुत्तहिदा क़ौमियत का साँचा ढाल दिया है। इस तरह के साँचे बनाये नहीं जा सकते, वह प्रकृति के छिपे हुए हाथों से सदियों में ख़ुद बख़ुद बना करते हैं। अब साँचा ढल चुका और भाग्य की मुहर उस पर लग चुकी। हम पसन्द करें या न करें, मगर अब हम एक हिन्दुस्तानी क़ौम और अविभक्त यानी नाक़ाबिले तक़सीम हिन्दुस्तानी क़ौम बन चुके हैं। पृथक्ता की कोई बनावटी कल्पना हमारे इस एक होने को दो नहीं बना दे सकती। हमें प्रकृति के फ़ैसले पर रज़ामन्द होना चाहिए और अपने भाग्य की तामीर में लग जाना चाहिए।

आज हमारी सारी कामयाबियों का दारमदार तीन चीज़ों पर है, हमारी सफलता इन्हीं पर निर्भर है—

इत्तहाद यानी एकता, डिसिप्लिन यानी अनुशासन, और महात्मा गांधी के नेतृत्व, यानी उनकी रहनुमाई पर पूरा भरोसा। यही एकमात्र नेतृत्व है जिसने हमारे आन्दोलन का पिछला शानदार इतिहास तामीर किया है और केवल इसी से हम एक विजयी भविष्य की आशा कर सकते हैं।

हमारी परीक्षा का एक नाज़ुक समय हमारे सामने है। हमने सारी दुनिया की निगाहों को नज़ारा देखने की दावत दे दी है। कोशिश कीजिए कि हम इसके योग्य साबित हों।

लड़ाई कब ?

कांग्रेस की कार्य-समिति ने पटना की बैठक में जो महत्त्वपूर्ण प्रस्ताव पास किया है उससे लोगों का अनुमान है कि अब सरकार से कांग्रेस का संघर्ष हो जाना अनिवार्य है। इसी को लक्ष्य करके महात्मा गांधी ने 'हरिजन' में एक लेख लिखकर कांग्रेस की भावना को स्पष्ट किया है। वह लेख इस प्रकार है—

सब लोग मुझसे सवाल कर रहे हैं, यह नहीं कि मैं देश को सविनय-भंग के लिए आमंत्रित करूँगा या नहीं, बल्कि यह कि आह्वान कब करूँगा। इन जिज्ञासुओं में

कुछ तो निहायत संजीदा साथी हैं। उनके ख़याल में पटना के प्रस्ताव का यही अर्थ है कि लड़ाई छिड़ने का सवाल तो दिनों की बात है। इससे साबित होता है कि देश या देश का वह हिस्सा, जिसने अब तक आज़ादी की लड़ाई में भाग लिया है, इन्तज़ार और आशा करते-करते उकता गया है। यह सोचकर उत्साह बढ़ता है कि देश में आज़ादी हासिल करने की ख़ातिर कितने भी त्याग को कुछ न गिननेवाले लोग मौजूद हैं।

इसलिए जहाँ मैं सवाल करनेवालों के जोश की सराहना करता हूँ, वहाँ मुझे यह चेतावनी भी देनी पड़ेगी कि वे अधीर न हों। प्रस्ताव में ऐसे विश्वास के लिए कारण नहीं है कि सविनय-भंग की घोषणा करने के लिए अनुकूल वातावरण है। जब ख़ुद कांग्रेस के भीतर ही इतनी अनुशासन-हीनता और हिंसा भरी है, ऐसे वक़्त में सविनय-भंग का एलान कर देना आत्म-हत्या करना होगा। कांग्रेसी लोग मेरे शब्दों को पूरा महत्त्व न देंगे तो सख़्त ग़लती करेंगे। जब तक मुझे यह भरोसा न हो जायगा कि कांग्रेस के सिपाहियों में काफ़ी अनुशासन और अहिंसा नहीं आ गई है तब तक मैं न सविनय-भंग शुरू कर सकता हूँ और न करूँगा। रचनात्मक काम याने कताई और खादी-बिक्री के बारे में जो उदासीनता दीख रही है वह अविश्वास की साफ़ निशानी है। ऐसे हथियारों से लड़ना हार ही मोल लेना है। ऐसे लोगों को यह जान लेना चाहिए कि मैं उनके काम का आदमी नहीं हूँ। जितने अनुशासन और अहिंसा की ज़रूरत है, उतना पैदा होने की आशा न हो तो मुझे नेतृत्व से हट जाने देना बेहतर होगा।

यह साफ़ समझ लेना चाहिए कि ढकेलकर मुझसे जल्दबाज़ी में लड़ाई नहीं छिड़वाई जा सकती। जो लोग यह सोचते हैं कि गरम कहलानेवालों की उकसाहट में आकर मैं सविनय-भंग की घोषणा कर सकता हूँ वे भारी भूल करते हैं। मेरी नज़र में नरम और गरम का ऐसा कोई भेद नहीं है। मेरे दोनों ही साथी और मित्र हैं। कोई नरम और गरम के बीच निश्चित अन्तर बता सके तो यह धृष्टता ही होगी। कांग्रेसी और ग़ैर-कांग्रेसी सभी को समझ लेना चाहिए कि सारा देश मेरे ख़िलाफ़ हो जाय तो भी समय आने पर मैं अकेला ही लड़ लूँगा। औरों के पास अहिंसा के सिवा कोई दूसरे हथियार हैं या होंगे। मेरे पास तो यह एक ही शस्त्र है। चूँकि राजनैतिक क्षेत्र में अहिंसात्मक कला को मैंने ही जारी किया है, इसलिए मुझे भीतर से प्रेरणा अनुभव होगी तो लड़ना मेरा धर्म हो जायगा।

उस कला में यह प्राकृतिक विशेषता है कि मुझे पहले से यह कभी मालूम नहीं पड़ता कि किस समय क्या करना है। पुकार किसी भी वक़्त हो सकती है। इसे यूँ कहने की ज़रूरत नहीं कि पुकार ईश्वर की तरफ़ से आई है। 'भीतरी प्रेरणा' शब्द आम तौर पर प्रचलित है और आसानी से समझा जाता है, सभी लोग कभी-कभी भीतरी प्रेरणा से काम करते हैं। ऐसा आचरण हमेशा सही हो, यह ज़रूरी नहीं। मगर कुछ आचरण ऐसे होते हैं जिनके लिए और कोई कारण ही नहीं दिया जा सकता।

अकसर मुझे ख़याल आता है कि मैं कांग्रेस को भूल जाऊँ तो अच्छी बात हो। कभी-कभी ऐसा भी लगता है कि जीवन के बारे में मेरे अजीब विचार होने से मैं कांग्रेस में जँचता नहीं। मुझमें जो भी विशेषतायें होंगी और कांग्रेस और देश के लिए उनका कुछ भी उपयोग हो सकता हो तो शायद उनसे अधिक लाभ उस हालत में उठाया जा सकता है जब मैं कांग्रेस से बिलकुल सम्बन्ध तोड़ लूँ। लेकिन मैं जानता हूँ कि यह सम्बन्ध-विच्छेद ज़बान से या बलात्कार से नहीं हो सकता। ऐसा होना ही है तो समय पर अपने-आप होगा। बात इतनी ही है कि कांग्रेसियों को मेरी मर्यादायें समझ लेनी चाहिए और मेरी दृढ़ता या अटलता को देखकर उन्हें आश्चर्य या दुःख नहीं करना चाहिए। उन्हें मेरे इस कथन पर विश्वास करना चाहिए कि सामूहिक सविनय-भंग जारी करने के लिए जो शर्तें मुक़र्रर कर दी गई हैं उनके पूरा हुए बिना कोई कार्रवाई करने की मुझमें शक्ति नहीं है।

सर मिर्ज़ा की नेक सलाह

मैसूर के दीवान सर मिर्ज़ा इस्माइल ने 'टाइम्स एंड टाइड' नामक पत्र में एक लेख छपवाया है। उसमें उन्होंने ब्रिटिश सरकार को यह सलाह दी है कि भारत को सन्तुष्ट करने के लिए कोई उपयुक्त

कार्यवाही जल्दी करनी चाहिए। अधिक सतर्कता से काम लेने से ग़लतफ़हमी के फैलने की ही सम्भावना होगी, उस लेख का सारांश दिल्ली के 'हिन्दुस्तान' में छपा है जो यहाँ उद्धृत किया जाता है—

ब्रिटिश सरकार को मेरी यह निश्चित सलाह है कि वह अनेकों दलों व स्वार्थों के परस्पर मतभेदों के दूर होने तक प्रतीक्षा न करे, अपितु फ़ौरन ही कुछ ऐसा विधेयात्मक क़दम उठाये जिससे सब निष्पक्ष लोगों को संतोष हो। बहुत सतर्कता और प्रतीक्षा की नीति से ब्रिटेन और हिन्दुस्तान दोनों के बीच ग़लतफ़हमी बढ़ने की ही आशंका है।

वायसराय की कार्यकारिणी में ६ के स्थान पर १० सदस्य हों, नये सदस्यों में दो कांग्रेस के, १ मुस्लिम लीग का तथा एक रियासतों का प्रतिनिधि हो। यूरोपियन सदस्य तीन से अधिक न हों, रक्षा-सदस्य निश्चित रूप से हिन्दुस्तानी हो। वायसराय ने अपने सुझाव में जिस परामर्शदात्री समिति का उल्लेख किया है उसका नाम युद्ध-परामर्शदात्री समिति हो और वह इस समिति से सर्वथा पृथक् हो। यह युद्ध-समिति युद्ध-सम्बन्धी सब बातों में वायसराय को सलाह दे और उसकी रचना ऐसी हो जिससे अत्याचार के विरुद्ध प्रजातंत्री राष्ट्रों के युद्ध में हिन्दुस्तान की एकता प्रकट हो।

ब्रिटिश सरकार घोषणा कर दे कि यथासम्भव शीघ्र से शीघ्र ब्रिटिश उपनिवेशों के विधान के आधार पर हिन्दुस्तान का विधान बनाने के लिए कांग्रेस, मुस्लिम लीग, रियासतों तथा अन्य स्वार्थों के प्रतिनिधियों की एक छोटी-सी कान्फ़रेंस की जाय और ब्रिटिश सरकार इस कान्फ़रेंस की सिफ़ारिशों को अधिक से अधिक मात्रा में कार्य में परिणत करने का वचन दे। इस कान्फ़रेंस का अध्यक्ष धारा-सभाओं के संचालन का अनुभवी कोई अँगरेज़ हो।

राष्ट्रीय पंचायत सारे हिन्दुस्तान के लिए विधान नहीं बना सकती, रियासतों को ब्रिटिश भारत के वैधानिक विकास से कोई सम्बन्ध नहीं है। लेकिन यह निर्विवाद है कि इस प्रकार पृथक् पृथक् वैधानिक विकास होने से हिन्दुस्तान १० साल पीछे पड़ जायगा। शासकों के स्वार्थों और उनकी प्रजाओं के हितों में अन्तर है। रियासतों की शासन-पद्धति ऐतिहासिक तथा अन्य कारणों से ब्रिटिश शासन-पद्धति से भिन्न है, इसकी आलोचना करने से देश की एकता को निस्सन्देह क्षति पहुँचती है।

प्रोफ़ेसर कीथ और सर अकबर हैदरी

हैदराबाद के प्रधान मन्त्री सर अकबर हैदरी ने यह दावा उपस्थित किया है कि हैदराबाद-राज्य का सम्राट् से सीधा सम्बन्ध है, अतएव भारत में नया शासन-विधान-प्रवर्तन करते समय उसके सम्बन्ध में ब्रिटिश सरकार को निज़ाम की सरकार से मंज़ूरी लेनी होगी। उनके इस दावे का प्रोफ़ेसर बेरीडेल कीथ ने विरोध किया है। कीथ साहब राजनीति-शास्त्र के विशेषज्ञ माने जाते हैं। उनका उक्त विरोध-पत्र मदरास के 'हिन्दू' में छपा है, जो इस प्रकार है—

सर अकबर हैदरी वायसराय की उस घोषणा को भूल गये हैं जो उन्होंने २७ मार्च, १९३६ को की थी और जिसमें यह स्पष्ट किया था कि "कोई भी देशी राज्य ब्रिटिश सम्राट् के साथ बराबरी के दावे से बातचीत नहीं कर सकता। ब्रिटिश सम्राट् की श्रेष्ठता का आधार देशी राज्यों के साथ की गई सन्धियाँ नहीं हैं, बल्कि वह श्रेष्ठता तो इन सन्धियों से अलग एक सैद्धान्तिक मानी हुई चीज़ है। विदेशी राज्यों और नीति से सम्बन्धित मामलों में ब्रिटिश सरकार का यह अधिकार और कर्तव्य है कि वह देशी राज्यों के साथ की गई सन्धियों को स्वीकार करते हुए भी सम्पूर्ण भारत की शान्ति और रक्षा के उपाय करे।

ब्रिटिश सम्राट् के प्रभुत्व के अर्थ हैं ब्रिटिश सम्राट् का पार्लियामेंट के अन्तर्गत प्रभुत्व और इस प्रभुत्व पर हैदराबाद अथवा कोई भी अन्य राज्य किसी प्रकार की क़ानूनी अथवा नैतिक आपत्ति करने का अधिकार नहीं रखता। वे केवल यह माँग कर सकते हैं कि इस शक्ति का प्रयोग न्याय और ईमानदारी के साथ भारत की प्रजा के हितों के लिए ही किया जायगा न कि व्यक्तिगत स्वार्थों की पूर्ति के लिए।

यद्यपि अभी तक ब्रिटिश सम्राट् ने भारत में एकाधिकार-पूर्ण शासन किया है, लेकिन उन्होंने यह स्वीकार करने की बुद्धिमत्ता दिखाई है कि समय आ गया है जब कि अधिक से अधिक मात्रा में शासनाधिकार स्वयं प्रजा के निर्वाचित प्रतिनिधियों के हाथों में सौंप दिये जायँ। ब्रिटिश सम्राट् के सलाहकारों के लिए यह असम्भव है कि वे देशी राज्यों की प्रजा को ब्रिटिश भारत की प्रजा के समान अधिकार न दें और यह उनका कर्तव्य है कि वे सम्राट् को सलाह दें कि वे अपनी शक्ति का उपयोग कर देशी नरेशों को बाध्य कर दें कि वे अपने राज्यों में शीघ्र से शीघ्र उत्तर-दायित्वपूर्ण शासन की स्थापना करें। ऐसा कोई भी फ़ेडरेशन भारत के हित में नहीं हो सकता जिसमें ब्रिटिश भारत के निर्वाचित प्रतिनिधियों को देशी राज्यों के नामज़द सदस्यों के साथ बैठने के लिए बाध्य किया जाय। वास्तव में गांधी जी की इस माँग का कोई उत्तर नहीं है कि देशी नरेश भी ब्रिटिश सम्राट् के समान प्रजा के प्रति-निधियों को अधिकार देने के लिए बाध्य हैं।

ब्रिटेन का कर्तव्य है कि वह यह स्पष्ट कर दे कि बहुमत-द्वारा शासन का सिद्धान्त भारत के लिए भी पार्लियामेंट-द्वारा स्वीकृत किया गया है और मुस्लिम लीग को भी इस सिद्धान्त को स्वीकार करना चाहिए। इसके साथ ही देशी नरेशों को जान लेना चाहिए कि एकाधिकार के दिन अब पूरे हो चले हैं और उन्हें अपने राज्यों के शासन को ब्रिटिश भारत के शासन के समान ही उदार बनाना चाहिए।

बालकन-परिषद्

बालकन-प्रायद्वीप के राष्ट्रों का वर्तमान युद्ध-काल में अपना अलग महत्त्व है। हाल में उनकी एक सम्मिलित परिषद् हुई थी। उसका वर्णन श्री श्रीनिवास बालाजी हर्डीकर बी० ए० ने कानपुर के 'प्रताप' में किया है। यहाँ उसका अधिकांश दिया गया है—

योरप के दक्षिण-पूर्व में बालकन-प्रायद्वीप है। इसमें तुर्किस्तान, ग्रीस, रूमानिया, यूगोस्लोविया, हंगरी और बलगेरिया ये छः राष्ट्र हैं। गत महायुद्ध के बाद जो सन्धि हुई थी उसमें रूमानिया और यूगोस्लोविया को हंगरी और बलगेरिया के कई भाग मिले थे। उनको पुनः प्राप्त करने में हंगरी और बलगेरिया प्रयत्नशील रहे हैं। इस प्रकार बालकन-राष्ट्रों में आपस में काफ़ी फूट चली आ रही है। पर वर्तमान युद्ध के आरम्भ होते ही इन राष्ट्रों को जर्मनी और रूस की भूखी आँखें अपने ऊपर गड़ी हुई दिखाई दीं। इन बाहरी संकटों ने बालकन-राष्ट्रों को अपने आपसी मतभेद और दुश्मनी भुलाकर आत्म-रक्षा के लिए एक हो जाने के लिए बाध्य किया। इसी एकता के उद्देश्य की पूर्ति के लिए बालकन-राष्ट्रों की एक परिषद् गत तीन फ़रवरी को रूमानिया के पर-राष्ट्र मंत्री एम० गोफ़ेन्कू की अध्यक्षता में हुई।

इस परिषद् के सम्बन्ध में जो वक्तव्य प्रकाशित हुआ है उससे प्रकट होता है कि वर्तमान युद्ध में बालकन-राष्ट्र पूरी तरह से तटस्थ रहेंगे और बालकन-राष्ट्रों में शान्ति क़ायम रखने का प्रयत्न किया जायगा।

इँग्लेंड और फ़्रांस जर्मनी को चारों ओर से घेर कर कच्चे माल और तेल आदि से वंचित करना चाहते हैं। ये राष्ट्र चाहते थे कि बालकन-राष्ट्र जर्मनी को उपर्युक्त वस्तुएँ देने से इनकार कर दें।

जर्मनी की इच्छा ठीक इसके विपरीत थी। वह चाहता था कि बालकन-राष्ट्र पूरी तरह से तटस्थ रहें और युद्ध के पूर्व जर्मनी और बालकन-राष्ट्रों में जो व्यापार होता था वह पूर्ववत् जारी रहे। बालकन-राष्ट्र खाद्य पदार्थों और युद्धोपयोगी वस्तुओं का भाण्डार हैं। यदि इस भाण्डार से इँग्लेंड और फ़्रांस जर्मनी को वंचित करने में सफल होते हैं तो जर्मनी का युद्ध में अधिक काल तक टिकना कठिन हो जायगा।

इटली बालकन-प्रायद्वीप को योरप के किसी राष्ट्र के प्रभाव में देखना पसन्द नहीं करता। उसे रूस से विशेष डर है। रूस की कूटनीति भी बालकन-राजनीति में खुलकर खेलती हुई नज़र आ रही है। हंगरी और बलगेरिया पर रूस का काफ़ी प्रभाव है। रूस डार्डिनलीज़-जलडमरूमध्य पर अपना नियंत्रण चाहता है और रूमानिया के बसरेबिया प्रान्त को हड़प लेना चाहता है। अपने इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए बालकन-राष्ट्रों के आपसी मतभेदों की अग्नि को फूँककर प्रज्वलित कर देना चाहता है ताकि उसे अपनी इच्छा की पूर्ति का मौक़ा मिल सके। पर इटली रूस के इस दाँव को अच्छी तरह से जानता है। वह रूस का भूमध्य-सागर की ओर बढ़ना अपने लिए महान् सङ्कट समझता है। यही कारण है कि इटली ने अपना प्रभाव

डालकर प्रान्तों को वापस देने-लेने के प्रश्न को वर्तमान युद्ध की समाप्ति तक स्थगित करा दिया है। इसी कारण बलगेरिया रुष्ट हो गया है और उसने इस परिषद् में भाग नहीं लिया। पर बलगेरिया अभी इटली के विरुद्ध जाने में असमर्थ है, अतएव उसने भी अपनी पूरी तटस्थता घोषित कर दी है। इस प्रकार इस परिषद् में इटैलियन राजनीति ने रूसी राजनीति पर विजय प्राप्त की है।

इँग्लैंड और फ़्रांस की कूटनीति को भी इस परिषद् में विशेष सफलता नहीं प्राप्त हुई। बालकन-प्रायद्वीप में ये राष्ट्र टर्की की सहायता से अपना प्रभाव जमाना चाहते थे। पर परिषद् के पूर्व ही रूमानिया, ग्रीस और यूगोस्लेविया ने यह शंका प्रकट की थी कि सम्भव है कि टर्की बालकन-राष्ट्रों को उसकी पूर्ण तटस्थता की नीति से विचलित कर दे। यही कारण है कि यह परिषद् इतनी शीघ्रता से कर ली गई। सात फ़रवरी से बालकन गुट्ट की अध्यक्षता का आसन टर्की को मिलनेवाला था। यही कारण है कि परिषद् ३ फ़रवरी को ही की गई। इससे स्पष्ट है कि इस परिषत् में ब्रिटिश और फ़्रेंच राजनीति को विशेष सफलता नहीं मिली। इतना ही नहीं, परिषद् में ऐसी कोई बात नहीं की गई जिससे जर्मनी को शिकायत करने का मौक़ा मिलता।

यद्यपि इस परिषद् के निश्चय बालकन-राष्ट्रों पर सात वर्षों तक लागू होने की बात कही गई है, फिर भी बालकन-राष्ट्रों के आपसी मतभेद इतने तीव्रतर हैं कि कोई भी राष्ट्र इन मतभेदों का उपयोग अपने स्वार्थ-साधन के लिए कर सकता है। बहुत सम्भव है कि रूस उनकी इस अतृप्त आकांक्षा को पूर्ण करने का वादा कर बालकन-राष्ट्रों में अशान्ति की आग लगा दे।

हिन्दी का स्वरूप

काशी के हिंदी-साहित्य-सम्मेलन के २८वें अधिवेशन के स्वागताध्यक्ष के पद से महामना पं० मदनमोहन जी मालवीय ने जो महत्त्वपूर्ण भाषण किया था उसके मुख्य अंश 'नागरी-प्रचारिणी पत्रिका' से यहाँ उद्धृत हैं—

मैं केवल दो बातों पर विशेष ध्यान दिलाना चाहता हूँ। पहला हिन्दी-भाषा के स्वरूप पर, दूसरा नागरी लिपि पर। हमें यह जान लेना चाहिए कि भाषा बहुत-सी बातों के संयोग से बनती है, वह बनाई नहीं जाती। हिन्दी-भाषा के विषय में कम से कम यह बात बहुत स्पष्ट है, इसका स्वरूप भाषा के बनने के अनुसार बना है, इसका निकास उस भाषा से है जो पृथ्वीमंडल की भाषाओं में पुरानी है और जिसका सबसे पुराना ग्रन्थ ऋग्वेद है, जिसकी प्राचीनता और महत्ता का यूरोपियन लेखक भी आदर करते हैं और कम से कम चार हज़ार वर्षों का पुराना मानते हैं। ऋग्वेद की पहली ऋचा "अग्निमीले पुरोहितं" में पहला शब्द आया है 'अग्निम्', वह आज भी हिन्दी में अगिन और आग के नाम से प्रचलित है। दूसरा शब्द आया है 'पुरोहितम्'। वह जैसा हज़ारों वर्ष पहले था वैसा ही आज भी है। यदि कोष लेकर कोई बैठे तो जान पड़ेगा कितने विशेष्य, विशेषण और क्रियात्मक शब्द हिन्दी में हैं, उनका मूल संस्कृत है। भाषा-विज्ञान-शास्त्र जाननेवालों का कहना है कि हिन्दी के समान दूसरी कोई भाषा नहीं है जिसमें तद्भव शब्दों के इतने और ऐसे सुन्दर उदाहरण मिलें जितने हिन्दी में मिलते हैं। जैसे नदी की तली में लुढ़कते लुढ़कते पत्थर गोल और चिकने हो जाते हैं, वैसे ही संस्कृत के शब्द समय के प्रवाह की रगड़ से गोल और चिकने हो गये। कर्ण कान हो गया, अक्ष आँख, मुख मुँह, दंत दाँत, हस्त हाथ, शिर सिर, मिष्ट मीठा, रुक्ष रूखा, त्रीणि तीन, सप्त सात हुआ। ऐसे ही और भी अनेक शब्द हैं।

मुसलमानों के समय में बहुतक मुसलमानी शब्द हमारी भाषा में मिल गये और अब वे भाषा के अंग हैं। इसी प्रकार अँगरेज़ों के आने से कुछ अँगरेज़ी-भाषा के शब्द भी हमारी भाषा में मिल गये, किन्तु इसका यह तात्पर्य नहीं है कि हमारी भाषा उन शब्दों से बनी है या उनके कारण बनी है। हमारी भाषा उन्हीं शब्दों से बनी है जो संस्कृत से प्राकृत और अपभ्रंश बनकर हिन्दी की शोभा को बढ़ाते हैं। जीवित भाषाओं की यह स्वाभाविक गति है कि उनमें प्रयोजन के अनुसार दूसरी भाषा के शब्द मिला लिये जाते हैं। किन्तु इसका यह अर्थ कदापि नहीं होना चाहिए कि हम अपने शब्दों को छोड़कर उनके स्थान पर दूसरी भाषा के शब्द भी ग्रहण करें। हमें केवल उन्हीं विदेशी शब्दों को ग्रहण करना चाहिए जिनसे

हमारी भाषा की शक्ति बढ़े और भाव को स्पष्ट प्रकट करने में सहायता मिले।

× × ×

जब से भारतीयों के राष्ट्र को फिर से स्थापन करने का जतन होने लगा तब से इस बात की चिन्ता बहुत-से देशभक्तों को हो गई है कि राष्ट्रीय कार्यों और व्यवहारों के लिए एक राष्ट्री भाषा मान ली जाय। अतः उन्होंने हिन्दी को राष्ट्रभाषा मान लिया क्योंकि यही देश के अधिक स्थानों में बोली और समझी जाती है। यह उद्योग सर्वथा सराहने के योग्य है। किन्तु जिस रीति से आजकल भाषा का स्वरूप बदलने का जतन हो रहा है वह मेरी राय में देश और समाज के लिए हितकारी नहीं होगा और हमारे धार्मिक तथा अन्य सांस्कृतिक भावों को इससे हानि पहुँचने की आशंका है।

× × ×

दूसरा प्रश्न नागरी-लिपि का है। सुधार के नाम पर नागरी-लिपि का जो बिगाड़ किया जा रहा है उससे हम लोगों को सावधान हो जाना चाहिए। कई सदियों के निरन्तर कलात्मक विकास होने के बाद नागरी-अक्षरों ने एक सुन्दर रूप स्थिर कर लिया है और इस लिपि को सीखनेवाला बिना किसी बाधा के लिखने और पढ़ने लगता है। इससे अधिक लिपि की श्रेष्ठता का और क्या प्रमाण हो सकता है? इसमें अनावश्यक परिवर्त्तन करने से यह लिपि कल की वस्तु हो जायगी और हमारा सम्पूर्ण लिखा हुआ और छपा हुआ साहित्य अजायबघर की सामग्री बन जायगा।

फ़ील्डमार्शल मेनरहीम

गत रूस-फ़िन-संघर्ष का अन्त हो गया और उसमें फ़िनलैण्ड का पराभव हो गया। पर अब तक फ़िनलैण्ड ने जिस वीरता के साथ रूस की शक्ति का मुक़ाबिला किया उसका सारा श्रेय वहाँ के प्रधान सेनापति फ़ील्डमार्शल मेनरहीम को है। यहाँ हम उन्हीं महापुरुष की जीवनी के सम्बन्ध का कुछ विवरण 'भारत' से दे रहे हैं—

फ़िनलैंड के वयोवृद्ध सेनापति फ़ील्ड-मार्शल बैरन कार्ल गुस्टाफ़ मैनरहीम ७० साल के हैं।

इनका स्वास्थ्य देखकर यही जान पड़ता है कि इनकी अवस्था अभी ५० साल से अधिक नहीं होगी। मार्शल मैनरहीम ने अपने जीवन-काल में जिन दुस्तर तथा ख़तरे से भरे कार्यों को करके अपने अद्भुत साहस और शौर्य का परिचय दिया है, उन्हें दृष्टि में रखते हुए योरप का कोई सेनापति उनकी समानता कर सकता है, यह सन्देहजनक है।

बचपन में मैनरहीम रूस के सम्राट् ज़ार के दरबार में बाल-भृत्य थे। बाद में इनका सम्बन्ध रूसी घुड़सवार-सेना के एक रेजीमेंट के साथ स्थापित हुआ। ये सैनिक शिक्षा प्राप्त करने लगे।

रूस और जापान के युद्ध के समय मैनरहीम ने बड़ी ही सफलता के साथ अपनी युद्ध-कला का परिचय दिया।

रूस-जापान-युद्ध तथा १९०५ की क्रान्ति समाप्त होने पर मैनरहीम को रूसी जनरल स्टाफ़ की ओर से आदेश हुआ कि वे क़ाज़न से पेकिन तक घोड़े से यात्रा करके जायँ और इस १७५० मील की यात्रा के बीच उन्हें जो कुछ फ़ौजी तथा वैज्ञानिक महत्त्व की बातें दीख पड़ें उन्हें नोट कर लें। मैनरहीम को यह काम पूरा करने में क़रीब दो साल का समय लगा।

पिछले महायुद्ध के समय उन्हें एक घुड़सवार-सेना का प्रधान सेनापति बनाया गया था। उन्होंने पोलिश, गैलीशियन, बुकोवीनियन तथा बेसरेबियन मोर्चों पर कार्य किया और अपनी बहादुरी और कार्य-कुशलता के लिए कई एक सम्मान-सूचक तमग़े आदि प्राप्त किये।

रूस में जो पिछली क्रान्ति हुई उसने मैनरहीम का रूस से सम्बन्ध-विच्छेद कर दिया और वे अपनी मातृभूमि फ़िनलैंड लौट आये। उस क्रान्ति के समय फ़िनलैंड एक स्वतंत्र राष्ट्र घोषित कर दिया गया और उस स्वतंत्र-राष्ट्र के निर्माण-कार्य में वे मदद करने के ही उद्देश्य से रूस से लौटे थे।

सन् १९१८ में फ़िनलैंड में जब साम्यवादी आन्दोलन फैल गया तो उस समय मैनरहीम उसका ज़ोरों के साथ दमन करने में लग गये। लेकिन क्रान्तिकारी रूसियों के बाहर निकाल दिये जाने पर सरकार ने शस्त्रास्त्रों का अभाव होने के कारण जर्मनी से मित्रता स्थापित करने का निश्चय किया। जर्मन सैनिकों के पहुँच जाने पर पाँसा पलट गया।

जब लाल क्रान्तिकारियों की सेना का अन्तिम दल कुचल दिया गया तो उसके उपरान्त मैनरहीम और सरकार के बीच मतभेद उत्पन्न हुआ। सरकार यह चाहती थी कि जर्मन राजकुमार फ़्रेडरिक को फ़िनलैंड का बादशाह बनाया जाय। लेकिन मैनरहीम का जर्मनों के प्रति अविश्वास था, इसलिए उनका कहना था कि ऐसा करके फ़िनलैंड के निवासी एक देश की गुलामी से छूटकर दूसरे देश की गुलामी को स्वीकार करने जा रहे हैं। जब किसी ने मैनरहीम की बात न मानी तब उन्होंने अपने पद से इस्तीफ़ा दे दिया।

किन्तु सौभाग्य से फ़िनलैंड की सरकार ने भी इस्तीफ़ा दे दिया। अब फ़िनलैंड की जो नई सरकार क़ायम हुई उसने मैनरहीम को मित्रराष्ट्रों से फ़िनलैंड की सरकार के प्रति सद्भाव बढ़ाने के लिए नियुक्त किया। इस सिलसिले में उन्होंने लन्दन का दौरा किया। प्रिन्स फ़्रेडरिक को इस बात के लिए राज़ी कर लिया गया कि वे फ़िनलैंड का राज-सिंहासन प्राप्त करने के सारे अधिकारों का परित्याग कर दें। इधर जर्मनी स्वतः बड़ी तेज़ी के साथ ह्रास की ओर बढ़ता जा रहा था। ऐसी अवस्था में फ़िनलैंड की स्वतंत्रता को अन्तिम रूप से फ़्रांस, ब्रिटेन और अमेरिका ने स्वीकार कर लिया।

फ़िनलैंड के उद्धारक का प्रयत्न इस प्रकार सफलीभूत हुआ और मैनरहीम ने स्वयं नई सरकार की बागडोर अपने हाथों में ली। उनका शासन-काल ७ महीने तक रहा।

जिन लोगों ने बोलशेविकों को मदद पहुँचाई थी उनसे मैनरहीम ने बड़ा कठोर बदला लिया। इसलिए प्रेसीडेंट पद के चुनाव के समय यदि उन्हें बहुत अधिक वोटों से हारना पड़ा तो इसमें कोई आश्चर्य नहीं था।

लेकिन मैनरहीम को इस बात से ही सन्तोष था कि उन्होंने अपनी इच्छा के अनुसार देश को दासता में पड़ने से बचा लिया। इसलिए उन्होंने शान्ति और सन्तोष-पूर्वक राजनीतिक जीवन से अवकाश ग्रहण कर लिया। उनको सभी लोगों का प्रेम नहीं प्राप्त हुआ। फिर भी कम से कम उन्हें सभी प्रकार के लोग आदर की दृष्टि से तो देखते ही थे।

सन् १९३१ में फ़िनलैंड की सरकार ने मैनरहीम को फिर रक्षा-कौंसिल का अध्यक्ष पद स्वीकार करने के लिए निमंत्रित किया। इस पद पर नियुक्त होकर उन्होंने एक छोटी-सी किन्तु अत्यधिक कुशल सेना का संगठन किया है।

इस सेना में प्रधानतः ३०,००० स्थायी सैनिक हैं। इसकी सहायता के लिए एक रिज़र्व सैनिकों का दल है, जिसमें सिविक गार्ड भी सम्मिलित हैं। सिविक गार्डों में स्त्री-पुरुष दोनों हैं और इनकी संख्या लगभग ५ लाख है। इन सैनिकों की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि सरदी को खूब अच्छी तरह बर्दाश्त कर सकते हैं और अपने शस्त्रास्त्रों को छिपाकर काम करने में उस्ताद हैं। जाड़े के दिनों में अपने शरीर पर सफ़ेद रंग की पोशाक धारण करते हैं, जिसके कारण वे सफ़ेद बरफ़ के रंग में मिल जाते हैं। इस सेना की तोपें तक सफ़ेद रंग में रँगी हुई हैं।

फ़ील्ड-मार्शल मैनरहीम साधारणतः सादा जीवन व्यतीत करते हैं। उनका वेतन ५०० पौंड सालाना है। वे फ़िनलैंड की राजधानी हेलसिंकी में एक छोटे-से मकान में रहते हैं। वे विवाहित हैं। उनके तीन लड़कियाँ भी हैं। उनकी एक लड़की फ़िनलैंड की नर्सों की संस्था की अध्यक्षा है।

विख्यात अन्वेषक मि० स्कौट के पुत्र मि० पीटर स्कौट हाल ही में कैस्पियन सागर के पास के दलदलों में दो महीने तक जंगली मुर्गियों का चित्र बनाते रहे। उनका कहना है कि उस प्रदेश के निवासी जो ज्यादातर ईरानी हैं, मांस या तरकारी के बिना रह सकते हैं परन्तु प्रतिदिन ७ या ८ कप चाय के बिना नहीं! उन्हीं की आदतों के अनुसार मि० स्कौट भी प्रतिदिन चावल और मछली खाते और प्रत्येक भोजन के साथ चाय पीते थे।

योरप की पहेली

योरपीय युद्ध पहेली सा होता जा रहा है। जर्मनी और फ़्रांस की सीमा पर दोनों ओर विशाल सेनायें मोर्चा लगाये बैठी हुई हैं। यदा कदा कहीं-कहीं गश्त लगानेवाली टोलियों में संघर्ष हो जाता है या किसी मोर्चे पर गोले गोलियों की वर्षा हो जाती है। इसके सिवा युद्ध के इस प्रधान क्षेत्र में कहीं कुछ नहीं हो रहा है। पर हाँ, अँगरेज़ी जंगी बेड़े ने जर्मनी के समुद्र पर विकट घेरा डाल रक्खा है, जिससे जर्मनी का सारा व्यापार तहस-नहस हो गया है और वहाँ बाहर से किसी तरह का सामान नहीं पहुँच पा रहा है। इस घेरे के कारण जर्मनी वास्तव में संकट में पड़ गया है और वह बेतरह घबरा उठा है। इसी से उसकी पनडुब्बियाँ निरपेक्ष देशों के व्यापारी जहाज़ों आदि के भी डुबाने के गर्हित कार्य में संलग्न हो गई हैं। परन्तु अब अँगरेज़ी जंगी बेड़े ने भी अधिक चौकसी से काम लेना शुरू कर दिया है और वह दिन भी आ रहा है जब जर्मनी को अपने इस कायरतापूर्ण कार्य से शीघ्र ही तोबा बोलना पड़ेगा।

परन्तु भयंकर बात तो यह है कि इस युद्ध के ऐसे सीमित रूप में होते हुए भी इस बात की आशंका बढ़ती ही जा रही है कि भविष्य में यह युद्ध अधिक व्यापक रूप धारण कर जायगा। फ़रवरी के पिछले सप्ताह में रूमानिया ने अपनी फ़ौजों के तैयार रहने का हुक्म दे दिया और तुर्की ने भी अपनी रक्षा के लिए विशेष योजना कार्य में परिणत कर दी। ऐसा समझा जाता है कि फ़िनलैंड के परास्त होने के बाद रूस रूमानिया पर आक्रमण कर देगा। और फ़िनलैंड का युद्ध जैसा कि वहाँ की हाल की खबरों से प्रकट होता है, अब समाप्ति पर है, क्योंकि दोनों देशों में सुलह की बात हो रही है। और फ़िनलैंड से छुट्टी पाते ही रूस बाल्कन की ओर अवश्य ध्यान देगा। लोगों की यह कोरी आशंका ही नहीं है, किन्तु यह योरप के विशेषज्ञों का अनुमान है।

तो भी यह अभी अनुमान ही अनमान है। युद्ध को इस तरह व्यापक रूप देना जर्मनी या रूस को भी अभीष्ट नहीं है। और ब्रिटेन तथा फ़्रांस तो बिलकुल ही नहीं चाहते। यदि ये चाहते होते तो इन्होंने रूस से तभी युद्ध की घोषणा कर दी होती। रूस को परास्त करके जर्मनी को ये तब और भी जल्दी हरा सकते थे। परन्तु इन्होंने अपनी ओर से युद्ध को बढ़ने नहीं दिया। और हम समझते हैं कि रूस भी अपनी ओर से ऐसा दुस्साहस न करेगा, क्योंकि युद्ध के व्यापक रूप धारण कर जाने पर उसको सोलहो आने हानि की संभावना है। उसका स्वीडन या नार्वे से भी संघर्ष नहीं होगा, क्योंकि ये दोनों राष्ट्र निरपेक्षता की नीति पर पूर्ववत् दृढ़ हैं। इधर बाल्कन के राज्य भी लड़ना नहीं चाहते और अपनी आत्मरक्षा के लिए उनमें से कम से कम जुगोस्लाविया, रूमानिया और तुर्की में एक प्रकार का गुप्त समझौता-सा हो गया है। इसके सिवा इटली अलग धमकी दे रहा है कि यदि रूस बाल्कन की ओर मुँह करेगा तो इटली चुप नहीं बैठा रहेगा। इसके लिए उसने भी हंगरी से हाल में एक समझौता किया है। ऐसी दशा में रूस बाल्कन की शान्ति भंग करके जान-बूझ कर संकट नहीं मोल लेगा।

तब फिर क्या होगा? यही कहना कठिन है, हाँ, इतना तो स्पष्ट ही है कि योरप के सभी निरपेक्ष राज्य चाहते हैं कि यह युद्ध जल्दी से जल्दी बन्द हो जाय। उनकी जो आर्थिक हानि हो रही है सो तो हो ही रही है, उन्हें सबसे अधिक इस बात का डर है कि कहीं वे भी उसकी लपेट में न आजायँ। परन्तु लड़ाई के शीघ्र बन्द होने के लक्षण नहीं हैं। ब्रिटेन के प्रधान मंत्री चेम्बरलेन साहब इस बात के लिए तुल-सा गये हैं कि वे इस बार जर्मनी के विषैले दाँत उखाड़ कर ही दम लेंगे। उधर हिटलर साहब यह कह रहे हैं कि सुलह इस बार तभी होगी जब उसका जो पिछले युद्ध में छिन गया है, सबका सब वापस मिल जायगा। एक फ़्रेंच राजनीतिज्ञ का यह कहना है कि

जर्मनी राइन नदी के उस पार रक्खा जाय और राइनलैंड का एक नया वफ़र राज्य बना दिया जाय । इस प्रकार के परस्पर कथनोपकथन तो हो ही रहे हैं, दूसरे लोग भी सुलह के संवन्ध में अपनी अपनी राय देते रहे हैं । इस संवन्ध में लार्ड ब्वी की शर्तें अधिक रोचक समझी गई हैं और योरप के निरपेक्ष राज्यों में उनकी चर्चा दिलचस्पी के साथ हुई है । लार्ड महोदय का कहना है कि हर्जाना न लिया जाय, असली जर्मनी की सीमायें अक्षुण्ण रक्खी जायँ, और निरपेक्ष राज्यों के निरीक्षण में जेता और पराजित की संधि की वातचीत हो । इधर संयुक्त राज्य, अमरीका, के राजदूत श्री सम्नेर वेल्स कदाचित मेलजोल कराने का भाव लेकर योरप आये हैं और वे वहाँ के भिन्न भिन्न राज्यों के सूत्रधारों से विचारविनिमय करने में लगे हुए हैं । देखना है, इनके इस प्रयत्न का क्या परिणाम होता है ।

मुसलमानों की महत्त्वाकांक्षा

कहा जाता है कि मुसलमानों और कांग्रेस में जो मतैक्य नहीं हो रहा है उसका कारण यह है कि मुसलमानों की माँगें अनुचित हैं, जिन्हें पूरा करने में कांग्रेस असमर्थ है। कांग्रेस के वड़े वड़े नेताओं तक की यह धारणा है कि मुसलमान लोग़ असेम्वलियों में केवल अधिक सीटें तथा सरकारी नौकरियाँ चाहते हैं । परन्तु वात ऐसी नहीं है । मुस्लिम लीग के जन्म-काल के दिनों में उसके नेताओं की ऐसी आकांक्षा चाहे भले रही हो, परन्तु इधर जब से ख़िलाफ़त का आन्दोलन शुरू हुआ है, मुसलमान-नेताओं के मनोभावों में विलक्षण परिवर्तन हो गया है । ख़िलाफ़त-आन्दोलन के समय में मुसलमान नेता अपनी इस वात पर वरावर ज़ोर देते रहे हैं कि अँगरेज़ों ने भारत का शासन-सूत्र मुसलमानों के हाथों से छीना है, अतएव हिन्दुओं की अपेक्षा भारत में उनकी विशेष स्थिति मानी जानी चाहिए । और अब तो मुसलमानों के प्रमुख नेता जिन्ना साहब ने बँटवारे की स्पष्ट माँग पेश भी कर दी है । जिन्ना साहब भारत को हिन्दुओं का देश नहीं मानते । उनका कहना है कि यह तो एक महाद्वीप है, जिसमें मुसलमान-जाति की अपनी विशेष स्थिति है, अतएव जिन जिन भूभागों में उनका वाहुल्य है उनका शासन-सूत्र मुसलमानों को मिल जाना चाहिए और जिन भूभागों में वे अल्प-संख्या में हैं, वहाँ उनकी तथा उनकी संस्कृति की रक्षा की पक्की व्यवस्था होनी चाहिए । महत्त्व की वात तो यह है कि मुसलमानों के नेता केवल माँगें उपस्थित करके चुप नहीं हो गये हैं, वरन उनकी प्राप्ति के लिए वे उसके अनुरूप अपना आन्दोलन एवं संगठन करने में भी तत्परता के साथ संलग्न हैं । यह सच है कि मुस्लिम-लीग में सभी मुसलमान शामिल नहीं हैं, परन्तु जो जो उसके वाहर अपना अपना संगठन कर रहे हैं वे भी समय आने पर उससे मिल जाने में आगा-पीछा नहीं करेंगे, क्योंकि उनका धर्म और उनका समाज उन्हें वैसा ही करने को वाध्य करता है । इस दृष्टि से देखने पर यही प्रतीत होगा कि मुसलमान सारे देश में आज जिस सुव्यवस्था से संगठित हो गये हैं उससे उनकी स्थिति को विशेष रूप से दृढ़ता प्राप्त होती जा रही है । और यह वात उनके महत्त्व को वढ़ाती है । मुसलमान-नेता भी अपनी इस अवस्था से पूर्णतया परिचित हैं । इसी से उनकी महत्त्वाकांक्षा और भी वढ़ गई है । यही कारण है जिससे वे कांग्रेस से समझौता नहीं कर रहे हैं । वे उसके साथ समझौता करने में अपनी हानि समझते हैं । वे जानते हैं कि कांग्रेस उनकी माँगों की पूर्ति नहीं करेगी, क्योंकि उनकी मुग़लकालीन प्रतिपत्ति उसे स्वीकार नहीं है । और मुस्लिम लीग के नेताओं की माँगों की आधारशिला उनका उपर्युक्त मनोभाव ही है । ऐसी दशा में मुसलमानों से कांग्रेस का कैसे समझौता हो सकता है ? साथ ही ब्रिटिश सरकार से भी नहीं हो सकेगा, क्योंकि उनकी माँग अन्यायमूलक है । यह दूसरी वात है कि अन्तर्राष्ट्रीय परिस्थिति के कारण उसे उनकी माँगों को सुनकर अपना स्पष्ट विचार रोक रखना पड़ रहा है । चाहे जो हो, मुसलमानों के इस मनोभाव के कारण भारत की राजनैतिक अवस्था में ऐसी जटिलता आगई है कि महात्मा गांधी जैसे वीतराग महान् नेता भी उसे सुलझाने में अपने को असमर्थ पा रहे हैं ।

बंगाली नवयुवकों का दुर्व्यवहार

अभी हाल में बंगाल के ढाका-ज़िले के मलाकाँदा में गान्धी-सेवा-संघ का वार्षिक अधिवेशन हुआ था ।
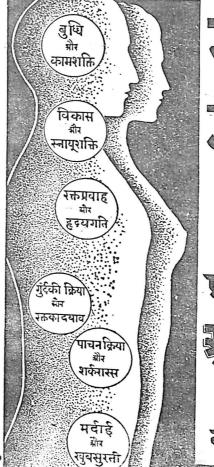
उसमें भाग लेने के लिए महात्मा गान्धी, सरदार पटेल आदि नेता मलाकाँदा गये थे। मलाकाँदा जाते समय ये लोकनेता कलकत्ते में ठहरे थे। कलकत्ते में तथा मलाकाँदा में कुछ बंगाली युवकों ने महात्मा जी का तथा सरदार पटेल का काले झंडे दिखाकर 'लौट जाओ' तथा 'गान्धीवाद मुर्दावाद' के नारे लगाये थे। यही नहीं, बंगाल से लौटते समय सेरमपुर के स्टेशन में गान्धी जी के डिब्बे में जूता भी फेंका गया। ऐसे प्रदर्शन से बंगाल की गौरव-वृद्धि नहीं हुई है और वह भी उस दशा में जब कि सुभाष बाबू का उन सभी स्थानों में धूमधाम से ही स्वागत किया' गया है जहाँ उनके विरोधी-दल का बहुमत है। वास्तव में बंगाली नवयुवकों ने यह अशोभन कार्य किया है और सो भी उस दशा में जब उनके नेता इस बात का दावा करते हैं कि उनका प्रान्त कांग्रेस की कार्य-समिति के साथ नहीं है। बंगाल की प्रान्तीय कांग्रेस-कमिटी के सहकारी मंत्री ने अखबारों में छपवाया है कि बंगाल की २,६२७ प्रायमरी कांग्रेस-कमिटियों में से ८५ प्रतिशत कमिटियाँ, ९२ सब डिवीज़नल कांग्रेसकमिटियों में ६७कमिटियाँ और ३२ ज़िला-कांग्रेस-कमिटियों में २० कमिटियाँ प्रान्तीय कांग्रेस-कमिटी के साथ हैं। यदि ये आँकड़े ठीक हैं तो इससे अधिक प्रामाणिक तथा प्रभावकारी और दूसरी बात नहीं हो सकती। खेद की बात है, उपर्युक्त प्रदर्शन करके बंगाल के कुछ युवकों ने उस मार्ग का ग्रहण किया है जो निंद्य और लज्जाजनक है।

कृषि-सम्बन्धी एक नई योजना

भारत में इस बात की सबसे अधिक आवश्यकता है कि उसका कृषि-उद्योग अधिक उन्नत तथा विस्तृत किया जाय। उसके विस्तृत करने की अभी काफ़ी अधिक गुंजाइश है। संयुक्त-प्रान्त की भूमि ६$\frac{1}{2}$ करोड़ एकड़ है। इसमें ३ करोड़ और ५५ लाख एकड़ भूमि खेती में फँसी हुई है। शेष में से २८$\frac{1}{2}$ लाख एकड़ में जंगल है, २० लाख एकड़ रेहभूमि है, ३० लाख एकड़ ऊसर है और ९९ लाख एकड़ भूमि कृषि-योग्य भूमि बेकार पड़ी है। यदि ऊसर भूमि खेती के योग्य बना ली जाय तो ३० लाख ऊसर भूमि और ९९ लाख एकड़ बेकार भूमि खेती के काम आ सकती है, जो इस प्रान्त की बेकारी की समस्या को सरलता से हल कर सकती है। श्रीयुत बिशन मानसिंह ने 'लीडर' में एक लेख लिखकर बताया है कि ऊसर खेती के योग्य सरलता से बनाये जा सकते हैं। ज़रूरत इस बात की है कि इस कार्य की ओर प्रान्तीय सरकार समुचित रूप से ध्यान ही न दे, किन्तु ऊसरों को खेती के उपयुक्त बनाने की उनकी योजना को कार्य का रूप देने को तत्पर हो जाय।

ऊसर भूमि को खेती के उपयुक्त बनाने की एक प्रक्रिया पहले से ही इन प्रान्तों में प्रचलित है। वह है ऊसर में बबूल बोकर उसे खेती के उपयुक्त बना लेना। परन्तु इस प्रक्रिया को कभी व्यापक रूप नहीं दिया गया, साथ ही यह प्रक्रिया अधिक समय-साध्य है। इसके सिवा यह भी था कि ऊसरों को खेत बनाने की उतनी आवश्यकता भी नहीं थी। परन्तु अब यह बात नहीं रही। जन-संख्या की वृद्धि के कारण इस बात की नितान्त आवश्यकता है कि प्रान्त की बेकार पड़ी हुई भूमि जल्दी से जल्दी खेती के उपयुक्त बना ली जाय। और इस सम्बन्ध में श्रीयुत बिशन मानसिंह ने जो योजना उपस्थित की है वह अधिक उपयुक्त प्रतीत होती है। उनका कहना है कि ऊसर भूमि का नमक निकाल देने से वह खेती के योग्य बनाई जा सकती है। और नमक निकालने की तरकीब यह है कि ऊसर में ऊँची मेंड़ के खेत बनाये जायँ और उनमें पानी भरा जाय, जो उनमें सात या दस दिन तक भरा रहने दिया जाय। ऐसा करने से उस भूमि का नमक उसमें भरे हुए पानी में आ जायगा। बाद को वह पानी नालियों के द्वारा निकाल दिया जाय। इस प्रक्रिया को वर्षा-ऋतु में जितनी बार हो सके करे। दो-तीन वर्ष ऐसा करने पर उस भूमि का नमक निकल जायगा और तब उसका ऊसर-पन दूर हो जायगा और वह भूमि खेती के योग्य आसानी से बनाई जा सकेगी।

इसमें संदेह नहीं कि श्रीयुत बिशन मानसिंह ने जो योजना उपस्थित की है वह सस्ती ही नहीं, जल्दी ही काम देनेवाली भी है। सरकार को तो उसे कार्य में परिणत ही करना चाहिए, ज़मींदारों और किसानों को भी उससे लाभ उठाना चाहिए।

अगले वर्ष का बजट

केन्द्रीय सरकार के दोनों बजट पास हो गये। केन्द्रीय असेम्बली से कांग्रेसी सदस्यों के असहयोग करने के कारण

इस वर्ष इन बजटों पर वैसा रोचक वाद-विवाद नहीं हो सका। तथापि राष्ट्रीय दल के तथा मुस्लिम लीग के सदस्यों में से कुछ ने दोनों बजटों की खरी और चौकस आलोचनायें करने से मुँह नहीं मोड़ा। रेलवे का बजट घाटे का बजट नहीं है, तो भी किराये की दरें बढ़ाई गई हैं, जिसका असर तीसरे दर्जे के यात्रियों पर भी पड़ेगा। मुसाफ़िरों के किराये और ढुलाई के महसूल में वृद्धि से वास्तव में सरकारी रेलों की आय पहले से ही बढ़ रही है और यदि वह किराये और महसूल में वृद्धि न करती तो भी उसे साधारण वर्षों की अपेक्षा कुछ अधिक ही आय होती। १९३९–४० के वर्ष के लिए पहले २१३ लाख की बचत का अनुमान किया गया था, किन्तु युद्ध होने के कुछ पहले से आय बढ़ने लगी और रेलवे अधिकारी अब इस अनुमान पर पहुँचे हैं कि चालू ख़र्च में अनुमान से ११० लाख की वृद्धि होने पर भी ३६१ लाख का लाभ होगा। रेलवे अधिकारियों ने स्वीकार किया है कि पिछले दस साल में रेलवे-बजट में किसी वर्ष मुनाफ़े की रक़म इतनी अधिक नहीं हुई है। फिर भी जनता पर भार बढ़ाकर रेलों की आय को और भी बढ़ाने की चेष्टा की जा रही है।

उधर जो देश का बजट है वह युद्धकाल का बजट है, अतएव उसका घाटे का होना अनिवार्य है ही। तथापि इसमें शक्कर पर जो चुंगी बढ़ा दी गई है उससे देश के इस नये उन्नतिशील धन्धे के विकास में रुकावट हो जायगी। आलोचकों ने अन्य दोषों के साथ साथ इन दोनों त्रुटियों की ओर सरकार का ध्यान विशेष रूप से आकृष्ट किया, परन्तु उनके एतराज़ नहीं माने गये। प्रधान बजट के आँकड़े 'हिन्दुस्तान' ने इस प्रकार दिये हैं–

१९४०–४१ में आनुमानिक आय... ८५ करोड़ ४३ लाख
" " " व्यय ... ९२ करोड़ ५९ लाख

घाटा ७ करोड़ १६ लाख

चीनी के प्रस्तावित उत्पत्ति-कर से आय–१ करोड़ ९० लाख
पेट्रोल के प्रस्तावित टैक्स से आय –१ करोड़ ४० लाख
प्रस्तावित अतिरिक्त मुनाफ़ा-कर से आय–३ करोड़ ...
गत साल (१९३९–४०) का शेष –९१ लाख ...

इस प्रकार बढ़ाई गई ७ करोड़ २१ लाख की आय से ७ करोड़ १६ लाख का घाटा पूरा करके अन्तिम रूप से बजट यह बताया गया है—

आय–९२ करोड़ ६४ लाख
व्यय–९२ करोड़ ५९ लाख

बचत ... ... ५ लाख

युद्ध के ख़र्च के बारे में ब्रिटिश सरकार के साथ यह समझौता हो गया है कि हिन्दुस्तान युद्ध के इन दिनों में भी युद्ध से पहले के दिनों के समान ही ख़र्च अदा करेगा, लेकिन बढ़ा हुआ बाज़ार भाव और अपनी सैनिक तैयारियों का ख़र्च इसमें बढ़ाया जायगा। हिन्दुस्तान की बाहरी हमलों से रक्षा करने के लिए जहाँ-तहाँ समुद्री नाकों पर रक्खी गई सेना के ख़र्च के लिए हिन्दुस्तान सिर्फ़ एक मुश्त एक करोड़ रुपया दे देगा। इस एक करोड़ से अधिक जो ख़र्च होगा वह ब्रिटिश सरकार करेगी। इस प्रकार सेना के ख़र्च का जो अधिक भार होगा वह १९३९–४० में ३ करोड़ ७६ लाख और १९४०–४१ में ८ करोड़ ३९ लाख होगा।

फ़िनलैंड की पराजय

जैसा कि पहले से ही प्रकट था कि फ़िनलैंड रूस के आगे अधिक समय तक टिक न सकेगा, अन्त में वही हुआ। १०३ दिन तक घोर युद्ध करने के बाद लाचार होकर उसे रूस की ही शर्तों पर सुलह कर लेनी पड़ी। परन्तु जहाँ तक पुरुषार्थ से सम्बन्ध है, फ़िनलैंड के निवासियों ने अप्रतिम शौर्य का परिचय दिया, और इसके लिए वहाँ के निवासियों का नाम इतिहास में स्वर्णाक्षरों में लिखा जायगा। फ़िनलैंड की इस युद्ध से एक यह बात भी प्रकट हुई है कि वैज्ञानिक ढंग से निर्मित मोर्चों को तोड़कर किसी देश में एकाएक घुस जाना साधारण बात नहीं है। फ़िनलैंड के प्रधान सेनापति मेनरहीम ने मोर्चों की जो पंक्ति बनाई थी उसके तोड़ने में महीनों ही नहीं लग गये, रूस को अपने हज़ारों सैनिक कटवा देने पड़े। तब कहीं उसे विजय प्राप्त हो सकी।

इसमें संदेह नहीं कि फ़िनलैंड से ब्रिटेन, फ़्रांस, इटली और संयुक्त राज्यों की पूरी सहानुभूति प्राप्त थी और धन तथा युद्धसामग्री से उसे यथासंभव सहायता दी भी गई, और जब रूस का उस पर बहुत अधिक

दबाव पड़ा तब ब्रिटेन और फ़्रांस ने उसकी सेना से भी सहायता करने को तैयार हुए। परन्तु फ़िनलैंड के दुर्भाग्य से नार्वे और स्वीडन ने अपनी निरपेक्षता की नीति के कारण अपने देश से उनकी सेनाओं को जाने की अनुमति ही न दी। ऐसी असहाय अवस्था में फ़िनलैंड संधि कर लेने के सिवा और क्या करता।

जो संधि हुई है उससे फ़िनलैंड का १५ हज़ार वर्ग मील का भूभाग उसके हाथ से निकल गया है और वह एक प्रकार से रूस के प्रभाव-क्षेत्र में आ गया है।

फ़िनलैंड की इस हार का भविष्य की अन्तर्राष्ट्रीय स्थिति पर बुरा प्रभाव पड़ा है। इटली और तुर्की में सैनिक गति-विधि अधिक दिखाई देने लगी है। रूमानिया से भी रूस की बातचीत शुरू हो गई है। देखना है कि योरप की राजनीति अब कैसा रुख लेती है। यह तो प्रकट ही है कि अवस्था अधिक संकटपूर्ण हो गई है।

रेल के इंजनों का भारत में निर्माण

इस देश की जनता सरकार से बहुत दिनों से प्रार्थना कर रही थी कि भारतीय रेलों के लिए इंजन इसी देश में बनाये जायँ और इसके लिए यहाँ एक फ़ैक्टरी खोल दी जाय। पर सरकार अभी तक किसी विशेष कारण से इस बात को सुनी-अनसुनी कर रही थी। सरकारी पक्ष की दलील यह थी कि इस देश की रेलों में इंजनों की माँग कम है। इतनी थोड़ी माँग के लिए ही एक इंजन बनानेवाली फ़ैक्टरी खोल देना बुद्धिमानी और मुनाफ़े का व्यापार नहीं हो सकता।

पर अब लक्षणों से ज्ञात होता है कि सरकार को इसके लिए शीघ्र ही कुछ करना पड़ेगा। पिछले दिनों रेलवे के दो अफ़सरों की—जो इस विषय के विशेषज्ञ हैं—एक कमिटी यह जाँच करने के लिए नियुक्त की गई कि इस देश में इंजनों का बनाना सम्भव और व्यापारिक दृष्टि से लाभदायक हो सकता है या नहीं। कमिटी की रिपोर्ट अभी हाल में प्रकाशित हुई है। रेल-विभाग के मंत्री सर एन्ड्रयूक्लो ने रेलवे-बजट पर भाषण करते हुए केन्द्रीय धारा-सभा के गत अधिवेशन में कहा है कि सरकार इस रिपोर्ट में की गई सिफारिशों की सम्भावनाओं पर शीघ्र ही विचार करेगी और फ़ैक्टरी खोलने के व्यय का तख़मीना तैयार होते ही एसेम्बली में इसके लिए माँग उपस्थित करेगी।

सरकार की यह सूझ सामयिक भी है और उपयोगी भी है, इसमें कोई सन्देह नहीं। और इसी लिए रेल-मंत्री के उक्त भाषण से प्रसन्न हुए हैं। इंजनों की माँग भी शीघ्र ही अधिक होनेवाली है, क्योंकि पिछले २० साल से रेलवे कम्पनी ने नये इंजन बहुत कम लिये हैं। जो कुछ इंजन थे उन्हीं की मरम्मत कराकर काम में लेती रही। किफ़ायत की दृष्टि से ही ऐसा किया गया। अब उनमें से अधिकांश इंजन बेकार हो चले हैं। उक्त रिपोर्ट से ज्ञात होता है कि इंजनों की माँग का वार्षिक औसत अब बढ़नेवाला है। प्रति ३५-३६ वर्ष में १०८ बड़ी लाइन के और ३८ छोटी लाइन के इंजनों की ज़रूरत यहाँ पड़ा करेगी। फलतः इस माँग की पूर्ति के लिए जो फ़ैक्टरी खोली जायगी उसे बराबर साल भर काम मिलेगा और वह भी लगातार आगामी कई सालों तक।

इस वस्तुस्थिति में इंजन बनानेवाली फ़ैक्टरी का इस देश में खोला जाना न केवल आवश्यक किन्तु अनिवार्य हो जाता है। बात यह है कि इंजनों की माँग यहाँ होगी ही, पर उसकी पूर्ति के लिए अब विलायत की ओर नहीं देखा जा सकता। क्योंकि एक तो वहाँ के जितने कारखाने हैं वे आजकल महायुद्ध की विभीषिका के कारण युद्धोपयोगी शस्त्रास्त्रों के ढालने में ही बुरी तरह संलग्न हैं, दूसरे अब माल का आना-जाना भी उतना सरल नहीं रह गया है। अतः इस फ़ैक्टरी के खोलने में जितनी शीघ्रता की जाय उतना ही अच्छा है, जिससे कहीं ऐसा न हो कि इंजनों के अभाव से भारत के आभ्यन्तरिक यातायात में भी बाधा उपस्थित हो जाय।

मदरास और हिन्दी-शिक्षा

कांग्रेसी सरकार ने अपने शासन के अल्प समय में ही मदरास की जनता को जो लाभ पहुँचाये थे उनमें हिन्दी-प्रचार भी एक था। 'हिन्दी या हिन्दुस्तानी' कांग्रेस-द्वारा भारत की राष्ट्रभाषा मान ली गई है, अतः उसकी दृष्टि में उसका प्रचार अहिन्दी-भाषी प्रान्तों में जितना शीघ्र हो जाय, राष्ट्र के लिए उतना ही अच्छा है। यह असम्भव सा है कि लोकोपयोगी कोई भी योजना, चाहे वह कैसी ही लाभदायक क्यों न हो, सर्वसाधारण-द्वारा एकमत

से स्वीकार कर ली जाय। आख़िर समाज में दक़ियानूसों को भी कुछ संख्या रहती ही है और वे किसी भी योजना को, उसके नये होने के कारण ही, फूटी आँखों देखना तक पसन्द नहीं करते। अतः कोई सरकार इसके लिए यदि थोड़ा-बहुत बल-प्रयोग भी करे तो वह सह्य है। माननीय राजगोपालाचार्य जी ने भी अपने मंत्रित्व-काल में मदरास में हिन्दी की शिक्षा स्कूलों में अनिवार्य कर दी थी, माननीय राजा जी के अल्प-कालीन शासन में ही मदरास में हिन्दी की आशाजनक उन्नति और प्रगति हो गई थी।

इधर कांग्रेस-मंत्रिमण्डल के हटते ही और गवर्नर की सरकार के स्थापित होते ही वहाँ हिन्दी के विरोधियों की चढ़ बनी है। इसे राष्ट्र का और विशेषतः मदरास-प्रान्त का दुर्भाग्य ही समझना चाहिए। गवर्नर की सरकार ने हिन्दी को अनिवार्य-विषय के पद से उतारकर ऐच्छिक विषय के धरातल पर डाल दिया है और वह भी बुरी तरह से। आरम्भिक ३ कक्षाओं से तो हिन्दी हटा ही दी गई है। चौथी कक्षा से यदि कोई विद्यार्थी चाहे तो उसे ऐच्छिक विषय के रूप में ले सकता है। स्कूल लीविंग-सर्टीफ़िकेट के लिए भी हिन्दी एक विषय स्वीकार कर ली गई है, पर हाई स्कूलों में हिन्दी-शिक्षा की कोई व्यवस्था न रहने से अव्वल तो कोई छात्र हिन्दी लेगा ही क्यों, और यदि लेगा भी तो उसके उत्तीर्ण होने में ही सन्देह रहेगा। इस तरह मदरास में हिन्दी-प्रचार के मार्ग भारी में बाधा आ गई है।

पर मदरास की जनता का भी कुछ कर्तव्य है। उसे भी अपने भले-बुरे की समझ है। भले ही हिन्दी ऐच्छिक विषय रहे, पर इतने विद्यार्थियों को उसे लेने के लिए तैयार हो जाना चाहिए कि सरकार को उसके लिए शिक्षा-विभाग में सुव्यवस्था कर देने को विवश होना पड़े। गवर्नरों की सरकारें तो राष्ट्रीयता-प्रचार में अधिक उत्सुकता नहीं दिखायेंगी, पर इसका अर्थ यह नहीं है कि जनता भी अपना हिताहित न समझे। आशा है कि मदरास का विद्यार्थी-वर्ग इस दिशा में अपनी ज़िम्मेदारी का पालन पूरी तरह से करेगा।

राजयक्ष्मा और काला सर्प

काले सर्प का रक्त राजयक्ष्मा के रोगियों को विशेष लाभ करता है, पर इसके संबन्ध में साधारण चिकित्सकों का अनुभव अभी तक नहीं के बराबर ही है। बात यह है कि काले सर्प सर्वत्र पाये जाने पर भी, हर समय नहीं मिल सकते और उनसे काम लेना भी जान-जोखिम का काम है। कई वर्ष हुए, स्वर्गवासी मसीहुलमुल्क हकीम अजमल ख़ाँ साहब ने इसके प्रयोग आरम्भ किये थे, जिनमें उन्हें सफलता भी मिली थी। उन्होंने रामपुर-रियासत में एक विशेष प्रकार का गन्ना पैदा कराया था, जिसमें मरे हुए काले साँपों की खाद दी गई थी। साँप कम मिल सके थे, इसलिए गन्ने भी अँगुलियों पर गिनने लायक़ ही पैदा किये जा सके थे। पर ये गन्ने यक्ष्मा के जिन रोगियों को सेवन कराये गये थे उन्हें आश्चर्यजनक लाभ हुआ था। तब से रामपुर के अतिरिक्त शायद दो-एक और स्थानों में भी इसके प्रयोग किये गये हैं।

कहते हैं कि स्वर्गीय मसीहुल्मुल्क ने अपनी किसी ख़ानदानी पुरानी पोथी में यह नुस्खा पाया था। इससे सिद्ध होता है कि पुराने ज़माने में भारतीयों को इसके संबन्ध में काफ़ी अनुभव रहा होगा। पर इधर जापान में भी इस चिकित्सा के प्रचलित होने के समाचार मिले हैं। ओसवाल्ड हेनरी नामक एक सज्जन पिछले दिनों जापान गये थे। वहाँ के याकोहामा शहर में घूमते-फिरते वे एक ऐसी दूकान के सामने से निकले जिसमें साँप ही साँप थे। इनमें से कुछ तो शीशे की आलमारियों में बन्द थे और कुछ के रहने के लिए बाँबियों और अँधेरे कोटरों की व्यवस्था की गई थी। हेनरी महाशय कौतूहलवश उसमें घुस गये और उन्होंने देखा कि एक डाक्टर ने जो उस दूकान का मालिक था, एक काला साँप कोटर में हाथ डालकर निकाला। फिर उसका मुँह खोलकर क़ैंची से मुँह के भीतर की खाल का एक पर्त काट दिया। इससे एक 'धमनी' निकल आई। इस धमनी के काटने से आधा गिलास रक्त निकला। यह रक्त कुछ जल में मिलाकर एक रोगी को पिलाया गया जो यक्ष्मा से पीड़ित था। डाक्टर से पूछने पर पर्यटक महाशय को ज्ञात हुआ कि जापान में साँप का रक्त यक्ष्मा के रोग के लिए शत-प्रतिशत लाभदायक और अचूक प्रयोग माना जाता है।

आशा है, विज्ञान कभी न कभी इस संबन्ध में काफ़ी खोज करेगा। इससे न केवल यक्ष्मा की विभीषिका का अन्त हो जायगा, प्रत्युत एक जीव जो साधारणतः मनुष्य का काल समझा जाता है, उसका सबसे बड़ा मित्र बन जायगा।

रामगढ़ का कांग्रेस-अधिवेशन

कांग्रेस का ५३वाँ अधिवेशन इस वर्ष बिहार के राँची के पास रामगढ़ नाम के गाँव में किया गया। इस अधिवेशन के सभापति प्रसिद्ध मुस्लिम-नेता मौलाना अबुल क़लाम आज़ाद मनोनीत हुए थे। इस अधिवेशन की कार्यवाही की ओर सारे देशवासियों की आँखें लगी हुई थीं। परन्तु भयानक जलवृष्टि हो जाने से बीच में ही अधिवेशन की कार्यवाही बन्द कर देनी पड़ी। जो अधिवेशन चार चार दिन होता रहता था, जलवृष्टि के अनर्थ के कारण डेढ़ ही दिन में समाप्त कर दिया गया। राष्ट्रपति मौलाना आज़ाद अपना महत्त्वपूर्ण भाषण तक खुले अधिवेशन में नहीं पढ़ सके। उसका एक विशेष अंश इसी अंक में अन्यत्र दिया

युद्ध की डायरी

२४ फ़रवरी—ब्रिटिश हवाई जहाज़ों ने ४ यू-बोट डुबा दिये।

२६ फ़रवरी—फ़िनिशों ने कडिविस्टो द्वीप खाली कर दिया।

२७ फ़रवरी—फ़ोर्थ की खाड़ी के किनारे २ जर्मन हमलावर हवाई जहाज़ों को ब्रिटिश हवाई जहाज ने मार गिराया।

जर्मनी के एक जहाज 'वाहेहे' को (४,७०९ टन) ब्रिटिश फ़ौजी जहाज ने पकड़ लिया।

२८ फ़रवरी—फ़िनलैंड के कैरेलियन स्थल डमरूमध्य पर घनघोर युद्ध रूसी व फ़िन सेनाओं में हुआ।

१ मार्च—वीपुरी में रूसी व फ़िन सेनाओं में घमासान युद्ध हुआ।

४ मार्च—मोला नामक एक ब्रिटिश जहाज को जर्मन-जहाज ने आग लगाकर नष्ट कर दिया। 'वीपुरी' के निकट फ़िन-रूसी फ़ौजों में संघर्ष हुआ।

६ मार्च—मेगोनाट लाइन के एक ब्रिटिश फ़ौजी अड्डे पर जर्मनों ने हमला किया।

स्काटलैंड के पूर्वी-उत्तरी तट पर एक जर्मन-वायुय[an] ब्रिटिश सैनिक वायुयान के द्वारा मार गिराया गया।

१२ मार्च—रूस-फ़िन-सन्धि की चर्चा और अ[illegible] बढ़ी। फ़िनलैंड की कठपुतली सरकार के व्यक्ति गिरफ़्[तार] कर लिये गये।

१५ मार्च—एक जर्मन-पनडुब्बी डुबा दी गई[।] फ़िन व लाल फ़ौजें मोरचों से लौटने लगीं।

१६ मार्च—रूस व फ़िनलैंड की सन्धि फ़िनलैंड[की] पार्लियामेंट में स्वीकृत व प्रमाणित हो गई।

१९ मार्च—ब्रिटिश वायुयानों ने जर्मनी के सि[ल्ट] द्वीपस्थित हार्नम के हवाई अड्डे पर भयानक आक्र[मण] किया, बम बरसाये गये।

मोसेल व नीड नदियों के बीच जर्मनों ने फ़्रांसी[सी] सेनाओं पर कई हमले किये।

"कैपटेनी आगस्टिन" नामक फ़्रेंच जहाज इँग्लैंड[के] पूर्वी तट से कुछ दूर एक सुरंग से टकरा कर डूब गया।

२० मार्च—फ़्रांस में दलादिए के मंत्रि-मंडल ने इस्ती[फ़ा] दे दिया और उसके स्थान पर रेनो मंत्रि-मंडल क़ायम हुआ[।]

२१ मार्च—स्काटलैंड के पास ब्रिटिश जहाज़ों [पर] जर्मन हवाई जहाज़ों ने आक्रमण किया।

Printed and published by K. Mittra, at The Indian Press, Ltd. ALLAHABAD.